महाकविदण्डिविरचितम्

दशकुमारचरितम्

टीकाकारः
विश्वनाथ झा

मोतीलाल बनारसीदास
दिल्ली वाराणसी पटना बंगलोर मद्रास

MUNSHIRAM MANOHARLAL
PUBLISHERS PVT. LTD.
ORIENTAL & FOREIGN BOOKSELLERS
P.O 5715 54 RANI JHANSI ROAD
NEW DELHI - 110055 (INDIA)

महाकविदण्डिविरचितम्

दशकुमारचरितम्

अर्थप्रकाशिकोपेतम्

[सम्पूर्णम्]

Bhawan's Sri Sankaracharya Sanskrit Mahavidyalaya ★ Bharatiya Vidya
573

टीकाकारः

विश्वनाथ झा

व्याकरणाचार्यः

...आचार्य संस्कृत महाविद्यालय ... भारतीय विद्या भवन, नई दिल्ली
डॉ॰ विमला
चौपड़ा

MUNSHIRAM MANOHARLAL
PUBLISHERS PVT. LTD.
Sanskrit Religious Music & Ayurvedic Book Seller
4416, Nai Sarak, Delhi-110006
Phone : 2911154

मोतीलाल बनारसीदास
दिल्ली वाराणसी पटना बंगलोर मद्रास

द्वितीय संस्करण : वाराणसी, १९७२
पुनर्मुद्रण : दिल्ली, १९७५, १९८१, १९८४, १९९३

© मोतीलाल बनारसीदास

बंगलो रोड, जवाहरनगर, दिल्ली ११० ००७
१२० रॉयपेट्टा हाई रोड, मैलापुर, मद्रास ६०० ००४
१६ सेन्ट मार्क्स रोड, बंगलोर, ५६० ००१
अशोक राजपथ, पटना ८०० ००४
चौक, वाराणसी २२१ ००१

मूल्य रु० ५८

Bhawan's Sri Sankaracharya ...
573
Bharatiya Vidya · Mahavidyalaya

J Veeraraghavan
DIRECTOR
BHARATIYA VIDYA BHAVAN
KASTURBA GANDHI MARG
NEW DELHI-110001

नरेन्द्रप्रकाश जैन, मोतीलाल बनारसीदास, बंगलो रोड, दिल्ली ११० ००७
द्वारा प्रकाशित तथा जैनेन्द्रप्रकाश जैन, श्री जैनेन्द्र प्रेस, ए-४५ नारायणा,
फेज-१, नई दिल्ली ११० ०२८ द्वारा मुद्रित

भूमिका

दशकुमार चरित के रचयिता–महाकवि दण्डी संस्कृत गद्यसाहित्यमाला के मध्यमणि माने जाते हैं। 'अवन्तिसुन्दरी कथा' के साक्ष्य पर इनका संक्षिप्त परिचय इस प्रकार है—

महाकवि भारवि के मध्यम पुत्र 'मनोरथ' के चार पुत्र थे, जिनमें सबसे छोटे 'वीरदत्त' एक सुयोग्य विद्वान् थे। वीरदत्त की स्त्री का नाम 'गौरी' था। गौरी के गर्भ से ही महाकवि दण्डी का जन्म हुआ था। बाल्यकाल में ही माता-पिता के दिवंगत हो जाने के कारण दण्डी आश्रयहीन हो गये थे। हिन्दुओं की पवित्र नगरी 'काञ्ची' इनकी जन्मभूमि थी। इनका जन्म शिक्षित ब्राह्मण परिवार में हुआ था और काञ्ची के पल्लव नरेशों की छत्रच्छाया में इनके सुखमय दिन बीते थे। दण्डी का समय छठीं शताब्दी का उत्तरार्ध तथा सातवीं शताब्दी का पूर्वार्ध माना जाता है, क्योंकि कीथ और कुछ अन्य विद्वान् दण्डी को बाण से पूर्ववर्ती मानते हैं। वस्तुतः अन्तर्बाह्य प्रमाणों के आधार पर सुबन्धु प्रथम, दण्डी द्वितीय और बाण तृतीय, गद्यकाव्य रचयिता हैं, जिनका समय छठीं शताब्दी के प्रारम्भ से लेकर सातवी शताब्दी के उत्तरार्ध तक माना जाता है।

महाकवि दण्डी द्वारा प्रणीत तीन ग्रन्थों की उपलब्धि आज की प्रामाणिक गवेषणा का फल है। 'दशकुमारचरित' और 'काव्यादर्श' तो इनकी निर्विवाद रचनायें हैं। 'अवन्तिसुन्दरीकथा' विवादास्पद होते हुये भी इन्हीं की रचना मानी जाती है। राजशेखर ने कहा है—

> त्रयोऽग्नयस्त्रयो देवास्त्रयो वेदास्त्रयो गुणाः।
> त्रयो दण्डिप्रबन्धाश्च त्रिषु लोकेषु विश्रुताः॥

दण्डी का पदलालित्य

संस्कृत काव्य जगत् में शब्दों की कलात्मक-वाटिका सजाने में दण्डी को अभूतपूर्व सफलता मिली है। दण्डी शब्द-राज्य के समर्थ राजा थे। पदसमूह वंशपद अनुचर की भाँति उनका अनुगमन करते थे। उनके काव्य दशकुमारचरित में आनुप्रासिक पदविन्यास की छटा देखने ही योग्य है।

ललितपदों की शृंखलाबद्ध-संस्थापना की विलक्षण-कला चातुरी से समस्त दशकुमारचरित ओत-प्रोत है।

अतएव संस्कृत संसार में 'दण्डिनः पदलालित्यम्' अत्यन्त प्रसिद्ध उक्ति मानी जाती है। दशकुमारचरित के अध्ययन से यह सिद्ध होता है कि दण्डी व्यावहारिक संस्कृत गद्य के

सिद्ध-हस्त लेखक थे। इनके गद्य की शैली सरल एवं प्रसाद-मयी है। भाषा में स्वाभाविक प्रवाह और यथास्थान मुहावरों का सन्निवेश है। इनमें दीर्घ पदविन्यास के अभाव के कारण पाठकों का मनोरञ्जन होता रहता है। गद्य में न तो सुबन्धु की श्लिष्टता और न बाण की क्लिष्टता ही मिलती है। इनका गद्य तो शिष्ट संयत और सुप्रयुक्त है। अनुप्रासमय पद विन्यास ही इनके पदलालित्य का प्रधान कारण है। आनुप्रासिक चमत्कार के साथ ही 'यमक' का समावेश अतीव मनोहर हो गया है, यथा—तत्र "विरचितारातिसंतापेन……… रमणी बभूव"।

उपर्युक्त गद्यखण्ड में अनुप्रास के साथ ही 'वसुमती-सुमती शेखरमणी रमणी' इन अंशों में यमक का विन्यास सराहनीय है। इसके अतिरिक्त "तत्र वीरभटपटलोत्तरंग……… भूपो बभूव" इत्यादि गद्यखण्ड में उनके शब्द-शिल्प का सौष्ठव दृष्टिगोचर होता है। यद्यपि अनुप्रास और यमक के अनवरत निर्वाह में उन्हें कहीं कहीं दूरान्वयी अर्थ का सहारा लेना पड़ा है, फिर भी 'एको हि दोषो गुणसन्निपाते' के अनुसार यह दोष भी 'दण्डिनः पदलालित्यम्' इस उक्ति में बाधक न होकर साधक ही बनता है। अतः 'दण्डिनः पदलालित्यम्' यह उक्ति दण्डी की काव्य-कला का मापदण्ड माना जाता है।

ऐसी उपयोगी कृति का, जो कि सर्वत्र संस्कृत की परीक्षाओं में पाठ्य रूप से निर्धारित है, सस्ता तथा छात्रों को सरल एवं सुबोध प्रणाली से समझाने वाली संस्कृत और हिन्दी की व्याख्याओं के साथ प्रकाशित न होने का अभाव हमारे इस संस्करण से दूर हो गया है। अत एव इसका पहला संस्करण शीघ्र ही समाप्त हुआ और इसका दूसरा संस्करण नई टाइप में प्रकाशित हो कर आपके सामने प्रस्तुत है।

व्याख्याकार

॥ श्रीगणेशाय नमः ॥

दशकुमारचरितम्

पूर्वपीठिका

प्रथमोच्छ्वासः

ब्रह्माण्डच्छत्रदण्डः शतधृतिभवनाम्भोरुहो नालदण्डः
क्षोणीनौकूपदण्डः क्षरदमरसरित्पट्टिकाकेतुदण्डः ।

नत्वा विश्वेश्वरं साम्बं सानुजं जनकं तथा ।
व्याख्या दशकुमारस्य क्रियतेऽर्थप्रकाशिका ॥

‘निर्विघ्नपरिसमाप्तिकामो मंगलमाचरेत्’ इति शिष्टानुशासनमनुसरन् तत्रभवान् कविकुल-चूडामणिर्दण्डी प्रारिप्सितस्य दशकुमारचरिताख्यगद्यकाव्यस्य विघ्नव्रातविधूननाय वामनावतार-धारिणो हरेश्चरणकमलं स्तौति ब्रह्माण्डेत्यादिना ।

ब्रह्माण्डेति--ब्रह्माण्डम् = विश्वम् तदेव छत्रमातपत्रम् तस्य दण्डः = आधारस्तम्भः । शतधृतिः = ब्रह्मा तस्य भवनस्य = उत्पत्तिगृहस्य अम्भोरुहः = पद्मस्य नालदण्डः = वृन्तभूता यष्टिः । क्षोणी = पृथ्वी ‘क्षोणिर्ज्या काश्यपी क्षितिः’ इति कोशः एव नौः = तरणिः तस्याः कूपदण्डः = गुणवृक्षः (‘मस्तूल’ इति भाषायाम्) क्षरन्ती = प्रवहन्ती या अमरसरित् = आकाश-

---

मंगलाचरण की अवतरणिका

पौराणिक कथा है कि शुक्राचार्य की सञ्जीवनी विद्या के बल से मृत दैत्यराज बलि जी उठा और यज्ञद्वारा प्राप्त विशिष्ट शक्ति से पुनः देवताओं को परास्त कर स्वर्गाधिपति बन बैठा । देवता लोग घबराये । देवमाता अदिति ने कश्यपजी से प्रार्थना की कि हमारे पुत्र देवतागण दुःखी हैं । आप इनके दुःख निवारण का उपाय करें । कश्यपजी भगवान् विष्णु की शरण गये । अदिति ने व्रत-उपवास किया । विष्णु प्रसन्न हो उसके पुत्ररूप में अवतीर्ण हुए, जो वामनावतार कहे जाते हैं । ब्रह्मचारी वेष में वामन भगवान् राजा बलि के पास गये । शुक्राचार्य अश्वमेधयज्ञ करा रहे थे । यज्ञ में दीक्षित दैत्यराजने ब्रह्मचारी का स्वागत किया और अभी-

ज्योतिश्चक्राक्षदण्डस्त्रिभुवनविजयस्तम्भदण्डोऽङ्घ्रिदण्डः
श्रेयस्त्रैविक्रमस्ते वितरतु विबुधद्वेषिणां कालदण्डः ॥

पाटिलपुत्रवर्णनम्

(१) अस्ति समस्तनगरीनिकषायमाणा (२) शश्वदगण्य-पण्यविस्तारित-

गंगा सैव पट्टिका = पताका तस्याः केतुदण्डः = ध्वजयष्टिः । ज्योतिः = ग्रहमण्डली एव चक्रम् = रथाङ्गम् तस्य अक्षदण्डः = नाभिरूपकाष्ठदण्डविशेषः । त्रिभुवनेति । त्रयाणां भुवनानां समाहारः त्रिभुवनम् तस्य विजयस्य = व्यापनरूपस्य स्तम्भदण्डः । तथा विबुधद्वेषिणाम् = दैत्यानाम् कालदण्डः = यमदण्डस्वरूपः । विविक्रमस्य विष्णोरयमित्यण् त्रैविक्रमो विष्णुसम्बन्धी अङ्घ्रिः = चरणः दण्ड इवेति अङ्घ्रिदण्डः = चरणदण्डः । ते = तुभ्यं तव वा श्रेयः = कल्याणं वितरतु = ददातु । पद्येऽस्मिन् रूपकालङ्कारः । दण्डशब्दस्यैकार्थत्वादनवीकृतत्वं दोष इव । स्रग्धरा वृत्तम् । "म्रभ्नैर्यानां त्रयेण त्रिमुनियतियुता स्रग्धरा कीर्तितेयम्" इति लक्षणात् ।

अस्ति पुष्पपुरी नाम नगरीति सम्बन्धः । (१) समस्तेति । समस्तानाम् = सकलानाम् नगरीणां निकषः = आदर्शः, गुणपरीक्षास्थानम् वा तदिवाचरतीति निकषायमाणा (निकष- शब्दादाचारार्थे क्यङ् तदन्तात् शानच्) सर्वश्रेष्ठभूता । (२) शश्वदिति । शश्वत् = निरन्तरम् अगण्यैः = असङ्ख्यैः पण्यैः = विक्रेयैः विस्तारितैः = विक्रयार्थं प्रसारितैः मणिगणादिवस्तुजातैः = मणीनां गणः, आदिः येषां वस्तूनां तेषां जातैः समूहैः रत्ननिचयादिद्रव्यसमूहैः व्याख्यातं =

प्सित वस्तु मांगने को कहा । फलतः वामन भगवान् ने उससे तीन पग पृथ्वी की याचना की । शुक्राचार्य के रोकने पर भी उसने उनकी याचना स्वीकार कर ली । निदान उन्होंने एक पग में पृथ्वी, एक पग में स्वर्गादिलोक तथा शरीर से समस्त आकाश व्याप्त कर लिया । उनका वामपाद ब्रह्मलोक से भी ऊपर तक चला गया । भगवान् ने जब तीसरे पग के लिए स्थान पूछा तो बलि ने उसे अपने मस्तक पर रखने को कहा और उसने अपना मस्तक झुका दिया । प्रभु ने वहाँ अपना चरण रखा । बलि गरुड द्वारा बाँध लिया गया । अन्त में भगवान् प्रसन्न हुए और बलि को सुतल लोक में सानन्द निवास करने का स्थान दिया । उन्हीं तीनों पगों की स्तुति कविने यहाँ की है ।

अर्थ—भगवान् त्रिविक्रम (वामन) का वह चरण-दण्ड—जो ब्रह्माण्ड रूपी छाते के दण्ड के समान है, ब्रह्मा के उत्पत्तिस्थान कमल के नाल दण्ड के समान है, पृथ्वीरूपी नौका के कूपदण्ड (मस्तूल या गुनरखा) के समान है, आकाश गङ्गारूपी पताका के ध्वजदण्ड के समान है, ग्रह नक्षत्र मण्डलरूप रथचक्रों (पहियों) की धूरी के समान है, तीनों लोकों के जीतने के चिह्न स्वरूप स्तम्भ (खूँटा) के समान है, अथवा जो राक्षसों के लिए यमदण्ड-स्वरूप है—आपका कल्याण करे ।

(१) संसार की सारी नगरियों को जांचने की कसौटी (में सर्वश्रेष्ठ) (२) निरन्तर असंख्य दूकानों में फैलाकर रखे हुए मणियों आदि के द्वारा रत्नाकर (समुद्र) के रत्नों के

मणि-गणादि-वस्तु-जात-व्याख्यात-रत्नाकर-माहात्म्या (३) मगधदेश-शेखरीभूता पुष्पपुरी नाम नगरी ।

मगधराजराजहंसवर्णनम्

(४) तत्र वीरभटपटलोत्तरङ्गतुरङ्गकुञ्जरमकरभीषणसकलरिपुगणकटकजलनिधिमथनमन्दरायमाणसमुद्दण्डभुजदण्डमण्डलः, (१) पुरन्दरपुराङ्गणवनविहरणपरायणतरुणगणिकागणजेगीयमानयाऽतिमानया (२) शरदिन्दुकुन्दघनसारनीहा-

---

प्रकटीकृतम् रत्नाकरस्य रत्नानाम्=मणीनाम् आकरस्य=समुद्रस्य इव माहात्म्यं=महिमा यस्याः तथाभूता=विविधानेकरत्नपूरितापणा । (३) मगधदेशशेखरीभूता—मगधदेशस्य शेखरीभूता=शिरोभूषणस्वरूपा । पुष्पपुरी=साम्प्रतिकं नाम पाटलिपुत्रम् ('पटना' इति भाषायाम्) नाम=इत्यव्ययं प्रसिद्धार्थकम् । नगरी अस्ति=वर्तते ।

(४) तत्र वीरेति । तत्र=कुसुमपुरे (पुष्पपुर्याम्) । वीराणाम्=शूराणाम्, भटानां=योधानाम् पटलेन=समूहेन उत्तरङ्गाः=उद्गतवीचयः उन्नताः तुरङ्गाः=अश्वाः कुञ्जराः=हस्तिनश्च ते मकराः=नक्राः (जलजन्तुविशेषाः) तैः भीषणम्=भयङ्करम् सकलानाम्=समस्तानाम् रिपुगणानाम्=शत्रुसमूहानाम् कटकम्=सैन्यं जलनिधिः=समुद्र इव तस्य मथने=विलोडने मन्दरायमाणम्=मन्दराद्रिरिवाचरत् (मन्थनदण्डस्वरूपम्) समुद्दण्डं=समुन्नतम् भुजदण्डमण्डलम्=बाहुदण्डयुगलम् यस्य सः । भुजदण्डः, इति पाठे भुजो दण्ड इव यस्य स इत्यर्थः ।

(१) पुरन्दरेति । पुरन्दरस्य=इन्द्रस्य पुरम्=नगरम् तस्य अमरावत्याः इत्यर्थः अङ्गणवने=अङ्गणस्य=चत्वरस्य यद् वनम् तस्मिन् नन्दनवने इति यावत् विहरणपरायणानाम्—विहरणे=विहारे परायणानाम्=तत्पराणाम् तरुणीनाम्=युवतीनां गणिकानाम्=अप्सरसाम् गणैः=समूहैः जेगीयमानया=वारं वारं कीर्त्यमानया । अतिमानया=अति=अधिकं मानं=परिमाणं यस्याः तयां महत्येत्यर्थः ।

(२) शरदिति । शरदिन्दुः=शरत्कालीनश्चन्द्रश्च कुन्दम्=माघमासि भवं कुसुमञ्च घनसारः=चन्दनरसः (कर्पूरश्च) नीहारः=हिमश्च हारः मौक्तिकमाला च मृणालम्=

माहात्म्यको प्रकाशित करने वाली और (३) मगधदेश की शिरोमुकुट (राजधानी) पुष्पपुरी नाम की नगरी थी ।

(४) उसमें राजहंस नामक एक राजा रहते थे । उनके विशाल भुजदण्ड, योद्धाओं के समूहरूप उत्ताल तरंगों वाले, घोड़े और हाथीरूप मगरों से भयङ्कर, समस्त शत्रुमंडल के सैन्यरूप समुद्र को मथने के लिए मन्दराचल पर्वत की भाँति थे । (१) उनकी कीर्ति से दिशाएँ व्याप्त थीं, जो (कीर्ति) अमरावती के उद्यान (नन्दनवन) में विहार करने वाली युवती वेश्याओं द्वारा बारम्बार गायी गयी थी, तथा अधिक परिमाणों वाली थी एवं (२) शरत्कालीन चन्द्रमा, कुन्द (माघी)–पुष्प, कपूर, हिम, मोती-माला मृणाल (कमल की नाल) हंस,

त्कटमानसारं मानसारं प्रति सहेलं (२) न्यक्कृतजलधिनिर्घोषाहङ्कारेण भेरीझाङ्कारेण (१) हठिकाकर्णनाक्रान्तभयचण्डिमानं (२) दिग्दन्तावलवलयं विघूर्णयन् (३) निजभरनमन्मेदिनीभरेण (४) आयस्तभुजगराजमस्तकबलेब चतुरङ्गबलेन संयुतः सङ्ग्रामाभिलाषेण रोषेण महताविष्टो निर्ययौ। (५) मालवनाथोऽप्यनेकानेकपयूथसनाथो विग्रहः सविग्रह इव साग्रहोऽभिमुखीभूय भूयो निर्जगाम। (१) तयोरथ रथतुरगखुरक्षुण्णक्षोणीसमुद्भूते (२) करिघटाकटस्रवन्मदधाराधौ-

---

(२) न्यक्कृतेति। न्यक्कृतः तिरस्कृतः जलधेः=समुद्रस्य निर्घोषाहंकारः=निर्घोषस्य=शब्दस्य अहंकारः गर्व कलरवजनिताहंकारः येन तादृशेन भेरीझाङ्कारेण—भेर्याः=दुन्दुभेः झाङ्कारः=शब्दः तेन दुन्दुभिनादेन (१) हठिकाकर्णनात्—हठिकस्य=सहसागतस्य शब्दस्य आकर्णनात्=श्रवणात् आक्रान्तः=प्राप्तः भयस्य चण्डिमा=उग्रत्वम् यस्य तथाभूतम्। (२) दिशाम् ये दन्तावलाः=गजाः तेषां वलयम्=मण्डलम् विधूर्णयन्=कम्पयन्। (३) निजभरनमन्मेदिनीभरेण—निजस्य=स्वस्य भरेण=भारेण नमन्त्याः=अधोगच्छन्त्याः मेदिन्याः=पृथिव्याः भरेण=भारेण (४) आयस्तम्=आयासेन क्लेशितम् भुजगराजस्य=शेषस्य मस्तकानां=सहस्रशिरसाम् बलम्=सामर्थ्यम् येन तथोक्तेन चतुरङ्गबलेन=चत्वारि अङ्गानि यस्य तथाभूतं यत् बलम्=सैन्यम् तेन हस्त्यश्वरथपदातिमयेन चतुर्विधसैन्येन "हस्त्यश्वरथपादातं सेनाङ्गं स्याच्चतुर्विधम्" इत्यमरः। संयुतः=सहितः। संग्रामाभिलाषेण—संग्रामस्य=युद्धस्य अभिलाषः=मनोरथः तेन महता रोषेण=क्रोधेन आविष्टः=युक्तः समाक्रान्तः निर्ययौ=निर्जगाम। (५) मालवनाथेति। मालवनाथः=मानसारः मालवेश्वर इति यावत्। अनेकानेकपयूथसनाथः—अनेकेषाम्=बहूनाम् अनेकपानाम्=हस्तिनाम् "द्विरदोऽनेकपो द्विपः" इत्यमरः, यूथेन=समूहेन सनाथः=युक्तः, विग्रहः=संग्रामः, सविग्रह इव मूर्तिमान् इव साग्रहः=साभिलाषः युद्धायात्यादरवान् इत्यर्थः। भूयः=पुनरपि अभिमुखीभूय=सम्मुखो भूत्वा। निर्जगाम=निर्ययौ।

(१) अथ=अनन्तरम् निर्गमनानन्तरमित्यर्थः तयोः=राजहंसमानसारयोः रथतुरगेति। रथाश्च=रथचक्राणि च तुरगाश्च=अश्वाश्च तेषां खुरैः=शफैः क्षुण्णा=दलिता या क्षोणी=मही तस्याः समुद्भूते=समुत्थिते उत्पन्ने इत्यर्थः धूलीपटले इत्यनेन सम्बन्धः। (२) करिघटानां=

मालवेश्वर मानसार के ऊपर क्रुद्ध होकर, बिना प्रयास के (अवज्ञा पूर्वक) (२) समुद्र के गम्भीर गर्जनों को दबानेवाले नगाड़े के शब्दों को (१) सहसा सुनकर भयत्रस्त (२) दिग्गजों को कँपाने वाले, (३) अपने भार से दबी हुई पृथ्वी के भार से (४) शेषनाग के के मस्तक-बल को पीडित करनेवाले चतुरङ्गिणी (हाथी, घोड़े, पैदल और शस्त्रों से सजी) सेना लेकर युद्ध की इच्छा से चल पड़े।

(५) शरीरधारी समर की भाँति मालवाधिपति मानसार भी अनेक हाथियों की सेना से सज्जित हो आग्रह के साथ अपने नगर से पुनः निकल पड़ा। (१) पश्चात् उन दोनों में भयंकर युद्ध प्रारम्भ हो गया। रथ की पहियों और घोड़ों की टापों से पिसी एवं पृथ्वी से उड़ी

तमूले (३) नव्यवल्लभवरणागतदिव्यकन्याजनजवनिकापटमण्डप इव वियत्तलव्याकुले धूलीपटले (४) दिविषदध्वनि धिक्कृतान्यध्वनिपटहध्वानबधिरिताशेषदिगन्तरालं (५) शस्त्राशस्त्रि हस्ताहस्ति परस्पराभिहतसैन्यं जन्यमजनि।

(१) तत्र मगधराजः प्रक्षीणसकलसैन्यमण्डलं मालवराजं जीवग्राहमभिगृह्य कृपालुतया पुनरपि स्वराज्ये प्रतिष्ठापयामास। (२) ततः स रत्नाकरमेखलामिला-

---

गजसमूहानाम् कटेभ्यः = गण्डस्थलेभ्यः स्रवन्त्यः = क्षरन्त्यः याः मदधाराः ताभिः = मदजलप्रवाहैः धौतम् = प्रक्षालितम् मूलम् यस्य तथाभूते। (३) नव्यवल्लभानां—नव्याः = नवाः ये वल्लभाः = प्रियाः रमणाः रणनिहताः भटाः इति यावत् संग्राममृताः सद्य एव स्वर्गमायान्तीति 'रणे चाभिमुखो हतः' इति स्मरणादिति भावः। तेषां वरणाय आगतानां दिव्यकन्याजनानाम् = दिव्याश्च ते कन्याजनाः तेषाम् = अप्सरसाम् जवनिका = तिरस्करिणी तया युक्तः पटमण्डपः—पटस्य = वसनस्य यः मण्डपः = पटस्यावासः तस्मिन्निव वियत्तलव्याकुले—वियत्तले = आकाशे व्याकुले = आच्छादिते विस्तारिते इत्यर्थः धूलीपटले—धूलीनाम् = पांशूनाम् पटले = समूहे। (४) दिविषदध्वनि—दिवि = स्वर्गे सीदन्तीति दिविषदः = देवाः तेषां अध्वनि = मार्गे। धिक्कृतेति। धिक्कृतः = दूरीकृतः तिरस्कृत इत्यर्थः अन्येषाम् ध्वनिः = शब्दः यैः तथोक्तैः पटहध्वानैः—पटहानाम् = वाद्यविशेषाणाम् ध्वानैः = शब्दैः ढक्कानिनादैरित्यर्थः बधिरितम् = बधिरीकृतम् स्थगितम् इत्यर्थः अशेषम् = सम्पूर्णम् दिशाम् अन्तरालम् = मध्यम् येन तत् (५) शस्त्राशस्त्रि = शस्त्रैः शस्त्रैश्च प्रहृत्य प्रवृत्तं यद् युद्धम् तत्, परस्पराभिहतसैन्यम् = परस्परेण अन्योन्येन अभिहतम् = समाक्रान्तम् सैन्यम् यस्मिन् तत्। जन्यम् = युद्धम् 'युद्धमायोधनं जन्यम्' इत्यमरः। अजनि = आरब्धम्। (१) तत्र = युद्धे। मगधराजः = राजहंसः। प्रक्षीणसकलसैन्यमण्डलम्—प्रक्षीणम् = निःशेषितम् सकलम् = समस्तम् सैन्यमण्डलम् = सेनासमूहः यस्य तम्, मालवराजम् = मालवेन्द्रम् मानसारम्। जीवग्राहमभिगृह्य—जीवस्य = जीवनस्य ग्राहः = ग्रहणम् यस्मिन् तद् यथा स्यात्तथा अभिगृह्य = धृत्वा जीवन्तमेव धृत्वेत्यर्थः। कृपालुतया = दयालुतया पुनरपि = भूयोऽपि स्वराज्ये प्रतिष्ठापयामास = प्रतिष्ठितमकरोत् स्थापयामासेत्यर्थः। (२) ततः = तदनन्तरम् सः = राजहंसः। रत्नाकरमेखलाम्—रत्नाकरः = समुद्रः मेखला = काञ्ची रशनेत्यर्थः यस्याः ताम्, इलाम् = पृथ्वीम् 'गौरिला कुम्भिनी क्षमे'त्यमरः

हुयी धूलि (२) हाथियों की झरती मदधारा से सनकर (३) नूतन पतियों को वरण करने के निमित्त आई अप्सराओं के लिए परदायुक्त तम्बू की भाँति—आकाश में व्याप्त हो गयीं। (४) अन्य सभी शब्दों को दबानेवाले नगाड़े के शब्दों को आकाश में गूँज उठने पर सभी दिशायें बहिरी सी हो गईं। (५) उस युद्ध में शस्त्र से शस्त्र और हाथों से हाथ टकराकर योद्धागण आपस में मारकाट करने लगे। (१) उस भयंकर संग्राम में महाराज राजहंस ने मानसार की सारी सेना नष्टकर उसको जिन्दा ही पकड़ लिया और दयावश फिर उसे उसके राज्य पर बैठा दिया। (२) मगध लौटकर राजा राजहंस सम्पूर्ण पृथ्वी का शासन करते हुए

मनन्यशासनां शासदनपत्यतया नारायणं सकललोकैककारणं निरन्तरमर्चयामास ।

राज्या गर्भधारणवर्णनम्

(३) अथ कदाचित्तदग्रमहिषी 'देवि देवेन कल्पवल्लीफलमाप्नुहि' इति प्रभातसमये सुस्वप्नमवलोकितवती । (१) सा तदा दयितमनोरथपुष्पभूतं गर्भमधत्त । (२) राजापि सम्पन्न्यक्कृताखण्डलः सुहृन्नृपमण्डलं समाहूय (३) निजसम्पन्मनोरथानुरूपं देव्याः सीमन्तोत्सवं व्यधत्त ।

(४) एकदा हितैः सुहृन्मन्त्रिपुरोहितैः सभायां सिंहासनासीनो गुणैरहीनो

अनन्यशासनाम्—नास्ति अन्यस्य = नृपस्य शासनम् = शास्तिः यस्या ताम् । शासत् = पालयन्, जक्षित्यादित्वान्नुमभावः सकललोकैककारणम्—सकलानाम् = समस्तानाम् लोकानाम् चराचराणामित्यर्थः एककारणम् = आदिभूतम् निरन्तरम् = अहर्निशम् अर्चयामास = पूजयामास ।

(३) अथ = अनन्तरम् । कदाचित् = एकदा । तदग्रमहिषी तस्य = मगधाधिपस्य अग्रमहिषी = पट्टराज्ञी वसुमती 'देवि = भद्रे, देवेन = राज्ञा राजहंसेन । सह, कल्पवल्लीफलम् = कल्पतरुफलम् । अवाप्नुहि = लभस्व' इति प्रभातसमये = उषःकाले सुस्वप्नम् अवलोकितवती = अपश्यत् । (१) सा वसुमती तदा = तस्मिन् समये दयितस्य = प्रियस्य यः मनोरथः अभिलाषः (पुत्रप्राप्तिरूपः) तदेव फलम् तस्य पुष्पभूतम् गर्भम् । अधत्त = दधार । (२) राजापि = राजहंसोऽपि सम्पदा = समृद्ध्या न्यक्कृतः = तिरस्कृतः आखण्डलः = देवराजः येन तथोक्तः सम्पदा इन्द्रादपि विशेषः । राजापीत्यनेन सम्बन्धः । सुहृन्नृपमण्डलम्—सुहृदाम् = मित्राणाम् नृपाणाम् = राज्ञाम् मण्डलम् = समूहम् समाहूय = आकार्य (३) निजेति । निजस्य सम्पदः = लक्ष्म्याः मनोरथस्य = अभिलाषस्य च अनुरूपम् = तुल्यम् सीमन्तोत्सवं = केशान्तर—संस्काररूपानन्दकर्मसंस्कारविशेषम् इति यावत् व्यधत्त = चकार । (४) एकदेति । एकदा = कदाचित् हितैः = हिताकाङ्क्षिभिर्जनैः, सुहृदश्च मन्त्रिणश्च पुरोहिताश्च तैः (सह) सभायाम् = गोष्ठ्याम् सिंहासनासीने—सिंहासने = भद्रासने 'भद्रासनं तु तदि'त्यमरः आसीनः = उपविष्टः, गुणैः = राजगुणैः, शौर्यादिभिः । अहीनः = न हीनः, अन्यूनः । (राजा)

निःसन्तान होने के कारण सम्पूर्ण लोक के आदि कारण भगवान् नारायण की निरन्तर आराधना करने लगे ।

(३) कुछ दिन बीतने पर एक दिन प्रातःकाल के समय रानी वसुमती ने एक सुस्वप्न देखा कि कोई व्यक्ति उससे कह रहा है—"देवि, राजा से कल्पवृक्ष का फल प्राप्त करो ।"

(१) तब उसने पति के मनोरथ (फल) की प्राप्ति के लिए पुष्परूप गर्भ को धारण किया । (२) सम्पत्ति (वैभव) से इन्द्र को लजाने वाले राजा राजहंस ने मित्र राजाओं को बुलाकर (३) अपनी सम्पत्ति तथा मनोरथ के अनुसार रानी का सीमन्तोन्नयन संस्कार किया ।

(४) एक दिन जब सर्व गुण सम्पन्न महाराज राजहंस अपने शुभेच्छु मित्रों, मन्त्रियों और पुरोहितों के साथ सभा में सिंहासनासीन थे, तब द्वारपाल ने आकर प्रणाम करके निवे-

(१) ललाटतटन्यस्ताञ्जलिना द्वारपालेन व्यज्ञापि-'देव ! (२) देवसन्दर्शनलालसमानसः कोऽपि देवेन विरच्यार्चनार्हो यतिर्द्वारदेशमध्यास्ते' इति (३) तदनुज्ञातेन तेन स संयमी नृपसमीपमनायि। (४) भूपतिरायान्तं तं विलोक्य सम्यग्ज्ञाततदीयगूढचारभावो निखिलमनुचरनिकरं विसृज्य मन्त्रिजनसमेतः प्रणतमेनं (१) मन्दहासमभाषत-'ननु तापस ! देशं सापदेश भ्रमन् भवांस्तत्र भवद-

---

(१) ललाटतटन्यस्ताञ्जलिना—ललाटतटे = भालदेशे न्यस्तः = बद्धः अञ्जलिः = प्रसृतिः 'पाणिर्निकुब्जः प्रसृतिस्तौ युतावञ्जलिः पुमान्' इत्यमरः, येन तथोक्तेन = शिरोबद्धाञ्जलिना। द्वारपालेन—द्वारम् = प्रतीहारम् 'स्त्री द्वार्द्वारं प्रतीहारः' इत्यमरः पालयति = रक्षति तेन = प्रतीहारेण, द्वास्थेन वा। 'प्रतीहारो द्वारपालद्वास्थद्वाःस्थितदर्शकाः' इत्यमरः। व्यज्ञापि = न्यवेदि। देव = राजन्, सम्बोधनपदम्। (२) देवसन्दर्शनलालसमानसः—देवस्य = भवतः राज्ञस्तवेत्यर्थः सन्दर्शने = सम्यक्तया अवलोकने लालसा यस्य तादृशं मानसं यस्येति बहुव्रीहिगर्भबहुव्रीहिः तथोक्तः 'कामोऽभिलाषस्तर्षश्च सोऽत्यर्थं लालसा द्वयोः' इत्यमरः। देवेन = श्रीमता। विरच्यार्चनार्हः—विरच्या = करणीया या अर्चना = पूजा ताम् अर्हतीति तादृशः = पूज्यः इत्यर्थः। कोऽपि = एकः। यतिः = संन्यासी। द्वारदेशम् = प्रतीहारम्। अध्यास्ते = अलंकरोति। अधिशीङ्स्थासामिति आधारस्य कर्मत्वम्। इति। ३) तदनुज्ञातेन तेन = राज्ञा राजहंसेन अनुज्ञातेन = आज्ञप्तेन, अनुमतेनेत्यर्थः। तेन = द्वारपालेन। संयमी संन्यासी। नृपसमीपम्—नृपस्य = राज्ञः समीपम् = निकटम्। अनायि = प्रापितः। नीधातोः द्विकर्मकत्वात् प्रधानकर्मणः संयमिनः कर्मत्वम्। (४) भूपतिः = राजा। आयान्तम् = आगच्छन्तम्। तम् = संयमिनम्। विलोक्य = दृष्ट्वा। सम्यग्ज्ञाततदीयगूढचारभावः—सम्यक् सुष्ठु ज्ञातः = अवगतः तदीयः = तत्सम्बन्धी गूढः = गुप्तः प्रच्छन्नः इति यावत् चारभावः = स्पशभावः, 'चरः स्पशः' इत्यमरः चारत्वम् येन सः। निखिलम् = समग्रम् अनुचरनिकरम्—अनुचरस्य = भृत्यस्य निकरम् = समूहम्। विसृज्य = मुक्त्वा। मन्त्रिजनेन = सचिवजनेन समेतः = युक्तः। (भूपतिः) प्रणतम् = कृतनमस्कारम् विनम्रमित्यर्थः। एनम् = यतिम्। (१) मन्दहासम् = मन्दः हासः यस्मिन्कर्मणि तत् यथा स्यात्तथा अभाषत = उवाच। ननु इति प्रश्ने। 'प्रश्नावधारणानुज्ञानुनयामन्त्रणे ननु' इत्यमरः तापस, इति सम्बोधने। देशम् = देशान्। सापदेशम्—अपदेशेन = छलेन 'व्याजोऽपदेशो लक्ष्यं च' इत्यमरः सह इति सापदेशम् = सव्याजम् यतिवेषं कृत्वेत्यर्थः। भ्रमन् = पर्यटन्। तत्र तत्र = तेषु तेषु स्थानेषु। भवदभिज्ञातम्—भवता अभिज्ञातम् = अवगतम्

दन किया—राजन्, आपके दर्शनार्थ एक पूज्य संन्यासी द्वारपर उपस्थित हैं। राजा की आज्ञा पाकर द्वारपाल उस संन्यासी को राजा के समीप ले आया। उसके गुप्तचर भाव को भली भाँति जानने वाले महाराज राजहंस ने उसे आते देखकर सभी नौकरों को वहाँ से हटा दिया और मन्त्रियों के साथ (१) कुछ हँसते हुए उस नम्र संन्यासी से बोले—हे तापस, इस कपट वेष में देशों का भ्रमण करते हुए उन-उन देशों में आपने कोई नई बात देखी हो या सुनी हो

भिज्ञातं कथयतु' इति ।

संन्यासिनः सन्देशकथनम्

तेनाभाषि (२) भूभ्रमणबलिना प्राञ्जलिना–'देव ! शिरसि देवस्याज्ञामादायैनं निर्दोषं वेषं स्वीकृत्य मालवेन्द्रनगरं प्रविश्य तत्र गूढतरं वर्तमानस्तस्य राज्ञः समस्तमुदन्तजातं विदित्वा प्रत्यागमम् ।

(१) मानी मानसारः स्वसैनिकायुष्यान्तराये संपराये भवतः पराजयमनुभूय वैलक्ष्यलक्ष्यहृदयो वीतदयो महाकालनिवासिनं कालीविलासिनमनश्वरं महेश्वरं

कथयतु = वर्णयतु इति ।

(२) भूभ्रमणबलिना—भुवः = पृथिव्याः भ्रमणे = पर्यटने यद् बलं = सामर्थ्यम् तदस्यास्तीति तेन । प्राञ्जलिना = बद्धाञ्जलिना । तेन = संयमिना । अभाषि = उक्तम् । देव = स्वामिन् । देवस्य = भवतः आज्ञाम् = आदेशम् । शिरसि आदाय = गृहीत्वा एनं निर्दोषम् = दोषरहितम् । वेषम् = रूपम् नेपथ्यम् वा, यतिस्वरूपमित्यर्थः । स्वीकृत्य = अङ्गीकृत्य । मालवेन्द्रनगरम् = मानसारपुरम् । प्रविश्य = गत्वा । तत्र = मालवेन्द्रनगरे । गूढतरम् = प्रच्छन्नतरम् यथा स्यात्तथा वर्तमानः = तिष्ठन् । तस्य राज्ञः = मानसारस्य समस्तम् = सम्पूर्णम् । उदन्तजातम् = प्रवृत्तिसमूहम् 'वार्ता प्रवृत्तिर्वृत्तान्त उदन्तः' इत्यमरः । विदित्वा = ज्ञात्वा । प्रत्यागमम् = प्रतिनिवृत्तः ।

(१) मानी = अभिमानी मानसारः = मालवेन्द्रः । स्वसैनिकेति–स्वस्य = निजस्य ये सैनिकाः = भटाः तेषाम् = निजयोधानाम् आयुष्यस्य = जीवनस्य अन्तराये = विघ्नरूपे । संपराये = संग्रामे । भवतः = त्वत्तः पराजयम् = पराभवम् । अनुभूय । वैलक्ष्यस्य = लज्जाया लक्ष्यम् = विषयीभूतम् हृदयम् यस्य तादृशः; लज्जया दुःखित इत्यर्थः । वीतदयः—वीता = अपगता दया = कृपा यस्मात् सः = निर्दयः इत्यर्थः । महाकालनिवासिनम् = महाकालः दक्षिणदेशस्थिततीर्थविशेषः उज्जयिनीतिविख्यातः तत्र निवासोऽस्यास्तीति तम् । कालीविलासिनम् = गौरीप्रियम् अनश्वरम् = विनाशरहितम् नित्यमित्यर्थः । महेश्वरम् = महांश्चासौ ईश्वरः तम्

तो उसे बताने का कष्ट करें।

(२) पृथ्वी भर घूमनेवाला उस संन्यासी ने हाथ जोड़कर कहा—देव, आपकी आज्ञा को शिरोधार्य कर और इस निर्दोष वेष को धारण कर मैं मालवराज मानसार के नगर में गया था। वहाँ अत्यन्त छिपकर निवास करते हुए उस राजा का सारा समाचार जानकर वापस लौटा हूँ।

(१) मानी मानसार अपने सैनिकों की आयु को नाश करनेवाले युद्ध में आपसे पराजय की ग्लानि से खिन्न एवं निर्दय होकर महाकाल निवासी पार्वतीपति अनश्वर भगवान् शंकर

समाराध्य (२) तपःप्रभावसन्तुष्टादस्मादेकवीरारातिघ्नीं भयदां गदां लब्ध्वाऽऽत्मानमप्रतिभटं मन्यमानो महाभिमानो भवन्तमभियोक्तुमुद्युङ्क्ते। ततः पर देव एव प्रमाणम्' इति।

प्रमात्यकृतनिश्चयः

(१) तदालोच्य निश्चिततत्कृत्यैरमात्यै राजा विज्ञापितोऽभूत्—'देव, निरुपायेन देवसहायेन योद्धुमरातिरायाति। तस्मादस्माकं युद्धं सांप्रतमसांप्रतम्। सहसा दुर्गसंश्रयः कार्यः' इति।

शिवम्। समाराध्य = संसेव्य। (२) तपःप्रभावसंतुष्टात्—तपसः प्रभावेण सन्तुष्टात् = सम्यक् तुष्टात् = प्रीतात्। अस्मात् = शंकरात्। एकवीरारातिघ्नीम्—एकम् वीरं अरातिं = शत्रुम् हन्तीति ताम्। भयदाम् = भयप्रदाम्। गदाम् = अस्त्रविशेषम्। लब्ध्वा = प्राप्य। आत्मानम् = स्वं अप्रतिभटं–नास्ति प्रतिभटः = प्रतिद्वन्द्वी यस्य सः तम्। मन्यमानः—मन्यते इति मन्यमानः = जानन्। महाभिमानः—महान् = विपुलः अभिमानः = अहंकारः यस्य सः। भवन्तम् = देवम्। अभियोक्तुम् = आक्रमितुम्। उद्युङ्क्त = उद्यतो भवति चेष्टते इत्यर्थः। ततः परं देवः = भवानेव। प्रमाणम् = कर्त्तव्यतानिश्चायकः।

(१) तदालोच्य—तत् = चरोक्तम् आलोच्य = विचार्य। निश्चितेति। निश्चितम् = निर्णीतम् तत्र = शत्रुविषये यत् कृत्यम् = करणीयम् यैः तै अमात्यैः = मन्त्रिभिः। राजा = राजहंसः। विज्ञापितः = निवेदितः। अभूत् = जातः। देव = स्वामिन्। निरुपायेन—निः = नास्ति उपायः = प्रतिविधानम् यस्य तथोक्तेन = प्रतिविधातुमशक्येन। देवसहायेन—देवः = ईश्वरः एव सहायः = सहकारी तेन सह। अरातिः = शत्रुः। योद्धुम् = प्रहर्तुम्। आयाति = आगच्छति। तस्मात् = 'देवसहायेनायातीति' कारणात्। अस्माकम् = मगधदेशरक्षकाणाम्। युद्धम् = संग्रामः। साम्प्रतम् = अधुना। असाम्प्रतम् = अयुक्तम्। 'युक्ते द्वे साम्प्रतं स्थाने' इत्यमरः। सहसा = शीघ्रम्। दुर्गसंश्रयः = दुर्गस्य संश्रयः = अवलम्बनम्। कार्यः = कर्तव्यः।

की आराधना करने लगा। (२) उसकी आराधना से प्रसन्न होकर भगवान् शंकर ने उसे एक वीर शत्रु को मारनेवाली भयंकर गदा दी है जिससे वह अपने को अद्वितीय योद्धा समझकर अभिमानपूर्वक आपके ऊपर चढ़ाई करने की तैयारी कर रहा है। इसके बाद आप स्वयं ही अपने कर्तव्य का निश्चय करें। आगे आप सोच लें।

(१) संन्यासी के कथनानुसार शत्रु के विषय में कर्तव्य का निश्चय करनेवाले मन्त्रियों ने विचार करके एकमत होकर राजा से निवेदन किया—स्वामिन्, शत्रु ने निरुपाय होकर देवता की शरण ली है और युद्ध करने आ रहा है, इसलिए हमारा युद्ध करना इस समय ठीक नहीं होगा। ऐसे समय किला के भीतर छिपकर रहना ही श्रेयस्कर होगा।

राजहंसस्य पुनराहवे प्रवृत्तिः

(२) तैर्बहुधा विज्ञापितोऽप्यखर्वेण गर्वेण विराजमानो राजा तद्वाक्यमकृत्यमित्यनादृत्य प्रतियोद्धुमना बभूव।

(१) शितिकण्ठदत्तशक्तिसारो मानसारो योद्धुमनसामग्रीभूय सामग्रीसमेतोऽक्लेशं मगधदेशं प्रविवेश। (२) तदा तदाकर्ण्य मन्त्रिणो भूमहेन्द्रं मगधेन्द्रं कथचिदनुनीय रिपुभिरसाध्ये विन्ध्याटवीमध्येऽवरोधान्मूलबलरक्षितान्निवेशयामासुः। (३) राजहंसस्तु प्रशस्तवीतदैन्यसैन्यसमेतस्तीव्रगत्या निर्गत्याधिकरुषं

---

(२) तैः=मन्त्रिभिः। वहुधा=वहुप्रकारेण। विज्ञापितोऽपि=निवेदितोऽपि। अखर्वेण=महता। गर्वेण=अभिमानेन। विराजमानः=विराजते इति, शोभमानः युक्त इत्यर्थः। राजा=राजहंसः। तद्=तेषाम्। वाक्यम्=वचनम्। अकृत्यम्=अननुष्ठेयम्। इति अनादृत्य=तिरस्कृत्य अस्वीकृत्येत्यर्थः। प्रतियोद्धुमनाः प्रतियोद्धुं मनो यस्य सः=प्रहरणाभिलाषी, प्रहर्त्तुमना इति यावत्। तुंकाममनसोरपीति मलोपः। बभूव।

(१) शितीति। शितिकण्ठेन=शिवेन 'शितिकण्ठः कपालभृत्' इत्यमरः दत्ता=अर्पिता शक्तिः=अस्त्रविशेषः पराक्रमो वा 'शक्तिः पराक्रमः प्राणः' इत्यमरः एव सारः=बलम् यस्य सः। मानसारः=मालवेश्वरः। योद्धुमनसाम्=युद्धार्थिनाम्। अग्रीभूय=अग्रसरो भूत्वा। सामग्रीसमेतः—सामग्र्या=साधनेन समेतः=अन्वितः, युक्तः। युद्धोपकरणेन युक्त इत्यर्थः। अक्लेशम्=अनायासम् यथा स्यात्तथा मगधदेशम् प्रविवेश=प्रविष्टः। (२) तदा=मानसारागमनानन्तरम्। तत्=आगमनवृत्तान्तम्। आकर्ण्य=श्रुत्वा। मन्त्रिणः=अमात्याः। भूमहेन्द्रम्—भुवि=पृथिव्याम् महांश्चासौ इन्द्रः तम्। मगधेन्द्रम्=मगधाऽधिपम् राजहंसम्। कथंचित्=यत्नपूर्वकम्। अनुनीय=मानयित्वा। रिपुभिः=शत्रुभिः। असाध्ये=दुष्प्रवेश्ये। विन्ध्याटवीमध्ये=विन्ध्यस्य अटवी=अरण्यम् 'अटव्यरण्यं विपिनम्' इत्यमरः तस्याः मध्ये। अवरोधान्=शुद्धान्तान् 'शुद्धान्तश्चावरोधश्च' इत्यमरः अन्तःपुरिकावर्गान्, राजस्त्रियः इति यावत्। मूलबलरक्षितान्—मूलबलैः=प्रधानसैन्यैः कुलक्रमागतैः विश्वस्तैरिति यावत् रक्षितान् (विधाय) निवेशयामासुः=स्थापयामासुः। (३) राजहंसः=मगधाधिपः। प्रशस्तेति। प्रशस्तैः=उत्कटैः वीतदैन्यैः—वीतम्=अपगतम् दैन्यम्=कातरभावः येषां तैः=अकातरैः सैन्यैः समेतः=युक्तः। तीव्रगत्या=तीव्रया गत्या=महता वेगेन। निर्गत्य=निःसृत्य। अधिक-

---

(२) मन्त्रियों के बार-बार समझाने पर भी अहंकार से फूला हुआ राजा उनके वाक्यों को नहीं माना और लड़ने को तैयार हो गया।

(१) भगवान् शंकर द्वारा प्राप्त गदा से युक्त मानसार भी युद्धोपयोगी सामग्रियों से सज्जित तथा युद्धाभिलाषियों में अग्रसर होकर सहज ही मगध में घुस आया। (२) उसके आने की खबर सुनकर मगधराज के मन्त्रियों ने राजा राजहंस को किसी प्रकार समझा-बुझाकर रानियों को मुख्य सेनाओं की संरक्षकता में शत्रुओं से अगम्य विन्ध्यवन में भिजवा दिया। (३) अत्यन्त बलशाली तथा भय रहित सेनाओं से युक्त हो राजा राजहंस ने भी शीघ्रता से

द्विषं रुरोध । (१) परस्परबद्धवैरयोरेतयोः शूरयोस्तदा (२) तदालोकनकुतूहलागतगगनचराश्चर्यकारणे रणे वर्तमाने जयाकाङ्क्षी मालवदेशरक्षी (३) विविधायुधस्थैर्यचर्याञ्चितसमरतुलितामरेश्वरस्य मगधेश्वरस्य तस्योपरि पुरा पुरारातिदत्तां गदां प्राहिणोत् ।

(१) निशितशरनिकरशकलीकृतापि सा पशुपतिशासनस्यावन्ध्यतया सूतं निहत्य रथस्थं राजान मूर्च्छितमकार्षीत् ।

रुषम् = अधिका रुट् यस्य तम् 'रुट् क्रुधौ स्त्रियौ' इत्यमरः अतिक्रुद्धम् । द्विषम् = शत्रुम् । रुरोध = न्यवारयत् । (१) परस्परेति । परस्परेण = अन्योन्येन बद्धम् = धृतम् वैरम् = अप्रीतिः याभ्यां तयोः । एतयोः = राजहंसमानसारयोः । शूरयोः = वीरयोः । (२) तदालोकनेति । तस्य = युद्धस्य आलोकने = दर्शने.यत् कुतूहलम् = औत्सुक्यम् तेन आगतानाम् गगनचराणाम् आश्चर्यकारणे = विस्मयजनके । वर्तमाने = उपस्थिते रणे । जयाकाङ्क्षी—जयमाकाङ्क्षते इति = विजयाभिलाषी मालवदेशरक्षी = मालवदेशस्य (रक्षी-रक्षितुम् शीलमस्येति) रक्षिता मानसार इति यावत् । (३) विविधेति । विविधेति । विविधानाम् = अनेकप्रकाराणाम् आयुधानाम् = अस्त्राणाम स्थैर्यचर्यया—स्थैर्येण = स्थिरतया या चर्या = प्रहरणपरम्परा तया अञ्चितः = पूजितः, युक्तः इति या ।५ यः समरः = संग्रामः तेन तुलितः = समीकृतः अमरेश्वरः = इन्द्रः येन तादृशस्य । मगधेश्वरस्य उपरि । पुरा = प्रथमम् । पुरारातिदत्ताम्—पुरारातिना = शङ्करेण दत्ता ताम् । गदाम् = अस्त्रविशेषम् । प्राहिणोत् = प्राहरत् । 'प्राहिणोत्' मालवदेशरक्षीति सम्बन्धः ।

(१) निशितेति । निशितेन = तीक्ष्णेन शरनिकरेण = बाणसमूहेन शकलीकृताऽपि = अशकला शकला कृता इति शकलीकृता = खण्डिताऽपि । सा = गदा । पशुपतिशासनस्य = पशुपतेः = शिवस्य शासनस्य = आज्ञायाः अवन्ध्यतया अप्रतिहततया । अव्यर्थतयेत्यर्थः । सूतम् = सारथिम् 'सूतः क्षत्ता च सारथिः' इत्यमरः । निहत्य = विनाश्य । रथस्थम् = रथे तिष्ठतीति तम् । राजानम् = राजहंसम् । मूर्च्छितम्—मूर्च्छा संजाताऽस्येति तम् = विसंज्ञम् । अकार्षीत् = चकार ।

निकलकर क्रुद्ध मानसार को घेर लिया । (१) परस्पर शत्रुता वाले इन दोनों वीरों के मध्य ऐसा भयंकर युद्ध हुआ कि उस विकराल युद्ध को (२) उत्कण्ठावश देखने के लिए आये हुए आकाशचारी देवता लोग भी देखकर चकित रह गये । अन्त में विजय की इच्छा वाले मालवाधीश ने (३) अनेक प्रकार के शस्त्रों का स्थिरतापूर्वक प्रयोग होने से प्रशंसनीय युद्ध में इन्द्र की बराबरी करने वाले मगधेश्वर राजहंस के ऊपर भगवान् शंकर की दी हुई गदा चला दी ।

(१) यद्यपि राजहंस के तीखे बाण समूहों ने उस गदा को टुकड़े-टुकड़े कर डाले, फिर भी भगवान् शंकर की अवन्ध्य आज्ञा से उस गदा ने सारथी को मारकर रथ पर बैठे हुए राजा को मूर्च्छित कर दिया ।

राजहंसस्य पराजयो वनवासश्च

(२) ततो वीतप्रग्रहा अक्षतविग्रहा वाहा रथमादाय दैवगत्याऽन्तःपुरशरण्यं महारण्यं प्राविशन्। (३) मालवनाथो जयलक्ष्मीसनाथो मगधराज्यं प्राज्यं समाक्रम्य पुष्पपुरमध्यतिष्ठत्।

(१) तत्र हेतिततिहतिश्रान्ता अमात्या दैवगत्याऽनुत्क्रान्तजीविता (२) निशान्तवातलब्धसंज्ञाः कथचिदाश्वास्य राजानं समन्तादन्वीक्ष्यानवलोकितवन्तो दैन्यवन्तो देवीमवापुः।

(३) वसुमती तु तेभ्यो निखिलसैन्यक्षतिं राज्ञोऽदृश्यत्वं चाकर्ण्योद्विग्ना

---

(२) ततः=तदनन्तरम्। वीतप्रग्रहाः—वीतः=अपगतः प्रग्रहः=रश्मिः येषां ते। अक्षतविग्रहाः—अक्षतः=न क्षतः, अक्षतः विग्रहः=शरीरम् येषां ते। वाहाः=अश्वाः 'वाजिवाहार्वगन्धर्वहयसैन्धवसप्तयः' इत्यमरः। रथमादाय=रथं नीत्वा। दैवगत्या=दैवयोगेन। अन्तःपुरशरण्यम्—शरणे साधु तत्, अन्तःपुरस्य राजस्त्रीवर्गस्य शरण्यम्=आश्रयभूतम् अवरोधरक्षणस्थानम् इत्यर्थः। महारण्यम्=विन्ध्याटवीम्। प्राविशन्=प्रविष्टाः। (३) मालवनाथः=मानसारः। जयलक्ष्मीः=विजयलक्ष्मीः तया सनाथः=युक्तः। मगधराज्यम् प्राज्यम्=प्रचुरम् विशालमित्यर्थः 'प्रभूतं प्रचुरं प्राज्यम्' इत्यमरः। समाक्रम्य=सम्यक् क्रान्त्वा पुष्पपुरम्=पाटलिपुत्रम्। अध्यतिष्ठत्=न्यवसत् (अधिशीङ्स्थासेति कर्मत्वम्)।

(१) तत्र=विन्ध्याटवीमध्ये। हेतीनाम्=अस्त्राणाम् 'रवेरर्चिश्च शस्त्रञ्च वह्निज्वाला च हेतयः' इत्यमरः ततिभिः=सङ्घातैः हत्या=प्रहारेण श्रान्ताः=क्लान्ताः। अमात्याः=मन्त्रिणः। दैवगत्या=संयोगेन अनुत्क्रान्तजीविताः—न उत्क्रान्तम् अनुत्क्रान्तम्=न निःसृतम् जीवितम्=प्राणाः येषाम् ते, अत्यक्तप्राणा इत्यर्थः। (२) निशान्तेति। निशान्ते=रात्र्यन्ते यो वातः=वायुः तेन लब्धाः=प्राप्ताः संज्ञाः=चेतनाः यैस्ते, प्रातःकालिकवातेन प्राप्तचेतना इत्यर्थः। कथंचिदाश्वास्य=आश्वस्ता भूत्वा। राजानम्=राजहंसम्। समन्तात्=चतुर्दिक्षु। अन्वीक्ष्य=अन्विष्य। अनवलोकितवन्तः=अदृष्टवन्तः। दैन्यवन्तः=अतिदुःखिताः। देवीम्=वसुमतीम्। अवापुः=प्रापुः।

(३) वसुमती=राजहंसमहिषी। तेभ्यः=मन्त्रिभ्यः। निखिलसैन्यक्षतिम्—निखिलानाम्=समस्तानाम् सैन्यानाम् क्षतिं=विनाशम्। राज्ञः=राजहंसस्य। अदृश्यत्वम्=लुप्त-

---

(२) सारथी के मरते ही अक्षत शरीर वाले बेलगाम घोड़े रथ को ले भागे और दैवयोग से उसी वन में जा पहुँचे जहाँ रानियाँ थीं।

(३) विजय लक्ष्मी को प्राप्त कर मालवाधीश मानसार भी विशाल मगध राज्य को जीतकर पुष्पपुर (पटना) में राजा बन बैठा।

(१) अस्त्रों के प्रहार से मूर्च्छित एवं भाग्यवश जीवित रहने वाले मन्त्रियों की मूर्च्छा जब (२) प्रातःकालिक वायु की थपेड़ों से दूर हुई तथा आँखे खुलीं तो वे चारो ओर राजा को खोजने लगे। किन्तु राजा को न पाकर अत्यन्त दुःखी हो विलखते हुए रानी के समीप पहुँचे। (३) रानी ने जब उन लोगों से सारी सेना का विनाश तथा राजा का अदृश्य हो

शोकसागरमग्ना रमणानुगमने मतिं व्यधत्त ।

(१) 'कल्याणि, भूरमणमरणमनिश्चितम् । किञ्च दैवज्ञकथितो मथितोद्धताराति: सार्वभौमोऽभिरामो भविता सुकुमारः कुमारस्त्वदुदरे वसति । तस्मादद्य तव मरणमनुचितम्' इति भूषितभाषितैरमात्यपुरोहितैरनुनीयमानया तया क्षणं क्षणहीनया तूष्णीमस्थायि ।

(२) अथार्धरात्रे निद्रानिलीननेत्रे परिजने विजने शोकपारावारमपार-

---

त्वम् । च आकर्ण्य = श्रुत्वा उद्विग्ना = आकुला । शोकसागरमग्ना—शोकस्य सागरः = समुद्रः तस्मिन् = महाशोके मग्ना = ब्रुडिता । रमणानुगमने—रमणस्य = स्वामिनो राजहंसस्य अनुगमने = अनुसरणे । मतिम् = बुद्धिम् । व्यधत्त = चकार ।

(१) कल्याणि = देवि ! (अधुना) भूरमणमरणम्—भुवः = पृथिव्याः रमणस्य = वल्लभस्य मरणम् = मृत्युः इति । अनिश्चितम् = अनिर्णीतम् । अस्माकं राजा जीवति न वेति सन्देहः । किञ्च दैवज्ञकथितः—दैवज्ञैः = ज्यौतिषिकैः कथितः = उक्तः (यत्) मथितोद्धताराति:—मथितः = उन्मूलितः उद्धतः = दृप्तः अरातिः शत्रुः येन तादृशः । सार्वभौमः = सर्वस्याः भूमेरीश्वरः सार्वभौमः = चक्रवर्त्ती । अभिरामः = मनोहरः । भविता = भावी । सुकुमारः = सुकोमलः । कुमारः = राजपुत्रः । त्वदुदरे = तव गर्भे । वसति = वर्तते । तस्मात् कारणात् । अद्य तव = भवत्याः । मरणम् अनुचितम् = अशोभनम् । इति भूषितभाषितैः—भूषितम् - मधुरम् भाषितम् = कथनम् येषाम् तादृशैः । अमात्य-पुरोहितैः = मन्त्रि पुरोहितैः । अनुनीयमानया = अनुनीयते इति अनुनीयमाना तया । तया = वसुमत्या । क्षणम् = मुहूर्तम् । क्षणहीनया—क्षणेन = उत्सवेन हीना = रहिता तया उत्सवरहितया निरुत्सवयेत्यर्थः 'क्षण उद्धव उत्सवः' इत्यमरः । तूष्णीम् = मौनम् 'मौने तु तूष्णीं तूष्णीकाम्' इत्यमरः । अस्थायि = स्थितम् ।

(२) अथ = अनन्तरम् । अर्धरात्रे = निशीथे । 'अर्धरात्रनिशीथौ द्वौ द्वौ यामप्रहरौ समौ' इत्यमरः । निद्रानिलीननेत्रे निद्रया निलीने = लीढे नेत्रे = लोचने 'लोचनं नयनं नेत्रम्' इत्यमरः यस्य तस्मिन् । परिजने = परिचारकवर्गे । विजने = विगताः जनाः यस्मिन् तस्मिन् जनशून्ये अरण्ये । अपारम्—न पारः यस्य सः तम् = तर्तुमशक्यं दुस्तरमित्यर्थः । शोकपारावारम् - शोकसमुद्रम् । उत्तर्तुम् = उल्लङ्घयितुम् । अशक्नुवती = सामर्थ्यशून्या । (१)

जाने का समाचार सुना तो उद्विग्न होकर शोकसागर में निमग्न हो गयी और प्राणत्याग करने का निश्चय कर बैठी ।

प्राणत्याग करने को उद्यत रानी को देखकर सुन्दर वचनों से मन्त्रियों ने समझाया—'देवि, राजा का मरना अभी निश्चित नहीं है और ज्यौतिषियों ने बताया है कि तुम्हारी कोख से शत्रुको दमन करने वाला चक्रवर्ती, मनोहर और कोमल कुमार जन्म लेगा, जो अभी तुम्हारे उदर में वास कर रहा है। इसलिए आज तुम्हारा मरना उचित नहीं है।' इस प्रकार मन्त्रियों के वचनों को सुनकर रानी कुछ देर के लिए शान्त होकर बैठ गयी।

(२) पश्चात् आधी रात को नौकरों के सो जाने पर एकान्त में अपार शोक सागर पार

दुःखयन्त्रं सम्यगनुभूय पश्चादनेककालं निजराज्यमकुर्वन्। तद्वदेव भवान्भविष्यति। कंचन कालं विरचितदैवसमाधिर्गलिताधिस्तिष्ठतु तावत्' इति।

वामदेवस्य साक्षात्कारः

ततः (१) सकलसैन्यसमन्वितो राजहंसस्तपोविभ्राजमानं वामदेवनामानं तपोधनं (२) निजाभिलाषावाप्तिसाधनं जगाम।

(३) तं प्रणम्य तेन कृतातिथ्यस्तस्मै कथितकथ्यस्तदाश्रमे दूरीकृतश्रमे

दैवतन्त्रम्=भाग्याधीनम् दैवेन कृतम् भाग्यजनितम् इति यावत्। दुःखयन्त्रम्=दुःखसमूहम्। सम्यक् अनुभूय। पश्चात्=अनन्तरम्। अनेककालम्=बहुकालम्। निजराज्यम्=स्वं राज्यम्। अकुर्वन्=कृतवन्तः। तद्वदेव यथा रामचन्द्रादयः पूर्वं महत् दुःखमनुभूय पश्चादेनककालं यावत स्वस्वराज्यसुखं प्राप्तवन्तस्तथा भवानपि निजं राज्यं प्राप्स्यतीति भावः। कञ्चन कालम् विरचितदैवसमाधिः—विरचितः=अनुष्ठितः कृत इत्यर्थः दैवः=देवोद्देश्यकः समाधिः=ध्यानम् येन सः। गलिताधिः—गलितः=विनष्टः आधिः=मनोदुःखम् यस्य सः। तिष्ठतु=प्रतीक्षताम्। तावदिति अवधौ। 'यावत् तावच्च साकल्येऽवधौ' इत्यमरः।

ततः=तदनन्तरम्। (१) सकलसैन्यसमन्वितः—सकलैः=समग्रैः सैन्यैः=भटैः समन्वितः=युक्तः। राजहंसः=मगधाधिपतिः। तपोविभ्राजमानम्=तपसा विशेषेण भ्राजमानम्=दीप्यमानम्। तपोधनम्=तप एव धनं यस्य तम् वामदेवनामानं वामदेव इति नाम यस्य तम वामदेवऋषिम्। (२) निजेति। निजस्य अभिलाषस्य=वैरसाधनरूपमनोरथस्य अवाप्तेः=सिद्धेः साधनम्=उपायस्वरूपम्। जगाम=अगमत्।

(३) तम्=वामदेवनामानं ऋषिं प्रणम्य=नमस्कृत्य। तेन=ऋषिणा। कृतातिथ्यः=कृतम् आतिथ्यम्=अतिथिसत्कारः यस्य तथाभूतः राजहंसः तस्मै=ऋषये वामदेवाय। कथितकथ्यः=कथितम् उक्तम् कथ्यम्=वक्तव्यम् येन सः (राजहंसः) तदाश्रमे—तस्य=वामदेवस्य आश्रमे=कुट्याम्। दूरीकृतश्रमे=दूरीकृतः श्रमो यत्र तस्मिन्। कञ्चन कालम्=

बराबरी कर रहे थे, वे भी अनेक दैवी यातनायें सह कर पश्चात् बहुत दिनों तक अपने राज्यसुख को भोगे थे। उन्हीं की तरह आप भी दुःखों को भोगकर भविष्य में राज्यसुख प्राप्त करेंगे। इसलिए दुःखों से घबराएँ नहीं, कुछ दिन धैर्य धारण कर शान्तिपूर्वक देवता की आराधना कर समय बिताइए और भाग्योदय की प्रतीक्षा कीजिये (१) रानी का उक्त कथन सुनकर महाराज राजहंस अपनी सारी सेना साथ लेकर (२) मनोरथ पूर्णकर्ता तपोबल से देदीप्यमान और तपोधन वामदेव ऋषि के पास गये।

(३) चन्द्रवंशी राजा राजहंस ने मुनि को प्रणाम कर उनसे किये गये सत्कार को स्वीकार किया और उन्हें सारी घटना कह सुनायी। उस सुन्दर तपोवन में कुछ दिनों तक

कंचन कालमुषित्वा निजराज्याभिलाषी मितभाषी सोमकुलावतंसो राजहंसो मुनिमभाषत—

(१) 'भगवन्, मानसारः प्रबलेन दैवबलेन मां निर्जित्य मद्भोग्यं राज्यमनुभवति। (२) तद्वदहमप्युग्रं तपो विरच्य तमरातिमुन्मूलयिष्यामि। (३) लोक शरण्येन भवत्कारुण्येनेति नियमवन्तं भवन्तं प्राप्नवम्' इति।

(४) ततस्त्रिकालज्ञस्तपोधनो राजानमवोचत्—'सखे! शरीरकार्श्यकारिणा तपसालम्। वसुमतीगर्भस्थः सकलरिपुकुलमर्दनो राजनन्दनो नूनं संभविष्यति,

---

समयम्।। उषित्वा=अतिवाह्य। निजराज्याभिलाषी—निजस्य=स्वस्य राज्यस्य अभिलाषः अस्यास्तीति। मितभाषी—मितम्=अल्पम् भाषितुं=वक्तुम् शीलमस्यास्तीति। सोमकुलावतंसः—सोमलकुस्य=चन्द्रवंशस्य अवतंसः=शिरोभूषणम् राजहंसः। मुनिम्=वामदेवम्। अभाषत=उक्तवान्।

(१) भगवन्, मानसारः=मालवेश्वरः। प्रबलेन=उत्कृष्टेन। दैवबलेन=विधिसाहाय्येन। माम्=राजहंसम्। निर्जित्य=पराभूय। मम=राजहंसस्य भोग्यम्=भोक्तुं योग्यं राज्यम्। अनुभवति=भुनक्ति।

(२) तद्वत्=तेन मानसारेण तुल्यम्। यथा—मानसारः शङ्करं समाराध्य प्राप्तवरप्रभावेण मां राज्यादपभ्रश्य मद्भोग्यं राज्यं भुनक्ति तद्वत् अहमपि उग्रम्=तीव्रम्। तपः=आराधनम्। विरच्य=कृत्वा। तम्=मालवेन्द्रम्। अरातिम्=शत्रुम्। उन्मूलयिष्यामि=उच्छेत्स्यामि।

(३) लोकशरण्येन—लोकानाम् शरणे साधुः तेन=जनरक्षणतत्परेण। भवत्कारुण्येन=भवतः कारुण्यं तेन तव कृपयेत्यर्थः। इति=हेतोः। नियमवन्तम्=तपस्विनम्। भवन्तम्। प्राप्नवम्=उपागच्छम्।

(४) ततः=तदनन्तरम्। त्रिकालज्ञः=त्रिकालवित्। तपोधनः=तप एव धनं यस्य सः वामदेवः। राजानम्=राजहंसम्। अवोचत्=उक्तवान्। सखे, शरीरकार्श्यकारिणा—कृशस्य भावः कार्श्यं शरीरस्य कार्श्यं करोति तच्छीलं तेन। तपसा=समाधिना। अलम्=व्यर्थम्। वसुमतीगर्भस्थः=गर्भे तिष्ठतीति गर्भस्थः वसुमत्याः गर्भस्थः। राजनन्दनः—नन्दयतीति नन्दनः

निवास कर परिश्रमादि क्लेश (थकावट) को दूर किया। पश्चात् राज्याभिलाषी तथा मितभाषी राजा ने मुनि से कहा—

(१) भगवन्, मालवाधिपति मानसार भगवान् शंकर की दी हुई अमोघ शक्ति से मुझे जीतकर मेरे भोगने योग्य मेरे राज्य को भोग रहा है।

(२) उसी के समान (जैसे उसने शिवको प्रसन्न कर उनसे वरस्वरूप गदा प्राप्त की, उसी प्रकार मैं भी उग्र तपस्या कर) उस शत्रु को उखाड़ फेंकूँ इसीलिए (३) लोकरक्षणशील आपकी कृपा से नियमपूर्वक रहने वाले आप जैसे संयमी के पास आया हूँ। (४) यह (राजा राजहंस की उपर्युक्त बातें) सुनकर त्रिकालदर्शी वामदेव ने कहा—मित्र, शरीर को सुखाने वाली तपस्या व्यर्थ है, क्योंकि वसुमती के गर्भ में स्थित राजपुत्र निश्चय ही समस्त

शुभदिने निजतनयां मह्यमदात् ।

(१) ततो यौवराज्याभिषिक्तोऽहमनुदिनमाराधितमहीपालचित्तो वामलोचनयाऽनया सह नानाविधं सौख्यमनुभवन्भवद्विरहवेदनाशल्यसुलभवैकल्यहृदयः सिद्धादेशेन सुहृज्जनावलोकनफलं प्रदेशं महाकालनिवासिनः परमेश्वरस्याराधनायाद्य पत्नीसमेतः समागतोऽस्मि । (२) भक्तवत्सलस्य गौरीपतेः कारुण्येन त्वत्पदारविन्दसंदर्शनानन्दसंदोहो मया लब्ध' इति । (३) तन्निशम्याभिनन्दि-

---

चन्द्रिक मित्यर्थः । मह्यम् = सोमदत्ताय । अदात् ।

(१) ततः = पश्चात् । यौवराज्याभिषिक्तः = युवराजस्य भावः तस्मिन् = युवा चासौ राजा चेति कर्मधारयः । अभिषिक्तः = नियुक्तः । अनुदिनम् = प्रतिदिनम् अहर्निशमित्यर्थः । आराधितमहीपालचित्तः—आराधितम् = सेवितम् अनुकूलाचरणेनेति शेषः महीपालस्य = राज्ञः वीरकेतोः चितम् = हृदयम् येन सः । अनया वामलोचनया = बालचन्द्रिकया सह । नानाविधम् = बहुप्रकारम् । सौख्यम् = आनन्दम् । अनुभवन् । भवद्विरहवेदनाशल्यसुलभवैकल्यहृदयः—भवतः = तव राजवाहनस्य विरहेण वियोगेन या वेदना = व्यथा सा एव शल्यम् = शङ्कुः तेन वैकल्यम् = कातर्यं विह्वलता यत्र तादृशं हृदयम् यस्य सः । सिद्धादेशेन—सिद्धस्य = योगिनः आदेशेन = कस्यचित्तपःसिद्धिं गतस्य पुरुषस्य आज्ञयेत्यर्थः । सुहृज्जनावलोकनफलम्—सुहृज्जनस्य = सख्युः तव अवलोकनम् = दर्शनम् एव फलम् यस्य तथाभूतम् । प्रदेशम् = स्थानम् । प्रदेशेऽस्मिन् मित्रावलोकनं भविष्यतीति मुनिनादिष्टम् । महाकालनिवासिनः = उज्जयिन्यां स्थितस्य । परमेश्वरस्य = महादेवस्य । आराधनाय = सन्तोषणाय, अर्चनायेति यावत् । अद्य = अस्मिन्नहनि । पत्नीसमेतः = भार्यया सहितः । समागतः = उपस्थितः । अस्मि ।

(२) भक्तवत्सलस्य—भक्तेषु = सेवकेषु वत्सलः = कृपालुः तस्य । गौरीपतेः = उमावल्लभस्य । कारुण्येन = दयया । त्वत्पदारविन्दसंदर्शनानन्दसंदोहः—तव = भवतः राजवाहनस्य पदारविन्दयोः = चरणकमलयोः संदर्शनेन = सम्यगवलोकनेन यः आनन्दः तस्य सन्दोहः = समूहः 'समूहो निवहव्यूहसन्दोहविसरव्रजाः' इत्यमरः । मया = सोमदत्तेन । लब्धः = प्राप्तः ।

विवाह करा दिया ।

(१) कुछ दिन बाद राजा वीरकेतु ने मुझे युवराजपद पर बैठा दिया । और मैं भी प्रतिदिन राजा को प्रसन्न रखता हुआ इस वामलोचना के साथ अनेक प्रकार के सुखों का उपभोग करता रहा । परन्तु आपके वियोगजनित वेदना रूप संकटों से मेरा हृदय विदीर्ण हो गया और मैंने एक दिन किसी सिद्ध पुरुष से आपके विषय में पूछा । उन्हीं की आज्ञा से मित्र के दर्शन कराने वाले इस प्रदेश में, महाकाल निवासी भगवान् शंकर की आराधना करने के लिए आज मैं पत्नी सहित आया हूँ । (२) भक्तों के ऊपर दया करने वाले भगवान् शंकर की कृपा से आपके चरणकमलों के दर्शन हुए और मैं अत्यन्त आनन्दित हुआ ।

तपराक्रमो राजवाहनस्तन्निरपराधदण्डे देवमुपालभ्य तस्मै क्रमेणात्मचरितं कथयामास ।

पुष्पोद्भवस्यागमनम्

(१) तस्मिन्नवसरे पुरतः पुष्पोद्भवं विलोक्य ससंभ्रमं निजनिटिलतटस्पृष्टचरणाङ्गुलिमुदञ्जलिममुं गाढमालिङ्ग्यानन्दबाष्पसंकुलसंफुल्ललोचनः सौम्य सोमदत्त, अयं स पुष्पोद्भव' इति तस्मै तं दर्शयामास ।

(२) तौ च चिरविरहदुःखं विसृज्यान्योन्यालिङ्गनसुखमन्वभूताम् ।

(३) ततस्तस्यैव महीरुहस्य छायायामुपविश्य राज सादरहासमभाषत—

---

(३) तन्निशन्य—तत्=सोमदत्तवृतान्तं निशम्य=श्रुत्वा । अभिनन्दितपराक्रमः=अभिनन्दितः—पराक्रमः=सामर्थ्यं सोमदत्तस्येति शेषः येन सः । राजवाहनः । तन्निरपराधदण्डे—तस्य=सोमदत्तस्य निरपराधस्य=अपराधशून्यस्य यः दण्डः=कारावासः तस्मिन् दण्डविषये । दैवम्=अदृष्टम् । उपालभ्य=निन्दित्वा तिरस्कृत्येत्यर्थः । तस्मै=सोमदत्ताय । क्रमेण । आत्मचरितम्=स्ववृत्तान्तम् । कथयामास=अचकथत् ।

(१) तस्मिन् अवसरे=क्षणे । पुरतः=अग्रे । पुष्पोद्भवम्=रत्नोद्भवपुत्रम्। ससम्भ्रमम्=साश्चर्यम् सचकितमिति यावत् । विलोक्य=दृष्ट्वा । निजनिटिलतटस्पृष्टचरणाङ्गुलिम्--निजेन=स्वेन निटिलतटेन=भालस्थलेन स्पृष्टाः चरणाङ्गुलयः राजवाहनस्येति शेषः येन तम् । उदञ्जलिम्=बद्धाञ्जलिम् । अमुम्=पुष्पोद्भवम् । गाढम्=अतिशयम् । आलिङ्ग्य=आश्लिष्य आनन्दवाष्पसंकुलसंफुल्ललोचनः—आनन्दबाष्पेण—आनन्देन=हर्षजनितेन वाष्पेण=अश्रुणा । संकुले=पूर्णे सम्फुल्ले=विकसिते लोचने=नयने यस्य सः राजवाहनः । सौम्य=सुभग । सोमदत्त=सम्बोधनमेतत् । अयम् पुरतो विद्यमानः । सः रत्नोद्भवपुत्रः । पुष्पोद्भवः इति । तस्मै=सोमदत्ताय । तम्=पुष्पोद्भवम् । दर्शयामास=अदर्शयत् ।

(२) तौ=सोमदत्तपुष्पोद्भवौ । चिरविरहदुःखम्—चिरेण=दीर्घकालेन विरहेण=वियोगेन यत् दुःखम्=क्लेशम् तम् । विसृज्य=त्यक्त्वा । अन्योन्यालिङ्गनसुखम्=अन्योन्यस्य=परस्परस्य आलिङ्गने यत् सुखं तत् । अन्वभूताम्=अनुभवम् अकुरुताम् (३) ततः=तदनन्तरम् । तस्यैव महीरुहस्य=वृक्षस्य । छायायाम् । उपविश्य=स्थित्वा । राजा=

---

(३) यह सुनकर राजवाहन ने सोमदत्त के पराक्रम की प्रशंसा की और उसके निरपराधी होने पर भी, जो उसने दण्ड भोगा था उसके लिए दैव (अदृष्ट) को कोसा तथा उससे क्रमशः (उसने) अपना सारा वृत्तान्त कह सुनाया ।

पुष्पोद्भव का आगमन—(१) उसी समय राजवाहन ने अपने समीप पुष्पोद्भव को देखकर जो घबराहट के साथ अपने मस्तक से राजवाहन के चरणाङ्गुलियों को स्पर्श कर रहा था तथा हाथ जोड़े खड़ा था, उसे गले से लगाकर आनन्दाश्रु से भरे विकसित नेत्रों वाले राजवाहन ने कहा 'सौम्य सोमदत्त, यह वही पुष्पोद्भव है' और उसे दिखाया ।

(२) वे दोनों भी, बहुत दिनों के वियोग दुःख को त्याग कर परस्पर आलिंगन के सुख का अनुभव करने लगे । (३) उसी वृक्ष की छाया में बैठ कर राजवाहन ने आदर के साथ

'वयस्य, भूसुरकार्यं करिष्णुरहं 'मित्रगणो विदितार्थः सर्वथान्तरायं करिष्यती'ति निद्रितान्भवतः परित्यज्य निरगाम्। तदनु प्रबुद्धो वयस्यवर्गः किमिति निश्चित्य मदन्वेषणाय कुत्र गतवान्। भवानेकाकी कुत्र गतः' इति। सोऽपि ललाटतटचुम्बदञ्जलिपुटः सविनयमलपत्।

इति श्रीदण्डिनः कृतौ दशकुमारचरिते सोमदत्तचरितं नाम तृतीयोच्छ्वासः।

राजवाहनः। सादरहासम्=आदरेण सहितः सादरः, हासः=हास्यम् यत्र तत् यथा स्यात्तथा। अभाषत=उवाच। वयस्य=सखे, भूसुरकार्यम्। करिष्णुः—कृधातोः इष्णुच् प्रत्ययस्याविधानात बाहुलकात् समाधेयम्। कर्तुंशीलः। अहम्=राजवाहनः। मित्रगणः=वयस्यसमूहः। विदितार्थः—विदितः=ज्ञातः अर्थः=प्रयोजनम् येन सः (मित्रगणः)। सर्वथा=सर्वतो भावेन सर्वप्रकारेणेत्यर्थ। अन्तरायम्=विघ्नम्। करिष्यतीति (निश्चित्य) निद्रितान्=निद्रापरवशान्। भवतः=युष्मान्। परित्यज्य=विहाय निरगाम्=अगच्छम् तदनु=पश्चात् प्रातःकाले इत्यर्थः। प्रबुद्धः=शयनादुत्थितः जागरितः इति यावत्। वयस्यवर्गः=मित्रसमूहः किम् निश्चित्य=निर्णीय। मदन्वेषणाय=अस्मन्मार्गणाय। कुत्र गतवान्। एकाकी=असहायः भवान्=त्वम् पुष्पोद्भवः। कुत्र=गतः? इति। सः=पुष्पोद्भवः। अपि ललाटतटचुम्बदञ्जलिपुटः—लालतटम्=भालस्थलम् चुम्बत्=स्पृशत् अञ्जलिपुटम् यस्य सः, शिरसि बद्धाञ्जलिरित्यर्थः। सविनयम् विनयेन सहितम् यथा स्यात्तथा, अलपत्=अवोचत्।

इति अकौरवास्तव्यकविमूर्द्धन्यवाणीशझाशर्मतनुजनुर्झोपाख्य-
श्रीविश्वनाथझाविरचितायां दशकुमारचरितव्याख्याया-
मर्थप्रकाशिकायां तृतीयोच्छ्वासः।

हँसते हुए कहा। मित्र! उस ब्राह्मण का कार्य मुझे करना था। इसलिए सोचा यदि मित्रगण जान जायेंगे तो मेरे इस कार्य में बाधा डालेंगे अतः आप सबों को सोते हुए छोड़ कर मैं चला गया था। मेरे जाने के पश्चात् जब मित्रगण (आप सब) जगे तो क्या निश्चय कर मुझे ढूँढने कहाँ गये? और आप अकेले कहाँ गये? पुष्पोद्भव भी जुड़े हाथों से सिर को स्पर्श करता हुआ विनय पूर्वक बोला—

इस प्रकार विश्वनाथझा द्वारा को गई दशकुमारचरित तृतीय उच्छ्वास
की अर्थप्रकाशिका हिन्दी टीका समाप्त हुई।

चतुर्थोच्छ्वासः

पुष्पोद्भवचरितम्

(१) 'देव, महीसुरोपकारायैव देवो गतवानिति निश्चित्यापि देवेन गन्तव्यं देशं निर्णेतुमशक्नुवानो मित्रगणः परस्परं वियुज्य दिक्षु देवमन्वेष्टुमगच्छत् ।

अतर्कितः संगमः

(२)अहमपि देवस्यान्वेषणाय महीमटन्कदाचिदम्बरमध्यगतस्याम्बरमणेः किरणमसहिष्णुरेकस्य गिरितटमहीरुहस्य प्रच्छायशीतले तले क्षणमुपाविशम् । (३) मम पुरोभागे दिनमध्यसमये संकुचितसर्वावयवां कूर्माकृतिमानुषच्छायां निरी-

(१) देव, महीसुरोपकाराय — महीसुरस्य = ब्राह्मणस्य उपकारः = साहाय्यम् तस्मै, ब्राह्मणस्योपकारार्थमेव । देवः = भवान् । गतवान् = प्रस्थितः । इति निश्चित्य = निर्णीय । अपि । देवेन = भवता । गन्तव्यम् = गन्तुं योग्यम् । देशम् । निर्णेतुम् = निश्चेतुम् । अशक्नुवानः (व्याकरणान्तररीत्या शक्लृधातोः शानचः प्रयोगोऽयम् । वस्तुतस्तु अशक्नुवन्नित्येव साधुः) असमर्थः । मित्रगणः = वयस्यसमूहः । परस्परम् = अन्योन्यम् । वियुज्य = पृथग्भूय । दिक्षु = दिशासु । देवम् = भवन्तम् । अन्वेष्टुम् = मार्गितुम् । अगच्छत् = गतवान् ।

(२) अहमपि = पुष्पोद्भवोऽपि । देवस्य भवतः । अन्वेषणाय (अनुइष् ल्युट्) = मार्गणाय । महीम् = पृथ्वीम् । अटन् = भ्रमन् । कदाचित् = एकदा । अम्बरमध्यगतस्य = अम्बरस्य = आकाशस्य मध्यं गतस्य = प्राप्तस्य मध्याकाशस्थितस्येत्यर्थः । अम्बरमणेः = सूर्यस्य । किरणम् = अंशुम् , तापम् इत्यर्थः । 'किरणोस्रमयूखांशुः' इत्यमरः । असहिष्णुः = सोढुमसमर्थः । एकस्य = कस्यचित् । गिरितटमहीरुहस्य—गिरेः = पर्वतस्य तटम् = उपत्यका (पर्वतस्यासन्ना भूः 'उपत्यका' शब्दवाच्या भवति तस्मिन् महीरुहस्य = मह्यां रोहतीति, तस्य) वृक्षस्य । प्रच्छायशीतले = प्रकृष्टा छाया प्रच्छायम् तेन शीतलम् = शीतं तस्मिन् । तले = अधोभागे । क्षणम् = मुहूर्तम् । उपाविशम् = उपविष्टवान् ।

(३) मम = पुष्पोद्भवस्य । पुरोभागे = अग्रे, सम्मुखे इत्यर्थः । दिनमध्यसमये = दिनस्य = दिवसस्य मध्यः = मध्यभागः तस्मिन् समये = मध्याह्ने । संकुचितसर्वावयवाम् =

चौथा उच्छ्वास

पुष्पोद्भव का अपना वृत्तान्त कहना ।

(१) राजन् ! ब्राह्मण के कार्य के लिए ही आप गये होंगे यह निश्चय होने पर भी मित्रगण यह तय नहीं कर पाये कि आप किधर गये होंगे । अन्त में सब लोग परस्पर अलग-अलग होकर आपको चारों दिशाओं में ढूँढने निकल पड़े ।

(२) अन्त में मैं भी आपको ढूँढने के लिए पृथ्वी पर घूमते-घूमते एक दिन दोपहर के समय सूर्य की प्रखर किरणों को न सह सकने के कारण पर्वत के किनारे एक सघन छाया वाले वृक्ष के नीचे थोड़ी देर बैठ गया । (३ , दोपहर के समय अपने सामने सभी अवयवों को सिकुड़ाये कछुए के समान आकृतिवाले मनुष्य की छाया को देखकर मैंने ऊपर की ओर

क्ष्योन्मुखो गगनतलान्महारयेण पतन्तं पुरुषं कंचिदन्तराले एव दयोपनतहृदयोऽहमवलम्ब्य शनैरवनितले निक्षिप्य दूरापातवीतसञ्ज्ञं तं शिशिरोपचारेण विबोध्य शोकातिरेकेणोद्गतवाष्पलोचनं तं भृगुपतनकारणमपृच्छम् ।

(१) सोऽपि कररुहैरश्रुकणानपनयन्नभाषत—'सौम्य, मगधाधिनाथामात्यस्य पद्मोद्भवस्यात्मसंभवो रत्नोद्भवो नामाहम् ।

(२) वाणिज्यरूपेण कालयवनद्वीपमुपेत्य कामपि वणिक्कन्यकां परिणीय तया

संकुचितः=आकुञ्चितः सर्वः अवयवः यस्याः तादृशीम् । कूर्माकृतिम्=कूर्मस्य कमठस्य 'कूर्मे कमठकच्छपौ' इत्यमरः, आकृतिः=आकारः इव आकृतिः यस्याः ताम् । मानुषच्छायाम्=मानुषस्य=मनुष्यस्य 'मनुष्या मानुषा मर्त्या' इत्यमरः छाया इति ताम् । निरीक्ष्य (निर् ईक्ष् क्त्वा ल्यप्) अवलोक्य । उन्मुखः –उत्=ऊर्ध्वं मुखं यस्य सः (अहम्) गगनतलात्=आकाशात् । महारयेण––महांश्चासौ रय =वेगः तेन बहुवेगेनेत्यर्थः । पतन्तम्=स्खलन्तम् । कंचित्=एकम् पुरुषम् । अन्तराले=मध्ये (भूमिस्पर्शात्प्रथमम्) एव । दयोपनतहृदयः––दयया=कारुण्येन उपनतम्=नम्रीभूतम् हृदयम्=स्वान्तम् यस्य सः । अहम्=पुष्पोद्भवः, अवलम्ब्य=गृहीत्वा । शनैः=मन्दम् । अवनितले=पृथ्वीतले । निःक्षिप्य=संस्थाप्य । दूरापातवीतसंज्ञम्=दूरात् आपातः=सर्वतोभावेन पतनम् तेन वीता=अपगता संज्ञा=चेष्टा यस्य तम् । तम्=छायाकृतिं पुरुषम् । शिशिरोपचारेण—शिशिरेण=शीतेन उपचारेण=सेवया शीतलप्रक्रिययेत्यर्थः । विबोध्य=प्रकृतिस्थं कृत्वा । शोकातिरकेण––शोकस्य=दुःखस्य अतिरेकेण=आधिक्येन । उद्गतबाष्पलोचनम्—उत्=ऊर्ध्वं गतम्=निःसृतम् बाष्पम्=नेत्राम्बु याभ्याम् एवंभूते लोचने=नयने यस्य तम् । तम्=पतन्तम्—पुरुषम् । भृगुपतनकारणम् भृगोः=प्रपातात 'प्रपातस्त्वतटो भृगुः' इत्यमरः । पतनस्य=स्खलनस्य । कारणम्=हेतुम् । अपृच्छम्=पृष्टवान् ।

(१) सोऽपि=पतन् पुरुषः अपि । कररुहैः=अङ्गुलिभिः । अश्रुकणान्=नयनाम्बुबिन्दून् । अपनयन्=प्रोञ्छन् । अभाषत=अवादीत् ।

सौम्य=सुभग, मगधाधिनाथामात्यस्य=राजहंसमन्त्रिणः । पद्मोद्भवस्य । आत्मसम्भवः=पुत्रः । रत्नोद्भवः । नाम=प्रसिद्धः । अहमस्मि । (२) वाणिज्यरूपेण=व्यापाराभिलाषेण ।

अपने शिर को उठाया और देखा कि आकाश से अत्यन्त वेग से एक पुरुष गिर कर नीचे आ रहा है । यह देख कर मुझे दया आ गयी । मैंने उसे बीच में ही सँभाला और धीरे से पृथ्वी पर रख दिया । दूर से गिरने के कारण उसकी चेतना नष्ट हो चुकी थी । पानी के छींटे देकर उसे मैं होश में लाया । शोकाधिक्य के कारण उसकी आँखों में दुःख के आँसू भरे थे । मैंने उससे पर्वत से गिरने का कारण पूछा ।

(१) उसने आँसुओं की बूँदों को हाथों से पोंछ कर कहा—'सौम्य, मैं मगध-देशाधिपति राजहंस के अमात्य पद्मोद्भव का पुत्र हूँ । मेरा नाम रत्नोद्भव है । (२) मैं व्यापार करने कालयवन द्वीप गया था । वहाँ किसी एक वैश्य कन्या के साथ मेरा विवाह हो गया ।

सह प्रत्यागच्छन्नम्बुधौ तीरस्यानतिदूर एव प्रवहणस्य भग्नतया सर्वेषु निमग्नेषु कथं कथमपि दैवानुकूल्येन तीरभूमिमभिगम्य निजांगनावियोगदुःखार्णवे प्लवमानः कस्यापि सिद्धतापसस्यादेशादरेण षोडश हायनानि कथंचिन्नीत्वा दुःखस्य पारमनवेक्षमाणो गिरिपतनमकार्षम्' इति।

(१) तस्मिन्नेवावसरे किमपि नारीकूजितमश्रावि—'न खलु समुचितमिदं यत्सिद्धादिष्टे पतितनयमिलने विरहमसहिष्णुर्वैश्वानरं विशसि' इति।

कालयवनद्वीपम् = कालयवनाख्यम् देशम्। उपेत्य = गत्वा। कामपि = एकाम्। वणिक्कन्यकाम्—वणिजः = व्यापारिणः कन्यकाम् = सुताम्। परिणीय = उपयम्य। तया = स्वभार्यया। सह = समम्। प्रत्यागच्छन् = परावर्तमानः। अम्बुधौ = समुद्रे। तीरस्य = कूलस्य। अनतिदूरे = समीपे। एव प्रवहणस्य = नौकायाः। भग्नतया = विशीर्णतया भिन्नतयेत्यर्थः। सर्वेषु—नौकास्थितेषु। (समुद्रे) निमग्नेषु (सत्सु) कथं कथमपि = येन केनापि प्रकारेण कष्टतरेणेति यावत्। दैवानुकूल्येन = दैवसाहाय्येन। तीरभूमिम् = तटप्रदेशम्। अभिगम्य = प्राप्य। निजाङ्गनावियोगदुःखार्णवे—निजायाः = स्वस्याः अङ्गनायाः स्त्रियाः यद् वियोगदुःखम् = विरहदुःखम् तद्रूपः यः अर्णवः = समुद्रः तस्मिन्। प्लवमानः = तरन्। कस्यापि = एकस्य। सिद्धश्चासौ तापसश्च इति तस्य। आदेशादरेण—आदेशस्य = आज्ञायाः आदरेण = विश्वासेन। षोडश = षडुत्तरदश। हायनानि = वर्षाणि। कथंचित् = नेत्रे निमील्य। नीत्वा = अतिवाह्य। दुःखस्य = कष्टस्य। पारम् = अन्तम्। अनवेक्षमाणः = अपश्यन्। गिरिपतनम्—गिरेः = पर्वतात् पतनम्। अकार्षम् = कृतवान्।

(१) तस्मिन्नेव अवसरे = क्षणे। किमपि नारीकूजितम्—नार्याः = स्त्रियाः कूजितम् = अव्यक्तध्वनिः क्रन्दनध्वनिरिति यावत्। अश्रावि = श्रुतम् मया। इदम् = कार्यम्। न समुचितम् = न युक्तम्। (यतः) पतितनयमिलने—पत्युः = स्वामिनः तनयस्य = पुत्रस्य च मिलनम् = संगमः तस्मिन् (विषये) सिद्धादिष्टे—सिद्धेन = केनचित् मुनिना आदिष्टे = कथिते (सति) 'षोडशवर्षानन्तरं पतिपुत्रयोर्मिलनं ते भविष्यतीति सिद्धादेशे सती'ति भावः। यत् विरहम् = वियोगदुःखम्। असहिष्णुः = सोढुमशक्नुवती। वैश्वानरम् = अग्निम्। विशसि =

कुछ दिन बाद उसे साथ लेकर मैं अपने घर लौट हो रहा था कि तट प्रदेश से कुछ ही दूर समुद्र से नाव टकराकर छिन्न-भिन्न हो गयो और सब के सब यात्री डूब गये। दैव के अनुकूल होने से किसी प्रकार मैं अकेला किनारे जा लगा और पत्नी के वियोग रूप दुःख समुद्र में बहता हुआ किसी एक सिद्ध तपस्वी के आश्रम में जा पहुँचा। वहाँ तपस्वी ने कहा कि—'१६ वर्ष बाद पत्नी से साक्षात्कार होगा, उसके वचन में विश्वास होने के कारण किसी तरह वर्ष १६ बिताये, किन्तु मेरे शोक का अन्त नहीं हुआ। इसी कारण मैं पर्वत से नीचे कूद पड़ा।'

(१) इस प्रकार बातें कर ही रहा था कि किसी एक स्त्री के रोने की आवाज सुन पड़ी। वह कह रही थी—जब एक सिद्ध तपस्वी ने बता दिया है कि तुम्हारे पति और पुत्र दोनों मिल जायेंगे, फिर क्यों विरह को सहने में असमर्थ होकर अग्नि में प्रवेश कर रही हो?

(१) तन्निशम्य मनोविदितजनकभावं तमवादिषम्—'तात, भवते विज्ञापनीयानि बहूनि सन्ति। भवतु। पश्चादखिलमाख्यातव्यम्। अधुना नारीकूजितमनुपेक्षणीयं मया। क्षणमात्रमत्र भवता स्थीयताम्' इति।

(२) तदनु सोऽहं त्वरया किंचिदन्तरमगमम्। तत्र पुरतो भयङ्करज्वालाकुलहुतभुगवगाहमानसाहसिकां मुकुलिताञ्जलिपुटां वनितां कांचिदवलोक्य ससंभ्रममनलादपनीय कूजन्त्या वृद्धया सह मत्पितुरभ्यर्णमभिगमय्य स्थविरामवोचम्—'वृद्धे भवत्यौ कुत्रत्ये। कान्तारे निमित्तेन केन दुरवस्थानुभूयते? कथ्यताम्' इति।

प्रविशसि त्वमिति शेषः इति '···नारीकूजितम्' अश्रावीति पूर्वेणैव सम्बन्धः।

(१) तन्निशम्य—तत्=कूजितम् निशम्य=श्रुत्वा। मनोविदितजनकभावम्—मनसा=अन्तःकरणेन विदितः=ज्ञातः जनकभावः=पितृत्वं यस्य तम्। तमेव पितरम्मन्यमानोऽहम् इति भावः। असावेवाऽस्मत्पितेति निर्णीतमिति यावत्। तं=पुरःपतितं पुरुषं। (अहम्) अवादिषं=उक्तवान्। तात=पितः। भवते विज्ञापनीयानि=निवेदनीयानि। वहूनि सन्ति। भवतु=तिष्ठतु। पश्चादखिलम्=समग्रम्। आख्यातव्यम्=कथनीयम् मयेति शेषः। अधुना=साम्प्रतम्। नारीकूजितम्=स्त्रीकर्तृकोऽव्यक्तध्वनिः। अनुपेक्षणीयम्—न उपेक्षितुम् योग्यम्=प्रतीक्षणीयम्, अवश्यं श्रवणीयमित्यर्थः। मया=पुष्पोद्भवेन। अत्र=प्रदेशेऽस्मिन्। क्षणमात्रम्=मुहूर्तं यावत्। भवता स्थीयताम्=आस्यताम्।

(२) तदनु=तत्पश्चात्। सः अहम्=पुष्पोद्भवः। त्वरया=शीघ्रगत्या। किञ्चित्। अन्तरम्=दूरम्। अगमं=गतवान्। तत्र=तस्मिन्स्थाने। पुरतः=अग्रे। भयंकरज्वालाकुलहुतभुगवगाहमानसाहसिकाम्—भयंकरीभिः ज्वालाभिः आकुलः=पूर्णः यः हुतभुक् तत्र अवगाहमाना=प्रविशन्ती अत एव साहसिका=कर्तव्याकर्तव्यविवेकशून्या ताम्। मुकुलिताञ्जलिपुटाम्—मुकुलितं=बद्धम् अञ्जलिपुटं यया तां बद्धाञ्जलिमित्यर्थः। वनिताम्=स्त्रियम्। कांचित्=एकाम्। अवलोक्य=दृष्ट्वा। ससम्भ्रम=झटिति। अनलात्=अग्नेः। अपनीय=दूरीकृत्य। कूजन्त्या=रुदन्त्या। वृद्धया=वनितया। सह। मत्पितुः=स्वतातस्य। अभ्यर्णम्=अन्तिकम्। 'उपकण्ठान्तिकाभ्यर्णा' इत्यमरः। अभिगमय्य=(अभि गम् णिच् क्त्वा ल्यप्) आनीय। स्थविराम्=वृद्धाम्। अवोचम्=अवादिषम्। वृद्धे=स्थविरे। भवत्यौ=

---

(१) यह सुनकर मैं समझ गया कि 'वे मेरे पिता हैं'। मैंने कहा—तात, मुझे आपसे वहुत कुछ कहना है, अच्छा, सारी बातें पश्चात् कहूँगा। इस समय उस स्त्री के क्रन्दन की उपेक्षा नहीं कर सकता हूँ। आप कुछ देर यहाँ ठहरिये।

(२) पश्चात् मैं उसी प्रकार शीघ्र ही कुछ दूर आगे बढ़ गया। वहाँ देखा कि—एक स्त्री हाथ जोड़े बैठी है और अपने आगे भयंकर ज्वाला वाली आग में कूदने को साहस कर रही है। मैं शीघ्रता से वहाँ पहुँचा और झटपट आग से उस स्त्री को दूर कर समीप में रोती हुई वृद्धा के साथ अपने पिता के समीप ले आया। मैंने वृद्धा से कहा—वृद्धे, आप दोनों कहाँ की रहने वाली हैं? इस दुर्गम मार्ग में किस कारण दुःख झेल रही हैं? सारी कहानी सुनाने

(१) सा सगद्गदमवादीत्—'पुत्र, कालयवनद्वीपे कालगुप्तनाम्नो वणिजः कस्यचिदेषा सुता सुवृत्ता नाम रत्नोद्भवेन निजकान्तेनागच्छन्ती जलधौ मग्ने प्रवहणे निजधात्र्या मया सह फलकमेकमवलम्ब्य दैवयोगेन कूलमुपेतासन्नप्रसवसमया कस्याञ्चिदटव्यामात्मजमसूत । (२) मम तु मन्दभाग्यतया बाले वनमातंगेन गृहीते मद्द्वितीया परिभ्रमन्ती 'षोडशवर्षानन्तरं भर्तृपुत्रसंगमो भविष्यति' इति सिद्धवाक्यविश्वासादेकस्मिन्पुण्याश्रमे तावन्तं समयं नीत्वा शोकमपारं

युवाम् । कुत्रत्ये=कुत्र जाते । कान्तारे=(अस्मिन्) दुर्गमे पथि । केन निमित्तेन=कारणेन दुरवस्था—दुष्टा अवस्था=दशा । अनुभूयते । कथ्यतां, याथातथ्येनेति शेषः ।

(१) सा=वृद्धा । सगद्गदम्=(गद्गदेन सहितं) वाष्पावरुद्धकण्ठं यथा स्यात्तथा । अवादीत्=उक्तवती । पुत्र, कालयवनद्वीषे=कालयवनाख्यदेशे । कालगुप्तनाम्नः कस्यचित्=एकस्य । वणिजः=व्यवसायिनः । एषा=इयम् । सुवृत्ता=सुवृत्ताभिधा । नामेत्यव्ययम् प्रसिद्धार्थे । सुता=पुत्री । निजकान्तेन—निजेन=स्वेन कान्तेन=पत्या रत्नोद्भवेन । आगच्छन्ती=प्रत्यावर्तमाना । जलधौ=समुद्रे । प्रवहणे=पोते । मग्ने=मज्जति सति । निजधात्र्या निजया=स्वकीयया धात्र्या=उपमात्रा । मया=वृद्धया सह । फलकम्=काष्ठखण्डम् । अवलम्ब्य=धृत्वा । दैवयोगेन=भाग्येन । कूलं=तीरम् । उपेता=प्राप्ता । आसन्नप्रसवसमया—आसन्नः=उपस्थितः प्रसवस्य=प्रजननस्य समयः=कालः यस्याः सा । कस्यांचित्=एकस्याम् । अटव्याम्=विपिने । आत्मजम्=पुत्रम् । असूत=जनयामास । (२) मम=वृद्धायाः । मन्दभाग्यतया=दुरदृष्टवशेन । बाले=शिशौ । वनमातङ्गेन=वनहस्तिना । गृहीते=आत्ते । मद्द्वितीया=अहं द्वितीया यस्याः सा मत्सहाया । परिभ्रमन्ती=पर्यटन्ती षोडशवर्षानन्तरम्=षडुत्तरदशवर्षादूर्ध्वम् । भर्तृपुत्रसङ्गमः—भर्तुः=पत्युः पुत्रस्य=आत्मजस्य च सङ्गमः=मिलनम् भविष्यति, इति सिद्धवाक्यविश्वासात्—सिद्धस्य=तापसस्य वाक्ये विश्वासः=आदरः तस्मात् । एकस्मिन्=कस्मिंश्चित् । पुण्याश्रमे=ऋषेराश्रमे । तावन्तम्=षोडशवर्षमितम् । समयम्=कालम् । नीत्वा=अतिवाह्य । अपारम्=दुस्तरम्, अनन्तमित्यर्थः ।

की कृपा करें ।

(१) वह (वृद्धा) गद्गद स्वर से बोली—बेटा, कालयवन द्वीप में कालगुप्त नाम का एक वैश्य है । उसकी यह सुवृत्ता नाम की पुत्री है । यह अपने पति रत्नोद्भव के साथ नाव पर आ रही थी कि अचानक समुद्र में नाव डूब जांने के कारण मुझ धाई के साथ लकड़ी का एक पटरा पकड़ कर बहती हुई सौभाग्य से किनारे आ लगी । प्रसव काल समीप होने से एक जंगल में इसने पुत्र उत्पन्न किया ।

(२) मेरे दुर्भाग्य से उस बालक को एक जंगली हाथी उठा ले गया । तब से यह मेरे साथ भटकती हुई एक सिद्ध तपस्वी के पास गयी । उस सिद्ध तपस्वी ने कहा था—'१६ वर्ष बाद तेरे पति और पुत्र मिलेंगे' । उसी पर विश्वास रख कर एक पवित्र आश्रम में वास करते हुए इसने १६ वर्ष बिताये । अब समय पूरा हो गया, किन्तु वे नहीं मिले । अतः अपार शोक

सोढुमक्षमा समुज्ज्वलिते वैश्वानरे शरीरमाहुतीकर्तुमुद्युक्तासीत्' इति ।

(१) तदाकर्ण्य निजजननीं ज्ञात्वा तामहं दण्डवत्प्रणम्य तस्यै मदुदन्तमखिलमाख्याय धात्रीभाषणप्रफुल्लवदनं विस्मयविकसिताक्षं जनकमदर्शयम् ।

(२) पितरौ तौ साभिज्ञानमन्योन्यं ज्ञात्वा मुदितान्तरात्मानौ विनीतं मामानन्दाश्रुवर्षेणाभिषिच्य गाढमाश्लिष्य शिरस्युपाघ्राय कस्यांचिन्महीरुहच्छायायामुपाविशताम् ।

शोकम्=दुःखम् । सोढुम्=उपभोक्तुम् । अक्षमा=असमर्था । समुज्ज्वलिते—देदीप्यमाने । वैश्वानरे=अग्नौ । शरीरम्=देहम् । आहुतीकर्तुम्=(न आहुतिम्, अनाहुतिम्, आहुतिम् कर्तुम् इति) भस्मसात्कर्तुम् । उद्युक्ता=तत्परा । आसीत्=अभवदिति ।

(१) तदाकर्ण्य—तत्=वृद्धोक्तम् । आकर्ण्य=श्रुत्वा । निजजननीं=मातरम् । ज्ञात्वा=निश्चित्य । इयमेवास्मन्मातेति बुद्ध्वा । ताम्=वनिताम् । दण्डवत्प्रणम्य=साष्टाङ्गम् प्रणामं कृत्वा । तस्यै=मात्रे । मदुदन्तम्=आत्मीयं वृत्तान्तम् । अखिलम्=समग्रम् । आख्याय=कथयित्वा । धात्रीभाषणप्रफुल्लवदनम्—धात्र्याः=उपमातुः 'धात्री स्यादुपमातापी'त्यमरः, वृद्धायाः भाषणेन=वचनेन प्रफुल्लम्=विकसितम् वदनम्=मुखम् यस्य तम् । विस्मयविकसिताक्षम्—विस्मयेन=आश्चर्येण विकसिते=सम्फुल्ले 'प्रफुल्लोत्फुल्लसम्फुल्ल ⋯ फुल्लश्चैते विकसिते' इत्यमरः अक्षिणी=नयने यस्य तम् । जनकम्=पितरम् । (अहम्) अदर्शयम्=दर्शितवान् । मात्रे इत्यर्थः ।

(२) तौ पितरौ=(माता च पिता च पितरौ) मातापितरौ । साभिज्ञानम्—अभिज्ञानेन=परिचयसूचकचिह्नेन सहितम्=युक्तम् । अन्योऽन्यम्=परस्परम् । ज्ञात्वा=परिचित्य । मुदितात्मानौ—मुदितः=प्रसन्नः आत्मा ययोः तौ । विनीतम्=प्रश्रितम्, 'वश्यः प्रणेयो निभृतविनीतप्रश्रिताः समाः' इत्यमरः । माम्=पुष्पोद्भवम् । आनन्दाश्रुवर्षेण—आनन्दस्य अश्रु, तस्य वर्षः=वर्षणम् तेन हर्षजनितनेत्राम्बुवृष्ट्येत्यर्थः । अभिषिच्य=सिक्त्वा । गाढम्=दृढम् । आश्लिष्य=आलिङ्ग्य । शिरसि=मस्तके । उपाघ्राय । कस्यांचित्=एकस्याम् । महीरुहच्छायायाम्=वृक्षच्छायायाम् । उपाविशताम्=उपविष्टौ । जननीजनकाविति शेषः ।

को सहन करने में असमर्थ होने के कारण प्रज्वलित अग्नि में जल कर मरने को तैयार थी ।

(१) धात्री की उपर्युक्त बातें सुनकर मैं जान गया कि ये मेरी माता हैं । मैं उन्हें दण्डवत् प्रणाम कर अपनी सारी कहानी कह सुनायी । धाई की बातें सुनकर प्रसन्न मुख और आश्चर्य से आँखें फाड़कर देखने वाले अपने पिता को दिखाया ।

(२) माता पिता ने परस्पर परिचयात्मक चिह्नों से एक दूसरे को पहचाना और प्रसन्न मुझ विनीत को हृदय से लगाया और सिर सूंघकर आनन्दाश्रु से विभोर हो समीप के किसी एक वृक्ष की छाया में वे बैठ गये ।

(१) 'कथं निवसति महीवल्लभो राजहंसः' इति जनकेन पृष्टोऽहं तस्य राज्यच्युतिं त्वदीयजनन सकलकुमारावाप्तिं तव दिग्विजयारम्भं भवतो मातङ्गानुयानमस्माक युष्मदन्वेषणकारणं सकलमभ्यधाम्। (२) ततस्तौ कस्यचिदाश्रमे मुनेरस्थापयम्।

(३) ततो देवस्यान्वेषणपरायणोऽहमखिलकार्यनिमित्तं वित्तं निश्चित्य भवदनुग्रहाल्लब्धस्य साधकस्य साहाय्यकरणदक्षं शिष्यगणं निष्पाद्य विन्ध्यवनमध्ये पुरातनपत्तनस्थानानि उपेत्य विविधनिधिसूचकानां महीरुहाणामधो

---

(१) महीवल्लभः = पृथ्वीपतिः राजहंसः। कथं = केन प्रकारेण। निवसति = वासं करोति। इति जनकेन = तातेन। पृष्टः = जिज्ञासितः। अहम् = पुष्पोद्भवः। तस्य = राज्ञः। राज्यच्युतिम् = राज्यभ्रंशम्। त्वदीयजननम् = युष्मदुत्पत्तिम्। सकलकुमारावाप्तिम्—सकलानाम् = समस्तानां कुमाराणाम् अवाप्तिम् = प्राप्तिम्। तव = भवतः। दिग्विजयारम्भम्—दिशाम् विजयः, तस्य आरम्भः तम्। भवतः = तव। मातङ्गस्य = ब्राह्मणाधमस्य। अनुयानम्—अनु पश्चात् यानम् = गमनम। अस्माकम् = कुमाराणाम्। युष्मदन्वेषणकारणम् = तवान्वेषणस्य कारणम्। सकलं = सम्पूर्णम्। अभ्यधाम् = अकथयम्। (२) ततः = तदनन्तरम्। तौ = पितरौ। कस्यचित् = एकस्य। मुनेः = ऋषेः। आश्रमे = निवासस्थाने। अस्थापयम् = न्यवासयम्। (३) ततः देवस्य = भवतः। अन्वेषणे = मार्गणे। परायणः = तत्परः। अहं = पुष्पोद्भवः। अखिलकार्यनिमित्तम्—अखिलानाम् = समस्तानाम् कार्याणाम् निमित्तम् = साधनभूतम्। वित्तम् = धनम्। निश्चित्य = निर्णीय। भवदनुग्रहात्—भवतः = तव अनुग्रहात् = कृपावशात्। लब्धस्य = प्राप्तस्य। साधकस्य = मुनेः। साहाय्यकरणदक्षम—सहायताकार्यकरणे दक्षम् = निपुणम्। शिष्यगणम्। निष्पाद्य = संपाद्य। विन्ध्यवनमध्ये। पुरातनपत्तनस्थानानि—पुरातनानि = प्राक्तनानि अतिजीर्णानि पत्तनस्थानानि—पत्तनानां = नगराणाम् स्थानानि = भूमीः। उपेत्य = प्राप्य। विविधनिधिसूचकानाम्—विविधानाम् = अनेकप्रकाराणाम् निधीनाम् = शेवधीनाम्। भूलस्थितद्रव्यविशेषाणामिति यावत्। सूचकाः = निर्देशकाः प्रकाशका इत्यर्थः तेषाम्।

---

(१) पिता ने पूछा—महाराज राजहंस किस प्रकार निवास कर रहे हैं (उनका क्या समाचार है)। मैंने उनकी राज्यच्युति, आप का जन्म, सब कुमारों का मिलना, आप का दिग्विजयारम्भ तथा मातङ्ग के साथ जाना और हमलोगों का आपको खोजने में लग जाना आदि सभी बातें कह सुनायी। (२) तब उन दोनों को एक मुनि के आश्रम में ले जाकर ठहरा दिया।

(३) पश्चात् आपकी खोज में लगा हुआ मैंने सोचा कि सभी कार्य धन से सिद्ध होते हैं। अतः धन प्राप्ति का उपाय ढूँढना चाहिए। उसी क्षण आपकी कृपा से मुझे एक उपाय सूझ गया। मैंने सहायता करने में चतुर कुछ शिष्य तैयार किए और विन्ध्यवन के पुराने खण्डहरों वाले नगर में मैं जा पहुँचा। वहाँ अपनी आँखों में सिद्धाञ्जन लगाकर मैंने अनेक प्रकार के खजाने की सूचना देने वाले वृक्षों के नीचे गड़े धनपूर्ण कलशों को देखा। मैंने

निक्षिप्तान् वसुपूर्णान् कलशान् सिद्धाञ्जनेन ज्ञात्वा रक्षिषु परितः स्थितेषु खननसाधनैः उत्पाट्य दीनारानसंख्यान् राशीकृत्य तत्कालागतमनतिदूरे निवेशितं वणिक्कटकं कञ्चिदभ्येत्य तत्र धनिनो बलीवर्दान् गोणीश्च क्रीत्वान्यद्रव्यमिषेण वसु तद्गोणीसंचितं तैरुह्यमानं शनैः कटकमनयम् ।

(१) तदधिकारिणा चन्द्रपालेन केनचिद्वणिक्पुत्रेण विरचितसौहृदोऽहममुनैव साकमुज्जयिनीमुपाविशम् । (२) मत्पितरावपि तां पुरीमभिगमय्य सकलगुणनिलयेन बन्धुपालनाम्ना चन्द्रपालजनकेन नीयमानो मालवनाथदर्शनं विधाय

महीरुहाणाम् । अधः = तले । निक्षिप्तान् = रक्षितान् । सम्पूर्णान् = धनपूरितान् । कलशान् = कुम्भान् । सिद्धाञ्जनेन = कज्जलविशेषेण । ज्ञात्वा = अवगम्य । रक्षिषु = प्रहरिषु रक्षायां नियुक्तेषु पुरुषेषु । परितः = समन्तात् । स्थितेषु = वर्तमानेषु । खननसाधनैः = खनित्रैः, अस्त्रविशेषैरित्यर्थः । उत्पाट्य = पृथ्वीमध्यात् निःसार्य । असंख्यान् = संख्यातुमशक्यान् दीनारान् = सुवर्णमुद्राविशेषान् । राशीकृत्य = (अराशिं राशिं कृत्वेति च्विः) संहृत्य । तत्कालागतम् = तत्कालोपस्थितम् । अनतिदूरे = समीपे । निवेशितम् = स्थापितम् वणिक्कटकम् = वणिगावासम् । कञ्चिदभ्येत्य = गत्वा । तत्र = कटके । बलिनः = पुष्टान् । बलीवर्दान् = वृषभान् । गोणीः = धान्यादिवहनार्थम् रज्जुनिर्मितपात्रविशेषान् । क्रीत्वा = विनिमयं कृत्वा । अन्यद्रव्यमिषेण = द्रव्यान्तरव्याजेन । तद्गोणीसञ्चितम् = तासु गोणीषु सञ्चितम् = एकत्र स्थापितम् । वसु = धनम् । तैः = बलीवर्दैः । उह्यमानम् = नीयमानम् । शनैः = मन्दम् । कटकम् = शिविरम् । अनयम् = आनीतवान् ।

(१) तदधिकारिणा—तस्य = कटकस्य अधिकारिणा = स्वामिना । केनचित् = एकेन । वणिक्पुत्रेण = वैश्यतनयेन । चन्द्रपालेन = चन्द्रपालनाम्ना । विरचितसौहृदः—विरचितम् = कृतम् सौहृदम् = मित्रत्वम् येन तथाभूतः । अहम् = पुष्पोद्भवः । अमुना = चन्द्रपालेन । एव । साकम् = सह । उज्जयिनीम् । उपाविशम् = प्रविष्टः । (२) मत्पितरौ = मदीयां मातरम् पितरञ्च । तां = उज्जयिनीपुरीम् । अभिगमय्य = प्रापय्य नीत्वेत्यर्थः । सकलगुणनिलयेन—सकलानां = समस्तानाम् गुणानाम् = शौर्यादीनाम् निलयेन = स्थानभूतेन । बन्धुपालनाम्ना = बन्धुपालाभिधेन । चन्द्रपालजनकेन—चन्द्रपालस्य = मन्मित्रस्य तातेन । नीयमानः = (नीयते

उनके चारों तरफ पहरे बैठा दिये और खन्ती, कुदाल आदि अस्त्रों से खोद कर असंख्य अशर्फियों को इकट्ठा किया । उसी समय वहाँ समीप में ही व्यापारियों का एक समूह आ कर ठहरा था, जहाँ जा कर मैंने बलवान् बैलों वालीं कुछ गाड़ियाँ खरीदीं और द्रव्यान्तर ढोने का बहाना कर उन गाड़ियों पर समस्त धन इकट्ठा कर दिया और उन बैलों द्वारा ढोकर धीरे से उन्हीं के पड़ाव पर लाया ।

(१) उस कटक का अधिकारी वैश्यपुत्र चन्द्रपाल था, जिसके साथ मैंने मित्रता कर ली और उसी के साथ मैं उज्जयिनी पहुँच गया । (२) कुछ दिनों बाद अपने माता-पिता को भी वहाँ ले आया । एक दिन सर्वकलाकुशल चन्द्रपाल के पिता बन्धुपाल के साथ जाकर

तदनुमत्या गूढवसतिमकरवम् ।

(१) ततः काननभूमिषु भवन्तमन्वेष्टुमुद्युक्तं मां परममित्रं बन्धुपालो निशम्यावदत्—सकलं धरणितलमपारमन्वेष्टुमक्षमो भवान्मनोग्लानिं विहाय तूष्णीं तिष्ठतु । भवन्नायकालोकनकारणं शुभशकुनं निरीक्ष्य कथयिष्यामि इति ।

वालचन्द्रिकया प्रीतिः

(२) तल्लपितामृताश्वासितहृदयोऽहमनुदिनं तदुपकण्ठवर्ती कदाचिदिन्दुमुखीं नवयौवनावलीढावयवां नयनचन्द्रिकां बालचन्द्रिकां नाम तरुणीरत्नं

इति शानच्) प्राप्यमाणः (अहम्) मालवनाथदर्शनम्=मालवाधिपतेः दर्शनम् । विधाय= कृत्वा । तदनुमत्या=मालवनाथाज्ञया । गूढवसतिम्=गुप्तवासम् (तत्रैव) अकरवम्= कृतवान् ।

(१) ततः=तदनन्तरम् । काननभूमिषु=वनभूमिषु । भवन्तम्=राजवाहनम् । अन्वेष्टुम्=मार्गितुम् । उद्युक्तम्=सन्नद्धम् । माम्=पुष्पोद्भवम् । परिममित्रम्=परमञ्च तत् मित्रम् । बन्धुपालः । निशम्य=श्रुत्वा । अवदत्=उवाच । अपारम्=अनन्तम् । सकलम्= सम्पूर्णम् । धरणीतलम्=पृथ्वीतलम् । अन्वेष्टुम्=गवेषितुम् । अक्षमः=असमर्थः । भवान्= पुष्पोद्भवः । मनोग्लानिम्—मनसः ग्लानिम्=खेदम् । विहाय=त्यक्त्वा । तूष्ण =मौनम् । तिष्ठतु । भवन्नायकालोकनकारणम्—भवतः=तव नायकस्य=स्वामिनः आलोकनस्य= दर्शनस्य कारणम्=निमित्तम् । शुभशकुनम्=शुभसूचकचिह्नम् । निरीक्ष्य=दृष्ट्वा । कथयिष्यामि=वक्ष्यामि । इति ।

(२) तल्लपितामृताश्वासितहृदयः—तस्य=चन्द्रपालजनकस्य लपितामृतेन=वचनामृतेन 'व्याहार उक्तिर्लपितं भाषितं वचनं वचः' इत्यमरः आश्वासितम् हृदयम्=स्वान्तम् यस्य सः । अहम्=पुष्पोद्भवः । अनुदिनम्=प्रतिदिनम् । तदुपकण्ठवर्ती—तस्य=बन्धुपालस्य उपकण्ठे= समीपे । वर्तितुम्=स्थातुम् शीलम् यस्य सः (अभवम्) कदाचित्=एकदा । इन्दुमुखीम्— इन्दुः=चन्द्रः इव मुखम्=वदनं यस्याः सा ताम् । नवयौवनावलीढावयवाम्—नवयौवनेन= युवावस्थया अवलीढाः=चुम्बिताः व्याप्ताः इत्यर्थः अवयवाः=अङ्गानि 'अङ्गं प्रतीकोऽवयवोऽपघनः' इत्यमरः यस्याः सा ताम् । नयनचन्द्रिकाम्—नयनयोः=नेत्रयोः चन्द्रिका=कौमुदी ताम् । बालचन्द्रिकाम् । नामेत्यव्ययं प्रसिद्धार्थे । तरुणीरत्नम्—तरुणीषु=युवतीषु रत्नम्=

मालवाधिपति का दर्शन किया और उनकी आज्ञा लेकर वहीं गुप्तवास करने लगा ।

(१) एक दिन वनप्रदेश में आपको ढूँढ़ने को उद्यत मुझे देखकर मेरे परममित्र बन्धुपाल ने कहा—अपार पृथ्वीमण्डल पर क्या आप अन्वेषण कर सकते हैं ? आप अपने मन की ग्लानि छोड़, शान्तिपूर्वक मौन हो बैठिये, आपको स्वामी का दर्शन हो, ऐसा शुभ शकुन देख कर मैं बताऊँगा ।

(२) उसके उपर्युक्त सुधामय वचनों से मुझे धैर्य बँधा और प्रतिदिन उसी के समीप रहने लगा । एक दिन मैंने मूर्तिमयी वैश्यगृह लक्ष्मी-सी बालचन्द्रिका नाम वाली तरुणीरत्न को देखा ।

वणिङ्मन्दिरलक्ष्मीं मूर्तामिवावलोक्य तदीयलावण्यावधूतधीरभावो लतान्तबाणबाणलक्ष्यतामयासिषम् ।

(१) चकितबालकुरङ्गलोचना सापि कुसुमसायकसायकायमानेन कटाक्षवीक्षणेन मामसकृन्निरीक्ष्य मन्दमारुतान्दोलिता लतेवाकम्पत । (२) मनसाभिमुखैः समाकुञ्चितै रागलज्जान्तरालवर्तिभिः साङ्गवर्तिभिरीक्षणविशेषैर्निजमनोवृत्तिम-

---

श्रेष्ठम् । मूर्ताम् = मूर्तिमतीम् । वणिङ्मन्दिरलक्ष्मीम्—वणिजां = वैश्यानाम् मन्दिरम् = भवनम् 'भवनागारमन्दिरमि'त्यमरः तस्य लक्ष्मीः = शोभा ताम् । इव । अवलोक्य = दृष्ट्वा । तदीयलावण्यावधूतधीरभावः--तदीयेन = बालचन्द्रिकासम्बन्धिना लावण्येन = सौन्दर्येण अवधूतः = तिरस्कृतः धीरभावः = धैर्य्यं यस्य तथाभूतः । लतान्तबाणबाणलक्ष्यताम्--लतान्तः = पुष्पं बाणः यस्य सः = कुसुमेषुः कामः तस्य बाणस्य लक्ष्यताम् = शरव्यत्वम् 'लक्षं लक्ष्यं शरव्यं चे'त्यमरः । अयासिषम् = अगमम् ।

(१) चकितबालकुरङ्गलोचना—चकितस्य = भयान्वितस्य बालकुरङ्गस्य = बालमृगस्य लोचने = नेत्रे इव लोचने = नयने यस्याः सा । सापि = बालचन्द्रिकाऽपि । कुसुमसायकसायकायमानेन—कुसुमसायकस्य = कामस्य सायकः = बाणः स इव आचरता (क्यङि, शानचि च) कामबाणतुल्येन । कटाक्षवीक्षणेन--कटाक्षेण = अपाङ्गदर्शनेन 'कटाक्षोऽपाङ्गदर्शने' इत्यमरः यद्वीक्षणम् = अवलोकनम् तेन । माम् = पुष्पोद्भवम् । असकृत् = अनेकवारम् । निरीक्ष्य = दृष्ट्वा । मन्दमारुतान्दोलिता—मन्देन = धीरेण मारुतेन = पवनेन आन्दोलिता = कम्पिता । लता = 'वल्ली तु व्रततिर्लता' इत्यमरः । इव । अकम्पत = कम्पितवती ।

(२) मनसा = स्वान्तेन । अभिमुखैः = कृतसमक्षैः मय्यर्पितैः ईक्षणविशेषैरित्यनेन सम्बन्धः । समाकुञ्चितैः = सम्यक् प्रकारेण आकुञ्चितैः = संकोचितैः रागलज्जाऽन्तरालवर्तिभिः—रागः = प्रेमा लज्जा = व्रीडा तयोः अन्तराले = मध्ये वर्तितुम् स्थातुम् शीलं येषाम् तैः । साङ्गवर्तिभिः—अङ्गन = उपाङ्गेन सह वर्तन्ते ये: तैः । ईक्षणविशेषैः । निजमनोवृत्तिम्—निजस्य = स्वस्य मनसः = चित्तस्य वृत्तिः = व्यापारः ताम् । अकथयत् = कथितवती ।

उसका मुख चन्द्रमा के समान था । उसकी देह में रूप और यौवन भरे थे । मानो वह नयनों की पुतली थी । उसके सौन्दर्य देखकर मेरे धैर्य नष्ट हो गये और मैं कामदेव के बाणों का लक्ष्य बन गया ।

(१) भयभीत चपलमृग के नयनों जैसी आँखों वाली वह बालचन्द्रिका भी कामबाण सदृश कटाक्षों से मुझे अनेक बार देख कर धीमी वायु द्वारा कँपायी गयी लता की तरह हिल उठी ।

(२) प्रेम और लज्जा के मध्य में रहने वाले हाव-भावों से एवं हृदय से मेरे ऊपर थोड़ी पड़ने वाली पैनी नजरों से अपने मन के भावों को कह गयी ।

कथयत् । (१) चतुरगूढचेष्टाभिरस्या मनोऽनुरागं सम्यग्ज्ञात्वा सुखसंगमोपायमचिन्तयम् ।

बन्धुपालस्य शकुनविचारः

(२) अन्यदा बन्धुपालः शकुनैर्भवद्गतिं प्रेक्षिष्यमाणः पुरोपान्तविहारवनं मया सहोपेत्य कस्मिंश्चिन्महीरुहे शकुन्तवचनानि श्रृण्वन्नतिष्ठत् ।

(३) अहमुत्कलिकाविनोदपरायणो वनान्तरे परिभ्रमन्सरोवरतीरे चिन्ताक्रान्तचित्तां दीनवदनां मन्मनोरथैकभूमिं बालचन्द्रिकां व्यलोकयम् ।

---

(१) चतुरगूढचेष्टाभिः—चतुराः=पट्व्यः 'दक्षे तु चतुरपेशलपटवः' इत्यमरः गूढाः=गुप्ताः 'निदिग्धोपचिते गूढगुप्ते' इत्यमरः याः चेष्टाः=हावादयः ताभिः । अस्याः=बालचन्द्रिकायाः । मनोऽनुरागम्—मनसः=चित्तस्य अनुरागम्=प्रेमाणम् । सम्यक् । ज्ञात्वा । सुखसंगमोपायम्—सुखेन=अनुद्योगेन यः सङ्गमः=मिलनम् तस्य उपायः तम् । अचिन्तयम्=चिन्तितवान् (अहमिति शेषः) ।

(२) अन्यदा=अन्यस्मिन्नहनि । बन्धुपालः । शकुनैः=शुभसूचकैः । भवद्गतिम्=भवतः=तव गतिम्=व्यापारम् । प्रेक्षिष्यमाणः=(प्रेक्षिष्यते इति शानच्) अवलोकयिष्यन् । पुरोपान्तविहारवनम्—पुरस्य=नगरस्य उपान्ते=समीपे यद् विहारवनम्=क्रीडोद्यानम् तत् । मया=पुष्पोद्भवेन सह । उपेत्य=गत्वा । कस्मिंश्चित्=एकस्मिन् । महीरुहे=वृक्षे । शकुनवचनानि—शकुनस्य=पक्षिणः 'शकुन्तिपक्षिशकुनिशकुन्तशकुनद्विजाः' इत्यमरः वचनानि=भाषितानि । श्रृण्वन्=आकर्णयन् । अतिष्ठत्=स्थितः ।

(३) अहम्=पुष्पोद्भवः । उत्कलिकाविनोदपरायणः—उत्कलिका=उत्कण्ठा 'स्याच्चिन्ता स्मृतिराध्यानमुत्कण्ठोत्कलिके समे' इत्यमरः तस्याः विनोदः=दूरीकरणम् तस्मिन् परायणः=(परम्=उत्कृष्टम् अयनम्=स्थानम् यस्य सः) आसक्तः तत्पर इत्यर्थः । वनान्तरे=अन्यद्वनम्=वनान्तरम् तस्मिन् । परिभ्रमन्=पर्यटन् । सरोवरतीरे—सरस्सु=सरसीषु वरः=श्रेष्ठः तस्य तीरे=तटे । चिन्ताक्रान्तचित्ताम्—चिन्तया=स्मृत्या आक्रान्तम् चित्तम्=स्वान्तम् यस्याः सा ताम् । दीनवदनाम्– दीनम्=खिन्नम् वदनम्=आननम् यस्याः सा ताम् । मन्मनोरथैकभूमिम्—मम=पुष्पोद्भवस्य मनोरथस्य=अभिलाषस्य एका भूमिः ताम् ।

---

(१) उसकी चतुरता तथा गुप्त चेष्टाओं द्वारा उसके हार्दिक अनुराग को अच्छी तरह जान कर उसके साथ अनायास मिलने का उपाय सोचने लगा ।

(२) एक दिन बन्धुपाल मेरे साथ शकुनों से आप के विषय में पता चलाने के लिए गाँव के बाहर विहार वन में गया और वहाँ किसी एक वृक्ष पर बोलते पक्षियों की बोली सुनने के लिए खड़ा हो गया ।

(३) मैं अपनी उत्कंठा शान्ति के लिए यों ही घूमते-फिरते एक दूसरे वन में चला गया । वहाँ एक सरोवर के किनारे चिन्ता से व्याप्त चित्त वाली, क्लान्त मुखवाली और अपने मनोरथ का प्रधान आश्रय उस बालचन्द्रिका को देखा ।

(१) तस्याः ससंभ्रमप्रेमलज्जाकौतुकमनोरमं लीलाविलोकनसुखमनुभवन्सुदत्या वदनारविन्दे विषण्णभावं मदनकदनखेदानुभूतं ज्ञात्वा तन्निमित्तं ज्ञास्यल्लीलया तदुपकण्ठमुपेत्यावोचम्–'सुमुखि तव मुखारविन्दस्य दैन्यकारणं कथय' इति ।

(२) सा रहस्यसंजातविश्रम्भतया विहाय लज्जाभये शनैरभाषत–'सौम्य, मानसारो मालवाधीश्वरो वार्धकस्य प्रवलतया निजनन्दन दर्पसारमुज्जयिन्यामभ्यषिञ्चत् ।

वालचन्द्रिकाम् । व्यलोकयम् = अपश्यम् ।

(१) तस्याः = वालचन्द्रिकायाः । ससम्भ्रम-प्रेमलज्जा-कौतुक-मनोरमम् = सम्भ्रमेण सह वर्तमानानि-ससंभ्रमाणि प्रेमा च लज्जा = व्रीडा च कौतुकं = औत्कण्ठ्यञ्चेति तानि, ससम्भ्रमाणि च तानि तैः मनोरमम् = मनोज्ञम् । लीलाविलोकनसुखम् = लीलया विलोकनम् इति तेन, यत्सुखम् तत् । अनुभवन् = हृदयं गमयन् । सुदत्याः––शोभनाः दन्ताः यस्याः तस्याः वालचन्द्रिकायाः । वदनारविन्दे = मुखे । मदनकदनखेदानुभूतम्—मदनस्य = कामस्य यत् कदनम् = पीडनम् तस्य खेदेन = श्रमेण अनुभूतम् । विषण्णभावम् = क्लान्तत्वम् । ज्ञात्वा । तन्निमित्तन् = तस्य क्लान्तत्वस्य निमित्तम् = कारणम् । ज्ञास्यन् = अवगमिष्यन् । लीलया = विलासेन । तदुपकण्ठम्—तस्याः उपकण्ठम् = समीपम् । उपेत्य = गत्वा । अवोचम् = अवादिषम् । सुमुखि = भद्रे, तव = भवत्याः मुखारविन्दस्य = मुखकमलस्य । दैन्यकारणम्—दैन्यस्य = दीनतायाः कारणम् = निमित्तम् । कथय = भण ।

(२) सा वालचन्द्रिका । रहस्यसंजातविश्रम्भतया––रहसि भवे रहस्ये = गोपनीये 'रहस्यं तद्भवं त्रिषु' इत्यमरः संजातः = उत्पन्नः यः विश्रम्भः = विश्वासः यस्याः तस्या भावः तया । लज्जाभये—लज्जा = त्रपा च भयम् = भीतिश्चेति ते विहाय = त्यक्त्वा । शनैः = मन्दं यथा स्यात्तथा । अवादीत् । सौम्य = सुभग । मालवाधीश्वरः मानसारः = मानः एव सारः = वलम् यस्य सः । वार्धकस्य = वृद्धावस्थायाः । प्रवलतया = अधिकतया । निजनन्दनम्––निजस्य = स्वस्य नन्दनम् = पुत्रम् । दर्पसारम्––दर्पः गर्वः एव सारः = वलम् यस्य सः तम् । उज्जयिन्याम् = राजधान्याम् । अभ्यषिञ्चत् = यौवराज्ये अस्थापयत् ।

(१) उस मनोहर दाँतों वाली वालचन्द्रिका का शीघ्रतावश प्रेम, लज्जा और उत्सुकता से सुन्दर अवलोकन सुख का अनुभव करता हुआ उसके मुख कमल में मदनपीडाजन्य विषाद को देखा । उस विषाद के कारण को जानने की इच्छा से अनायास ही उसके समीप जा कर मैंने पूछा—हे सुमुखि, अपने मुख कमल के म्लान होने का कारण कहो ।

(२) एकान्त होने के कारण उसे विश्वास हो गया था । अतः लज्जा तथा भय को छोड़कर वह धीरे से बोली––सौम्य, मालवनरेश मानसार ने वृद्धावस्था के कारण अपने पुत्र दर्पसार का उज्जयिनी में राज्याभिषेक कर दिया ।

(१) स कुमारः सप्तसागरपर्यन्तं महीमण्डलं पालयिष्यन्निजपैतृष्वसेयावुद्दण्डकर्माणौ चण्डवर्मदारुवर्माणौ धरणीभरणे नियुज्य तपश्चरणाय राजराजगिरिमभ्यगात् ।

(२) राज्य सर्वमसपत्नं शासति चण्डवर्मणि दारुवर्मा मातुलाग्रजन्मनोः शासनमतिक्रम्य पारदार्यपरद्रव्यापहरणादिदुष्कर्म कुर्वाणो मन्मथसमानस्य भवतो लावण्यायत्तचितां मामेकदा विलोक्य कन्यादूषणदोषं दूरीकृत्य बलात्कारेण रन्तुमुद्यङ्क्ते । तच्चिन्तया दैन्यमगच्छम्' इति ।

---

(१) स कुमारः=दर्पसारः सप्तसागरपर्यन्तम्=सप्तसमुद्रसीमान्तम । महीमण्डलम्—मह्याः=पृथिव्याः मण्डलम् । पालयिष्यन्=रक्षिष्यन् । निजपैतृष्वसेयौ=पितृष्वसुरपत्यं पुमानिति विग्रहे (पितृष्वसृशब्दात् ढकि, अन्त्यलोपश्च 'ढकि लोपः' इति सूत्रात् । अत एव ज्ञापकात् ढक् प्रत्ययोऽपि इति कौमुदीकारः)=पितुर्भगिन्याः पुत्रौ । उद्दण्डकर्माणौ=निन्दितकार्यरतौ । चण्डवर्मदारुवर्माणौ । धरणीभरणे=पृथिव्याः पालने । नियुज्य । तपश्चरणाय=तपश्चर्तुम् । राजराजगिरिम्=कैलाशम् । अभ्यगात्=अगमत् ।

(२) असपत्नम्=शत्रुरहितम् अकण्टकमित्यर्थः । सर्वम्=सम्पूर्णम् । राज्यम् (राज्ञो भावः कर्म वा)=देशं शासति=पालयति । चण्डवर्मणि । दारुवर्मा=चण्डवर्मणः कनिष्ठः मातुलाग्रजन्मनोः=मानसारचण्डवर्मणोः । शासनम्=आज्ञाम् । उल्लङ्घ्य=अतिक्रम्य । पारदार्यपरद्रव्यापहरणादिदुष्कर्म—पारदार्यम् च परद्रव्यापहरणम् (परस्य यद् द्रव्यं तस्य अपहरणम्) च ते आदिनी यस्य दुष्कर्मणः, तत् परस्त्रीगमनचौर्यादिकर्म । कुर्वाणः=कुर्वन् । मन्मथसमानस्य=कामदेवतुल्यस्य । भवतः=पुष्पोद्भवस्य । लावण्यायत्तचित्ताम्=लावण्येन आयत्तम्=अधीनम् 'अधीनो निघ्न आयत्त' इत्यमरः चित्तम् यस्याः सा ताम् । माम्=बालचन्द्रिकाम् । एकदा=एकस्मिन्नहनि । विलोक्य=दृष्ट्वा । कन्यादूषणदोषम्—कन्यायाः=अविवाहितायाः दूषणम्=(दूषयति=विकारमुत्पादयतीति ल्युट्) तदेव दोषः तम् । दूरीकृत्य=निराकृत्य । बलात्कारेण=बलप्रयोगेण । रन्तुम्=उपभोक्तुम् । उद्युङ्क्ते=चेष्टते । तच्चिन्तया—तस्य चिन्ता=निर्वेदः तया । दैन्यम्=दीनताम् । अगच्छम्=अगमम् ।

---

(१) वह कुमार सातो सागर वाली पृथ्वीमण्डल को पालन करने का भार अपने बूआ के दो दुष्कर्मी पुत्रों चण्डवर्मा और दारुवर्मा को सौंप कर स्वयं तपस्या करने कैलाश पर्वत पर चला गया ।

(२) चण्डवर्मा निःसपत्न (शत्रुहीन) सम्पूर्ण राज्य का शासन करता है और दारुवर्मा मामा तथा बड़े भाई की आज्ञा न मानकर परस्त्रीगमन, परधनापहरण आदि दुष्कर्म किया करता है । कामदेव जैसे आप के रूप पर मोहित मुझे दारुवर्मा ने एक दिन देख लिया और कन्यारमणजन्य दोष का बिना चिन्ता किये उसने मेरे साथ बलपूर्वक रमण करने को उद्यत हो गया । इसी चिन्ता से व्याकुल हो रही हूँ ।

(१) तस्या मनोगतम्, रागोद्रेकं मनोरथसिद्ध्यन्तरायं च निशम्य बाष्पपूर्णलोचनां तामाश्वास्य दारुवर्मणो मारणोपायं च विचार्य वल्लभामवोचम् — तरुणि, भवदभिलाषिणं दुष्टहृदयमेनं निहन्तुं मृदुरुपायः कश्चिन्मया चिन्त्यते। (२) यक्षः कश्चिदधिष्ठाय बालचन्द्रिकां निवसति। तदाकारसंपदाशाश्रृङ्खलितहृदयो यः संबन्धयोग्यः साहसिको रतिमन्दिरे तं यक्षं निर्जित्य तया एकसखीसमेतया मृगाक्ष्या संलापामृतसुखमनुभूय कुशली निर्गमिष्यति तेन चक्रवाक-

---

(१) तस्याः = बालचन्द्रिकायाः। मनोगतम् = मनसि गतम् चेतोभवम् अभिलाषमित्यर्थः। रागोद्रेकम्—(मयि) रागस्य = अनुरागस्य उद्रेकम् = आधिक्यम्। मन्मनोरथसिद्ध्यन्तरायम्—मम = पुष्पोद्भवस्य मनोरथस्य = अभिलाषस्य सिद्धेः = निष्पत्तेः अन्तरायम् = विघ्नम् च। निशम्य = श्रुत्वा। बाष्पपूर्णलोचनाम्—बाष्पेण = नेत्राम्बुना पूर्णे लोचने = नयने यस्याः सा ताम्। ताम् = बालचन्द्रिकाम् आश्वास्य = सान्त्वयित्वा। दारुवर्मणः = दर्पसारपितृष्वसुः पुत्रस्य। मारणोपायम्—हन्तुम् उपायम् च विचार्य = चिन्तयित्वा। वल्लभाम् = प्रेयसीम् बालचन्द्रिकाम्। अवोचम् = अवादिषम्। तरुणि, सम्बोधनपदमेतत्। भवदभिलाषिणम्—भवत्याः = तव अभिलाषिणम्—अभिलाषः = मनोरथः आकाङ्क्षेति यावत् अस्यास्तीति तम्। दुष्टहृदयम्—दुष्टम् हृदयम् = मनः यस्य तम् एनम् = दारुवर्माणम्। निहन्तुम् = नाशितुम्। मृदुः = लघुः। उपायः = साधनम्। कश्चित् = एकः। मया = पुष्पोद्भवेन। चिन्त्यते = विचार्यते।

(२) बालचन्द्रिकाम् अधिष्ठाय = आक्रम्य, संसेव्येत्यर्थः। कश्चित् = एकः। यक्षः = पिशाचविशेषः। निवसति = वासं करोति। तदाकारसंपदाशाश्रृङ्खलितहृदयः—तस्याः = बालचन्द्रिकायाः आकारः = आकृतिः एव सम्पत् = श्रीः तस्यां या आशा = भोगेच्छा तया श्रृंखलितम् = बद्धम् हृदयम् = मनो यस्य तथाभूतः। यः कश्चित्। सम्बन्धयोग्यः = अनुरूपः। साहसिकः = दृढः, साहसं कर्तुं समर्थः इत्यर्थः। रतिमन्दिरे = सुरतशालायाम्। तम् = बालचन्द्रिकाधिष्ठितम्। यक्षम् = पिशाचविशेषम्। निर्जित्य = पराजित्य। एकसखीसमेतया—एका चासौ सखी तया एकसख्या समेतया = युक्तया। तया मृगाक्ष्या = मृगस्येव अक्षिणो = नयने यस्याः सा, तया = बालचन्द्रिकया। संलापामृतसुखम्—संलापः = परस्परभाषणम् तद्रूपम् यत् अमृतम् तदुत्पन्नम् सुखम् = आनन्दम्। अनुभूय। कुशली—कुशलम् =

---

(१) उसके मनोभाव, अपने प्रति प्रेमातिशय तथा अपने मनोरथ सिद्धि में दारुवर्मा को विघ्नरूप सुनकर रोती हुई उस बालचन्द्रिका को आश्वासन दिया और दारुवर्मा की हत्या करने की युक्ति सोचकर अपनी वल्लभा से कहा—तरुणि, तुम्हें चाहने वाले उस दुष्टहृदय दारुवर्मा को मारने के लिए मैं एक सरल उपाय सोच रहा हूँ। तुम अपने प्रामाणिक जनों द्वारा गाँव में यह अफवाह फैला दो कि—एक सिद्धतापस ने कहा है—(२) "बालचन्द्रिका के ऊपर एक यक्ष रहता है। उसके सौन्दर्याभिलाषी एवं सम्बन्ध करने योग्य जो भी साहसी रतिमन्दिर में उस यक्ष को परास्त कर एक सहेली के साथ बैठी उस मृगाक्षी से वार्तारूपी

संशयाकारपयोधरा विवाहनीयेति सिद्धेनैकेनावादीति पुरजनस्य पुरतो भवदीयैः सत्यवाक्यैर्जनैरसकृत्कथनीयम् । (१) तदनु दारुवर्मा वाक्यानीत्थविधानि श्रावं श्रावं तूष्णीं यदि भिया स्थास्यति तर्हि वरम्, यदि वा दौर्जन्येन त्वया सङ्गमङ्गीकरिष्यति, तदा स भवदीयैरित्थं वाच्यः—

(२) 'सौम्य, दर्पसारवसुधाधिपामात्यस्य भवतोऽस्मन्निवासे साहसकरणमनुचितम् । पौरजनसाक्षिकं भवन्मन्दिरमानीतया अनया तोयजाक्ष्या

क्षेमम् अस्यास्तीति, अक्षतविग्रहः । निर्गमिष्यति = निःसरिष्यति । तेन = पुरुषविशेषेण । चक्रवाकसंशयाकारपयोधरा—चक्रवाके = पक्षिविशेषे संशयः = सन्देहः येन तादृशः आकारः = स्वरूपम् ययोः तादृशौ पयोधरौ = कुचौ यस्याः सा (बालचन्द्रिका) । विवाहनीया = परिणेया । इति सिद्धेन = तापसेन । एकेन = केनचित् । अवादि = अभाषि । इति पुरजनस्य = ग्रामवासिनः पुरतः = अग्रे नागरान् प्रतीत्यर्थः । भवदीयैः = भवत्पक्षावलम्बिभिः । सत्यवाक्यैः = सत्यवक्तृभिः प्रामाणिकैः इत्यर्थः । जनैः = मनुष्यैः । असकृत् = वारं वारम् । कथनीयम् = भणनीयम् ।

(१) तदनु = तत्पश्चात् । दारुवर्मा = मानसारभागिनेयः । इत्थंविधानि = (अनेन प्रकारेणेति इत्थम्) ईदृक्प्रकाराणि 'विधा विधौ प्रकारे च' इत्यमरः । वाक्यानि = वचनानि । 'सुप्तिङन्तचयो वाक्यम्' इत्यमरः । श्रावं श्रावम् = श्रुत्वा (वीप्सायां द्विरुक्तिः) । यदि भिया = भयेन । तूष्णीम् = मौनम् 'मौने तु तूष्णीम्' इत्यमरः । स्थास्यति = स्थिरो भविष्यति । तर्हि = तदा । वरम् = श्रेष्ठम् । यदि वा = अथवा (पक्षान्तरे) दौर्जन्येन (हेतौ तृतीया) दुर्जनस्य भावः तेन दुर्जनतया । त्वया = भवत्या सह । सङ्गम् = प्रीतिम् । अङ्गीकरिष्यति = स्वीकरिष्यति । तदा सः = दारुवर्मा । भवदीयैः = त्वदीयैः जनैरिति शेषः । इत्थम् = वक्ष्यमाणप्रकारेण । वाच्यः = कथनीयः ।

(२) सौम्य = सुभग, सम्बोधनपदमेतत् । दर्पसारवसुधाधिपामात्यस्य = दर्पसारश्चासौ वसुधाधिपश्चेति तस्य अमात्यस्य = दर्पसारराजस्य मन्त्रिणः । भवतः = तव दारुवर्मणः । अस्मिन्निवासे = अस्माकम् गेहे । साहसकरणम् = साहसिककार्यानुष्ठानम् । अयोग्यम् = अनुचितम् । पौरजनसाक्षिकम्—पौराः = ग्रामवासिनः साक्षिणः = प्रत्यक्षद्रष्टारः यस्मिन् तत् यथा स्यात्तथा ग्रामीणानां समक्षम् इति यावत् । भवन्मन्दिरम्—भवतः = तव मन्दिरम् = भवनम् । आनीतया = प्राप्तया । तोयजाक्ष्या—तोयजे = पुण्डरीके इव अक्षिणी यस्याः तया

अमृतपान का सुख प्राप्त कर सकुशल लौट आयेगा उसी के साथ चक्रवाकों के सन्देह को उत्पन्न करने वाले स्तनों वाली बालचन्द्रिका का विवाह होगा" (१) इस प्रकार की बातें सुनकर यदि दारुवर्मा डर कर चुप बैठ गया फिर क्या कहना ? यदि इस पर भी दुर्जनतावश वह तुम्हारी पीछा न छोड़े तो तुम्हारे आत्मीयजन उससे पुनः इस प्रकार कहें—

(२) "सौम्य पृथ्वीपति दर्पसार के आप मन्त्री हैं । हमारे घर में आप का ऐसा साहस उचित नहीं । ग्रामजनों के समक्ष आप इसे अपने घर लिवा ले जायँ और अपने घर में इस

सह क्रीडन्नायुष्मान्यदि भविष्यति तदा परिणीय तरुणीं मनोरथान्निर्विश' इति ।

(१) सोऽप्येतदङ्गीकरिष्यति । त्वं सखीवेषधारिणा मया सह तस्य मन्दिर गच्छ । (२) अहमेकान्तनिकेतने मुष्टिजानुपादाघातैस्तं रभसान्निहत्य पुनरपि वयस्यामिषेण भवतीमनु निःशङ्कं निर्गमिष्यामि ।

(३) तदेनमुपायमंगीकृत्य विगतसाध्वसलज्जा भवज्जनकजननीसहोदराणां पुरत आवयोः प्रेमातिशयमाख्याय सर्वथास्मत्परिणयकरणे ताननुनयेः ।

पद्मनेत्रया । तया = बालचन्द्रिकया । सह = साकम् । क्रीडन् = विहरन् । यदि । आयुष्मान् = कुशली । भविष्यति = निर्गमिष्यति भवानिति शेषः । तदा तरुणीं = युवतीम् । परिणीय = विवाहं कृत्वा । मनोरथान् = अभिलाषान् । निर्विश = उपभोगं कुरु । अन्यथा नेति भावः ।

(१) सः = दारुवर्मा अपि । एतत् = नागरोक्तम् । (यदि) अङ्गीकरिष्यति = स्वीकरिष्यति (तदा) । त्वम् = बालचन्द्रिका । सखीवेषधारिणा = (वेषम् धरतीति वेषधारी) इति तेन । मया = पुष्पोद्भवेन सह । तस्य = दारुवर्मणः । मन्दिरम् = अगारम् । गच्छ = व्रज ।

(२) अहम् = पुष्पोद्भवः । एकान्तनिकेतने = एकान्ते एकस्य अन्तो यस्मिन् तस्मिन् = निर्जने । निकेतने = गेहे । मुष्टिजानुपादाघातैः = मुष्ट्या जानुना = ऊरुपर्वेण पादेन = चरणेन च ये आघाताः = प्रहाराः तैः । रभसात् = वेगात् । निहत्य = मारयित्वा । पुनः = भूयः अपि । वयस्यामिषेण = सखीच्छलेन । भवतीम् = त्वाम् । अनु = पश्चात् तव । निःशङ्कम् = शङ्कायाः निर्गतम् सन्देहशून्यम् यथा स्यात्तथा । निर्गमिष्यामि = निष्क्रमिष्यामि ।

(३) तत् एनम् = अमुम् । उपायम् = साधनम् । अङ्गीकृत्य = स्वीकृत्य । विगतसाध्वसलज्जा (त्वम्) साध्वसम् = भयञ्च लज्जा = त्रपा च साध्वसलज्जे विगते = विनष्टे साध्वसलज्जे यस्याः सा (त्वम्) भवज्जनकजननीसहोदराणाम्—जनकः = पिता च जननी = माता च सहोदरः = भ्राता चेति द्वन्द्वे, भवत्याः = तव जनकजननीसहोदराः इति तेषाम् । पुरतः = समक्षे, आवयोः = तव च मम चेति । प्रेमातिशयम्—प्रेम्णः = प्रीतेः अतिशयम् = आधिक्यम् । आख्याय = कथयित्वा । सर्वथा = सर्वप्रकारेण अस्मत्परिणयकरणे = आवयोर्विवाहकरणे । तान् = पित्रादीन् । अनुनयेः = (अनुपूर्वकात् णीञ् प्रापणे धातोर्विधिलिङ् मध्यमपुरुषैकवचने) अनुरुन्ध्याः ।

कमलाक्षी के साथ बिहार करते हुए यदि आप आयुष्मान् निकलें तो इसके साथ विवाह कर आप अपने मनोरथ पूर्ण करें" । (१) वह भी इस बात को स्वीकार करेगा । तब तुम सखी वेषधारी मेरे साथ उसके घर चली चलना ।

(२) मैं एकान्त घर में मौका पाते ही घूसा, लात और घुटनों के प्रहार से उसे मार डालूँगा और फिर सखी के रूप में तुम्हारे पीछे निःशङ्क निकल जाऊँगा । (३) इस उपाय को स्वीकार कर भय और लज्जा छोड़कर अपने माता-पिता और सोदरों से हम दोनों के प्रेमातिशय की बात कहना और राजी करना कि वे हम दोनों का विवाह कर दें ।

(१) तेऽपि वशसपल्लावण्याढ्याय यूने मह्यं त्वां दास्यन्त्येव। (२) दारुवर्मणो मारणोपायं तेभ्यः कथयित्वा तेषामुत्तरमाख्येयं मह्यम्' इति।

(३) सापि किञ्चिदुत्फुल्लसरसिजानना मामब्रवीत्—'सुभग, क्रूरकर्माणं दारुवर्माणं भवानेव हन्तुमर्हति। (४) तस्मिन्हते सर्वथा युष्मन्मनोरथः फलिष्यति। एव क्रियताम्। भवदुक्तं सर्वमहमपि तथा करिष्ये' इति मामसकृद्विवृत्तवदना विलोकयन्ती मन्दं मन्दमगारमगात्। (५) अहमपि बन्धु-

---

(१) ते=पित्रादयः अपि। वंशसंपल्लावण्याढ्याय—वंशसम्पदा=कुलगौरवेण लावण्येन=सौन्दर्येण च आढ्याय=युक्ताय। यूने=तरुणाय। मह्यम्=पुष्पोद्भवाय। त्वाम्=बालचन्द्रिकाम्। दास्यन्ति=वितरिष्यन्ति। एव इति निश्चयार्थकोऽव्ययः।

(२) दारुवर्मणः=मानसारभागिनेयस्य। मारणोपायम्—मारणस्य=हननस्य उपायम्=साधनम् तेभ्यः=पौरेभ्यः पित्रादिभ्यो वा। कथयित्वा=आख्याय। तेषाम्=नागराणाम् पित्रादीनाम् वा। उत्तरम्=प्रतिवाक्यम् 'प्रतिवाक्योत्तरे समे' इत्यमरः। मह्यम्=पुष्पोद्भवाय। आख्येयम्=कथनीयम्। इति।

(३) सा=बालचन्द्रिका। अपि। किञ्चित्=ईषत्। उत्फुल्लसरसिजानना—उत्फुल्लम्=विकसितम् सरसिजम्=कमलम् इव आननम्=मुखम् यस्याः सा। माम्=पुष्पोद्भवम्। अब्रवीत्=अवोचत्। सुभग=सौम्य। क्रूरकर्माणम्=घातुकम्। दारुवर्माणम्। भवान्=त्वम् एव हन्तुम्। अर्हति=समर्थः।

(४) तस्मिन्=दारुवर्मणि। हते=मृते। सर्वथा=सर्वप्रकारेण। युष्मन्मनोरथः=युष्माकम् मनोरथः=अभिलाषः। फलिष्यति=सिद्धिम् यास्यति। एवम्=यथोक्तम्। क्रियताम्=विधीयताम्। भवदुक्तम्—भवता उक्तम्=कथितम्। सर्वम्=साकल्येन अहमपि=बालचन्द्रिकापि। तथा=तेन प्रकारेण यथोपदिष्टम्। करिष्ये=विधास्यामि। इति (अभिधाय)। विवृत्तवदना—विवृत्तम्=परावृत्तम् वदनम्=आननम् यस्याः सा असकृत्=मुहुः मुहुः। माम्=पुष्पोद्भवम्। विलोकयन्ती=पश्यन्ती। मन्दं मन्दम्=शनैः शनैः अगारम्=भवनम्। अगात्=गतवती।

(५) अहमपि=पुष्पोद्भवोऽपि। बन्धुपालम्=चन्द्रपालजनकम्। उपेत्य=प्राप्य। शकुन-

---

(१) वे भी कुल, सौन्दर्य से युक्त मुझ युवक को देख कर अवश्य ही तुम्हारा विवाह मेरे साथ कर देंगे। (२) दारुवर्मा का मारणोपाय अपने घर के लोगों को बताकर उनका उत्तर मुझे बताना।

(३) उपर्युक्त मेरी बातें सुनकर उसका मुखकमल खिल उठा। उसने मुझसे कहा—सुभग, दुष्ट दारुवर्मा को मारने के लिए आपही समर्थ हो सकते हैं। (४) उसके मरने पर अवश्य आपका मनोरथ पूर्ण होगा। आप ऐसा ही करें। आपने जैसा कहा है उसी प्रकार मैं भी करूँगी। ऐसा कह कर बार बार पलट कर मुझे देखती हुई वह धीरे धीरे घर लौट गयो। (५) मैं भी बन्धुपाल के समीप आ गया। शकुनविद्या को जानने वाला उसने बताया कि

[illegible]मुपेत्य शकुनज्ञात्तस्मात् 'त्रिंशद्दिवसानन्तरमेव भवत्संगः संभविष्यति' इत्यश्रृणवम् ।

(१) तदनु मदनुगम्यमानो बन्धुपालो निजावासं प्रविश्य मामपि निलयाय विससर्ज ।

(२) मन्मायोपायवागुरापाशलग्नेन दारुवर्मणा रतिमन्दिरे रन्तुं समाहूता बालचन्द्रिका त गमिष्यन्ती दूतिकां मन्निकटम प्रेषितवती ।

(३) अहमपि मणिनूपुरमेखलाकङ्कणकटकताटङ्कहारक्षौमकज्जलं वनि-

ज्ञात्—जनातीति ज्ञः, शकुनस्य = निमित्तस्य ज्ञः = तस्मात् बन्धुपालात् । त्रिंशद्दिवसानन्तरम् = त्रिंशच्च ते दिवसाः चेति तेषामनन्तरम् = मासादूर्ध्वम् एव । भवत्सङ्गः—भवता = राजवाहनेन सह सह सङ्गः = मिलनम् । संभविष्यति = सम्यक् प्रकारेण भविष्यति । इति अश्रृणवम् = श्रुतवान् ।

(१) तदनु = तत्पश्चात् । मदनुगम्यमानः—मया = पुष्पोद्भवेन । अनुगम्यमानः—अनु = पश्चात् गम्यते = स्रियते इति अनुगम्यमानः = अनुस्रियमाणः । बन्धुपालः = शकुनवक्ता । निजावासम्—निजस्य = स्वस्य आवासम् = गृहम् । प्रविश्य । माम् = पुष्पोद्भवम् । निलयाय = आलयाय आवासायेत्यर्थः 'निकाय्यनिलयालयाः' इत्यमरः । विससर्ज = तत्याज ।

(२) मन्मायोपायवागुरापाशलग्नेन—मम = पुष्पोद्भवस्य मायया = छलेन (निर्मितः) यः उपायः = साधनम् स एव वागुरा = मृगबन्धनी 'वागुरा मृगबन्धनी' इत्यमरः तद्रूपो यः पाशः = रज्जुः तस्मिन् लग्नः = संसक्तः तेन । दारुवर्मणा = मानसारभागिनेयेन । रतिमन्दिरे = सुरत-भवने । रन्तुम् = क्रीडितुम् । समाहूता = आहूता । बालचन्द्रिका । तम् = दारुवर्मसमीपम् । गमिष्यन्ती = प्रस्थास्यमाना । मन्निकटम् = मत्समीपम् । दूतिकाम् = चेटीम् । अभिप्रेषितवती = प्राहिणोत् ।

(३) अहमपि = पुष्पोद्भवोऽपि । मणिनूपुर–मेखला–कङ्कण–कटक–ताटङ्क–हार–क्षौम–कज्जलम्—मणिना निर्मितः नूपुरः मणिनूपुरः = मञ्जीरश्च 'मञ्जीरो नूपुरोऽस्त्रियाम्' इत्यमरः । मेखला = काञ्ची च 'मेखला काञ्ची सप्तकी' इत्यमरः कङ्कणम् = करभूषणम् च कटकः = वलयश्च ताटङ्कम् = कर्णभूषणम् च हारः = मुक्तावली च क्षौमम् = दुकूलम् च कज्जलम् = अञ्जनञ्चेति

तीस दिनों के बाद आप का सङ्ग होगा। (१) पश्चात् मुझसे अनुगमन किया हुआ बन्धुपाल अपने घर पहुँच कर मुझे भी अपने घर जाने की अनुमति दी।

(२) मेरी माया से निर्मित उपाय रूप मृगबन्धिनी में दारुवर्मा फँस गया। उसने रति मन्दिर में रमण करने के लिए बालचन्द्रिका को बुलाया। जब वह जाने को तैयार हुई तब मेरे पास उसने अपनी दासी भेज दी। मैं भी मनोहर वेष को धारण कर स्त्रियोचित आभूषण समूह जैसे—मणिजटित पायल, करधनी, कङ्गन, बिजायठ, कनपासा, हार, रेशमी साड़ी और

तायोग्यं मण्डनजातं निपुणतया तत्तत्स्थानेषु निक्षिप्य सम्यगङ्गीकृतमनोज्ञवेषो वल्लभया तया सह तदागारद्वारोपान्तमगच्छम् ।

(१) द्वाःस्थकथितास्मदागमनेन सादरं विहिताभ्युद्गतिना तेन द्वारोपान्तनिवारिताशेषपरिवारेण मदन्विता बालचन्द्रिका संकेतागारमानीयत ।

(२) नगरव्याकुलां यक्षकथां परीक्षमाणो नागरिकजनोऽपि कुतूहलेन दारुवर्मणः प्रतीहारभूमिमगमत् ।

एतेषाम् समाहारे क्लीबत्वं एकवचनं च । वनितायोग्यम्=स्त्रीजनोचितम् । मण्डनजातम्=भूषणसमूहम् । निपुणतया—निपुणस्य भावः निपुणता तया=कौशलेन । तत्तत्स्थानेषु=तेषु तेषु अङ्गेषु । निक्षिप्य=संस्थाप्य परिधायेति यावत् । सम्यक् अङ्गीकृतमनोज्ञवेषः—सम्यक्=सुष्ठु अङ्गीकृतः=स्वीकृतः मनोज्ञः=मञ्जुलः वेषः=प्रसाधनम् येन सः (अहम्) । वल्लभया=प्रेमिकया । तया=बालचन्द्रिकया सह । तदागारद्वारोपान्तम्—तस्य दारुवर्मणः आगारस्य=भवनस्य द्वारम्=प्रतीहारः तस्य उपान्तम्=समीपम् । अगच्छम्=प्राप्तवम् ।

(१) द्वाःस्थकथितास्मदागमनेन=द्वाःस्थेन=द्वारपालेन कथितम्=निवेदितम् आवयोः आगमनम् यस्मै तेन । सादरम्—आदरेण=सत्कारेण सहितम् यथा स्यात्तथा । विहिता=कृता अभ्युद्गतिः=अभ्युत्थानं येन तेन कृतप्रत्युद्गतिना । तेन=दारुवर्मणा । द्वारोपान्तनिवारिताशेषपरिवारेण—द्वारोपान्ते=प्रतीहारप्रदेशे निवारितः अशेषः=सम्पूर्णः परिवारः=भृत्यवर्गः परिजनः इत्यर्थः येन तेन । मदन्विता—मया=पुष्पोद्भवेन अन्विता=युक्ता सहितेति यावत् । बालचन्द्रिका सङ्केतागारम्=रतिमन्दिरम् । आनीयत=(आङ्पूर्वकात् णीञ् प्रापणे धातोः कर्मणि लङ्) ।

(२) नगरव्याकुलाम्—नगरे=पुरे व्याकुलाम्=प्रसृताम् व्याप्तामित्यर्थः प्रचारितामिति यावत् । यक्षकथाम्=पिशाचकथाम् । परीक्षमाणः—परीक्षते=संपश्यति इति परीक्षमाणः=पश्यन् । नागरिकजनः—नगरे=पुरे भवः नागरिकः स चासौ जनश्च=पुरजनः । अपि कुतूहलेन=उत्कण्ठया । दारुवर्मणः । प्रतीहारभूमिम्=द्वारदेशम् । अगमत्=गतः ।

कज्जल—को उन-उन अङ्गों में चतुरता पूर्वक धारण कर प्रियतमा बालचन्द्रिका के साथ दारुवर्मा के गृह-द्वार के समीप गया ।

(१) द्वारपालों ने हम लोगों के आने की खबर दी । द्वारपाल से खबर पाकर दारुवर्मा सादर अगवानी करने के लिए आगे आया और द्वार के समीप ही समस्त परिवार को भीतर जाने से रोक दिया । केवल मेरे साथ आगे चलती हुई बालचन्द्रिका को पूर्व निर्दिष्ट रतिमन्दिर में ले गया ।

(२) 'बालचन्द्रिका के ऊपर यक्ष का निवास है' ऐसी कथा नगर में फैल चुकी थी अतः उसकी परीक्षा के लिये नगरवासी कौतूहलवश दारुवर्मा को ड्योढ़ी पर एकत्र हो गये ।

दारुवर्मणो वधः

(१) विवेकशून्यमतिरसौ रागातिरेकेण रत्नखचितहेमपर्यङ्के हंसतूलगर्भशयनमानीय तरुणीं, तस्यै मह्यं तमिस्रासम्यगनवलोकितपुभावाय मनोरमस्त्रीवेषाय च (२) चामीकरमणिमयमण्डनानि सूक्ष्माणि चित्रवस्त्राणि कस्तूरिकामिलितं हरिचन्दन कर्पूरसहितं ताम्बूलं सुरभोणि कुसुमानीत्यादिवस्तुजातं समर्प्य मुहूर्तद्वयमात्रं हासवचनैः संलपन्नतिष्ठत् ।

---

(१) विवेकशून्यमतिः—विवेकेन = सदसद्विचारेण शून्या = रहिता मतिः = बुद्धिः यस्य सः । असौ = दारुवर्मा । रागातिरेकेण—रागस्य = अनुरागस्य अतिरेकेण = आधिक्येन । रत्नखचितहेमपर्यङ्के—रत्नैः = मणिभिः खचितः = जटितः यः हेम्नः = सुवर्णस्य 'स्वर्णं कनकं हिरण्यं हेम हाटकम्' इत्यमरः पर्यङ्कः = पल्यङ्कः 'शयनं मञ्चपर्यङ्कपल्यङ्का' इत्यमरः तस्मिन् । हंसतूलगर्भशयनम्—हंसतूलः = हंसेन तुल्यः धवलः यः तूलः स गर्भे = अन्तराले यस्य एवं भूतम् शयनम् = शय्याम् (शय्यायामित्यर्थः) तरुणीम् = बालचन्द्रिकाम् । आनीय = आरोप्य । (णीञ् धातोः द्विकर्मकतया 'शयनम्' इत्यस्यापि कर्मत्वम्) तस्यै = बालचन्द्रिकायै । तमिस्रासम्यगनवलोकितपुंभावाय— तमिस्रया = रात्र्या सम्यक् = सुष्ठु स्पष्टमित्यर्थः अनवलोकितः = अलक्षितः पुंभावः = पुरुषत्वं यस्य तस्मै । मनोरमस्त्रीवेषाय = मनोरमः अतिसुन्दरः स्त्रीवेषः स्त्रीगणोचितं प्रसाधनं यस्य तस्मै । मह्यं = स्त्रीवेषधारिणे पुष्पोद्भवाय च ।

(२) चामीकरमणिमयमण्डनानि—चामीकरमणिमयानि—चामीकरं = सुवर्णं 'चामीकरं जातरूपं महारजतकाञ्चने' इत्यमरः मणिः = रत्नम् ताभ्यां प्रचुराणि मण्डनानि = आभूषणानि । सूक्ष्माणि = श्लक्ष्णानि 'सूक्ष्मं श्लक्ष्णं दभ्रं कृशं तनु' इत्यमरः । चित्रवस्त्राणि = आश्चर्यजनकानि वासांसि (छापे की साड़ी भाषायां) । कस्तूरिकामिलितम्—कस्तूरिकया = मृगमदेन मिलितम् = वासितम् । हरिचन्दनम् = सुगन्धि वस्तुविशेषः । कर्पूरसहितं—कर्पूरेण = घनसारेण सहितम् = युक्तम् । ताम्बूलम् । सुरभीणि = सुगन्धीनि । कुसुमानि = पुष्पाणि । इत्यादि = प्रभृति । वस्तुजातम् = द्रव्यसमूहम् । समर्प्य = दत्त्वा । मुहूर्तद्वयमात्रम् = चतुर्विंशतिक्षणमात्रम् 'क्षणस्ते तु मुहूर्तो द्वादशास्त्रियाम्' इत्यमरः । हासवचनैः = हास्यवाक्यैः । 'हसः । हासो हास्यं च' इत्यमरः । संलपन् = मिथः आलपन् । अतिष्ठत् ।

---

(१) विवेक ने दारुवर्मा का साथ छोड़ दिया था। वासना अपना कब्जा जमा चुकी थी जिससे वह अन्धा बन गया था। हंस के समान स्वच्छ रूई से भरे गद्दों वाले रत्नजटित सोने के पलंग पर उस तरुणी बालचन्द्रिका को बिठा कर उसको तथा मनोरम स्त्री वेष धारण करने वाले मुझको उसने (२) सुवर्ण और मणियों के बने आभूषण, सूक्ष्म छापे की साड़ी, कस्तूरी मिले चन्दन, कपूर युक्त पान और सुगन्धित पुष्पादि वस्तु समूह दिये। रात्रि होने के कारण मेरे पुंभाव को उसने नहीं पहचाना। फिर कुछ देर हँसी मजाक में समय बिताया।

(१) ततो रागान्धतया सुमुखीकुचग्रहणे मतिं व्यधत्त । (२) रोषारुणितोऽहमेनं पर्यङ्कतलान्निःशङ्को निपात्य मुष्टिजानुपादाघातैः प्राहरम् ।

(३) नियुद्धरभसविकलमलंकारं पूर्ववन्मेलयित्वा भयकम्पितां नताङ्गीमुपलालयन्मन्दिराङ्गणमुपेतः साध्वसकम्पित इवोच्चैरकूजमहम्—'हा बालचन्द्रिकाधिष्ठितेन घोराकारेण यक्षेण दारुवर्मा निहन्यते ।

(४) सहसा समागच्छत पश्यतेमम्' इति । (५) तदाकर्ण्य मिलिता जनाः

---

(१) ततः = तदनन्तरम् । रागान्धतया—रागेण = अनुरागेण = मदनजनितविषयाभिलाषेणेति यावत् अन्धः = मत्तः तस्य भावः तेन हेतुना । सुमुखीकुचग्रहणे = सुष्ठु मुखं यस्यास्तस्या बालचन्द्रिकायाः कुचग्रहणे = स्तनपीडने । मतिम् = बुद्धिम् । व्यधत्त = अकरोत् ।

(२) रोषारुणितः—रोषेण = क्रोधेन अरुणितः = रक्तवर्णः । अहम् = पुष्पोद्भवः । एनम् = दारुवर्माणम् । पर्यङ्कतलात् = पल्यङ्कात् । निःशङ्कः = शङ्कारहितः । निपात्य । मुष्टिजानुपादाघातैः—मुष्टेः जानुनोः = ऊरुपर्वणोः पादयोः चरणयोः च ये आघाताः = प्रहाराः तैः । प्राहरम् = ताडितवान् व्यनाशयमित्यर्थः ।

(३) नियुद्धरभसविकलम्—नियुद्धे = बाहुयुद्धे 'नियुद्धं बाहुयुद्धेऽथ' इत्यमरः यः रभसः = वेगः 'रभसो वेगहर्षयोः' इत्यमरः तेन विकलम् = विपर्यस्तम् स्थानभ्रष्टमित्यर्थः । अलङ्कारम् = भूषणम् । पूर्ववत् = यथावत् । मेलयित्वा = संस्थाप्य । भयकम्पिताम्—भयेन = भीत्या कम्पिता = वेपमाना ताम् । नताङ्गीम्—नतम् = नम्रीभूतम् अङ्गम् = अवयवः यस्याः सा ताम् = बालचन्द्रिकाम् । उपलालयन् = सान्त्वयन् । मन्दिराङ्गणम्—मन्दिरस्य = भवनस्य अङ्गणम् = चत्वरम् । उपेतः = प्राप्तः आगतः इत्यर्थः । साध्वसकम्पितः—साध्वसेन = भयेन कम्पितः = वेपितः इव । उच्चैः = तारस्वरेण । अहम् = पुष्पोद्भवः । अकूजम् = अव्यक्त शब्दमकरवम् आक्रन्दमित्यर्थः । हा = इति शोके 'हा विषादशुगर्तिषु' इत्यमरः बालचन्द्रिकाधिष्ठितेन = बालचन्द्रिकाम् आक्रम्य स्थितेन । घोराकारेण—घोरः = भयङ्करः आकारः = स्वरूपम् यस्य तेन । यक्षेण = पिशाचेन । निहन्यते = विनाश्यते ।

(४) सहसा = झटिति शीघ्रम् इत्यर्थः । समागच्छत = आयात इमम् = हन्यमानम् । पश्यत यूयमिति शेषः ।

(५) तदाकर्ण्य—तत् = क्रन्दनम् आकर्ण्य = श्रुत्वा । मिलिताः = समवेताः उपस्थिताः ।

---

(१) उसके बाद काम की पीड़ा से अन्ध होकर दारुवर्मा ने बालचन्द्रिका के स्तनों को पकड़ने के लिए उधत हुआ । (२) उसकी इस चेष्टा को देखकर मैं क्रोध से लाल हो गया और निःशङ्क दारुवर्मा को पलङ्ग से नीचे पटक कर लात मुक्का और घुटनों के प्रहार से खूब मारा । (३) बाहुयुद्ध के वेग से मेरे आभूषण बिखर गये (अस्त-व्यस्त हो गये) थे । मैंने उन्हें पूर्व की तरह ठीक किया और भय से काँपती प्रिया को धैर्य बंधाकर मैं आंगन में आ गया और जोर से चिल्लाने लगा । मेरा स्वर भय से कांपने जैसा था । हाय, बालचन्द्रिका के सिर चढ़ा भयङ्कर यक्ष दारुवर्मा की हत्या कर रहा है । (४) लोगों शीघ्र दौड़ो और इसको देखो ।

(५) मेरी उपर्युक्त चिल्लाहट को सुनकर वहाँ उपस्थित सभी आँखों में आँसू उछालते

समुद्यद्वाष्पा हा-हा-निनादेन दिशो बधिरयन्तः 'बालचन्द्रिकामधिष्ठितं यक्षं बलवन्तं शृण्वन्नपि दारुवर्मा मदान्धस्तामेवायाचत । (१) तदसौ स्वकीयेन कर्मणा निहतः, किं तस्य विलापेन' इति मिथो लपन्तः प्राविशन् ।

(२) कोलाहले तस्मिंश्चटुललोचनया सह नैपुण्येन सहसा निर्गतो निजावासमगाम् ।

[(३) ततो गतेषु कतिपयदिनेषु पौरजनसमक्षं सिद्धादेशप्रकारेण विवाह्य तामिन्दुमुखीं पूर्वकल्पितान्सुरतविशेषान्यथेष्टमन्वभूवम् ।

जनाः = लोकाः । समुद्यद्वाष्पाः—समुद्यत् = उच्छलत् वाष्पम् = अश्रु येषां ते । हा हा निनादेन = हा हा इति शब्देन । दिशः = काष्ठाः 'दिशस्तु ककुभः काष्ठाः' इत्यमरः । बधिरयन्तः = पूरयन्तः अन्यशब्दग्रहणे असमर्थाः कुर्वन्त इत्यर्थः । दिश इति द्वितीयाबहुवचनस्य रूपम् । 'बालचन्द्रिकामधिष्ठितम् = बालचन्द्रिकामाक्रम्य स्थितम् । बलवन्तम् यक्षम् शृण्वन् अपि । मदान्धः—मदेन = विषयाभिलाषेण अन्धः = कर्तव्याकर्तव्यशून्यः । दारुवर्मा । तामेव = बालचन्द्रिकामेव । अयाचत = अभ्यलषत् ।

(१) तदसौ तस्मात् असौ = दारुवर्मा । स्वकीयेन = स्वीयेन कर्मणा = व्यापारेण स्वदोषेणेत्यर्थः । निहतः = मारितः । तस्य विलापेन किम् ? इति मिथः = परस्परम् । लपन्तः = कथयन्तः । प्राविशन् ।

(२) तस्मिन् कोलाहले = कलकले । चटुललोचनया = चञ्चललोचनया बालचन्द्रिकया सह नैपुण्येन = कौशलेन । सहसा = सत्वरम् । निर्गतः = निःसृतः (अहम्) निजावासम्—निजस्य = स्वस्य आवासम् = गृहम् । अगाम् = अगमम् ।

(३) ततः = तदनन्तरम् गतेषु = व्यतीतेषु । कतिपयदिनेषु = कतिचिद्दिनेषु । पौरजनसमक्षम्—पौरजनानाम् = नगरवासिनाम् समक्षम् = सम्मुखे । सिद्धादेशप्रकारेण—सिद्धस्य = तपस्विनः आदेशप्रकारेण = आज्ञानुसारेण । तामिन्दुमुखीम् = तां चन्द्रमुखीम् । विवाह्य = परिर्णीय । पूर्वसंकल्पितान्—पूर्वम् = प्राक् सङ्कल्पिताः = मनसि निश्चिताः तान् सुरतविशेषान् = सम्भोगान् । यथेष्टम् = यथेच्छम् । अन्वभूवम् (अहम्) = अनुभूतवान् ।

हुए और हाहाकार शब्दा से दिशाओं को बहरी करते हुए दौड़े और कहने लगे—'बालचन्द्रिका के ऊपर यक्ष का निवास है' इस बात को जानते हुए भी इस मदान्ध ने नहीं माना और उसी से प्रेम करना चाहा। (१) इसलिए यह अपने ही कृत्य से मरा है। इसके लिए विलाप (रोने धोने से क्या। इस प्रकार परस्पर बोलते हुए वे लोग भीतर आए।

(२) उस कोलाहल में चञ्चल नेत्रों वाली बालचन्द्रिका के साथ कौशल से शीघ्र निकल कर मैं अपने आवासस्थान को चला गया।

(३) पश्चात् कुछ दिन बीतने पर सिद्धादेश के अनुसार नगरवासियों के समक्ष मैंने उस चन्द्रवदना बालचन्द्रिका के साथ विवाह कर लिया और पूर्व सङ्कल्पित (मनोभिलषित)

(१) बन्धुपालशकुननिर्दिष्टे दिवसेऽस्मिन्निर्गत्य पुराद् बहिर्वर्तमानो नेत्रोत्सवकारि भवदवलोकनसुखमप्यनुभवामि' इति ।

(२) एवं मित्रवृत्तान्तं निशम्याम्लानमानसो राजवाहनः स्वस्य च सोमदत्तस्य च वृत्तान्तमस्मै निवेद्य सोमदत्तम् 'महाकालेश्वराराधनानन्तरं भवद्वल्लभां सपरिवारां निजकटकं प्रापय्यागच्छ' इति नियुज्य पुष्पोद्भवेन सेव्यमानो भूस्वर्गायमानमवन्तिकापुरं विवेश । (३) तत्र 'अयं मम स्वामिकुमारः' इति बन्धुपालादये बन्धुजनाय कथयित्वा तेन राजवाहनाय बहुविधां सपर्यां कार-

---

(१) बन्धुपालशकुननिर्दिष्टे—बन्धुपालस्य शकुनेन निर्दिष्टे=कथिते । दिवसे=दिने । अस्मिन्=प्रदेशे । निर्गत्य=निःसृत्य । पुरात्=नगरात् । बहिः । वर्तमानः=तिष्ठन् । नेत्रोत्सवकारि=नेत्रानन्दकरम् । भवदालोकनसुखम्—भवतः राजवाहनस्य आलोकनेन=दर्शनेन यत् सुखम्=आनन्दम् । अपि । अनुभवामि=साक्षात्करोमि ।

(२) एवम्=इति उक्तपरामर्शे अव्ययम् । मित्रवृत्तान्तम्—मित्रस्य=सख्युः वृत्तान्तम्=प्रवृत्तिम् । निशम्य=श्रुत्वा । अम्लानमानसः—न म्लानम् अम्लानम्=धवलम् मानसम्=चित्तम् यस्य सः । राजवाहनः । स्वस्य=निजस्य । सोमदत्तस्य च वृत्तान्तम्=उदन्तम् । अस्मै=पुष्पोद्भवाय । निवेद्य=कथयित्वा महाकालेश्वराराधनानन्तरम्—महाकालेश्वरस्य=उज्जयिन्याम् स्थितस्य शिवस्य—आराधनम्=पूजनम् तस्य अनन्तरम्=पश्चात् । भवद्वल्लभां=भवदीयाम् वल्लभाम्=पत्नीम् । सपरिवाराम्—परिवारेण=परिजनेन सहिताम् । निजकटकम्=स्ववासस्थानम् । प्रापय्य=संगमय्य इति सोमदत्तम् नियुज्य=आदिश्य । पुष्पोद्भवेन सेव्यमानः=आराध्यमानः । भूस्वर्गायमानम्—भुवि=पृथिव्याम् स्वर्ग इवाचरत् इति=स्वर्गसदृशम् । अवन्तिकापुरम् विवेश=प्रविष्टः । (३) तत्र=अवन्तिकापुर्याम् 'अयम्=असौ । मम=पुष्पोद्भवस्य । स्वामिकुमारः—स्वामिनः=प्रभोः कुमारः=पुत्रः' इति बन्धुपालादये=बन्धुपालः आदिः यस्य तस्मै । बन्धुजनाय=स्वजनाय 'बन्धुस्वस्वजनाः समाः' इत्यमरः । कथयित्वा=निवेद्य । तेन बन्धुजनेन । राजवाहनाय बहुविधाम्=बहवो विधाः यस्याः सा ताम् । सपर्याम्=

क्रीडाविशेषों का यथेच्छ भोग किया । (१) आज बन्धुपाल के बताये शकुन का दिन था । मैं इस बगीचे में निकल आया । नगर के बाहर होने के कारण नेत्रों को आनन्द देने वाला आपका दर्शनसुख का भो अनुभव कर रहा हूँ ।

(२) इस प्रकार मित्र का समाचार सुनकर राजवाहन बहुत प्रसन्न हुआ । उसने अपना और सोमदत्त का वृत्तान्त पुष्पोद्भव को कह सुनाया । फिर सोमदत्त से कहा—महाकाल की पूजा के बाद अपनी प्रिया को परिवार के साथ अपने निवास स्थान पहुंचाकर शीघ्र आओ । इस प्रकार सोमदत्त को नियुक्त कर राजवाहन पुष्पोद्भव के साथ पृथ्वी मण्डल पर स्वर्ग जैसी अवन्तिकापुरी में प्रविष्ट हुआ ।

(३) वहाँ पहुँच कर पुष्पोद्भव ने अपने बन्धुपाल आदि साथियों से 'ये मेरे प्रभु के पुत्र हैं' कह कर उन लोगों से अनेक प्रकार की सामग्रियों से राजवाहन का सत्कार कराया

यन्सकलकलाकुशलो महीसुरवर इति पुरि प्रकटयन्पुष्पोद्भवोऽमुष्य राज्ञो मज्जनभोजनादिकमनुदिनं स्वमन्दिरे कारयामास ।

इति श्रीदण्डिनः कृतौ दशकुमारचरिते पुष्पोद्भवचरितं नाम चतुर्थोच्छ्वासः ।

पञ्चमोच्छ्वासः

राजवाहनचरितम्

वसन्तागमनम्

(१) अथ मीनकेतनसेनानायकेन (२) मलयगिरिमहीरुहनिरन्तरावासि-

सत्कारम् । कारयन् । 'सकलकलाकुशलः—सकलासु = सम्पूर्णासु कलासु = विद्यासु कुशलः = पटुः (अयम्) । महीसुरवरः = द्विजश्रेष्ठः' इति पुरि = नगरे । प्रकटयन् = ख्यापयन् । पुष्पोद्भवः । अमुष्य = अस्य । राज्ञः = राजवाहनस्य । मज्जनभोजनादिकम्—मज्जनं = स्नानम् च भोजनम् = आहारः च इति मज्जनभोजने ते आदिनी यस्य तम् । अनुदिनम् = प्रतिदिनम् । स्वमन्दिरे = निजभवने । कारयामास ।

इति अकौरवास्तव्यकविमूर्द्धन्यवाणीशझाशर्मतनुजनुर्झोपाख्य-
श्रीविश्वनाथझाविरचितायां दशकुमारचरितव्याख्याया-
मर्थप्रकाशिकायां चतुर्थोच्छ्वासः ।

(१) अथ वसन्तसमयः समाजगामेत्यन्वयः । अथ = अवन्तिकापुर्यां वासानन्तरम् । मीनकेतनसेनानायकेन—मीनकेतनस्य—मीनः = मकरः केतनम् = ध्वजः यस्य तस्य = कामदेवस्य सेनायाः = सैन्यस्य नायकः = प्रभुः 'अधिभूर्नायको नेता प्रभुः परिवृढोऽधिपः' इत्यमरः तेन = कन्दर्पसेनापतिनेत्यर्थः । (२) मलयगिरिरिति । मलयगिरेः = मलयपर्वतस्य महीरुहेषु =

और नगर में 'यह सकल कलाकुशल एक ब्राह्मण हैं' ऐसा परिचय दिया । बाद राजवाहन को प्रतिदिन अपने घर में स्नान भोजन आदि कराया ।

इस प्रकार विश्वनाथझा द्वारा की गई दशकुमारचरित चतुर्थ उच्छ्वास की
अर्थप्रकाशिका हिन्दी टीका समाप्त हुई ।

पाँचवाँ उच्छ्वास

राजवाहन का विवाह

(१) कुछ समय बाद वसन्त ऋतु आ गयी । कामदेव की सेना के प्रधान वीर, (२) मलय पर्वत के वृक्षों पर निरन्तर वास करने वाले सर्पों के पीने से अवशिष्ट जैसी, अतएव

भुजङ्गमभुक्तावशिष्टेनेव सूक्ष्मतरेण (१) धृतहरिचन्दनपरिमलभरेण मन्दगतिना दक्षिणानिलेन वियोगिहृदयस्थं मन्मथानलमुज्ज्वलयन्, (२) सहकारकिसलयमकरन्दास्वादनरक्तकण्ठानां मधुकरकलकण्ठानां काकलीकलकलेन दिक्चक्रं वाचालयन्, (३) मानिनीमानसोत्कलिकामुपनयन्, (४) माकन्दसिन्दुवाररक्ताशोककिंशुकतिलकेषु कलिकामुपपादयन्, (५) मदनमहोत्सवाय रसिकमनांसि समुल्ला-

---

वृक्षेषु निरन्तरावासिभिः = निरन्तरं आवसन्तीति निरन्तरावासिनः तैः = सततावासशीलैः भुजङ्गमैः = सर्पैः भुक्तावशिष्टेन—भुक्तस्य = भक्षितस्य अवशिष्टेन = शेषेण । सर्पा वायुभक्षाः भवन्तीति प्रसिद्धिः । इव । अतएव । सूक्ष्मतरेण = अयमनयोः सूक्ष्मम् = कृशम् 'सूक्ष्मं, श्लक्ष्णं दभ्रं कृशं तनु' इत्यमरः इति सूक्ष्मतरम् तेन श्लक्ष्णतरेण ।

(१) धृतेति—धृतः = गृहीतः हरिचन्दनानाम् = कल्पवृक्षाणाम् परिमलस्य = सौरभस्य भरः = अतिशयो येन तथाभूतेन । इव । मन्दगतिना—मन्दा = धीरा गतिः = गमनम् यस्य तेन । दक्षिणानिलेन = मलयपवनेन । वियोगिहृदयस्थम्—वियोगिनां = विरहिणाम् हृदये = चित्ते तिष्ठति = निवसतीति तम् । मन्मथानलम्—मन्मथस्य = कामस्य अनलम् = वह्निम् । उज्ज्वलयन्—उत् = ऊर्ध्वम् ज्वलयन् दीपयन् उत्तेजयन् इत्यर्थः ।

(२) सहकारेति—सहकाराणाम् = आम्राणाम् किसलयस्य = नवपल्लवस्य मकरन्दस्य = पुष्परसस्य च आस्वादनेन = भक्षणेन रक्तः = मधुरस्वरयुक्तः कण्ठः = गलः येषां तेषाम् । मधुकरकलकण्ठानाम्—मधुकराः = मधोः कराः = भ्रमराः च कलकण्ठाः कलः = मधुरास्फुटः कण्ठो येषाम् ते = कोकिलाः च तेषाम् । काकलीकलकलेन—काकल्याः = सूक्ष्मध्वनेः कलकलेन = कोलाहलेन । दिक्चक्रम् = दिशां मण्डलम् । वाचालयन् = ध्वनयन् ।

(३) मानिनीमानसोत्कलिकाम्—मानिनीनाम् = कामिनीनाम् मानसेषु = चित्तेषु उत्कलिकाम् = उत्कण्ठाम् उपनयन् = जनयन् ।

(४) माकन्देति—माकन्दः = चूतः, सिन्दुवारः = निर्गुण्डी च रक्ताशोकश्च, किंशुकः = पलाशः च तिलकश्च इति ते···तिलकाः तेषु वृक्षेषु कलिकाम् = कोरकम् । उपपादयन् = प्रापयन् । (५) मदनमहोत्सवाय—मदनस्य = कामस्य महोत्सवः तस्मै । रसिकमनांसि = रसिकानाम् = अनुरागिणाम् मनांसि = चित्तानि । समुल्लासयन् = सम्यक् प्रकारेण उत्साहयन् ।

मन्थर और (१) हरिचन्दन की सुगन्ध के भार को धारण की हुई-सी अतएव मन्द-मन्द चलनेवाली दक्षिण वायु वियोगियों के हृदयस्थ कामाग्नि को सुलगाती हुई (वसन्त ऋतु आने का सर्वत्र सम्बन्ध होगा) (२) आम्रबौरों के पराग (मधु) का आस्वादन (भक्षण) से मधुर स्वर वाले भ्रमरों और कोयलों के सूक्ष्म अस्फुट मधुर ध्वनियों से दिशाओं को मुखरित करती हुई (३) मानवती युवतियों के ·हृदयस्थ उत्कण्ठा को बढ़ाती हुई । (४) आम्र, निर्गुण्डी, रक्ताशोक, पलाश और तिलक में नई-नई कोपलों को उत्पन्न कराती हुई और (५) रसिकों के हृदय में मदन महोत्सव मानने का उल्लास भरती हुई । 'वसन्त ऋतु आयी' का

सयन्, वसन्तसमयः समाजगाम ।

राजवाहनस्यावन्तिसुन्दरीदर्शनम्

(१) तस्मिन्नतिरमणीये कालेऽवन्तिसुन्दरी नाम मानसारनन्दिनी प्रियवयस्यया बालचन्द्रिकया सह नगरोपान्तरम्योद्याने विहारोत्कण्ठया (२) पौरसुन्दरीसमवायसमन्विता कस्यचिच्चूतपोतकस्य छायाशीतले सैकततले (३) गन्धकुसुमहरिद्राक्षतचीनाम्बरादिनानाविधेन परिमलद्रव्यनिकरेण मनोभवमर्चयन्ती रेमे ।

(४) तत्र रतिप्रतिकृतिमवन्तिसुन्दरीं द्रष्टुकामः काम इव वसन्तसहायः

वसन्तसमयः = वसन्तर्तुः । समाजगाम = समागतः ।

(१) अतिरमणीये = अतिमनोहरे । तस्मिन् काले = वसन्तसमये । अवन्तिसुन्दरी नाम = प्रसिद्धा । मानसारनन्दिनी = मानसारपुत्री। प्रियवयस्यया = सख्या। बालचन्द्रिकया = पुष्पोद्भवपत्न्या सह । नगरोपान्तरस्योद्याने— नगरस्य = पुरस्य उपान्ते = समीपे रम्यं यद् उद्यानम् = उपवनम् तस्मिन् । विहारोत्कण्ठया = विहारस्य या उत्कण्ठा तया ।

(२) पौरसुन्दरीसमवायसमन्विता—पुरे भवाः पौराः च ताः सुन्दर्यः तासाम् = पुरस्त्रीणाम् समवायेन = समूहेन समन्विता = युक्ता । कस्यचित् = एकस्य । चूतपोतकस्य = शिशुसहकारवृक्षस्य छायाशीतले = छायया शीतले । सैकततले = वालुकामयप्रदेशे ।

(३) गन्धेति—गन्धः = चन्दनम् च कुसुमम् = पुष्पम् च हरिद्रा च अक्षताः = तण्डुलाः च 'पुंभूम्नि चाक्षता' इत्यमरः चीनाम्बरम् = श्लक्ष्णवस्त्रम् च इति तानि, आदीनि यस्य नानाविधस्य तेन बहुप्रकारेणेत्यर्थः परिमलद्रव्यनिकरेण = परिमलं च तत् द्रव्यं चेति परिमलद्रव्यम् = गन्धद्रव्यम् तस्य निकरेण = समूहेन। मनोभवम्—मनसि भवम् तम् = कामम् । अर्चयन्ती = पूजयन्ती । रेमे = चिक्रीड ।

(४) तत्र = तस्मिन् काले । रतिप्रतिकृतिम्—रतेः = कामपत्न्याः प्रतिकृतिः = प्रतिभा । ताम् । अवन्तिसुन्दरीम् = मानसारनन्दिनीम् । द्रष्टुकामः—द्रष्टुम् = अवलोकितुम् कामः = अभिलाषः यस्य सः 'तुंकाममनसोरपीति' मलोपः । कामः इव = कन्दर्पसदृशः । वसन्त-

---

सभी शत्रन्त के साथ अन्वय है ।

(१) ऐसे अति रमणीय वसन्त काल में राजा मानसार की कन्या अवन्तिसुन्दरी अपनी प्यारी सहेली बालचन्द्रिका के साथ विहार करने की अभिलाषा से नगर के समीप एक मनोहर वाटिका में गयी । (२) उसके साथ नगर की अनेक महिलायें थीं । वहाँ जाकर उसने एक छोटे आम्रवृक्ष के शीतल छाया युक्त वालुकामय प्रदेश में (३) गन्ध (चन्दन), पुष्प, हल्दी, अक्षत, और सूक्ष्म वस्त्रों आदि अनेक प्रकार के सुगन्धित वस्तुओं से कामदेव की पूजा करती हुई क्रीडा करने लगी ।

(४) वसन्त सहायक कामदेव जैसा पुष्पोद्भव के साथ राजवाहन कामपत्नी रति जैसी

पुष्पोद्भवसमन्वितो राजवाहनस्तदुपवनं प्रविश्य तत्र तत्र (१) मलयमारुतान्दोलितशाखानिरन्तरसमुद्भिन्नकिसलयकुसुमफलसमुल्लसितेषु रसालतरुषु (२) कोकिलकीरालीमधुकराणामालापान् श्रावं श्रावं (३) किञ्चिद्विकसदिन्दीवर-कह्लार-कैरव-राजीव-राजी-केलि-लोल-कलहंस-सारस-कारण्डव-चक्रवाक-चक्रवाल-कलरव-व्याकुल-विमल शीतल-सलिल-ललितानि सरांसि दर्शं दर्शममन्दलीलया ललना-

---

सहायः = वसन्तः सहायः = द्वितीयः यस्य सः राजवाहनः । पुष्पोद्भवसमन्वितः = पुष्पोद्भवेन समन्वितः = युक्तः तदुपवनम् = अवन्तिसुन्दर्यधिष्ठितोद्यानम् । प्रविश्य = गत्वा । तत्र तत्र = तेषु तेषु वीप्सायां द्विरुक्तिः ।

(१) मलयेति — मलयमारुतेन = मलयस्य = मलयगिरेः मारुतेन = पवनेन दक्षिणानिलेनेत्यर्थः आन्दोलिताः = कम्पिताः याः शाखाः तासु निरन्तरम् = अनवरतम् समुद्भिन्नैः = सुष्ठुविकसितैः किसलयकुसुमफलैः—किसलयम् = नवपल्लवं च कुसुमम् = पुष्पं च फलम् च तैः समुल्लसितेषु = शोभितेषु । रसालतरुषु = आम्रवृक्षेषु ।

(२) कोकिलेति—कोकिलानाम् = पिकानां 'वनप्रियः परभृतः कोकिलः पिक इत्यपि' इत्यमरः कीरालीनाम् = शुकपंक्तीनाम् 'कीरशुकौ समौ' इत्यमरः मधुकराणाम् = भ्रमराणाम् आलापान् = अस्फुटमधुरशब्दान् । श्रावं श्रावं = श्रुत्वा श्रुत्वा ।

(३) किञ्चिदिति—किञ्चित् = ईषत् विकसन्तीषु (राजीषु इत्यस्य विशेषणम्) = प्रस्फुटन्तीषु इन्दीवराणाम्—इन्द्याः = लक्ष्म्याः वराणि = इष्टानि तेषाम् = नीलाम्बुजन्मनाम् नीलकमलानामित्यर्थः कह्लाराणाम् = (कस्य जलस्य हारः) सौगन्धिकानाम् 'सौगन्धिकन्तु कह्लारम्' इत्यमरः कैरवाणाम् = कैरवाः = हंसाः तेषां प्रियाणि तेषाम् = स्वच्छकमलानाम् राजीवानाम्—राजी = रेखा एषामस्तीति तेषाम् = सामान्यकमलानाम् राजीषु = पङ्क्तिषु केलिलोलाः—केलिषु = क्रीडासु लोलाः चञ्चलाः आसक्ताः इति यावत् ते कलहंसाः = कादम्बाः 'कादम्बः कलहंसः स्यात्' इत्यमरः सारसाः पुष्कराह्वाः = 'पुष्कराह्वस्तु सारसः' इत्यमरः कारण्डवाः = प्लवाः 'मद्गुः कारण्डवः प्लवः' इत्यमरः चक्रवाकाः = कोकाः 'कोकश्चक्रश्चक्रवाकः' इत्यमरः तेषाम् (पक्षिविशेषाणाम्) यत् चक्रवालम् = मण्डलम् 'चक्रवालं तु मण्डलम्' इत्यमरः तस्य (मण्डलस्य) कलरवेण = अस्फुटमधुरध्वनिना व्याकुलानि = व्याप्तानि विमलानि—विगतम् मलम् = किट्टम् 'गोर्द किट्टं मलोऽस्त्रियाम्' येभ्यः तानि = स्वच्छानि शीतलानि यानि सलिलानि—सलति = गच्छति इति सलिलम् = जलम् तानि, तैः ललितानि = मनोहराणि ।

अनिन्द्य सुन्दरी अवन्तिसुन्दरी को देखने उस उपवन में आ पहुँचा । (१) वहाँ मलयानिल से झकोरी शाखाओं से निरन्तर विकसित नूतन पल्लव, पुष्प, फलों से शोभित आम्रवृक्षों पर (२) चहकने वाले कोयल, शुकपंक्ति और भ्रमरों के मधुर आलापों को बारंबार सुनकर (३) अधखिले नील श्वेत कमलों के और सौगन्धिक एवं कुमुदिनियों के पंखियों पर क्रीडा में आसक्त (चंचल) राजहंस, सारस, मद्गु और चक्रवाक समुदाय के अस्फुट मधुर ध्वनियों से व्याकुल तथा विमल शीतल जलों से सुशोभित तालावों को बारंबार देख

समीपमवाप ।

(१) बालचन्द्रिकया 'निःशङ्कमित आगम्यताम्' इति हस्तसंज्ञया समाहूतो निजतेजोजितपुरुहूतो राजवाहनः कृशोदर्या अवन्तिसुन्दर्या अन्तिकं समाजगाम ।

अवन्तिसुन्दरीवर्णनम्

(२) या वसन्तसहायेन समुत्सुकतया रतेः केलीशालभञ्जिकाविधित्सया कञ्चन नारीविशेषं विरच्यात्मनः क्रीडाकासारशारदारविन्दसौन्दर्येण पादद्वयम्,

---

सरांसि = सरोवराणि । दर्शं दर्शं = आभीक्ष्ण्ये णमुल् मुहुर्मुहुः दृष्ट्वा । अमन्दलीलया = न मन्दा अमन्दा चासौ लीला च तया शनैः शनैः । ललनासमीपम्—ललनायाः = अवन्तिसुन्दर्याः समीपम् = अन्तिकम् । अवाप = प्राप्तः ।

(१) निःशङ्कम् = शङ्काया निर्गतम् , यथा स्यात्तथा निर्भयमित्यर्थः क्रियाविशेषणमेतत् । इतः = अस्मिन् स्थाने । आगम्यताम् इति हस्तसंज्ञया (करचेष्टेन) = करसङ्केतेन । बालचन्द्रिकया = पुष्पोद्भवपत्न्या । समाहूतः = आकारितः निजतेजोजितपुरुहूतः—निजेन = स्वेन तेजसा = प्रतापेन जितः = पराजितः पुरुहूतः = इन्द्रः येन सः राजवाहनः । कृशोदर्याः—कृशम् = सूक्ष्मम् उदरम् = मध्यमाङ्गम् यस्याः सा, तस्याः । अवन्तिसुन्दर्याः = मानसारनन्दिन्याः । अन्तिकम् = उपकण्ठम् 'उपकण्ठान्तिकाभ्यर्णाभ्यग्रा' इत्यमरः । समाजगाम = आगतः ।

(२) या रराजेति सम्बन्धः । या = अवन्तिसुन्दरी । वसन्तसहायेन—वसन्तः = वसन्तर्तुः सहायः = द्वितीयः यस्य सः, तेन = कन्दर्पेण । समुत्सुकतया—उत्सुकस्य भावः उत्सुकता, सम्यक् उत्सुकता = उत्कण्ठा, तया = समुत्कण्ठितयेत्यर्थः । रतेः = कामपत्न्याः । केलीति—केल्यै = क्रीडायै या शालभञ्जिका = क्रीडापुत्तलिका तस्याः विधित्सा = विधातुम् निर्मातुम् इच्छा तया । कञ्चन = एकम् । नारीविशेषम् = स्त्रीप्रतिकृतिम् । विरच्य = कृत्वा निर्मायेत्यर्थः । आत्मनः = स्वस्य । क्रीडाकासारेति—क्रीडायाः कासारे = सरसि 'कासारः सरसी सरः' इत्यमरः, शारदारविन्दानाम्—शरदि भवानि शारदानि यानि अरविन्दानि = कमलानि तेषाम् सौन्दर्येण = शोभया । पादद्वयम् = चरणयुगलम् । पूर्वोक्तानि अङ्गानि नारीविशेषस्येति शेषः विधायेत्यनेन सम्बन्धः ।

कर धीरे धीरे अवन्तिसुन्दरी के समीप पहुंच गया ।

(१) बालचन्द्रिका ने दूर से ही हाथों का इशारा कर राजवाहन से कहा आप लोग निःशंक यहाँ चले आइये, कोई डर नहीं । इस प्रकार सङ्केत पाकर इन्द्रको भी अपने पराक्रम से परास्त करने वाला राजवाहन उस कृशोदरी अवन्तिसुन्दरी के समीप जा पहुँचा ।

(२) वह (अवन्तिसुन्दरी) लगती थी—जैसे उत्कण्ठा से कामदेव ने अपनी पत्नी रति का मन बहलाने के लिए पुतली बनाने की इच्छा से एक स्त्रीविशेष का निर्माण किया हो । कामदेव ने अपने विहार सरोवर में खिलने वाले शरत्कालीन कमल की शोभा से मानो उसने (स्त्री विशेष के) चरण बनाये थे (अर्थात्—उसके चरण लाल थे) ।

(१) उद्यानवनदीर्घिकामत्तभरालिकागमनरीत्या लीलालसगतिविलासम्, तूणीरलावण्येन जङ्घे, (२) लीलामन्दिरद्वार-कदलीलालित्येन मनोज्ञमूरुयुगम् , जैत्ररथचातुर्येण घनं जवनम् (३) किञ्चिद्विकसल्लीलावतंस-कह्लार-कोरक-कोटरानुवृत्त्या गङ्गावर्तसनाभिं नाभिम्, (४) सौधारोहणपरिपाट्या वलित्रयम् ,

---

(१) उद्यानेति । उद्यानवने = उपवने या दीर्घिका = (दीर्घेव) वापी तस्यां या भत्ता = मधुररसास्वादेन हृष्टा 'हृष्टे मत्तः' इत्यमरः मन्थरेत्यर्थः मरालिका = हंसी तस्याः गमनरीतिः तया = मन्दमन्दगतिपरिपाट्या । लीलालसगतिविलासम्--लीलया अलसम् = मन्थरम् गतिविलासम् = गमनप्रकारं मन्दगमनसुन्दरतयेत्यर्थः विधाय । तूणोरलावण्येन--तूणीरयोः = निषङ्गयोः 'तूणोपासङ्गतूणीरनिषङ्गा' इत्यमरः लावण्येन = सौन्दर्येण । जङ्घे = जानू 'जङ्घा तु प्रसृता जानू' इत्यमरः विधायेति सम्बन्धः ।

(२) लीलेति—लीलामन्दिरम् = सुरतगृहं तस्य द्वारे ये कदल्यौ = रम्भावृक्षौ तयोः लालित्येन = सौन्दर्येण मनोज्ञम् = मनोहरम् । ऊरुयुगम्—सक्थिद्वयम् 'सक्थि क्लीबे पुमानूरुः' इत्यमरः । जैत्ररथचातुर्येण—जैत्रः = जेता जयनशीलः इत्यर्थः यो रथः (कामस्य) तस्य चातुर्येण निर्माणरीत्या । घनम् = निविडम् । जघनम् = नितम्बपुरोभागम् विधायेत्यन्वयः ।

(३) किञ्चित् = ईषत् विकसत् = प्रस्फुटत् (यत्) लीलावतंसकह्लारम्—लीलायाः = विलासस्य अवतंसः = कर्णभूषणम् स चादः कह्लारम् = सौगन्धिकम् रक्तोत्पलमित्यर्थः तस्य कोरकः = कलिका तस्य कोटरम् = बिलम् मध्यदेशः तस्य अनुवृत्त्या = अनुक्रमेण सादृश्येनेत्यर्थः । गंगावर्तसनाभिम्— गंगायाः आवर्त्तः = भ्रमिः 'आवर्तोऽम्भसां भ्रमः' इत्यमरः तस्य सनाभिः = समानोदर्यः सदृशः तम् । नाभिं विधाय ।

(४) सौधारोहणपरिपाट्या--सौधेषु = राजसदनेषु 'सौधोऽस्त्री राजसदने'त्यमरः यत् आरोहणम् = सोपानम् तस्य या परिपाटी = अनुवृत्तिः रचनाक्रमः तया । वलित्रयम्--वलीनाम् त्रयम् (पेटी इति भाषायाम्) 'वलिः प्राण्यङ्गजे स्त्रियामि'त्यमरः । विधायेति सम्बन्धः ।

---

(१) उपवन की बावली में घूमने वाली मदोन्मत्त हंसिनी की गति लेकर ही इस नारी विशेष की विलास से अलसायी चाल बनायी थी । (२) उसकी दोनों जाँघें मानो अपनी तरकस की शोभा से बनायी थी । कामदेव ने अपने रतिमन्दिर के द्वार पर लगी कदली की शोभा से उसके दोनों घुटने बनाये थे तथा जैत्ररथ की निर्माणकला से उसके घन जघन का निर्माण किया था और (३) अधखिले विलासभूषणस्वरूप सौगन्धिक कलियों के मध्य जैसी तथा गंगा के भँवर के समान उसकी नाभि एवं (४) प्रासाद के सीढ़ियों जैसी त्रिवली निर्माण कर ।

(१)मौर्वीमधुकरपङ्क्तिनीलिमलीलया रोमावलिम्, (२) पूर्णसुवर्णकलशशोभया कुचद्वन्द्वम्, (३) लतामण्डपसौकुमार्येण बाहू (४) जयशङ्खाभिख्यया कण्ठम्, (५) कमनीयकर्णपूरसहकारपल्लवरागेण प्रतिबिम्बीकृतबिम्बं रदनच्छदम्, (६) बाणायमानपुष्पलावण्येन शुचि स्मितम्, (७) अग्रदूतिकाकलकण्ठिकाकलालाप-

---

(१) मौर्वीमधुकरपङ्क्तिनीलिमलीलया—मौर्वा = शिञ्जिनी कामस्येति शेषः 'मौर्वी ज्या शिञ्जिनी गुणः' इत्यमरः एव मधुकरपङ्क्तिः = भ्रमरश्रेणिः तस्या नीलिमा = नीलत्वम् तस्य लीलया = विलासेन। रोमावलिम् = रोम्णः आवलिः = पङ्क्तिः तां विधायेत्यनेन सम्बन्धः। (२) पूर्णसुवर्णकलशशोभया—पूर्णः = जलेन पूर्णः यः सुवर्णकलशः = हेमघटः द्वारस्थित-सुवर्णकलशः कामस्येति शेषः तस्य शोभया = श्रिया। कुचद्वन्द्वम् = स्तनयुगलम् विधाय।

(३) लतामण्डपसौकुमार्येण—लतायाः = व्रतत्याः 'व्रततिर्लता' इत्यमरः मण्डपः = जनाश्रयः 'मण्डपोऽस्त्री जनाश्रयः' इत्यमरः तस्य सौकुमार्येण = सुकुमारस्य भावः सौकुमार्यम् तेन। बाहू = करद्वयम् नारीविशेषस्य विधायेति शेषः।

(४) जयशङ्खाभिख्यया—जयस्य = विजयस्य शङ्खः कामस्येति शेषः तस्य अभिख्या = शोभा तया। कण्ठम् = ग्रीवाम्। विधायेति सम्बन्धः।

(५) कमनीयकर्णपूरसहकारपल्लवरागेण = कमनीयः—मनोज्ञः यः कर्णपूरः = अवतंसः सहकारपल्लवः—सहकारस्य = आम्रस्य पल्लवः = किसलयम् तस्य रागेण = अरुणिम्ना। प्रतिबिम्बीकृतविम्बम्—न प्रतिबिम्बम् अप्रतिबिम्बं, अप्रतिबिम्बं प्रतिबिम्बं कृतम् = अनुकृतम् विम्बम् = बिम्बफलम् येन तम्, रदनच्छदम् = ओष्ठम् विधायेत्यन्वयः।

(६) बाणायमानपुष्पलावण्येन—बाणः = कौसुमः शरः तद्वदाचरत् यत् पुष्पम् तस्य लावण्येन = सौन्दर्येण। शुचि = पवित्रम् स्वच्छमिति यावत्। स्मितम् = मनाक् हासम् विधायेत्यन्वयः।

(७) अग्रदूतिकेति—अग्रदूतिका = दूतिकासु श्रेष्ठा कामस्येति शेषः या कलकण्ठिका = कोकिला तस्याः कलः = मधुरास्फुटः 'ध्वनौ तु मधुरास्फुटे कलः' इत्यमरः य आलापः =

---

(१) ज्या स्वरूप भ्रमर पंक्तियों की नीलिमा की शोभा से उसकी रोमावली और (२) जल पूर्ण सुवर्ण कलश की शोभा से उसके स्तनों का निर्माण किया था (उसके स्तन कामदेव के द्वार पर रखे शुभ सूचक सुवर्ण कलशाकार थे)।

(३) लतामण्डप की कोमलता से उसकी बाँहें (४) जयशङ्ख की शोभा से कण्ठ (५) सुन्दर कर्णभूषणरूप आम्रपल्लव की रक्तिमा से प्रतिबिम्बित होने वाले बिम्बफल के सदृश उसके ओष्ठ और (६) बाण के सदृश पुष्प की शोभा से उसके मुस्कान (७) (कामदेव की) अग्रदूतिका (सर्वप्रथम भेजी जाने वाली) कोयल की मधुर वाणी के माधुर्य से उसके वचन

माधुर्येण वचनजातम्, (१) सकलसैनिकनायकमलयमारुतसौरभ्येण निःश्वासपवनम्, (२) जयध्वजमीनदर्पेण लोचनयुगलम्, (३) चापयष्टिश्रिया भ्रूलते, (४) प्रथमसुहृदः सुधाकरस्यापनीतकलङ्कया कान्त्या वदनम्, (५) लीलामयूरवर्हभङ्ग्या केशपाश च विधाय (६) समस्तमकरन्दकस्तूरिकासम्मितेन मलयजरसेन प्रक्षाल्य (७) कर्पूरपरागेण सम्मृज्य निर्मितेव रराज ।

(८) सा मूर्तिमतीव लक्ष्मीर्मालवेशकन्यका स्वेनैवाराध्यमानं सङ्कल्पितवर-

---

ध्वनिः तस्य माधुर्येण । वचनजातम्—वचनानाम्=भाषितानाम् जातम्=समूहम् ।

(१) सकलेति । सकलानाम्=सम्पूर्णानाम् सैनिकानाम्=योधानाम् नायकः=प्रधानवीरः यः मलयमारुतः=मलयपवनः तस्य सौरभ्येण=सुरभेः भावः सौरभ्यम् तेन=सौगन्ध्येन । निःश्वासपवनम्=प्राणवायुम् नारीविशेषस्य विधायेत्यन्वयः। (२) जयध्वजमीनदर्पेण—जयध्वजः=विजयकेतुरेव मीनः=मत्स्यः तस्य दर्पेण=विलासेन, अहंकारेण । लोचनयुगलम्=नेत्रे । मत्स्याकृतिनी नेत्रे विधायेत्यर्थः ।

(३) चापयष्टिश्रिया—चापस्य=धनुषः या यष्टिः=लता तस्याः श्रिया=कान्त्या । भ्रूलते=भ्रुवोः लते, कुटिले इत्यर्थः ।

(४) प्रथमसुहृदः=श्रेष्ठमित्रस्य । कामस्येति शेषः । सुधाकरस्य=चन्द्रस्य । अपनीतकलङ्कया—अपनीतः=पृथक्कृतः कलङ्कः=अङ्कः यस्याः तया कान्त्या=श्रिया । वदनम्=आननम् । नारीविशेषस्य विधायेति सम्बन्धः ।

(५ लीलामयूरवर्हभङ्ग्या—लीलामयूरस्य=क्रीडाबर्हिणः वर्हं=पिच्छम् 'वर्हपिच्छे नपुंसके' इत्यमरः । केशपाशम्=केशकलापम् । च विधाय=कृत्वा ।

(६) समस्तेति । समस्ताभिः=निखिलाभिः मकरन्दकस्तूरिकाभिः—मकरन्दाः=पुष्परसाः च कस्तूरिकाः=मृगमदाः च इति ताभिः सम्मितेन=युक्तेन । मलयजरसेन—मलयजस्य=चन्दनस्य रसेन=द्रवेण । प्रक्षाल्य=धवित्वा ।

(७) कर्पूरपरागेण—कर्पूरस्य=घनसारस्य परागेण=चूर्णेन । संमृज्य=संशोध्य सर्वत इति शेषः । निर्मिता=रचिता, कामनेति शेषः । इव रराज=शुशुभे ।

(८) सा=मालवेशकन्यका—मालवेशस्य=मानसारस्य कन्यका=(कन्या=पुत्री एव कन्यका) मूर्तिमती=शरीरधारिणी लक्ष्मीरिव=शोभा इव । स्वेन=निजेन करेणैव ।

---

(१) अपने समस्त सैनिकों में प्रधान सेनानायक मलयपवन की सुगन्धि से उसके श्वासोच्छ्वास और (२) जयध्वजस्वरूप मछलियों के अहङ्कार से उसकी आँखें (अर्थात् मीनाकार उसकी आँखें बनाकर)। और (३) धनुष यष्टि की शोभा से भ्रूलताएँ, (४) प्रधान मित्र चन्द्रमा की निष्कलंक कान्ति से उसका मुख और (५) लीलामयूर के पांखों के सदृश उसके केश बना कर (६) मानो कामदेव ने समस्त सुगन्धित पदार्थ जैसे पुष्पों के पराग एवं कस्तूरी मिश्रित चन्दनरस से उसे धोकर (७) कर्पूर का पराग छिड़क दिया हो, ऐसी शोभा वह पा रही थी ।

(८) मूर्तिमती लक्ष्मी-सी वह मालवेशकन्या अपने ही द्वारा पूजित एवं अभीप्सित वरप्रदान

प्रदानायाविर्भूतं मूर्तिमन्तं मन्मथमिव तमालोक्य मन्दमारुतान्दोलिता लतेव मदनावेशवती चकम्पे । (१) तदनु क्रीडाविश्रम्भान्निवृत्ता लज्जया कानि कान्यपि भावान्तराणि व्यधत्त ।

(२) 'ललनाजनं सृजता विधात्रा नूनमेषा घुणाक्षरन्यायेन निर्मिता । (३) नो चेदब्जभूरेवंविधो निर्माणनिपुणो यदि स्यात्तर्हि तत्समानलावण्यामन्यां तरुणीं किं न करोति' इति सविस्मयानुरागं विलोकयतस्तस्य समक्ष स्थातु

आराध्यमानम् = आराध्यते इति = संसेव्यमानम् । संकल्पितवरप्रदानाय—अभीप्सितस्य वरस्य प्रदानाय । आविर्भूतम् = समुपस्थितम् । तम् = राजवाहनम् । मूर्तिमन्तम् = शरीरिणम् । मन्मथम् = कामम् इव । अवलोक्य = दृष्ट्वा । मन्दमारुतान्दोलिता—मन्देन = धीरेण मारुतेन = पवनेन आन्दोलिता = कम्पिता । लता = व्रततिः । इव । मदनावेशवती—मदनस्य = कामस्य आवेशः = आविर्भावः अस्ति अस्याः इति । चकम्पे = अकम्पत ।

(१) तदनु = तत्पश्चात् । क्रीडाविश्रम्भात्—क्रीडायाम् विश्रम्भः = विश्वासः तस्मात् । निवृत्ता = परावृत्ता । लज्जया = व्रीडया । कानि कानि = बहुविधानि अनिर्वचनीयानि । भावान्तराणि = अनुरागविशेषान् । व्यधत्त = आविष्कृतवती, धृतवतीत्यर्थः ।

(२) ललनाजनम् = स्त्रीजनम् । सृजता = (सृजतीति) सृष्टिं कुर्वता । विधात्रा = ब्रह्मणा । नूनम् = निश्चयेन । एषा = अवन्तिसुन्दरी । घुणाक्षरन्यायेन = संयोगेन । (यथा घुणः = काष्ठकीटविशेषः स्वेच्छया काष्ठं भिन्दन् संयोगवशात् अनिर्वचनीयं चित्रम् अक्षरं आविष्करोति तथैव स्त्रीकुलं सृजता विधात्रापि एषा काकतालीयसंयोगन्यायेनैव) निर्मिता = आविष्कृता ।

(३) नो चेत् = अन्यथा । अब्जभूः = (अब्जात् = कमलात् भवतीति) ब्रह्मा । एवंविधः—एवं विधा = प्रकारः यस्य सः 'विधा विधौ प्रकारे चे'त्यमरः । निर्माणनिपुणः—निर्माणे = रचनायाम् निपुणः = कुशलः यदि स्यात् तर्हि = तदा । तत्समानलावण्याम्—तस्याः = अवन्तिसुन्दर्याः समानम् = अनुरूपम् लावण्यम् = सौन्दर्यम् यस्याः ताम् । अन्याम् = अपराम् । तरुणीम् = युवतीम् । किम् = कथम् । न करोति इति । सविस्मयानुरागम् = विस्मयेन सहितः सविस्मयः, सविस्मयः अनुरागः यस्मिन् तद् यथा स्यात्तथा विलोकयतः = पश्यतः । 'न करो-

---

के लिए उपस्थित मूर्तिमान कामदेव की तरह राजवाहन का देखकर मन्द पवन से कांपती लता-सी कामदेव के वशीभूत हो, हिल उठी ।

(१) फिर लज्जा से उसने खेल बन्द कर दिया और तत्समयोचित नाना भावों को व्यक्त करने लगी ।

(२) उसकी मूर्ति देखकर राजवाहन सोचने लगा कि—स्त्रीसमाज की रचना करते हुए ब्रह्मा ने निश्चय ही घुणाक्षरन्याय से इसकी रचना की है । जैसे घुन चलते चलते अनजाने ही अक्षर की आकृति बना जाते हैं उसी प्रकार बनजाने में ही ब्रह्मा के हाथों से इसकी रचना हुई है । (३) अन्यथा यदि ब्रह्मा निर्माण कला में ऐसे कुशल होते तो क्या इसके समान सौन्दर्य वाली अन्य तरुणी का भी निर्माण नहीं करते ? इस प्रकार आश्चर्य और अनुराग के

लज्जिता सती (१) किञ्चित्सखीजनान्तरितगात्रा (२) तन्नयनाभिमुखैः किञ्चिदाकुञ्चितैरञ्चितभ्रूलतैरपाङ्गवीक्षितैरात्मनः (३) कुरङ्गस्यानायमानलावण्यं राजवाहनं विलोकयन्त्यतिष्ठत्। (४) सोऽपि तस्यास्तदोत्पादितभावरसानां सामग्र्या लब्धबलस्येव विषमशरस्य (५) शरव्यायमाणमानसो बभूव।

(६) सा मनसीत्थमचिन्तयत्—'अनन्यसाधारणसौन्दर्येणानेन कस्यां पुरि

तीयन्तं' विलोकयतः इति क्रियायाः कर्म। तस्य=राजवाहनस्य। समक्षम्=पुरतः। स्थातुम्=अवस्थातुम्। लज्जिता=ह्रीमती। सती।

(१) किञ्चित्=ईषत्। सखीजनान्तरितगात्रा—सखीजनैः=सखीभिः अन्तरितम्=व्यवहितम् गात्रम्=देहः यस्याः सा अवन्तिसुन्दरी।

(२) तन्नयनाभिमुखैः—तस्य=राजवाहनस्य नयनयोः अभिमुखैः=सम्मुखैः। किञ्चित्=ईषत्। आकुञ्चितैः=संक्षिप्तैः। अञ्चितभ्रूलतैः—अञ्चिते=पूजिते (शोभिते) भ्रूलते यैः तैः। अपाङ्गवीक्षितैः=अपाङ्गाभ्याम् 'अपाङ्गौ नेत्रयोरन्तौ' इत्यमरः यानि वीक्षितानि=दर्शनानि तैः=कटाक्षैरित्यर्थः।

(३) कुरङ्गस्य=मृगभूतस्य। आत्मनः=स्वस्य। आनायमानलावण्यम्—आनायः=जालम् तदिवाचरतीति क्यजन्तात् शानच् तत् लावण्यम्=सौन्दर्यम् यस्य तम्। राजवाहनम्। विलोकयन्ती=पश्यन्ती अतिष्ठत्=स्थिता।

(४) सः=राजवाहनः अपि। तस्याः=अवन्तिसुन्दर्याः। तदा=तस्मिन्काले। उत्पादितभावरसानाम्—उत्पादिताः=प्रकटिता जनिता इति यावत् ये भावरसाः=विकारादयः तेषाम् शृङ्गाराभिलाषाणाम्। सामग्र्या=पूर्णतया सामस्त्येनेत्यर्थः। लब्धबलस्य—लब्धं प्राप्तम् बलम्=सामर्थ्यम् येन तस्य इव। विषमशरस्य—विषमाः—अयुग्मसंख्यकाः शराः=बाणाः यस्य तस्य=कामस्य।

(५) शरव्यायमाणमानसः—शरव्यम्=लक्ष्यम् 'लक्षं लक्ष्यं शरव्यं च' इत्यमरः तदिवाचरतीति क्यजन्तात् शानच् तत्, मानसं यस्य सः। बभूव।

(६) सा=अवन्तिसुन्दरी। मनसि=हृदये। इत्थम्=अनेन वक्ष्यमाणप्रकारेण (इदमस्थमुः इति थमुप्रत्ययः) अचिन्तयत्=(चिति स्मृत्यां धातोर्लङि रूपम्) अस्मरत्। अनेन=पुरतो विद्यमानेन अनन्यसाधारणसौन्दर्येण=न अन्यम् अनन्यम् अनन्यं च तत्

साथ राजवाहन के देखने पर अवन्तिसुन्दरी लज्जा से (१) राजवाहन के सामने न बैठकर सखियों की कुछ आड़ में अपने शरीर को छिपाकर बैठ गयी और (२) उनके नेत्रों के सम्मुख कुछ टेढ़ी और सुन्दर भौं वाली तिरछी आँखों से राजवाहन के सौन्दर्य को क्षण-भर के लिए देखने लगी। (३) ऐसा लगता था—मानो राजवाहन का सौन्दर्य हरिणीरूप उस अवन्तिसुन्दरी को फँसाने के लिए जाल के समान हो। (४) उस समय राजवाहन भी अवन्तिसुन्दरी द्वारा उत्पादित विकार रूप रस की पूर्णता से प्राप्त बल वाले कामदेव के बाणों के (५) लक्ष्यभूत (वशीभूत) मनवाला हो गया।

(६) वह अवन्तिसुन्दरी मन ही मन इस प्रकार सोचने लगी—ये असाधारण शोभा

भाग्यवतीनां तरुणीनां लोचनोत्सवः क्रियते । (१) पुत्ररत्नेनामुना पुरन्ध्रीणां पुत्रवतीनां सीमन्तिनीनां का नाम सीमन्तमौक्तिकोक्रियते । कास्य देवी । किमत्रागमनकारणमस्य । (२) मन्मथो मामपहसितनिजलावण्यमेनं विलोकयन्तीमसूययेवातिमात्रं मथ्नन्निजनाम सान्वयं करोति । किं करोमि । कथमयं ज्ञातव्यः' इति ।

(३) ततो बालचन्द्रिका तयोरन्तरङ्गवृत्तिं भावविवेकैर्ज्ञात्वा कान्तासमाज-

---

साधारणम् च अनन्यसाधारणम्=अद्वितीयम् तरुणीसौन्दर्यम्=मनोज्ञत्वम् यस्य । तेन कस्याम् । पुरि=नगर्याम् । भाग्यवतीनाम् । तरुणीनां=ललनानाम् । लोचनोत्सवः=नयनयोरानन्दः । क्रियते । अनेनेति शेषः । कुत्राऽयं वसतीत्यर्थः ।

(१) अमुना=पुरोदृश्यमानेन । पुत्ररत्नेन=सुतरत्नेन । पुरन्ध्रीणाम्=सुचरित्राणाम् 'पुरन्ध्री सुचरित्रा तु सती साध्वी पतिव्रता' इत्यमरः । पुत्रवतीनाम् ; सीमन्तिनीनां=वधूनाम्मध्ये 'स्त्री योषिदबला योषा नारी सीमन्तिनी वधूः' इत्यमरः । का नाम=नामेति प्रसिद्धार्थकमव्ययम् । सीमन्तमौक्तिकीक्रियते=केशवेशन्यस्ता मुक्तेव, श्रेष्ठा विधीयते । अस्य=पुरतो विद्यमानस्य । का देवी=प्रिया । अस्य अत्र=उद्याने । आगमनकारणम्—आगमनस्य कारणम्=प्रयोजनम् किम् । अस्यात्रागमने को हेतुरिति भावः ।

(२) मन्मथः=कामः । अपहसितनिजलावण्यम्—अपहसितम्=उपहासविषयीकृतम् निजम्=स्वम् लावण्यम्=सौन्दर्यम् येन तम् एनम्=राजवाहनम् । विलोकयन्तीम्=पश्यन्तीम् । माम्=अवन्तिसुन्दरीम् । असूयया=अक्षान्त्या ईर्ष्ययेत्यर्थः 'अक्षान्तिरीर्ष्याऽसूया तु दोषारोपो गुणेष्वपि' इत्यमरः । अतिमात्रम्=भृशम् 'अतिवेलभृशात्यर्थातिमात्रोद्गाढनिर्भरम्' इत्यमरः । मथ्नन्=पीडयन् । निजनाम=स्वकीयामाख्याम् । सान्वयम्—अन्वयेन सहितम्=सार्थकम् । करोति । किं करोमि इति खेदे । कथम्=केन प्रकारेण । अयम्=पुरो दृश्यमानो व्यक्तिविशेषः । ज्ञातव्यः=ज्ञातुम् योग्यः । इति अचिन्तयदित्यनेन सम्बन्धः ।

(३) ततः=तदनन्तरम् । बालचन्द्रिका=पुष्पोद्भवपत्नी । तयोः=अवन्तिसुन्दरीराजवाहनयोः अन्तरङ्गवृत्तिम्=मनोव्यापारम् इतरेतरानुरागवृत्तिमित्यर्थः । भावविवेकैः—भावानाम्=मनोविकाराणाम् विवेकैः=अभिनिवेशैः, विज्ञानैरिति यावत् । ज्ञात्वा=अधिगम्य ।

शाली कुमार किस पुरी के होंगे ? जहाँ की भाग्यवती तरुणियाँ इनके दर्शन से अपने नेत्रों को सफल बनाती होंगी (१) सती नारियों में इन्हें पुत्र कहने वाली तो सभी सौभाग्यवतियों के शिरोमुकुट होंगी । अर्थात्-इनकी जननी सब नारियों में श्रेष्ठ कही गयी होंगी । इनकी पत्नी कौन होगी ? यहाँ इनका आगमन कैसे हुआ ?

(२) जब मैं इनको देखती हूँ तो ईर्ष्या से तिरस्कृत सौन्दर्य वाला कामदेव मेरे मन को मथकर अपना नामं सार्थक कर रहा है । क्या करूँ ? कैसे पता लगाऊँ ?

(३) बालचन्द्रिका इन दोनों के मनोव्यापार को मानसविकारों के विज्ञान से जान गया,

सन्निधौ राजनन्दनोदन्तस्य सम्यगाख्यानमनुचितमिति लोकसाधारणैर्वाक्यैरभाषत (१) भर्तृदारिके, 'अयं सकलकलाप्रवीणो देवतासान्निध्यकरण आहवनिपुणो भूसुरकुमारो मणिमन्त्रौषधिज्ञः परिचर्यार्हो भवत्या पूज्यताम्' इति ।

(२) तदाकर्ण्य निजमनोरथमनुवदन्त्या बालचन्द्रिकया सन्तुष्टान्तरङ्गा तरङ्गावली मन्दानिलेनेव सङ्कल्पजेनाकुलीकृता राजकन्या जितमारं कुमारं समुचितासनासीन विधाय सखीहस्तेन शस्तेन (३) गन्धकुसुमाक्षतघनसारताम्बूला-

---

कान्तासमाजसन्निधौ—कान्तानां = स्त्रीणां समाजः तस्य सन्निधौ स्त्रीसमुदाये । राजनन्दनोदन्तस्य—राज्ञः नन्दनः राजनन्दनः = राजवाहनः तस्य उदन्तस्य = वृत्तान्तस्य । सम्यगाख्यानम् = विशेषेण कथनम् । अनुचितम् = अशोभनम् । इति विचार्य । लोकसाधारणैः = सांसारिकैः लौकिकैरित्यर्थः । वाक्यैः = वचनैः । अभाषत = उवाच ।

(१) भर्तृदारिके = राजपुत्रि, सम्बोधनपदमेतत् । अयम् = पुरोवर्तमानः । सकलकलाप्रवीणः—सकलासु = समग्रासु कलासु = शिल्पविद्यासु 'कला शिल्पे कालभेदे' इत्यमरः प्रवीणः = कुशलः । देवतासान्निध्यकरणः = देवतानाम् सान्निध्यं = साक्षात्कारः (क्रियते अनेनेति करणे ल्युट्) मन्त्रादिना देवसाक्षात्कारे समर्थः । आहवनिपुणः—आहवे = संग्रामे निपुणः = कुशलः । भूसुरकुमारः = ब्राह्मणकुमारः । मणिमन्त्रौषधिज्ञः—मणिश्च मन्त्रश्च ओषधिश्च ताः जानातीति तथोक्तः । परिचर्यार्हः = सत्कारयोग्यः । भवत्या = श्रीमत्या । पूज्यताम् ।

(२) तदाकर्ण्य—तत् = बालचन्द्रिकयोक्तम् । आकर्ण्य = श्रुत्वा । निजमनोरथम्—निजस्य = स्वस्य मनोरथम् = अभिलाषम् । अनुवदन्त्या = कथयन्त्या । बालचन्द्रिकया = पुष्पोद्भवपत्न्या । सन्तुष्टान्तरङ्गा—सन्तुष्टम् = प्रसन्नम् अन्तरङ्गम् = स्वान्तम् यस्याः सा सन्तुष्टचित्तेत्यर्थः । मन्दानिलेन = मन्दमारुतेन । तरङ्गावली = कल्लोलमाला । इव । संकल्पजेन = संकल्पात् जन्म यस्य सः, तेन कामेन । आकुलीकृता = व्याकुलीकृता । राजकन्या = अवन्तिसुन्दरी । जितमारम्—जितः = पराजितः मारः = कामदेवः येन तम् । कुमारम् = राजवाहनम् । समुचितासनासीनम्—समुचिते = योग्ये आसने = पीठे आसीनम् = उपविष्टम् विधाय = कृत्वा । शस्तेन = प्रशस्तेन ।

(३) गन्धकुसुमेति—गन्धश्च कुसुमञ्च अक्षतञ्च घनसारश्च ताम्बूलञ्च इति, आदीनि येषां

फिर भी स्त्रीसमुदाय में राजकुमार की बात प्रगट करना उसे उचित नहीं जँचा। इसलिए यों ही लौकिक (साधारण) बातों से कहा—(१) भर्तृदारिके, यह सभी कलाओं में कुशल देवताओं को प्रत्यक्ष करने में समर्थ, युद्धविद्या में निपुण, मणि, मन्त्र, और औषधियों के विशेषज्ञ एक ब्राह्मण कुमार हैं। आप के पूज्य हैं। आप इनका सत्कार करें।

(२) बालचन्द्रिका की बातों को सुन कर अपने मनोरथानुरूप कहने वाली बालचन्द्रिका के साथ प्रसन्न होकर कामपीडिता राजकन्या अवन्तिसुन्दरी ने मन्दवायु से थप-थपायी तरङ्गमाला की भाँति, वह कामदेव को जीतने वाले कुमार को एक समुचित आसन पर बैठाकर सखियों के हाथ जुड़ाई गई (३) चन्दन, पुष्प, अक्षत, कपूर, पान सुपारी आदि नाना जातीय प्रशस्त

दिनानाजातिवस्तुनिचयेन पूजां तस्मै कारयामास ।

(१) राजवाहनोऽप्येवमचिन्तयत्–'नूनमेषा पूर्वजन्मनि मे जाया यज्ञवती । नो चेदेतस्यामेवंविधोऽनुरागो मन्मनसि न जायेत । शापावसानसमये तपोनिधिदत्तं जातिस्मरत्वमावयोः समानमेव । तथापि कालजनितविशेषसूचकवाक्यैरस्या ज्ञानमुत्पादयिष्यामि' इति ।

राजवाहनस्य पूर्वजन्मवृत्तान्तश्रावणम्

(२) तस्मिन्नेव समये कोऽपि मनोरमो राजहंसः केलीविधित्सया

नानाजातिवस्तुनिचयानाम् तेन । सखीहस्तेन—सख्याः हस्तेन=करेण सखीसमर्पितेनेत्यर्थः । तस्मै=राजवाहनाय । पूजाम्=अर्चनाम् । कारयामास ।

(१) राजवाहनः=राजकुमारः । अपि । एवम्=वक्ष्यमाणप्रकारेण । अचिन्तयत्=अशोचत् । नूनम्=निश्चयम् 'नूनं तर्केऽर्थनिश्चये' इत्यमरः । एषा=अवन्तिसुन्दरी । पूर्वजन्मनि =जन्मान्तरे मे=मम राजवाहनस्य । जाया=पत्नी । यज्ञवती=यज्ञवतीनामा । 'आसीच्च जन्मान्तरे यज्ञवती शाम्बनृपतेर्भार्या' इति कथेयमनुपदं वक्ष्यते । नोचेत्=अन्यथा । एतस्याम्=अस्याम् । एवंविधः=एवंप्रकारः । अनुरागः=प्रेमातिशयः । मम=राजवाहनस्य । मनसि=हृदये । न जायेत=न उत्पद्येत । शापावसानसमये=शापसमाप्तिकाले । तपोनिधिदत्तम्—तपोनिधिना=तापसेन दत्तम्=अर्पितम् । जातिस्मरत्वम्=जन्मान्तरस्मरणम् आवयोः=उभयोः राजवाहनावन्तिसुन्दर्योः । समानम्=तुल्यम् । एव । तथापि । कालजनितविशेषसूचकवाक्यैः—कालेन=दीर्घकालेन जनितः=उत्पादितः यः विशेषः=विस्मरणादिकम् तस्य सूचकानि=प्रकाशकानि यानि वाक्यानि=वचनानि तैः । अस्याः=अवन्तिसुन्दर्याः । ज्ञानम् । उत्पादयिष्यामि=जनयिष्यामि । इति ।

(२) तस्मिन्नेव समये=चिन्तनवेलायाम् एव । कोऽपि=कश्चिदपि । मनोरमः=सुन्दरः राजहंसः केलीविधित्सया—केलीनाम्=क्रीडानाम् विधित्सा=चिकीर्षा तया ।

वस्तुओं से उसकी पूजा की ।

(१) राजवाहन भी इस प्रकार मन में सोचने लगा—यह राजकुमारी अवश्य ही पूर्व जन्म में मेरी पत्नी यज्ञवती नामकी थी । अन्यथा इसके प्रति मेरे मन में ऐसा अनुराग उत्पन्न नहीं होता । शाप समाप्त होने के समय मुनि का आशीर्वाद था कि 'हम लोगों को पूर्व जन्म का वृत्तान्त स्मरण रहेगा' वह मुझ में और इसमें समान ही प्रतीत हो रहा है । फिर भी बहुत दिन बीतने के कारण जो विशेषता उत्पन्न हो गयी है उसको स्मरण कराने वाले वाक्यों से इसे स्मरण दिलाऊँगा ।

(२) उसी समय एक सुन्दर राजहंस क्रीड़ा करने की इच्छा से अवन्तिसुन्दरी के समीप

तदुपकण्ठमगमत् । (१) समुत्सुकया राजकन्यया मरालग्रहणे नियुक्तां बालचन्द्रिकामवलोक्य समुचितो वाक्यावसर इति सम्भाषणनिपुणो राजवाहनः सलीलमलपत् (२) 'सखि, पुरा शाम्बो नाम कश्चिन्महीवल्लभो मनोवल्लभया सह विहारवाञ्छया कमलाकरमवाप्य तत्र कोकनदकदम्बसमीपे निद्राधीनमानसं राजहंसं शनैर्गृहीत्वा (३) बिसगुणेन तस्य चरणयुगलं निगडयित्वा कान्तामुखं सानुरागं विलोकयन्—

(४) मन्दस्मितविकसितैककपोलमण्डलस्तामभाषत—'इन्दुमुखि ! मया

तदुपकण्ठम्—तस्याः अवन्तिसुन्दर्याः उपकण्ठम् = समीपम् 'उपकण्ठान्तिकाभ्यर्णाभ्यग्रा' इत्यमरः । अगमत् = अगच्छत् ।

(१) समुत्सुकया = उत्कण्ठितया । राजकन्यया = अवन्तिसुन्दर्या मरालग्रहणे = राजहंसग्रहणे । नियुक्ताम् = योजिताम् । बालचन्द्रिकाम् । अवलोक्य = दृष्ट्वा । समुचितः = योग्यः । वाक्यावसरः—वाक्यस्य = प्रश्नस्य वार्तायाः वा अवसरः = कालः इति मनसि विचार्य । सम्भाषणनिपुणः—सम्भाषणे = वार्ताकरणे निपुणः = कुशलः राजवाहनः । सलीलम् = लील सहितम् । अलपत् = अब्रवीत् । (२) सखि = सम्बोधनपदम् । पुरा = पूर्वस्मिन्सम शाम्बः = शाम्बाभिधः । नामेति प्रसिद्धार्थकम् । कश्चित् = एकः । महीवल्लभः = राजा मनोवल्लभया = मनसः वल्लभा तया । सह = सार्द्धम् विहारवाञ्छया = विहारेच्छया कमलाकरम्—कमलस्य आकरम् = सरोवरम् । अवाप्य = गत्वा । तत्र = सरोवरे । कोकनदकदम्बसमीपे—कोकनदानाम् = रक्तकमलानाम् कदम्बः = समूहः तस्य समीपे = अन्तिके । निद्राधीनमानसम्—निद्रायाः अधीनम् = वशीभूतम् मानसं यस्य सः, तम् । राजहंसम् = मरालम् । शनैः = मन्दम् । गृहीत्वा = आदाय ।

(३) बिसगुणेन = कमलसूत्रेण । तस्य = मरालस्य । चरणयुगलम् = पादद्वयम् । निगडयित्वा = बद्ध्वा । कान्तामुखम् = प्रियाननम् । सानुरागम् = अनुरागेण सहितम् यथा स्यात्तथा । विलोकयन् = पश्यन् ।

(४) मन्दस्मितेति—मन्दस्मितेन = ईषद् हसितेन विकसितम् = प्रफुल्लम् एकं कपोलमण्डलम् यस्य सः तथोक्तः । ताम् = स्ववल्लभाम् । अभाषत = उवाच । इन्दुमुखि = चन्द्रमुखि

आया । (१) उसे देखकर राजकुमारी उत्सुक हो उठी और बालचन्द्रिका को उसे पकड़ने के लिए भेज दिया । इस तरह एकान्त में उचित अवसर देखकर राजवाहन ने प्रेमपूर्वक बा आरम्भ की । (२) सखि, पूर्वकाल में शाम्ब नामक एक राजा अपनी प्रियतमा के साथ विहार की इच्छा से एक सरोवर के समीप गया । वहाँ रक्त कमलसमूह के पास एक राजहंस निद्रा की गोद में पड़ा था । उसे धीरे से पकड़ कर शाम्ब ने उसके दोनों पाँवों को (३) मृणालतन्तु से बाँध दिया । फिर प्रेम से अपनी प्रिया की ओर देखकर (४) मुस्कुराहट से प्रफुल्लित कपोल वाला राजा शाम्ब—उससे बोला । चन्द्रवदने, मैंने राजहंस को बाँध

बद्धो मरालः शान्तो मुनिवदास्ते । स्वेच्छयानेन गम्यताम्’ इति ।

(१) सोऽपि राजहंसः शाम्बमशपत्—‘महीपाल, यदस्मिन्नम्बुजखण्डेऽनुष्ठानपरायणतया परमानन्देन तिष्ठन्तं नैष्ठिक मामकारणं राज्यगर्वेणावमानितवानसि तदेतत्पाप्मना रमणीविरहसन्तापमनुभव’ इति ।

(२) विषण्णवदनः शाम्बो जीवितेश्वरीविरहमसहिष्णुर्भूमौ दण्डवत्प्रणम्य सविनयमभाषत—‘महाभाग, यदज्ञानेनाकरवं तत्क्षमस्व’ इति ।

सम्बोधनपदमेतत् । मया = शाम्बेन । बद्धः = निगडितः । मरालः = राजहंसः । मुनिवत् = मुनिना तुल्यः । शान्तः = स्थिरः । आस्ते = वर्तते । (अधुना) अनेन = मरालेन स्वेच्छया = यथेच्छम् गम्यताम् । इति अभाषतेति सम्बन्धः ।

(१) सोऽपि = मरालोपि शाम्बम् = नृपम् । अशपत् = शशाप । महीपाल, सम्बोधनपदमेतत् । यत् । अस्मिन् । अम्बुजखण्डे = कमलवने । अनुष्ठानपरायणतया—अनुष्ठाने = ध्याने परायणः = संलग्नः तस्य भावः तया परमानन्देन = परमश्चासौ आनन्दः तेन । तिष्ठन्तम् = वर्तमानम् । नैष्ठिकम्—निष्ठा = अन्तः ‘निष्ठा निष्पत्तिनाशान्ताः’ इत्यमरः मरणमिति यावत् तत्कालपर्यन्तमेकरूपेण कालं यापयति = चरतीति ठक् नियमवन्तमित्यर्थः । माम् = मुनिम् । राज्यगर्वेण = राज्यमदेन । अकारणम् यथा स्यात्तथा अपमानितवान् = तिरस्कृतवान् । असि । तत् = तस्मात् । एतेन पाप्मना = पापेन । रमणीविरहसन्तापम्—रमण्याः = स्त्रियाः विरहः = वियोगः तेन यः सन्तापः = क्लेशः तम् । अनुभव = भुङ्क्ष्व । इति ‘अशपत्’ इत्यनेन सम्बन्धः ।

(२) विषण्णवदनः—विषण्णम् = दुःखोपहतम् वदनम् = मुखं यस्य सः शाम्बः = नृपतिः । जीवितेश्वरीविरहम्—जीवितेश्वर्याः = प्राणप्रियायाः विरहम् = वियोगम् । असहिष्णुः = सोढुमसमर्थः भूमौ = पृथिव्याम् । दण्डवत्—दण्डेन = लगुडेन तुल्यम् । प्रणम्य = नमस्कृत्य । सविनयम् = विनयेन सहितम् यथा स्यात्तथा । अभाषत = उक्तवान् । महाभाग = सम्बोधनपदमेतत् । यत् = यत्किञ्चित् । अज्ञानेन = अबोधेन । अकरवम् = कृतवान् । तत् क्षमस्व = क्षमां कुरु अभाषतेति पूर्वेणान्वयः । सः = मरालरूपधारी । तापसः = तपस्वी । करुणा-

---

दिया है वह मुनि की तरह शान्त बैठा है, अच्छा, अब इसे छोड़ देता हूँ । यह अपनी इच्छा से विचरे ।

(१) उस राजहंस ने राजा शाम्ब को शाप दिया कि ‘राजन्, मैं इस कमल वन में अनुष्ठान परायण होकर परमानन्द से बैठा था । मुझ ब्रह्मनिष्ठ निरपराधी का राज्यमद से तुमने अपमान किया है अतः इस पाप (अपराध) के कारण तुम भी पत्नीविरह जनित सन्ताप भोगो’ ।

( ) राजहंस रूप मुनि की बात सुनकर शाम्ब का मुख उदास हो गया । वह प्राणाधार प्रिया का विरह असह्य समझता हुआ भूमि पर दण्डवत् प्रणाम कर नम्रता पूर्वक बोला—‘महाभाग, मैंने अज्ञान से जो अपराध किया है उसे आप क्षमा करें ।’

स तापसः करुणाकृष्टचेतास्तमवदत्—'राजन् (१) इह जन्मनि भवतः शापफलाभावो भवतु। मद्वचनस्यामोघतया भाविनि जनने शरीरान्तरं गताया अस्याः सरसिजाक्ष्या रसेन रमणो भूत्वा मुहूर्तद्वयं मच्चरणयुगलबन्धकारितया मासद्वयं शृङ्खलानिगडितचरणो रमणीवियोगविषादमनुभूय पश्चादनेककालं वल्लभया सह राज्यसुखं लभस्व' इति। तदनु जातिस्मरत्वमपि तयोरन्वगृह्णात्। 'तस्मान्मरालबन्धनं न करणीयं त्वया' इति।

(२) सापि भर्तृदारिका तद्वचनाकर्णनाभिज्ञातस्वपुरातनजननवृत्तान्ता नून-

---

कृष्टचेताः—करुणया=दयया आकृष्टम् चेतो यस्य सः दयार्द्रचित्तः। तम्=शाम्बम्। अवदत्।

(१) राजन्, सम्बोधनम्। इह=अस्मिन्। जन्मनि=जनने। भवतः=तव। शापफलाभावः=शापस्य फलम्, तस्य अभावः इति। भवतु=अस्तु (किन्तु) मद्वचनस्य=मम वाण्याः। अमोघतया—न मोघम् (=निरर्थकम्) अमोघम्=सफलम् तस्य भावः तया। भाविनि=भविष्यति। जनने=जन्मनि। शरीरान्तरम्=अन्यत् शरीरम् शरीरान्तरम्=अन्यदेहम्। गतायाः=प्राप्तायाः अस्याः सरसिजाक्ष्याः=कमललोचनायाः। रसेन=अनुरागेण। रमणः=वल्लभः। भूत्वा। मुहूर्तद्वयम्=चतुर्विंशतिक्षणाः 'अष्टादश निमेषास्तु काष्ठा त्रिंशत्तु ताः कला। तास्तु त्रिंशत्क्षणस्ते तु मुहूर्तो द्वादशास्त्रियाम्' इत्यमरः। मच्चरणयुगलबन्धकारितया=मच्चरणयुगलस्य बन्धनं कर्तुं शीलं यस्य तस्य भावः तया। मासद्वयं=द्वौ मासौ। शृंखलानिगडितचरणः—शृंखलया निगडितौ=बद्धौ चरणौ यस्य सः। रमणीवियोगविषादम्=रमण्याः वियोगः=विरहः तेन यः विषादः=दुःखम् तम्। अनुभूय। पश्चात्। अनेककालम्=बहुकालं वल्लभया=प्रियया। सह। राज्यसुखम्। लभस्व=प्राप्नुहि। 'इत्यवदत्' इति पूर्वेणान्वयः। तदनु=तत्पश्चात्। तयोः=सभार्ययोः (शाम्बयशवत्योः)। जातिस्मरत्वम्=पूर्वजन्मवृत्तान्तस्मरताम्। अपि। अन्वगृह्णात्=अनुज्ञातवान् तस्मात्=हेतोः मरालबन्धनम्—मरालस्य=राजहंसस्य बन्धनम्। त्वया=भवत्या न करणीयम्। इति।

(२) भर्तृदारिका=राजकन्यका। सा=अवन्तिसुन्दरी अपि। तद्वचनाकर्णनाभिज्ञातस्वपुरातनजननवृत्तान्ता—तस्य=राजवाहनस्य वचनम् तद्वचनम् तस्य आकर्णनेन=श्रवणेन

राजा की बात सुनकर उस तपस्वी का हृदय दया से खिंच गया। वह राजा से बोला-(१) 'राजन्, इस जन्म में तुम्हारा यह शाप अपना फल नहीं दिखायेगा, किन्तु मेरा वचन अमोघ (सत्य) है। अतः आगे जन्म में जब वह शरीरान्तर को प्राप्त करेगी तब तुम इस कमलाक्षी का अनुराग (प्रेम) से स्वामी बनकर दो मुहूर्त मेरे पैरों को बाँधने के कारण—दो महीने तक तुम्हारे पैरों में बेड़ियाँ पड़ी रहेंगी और तुम स्त्रीवियोग जनित क्लेश का अनुभव कर बाद में बहुत दिनों तक अपनी प्रिया के साथ राज्य सुख भोगोगे। पश्चात् उस तपस्वी ने एक और वरदान दिया; तुम दोनों का जातिस्मरत्व (पूर्व जन्म की वार्ता की याद) भी रहेगा'। इसी लिए कहता हूँ कि, आप इस राजहंस को न बाँधे।

(२) राजकुमार की बात सुन कर उस राजकुमारी अवन्तिसुन्दरी को भी पूर्वजन्म की

मयं मत्प्राणवल्लभः' इति मनसि जानती रागपल्लवितमानसा समन्दहासमवोचत् (१) सौम्य, पुरा शाम्बो यज्ञवतीसन्देशपरिपालनाय तथाविधं हंसबन्धनमकार्षीत्। तथा हि लोके पण्डिता अपि दाक्षिण्येनाकार्यं कुर्वन्ति' इति।

(२) कन्याकुमारावेवमन्योन्यपुरातनजनननामधेये परिचिते परस्परज्ञानाय साभिज्ञमुक्त्वा मनोजरागपूर्णमानसौ बभूवतुः।

अभिज्ञातः=स्मृतः स्वपुरातनम्=स्वस्य पुरातनम्, जननम्=जन्म, तस्य वृत्तान्तः यया सा। नूनम्=निश्चयम्। अयम्=राजवाहनः मत्प्राणवल्लभः—मम=अवन्तिकुमार्याः प्राणवल्लभः=स्वामी। इति मनसि=स्वचित्ते। जानती=अवबुध्यती। रागपल्लवितमानसा—रागेण अनुरागेण पल्लवितम्=विकसितम् मानसम् यस्याः सा, अनुरागपूर्णमानसेत्यर्थः। समन्दहासम्=मन्दहासेन सहितम् यथा स्यात्तथा। अवोचत्=उक्तवती।

(१) सौम्य=इति सम्बोधनपदम्। पुरा=पूर्वस्मिन् काले। शाम्बः=तन्नामा नृपतिः यज्ञवतीसन्देशपरिपालनाय—यज्ञवती=शाम्बनृपतेः अग्रमहिषी (परिगृहीता पत्नी) तस्याः सन्देशः=आग्रहः वचनमिति यावत् तस्य परिपालनाय=परिरक्षणाय। तथाविधम्=तथा विधा यस्य तत्। हंसबन्धनम्=हंसस्य बन्धनम्। अकार्षीत्=कृतवान्। हि=यतः। लोके=संसारे। पण्डिताः=विद्वांसः। अपि दाक्षिण्येन=स्त्रीणामाग्रहेण प्रीणनहेतुनेत्यर्थः अन्यानुरोधेनेति यावत्। अकार्यं=अनुचितम् कर्म। कुर्वन्ति। इति।

(२) एवम्=इत्थम्। कन्याकुमारौ=अवन्तिसुन्दरीराजवाहनौ। अन्योन्यपुरातनजनननामधेये—अन्योन्यस्य=परस्परस्य पुरातनम्=प्राचीनम् जननम्=जन्म च नामधेयं=नाम च ते। परिचिते। परस्परज्ञानाय=अन्योन्यप्रतिबोधनाय। साभिज्ञम्—अभिज्ञानेन=प्रमाणेन सहितम्। उक्त्वा। मनोजरागपूर्णमानसौ—मनोजेन=कामेन रागेण=अनुरागेण च पूर्णं=व्याप्तम् मानसम् ययोः तौ। बभूवतुः=अभूताम्।

बातें याद आ गईं और उसने अपने मन ही मन जान लिया कि निश्चय ही यह मेरे प्राणवल्लभ हैं। ऐसा निश्चय होने पर अनुरागातिरेक से उसका चित्त खिल उठा और वह मन्दमुसकान के साथ बोली--

(१) सौम्य, पूर्व काल में राजा शाम्ब ने अपनी पत्नी यज्ञवती के वचनों की रक्षा के लिये ही उस प्रकार के हंस को बाँधा था। इससे जाना जाता है कि दूसरे के आग्रह बस पंडित भी अकार्य कर बैठते हैं।

(२) इस तरह अवन्तिसुन्दरी और राजवाहन परस्पर पुरातन जन्म और नाम से परिचित होने पर परस्पर प्रतिबोध (ज्ञान) के लिए सप्रमाण बातों को कह कर कामदेव और अनुराग से पूर्ण होकर काम के वशीभूत हो गये।

अवन्तिसुन्दर्या मातुरागमनं विरहे कष्टानुभवश्च

(१) तस्मिन्नवसरे मालवेन्द्रमहिषी परिजनपरिवृता दुहितृकेलीविलोकनाय तं देशमवाप। बालचन्द्रिका तु तां दूरतो विलोक्य ससम्भ्रमं रहस्यनिर्भेदभिया हस्तसंज्ञया पुष्पोद्भवसेव्यमानं राजवाहनं वृक्षवाटिकान्तरितगात्रमकरोत्। सा मानसारमहिषी सखीसमेताया दुहितुर्नानाविधां विहारलीलामनुभवन्ती क्षणं स्थित्वा दुहित्रा समेता निजागारगमनायोद्युक्ता बभूव।

(२) मातरमनुगच्छन्ती अवन्तिसुन्दरी 'राजहंसकुलतिलक, विहारवाञ्छया

---

(१) तस्मिन् अवसरे = समये। मालवेन्द्रमहिषी—मालवेन्द्रस्य = मालवनृपतेः महिषी = पट्टराज्ञी। परिजनपरिवृता—परिजनैः = सेवकैः परिवृता = युक्ता। दुहितृकेलीविलोकनाय—दुहितुः = कन्यायाः केली = क्रीडा तस्या विलोकनाय = दर्शनाय। तम् देशम् = प्रदेशम्। अवाप = प्राप्तवती। बालचन्द्रिका = पुष्पोद्भवपत्नी। ताम् = महाराज्ञीम्। दूरतः = विप्रकृष्टतः। विलोक्य = दृष्ट्वा। ससम्भ्रमम्—संभ्रमेण = त्वरया सहितम्; सत्वरमित्यर्थः। 'आरम्भः सम्भ्रमस्त्वरा' इत्यमरः। रहस्यनिर्भेदभिया—रहसि भवं रहस्यम् = गोप्यम् तस्य निर्भेदः = ख्यातिः तस्य भिया = शङ्कया महाराज्ञी यदि राजपुत्रं पश्येत् तदा गोप्यं निर्भिद्येत इति शङ्कयेत्यर्थः। हस्तसंज्ञया = करचेष्टया 'इशारे से' इति भाषा। पुष्पोद्भवसेव्यमानम्—पुष्पोद्भवेन सेव्यमानम् = संसेवितम् राजवाहनम्। वृक्षवाटिकान्तरितगात्रम्—वृक्षवाटिकायाम् = अन्तरितम् = गोपितम् गात्रम् = शरीरम् यस्य तथाविधम्। अकरोत्। मानसारमहिषी = मालवेन्द्रपत्नी। सा = राजमहिषी। सखीसमेतायाः = सख्या समेता सखीसमेता तस्याः। दुहितुः = अवन्तिसुन्दर्याः नानाविधाम् = बहुप्रकाराम्। विहारलीलाम्। अनुभवन्ती = पश्यन्ती। क्षणम् = कश्चित्कालम्। स्थित्वा = विश्रम्य। दुहित्रा = कन्यया। समेता = युक्ता। निजागारगमनाय—निजस्य = स्वस्य अगारम् = गृहम् तत्र गमनाय। उद्युक्ता = उद्यता बभूव।

(२) मातरम् = जननीम्। अनुगच्छन्ती—अनु = पश्चात् गच्छन्ती = सरन्ती। अवन्तिसुन्दरी = राजपुत्री। राजहंसकुलतिलक = सम्बोधनपदमेतत् श्लिष्टेन पक्षि-विशेषस्य एवं राजवाहनस्य च ग्रहणम्। तथा च—राजहंसस्य = तन्नाम्नः नृपतेः कुले = वंशे तिलकः = भूषणः इव, पक्षे—राजहंसस्य = पक्षिविशेषस्य कुले = मण्डले तिलकः इवेत्यर्थद्वयात् श्लिष्टम्

---

(१) उसी समय मालवेन्द्र मानसार की पटरानी अपने परिजनों के साथ कन्या का खेल देखने के लिए उस उद्यान में आ पहुँचीं। बालचन्द्रिका ने उन्हें दूर से ही आते देख शीघ्र ही हाथ के इशारे से पुष्पोद्भव सहित राजवाहन को वृक्षों की ओट में छिप जाने को कहा; क्योंकि उसे भय था कि इन दोनों का रहस्य (प्रेम) कहीं खुल न जाय। मानसार की पटरानी सखियों के साथ अपनी कन्या की अनेक विहारलीलाओं को देखती हुई वहाँ कुछ देर ठहरीं बाद राजकन्या अवन्तिसुन्दरी को साथ लेकर अपने महल में जाने को तैयार हुई।

(२) माता के पीछे जाती हुई राजकुमारी अवन्तिसुन्दरी ने हंस के बहाने कुमार से

केलिवने मदन्तिकमागतं भवन्तमकाण्ड एव विसृज्य मया समुचितमिति जनन्यनुगमनं क्रियते ; तदनेन भवन्मनोरागोऽन्यथा मा भूत्' इति मरालमिव कुमारमुद्दिश्य समुचितालापकलापं वदन्ती पुनः पुनः परिवृत्तदीननयना वदनं विलोकयन्ती निजमन्दिरमगात् ।

(१) तत्र हृदयवल्लभकथाप्रसङ्गे बालचन्द्रिकाकथिततदन्वयनामधेया मन्मथबाणपतनव्याकुलमानसा विरहवेदनया दिने दिने बहुलपक्षशशिकलेव क्षामक्षा-

---

पदमेतत् । विहारवाञ्छया = विहर्तुमिच्छया । (अत्र) केलिवने = क्रीडोद्याने । मदन्तिकम् = अस्मत्समीपम् । आगतम् = प्राप्तवन्तम् । भवन्तम् । अकाण्डे = असमये । एव विसृज्य = विहाय । जनन्यनुगमनम्—जनन्याः = मातुः अनुगमनम्—अनु = पश्चात् गमनम् समुचितम् = अवश्यकर्तव्यमिति हेतोः । मया = अवन्तिसुन्दर्या । मातुरनुगमनम् क्रियते । तद् अनेन = व्यापारेण । भवन्मनोरागः— भवतः = तव मनोरागः = मनसि रागः = वृत्तिः । अन्यथा = विपरीतम् । मा भूत् = मयि विषये भवन्मनोवृत्तिरन्या मा भूदिति भावः । इति = इत्थम् । मरालमिव = राजहंसपक्षिविशेषम् इव । कुमारम् = राजवाहनम् उद्दिश्य । समुचितालापकलापम्—आलापस्य = आभाषणस्य कलापः = समूहः, समुचितश्चासौ आलापकलापश्च तम् । वदन्ती = उच्चारयन्ती । पुनः पुनः = मुहुर्मुहुः । परिवृत्तदीननयना = परिवृत्ते दीने नयने यस्याः सा = परिवृत्तदीननयना । वदनम् = मुखम् राजकुमारस्येति शेषः विलोकयन्ती = पश्यन्ती । निजमन्दिरम् = स्वगृहम् । अगात् = अगच्छत् ।

(१) तत्र = निजभवने । हृदयवल्लभकथाप्रसङ्गे—हृदयस्य वल्लभः = प्राणेशः तस्य कथाप्रसङ्गे = विषये । बालचन्द्रिकाकथिततदन्वयनामधेया = बालचन्द्रिकया कथिते तस्य (राजवाहनस्य) अन्वयनामधेये अन्वयः = वंशश्च नामधेयम्—नाम चेति = कुलनामनी यस्यै इति तयोक्ता । मन्मथबाणपतनव्याकुलमानसा—मन्मथबाणपतनेन व्याकुलम् मानसम् = चित्तम् यस्याः सा । विरहवेदनया—विरहस्य = वियोगस्य वेदना = पीडा तया । दिने दिने = प्रतिदिनम् । बहुलपक्षशशिकलेव—बहुलपक्षे या शशिकला = चन्द्रकला 'कला तु षोडशो भागः'

कहा—हे राजहंसकुलतिलक, (यह श्लिष्ट सम्बोधन पद है) विहार की इच्छा से इस क्रीडोद्यान में आप मेरे समीप आये थे । किन्तु असमय में ही आपको छोड़ कर 'माता का अनुगमन आवश्यक कर्त्तव्य है यह जान कर ही जा रही हूँ । इससे आपके हृदय का प्रेम कम न हो ।' इस प्रकार हंस के बहाने राजकुमार से उचित क्षमा याचना करती हुई और बार-बार मुड़कर दुःखी नेत्रों से देखती हुई वह अपने महल को चली गई ।

(१) वहाँ हृदयेश्वर की कथाप्रसङ्ग में बालचन्द्रिका के मुख से जब उसे राजकुमार के वंश और नाम का पता चला तो वह कामदेव के बाणों से विद्ध (घायल) हो गयी । विरहवेदना से कृष्णपक्ष के चन्द्रमा की भाँति प्रतिदिन अत्यन्त क्षीण हो चली । भोजनादि समस्त

माऽऽहारादिसकलव्यापारं परिहृत्य रहस्यमन्दिरे मलयजरसक्षालितपल्लवकुसुमकल्पिततल्पतलावर्तितनुलता बभूव ।

(१) तत्र तथाविधामवस्थामनुभवन्तीं मन्मथानलसन्तप्तां सुकुमारीं कुमारीं निरीक्ष्य खिन्नो वयस्यागणः (२) काञ्चनकलशसञ्चितानि हरिचन्दनोशीरघनसारभिलितानि तदभिषेककल्पितानि सलिलानि बिसतन्तुमयानि वासांसि च नलिनीदलमयानि तालवृन्तानि च सन्तापहरणानि बहूनि संपाद्य तस्याः शरीरमशिशिरयत् । तदपि शीतलोपचरणं सलिलमिव तप्ततैले तदङ्गदहनमेव समन्तादाविश्चकार ।

इत्यमरः सा इव । क्षामक्षामा = अतिक्षीणा अतिकृशेत्यर्थः । आहारादिसकलव्यापारम्—आहारः = भोजनम् आदिः यस्य सकलव्यापारस्य तम् । परिहृत्य = विहाय । रहस्यमन्दिरे = जनशून्ये भवने । मलयजरसेति — मलयजरसेन = चन्दनद्रवेण क्षालितैः = सिक्तैः पल्लवैः कुसुमैश्च कल्पितम् = निर्मितम् यत् तल्पतलं = शय्या तत्र आवर्तिनी = लुठन्ती तनुलता = गात्रयष्टिः यस्याः सा बभूव ।

(१) तत्र = रहस्यमन्दिरे । तथाविधावस्थाम् = तथा विधा अवस्था यस्याः सा ताम् । अनुभवन्तीम् । मन्मथानलसन्तप्ताम्—मन्मथानलेन = कामाग्निना सन्तप्ताम् = ज्वलन्तीम् । सुकुमारीम् = कोमलाङ्गीम् । कुमारीम् = अवन्तिसुन्दरीम् । निरीक्ष्य = अवलोक्य खिन्नः = विषण्णः । वयस्यागणः = सखीसमूहः ।

(२) काञ्चनकलशसञ्चितानि—काञ्चनस्य = सुवर्णस्य कलशः, तस्मिन् सञ्चितानि = एकत्र कृतानि । हरिचन्दनोशीरघनसारमिलितानि—हरिचन्दनञ्च उशीरञ्च घनसारश्चेति, तैः मिलितानि = युक्तानि मिश्रितानीत्यर्थः । तदभिषेककल्पितानि—तस्याः अभिषेकाय = स्नानाय कल्पितानि = रचितानि । सलिलानि = जलानि । बिसतन्तुमयानि = विसतन्तुप्रचुराणि मृणालसूत्रनिर्मितानीत्यर्थः वासांसि = वस्त्राणि च । नलिनीदलमयानि—नलिन्याः = कमलिन्याः दलानि = पत्राणि तत्प्रचुराणि तालवृन्तानि च । सन्तापहराणि = कामज्वरविनाशकानि । बहूनि (वस्तूनि) सम्पाद्य = निर्माय । तस्याः = अविन्तसुन्दर्याः । शरीरम् । अशिशिरयत् =

व्यापारों को छोड़कर वह एक कमरे में चंदन के जल से सींचे फूलों और पत्तों के बिछोने पर लोटती (करवट बदलती) काटने लगी ।

(१) शय्या पर उस प्रकार की अवस्था को भोगती हुई और कामाग्नि से सन्तप्त सुकुमारी राजकुमारी को जब सखियों ने देखा तो वे अत्यन्त व्याकुल हो गयीं । उन्होंने उसके स्नान के लिए (२)सोने के घड़े में मलयगिरि चन्दन, खस और कपूर मिलाकर जल तैयार किया और सन्ताप मिटाने वाली अनेक वस्तुएँ एकत्र कीं । जैसे—मृणालसूत्र के बने कपड़े और कमल पत्तों के बने पंखे जिनसे अवन्तिसुन्दरी के शरीर को शीतल बनाया । किन्तु—सभी शीतलोपचार खोलते तेल में पानी के छींटों की तरह उसकी देह को चारों ओर से अधिक सन्तप्त ही करने में समर्थ हुए ।

(१) किंकर्तव्यतामूढां विषण्णां बालचन्द्रिकामीषदुन्मीलितेन कटाक्षवीक्षितेन बाष्पकणाकुलेन विरहानलोष्णनिःश्वासग्लपिताधरया नताङ्ग्या शनैः शनैः सगद्गद व्यलापि—

(२) 'प्रियसखि, कामः कुसुमायुधः पञ्चबाण इति नूनमसत्यमुच्यते। इयमहमयोमयैरसंख्यैरिपुभिरनेन हन्ये। सखि, चन्द्रमसं वडवानलादतितापकरं मन्ये। यदस्मिन्नन्तःप्रविशति शुष्यति पारावारः, सति निर्गते तदैव वर्धते।

शीतलोचकार। तदपि=सखीभिः कृतमपि। शीतलोपचारम्। तप्ततैले सलिलम्=जलमिव (यथा तप्ततैले जलनिक्षेपेण सन्तापाधिक्यमेव जायते तद्वत्) समन्तात्=चतुर्दिक्षु। तदङ्गदहनमेव—तस्याः अङ्गम् तदङ्गम् तस्मिन्, दहनमेव=अग्निमेव। आविश्चकार=प्रज्वलयामास।

(१) किंकर्तव्यतामूढाम्=समयेऽस्मिन् किंकर्तव्यम् इति निश्चेतुमसमर्थाम्। विषण्णाम्=खिन्नाम्। बालचन्द्रिकाम्=पुष्पोद्भवपत्नीम्। ईषदुन्मीलितेन—ईषत्=किञ्चित् उन्मीलितेन विकसितेन। बाष्पकणाकुलेन—बाष्पाणाम्=ऊष्माश्रूणाम् 'बाष्पमूष्माश्रु कशिपु' इत्यमरः कणाः=बिन्दवः तैः आकुलेन=व्याप्तेन। कटाक्षवीक्षितेन=अपाङ्गदर्शनेन। 'कटाक्षोऽपाङ्गदर्शने' इत्यमरः। विरहानलोष्णनिःश्वासग्लपिताधरया—विरहानलस्य = वियोगाग्नेः उष्णनिःश्वासेन=ऊष्णमुखवायुना ग्लपितः=क्षामः अधरः यस्याः सा, तया। नताङ्ग्या=अवन्तिसुन्दर्या। शनैः शनैः=मन्दम् मन्दम्। व्यलापि=व्यभाषि।

(२) प्रियसखि, कामः=कन्दर्पः। कुसुमायुधः=पुष्पायुधः। पञ्चबाणः तस्य पञ्चसंख्यका बाणाः सन्ति। इति नूनं=निश्चयेन असत्यम्=मिथ्या। उच्यते=कथ्यते। जनैरिति शेषः। इयम् अहम्। अयोमयैः=लौहनिर्मितैः। असंख्यैः=संख्यातुमशक्यैः। इषुभिः=बाणैः। अनेन=कामेन। हन्ये=हताऽस्मि सखि, वडवानलात्=समुद्राग्नेः 'और्वस्तु वाडवो वडवानलः' इत्यमरः। अतितापकरम्—अतितापस्य=संतापस्य करः तम्। चन्द्रमसम्=हिमांशुम्। मन्ये। यत्=यस्मात् कारणात्। अन्तःप्रविशति=प्रातरस्तं गते जलमध्ये प्रविशतीत्यर्थः अस्मिन्=चन्द्रमसि पारावारः=समुद्रः। शुष्यति। निर्गते=सायमुदिते सतीत्यर्थः पारावारः वर्द्धते। वर्तते खल्वेषा किंवदन्ती यदस्तमनवेलायां चन्द्रः समुद्राम्भसि निमज्जति तेन पारावा-

---

(१) अब क्या करना चाहिये यह निश्चय करने में असमर्थ तथा दुःखी बालचन्द्रिका को आँसू भरी अधखिली आँखों से देख कर विरहाग्नि से उष्ण निःश्वास से मुरझे अधरों वाली नताङ्गी वह अवन्तिसुन्दरी गद्गद कण्ठ से धीरे धीरे बोली—

(२) प्रिये, लोगों का कहना है कि—'कामदेव के आयुध फूल के बने हैं और उसके बाण भी पाँच ही है' यह सर्वथा असत्य है। क्योंकि—लोहे के असंख्य बाणों से वह मुझे मार रहा है। सखि, चन्द्रमा तो बड़वानल (समुद्राग्नि) से भी अधिक तापकर (धधकता) प्रतीत होता है। मेरा अनुभव इसलिए ठीक है कि—जब वह समुद्र में प्रवेश करता है तब समुद्र सूख जाता है और जब निकल जाता है तब समुद्र बढ़ने लगता है। चन्द्रमा के दोषों

दोषाकरस्य दुष्कर्म किं वर्ण्यते मया ? यदनेन निजसोदर्याः पद्मालयाया गेहभूतमपि कमलं विहन्यते ।

(१) विरहानलसंतप्तहृदयस्पर्शेन नूनमुष्णीकृतः स्वल्पीभवति मलयानिलः। नवपल्लवकल्पितं तल्पमिदमनङ्गाग्निशिखापटवमिव सन्तापं तनोस्तनोति । (२) हरिचन्दनमपि पुरा निजयष्टिसश्लेषवदुरगरदनलिप्तोल्बणगरलसंकलितमिव तापयति शरीरम् । (३) तस्मादलमलमायासेन शीतलोपचारे । (४) लावण्य-

---

रस्य वृद्धिर्न भवति । उत्थिते च वर्द्धते । अतः कथ्यते यदस्यान्तः स्थित्या पारावारः शुष्यति निर्गमेण च वर्द्धते । अत एव समुद्राग्नेरतितरां सन्तापकरश्चन्द्रः ।

दोषाकरस्य—दोषा = रजनी तस्याः करः, तस्य = चन्द्रमसः । वा दोषाणाम् = दुष्कर्मणाम् आकरस्य = निधेः । दुष्कर्म = दुष्कार्यम् । मया = अवन्तिसुन्दर्या । किम् वर्ण्यते । यत् अनेन = इन्दुना । निजसोदर्याः—निजस्य = स्वस्य सोदरी = समानमुदरं यस्याः सा = भगिनी तस्याः । पद्मालयायाः = कमलायाः लक्ष्म्याः इत्यर्थः । गेहभूतम् = गृहरूपम् निवासस्थानमित्यर्थः । कमलम् अपि । विहन्यते = मुकुलीक्रियते ।

(१) विरहानलसन्तप्तहृदयस्पर्शेन—विरहानलेन = वियोगाग्निना सन्तप्तस्य = संज्वरितस्य हृदयस्य स्पर्शेन = संसर्गेण । नूनम् = निश्चयेन । उष्णीकृतः—च्विप्रत्ययान्तोऽयम् । मलयानिलः = मलयपवनः । स्वल्पीभवति = न स्वल्पः अस्वल्पः अस्वल्पः स्वल्पः भवतीति च्विः । नवपल्लवकल्पितम्—नवेन = नूतनेन पल्लवेन किसलयेन कल्पितम् = निर्मितम् इदम् तल्पम् = शय्या । 'तल्पं शय्याट्टदारेषु' इत्यमरः । अनङ्गाग्निशिखापटलमिव—अनङ्गस्य = कामस्य अग्निः तस्य या शिखा = अर्चिः तस्याः पटलम् = समूहः तदिव । तनोः = शरीरस्य । संतापम् = संज्वरम् । तनोति = प्रकटयति ।

(२) । पुरा = पूर्वकाले । निजयष्टिसंश्लेषवदुरगरदनलिप्तोल्वणगरलसंकलितम् = निजयष्टेः = स्वाश्रयशाखायाः संश्लेषवन्तः = सम्पर्किणः ये उरगाः = सर्पाः तेषां रदनेन = दन्तेन लिप्तम् = युक्तम् यत् उल्वणम् = उत्कटम् गरलम् = विषम् तेन संकलितम् = व्याप्तम् । इव हरिचन्दनम् = मलयजरसः । शरीरम् = देहम् । तापयति । (३) तस्मादलम् = भवतीभिः यद् यच्छीतलोपचारा विधीयन्ते तत्सर्वाणि दुःखाकुर्वन्त्यतो निरर्थकाण्येवेति भावः । अलमलमिति भृशार्थे द्विरुक्तिः । आयासेन = उपचारेण शीतलोपचारे आयासेन अलमलमिति सम्बन्धः । (४) लावण्यजितमारः—लावण्येन = सौन्दर्येण जितः = विजितः

का वर्णन मैं कहाँ तक करूँ ? वह तो अपनी सगी बहन—लक्ष्मी का घर कमल को भी नष्ट कर देता है ।

(१) मेरे हृदय में ऐसी विरह की अग्नि जल रही है कि उसके द्वारा सन्तप्त हृदय का स्पर्श मात्र से ही गरम होकर मलयानिल भी कम हो जाता है । नई कोपलों का यह कोमल बिछौना भी कामाग्नि की ज्वाला समूह जैसा मेरी देह को झुलसा रहा है । (२) मलयागिरि चन्दन के वृक्षों पर लिपटे सर्पों के दाँतों से निकले विष से व्याप्त चन्दन का लेप भी शरीर को तप्त कर रहा है । (३) इसलिए इन शीतल उपचारों का प्रयोग व्यर्थ है । (४)

जितमारो राजकुमार एवागदंकारो मन्मथज्वरापहरणे । सोऽपि लब्धुमशक्यो मया । किं करोमि' इति ।

(१) बालचन्द्रिका मनोजज्वरावस्थापरमकाष्ठां गतां कोमलाङ्गीं तां राजवाहनलावण्याधीनमानसामनन्यशरणामवेक्ष्यात्मन्यचिन्तयत्—

(२) 'कुमारः सत्वरमानेतव्यो मया । नो चेदेनां स्मरणीयां गतिं नेष्यति मीनकेतनः । तत्रोद्याने कुमारयोरन्योन्यावलोकनवेलायामसमसायकः समं मुक्त-

---

मारः = कामः येन सः । राजकुमारः = राजवाहनः । एव मन्मथज्वरापहरणे—मन्मथज्वरस्य = कामज्वरस्य अपहरणे = अपनयने । अगदंकारः = न गदं अगदं, करोतीति वैद्यः । 'कारे सत्यागदस्य' इति मुम् 'रोगहार्यगदङ्कारो भिषग्वैद्यो चिकित्सके' इत्यमरः । सोऽपि = राजवाहनोऽपि । मया = अवन्तिसुन्दर्या । लब्धुम् = प्राप्तुम् । अशक्यः = न शक्यः । किं करोमि इति असामर्थ्ये ।

(१) बालचन्द्रिका = पुष्पोद्भवपत्नी । मनोजज्वरावस्थापरमकाष्ठाम्—परमा चासौ काष्ठा चेति परमकाष्ठा मनोजज्वरावस्थायाः—मनोजस्य = कामस्य ज्वरः = संतापः तस्य अवस्था इति मनोजज्वरावस्था तस्याः परमकाष्ठा = अतिशयः ताम् । गताम् = प्राप्ताम् । कोमलाङ्गीम् = सुकुमारशरीराम् । ताम् = अवन्तिसुन्दरीम् । राजवाहनलावण्याधीनमानसाम्—राजवाहनस्य लावण्ये = सौन्दर्ये अधीनम् = वशीभूतम् मानसम् = चित्तम् यस्याः सा ताम् । अनन्यशरणाम्—नास्ति अन्यः शरणम् = रक्षिता यस्याः सा ताम् । 'शरणं गृहरक्षित्रोः' इत्यमरः । अवेक्ष्य—दृष्ट्वा । आत्मनि = स्वस्मिन् । अचिन्तयत् ।

(२) कुमारः = राजवाहनः । सत्वरम् = शीघ्रम् । मया = बालचन्द्रिकया । आनेतव्यः = प्रापयितव्यः । नोचेत् = अन्यथा । मीनकेतनः = कन्दर्पः । एनाम् = अवन्तिसुन्दरीम् । स्मरणीयां गतिम् = कथावशेषताम् । नेष्यति = प्रापयिष्यति । तत्रोद्याने । कुमारयोः = कुमारी च कुमारश्चेत्येकशेषः तयोः = राजवाहनावन्तिसुन्दर्योः । अन्योन्यावलोकनवेलायाम्—अन्योन्यस्य = परस्परस्य अवलोकनवेला = दर्शनसमयः तस्याम् । असमसायकः—असमः = विषमः सायकः = बाणः यस्य सः पञ्चशरः कामदेवः । समम् = सहैव । द्वयोरेवोपरि । मुक्तसायकः =

अपने सौन्दर्य से कामदेव को हरानेवाले वह राजकुमार ही इस कामज्वर से मुझे ठीक कर सकते हैं । किन्तु उनका मिलना भी कठिन है । हाय ! अब क्या करूँ ।

(१) कामज्वर की चरमसीमा पर पहुँची एवं राजवाहन के सौन्दर्य पर मुग्ध उस कोमलाङ्गी अवन्तिसुन्दरी को देखकर बालचन्द्रिका समझ गयी कि इसका चित्त राजवाहन के अधीन हो गया है । इसकी रक्षा अब दूसरा कोई नहीं कर सकता है । अतः वह मन ही मन सोचने लगी (२) मुझे राजवाहन को शीघ्र ही यहाँ ले आना चाहिये, नहीं तो कामदेव इसकी हालत नाजुक कर देगा । जब उपवन में ये दोनों एक दूसरे को देख रहे थे तभी

सायकोऽभूत् । तस्मात्कुमारानयनं सुकरम्' इति । (१) ततोऽवन्तिसुन्दरीरक्षणाय समयोचितकरणीयचतुरं सखीगणं नियुज्य राजकुमारमन्दिरमवाप । (२) पुष्पबाणबाणतूणीरायमाणमानसोऽनङ्गतप्तावयवसंपर्कपरिम्लानपल्लवशयनमधिष्ठितो राजवाहनः प्राणेश्वरीमुद्दिश्य सह पुष्पोद्भवेन संलपन्नागतां प्रियवयस्यामालोक्य पादमूलमन्वेषणीया लतेव बालचन्द्रिकागतेति संतुष्टमना निटिलतटमण्डनीभवदम्बुजकोरकाकृतिलसदञ्जलिपुटाम् (३) 'इतो निषीद' इति निर्दिष्ट-

---

मुक्तः=त्यक्तः सायकः येन सः अभूत् । तस्मात्=कारणात् । कुमारानयनम्=कुमारस्य आनयनम् । सुकरम्=सुसाध्यम् । इति ।

(१) ततः=तदनन्तरम् । अवन्तिसुन्दरीरक्षणाय—अवन्तिसुन्दर्याः रक्षणाय=पालनाय । समयोचितकरणीयचतुरम्—समये=तस्मिन् काले यत् उचितकरणीयम्=कर्तव्यम् तत्र चतुरम् । सखीगणम् नियुज्य । राजकुमारमन्दिरम्=राजवाहनभवनम् । अवाप=प्राप ।

(२) पुष्पदाणबाणतूणीरायमाणमानसः—पुष्पबाणस्य=कन्दर्पस्य बाणाः इति पुष्पबाणबाणाः तेषाम् तूणीरवदाचरत् मानसम् यस्य सः । राजवाहनः इत्यस्य विशेषणम् । अनङ्गतप्तावयवसंपर्कपरिम्लानपल्लवशयनम्—अनंगेन=कामेन तप्तस्य=संज्वरितस्य अवयवस्य=शरीरावयवस्य संपर्क्केण परिम्लानम्=क्षामम् यत् शयनम् अधिष्ठितः=उपविष्टः । 'अधिशीङ्स्थासा'मिति आधारस्य कर्मसंज्ञा । राजवाहनः प्राणेश्वरीम्=अवन्तिसुन्दरीम् । उद्दिश्य=लक्ष्यीकृत्य । पुष्पोद्भवेन सह संलपन्=वार्तां कुर्वन् । आगताम्=प्राप्ताम् । प्रियवयस्याम्=बालचन्द्रिकाम् आलोक्य=दृष्ट्वा । अन्वेषणीया=अन्वेष्टव्या । लता=औषधिविशेषः । इव पादमूलम्=स्वपादसमीपम् । आगता=प्राप्ता । बालचन्द्रिका इति । संतुष्टमनाः=सन्तुष्टम् मनो यस्य सः । (राजवाहनः) निटिलतटमण्डनीभवदम्बुजकोरकाकृतिसदञ्जलिपुटाम्—निटिलतटस्य=भालदेशस्य मण्डनीभवत्=अमण्डनम् मण्डनम् भवत् इति मण्डनीभवत्=आभरणीभवत् यद् अम्बुजकोरकम्=कमलकलिका तस्याकृतिरिव लसत्=शोभमानम् अञ्जलिपुटं यस्याः ताम्=शिरसि कृताञ्जलिपुटाम् ।

(३) इतः=अस्मिन् स्थाने । निषीद=उपविश । इति=इत्यम् निर्दिष्टसमुचितासनासी-

---

कामदेव ने एक साथ ही इन दोनों पर अपने बाणों को छोड़ा था । इसलिये कुमार का लाना कठिन नहीं है । क्योंकि वे भी संतप्त होंगे ।

(१ बाद अवन्तिसुन्दरी की रक्षा में तत्कालोचित सेवा करने में दक्ष सखियों को लगाकर स्वयं राजकुमार के महल में चली गई । (२) वहां जाकर उसने देखा कि राजवाहन का हृदय कामदेव के बाण रखने वाले तूणीर (तरकश) के समान हो रहा है । अभिप्राय यह कि राजवाहन का हृदय काम देव के बाणों से विधा हुआ है । कामज्वर से सन्तप्त अवयवों के सम्पर्क से मुरझाये पल्लव के बिछौने पर वह बैठा है और प्राणेश्वरी अवन्तिसुन्दरी के विषय में ही पुष्पोद्भव से बातें कर रहा है । इतने में राजवाहन ने प्राणेश्वरी की सखी बालचन्द्रिका को वहाँ देखा तो उसे ऐसा लगा कि जिस जड़ी को वह बहुत देर से ढूँढ रहा था वह उसे पैरों के तले ही मिल गयी । वह प्रसन्न हो उठा । मस्तक पर शोभा के लिए लगाये गये । कमलकलिका के समान हाथों को जोड़नेवाली उस बालचन्द्रिका को

समुचितासनासीनामवन्तिसुन्दरीप्रेषितं सकर्पूरं ताम्बूलं विनयेन ददतीं तां कान्तावृत्तान्तमपृच्छत् । तया सविनयमभाणि—

(१) 'देव, क्रीडावने भवदवलोकनकालमारभ्य मन्मथमथ्यमाना पुष्पतल्पादिषु तापशमनमलभमाना (२) वामनेनेवोन्नततरुफलमलभ्यं त्वदुरःस्थलालिङ्गनसौख्यं स्मरान्धतया लिप्सुः सा स्वयमेव पत्रिकामालिख्य 'वल्लभायैनामर्पय' इति मां नियुक्तवती' । राजकुमारः पत्रिकां तामादाय पपाठ—

नाम्—निर्दिष्टे=प्रदर्शिते समुचिते=योग्ये आसने आसीनाम्=उपविष्टाम् बालचन्द्रिकाम् । अवन्तिसुन्दरीप्रषितम्—अवन्तिसुन्दर्या प्रेषितम्=प्रहितम् । सकर्पूरं=कर्पूरेण सहितम् । ताम्बूलम्=वीटिकाम् । विनयेन=प्रश्रयेण । राजवाहनाय ददतीम्=उपहरन्तीम् । ताम्=बालचन्द्रिकाम् । कान्तावृत्तान्तम्—कान्तायाः=अवन्तिसुन्दर्याः वृतान्तम्=वार्ताम् । अपृच्छत् । तया=बालचन्द्रिकया । सविनयम्=विनयेन सहितम् यथा स्यात्तथा । अभाणि=अवादि ।

(१) देव=स्वामिन् । क्रीडावने=क्रीडोद्याने । भवदवलोकनकालम्—भवताम् अवलोकनम् भवदवलोकनम् सः कालः यस्य तम् । आरभ्य । मन्मथमथ्यमाना—मन्मथेन=कामेन मथ्यमाना=पीडयमाना । पुष्पतल्पादिषु—पुष्पस्य तल्पम्=शय्या आदिः येषां तेषु । तापशमनम्—तापस्य=संज्वरस्य शमनम्=शान्तिम् अलभमाना=न लभमाना=अप्राप्नुवती ।

(२) अलभ्यम्=लब्धुमशक्यम् । उन्नततरुफलम्=उन्नतस्य तरोः=वृक्षस्य फलम् । वामनेन=खर्वेण यथा लब्धुमिष्यते तद्वत् । स्मरान्धतया अलभ्यम् त्वदुरःस्थलालिङ्गनसौख्यम्—तव उरस्थलस्य=वक्षःस्थलस्य यदालिङ्गनम् तस्य सौख्यम्=आनन्दम् । लिप्सुः=लब्धुमिच्छुः । सा=अवन्तिसुन्दरी स्वयम् एव । पत्रिकाम्=पत्रम् । आलिख्य=विलिख्य । वल्लभाय=प्रियाय । एनाम्=पत्रिकाम् । अर्पय=देहीति । माम्=बालचन्द्रिकाम् । नियुक्तवती=नियुयोज । राजकुमारः=राजवाहनः । ताम्=पत्रिकाम् । आदाय=गृहीत्वा । पपाठ=पठितुमारब्धवान् ।

देखकर राजवाहन ने कहा (३) 'आओ यहाँ बैठो' इस प्रकार राजवाहन के बताये उचित आसनपर बैठकर अवन्तिसुन्दरी द्वारा भेजे गये कर्पूरमिश्रित पान के बीड़े उसने नम्रता पूर्वक राजवाहन के आगे धर दिये । बाद कुमार ने उससे अपनी प्रिया का कुशल समाचार पूछा । बालचन्द्रिका विनीत भाव से कहने लगी—

(१) राजन्, क्रीडोद्यान में जब से राजकुमारी ने आप को देखा है तब से उसे कामदेव बुरी तरह सता रहा है । यहाँ तक की पुष्प और कोंपल को शय्या पर भी उसे चैन नहीं हैं । (२) वामन (बौना) जैसे हाथ के पहुँच के बाहर, ऊँचे वृक्ष के फल को प्राप्त करने की इच्छा करता है उसी तरह कामान्ध होकर (विवेक खो बैठी है और) दुर्लभ आपके वक्षःस्थल का आलिङ्गन सुख प्राप्त करने की इच्छा से स्वयं पत्र लिखकर आपके समीप भेजा

(१) 'सुभग कुसुमसुकुमार जगदनवद्यं विलोक्य ते रूपम्।
मम मानसमभिलषति त्वं चित्तं कुरु तथा मृदुलम् ॥'

(२) इति पठित्वा सादरमभाषत—'सखि, छायावन्मामनुवर्तमानस्य पुष्पोद्भवस्य वल्लभा त्वमेव तस्या मृगीदृशो बहिश्चराः प्राणा इव वर्तसे। त्वच्चातुर्यमस्यां क्रियालतायामालवालमभूत्। यत्तवाभीष्टं येन प्रियामनोरथः फलिष्यति तदखिलं करिष्यामि।

(१) सुभग=हे प्रिय। जगदनवद्यम्—जगति=संसारे अनवद्यम्=न अवद्यम् अनवद्यम्=निर्दोषम्। कुसुमसुकुमारम्—कुसुमम्=पुष्पम् तदिव सुकुमारम्=कोमलम्। ते=तत्र। रूपम्=स्वरूपम्। त्रिलोक्य=निरीक्ष्य। मम=अवन्तिसुन्दर्याः मानसम्=चित्तम्। अभिलपति=वाञ्छति। त्वम्=भवान्। चित्तम्=स्वहृदयम्। तथा=रूपवत्। यथा रूपं कोमलमस्ति तथा मृदुलम्=कोमलम्। चित्तं कुरु=विधेहि। मां प्रति सदयो भव। (२) इति पठित्वा सादरम् यथा स्यात्तथा अभाषत। सखि; छायावत्=छायया तुल्यम्। माम्=राजवाहनम्। अनुवर्तमानस्य=अनुसरतः। पुष्पोद्भवस्य=मत्सहचरस्य। वल्लभा=प्रिया। त्वमेव=भवत्येव। मृगीदृशः=चपललोचनायाः। तस्याः=अवन्तिसुन्दर्याः। बहिश्चराः=शरीराद्बहिः भ्रमणशीलाः प्राणाः=जीवितम्। इव। अस्यां क्रियालतायाम्—क्रिया=कार्यम्, मदीयं प्रयोजनम् सैव लता=वल्ली तस्याम्। त्वच्चातुर्यम्=युष्मदीया चतुरता। आलवालम्—परिखाकारा जलसेकभूमिरित्यर्थः 'स्यादालवालमावालमावापः' इत्यमरः। अभूत्=जातम्। त्वच्चातुर्यं विना मम मनोरथो न सेत्स्यतीति भावः। यत् तव अभीष्टम् येन च प्रियामनोरथः—प्रियायाः मनोरथः=अभिलाषः। फलिष्यति=सेत्स्यति क्रियामनोरथः इति पाठे क्रियया=आलिङ्गनादिशारीरिकचेष्टया युक्तः मनोरथः अभिलाषः

है और कहा है कि 'इस पत्र को ले जाकर मेरे प्रियतक पहुँचा आओ' राजकुमार ने उस पत्र को लेकर पढ़ना प्रारम्भ किया—

उसमें लिखा था—(१) हे सुभग, पुष्प के सदृश कोमल तथा संसार में अनिन्द्य आपका रूप निहार कर मेरा मन रीझ गया है। अतः आप अपने चित्तको अपने अवयवों जैसा कोमल बनायें। अभिप्राय यह कि—आपका स्वरूप पुष्प की तरह कोमल है किन्तु हृदय अत्यन्त कठोर है।

(२) यह पढ़कर कुमार ने आदर से कहा—'सखि, पुष्पोद्भव मेरे साथ छाया की तरह सर्वदा रहता है। तुम उसकी प्रियतमा हो और उस मृगलोचनी अवन्तिसुन्दरी का बाहर घूमने-फिरने वाले प्राण की तरह हो। इस कार्य रूपलता में तुम्हारी चतुरता आलवाल का कार्य करती है—(जैसे-आल-वाल (थाला) के विना वृक्ष की रक्षा, वृद्धि आदि नहीं होती) उसी तरह तुम्हारी चतुराई विना यह कार्य सिद्ध (मेरा मनोरथ पूर्ण) नहीं हो सकता। जो तुम्हारा अभीष्ट होगा और जिससे प्रिया का मनोरथ पूर्ण होगा वह सब मैं करूँगा।

(१) नताङ्ग्या मन्मनःकाठिन्यमाख्यातम् । यदा केलीवने कुरङ्गलोचना लोचनपथमवर्तत तदैवापहृतमदीयमानसा सा स्वमन्दिरमगात् । सा चेतसो माधुर्यकाठिन्ये स्वयमेव जानाति । दुष्करः कन्यान्तःपुरप्रवेशः । तदनुरूपमुपायमुपपाद्य श्वः परश्वो वा नताङ्गीं संगमिष्यामि । (२) मदुदन्तमेवमाख्याय शिरीषकुसुमसुकुमाराया यथा शरीरबाधा न जायेत तथाविधमुपायमाचर' इति ।

(३) बालचन्द्रिकापि तस्य प्रेमगर्भितं वचनमाकर्ण्य संतुष्टा कन्यापुरमग-

---

तदखिलम्=सम्पूर्णं कर्म क्रियाविशेषणं वा। करिष्यामि=विधास्यामि (१) नताङ्ग्या=प्रियया। मन्मनःकाठिन्यम्—मम मनसः काठिन्यम्। आख्यातम्=कथितम्। यदा केलीवने=क्रीडोद्याने। कुरङ्गलोचना=मृगनयनी लोचनपथम्=नेत्रपथम् अवर्तत=जाता। तदा=तस्मिन् काले। एव, अपहृतमदीयमानसा=अपहृतम् मदीयं मानसम् यया सा। सा=अवन्तिसुन्दरी। स्वमन्दिरम्=निजभवनम्। अगात्=ययौ। सा=अवन्तिसुन्दरी। स्वचेतसः=स्वहृदयस्य। माधुर्यकाठिन्ये=माधुर्य्यञ्च काठिन्यञ्चेति ते। स्वयमेव जानाति। कन्यान्तःपुरप्रवेशः—कन्यायाः अन्तःपुरम्, तत्र प्रवेशः दुष्करः=दुःसाध्यः। तदनुरूपम्—तस्य=प्रवेशस्य अनुरूपम्=योग्यम्। उपायम्=साधनम्। उपपाद्य=कृत्वा। श्वः=आगामिदिने। परश्वः=ततः परदिने वा। नताङ्गीम्=अवन्तिसुन्दरीम्। संगमिष्यामि=संमिलिष्यामि। (२) मदुदन्तम्=अस्मद्वृत्तान्तम्। एवम्=यथा मया अभिहितम्। तथा आख्याय=कथयित्वा। शिरीषकुसुमसुकुमारायाः—शिरीषः=कपीतनः वृक्षविशेषः इत्यर्थः तस्य कुसुमम्=पुष्पम् तद्वत् सुकुमारायाः=कोमलायाः। अवन्तिसुन्दर्याः। यथा=येन प्रकारेण। शरीरबाधा=देहपीडा। न जायेत=न भवेत्। तथाविधम्=तथा विधा यस्य तम्। उपायम्=उद्योगम्। आचर=विधेहि। इति।

(३) बालचन्द्रिका=पुष्पोद्भवपत्नी। अपि। तस्य=राजवाहनस्य। प्रेमगर्भितम्—प्रेमपूर्णम्। वचनम्=भाषितम्। आकर्ण्य=श्रुत्वा। संतुष्टा=प्रसन्ना। कन्यापुरम्=कन्यानिवासस्थानम्। अगच्छत्=जगाम

---

(१) उस कोमलाङ्गी ने मेरे हृदय को कठोर बताया है। जिस दिन मैं उस मृगनयनी को क्रीडा उपवन में देखा उसी दिन वह मेरे मन को चुराकर अपने घर चली गयी। वह हृदय की कोमलता और कठोरता स्वयं जानती है। किन्तु किसी कन्यान्तःपुर में प्रवेश करना अत्यन्त दुष्कर कार्य है। अस्तु, कोई उपाय सोचकर कल या परसों तक उससे अवश्य मिलूँगा। (२) इस प्रकार मेरा वृत्तान्त सुनाकर ऐसा उपाय करना जिससे शिरीषपुष्प जैसी सुकुमारी अवन्तिसुन्दरी को कोई शारीरिक कष्ट न होने पाये।

(३) बालचन्द्रिका राजकुमार के प्रेमगर्भित वचनों को सुनकर अत्यन्त प्रसन्न हो कन्यान्तःपुर को चली गयी।

च्छत्। (१) राजवाहनोऽपि यत्र हृदयवल्लभावलोकनसुखमलभत तदुद्यानं विरहवेदनविनोदाय पुष्पोद्भवसमन्वितो जगाम। (२) तत्र चकोरलोचनावचितपल्लवकुसुमनिकुरम्बं महीरुहसमूह शरदिन्दुमुख्या मन्मथसमाराधनस्थानं च नताङ्गीपदपक्तिचिह्नितं शीतलसैकततल च सुदतीभुक्तमुक्त माधवीलतामण्डपान्तरपल्लवतल्पं च विलोकयल्ललनातिलकविलोकनवेलाजनितशेषाणि स्मारं स्मारं

---

(१) राजवाहनः=राजकुमारः। यत्र=उद्याने। हृदयवल्लभावलोकनसुखम्—हृदयवल्लभायाः=प्राणप्रियायाः अवलोकनम्=दर्शनम् तेन यत् सुखम्=आनन्दः तम्। अलभत=प्राप्तवान्। तदुद्यानम्=तम् आक्रीडम्। 'पुमानाक्रीड उद्यानम्' इत्यमरः। विरहवेदनविनोदाय—विरहस्य वेदना तस्याः विनोदाय=अपनोदाय पुष्पोद्भवसमन्वितः—पुष्पोद्भवेन समन्वितः=युक्तः। जगाम=ययौ।

(२) तत्र=उद्याने। चकोरलोचनावचितपल्लवकुसुमनिकुरम्बम्—चकोरलोचनया चकोरस्य=जीवंजीवस्य इव लोचने=नयने यस्या साः तया=चकोराक्ष्या अवचितानि=एकत्रीकृतानि पल्लवकुसुमनिकुरम्बाणि—पल्लवञ्च कुसुमञ्च इति पल्लवकुसुमे तयोः निकुरम्बानि=समूहाः इति किसलयपुष्पसमूहाः इत्यर्थः। यस्य तम्। महोरुहसमूहम्=वृक्षसंघम्। शरदिन्दुमुख्या—शरत्कालीनः इन्दुः=चन्द्रः स इव मुखं यस्याः सा तया। मन्मथसमाराधनस्थानम्—मन्मथस्य=कन्दर्पस्य यत् समाराधनम् तस्य स्थानम्=भूमिः। च=पुनः। नताङ्गीपदपङ्क्तिचिह्नितम्—नताङ्ग्याः=अवन्तिसुन्दर्याः पदपङ्क्त्या=चरणचिह्नेन चिह्नितम्=अङ्कितम्। शीतलसैकततलम्—शीतलञ्च तत्सैकततलम्=वालुकातलम् तत्। च=पुनः। सुदतीभुक्तमुक्तम्=शोभनाः दन्ताः यस्याः सा तया पूर्वं भुक्तम्=उपभुक्तम् पश्चात् मुक्तम्=त्यक्तम्। माधवीलतामण्डपान्तरपल्लवतल्पम्—माधवीलतायाः=वासन्त्याः मण्डपस्य=जनाश्रयस्य अन्तरे=मध्ये यत् पल्लवतल्पम्=किसलयशय्या तत्। च। विलोकयन्=पश्यन्। ललनातिलकविलोकनवेलाजनितशेषाणि—ललनातिलकम् ललना=स्त्री तस्याः तिलकम्=भूषणमवन्तिसुन्दरी तस्याः विलोकनवेलायाम्=दर्शनसमये जनितः=प्रकटितः शेषः=अवशिष्टः येषां तानि। स्मारं स्मारम्=स्मृत्वा स्मृत्वा मन्दमारुतकम्पितानि—

---

(१) राजवाहन भी जिस उपवन में प्राणेश्वरी का प्रथम दर्शनसुख प्राप्त किया था उसी उपवन में विरह वेदना को दूर करने (मन बहलाने) पुष्पोद्भव के साथ चला गया।

(२) वहां चकोर के समान लम्बी आंखोंवाली उस राजकुमारी अवन्तिसुन्दरी ने, जिन वृक्षों के फूल और पत्ते इकट्ठे किये थे उन वृक्षों को देखकर जहाँ उस शरच्चन्द्रमुखी ने कामदेव की पूजा की थी—उस स्थान को देखा, एवं जिस शीतल वालुकामय प्रदेश में उस नतांगी के पदचाप पड़े थे, उस प्रदेश को तथा माधवी लतामण्डप के मध्य में पड़ी पल्लव शय्या जहाँ वह सुन्दर दांतोंवाली कुमारी लेटी थी, उन सब को देखा। बाद उसे स्त्रीरत्न के प्रथम दर्शन में उत्पन्न हुये हाव-भाव याद आने लगे। फिर मन्द-मन्द पवन से झकोरे गये

मन्दमारुतकम्पितानि नवचूतपल्लवानि मदनाग्निशिखा इव चकितो दर्शं दर्शं मनोजकर्णेजपानामिव कोकिलकीरमधुकराणां क्वणितानि श्रावं श्रावं मारविकारेण क्वचिदप्यवस्थातुमसहिष्णुः परिबभ्राम ।

विद्येश्वरस्यागमनम् प्रतिज्ञाकरणञ्च

(१) तस्मिन्नवसरे धरणीसुर एकः सूक्ष्मचित्रनिवसनः स्फुरन्मणिकुण्डलमण्डितो मुण्डितमस्तकमानवसमेतश्चतुरवेषमनोरमो यदृच्छया समागतः समन्ततोऽभ्युल्लसत्तेजोमण्डलं राजवाहनमाशीर्वादपूर्वकं ददर्श । (२) राजवाहनः

मंदमारुतेन = मलयानिलेन कम्पितानि = वेल्लितानि धुतानीत्यर्थः 'वेल्लितप्रेङ्खिताधूतचलिताकम्पिता धुते' इत्यमरः । नवचूतपल्लवानि = नवाम्रकिसलयानि । मदनाग्निशिखाः—मदनस्य = कामस्य अग्निः = तापः तस्य शिखाः = ज्वाला इव । चकितः यथा स्यात्तथा दर्शं दर्शम् = दृष्ट्वा दृष्ट्वा । मनोजकर्णेजपानाम्—मनोजस्य = कन्दर्पस्य कर्णेजपाः = कर्णेजपन्तीति सूचकाः दुर्मन्त्रिणः तेषामिव । कोकिल-कीर-मधुकराणाम् । क्वणितानि = वाशितानि रुतानीत्यर्थः । श्रावं श्रावं = श्रुत्वा श्रुत्वा । मारविकारेण = कामोद्दीपनतया । क्वचिदपि = कुत्रापि । अवस्थातुम् = स्थितिं कर्तुम् । असहिष्णुः = असहनशीलः । परिबभ्राम = इतस्ततः परिभ्रमणं चकार ।

(१) तस्मिन्नवसरे = परिभ्रमणकाले । एकः । धरणीसुरः = ब्राह्मणः । यदृच्छया = स्वेच्छया अकस्मादित्यर्थः समागतः इत्यग्रिमणान्वयः । सूक्ष्मचित्रनिवसनः—सूक्ष्मं चित्रम् = नानावर्णम् निवसनम् = वस्त्रं यस्य सः । स्फुरन्मणिकुण्डलमण्डितः—मणेः कुण्डलम्, स्फुरत् = चञ्चत् मणिकुण्डलम् तेन मण्डितः = भूषितः । मुण्डित-मस्तक-मानव-समेतः—मुण्डितम् = परिवापितम् मस्तकम् = शिरः यस्य एवंभूतेनान्येन मानवेन = पुरुषेण समेतः = युक्तः । चतुरवेषमनोरमः—चतुरवेषेण मनोरमः = मनोज्ञः । यदृच्छया = स्वेच्छया समागतः = प्राप्तः । समन्ततः = चतुर्दिक्षु । अभ्युल्लसत्तेजोमण्डलम्—अभि = समन्तात् उल्लसत् = स्फुरत् तेजसां मण्डलम् = चक्रवालं यस्य तम् । राजवाहनम् = राजकुमारम् । आशीर्वादपूर्वकम् = आशीर्वादः पूर्वं यस्य तत् यथा स्यात्तथा । ददर्श = दृष्टवान् । (२) राजवाहनः तम् =

आम के नवीन पत्ते जो कामाग्नि की ज्वाला सरीखे कांप रहे थे उन्हें आश्चर्यभरी दृष्टि से देखकर कामदेव के गुप्तचर कोयल-सुग्गे एवं भौरों के कलरव को सुनता हुआ वह राजकुमार कामपीड़ा से व्यथित हो गया । राजकुमार की कामाग्नि भड़क उठी वह कहीं भी स्थिर न हो सका और चारों ओर घूमने-फिरने लगा ।

(१) उसी समय कानों में रत्नजड़े कुण्डल पहने तथा महीन एवं रंगीन वस्त्रधारण किये एक ब्राह्मण अकस्मात् वहाँ आ पहुँचा । उसके साथ एक मनुष्य और था जिसका सिर मुंडा हुआ था । वह वेष-भूषा से बड़ा चतुर और सुन्दर लगता था । उसने चारो ओर बिखरे तेजोमण्डलवाले राजवाहन के समीप आकर आशीर्वाद दिया । (२) राजवाहन ने आदर से पूछा–

सादरम् 'को भवान्, कस्यां विद्यायां निपुणः' इति तं पप्रच्छ। स च 'विद्येश्वरनामधेयोऽहमैन्द्रजालिकविद्याकोविदो विविधदेशेषु राजमनोरञ्जनाय भ्रमन्नुज्जयिनीमद्यागतोऽस्मि' इति शशंस। पुनरपि राजवाहन सम्यगालोक्य 'अस्यां लीलावनौ पाण्डुरतानिमित्तं किम्' साभिप्रायं विहस्यापृच्छत।

(१) पुष्पोद्भवश्च निजकार्यकरणं तर्कयन्नेनमादरेण बभाषे—'ननु सतां सख्यस्याभाषणपूर्वतया चिरं रुचिरभाषणो भवानस्माकं प्रियवयस्यो जातः। सुहृदामकथ्यं च किमस्ति ?

समागतम् पुरुषम्। सादरम्=आदरेण सहितम् यथा स्यात्तथा पप्रच्छ। भवान् कः ? कस्याम् विद्यायां निपुणः=कुशलः ? इति। स=पुरुषः। च। 'अहम् विद्येश्वरः इति नामधेयं यस्य सः। ऐन्द्रजालिकविद्याकोविदः=ऐन्द्रजालिकविद्यायाम् कोविदः=पण्डितः। विविधदेशेषु—विशिष्टा विधा येषां तेषु देशेषु। राजमनोरञ्जनाय—राज्ञाम् मनांसि तेषां रञ्जनाय=विनोदाय। भ्रमन् =अटन्। अद्य=अस्मिन् अहनि। उज्जयिनीम्। आगतः=प्राप्तः। अस्मि। इति शशंस= कथयामास। पुनरपि=भूयोऽपि। राजवाहनम्=राजकुमारं सम्यक्=सुष्ठु आलोक्य= निरीक्ष्य साभिप्रायं=अभिप्रायेण सहितम् क्रियाविशेषणमेतत्। विहस्य=विशेषेण हसित्वा। अपृच्छत्। 'अस्यां लीलावनौ=लीलायाः अवनौ=भूमौ, उद्यान इत्यर्थः। पाण्डुरतायाः निमित्तम्=कारणम् किम् ?' अपृच्छदिति सम्बन्धः। अस्मिन् क्रीडोद्यने निवसन्नपि कथं पीतवर्णम् मुखं धारयसीति भावः।

(१) पुष्पोद्भवश्च निजकार्यकरणम्—क्रियते अनेन इति करणम्=साधनम् निजकार्यस्य करणम्=स्वकार्यसम्पादनदक्षम्। तर्कयन्=भावयन्। एनम्=पुरुषम्। आदरेण= सम्मानेन। बभाषे=उवाच।

ननु=इति, आमन्त्रणे। सताम्=सज्जनानाम्। सख्यस्य=सख्युः भावः तस्य, मित्रतायाः। आभाषणपूर्वतया—आभाषणम्=आलापः पूर्वं यस्मिन् तस्य भावः तया। परस्परालापेनैव सज्जनानां मैत्री भवतीति भावः। चिरम्=बहुकालम्। रुचिरभाषणः—रुचिरम्= प्रियम् भाषणम्=वचनं यस्य सः तथोक्तः। भवान्। अस्माकम्=आवयोः। प्रियवयस्यः= सखा। जातः=सम्पन्नः। सुहृदाम्=सखीनाम् मित्राणामिति यावत् (समीपे)। अकथ्यम्= अप्रकाश्यम्। किम् अस्ति ? न किमपीत्यर्थः।

'आप कौन हैं ? और किस विद्या में निपुण हैं।' उसने कहा—मेरा नाम विद्येश्वर है। मैं इन्द्रजाल विद्या का पण्डित हूँ। अनेक देशों में राजाओं के मनोविनोद के लिए घूमता हुआ आज उज्जयिनी नगरी में आ पहुँचा हूँ। फिर उसने राजवाहन को अच्छी तरह (गौर से) देख साभिप्राय हँसता हुआ पूछा—इस उद्यानभूमि में भी आपके चेहरे पर पीलेपन का क्या कारण है ?

(१) पुष्पोद्भव ने—अपने कार्य में इसके द्वारा सहायता मिलने की आशा से आदरपूर्वक कहा। मित्र, सज्जनों की मैत्री बात-चीत से ही प्रारम्भ होती है और आप बहुत देर से हम-लोगों से मीठी-मीठी बातें कर रहे हैं, अतः आप हम लोगों के मित्र हो गये। इसलिए मित्रों से छिपाएँ ऐसी बात क्या रह गई ? सुनिये।

(१) केलीवनेऽस्मिन्वसन्तमहोत्सवायागताया मालवेन्द्रसुताया राजनन्दनस्यास्य चाकस्मिकदर्शनेऽन्योन्यानुरागातिरेकः समजायत। सततसंभोगसिद्ध्युपायाभावेनासावीदृशीमवस्थामनुभवति' इति।

(२) विद्येश्वरो लज्जाभिरामं राजकुमारमुखमभिवीक्ष्य विरचितमन्दहासो व्याजहार—'देव, भवदनुचरे मयि तिष्ठति तव कार्यमसाध्यं किमस्ति। (३) अहमिन्द्रजालविद्यया मालवेन्द्रं मोहयन् पौरजनसमक्षमेव तत्तनयापरिणय रचयित्वा कन्यान्तःपुरप्रवेश कारयिष्यामीति वृत्तान्त एष राजकन्यकायै सखी-

---

(१) अस्मिन् केलीवने=क्रीडोद्याने। वसन्तमहोत्सवाय—महांश्चासौ उत्सवः महोत्सवः वसन्तस्य महोत्सवः, तस्मै। आगतायाः=उपस्थितायाः। मालवेन्द्रसुतायाः=अवन्तिसुन्दर्याः। अस्य राजनन्दनस्य=राजपुत्रस्य। आकस्मिकदर्शने=काकतालीयवत् साक्षात्कारे। अन्योन्यानुरागातिरेकः—अन्योन्यस्य=परस्परस्य अनुरागस्य=प्रेम्णः अतिरेकः=अतिशयः। समजायत=उत्पन्नोऽभूत्। किन्तु नावलोक्यतेऽस्य कश्चिदुपायः येनास्याभिलाषपूर्तिर्भवेदिति भावः। सततसम्भोगसिद्ध्युपायाभावेन—सततम्=अनारतम् यः सम्भोगः तस्य सिद्धेः उपायः तस्य अभावेन। असौ=राजनन्दनः। ईदृशीम् अवस्थाम्=स्थितिम्। अनुभवति=प्राप्नोति। इति।

(२) विद्येश्वरः=विद्यायाः ईश्वरः, ऐन्द्रजालिकः। लज्जाभिरामम्—लज्जया=व्रीडया अभिरामम्=मनोज्ञम् प्रियमिति यावत्। राजकुमारमुखम्—राजकुमारस्य=राजवाहनस्य मुखम्=वदनम्। अभिवीक्ष्य=समन्तादवलोक्य। विरचितमन्दहासः—विरचितः=कृतः मन्दः=अल्पः ईषत् हासः येन सः (विद्येश्वरः) व्याजहार=उवाच।

देवेति सम्बोधनम्। भवदनुचरे—भवतः=तव अनुचरे=भृत्ये। मयि=विद्येश्वरे। तिष्ठति=वर्तमाने सति। असाध्यम्=दुःसाध्यम् तव कार्यम् किमस्ति न किमपीत्यर्थः। (३) अहम्=विद्येश्वरः। इन्द्रजालविद्यया। मालवेन्द्रं=मानसारं। मोहयन्=वशमानयन्। पौरजनसमक्षमेव—पौरजनानां=पुरवासिजनानाम् अक्ष्णः समम्=पुर एव। तत्तनयापरिणयम्—तस्य=मानसारस्य तनयायाः=सुतायाः परिणयः=विवाहः तम्। रचयित्वा=कारयित्वा। कन्यान्तःपुरप्रवेशम्=कन्यायाः अन्तःपुरम्, तत्र प्रवेशम्। कारयिष्यामि=संजनयिष्यामि। इति एष वृत्तान्तः=उदन्तः राजकन्यकायै=अवन्तिसुन्दर्यै। सखीमुखेन=सखी-

---

(१) इस क्रीडोद्यान में वसन्तमहोत्सव मनाने मालवेन्द्र की कन्या आई थी। अचानक उससे इस राजकुमार का दर्शन हो जाने से दोनों में अत्यन्त प्रेम उत्पन्न हो गया। किन्तु सर्वदा के लिए सुखसम्भोग प्राप्त कर सकें ऐसी कोई युक्ति नहीं लगती, इसीलिए इनकी ऐसी दशा हो रही है।

(२) लज्जा से मनोहर राजकुमार का मुँह देखकर मंद मंद मुस्कुराते हुए विद्येश्वर ने कहा—'देव, मुझ सेवक के रहते आपका कौन सा ऐसा कार्य है जो असाध्य हो। (३) मैं इन्द्रजाल विद्या से मालवाधीश मानसार को मोहित कर पुरवासियों के समक्ष ही उसकी कन्या का विवाह (आपसे) रचवा कर कन्यान्तःपुर (रनिवास का वह भाग जिसमें कन्यायें रहती हैं) में प्रवेश करा दूँगा। किन्तु यह समाचार आप राजकन्या अवन्तिसुन्दरी से किसी

मुखेन पूर्वमेव कथयितव्यः' इति ।

(१) संतुष्टमना महीपतिरनिमित्तं मित्रं प्रकटीकृतकृत्रिमक्रियापाटवं विप्रलम्भकृत्रिमप्रेमसहजसौहार्दवेदिनं तं विद्येश्वरं सबहुमानं विससर्ज ।

(२) अथ राजवाहनो विद्येश्वरस्य क्रियापाटवेन फलितमिव मनोरथं मन्यमानः पुष्पोद्भवेन सह स्वमन्दिरमुपेत्य सादरं बालचन्द्रिकामुखेन निजवल्लभायै महीसुरक्रियमाणं संगमोपाय वेदयित्वा कौतुकाकृष्टहृदयः 'कथमिमां क्षपां क्षपयामि' इति चिन्तयन् अतिष्ठत् ।

(३) परेद्युः प्रभाते विद्येश्वरो रसभावरीतिगतिचतुरस्तादृशेन महता

द्वारा । पूर्वमेव । कथयितव्यः = सूचयितव्यः । इति ।

(१) सन्तुष्टमनाः = सन्तुष्टम् मनः यस्य सः । महीपतिः = राजवाहनः । अनिमित्तम् = अकारणम् मित्रम् = सुहृदम् । प्रकटीकृतकृत्रिमक्रियापाटवन्—प्रकटीकृतम् अप्रकटम् प्रकटं कृतम् इति प्रकटीकृतम् = प्रकाशीकृतम् कृत्रिमा चासौ क्रिया चेति तस्याम् इन्द्रजालविधायां पाटवम् = चातुर्य्यम् येन तम् । विप्रलम्भेति । विप्रलम्भः = प्रतारणा कृत्रिमम् = कपटपूर्णम् प्रेम सहजम् = स्वाभाविकम् सौहार्दम् = मित्रता च तानि वेत्तीति तम् । तम् = विद्येश्वरम् । सबहुमानम् = सत्कारपूर्वकम् । विससर्ज = प्रस्थातुमनुज्ञातवान् ।

(२) अथ = अनन्तरम् । राजवाहनः । विद्येश्वरस्य = ऐन्द्रजालिकस्य । क्रियापाटवेन—क्रियायाः = कार्यस्य पाटवेन = कौशलेन मनोरथम् = अभिलाषम् । फलितम् = फलं संजातम् अस्मिन्, तम् सिद्धप्रायम् । इवेत्यर्थः । मन्यमानः = जानन् । पुष्पोद्भवेन । सह स्वमन्दिरम् = स्वभवनम् । उपेत्य = आगत्य । सादरम् यथा स्यात्तथा । बालचन्द्रिकामुखेन । निजवल्लभायै = स्वप्रियायै अवन्तिसुन्दर्यै । महीसुरक्रियमाणम्—महीसुरेण = ब्राह्मणेन क्रियमाणम् = विधीयमानम् अनुष्ठीयमानमित्यर्थः । संगमोपायम् = मिलनोद्योगम् । वेदयित्वा = ज्ञापयित्वा । कौतुकाकृष्टहृदयः—कौतुकेन आकृष्टम् हृदयं यस्य सः । कथम् इमां = प्रस्तुताम् । क्षपाम् = रात्रिम् । क्षपयामि = गमयामि यापयामीत्यर्थः इति चिन्तयन् = भावयन् । अतिष्ठत् ।

(३) परेद्युः = परस्मिन्दिने । प्रभाते = प्रातःकाले । रसभावरीतिगतिचतुरः—रसाः =

सखी के द्वारा पहले ही कहलवा दें' ।

(१) विद्येश्वर की बातों से राजकुमार प्रसन्न हो गया और अकारण मित्र बने इन्द्रजालविद्या में चातुर्य्य दिखाने वाले एवं प्रतारण, कृत्रिमप्रेम तथा स्वाभाविक स्नेह को जानने वाले उस विद्येश्वर को राजवाहन ने आदर के साथ विदा किया ।

(२) पश्चात् विद्येश्वर के कौशल से राजवाहन अपना मनोरथ पूर्ण हुआ समझ कर पुष्पोद्भव के साथ अपने निवास स्थान पर आ गया । बालचन्द्रिका के द्वारा ब्राह्मण की बतलाई मिलन की तरकीब अपनी प्रिया को कहला भेजी और स्वयं उत्कण्ठित हृदय से 'रात कैसे बिताऊँ' इस चिन्ता में पड़ गया ।

(३) दूसरे दिन प्रातःकाल ही रस, भाव और इन्द्रजाल क्रिया में चतुर वह विद्येश्वर

निजपरिजनेन सह राजभवनद्वारान्तिकमुपेत्य दौवारिकनिवेदितनिजवृत्तान्तः सहसोपगम्य सप्रणामम् 'ऐन्द्रजालिकः समागतः' इति द्वाःस्थैर्विज्ञापितेन तद्दर्शनकुतूहलाविष्टेन समुत्सुकावरोधसहितेन मालवेन्द्रेण समाहूयमानो विद्येश्वरः कक्षान्तरं प्रविश्य सविनयमाशिषं दत्त्वा, तदनुज्ञात, परिजनताड्यमानेषु वाद्येषु नदत्सु, गायकीषु मदकलकोकिलाभञ्जुलध्वनिषु, समधिकरागरञ्जितसामाजिकमनोवृत्तिषु पिच्छिकाभ्रमणेषु सपरिवारं परिवृढं (त्तं)

शृंगारादयः भावाश्च = अभिप्रायादयः रीतिगतयश्च = इन्द्रजालक्रियाः तासु चतुरः = कुशलः। विद्येश्वरः = पूर्वोक्तः ऐन्द्रजालिकः। तादृशेन = स्वानुरूपेण, तत्तद्विद्यानिपुणेन वा। महता = दीर्घेण। निजपरिजनेन = स्ववर्गेण। सह। राजभवनद्वारान्तिकम्—राज्ञः भवनं राजभवनं तस्य द्वारं तदन्तिकं = समीपम्। उपेत्य = प्राप्य। दौवारिकनिवेदितनिजवृत्तान्तः—दौवारिकेण = प्रतीहारेण निवेदितः = प्रार्थितः कथितः इति यावत्। निजवृत्तान्तः = स्वोदन्तः स्वकीयः परिचय इत्यर्थः येन सः (विद्येश्वरः) सहसा = झटिति। उपगम्य = समीपं गत्वा। सप्रणाभम्—प्रणामेन सहितम् यथा स्यात्तथा 'विज्ञापितेने' त्यस्य विशेषणम्। 'ऐन्द्रजालिकः = (इन्द्रजालेन दीव्यतीति ठक्) मायिकः। समागतः = प्राप्तः'। इति। द्वाःस्थैः द्वारपालैः। विज्ञापितेन = निवेदितेन। तद्दर्शनकुतूहलाविष्टेन-तस्य = मायिकस्य दर्शने यत् कुतूहलम् तेन आविष्टः = व्याप्तः तेन। समुत्सुकावरोधसहितेन—समुत्सुकः = दर्शनोत्कण्ठितः चासौ अवरोधः = अन्तःपुरिकावर्गः च इति तेन सहितेन। मालवेन्द्रेण = मानसारेण। समाहूयमानः = आकार्यमाणः। विद्येश्वरः = मायाकारः। कक्षान्तर प्रविश्य। सविनयं यथा स्यात्तथा। आशीर्वादम् दत्त्वा। तदनुज्ञातेन—तेन = राज्ञा मानसारेण अनुज्ञातः = आदिष्टः तेन। परिजनताड्यमानेषु—परिजनैः नाड्यन्ते इति ताड्यमानानि तेषु वाद्येषु = वीणादिषु। नदत्सु = ध्वनत्सु। मदकलकोकिलामञ्जुलध्वनिषु—मदकलानां मदमत्तानां कोकिलानामिव मञ्जुलः = मनोज्ञः ध्वनिः यासां तासु। गायकीषु = गानकर्त्र्यः स्त्रियः तासु। समधिकरागरञ्जितसामाजिकमनोवृत्तिषु—समधिकेन रागेण रञ्जिता = स्वाभिमुखं आकृष्टा सामाजिकानां = सभ्यानां मनोवृत्तिः = मानसिकव्यापारो येन तेषु। पिच्छिकाभ्रमणेषु—पिच्छिका = मयूर-

अपने कुशल साथियों के साथ राजद्वार के समीप आकर द्वारपाल द्वारा अपना सन्देश महाराज मानसार के पास पहुँचवाया। द्वारपाल ने मानसार के समीप जाकर प्रणाम-पूर्वक निवेदन किया कि द्वार पर एक जादूगर आया है। वह अपना कौशल (खेल) दिखाना चाहता है। इस प्रकार द्वारपाल के निवेदन से जादूगर के उस खेल को देखने की उत्सुकता से प्रेरित होकर महाराज और रानियों ने उसे बुलाया। विद्येश्वर ने दूसरे कमरे के भीतर प्रवेश कर बड़े विनीत-भाव से महाराज को आशीर्वाद दिया और महाराज ने खेल दिखाने की आज्ञा दी। पश्चात् उसके साथी सब अनेक प्रकार के बाजे बजाने लगे। मदमत्त कोकिलों की मनोहर ध्वनि जैसी ध्वनियों से गायिकाएं गाने लगीं। दर्शकों की दृष्टि (मनोवृत्ति) को अपनी ओर अत्यधिक अनुराग से आकृष्ट करने के लिए वह (विद्येश्वर) मोरपंखों के मोरछल को

भ्रामयन्मुकुलितनयनः क्षणमतिष्ठत् ।

१) तदनु विषमं विषमुल्वणं वमन्तः फणालङ्करणा रत्नराजिनीराजितराजमन्दिराभोगा भोगिनो भयं जनयन्तो निश्चेरुः । गृध्राश्च बहवस्तुण्डैरहिपतीनादाय दिवि समचरन् ।

(२) ततोऽग्रजन्मा नरसिंहस्य हिरण्यकशिपोर्दैत्येश्वरस्य विदारणमभिनीय महाश्चर्यान्वितं राजानमभाषत—'राजन् अवसानसमये भवता शुभसूचकं द्रष्टुमुचितम् । ततः कल्याणपरम्परावाप्तये भवदात्मजाकारायास्त-

---

पिच्छनिर्मितो मायिकसाधनविशेपः तस्य भ्रमणेपु = विघूर्णनेपु सपरिवारं = सपरिकरम् । परिवृढम् = राजानम् । (परिवृत्तम् इति पाठे = मण्डलाकारम्) भ्रामयन् = भ्रान्तं कुर्वन् घूर्णयन् वा । मायाकाराः मयूरपुच्छं भ्रामयित्वा सभ्यान् मोहयन्तीति प्रसिद्धम् । मुकुलितनयनः = मुद्रितनेत्रः । क्षणं = मुहूर्तम् । अतिष्ठत् ।

(१) तदनु = तत्पश्चात् । विपमं = भयङ्करम् उल्वणम् = तीव्रम् । विषम् । वमन्तः = उद्गिरन्तः । फणालङ्करणाः—फणाः = स्फटा अलंकरणं येषां ते । रत्नराजिनीराजितराजमन्दिराभोगाः—रत्नराजिभिः = रत्नश्रेणिभिः शिरस्थिताभिरिति शेषः नीराजितः = प्रकाशीकृतः राजमन्दिरस्य = राजभवनस्य आभोगः = सम्पूर्णप्रदेशः यैः ते । भोगिनः = सर्पाः । भयम् = साध्वसम् । जनयन्तः = प्रकटयन्तः । निश्चेरुः = निर्गत्य भ्रमन्ति स्म । बहवः गृध्राः = दाक्षाय्यनामानः पक्षिविशेषाः । तुण्डैः = मुखैः । अहिपतीन् = भयंकरान् सर्पान् । आदाय = गृहीत्वा । दिवि = आकाशे । समचरन् = अभ्रमन् ।

(२) ततः = तदनन्तरम् । अग्रजन्मा = ब्राह्मणः विद्येश्वरस्य । नरसिंहस्य—नरश्चासौ सिंहः तस्य = विष्णोः ,हिरण्यकशिपोः = दैत्येश्वरस्य विदारणम् = नखैः छेदनम् (कृद्योगात् उभयत्र षष्ठी) । अभिनीय = प्रदर्श्य । महाश्चर्यान्वितम् = अत्याश्चर्येण युक्तम् यथा स्यात्तथा । राजानम् = मालवेन्द्रम् । अभाषत = उवाच । राजन् = देव, अवसानसमये = अन्ते । भवता = श्रीमता । शुभसूचकम् = मङ्गलजनकम् । द्रष्टुम् = अवलोकितुम् । उचितम् = योग्यम् । ततः = तस्मात् । कल्याणपरम्परावाप्तये—कल्याणानाम् परम्परा = राजिः तस्याः अवाप्तये =

घुमाने लगा और सपरिवार राजा मानसार को भ्रम में डालकर स्वयं क्षणभर के लिए आँखें बन्दकर बैठ गया ।

(१) इसके बाद फन फैलाये अनेक सर्प निकल पड़े । जो अपने मुख से भयंकर विष उगल रहे थे और अपने सिर के मणियों से राजमन्दिर के आँगन को प्रकाशित कर रहे थे, जिन्हें देखकर दर्शकगण भयभीत हो उठे । फिर उसने गोधों को उत्पन्न किया जो अपने मुखों से उन बड़े बड़े सर्पों को पकड़कर आकाश में उड़ चले ।

(२) तब उस ब्राह्मण ने भगवान् नृसिंह के द्वारा दैत्यराज हिरण्यकशिपु की छाती नखों से फाड़े जाने का अभिनय दिखाया और चकित (उस अद्भुत दृश्य को देखने से) राजा से बोला, राजन् ! खेल के अन्त में आप को चाहिए कि एक शुभसूचक दृश्य देखें । इसलिए कल्याणपरम्परा की प्राप्ति के लिए आपकी कन्या सदृश एक युवती का विवाह सभी

रुण्या निखिललक्षणोपेतस्य राजनन्दनस्य विवाहः कार्यः' इति ।

(१) तदवलोकनकुतूहलेन महीपालेनानुज्ञातः सः संकल्पितार्थसिद्धिसंभावनसम्फुल्लवदनः सकलमोहजनकमञ्जनं लोचनयोर्निक्षिप्य परितो व्यलोकयत् । सर्वेषु "तदैन्द्रजालिकमेव कर्म' इति साद्भुतं पश्यत्सु रागपल्लवितहृदयेन राजवाहनेन पूर्वसङ्केतसमागतामनेकभूषणभूषिताङ्गीमवन्तिसुन्दरीं वैवाहिकमन्त्रतन्त्रनैपुण्येनाग्निं साक्षीकृत्य संयोजयामास ।

प्राप्तये । भवदात्मजाकारायाः--भवतः=श्रीमतः आत्मजा=कन्या तस्याः आकारः इव आकारः यस्याः, तस्याः । तरुण्याः=युवत्याः । निखिललक्षणोपेतस्य--निखिलैः=सम्पूर्णैः लक्षणैः=शुभलक्षणैः उपेतस्य=युक्तस्य । राजनन्दनस्य=राजपुत्रस्य । विवाहः=परिणयः । कार्यः=करणीयः । अस्माभिरिति शेषः ।

(१) तदवलोकनकुतूहलेन—तस्य अवलोकनम्=दर्शनम् तेन यत् कुतूहलम्=कौतुकम् यस्य तेन । महीपालेन=राज्ञा मानसारेण । अनुज्ञातः=आदिष्टः । संकल्पितार्थस्य=अभीप्सितार्थस्य सिद्धेः=फलोदयस्य सम्भावनेन सम्फुल्लम्=विकसितम् वदनम्=मुखं यस्य सः विद्येश्वरः । सकलमोहजनकम–सकलानाम्=समस्तानाम् परिषदाम् प्रेक्षकाणामित्यर्थः मोहजनकम्=भ्रमोत्पादकम् । अञ्जनम्=कज्जलम् । लोचनयोः=नेत्रयोः । निक्षिप्य=संयोज्य । परितः=चतुर्दिक्षु । व्यलोकयत्=अपश्यत् । 'तदैन्द्रजालिकम्—तत्=कर्म ऐन्द्रजालिकम्=मायिकम् एव ।' इति सर्वेषु=द्रष्टृषु । साद्भुतम् अद्भुतेन=आश्चर्येण सहितम् यथा स्यात्तथा । पश्यत्सु=विलोकयत्सु । रागपल्लवितहृदयेन—रागेण=अनुरागेण पल्लवितम्=विकसितं हृदयं यस्य तेन । राजवाहनेन । पूर्वसङ्केतसमागताम्—पूर्वेण सङ्केतेन=सूचनानुसारेण समागताम्=उपस्थिताम् । अनेकभूषणभूषिताङ्गीम्--अनेकेन भूषणेन=आभूषणेन भूषितं=शोभितम् अङ्गं यस्यां: सा तां । अवन्तिसुन्दरीं=मानसारनन्दिनीम् । वैवाहिकमन्त्रतन्त्रनैपुण्येन—विवाहे भवाः वैवाहिका ये मन्त्राः ते च तन्त्राणि=लोकचाराः च तेषु नैपुण्यं=कौशलं तेन । अग्निं साक्षीकृत्य=असाक्षिणं साक्षिणं कृत्वा इति, च्विः । संयोजयामास=सम्यक् प्रकारेण योजंयामास ।

राजलक्षणों से युक्त एक राजकुमार से कराऊँगा ।

(१) राजा को उस खेल को देखने की प्रबल इच्छा हुई । उसने आज्ञा दी । राजाज्ञा पाकर विद्येश्वर का चेंहरा अपना मनोरथ पूर्ण होने की सम्भावना से खिल उठा । उसने सबको मोहित करनेवाला एक अंजन निकाला और अपनी आँखों में लगाकर चारों ओर सबको देखने लगा । सबों ने यही समझा कि यह भी इन्द्रजाल का ही एक अंग है । इसलिए आश्चर्यित हो उस खेल को सब देखने लगे । विद्येश्वर ने विवाह सम्बन्धी मन्त्रों को कुशलता पूर्वक उच्चारण करके और अग्नि को साक्षी बना—पूर्वसूचनानुसार तैयार होकर अनेक वस्त्राभूषणों को पहनकर आई हुई उस अवन्तिसुन्दरी का विवाह प्रसन्नता से विकसित हृदय वाले राजवाहन के साथ करा दिया ।

(१) क्रियावसाने सति 'इन्द्रजालपुरुषाः, सर्वे गच्छन्तु भवन्तः' इति द्विजन्मनोच्चैरुच्यमाने सर्वे मायामानवा यथायथमन्तर्भावं गताः। राजवाहनोऽपि पूर्वकल्पितेन गूढोपायचातुर्येणेन्द्रजालिकपुरुषवत्कन्यान्तःपुरं विवेश। मालवेन्द्रोऽपि तदद्भुतं मन्यमानस्तस्मै वाडवाय प्रचुरतरं धनं दत्त्वा विद्येश्वरम् 'इदानीं साधय' इति विसृज्य स्वयमन्तर्मन्दिरं जगाम। (२) ततोऽवन्तिसुन्दरी प्रियसहचरीसमेता, वल्लभोपेता, सुन्दरं मन्दिरं ययौ।

(३) एवं दैवमानुषबलेन मनोरथसाफल्यमुपेतो राजवाहनः सरसमधुर-

---

(१) क्रियावसाने = क्रियाया अवसाने = समाप्ते। सति। इन्द्रजालपुरुषाः = हे मायापुरुषाः मायया निर्मितमनुष्याः इत्यर्थः। सम्बोधनपदमेतत्। सर्वे भवन्तः गच्छन्तु = स्वस्थानस्थाः भवन्तु। इति द्विजन्मना = मायिकेन। उच्चैः = तारस्वरेण। उच्यमाने = कथ्यमाने सति सर्वे = सकलाः मायामानवाः = मायया निर्मितमनुष्याः यथायथं = यथाक्रमम्। अन्तर्भावम् = तिरोभावम्। गताः = प्राप्ताः। राजवाहनः। अपि। पूर्वकल्पितेन = प्राङ्निश्चितेन। गूढोपायचातुर्येण = प्रच्छन्नसाधनकौशलेन। ऐन्द्रजालिकपुरुषवत् = मायिकमानववत्। कन्यान्तःपुरम्—कन्यायाः अन्तःपुरम् = अवरोधम्। विवेश = प्रविवेश। मालवेन्द्रोऽपि = मानसारोऽपि। तत् = मायिकप्रदर्शितं कार्यम्। अद्भुतम् = अत्याश्चर्यकरम्। मन्यमानः = जानन्। तस्मै = मायिकाय। वाडवाय = ब्राह्मणाय विद्येश्वराय। 'द्विजात्यग्रजन्मभूदेववाडवा' इत्यमरः प्रचुरतरम् = प्रभूतम्। धनम् = वित्तम्। दत्त्वा। विद्येश्वरम् = मायिकम्। इदानीम् = अधुना। साधय = गच्छ। इति विसृज्य = त्यक्त्वा। स्वयम् अन्तर्मन्दिरम् = भवनाभ्यन्तरम्। जगाम = अगमत्।

(२) ततः = तदनन्तरम्। अवन्तिसुन्दरी = मालवेन्द्रकन्या। प्रियसहचरीसमेता = प्रिया चासौ सहचरी = सखी चेति तया समेता = युक्ता। वल्लभोपेता = पतियुक्ता। सुन्दरम् = मनोहरं। मन्दिरं = अगारं ययौ = प्राप !

(३) एवम् = अनेकप्रकारेण दैवमानुषबलेन—दैवम् = भाग्यम् मानुषम् = ऐन्द्रजालिकम् तयोर्यद् बलम् तेन। मनोरथसाफल्यम् = सफलस्य भावः साफल्यम् मनोरथस्य = अभिलाषस्य साफल्यम् सफलाभिलाषमित्यर्थः। उपेतः = प्राप्तः। राजवाहनः सरसमधुर-

---

(१) कार्य समाप्त होने पर विद्येश्वर ने जोर से कहा—'सभी इन्द्रजाल पुरुष चले जाँय।' यह सुनकर सभी कल्पित पुष्प यथाक्रम अदृश्य हो गये। पूर्व निश्चयानुसार छिपने की कला में प्रवीण राजवाहन भी मायामानव की तरह कन्यान्तःपुर में चला गया। मालवेन्द्र मानसार ने भी उस ब्राह्मण की अद्भुत कला की प्रशंसा कर उसे प्रचुर धन देकर कहा—अभी अब आप जाँय। इस प्रकार विद्येश्वर को विदाकर स्वयं महल के भीतर चला गया। (२) अनन्तर अवन्तिसुन्दरी भी अपनी प्रियसखियों से युक्त पति को साथ लिये अपने सुन्दर भवन में आ पहुँची।

(३) इस प्रकार दैव और मनुष्य के बल से पूर्ण मनोरथ राजवाहन सरस और ललित

चेष्टाभिः शनैः शनैर्हरिणलोचनाया लज्जामपनयन् सुरतरागमुपनयन् (१) रहो विश्रम्भमुपजनयन् संलापे तदनुलापपीयूषपानलोलः चित्रचित्रं चित्तहारिणं चतुर्दशभुवनवृत्तान्तं श्रावयामास ।

इति श्रीदण्डिनः कृतौ दशकुमारचरिते द्विजोपकृतिर्नाम द्वितीयोच्छ्वासः ।

इति पूर्वपीठिकेयं समाप्ता ।

चेष्टाभिः—सरसाः=रसेन सहिताः, ता मधुराश्च याश्चेष्टाः ताभिः । शनैः शनैः=मन्दमन्दम् । हरिणलोचनायाः=हरिणस्य लोचने इव लोचने=नयने यस्याः तस्याः अवन्तिसुन्दर्याः । लज्जाम्=त्रपाम् । अपनयन्=दूरीकुर्वन् । सुरतरागम्—सुरते=मैथुने रागम्=अनुरागम् । उपनयन्=प्रापयन् मैथुनानुरागं जनयन्नित्यर्थः । (१) रहः=एकान्ते । विश्रम्भम्=विश्वासम् । उपजनयन् । संलापे=मिथः भाषणे परस्परालापे इत्यर्थः । । तदनुलापपीयूषपानलोलः—तस्याः अनुलापे=मुहुर्भाषायां यत् पीयूषं=अमृतं तस्य पाने=कर्णेन्द्रियास्वादने लोलः=चञ्चलः राजवाहनः । चित्रचित्रम्=अत्याश्चर्यकरम् । चित्तहारिणम्=हृदयग्राहिणम् चतुर्दशभुवनवृत्तान्तम्—चतुर्दशानाम् भुवनानाम्=भूः भुवः स्वः तलातलादीनाम् । वृत्तान्तम्=वार्तां कथामित्यर्थः । श्रावयामास । अवन्तिसुन्दरीमिति शेषः । कथया तरुणीनां हृदयग्रहणं सुलभमिति ध्येयम् ।

इति अकौरवास्तव्यकविमूर्धन्यवाणीशझाशर्मतनुजनुर्झोपाख्य-
श्रीविश्वनाथझाशर्मविरचितायां दशकुमारचरितव्या-
ख्यायामर्थप्रकाशिकायां पञ्चमोच्छ्वासः ।

समाप्ता पूर्वपीठिका ।

हाव-भावों से धीरे-धीरे उस मृगनयनी अवन्तिराजपुत्री की लज्जा दूर किया और सुरत में अनुराग बढ़ाते हुए (१) एकान्त में अपने प्रति विश्वास उत्पन्न कराया । परस्परालाप में उसकी वार्तारूप अमृतास्वादन में अपने को तल्लीन दिखाकर अत्याश्चर्यजनक और मनोहर चौदहों भुवनों का वृत्तान्त उसे सुनाया ।

इस प्रकार श्री विश्वनाथझा द्वारा की गयी दशकुमारचरितपञ्चमोच्छ्वास की
अर्थप्रकाशिका हिन्दी टीका समाप्त हुई ।
पूर्वपीठिका समाप्त ।

दशकुमारचरितम्

प्रथमोच्छ्वासः

श्रुत्वा तु [1]भुवनवृत्तान्तमुत्तमाङ्गना विस्मयविकसिताक्षी सस्मितमिदमभाषत—'दयित, त्वत्प्रसादादद्य मे चरितार्था श्रोत्रवृत्तिः। अद्य मे मनसि तमोऽपहस्त्वया दत्तो ज्ञानप्रदीपः। पक्वमिदानीं त्वत्पादपद्मपरिचर्याफलम्। अस्य च त्वत्प्रसादस्य किमुपकृत्य प्रत्युपकृतवती भवेयम्। अभवदीयं हि

श्रुत्वा निशम्य। तु। भुवनवृत्तान्तम् भुवनानाम् लोकानाम् वृत्तान्तम् वार्त्ताम्। उत्तमाङ्गना उत्तमा श्रेष्ठा च सा अङ्गना नारी (अवन्तिसुन्दरी) च। विस्मयविकसिताक्षी विस्मयेन आश्चर्येण विकसिते फुल्ले अक्षिणी नयने यस्याः तादृशी सती। सस्मितम् स्मितेन ईषद्हासेन सह। इदम् वक्ष्यमाणम्। अभाषत अवदत्। दयित प्रिय। त्वत्प्रसादात् तव प्रसादात् कृपातः। अद्य अस्मिन् दिने। मे मम। चरितार्था चरितः पूर्णः अर्थः प्रयोजनम् यस्याः। श्रोत्रवृत्तिः श्रोत्रयोः कर्णयोः वृत्तिः व्यापारः। अद्य। मे मम। मनसि हृदये। तमोऽपहः अज्ञानहन्ता (प्रदीपः)। त्वया। दत्तः स्थापितः। ज्ञानप्रदीपः ज्ञानम् बोधः एव प्रदीपः दीपकः। पक्वम् परिणतम्। इदानीम् अधुना। त्वत्पादपद्मपरिचर्याफलम् तव पादपद्मयोः चरणकमलयोः परिचर्यायाः सेवायाः फलम्। अस्य। च। त्वत्प्रसादस्य तव कृपायाः। किम्। उपकृत्य। प्रत्युपकृतवती कृतप्रत्युपकारा। भवेयम् स्याम्। अभवदीयम् न भवदीयम् युष्मदीयम्। हि। निश्चयेन।

दशकुमारचरित (दस बालकों की जीवनी)

पहला उच्छ्वास (=अध्याय)

इधर, जगत् का हाल सुनकर (उस) श्रेष्ठ स्त्री ने विस्मय से खिले नेत्र लेकर मुस्कान के साथ यह कहा, “प्रिय, तुम्हारी कृपा से आज मेरे कार्यों की वृत्ति कृतकृत्य हो गई है। आज मेरे मन के अन्दर तुमने अंधकार-निवारक ज्ञान-दीपक स्थापित कर दिया है। तुम्हारे चरण-कमलों की सेवा का फल अब पक गया है। कौन सा उपकार कर तुम्हारी इस कृपा का बदला

---

१. भुवन १४ हैं जिनमें ऊपर से नीचे का क्रम है (इनमें ऊपर के ७ ऊपर और शेष नीचे हैं) : सत्य (ब्रह्म), तपः, जन, महः, स्वः, भुवः, भूः, अतल, वितल, सुतल, रसातल, तलातल, महातल और पाताल।

नैव किंचिन्मत्सम्बद्धम्। अथवास्त्येवास्यापि जनस्य क्वचित्प्रभुत्वम्। अशक्यं हि मदिच्छया विना सरस्वतीमुखग्रहणोच्छेषणीकृतो [1]'दशनच्छद एष चुम्बयितुम्। अम्बुजासनास्तनतटोपभुक्तमुरःस्थलं चेदमालिङ्गयितुम्' इति प्रियोरसि प्रावृडिव नभस्युपास्तीर्णगुरुपयोधरमण्डला प्रौढकन्दलीकुड्मलमिव रूढरागरूषितं चक्षुरुल्लासयन्ती [2]बर्हिबर्हावलीविडम्बिना कुसुमचन्द्रकशारेण मधुकरकुलव्याकुलेन केशकलापेन स्फुरदरुणकिरणकेसरकरालं [3]कदम्बमुकुलमिव कान्त-

न। एव। किञ्चित् किमपि। मत्संवद्धम् मद्विषयकम् मम इत्यर्थः। अथ वा पूर्वापरितोषे। अस्ति वर्तते। एव। अस्य मम। अपि। जनस्य व्यक्तेः। क्वचित् कुत्रापि। प्रभुत्वम् अधिकारः। अशक्यम् न शक्यम् संभवम्। हि नूनम्। मदिच्छया मम इच्छया। विना ऋते। सरस्वतीमुखग्रहणोच्छेषणीकृतः सरस्वत्याः भारत्याः मुखग्रहणेन उच्छेषणीकृतः उच्छिष्टीकृतः। दशनच्छदः ओष्ठः। एषः। चुम्बयितुम्। अम्बुजासनास्तनतटोपभुक्तम् अम्बुजासनायाः लक्ष्म्याः स्तनतटेन उपभुक्तम् अनुभूतम् उरःस्थलम् वक्षःप्रदेशः। च। इदम्। आलिङ्गयितुम्। इति। प्रियोरसि प्रियस्य (राजवाहनस्य) उरसि वक्षसि। प्रावृट् वृष्टिः। इव। नभसि आकाशे। उपास्तीर्णगुरुपयोधरमण्डला उपास्तीर्णम् प्रसारितम् गुरु पीवरम् पयोधरमण्डलम् स्तनमण्डलम् (पक्षे मेघमण्डलम्) यया सा। प्रौढकन्दलीकुड्मलमिव प्रौढा च सा कन्दली द्रोणपर्णी तस्याः कुड्मलाः मुकुलाः। इव। रूढः उत्पन्नः यः रागः रक्तिमा अनुरागः च तेन रूषितम् अलंकृतम्। चक्षुः नेत्रम्। उल्लासयन्ती विशदीकुर्वन्ती। बर्हिबर्हावलीविडम्बिना बर्हो मयूरः तस्य बर्हाणि पिच्छानि तेषाम् अवलीम् समूहम् विडम्बिना निर्भर्त्सयता। कुसुमचन्द्रकशारेण कुसुमानि पुष्पाणि एव चन्द्रकाः चन्द्राकाराणि पिच्छचिह्नानि तैः शारेण विचित्रेण। मधुकरकुलव्याकुलेन मधुकराणां भ्रमराणां कुलेन समूहेन व्याकुलेन व्याप्तेन। केशकलापेन (उपलक्षिता इति उपलक्षणे तृतीया)। स्फुरदरुण-किरणकेसरकरालम् स्फुरन्तः शोभमानाः अरुणाः रक्तवर्णाः ये किरणाः रश्मयः ते एव केसराणि किञ्जल्कानि तैः करालम् उन्नतम्। कदम्बमुकुलम् नीपकलिकाम्। इव। कान्तस्य

चुका सकती हूँ। निश्चय ही मुझसे संबद्ध कुछ भी ऐसा नहीं है जो आपका न हो। या यों कहें कि मेरा भी कहीं अधिकार निश्चय ही है। मेरी इच्छा के विना इस (आपके) ओठ का चुम्बन कोई (दूसरी स्त्री) नहीं ले सकेगी जिसे सरस्वती ने मुख से ग्रहण के द्वारा जूठा कर दिया है। मेरी इच्छा के बिना लक्ष्मी के स्तन-तट के द्वारा उपभोग किया गया इस हृदय-स्थल का आलिङ्गन कोई नहीं कर सकेगी।" यों कहकर जैसे वर्षा आकाश में विस्तृत मेघ-मण्डली फैला देती है, उस तरह प्रिय के सीने पर विस्तृत स्तन-मण्डल फैलाकर द्रोणपर्णी की विकसित कली की भाँति उत्पन्न हुए अनुराग से अलंकृत नयन विस्फारित करती हुई, मोर-पिच्छ समूह से मिलते-जुलते, पुष्प-रूपी-चन्द्रकों (मोर-पंख के नीले-नीले वृत्त) से चित्र-विचित्र और भौंरों की भीड़ से भरे हुए केश-कलाप से युक्त उस (रमणी) ने चमक रहे व लाल किरणों वाले केसरों से बड़ी बनी हुई कदम्ब-कली की भाँति प्रिय अधर-मणि अधीरता-

---

[1] रदन। [2] ...वलीं बिडम्बयता। [3] बन्धूकमुकुलकुसुममिव।

स्याधरमणिमधीरमाचुचुम्ब । तदारम्भस्फुरितया च रागवृत्त्या [१]भूयोऽप्यावर्ततातिमात्रचित्रोपचारशीफरो रतिप्रबन्धः । सुरतखेदसुप्तयोस्तु तयोः स्वप्ने बिसगुणनिगडितपादो [२]जरठः कश्चिज्जालपादोऽदृश्यत । प्रत्यबुध्येतां चोभौ । अथ तस्य राजकुमारस्य कमलमूढशशिकिरणरज्जुदामनिगृहीतमिव रजतशृङ्खलोपगूढं चरणयुगलमासीत् । उपलभ्यैव च 'किमेतत्' इत्यतिपरित्रासविह्वला मुक्तकण्ठमाचक्रन्द राजकन्या । येन च तत्सकलमेव कन्यान्तःपुरमग्निपरीतमिव पिशाचो-

प्रियस्य (राजवाहनस्य) अधरमणिम् अधरः मणिः इव तम् । अधीरम् अधीरतया । चुचुम्ब । तदारम्भस्फुरितया तस्य चुम्बनस्य आरम्भेण क्रियया स्फुरितया उद्दीप्तया । च । रागवृत्त्या रागस्य अनुरागस्य वृत्त्या व्यापारेण । भूयः पुनः । अपि । आवर्तत प्रावर्तत । अतिमात्रचित्रोपचारशीफरः अतिमात्रम् अत्यर्थम् चित्रेण विविधेन उपचारेण साधनेन शीफरः रम्यः (शीफरः स्फीतरम्ययोः इति अजयः) । रतिप्रबन्धः केलिः । सुरतखेदसुप्तयोः सुरतात् केल्याः यः खेदः क्लमः तेन सुप्तयोः निद्रितयोः । तु । तयीः (अवन्तिसुन्दरीराजवाहनयोः) । स्वप्ने । विसगुणनिगडितपादः विसगुणेन मृणालतातुना निगडितौ बद्धौ पादौ चरणौ यस्य सः । जरठः वृद्धः । कश्चित् कोऽपि । जालपादः हंसः । अदृश्यत (ताभ्याम् इति अध्याहार्यम्) दृष्टः । प्रत्यबुध्येताम् जागरितौ । च । उभौ द्वौ । अथ ततः । तस्य । राजकुमारस्य । कमलमूढशशिकिरणरज्जुदामनिगृहीतम् कमलत्वेन मूढेन भ्रान्तेन शशिना चन्द्रेण किरणाः एव रज्जुदाम गुणसमूहः तेन निगृहीतम् वद्धम् । इव । रजतशृङ्खलोपगूढम् रजतस्य रौप्यस्य शृङ्खलया उपगूढम् वेष्टितम् । चरणयुगलम् । आसीत् । उपलभ्य ज्ञात्वा । एव । च । किम् । एतत् । इति (उक्त्वा) । अतिपरित्रासविह्वला अतिपरित्रासेन अत्यन्तभीत्या विह्वला व्याकुला । मुक्तकण्ठम् उच्चस्वरेण । आचक्रन्द अरोदीत् । राजकन्या (अवन्तिसुन्दरी) । येन रुदनेन । च । तत् । सकलम् सर्वम् । एव । कन्यान्तःपुरम् । अग्निना हुताशनेन । परीतम् आवृतम् । इव । पिशाचेन भूतेन

पूर्वक चूम ली । उस कार्य से जग उठी अनुराग-प्रवृत्ति से अत्यन्त चित्र-विचित्र साधनों से रम्य केलि-क्रीड़ा आरम्भ हो गई । केलि की थकावट से दोनो के सो जाने पर उन्हें सपने में मृणालतन्तु से बँधे पैरों वाला एक बूढ़ा हंस दिखा और दोनो जग गये । उस समय उस राजकुमार के दोनो पैर चाँदी की जंजीर से कसे थे मानो "ये (पैर) कमल हैं" इस भ्रम में पड़े हुए चन्द्रमा की किरणों की रस्सी से बँधे हों । जानते ही "यह क्या" कह कर अत्यन्त भय से अधीर राजकुमारी मुक्तकण्ठ रुदन करने लगी जिससे आग से घिरे की भाँति, पिशाच से

---

[१]. भूयोभूयः प्रावर्तत । [२]. जरठजालपादः ।

पहतमिव वेपमानमनिरूप्यमाणतदात्वायतिविभाग[1]मगण्यमानरहस्यरक्षासमयमवनितलविप्रविध्यमानगात्रमाक्रन्दविदीर्यमाणकण्ठमश्रुस्रोतोऽवगुण्ठितकपोल[2]तलमाकुलीबभूव । तुमुले चास्मिन्समयेऽनियन्त्रितप्रवेशाः 'किं किम्' इति सहसोपसृत्य विविशुरन्तर्वंशिकपुरुषाः.। ददृशुश्च तदवस्थं [3]राजकुमारम् । तदनुभावनिरुद्धनिग्रहेच्छास्तु सद्य एव ते तमर्थं चण्डवर्मणे निवेदयांचक्रुः । सोऽपि कोपादागत्य निर्दहन्निव दहनगर्भया दृशा निशाम्योत्पन्नप्रत्यभिज्ञः 'कथं

आविष्टम् ग्रस्तम् । इव । वेपमानम् कम्पमानम् । न निरूप्यमाणः निर्णीयमानः तदात्वस्य तत्कालस्य (वर्तमानस्य) आयतेः भविष्यस्य च विभागः कृत्यम् येन तत् (किंकर्तव्यताविमूढम्) [तत्कालस्तु तदात्वं स्यादुत्तरः काल आयतिः इति अमरः] । न गण्यमानः विचार्यमाणः रहस्यस्य निद्रालिङ्गनादिकस्य आवरणीयस्य व्यापारस्य या रक्षा आवरणम् तस्याः समयः कालः येन तत् । अवनितले भूतले विप्रविध्यमानम् ताड्यमानम् गात्रम् शरीरम् येन तत् । आक्रन्देन रोदनेन विदीर्यमाणः भिद्यमानः कण्ठः यस्य तत् । अश्रूणाम् स्रोतसा प्रवाहेण अवगुण्ठितम् आवृतम् कपोलतलम् गण्डप्रदेशः येन तत् (अन्तःपुरम्) । आकुलीबभूव व्याकुलम् अभवत् । तुमुले संकुले । च । अस्मिन् । समये । अनियन्त्रितः अवारितः प्रवेशः येषाम् तादृशाः । किम् । किम् । इति (उक्त्वा) । सहसा अकस्मात् । उपसृत्य प्राप्य । विविशुः अन्तः अगच्छन् । अन्तर्वंशिकाः अन्तःपुराधिकृताः [अन्तःपुरे त्वधिकृतः स्यादन्तर्वंशिको जनः इति अमरः] । पुरुषाः ददृशुः दृष्टवन्तः । च । सा अवस्था दशा यस्य तादृशम् (निगडितम्) । राजकुमारम् । तस्य अनुभावेन प्रभावेण निरुद्धा निवृत्ता निग्रहेच्छा दण्डाभिलाषः येषाम् ते । तु । सद्यः तत्कालम् । एव । ते । तम् । अर्थम् वार्ताम् । चण्डवर्मणे । निवेदयांचक्रुः । सः (चण्डवर्मा) । अपि । कोपात् क्रोधात् । आगत्य । निर्दहन् ज्वलयन् । इव । दहनः अग्निः गर्भे अभ्यन्तरे यस्याः तया । दृशा दृष्ट्या । निशाम्य विलोक्य । उत्पन्ना जाता प्रत्यभिज्ञा (स एव अयम् इति

व्याकुल की भाँति, काँपता हुआ, उस समय (वर्त्तमान) और भविष्य का विभाग न करता हुआ, गोपनीयता की रक्षा करने के समय का विचार न करता हुआ, पृथ्वी पर शरीर पटकता हुआ, चीत्कार से गला फाड़ता हुआ और आँसू के प्रवाह से रुँधे कण्ठ वाला वह समस्त कन्या-अन्तःपुर आकुल हो गया । इस अव्यवस्थित क्षण में बे रोक टोक प्रवेश वाले अन्तःपुर के अधिकारी "क्या हुआ, क्या हुआ" कहते हुए एकाएक पास पहुँचकर प्रविष्ट हुये और उस दशा में स्थित राजकुमार को देखा । उसके प्रभाव से रुकी दण्ड-इच्छा वाले उन्होंने तुरन्त ही वह बात चण्डवर्मा से निवेदित की । उसने गुस्से में भरे हुये आकर अग्नि-भरी दृष्टि से जलाते-

---

[1] तदात्व और आयति का साथ-साथ प्रयोग इसी क्रम में कामन्दकीयनीतिसार (१०।२५) में आया है : तदात्वायतिसंशुद्धमातिष्ठन्नैति वाच्यताम् ।

[2] कपोलम् ।

[3] राजपुत्रम् ।

स एवैष मदनुजमरणनिमित्तभूतायाः पापाया बालचन्द्रिकायाः पत्युरत्यभिनिविष्टवित्तदर्पस्य वैदेशिकवणिक्पुत्रस्य पुष्पोद्भवस्य मित्रं रूपमत्तः कलाभिमानी नैकविधविप्रलम्भोपायपाटवार्जितमूढपौर[१]जनमिथ्यारोपितवितथदेवतानुभावः कपटधर्मकञ्चुको निगूढपापशीलश्चपलो ब्राह्मणब्रुवः। कथमिवैनमनुरक्ता मादृशेष्वपि पुरुषसिंहेषु सावमाना पापेयमवन्तिसुन्दरी। पश्यतु पतिमद्यैव शूलावतंसितमियमनार्यशीला कुलपांसनी' इति निर्भर्त्सयन्भीषणभ्रुकुटिदूषितललाटः काल इव काललोहदण्डकर्कशेन बाहुदण्डेनावलम्ब्य हस्ताम्बुजे

स्मृतिः यस्य सः। कथम् किम्। सः। एव। एषः। मम अनुजस्य मरणे मृत्यौ निमित्तभूतायाः कारणरूपायाः। पापायाः पापिन्याः। बालचन्द्रिकायाः। पत्युः। अत्यभिनिविष्टः अतिशयेन उत्पन्नः वित्तदर्पः धनमदः यस्य तस्य। वैदेशिकः विदेशात् आगतः च सः वणिक् च तस्य पुत्रस्य। पुष्पोद्भवस्य। मित्रम् सखा। रूपेण सौन्दर्येण मत्तः सगर्वः। कलाभिः अभिमानी सदर्पः। नैकविधेषु विविधेषु विप्रलम्भस्य वञ्चनस्य उपायेषु यत् पाटवम् निपुणता तेन आवर्जितः वशीकृतः यः पौरजनः नागरिकवर्गः तेन मिथ्या आरोपितः वितथः अफलः देवतानुभावः देवप्रभावः यस्मिन् सः। कपटम् छलम् एव धर्मकञ्चुकम् धर्मावरणम् यस्य सः। निगूढपापशीलः गुप्तरूपेण पापाचरणप्रवृत्तः। चपलः। ब्राह्मणब्रुवः ब्राह्मणाधमः। कथम् केन कारणेन। इव (वाक्यालङ्कारे)। एनम् (राजवाहनम्)। अनुरक्ता स्निग्धा। मादृशेषु। अपि। पुरुषसिंहेषु नरश्रेष्ठेषु। अवमानेन अपमानेन सह विद्यमाना। पापा पापिनी। इयम्। अवन्तिसुन्दरी। पश्यतु। पतिम्। अद्य। एव। शूलावतंसितम् शूलारोपितम्। इयम्। अनार्यम् कुत्सितम् शीलम् स्वभावः यस्याः सा। कुलपांसनी वंशदूषणी। इति (उक्त्वा)। निर्भर्त्सयन्। भीषणया भयङ्कर्या भ्रुकुट्या दूषितम् ललाटम् यस्य सः। कालः मृत्युः। इव। कालः च सः लोहदण्डः च तद्वत् कर्कशेन कठोरेण बाहुः दण्डः इव तेन। अवलम्ब्य गृहीत्वा। हस्ताम्बुजे करकमले।

से और सुनकर पहचानकर "क्या यह वही मेरे छोटे भाई के मरने में निमित्त-स्वरूप पापिनी बालचन्द्रिका के पति, खूब चढ़े हुये धन-अभिमान वाले, विदेश से आये वणिक्पुत्र पुष्पोद्भव का मित्र, सौन्दर्य-गर्वित, कला-अभिमानी, अनेक प्रकार के कपट-उपायों की चतुरता से आकृष्ट मूढ़ नागरिकों में झूठ-मूठ निष्फल देवता-प्रभाव आरोपित करने वाला, कपट-धर्म का कञ्चुक (कुर्ता) धारण करने वाला, स्वभाव में पाप छिपाने वाला और चञ्चल अधम ब्राह्मण है। भला क्यों यह पापिन अवन्तिसुन्दरी मुझ-जैसे सिंह-सदृश पुरुष के प्रति भी अनादर-युक्त होकर इसके प्रति अनुरक्त है। यह निन्दित स्वभाव वाली कुल-कलङ्किनी अभी अपने पति को शूली पर चढ़ा हुआ देखे।" यह अपशब्द कहते हुये भयंकर भृकुटि से ललाट दूषित कर काल के सदृश काले लोहे के डण्डे-से कठोर भुज-दण्ड से रेखा-गत कमल और पहिये के चिह्न वाले दोनो

---

१. जनाध्यारोपित।

रेखाम्बुजरथाङ्गलान्छने राजपुत्रं सरभसमाचकर्ष। स तु स्वभावधीरः सर्वपौरुषातिभूमिः सहिष्णुतैकप्रतिक्रियां दैवीमेव तामापदमवधार्य 'स्मर तस्या हंसगामिनि, हसकथायाः सहस्व वासु, मासद्वयम्' इति प्राणपरित्यागरागिणीं प्राणसमां समाश्वास्यारिवश्यतामयासीत् ।

अथ विदितवार्तार्तौ महादेवीमालवेन्द्रौ जामातरमाकारपक्षपातिनावात्मपरित्यागोपन्यासेनारिणा जिघांस्यमानं ररक्षतुः। न शेकतुस्तु तमप्रभुत्वादुत्तरयितुमापद.। स किल चण्डशीलश्चण्डवर्मा सर्वमिदमुदन्तजातं राजराजगिरौ

रेखारूपाणि अम्बुजानि पद्मानि रथाङ्गानि चक्राणि च लान्छनानि ययोः ते। राजपुत्रम् (राजवाहनम्)। सरभसम् सवेगम्। आचकर्ष आकृष्टवान्। सः। तु। स्वभावेन प्रकृत्या धीरः गम्भीरः। सर्वेषाम् पौरुषाणाम् पुरुषार्थानाम् अतिभूमिः अधिष्ठानम्। सहिष्णुता सहनशीलता एव एका केवला प्रतिक्रिया प्रतीकारः यस्याः ताम्। दैवीम् अदृष्टकृताम्। एव। ताम्। आपदम् सङ्कटम्। अवधार्य निश्चित्य। स्मर। तस्याः। हंसगामिनि हंसगते (संबुद्धौ)। हंसस्य कथायाः (अधीगर्थदयेशां··· इति कर्मणि षष्ठी)। सहस्व प्रतिपालय। वासु बाले (संबुद्धौ)। मासद्वयम् द्वौ मासौ। इति (उक्त्वा)। प्राणानाम् परित्यागः तद्रागिणीम् तदर्थम् प्रवृत्ताम्। प्राणसमाम् प्राणप्रियाम् समाश्वास्य उपसान्त्व्य। अरेः शत्रोः वश्यताम् आयत्तताम्। अयासीत् गतः।

अथ ततः। विदिता ज्ञाता वार्ता उदन्तः याभ्याम् तौ। आर्तौ दुःखिनौ। महादेवी सम्राज्ञी च मालवेन्द्रः मालवनरेशः च। जामातरम् (राजवाहनम्)। आकारेण आकृत्या पक्षपातिनौ आकृष्टौ। आत्मनः स्वस्य परित्यागस्य वधस्य उपन्यासेन (यदि हनिष्यसि तर्हि प्राणान् त्यक्ष्यावः) कथनेन। अरिणा शत्रुणा (चण्डवर्मणा)। जिघांस्यमानम् हन्तुम् इष्यमाणम्। ररक्षतुः। न। शेकतुः शक्तौ। तु (वाक्यालङ्कारे)। तम्। अप्रभुत्वात् असामर्थ्यात्। उत्तारयितुम् उद्धर्तुम्। आपदः विपत्तितः। सः। किल (ऐतिह्ये)। चण्डम् क्रूरम् शीलम् स्वभावः यस्य सः। चण्डवर्मा। सर्वम्। इदम्। उदन्तजातम् वार्तासमूहम्। राजराजगिरौ कैलासपर्वते। तपस्यते तपः आचरते।

कर-कमल पकड़कर राजकुमार को सवेग खींचा। उधर स्वभाव से गम्भीर और समस्त पौरुषों का आश्रय-स्थान वह (राज-वाहन) "यह आपत्ति दैवी ही है" यह निश्चित कर "हे हंसगामिनी, हंस की उस कथा का स्मरण करो। हे बाले, दो मास सहो" यह कहकर प्राण-त्याग की अनुरागिणी (इच्छुक) प्राण-समान उस (रमणी) को ढाढस देकर शत्रु के अधीन हो गया।

तब समाचार जानकर आकृति से आकृष्ट होकर महारानी और मालव-नरेश ने आत्मबलिदान की बात उठाकर शत्रु के द्वारा मारे जा रहे दामाद की रक्षा की किन्तु प्रभुत्व के अभाव से विपत्ति से उसका उद्धार न कर पाये। उस क्रूर स्वभाव वाले चण्डवर्मा ने ये

तपस्यते दर्पसाराय सदिश्य सर्वमेव पुष्पोद्भवकुटुम्बकं सर्वस्वहरणपूर्वकं सद्य एव बन्धने क्षिप्त्वा कृत्वा च राजवाहनं राजकेसरिकिशोर[1]कमिव दारुपञ्जरनिबद्धं मूर्धजजालविलीनचूडामणिप्रभावविक्षिप्तक्षुत्पिपासादिखेदं च तमवधूतदुहितृप्रार्थनस्याङ्गराजस्योद्धरणायाङ्गानभियास्यन्ननन्यविश्वासान्निनाय। रुरोध च बलभरदत्तकम्पश्चम्पाम्। चम्पेश्वरोऽपि सिंह इवासह्यविक्रमः प्राकारं भेदयित्वा महता बलसमुदायेन निर्गत्य स्वप्रहितदूतव्राताहूतानां साहाय्यदानायातिसत्वर-

दर्पसाराय। संदिश्य निवेद्य। सर्वम्। एव। पुष्पोद्भवस्य कुटुम्बकम् परिवारम्। सर्वस्वहरणपूर्वकम्। सद्यः शीघ्रम्। एव। बन्धने कारागृहे। क्षिप्त्वा निधाय कृत्वा। च। राजवाहनम्। राजा पशुराजः च असौ केसरी सिंहः च तस्य किशोरकः शावकः तम्। इव। दारुपञ्जरे दारुमये काष्ठनिर्मिते पञ्जरे निवद्धम् मध्ये स्थितम्। मूर्धजानाम् केशानाम् जाले समूहे विलीनः गूढः यः चूडामणिः नमुचिकन्यया दत्तः रत्नविशेषः तस्य प्रभावेण माहात्म्येन विक्षिप्तः दूरीकृतः क्षुत्-(क्षुधा) पिपासादिखेदः यस्य तम्। च। तम्। अवधूता तिरस्कृता दुहितुः पुत्र्याः प्रदानार्थम् कृता प्रार्थना याचना येन तस्य। अङ्गराजस्य उद्धरणाय उन्मूलनाय अङ्गान् अङ्गदेशम्। अभियास्यन् गच्छन् अनन्यविश्वासात् अन्यम् प्रति विश्वासाभावात्। निनाय नीतवान्। रुरोध। च। बलस्य सेनायाः भरेण अतिशयेन दत्तः उत्पादितः कम्पः कम्पनम् येन सः। चम्पाम् अङ्गदेशराजधानीम्। चम्पेश्वरः। अपि। सिंहवर्मा। सिंहः। इव। असह्यः न सह्यः विक्रमः पराक्रमः यस्य सः। प्राकारम् वप्रम्। भेदयित्वा। महता विशालेन। बलस्य सेनायाः समुदायेन समूहेन। निर्गत्य वहिः आगत्य। स्वेन आत्मना प्रहितानाम् प्रेषितानाम् दूतानाम् व्रातेन समूहेन आहूतानाम्। साहाय्यदानाय। अतिसत्वरम् सुशीघ्रम्। आपतताम् आगच्छताम्।

सारे समाचार कैलास पर्वत पर तपस्या कर रहे दर्पसार के पास भेजकर पुष्पोद्भव के सारे परिवार को सर्वस्व हरण कर तत्काल ही कारागार में डालकर और राजवाहन को राजा शेर के बच्चे की भाँति काठ के पिंजड़े में कैद करके किसी दूसरे पर विश्वास न होने से केश–समूह में छिपी चूड़ामणि के प्रभाव से भूख-प्यास आदि के कष्ट से रहित उसे पुत्री सौंपने की माँग न मानने वाले अङ्गराज के उद्धार के लिये अङ्ग-देश[2] की ओर कूच करते हुये ले चला और सेना के आधिक्य से कंपन उत्पन्न करते हुये चम्पा (नगरी) घेर ली। उधर सिंह की भाँति असह्य पराक्रम वाला चम्पा नरेश किले की दीवाल तोड़कर बड़ी फौजों के साथ निकलकर अपने भेजे दूतों के माध्यम से बुलाये गये सहायता देने के लिये अतिशीघ्र आते हुये राजों का

---

[1] किशोरम्।

[2] गंगा-तट पर एक चट्टान-भरे द्वीप से २४ मील पश्चिम स्थित एक (आजकल का भागलपुर या समीप का) प्रदेश।

मापततां धरापतीनामचिरकालभाविन्यपि संनिधाददत्तापेक्षः साक्षादिवावलेपो वपुष्मानक्षमापरीतः प्रतिबलं प्रतिजग्राह । जगृहे च महति संपराये क्षीणसकलसैन्यमण्डलः प्रचण्डप्रहरणशतभिन्नवर्मा[1] सिंहवर्मा करिणः करिणमवप्लुत्यातिमानुषप्राणबलेन चण्डवर्मणा । स च तद्दुहितर्यम्बालिकायामबलारत्नसमाख्यातायामतिमात्राभिलाषः प्राणैरेनं न व्ययूयुजत् । अपि त्वनीनयदपनीताशेषशल्यमकल्यसंधो[2] बन्धनम्[3] । अजीगणच्च गणकसंघैः 'अद्यैव क्षपावसाने विवाहनीया राजदुहिता' इति । कृतकौतुकमङ्गले च तस्मिन्नेकपिङ्गाचलात्प्रतिनि-

धरापतीनाम् नृपाणाम् । अचिरकालभाविनि शीघ्रभाविनि । अपि । सन्निधौ सन्निधाने । न दत्ता कृता अपेक्षा येन सः । साक्षात् पुरतः स्थितः । इव । अवलेपः गर्वः । वपुष्मान् देहधारी । अक्षमया क्रोधेन परीतः आक्रान्तः । प्रतिबलम् शत्रुसैन्यम् ! प्रतिजग्राह आक्रान्तवान् । जगृहे गृहीतः । च । महति विकटे । संपराये युद्धे । क्षीणः नष्टः सकलानाम् सर्वेषाम् सैन्यानाम् सेनानाम् मण्डलः समूहः यस्य सः । प्रचण्डेन भयङ्करेण । प्रहरणानाम् शस्त्राणाम् शतेन भिन्नम् विदीर्णम् वर्म कवचम् यस्य सः । सिंहवर्मा । करिणः गजात् । करिणम् गजम् । अवप्लुत्य आरुह्य । मानुषम् अतिक्रम्य वर्तते इति अतिमानुषम् प्राणबलम् यस्य तेन । चण्डवर्मणा । सः (चण्डवर्मा) । च । तस्य दुहितरि कन्यायाम् । अम्बालिकायाम् । अबलारत्नसमाख्यातायाम् अबला (स्त्री) रत्नम् इति प्रसिद्धायाम् । अतिमात्रम् अत्यन्तम् अभिलाषः अनुरागः यस्य सः । प्राणैः । एनम् (सिंहवर्माणम्) । न । व्ययूयुजत् पृथक् कृतवान् । अपि तु किन्तु । अनीनयत् प्रापयामास । अपनीतम् दूरीकृतम् अशेषम् सर्वम् शल्यम् बाणः यस्य तम् । अकल्या अचिन्त्या सन्धा प्रतिज्ञा यस्य सः । बन्धनम् कारागृहम् । अजीगणत गणयामास (विचारयामास) । गणकानाम् ज्यौतिषिकाणाम् सङ्घैः समूहैः (सह) । अथ । एव । क्षपायाः रात्रेः अवसाने समाप्तौ । विवाहनीया परिणेतव्या । राजदुहिता राजकुमारी । इति । कृतम् बद्धम् कौतुकमङ्गलम् वैवाहिककङ्कणम् येन तस्मिन् (चण्डवर्मणि) । च । तस्मिन् । एकपिङ्गाचलात् कैलासात् । प्रतिनिवृत्य

पहुँचना निकट-भविष्य में ही संभावित होने पर भी परवाह न कर सम्मुख-स्थित शरीर-धारी गर्व बनकर क्रोध से आकुल होकर शत्रु-सेना पर टूट पड़ा । भारी लड़ाई में अमानुषिक शक्ति वाले चण्डवर्मा ने एक हाथी से दूसरे पर कूदकर क्षीण हो गई सकल सेनाओं वाले और सैकड़ों भयंकर हथियारों से कटे कवच वाले सिंहवर्मा को पकड़ लिया । उस (चण्डवर्मा) ने उस (सिंहवर्मा) की अबला-रत्न नाम से प्रसिद्ध कन्या अम्बालिका के प्रति अत्यन्त आसक्त होने के कारण उसे जान से नहीं मारा बल्कि उस अचिन्त्य प्रतिज्ञा वाले (चण्डवर्मा) ने समस्त बाण निकालकर कारागार में डाल दिया और ज्योतिषियों के साथ विचार किया कि आज ही रात बीतने पर (प्रातः काल) राजकुमारी से व्याह करना है । उसके विवाह का कंगन पहन

---

[1] भिन्नमर्मा । [2] अकल्प्यसंधः । [3] बन्धनगृहम् ।

वृत्त्यैणजङ्घो नाम जङ्घाकरिकः प्रभवतो दर्पसारस्य प्रतिसंदेशमावेदयत्—‘अयि मूढ, किमस्ति कन्यान्तःपुरदूषकेऽपि कश्चित्कृपावसरः। स्थविरः स राजा जराविलुप्तमानावमानचित्तो दुश्चरितदुहितृपक्षपाती यदेव किंचित् प्रलपति त्वयापि किं तदनुगत्या स्थातव्यम्। अविलम्बितमेव तस्य कामोन्मत्तस्य चित्रवधवार्ताप्रेषणेन श्रवणोत्सवोऽस्माकं विधेयः। सा च दुष्टकन्या सहानुजेन कीर्तिसारेण निगडितचरणा चारके निरोद्धव्या’ इति। तच्चाकर्ण्य ‘प्रातरेव राजभवनद्वारे स च दुरात्मा कन्यान्तःपुरदूषकः सनिधापयितव्यः। चण्डपोतश्च मातङ्गपतिरु[1]चितकल्पनोपपन्नस्तत्रैव समुपस्थापनीयः। कृतविवाहकृत्यश्चोत्थायाहमेव तमनार्यशीलं[2] तस्य हस्तिनः कृत्वा क्रीडनकं[3] तदधिरूढ एव गत्वा शत्रु[4]साहा-

---

प्रत्यागत्य। एणजङ्घः। नाम। जङ्घाकरिकः शीघ्रगामी (‘जङ्घालोऽतिजवो जङ्घाकरिको जाङ्घिको जवी’ इति हैमः)। प्रभवतः प्रभोः। दर्पसारस्य। प्रतिसंदेशम् प्रत्युत्तरम्। आवेदयत् निवेदितवान्। अयि (कोमलामन्त्रणे)। मूढ (आत्मीयतया सम्बोधनम्) मूर्ख। किम् (न)। अस्ति। कन्यान्तःपुरदूषके दूषणोद्भाविके। अपि। कश्चित्। कृपायाः दयायाः अवसरः अवकाशः। स्थविरः वृद्धः। सः। राजा। जरया वृद्धतया विलुप्तम् नष्टम् मानः संमानः अवमानः अपमानः च यस्य तादृशम् चित्तम् यस्य सः। दुश्चरितायाः दुराचारायाः दुहितुः पुत्र्याः। प्रलपति अनर्थकम् वदति। तस्य। अविलम्बितम् शीघ्रम्। कामेन उन्मत्तस्य। चित्रेण अद्भुतप्रकारेण यः वधः तस्याः वार्तायाः उदन्तस्य प्रषणेन। श्रवणयोः कर्णयोः उत्सवः आनन्दः। निगडितौ बद्धौ चरणौ यस्याः सा। चारके कारागृहे (‘चारकं बन्धनालयः’ इति वैजयन्ती)। सन्निधापयितव्यः सन्निधौ स्थापयितव्यः। मातङ्गपतिः गजराजः। उचिताः याः कल्पनाः अलङ्कारादिरचनाः तैः उपपन्नः युक्तः। अनार्यम् दुष्टम् शीलम् स्वभावः यस्य तम्। हस्तिनः गजस्य। क्रीडनकम् खेलनम् तस्मिन् अधिरूढः आरूढः। शत्रोः (चण्डवर्मणः) साहाय्यकाय सहायतार्थम्।

लेने पर कैलास पर्वत से लौटकर एणजङ्घ नामक तेज चलने वाले आदमी ने प्रभु दर्पसार का प्रत्युत्तर सूचित किया—‘अरे पगले, कन्यान्तःपुर में दाग लगाने वाले के प्रति क्या दया का कोई अवसर है। बुढ़ापे में मान-अपमान रहित चित्त वाले वे बूढ़े राजा दुश्चरित्र पुत्री के पक्षपाती होकर जो कुछ बकते हैं बकें; क्या तुम्हें भी उनकी अनुमति से काम करना चाहिये। जल्दी ही उस कामोन्मत्त के अद्भुत प्रकार से किये वध का समाचार भेजकर मेरे कानों के लिये उत्सव का प्रबन्ध करो और उस दुष्ट लड़की को भाई कीर्तिसार के साथ पैरों में बेड़ी डालकर जेल में बन्द रखो।’ तब वह बात सुनकर ‘सवेरे-सवेरे राजमहल के द्वार पर कन्या-अन्तःपुर में दाग लगाने वाले उस दुरात्मा को उपस्थित करो और गजराज चण्डपोत को समुचित अलंकरण से सजाकर वहीं लाओ। विवाह-कार्य हो जाने पर उठकर मैं ही उस दुष्ट स्वभाव वाले को उस हाथी का खिलौना बनाकर उस पर चढ़ा-चढ़ा ही जाकर शत्रु की

---

[1] उपचित। [2] अनार्यम्। [3] क्रीडनम्। [4] साहाय्याय।

य्यकाय प्रत्यासीदतो राजन्यकस्य सकोशवाहनस्यावग्रहण करिष्यामि' इति पार्श्वचरानवेक्षांचक्रे। निन्ये चासावहन्यन्यस्मिन्नुन्मिषत्येवोषोरागे राजपुत्रो राजाङ्गणं रक्षिभिः। उपतस्थे च क्षरितगण्डश्चण्डपोतः। क्षणे च तस्मिन्मुमुचे तदङ्घ्रियुगलं रजतश्रृङ्खलया। सा चैनं चन्द्रलेखाच्छविः काचिदप्सरो[1] भूत्वा प्रदक्षिणीकृत्य प्राञ्जलिर्व्यजिज्ञपत्—'देव, दीयतामनुग्रहार्द्रं चित्तम्। अहमस्मि सोमरश्मिसम्भवा सुरतमञ्जरी नाम सुरसुन्दरी। तस्या मे नभसि [2]नलिनलुब्धमुग्धकलहंसानुबद्धवक्त्रायास्तन्निवारणक्षोभविच्छिन्नविगलिता हारयष्टिर्यदृच्छया जातु हैमवते मन्दोदके मग्नोन्मग्नस्य महर्षेर्मार्कण्डेयस्य मस्तके मणिकिरण-

प्रत्यासीदतः समीपम् आगच्छतः। राजन्यकस्य क्षत्रियसमूहस्य। कोशः निधिः वाहनम् (गजाश्वादीनि) तैः सह वर्तमानस्य। अवग्रहणम् बन्धनम्। पार्श्वचरान् समीपस्थान् वीरान्। अवेक्षाञ्चक्रे ददर्श। निन्ये उपनीतः। उन्मिषति स्फुरति। उषोरागे उषःकालस्य रागे लौहित्ये। राजपुत्रः (राजवाहनः)। रक्षिभिः रक्षाधिकृतपुरुषैः। उपतस्थे उपस्थितः। क्षरितः मदलिप्तः गण्डः कपोलः यस्य सः। मुमुचे मुक्तम्। तस्य (राजवाहनस्य) अङ्घ्र्योः चरणयोः युगलम् युग्मम्। सा (रजतश्रृङ्खला)। चन्द्रलेखायाः ज्योत्स्नायाः छविः कान्तिः इव छविः यस्याः सा। प्राञ्जलिः कृतनमस्कृतिः। व्यजिज्ञपत् ज्ञापितवती। अनुग्रहेण कृपया आर्द्रम् कोमलम्। सोमस्य चन्द्रस्य रश्मेः किरणात् संभवः जन्म यस्याः सा। सुरसुन्दरी देवस्त्री (अप्सरः)। नलिने कमले लुब्धः लोभी मुग्धः मूढः यः कलहंसः तेन अनुबद्धम् अनुगतम् वक्त्रम् मुखम् यस्याः तस्याः। तस्य (कलहंसस्य) निवारणे यः क्षोभः चाञ्चल्यम् तेन विच्छिन्ना त्रुटिता अतः विगलिता पतिता। हारयष्टिः हारलता। यदृच्छया स्वेच्छया। जातु कदाचित्। हैमवते हिमालयसम्बन्धिनि सरसि तडागे। मन्दम् अल्पम् उदकम् जलम् यत्र तस्मिन्। मग्नोन्मग्नस्य स्नात्वा उत्थितस्य। मणेः हारस्थरत्नस्य किरणैः द्विगुणितम् वर्धितम् पलितम् वृद्धताजनितकेश-

सहायता के लिये खजाने और सवारियों के साथ आये राजों को रोकूँगा।' यह कहकर उसने समीपस्थ वीरों की ओर दृष्टि की। दूसरे दिन उषा की लालिमा के झलकते ही सिपाहियों के द्वारा राजकुमार राजा के आँगन में लाया गया और बहते मद से लिप्त कनपटी वाला चण्डपोत भी पहुँचा। उसी क्षण चाँदी की जंजीर ने उसके दोनों पाँव छोड़ दिये। उसने चाँदनी की जैसी कांति वाली एक अप्सरा का रूप धारण कर उसकी परिक्रमा कर हाथ जोड़े हुये निवेदन किया—'महाराज, कृपा से आर्द्र मन (जरा) इधर कीजियेगा। मैं चन्द्रमा की किरणों से उत्पन्न सुरत-मञ्जरी नामक अप्सरा हूँ। कभी आकाश में कमल-लोभी (कमल के) भ्रम में पड़ गया कलहंस मेरे मुँह के पीछे लगा। उसे हटाने की चञ्चलता से टूटकर गिरी हारलता संयोग से हिमालय के कम जल वाले एक (या मन्दोदक-नामक) तालाब में डुबकी लगाकर उठे हुये महर्षि मार्कण्डेय के मस्तक पर इस प्रकार गिरी कि मणि-किरणों से उनके

---

[1] अप्सराः। [2] परिपतन्नलिन०।

द्विगुणितपलितमपतत्। पातितश्च कोपितेन कोऽपि तेन मयि शापः—'पापे, भजस्व लोहजातिमजातचैतन्या सती' इति। स पुनः प्रसाद्यमानस्त्वत्पादपद्मद्वयस्य मासद्वयमात्रं संदानतामेत्य निस्तरणीयामिमामापदमपरिक्षीणशक्तित्वं [1]चेन्द्रियाणामकल्पयत्। अनल्पेन च पाप्मना रजतशृङ्खलीभूतां मामैक्ष्वाकस्य राज्ञो वेगवतः पौत्रः, पुत्रो मानसवेगस्य, वीरशेखरो नाम विद्याधरः शंकरगिरौ समभ्यगमत्। आत्मसात्कृता च तेनाहमासम्। अथासौ पितृप्रयुक्तवैरे [2]प्रवर्तमाने विद्याधरचक्रवर्तिनि वत्सराजवंशवर्धने नरवाहनदत्ते विरसाशयस्तदपकारक्षमोऽयमिति तपस्यता दर्पसारेण सह समसृज्यत। प्रतिश्रुतं च तेन तस्मै [3]स्वसुरवन्तिसुन्दर्याः प्रदानम्। अन्यदा तु वियति व्यवदायमानचन्द्रिके मनोरथप्रिय-

श्वेतता यत्र तत् यथा स्यात् तथा। कोपितेन कोपः संजातः यस्य सः (तदस्य संजातम् इति इतच्प्रत्ययः)। पापे रे पापयुक्ते। भजस्व प्राप्नुहि। लोहजातिम् लोहत्वम्। न जातम् चैतन्यम् यस्याः सा। प्रसाद्यमानः प्रसन्नीक्रियमाणः। मासद्वयम् प्रमाणम् अस्य इति मात्रच्। सन्दानताम् बन्धनत्वम् (सन्दानं पादबन्धनम् इति अमरः)। एत्य प्राप्य। निस्तरणीयाम्। न परिक्षीणा नष्टा शक्तिः यस्य तत्त्वम्। अकल्पयत् विहितवान्। अनल्पेन महता। पाप्मना पापेन। इक्ष्वाकोः अयम् इति ऐक्ष्वाकः तस्य। शङ्करगिरौ कैलासे। समभ्यगमत् प्राप्तवान्। आत्मसात्कृता गृहीता। पित्रा प्रयुक्तम् कृतम् यत् वैरम् शत्रुता तस्मिन्। वर्धने जाते। विरसः क्रूरः आशयः यस्य सः। तस्य अपकारे निग्रहे क्षमः समर्थः। समसृज्यत मिलितः। प्रतिश्रुतम् प्रतिज्ञातम्। तेन दर्पसारेण। तस्मै वीरशेखराय। स्वसुः भगिन्याः। अन्यदा अन्यस्मिन् समये। वियति आकाशे। व्यवदायमाना निर्मला चन्द्रिका ज्योत्स्ना यत्र तस्मिन्। मनोरथैः अभिलाषैः। दिदृक्षुः द्रष्टुम् इच्छुः।

बालों की सफेदी दूना हो गई। उन्होंने गुस्सा होकर मेरे ऊपर अकथनीय (दुःसह) शाप का प्रहार किया—'पापिन, चैतन्य-रहित लोह-जाति धारण करो।' प्रसन्न किये जाने पर उन्होंने फिर केवल दो मास के लिये तुम्हारे दोनो चरण कमलों का बन्धन बनकर उद्धार-योग्य इस विपत्ति और इन्द्रियों को शक्ति के क्षीण न होने की व्यवस्था की। महान् पाप के कारण चाँदी की जंजीर बनी हुई मुझे इक्ष्वाकु-कुल[४] के राजा वेगवान् के पौत्र और मानसवेग के पुत्र वीरशेखरनामक विद्याधर ने कैलास पर्वत पर पाया। उसने मुझे अपने अधीन कर लिया। इसके बाद पिता से हुये वैर के उठ खड़े होने से विद्याधर-राज वत्सराजवंश में उत्पन्न नरवाहनदत्त के प्रति हृदय में क्रूरता धारण कर "यह (दर्पसार) उसका अपकार करने में समर्थ है" यह सोचकर तप करते हुये दर्पसार से मिल गया और उस (दर्पसार) ने उस-(वीरशेखर) से अपनी बहन अवन्तिसुन्दरी का ब्याह करने का वचन दिया। फिर कभी जब आकाश में निर्मल चाँदनी थी अपनी मनोरथ को (वास्तविक नहीं) प्रेयसी अवन्ति-

---

१. च पञ्चेन्द्रियाणाम्। २. वर्तमाने। ३. स्वस्वसु०।

४. इक्ष्वाकु वंश की सूची में ये नाम अन्यत्र नहीं मिलते।

तमामवन्तिसुन्दरीं दिदृक्षुरवशेन्द्रियस्तदिन्द्रमन्दिरद्युति कुमारीपुरमुपासरत्। अन्तरितश्च तिरस्करिण्या विद्यया स च तां तदा त्वदङ्कापाश्रयां[1]सुरतखेदसुप्तगात्रीं त्रिभुवनसर्गयात्रासंहारसम्बद्धाभिः[2] कथाभिरमृतस्यन्दिनीभिः प्रत्यानीयमानरागपूरां न्यरूपयत्। स तु प्रकुपितोऽपि त्वदभावप्रतिबद्धनिग्रहान्तराध्यवसायः समालिङ्ग्येतरेतरमत्यन्तसुखसुप्तयोर्युवयोर्दैवदत्तोत्साहः पाण्डुलोहश्रृङ्खलात्मना मया पादपद्मयोर्युगलं तव निगडयित्वा सरोषरभसमपासरत्। अवसितश्च ममाद्य शापः। तच्च मासद्वयं तव पारतन्त्र्यम्। प्रसीदेदानीम् किं तव करणीयम्'

अवशानि विकलानि इन्द्रियाणि यस्य सः। इन्द्रमन्दिरस्य देवराजगृहस्य द्युतिः दीप्तिः इव द्युतिः यस्य तत्। कुमारीपुरम् कन्यान्तःपुरम्। उपासरत् आगच्छत्। अन्तरितः आच्छादितः। तिरस्करिण्या अन्तर्धानकारिण्या। तव (राजवाहनस्य) अङ्के क्रोडे अपाश्रयः शिरोभागः (अपाश्रयः शिरोभागः इति वैजयन्ती)। सुरतखेदेन केलिक्रमेन सुप्तानि निश्चलानि गात्राणि अङ्गानि यस्याः सा। त्रिभुवनस्य सर्गः उत्पत्तिः यात्रा स्थितिः संहारः प्रलयः च तैः संबद्धाभिः। स्यन्दिनीभिः स्रावणीभिः। प्रत्यानीयमानः पुनः उत्पाद्यमानः रागस्य प्रेम्णः पूरः प्रवाहः यस्याः ताम्। न्यरूपयत् दृष्टवान्। तत्र अनुभावेन सामर्थ्येन प्रतिबद्धः निवारितः निग्रहान्तरस्य (श्रृङ्खलाबन्धनम् विना) अन्यस्य निग्रहस्य दण्डस्य अध्यवसायः निश्चयः येन। पाण्डुलोहस्य रजतस्य श्रृङ्खलात्मनः श्रृङ्खलारूपायाः। मया अप्सरसा (श्रृङ्खलारूपया)। निगडयित्वा बद्ध्वा। सरोषरभसम् सकोपवेगम् यथा स्यात् तथा। अपासरत् अगच्छत्। अवसितः समाप्तः। तव

सुन्दरी को देखने का इच्छुक होकर वह (वीरशेखर) इन्द्रियों पर काबू न पाकर उस इन्द्र-महल की शोभा के समान शोभा वाले कन्या-अन्तःपुर में पहुँचा। तब अन्तर्धान विद्या से छिपकर उसने उस-(अवन्तिसुन्दरी) को देखा। वह तुम्हारी गोद में अपना सिर रखे थी, उसके अङ्ग केलि क्रीड़ा से निश्चल हो गये थे और उसमें तीनो लोकों की सृष्टि, स्थिति और नाश से संबद्ध अमृत बहाने वाली[3] कथाओं से (तुम्हारे द्वारा) राग-प्रवाह पुनः लाया जा रहा था। वह (वीरशेखर) गुस्सा होकर भी तुम्हारे रोब से (बाँधने के अतिरिक्त) किसी दूसरे दण्ड के निश्चय से विरत और भाग्य-प्रदत्त उत्साह से युक्त होकर एक दूसरे को गले लगाकर अत्यन्त सुख-पूर्वक सोये हुये तुम दोनो में से तुम्हारे दोनो चरण-कमल चाँदी की जंजीर के रूप वाली मुझसे बाँधकर कोपवेग के साथ चल दिया। आज मेरा शाप समाप्त है। वह (शाप) दो माह के लिये तुम्हारी पराधीनता बनकर रहा। अब प्रसन्न हो जाओ।

---

१. त्वदङ्कोपा०। २. संश्रिताभिः।

३. वर्धमानानुरागां चान्वर्थाभिः कथाभिश्चित्तहारिणीभिश्च रञ्जयेत्।
वात्स्यायनकृतकामसूत्र ३।३।१७

इति प्रणिपतन्तीं 'वार्तयानया मत्प्राणसमां समाश्वासय' इति व्यादिश्य विससर्ज ।

तस्मिन्नेव क्षणान्तरे 'हतो हतश्चण्डवर्मा सिंहवर्मदुहितुरम्बालिकायाः पाणिस्पर्शरागप्रसारिते बाहुदण्ड एव बलवदवलम्ब्य सरभसमाकृष्य केनापि दुष्करकर्मणा[1]तस्करेण[2]नखप्रहारेण राजमन्दिरोद्देशं च शवशतमयमापादयन्नचकितगतिरसौ विहरति' इति वाचः समभवन् । श्रुत्वा चैतत्तमेव मत्तहस्तिनमुदस्ताधोरणो राजपुत्रोऽधिरुह्य रंहसोत्तमेन राजभवनमभ्यवर्तत । स्तम्बेरमरयावधूत-[3]पत्तिदत्तवर्त्मा च प्रविश्य वेश्माभ्यन्तरमदभ्राभ्रनिर्घोषगम्भीरेण स्वरेणाभ्यधात्— 'कः स महापुरुषो येनैतन्मानुषमात्रदुष्करं महत्कर्मानुष्ठितम् । आगच्छतु । मया

(कृते) । करणीयम् (मया) । प्रणिपतन्तीम् नमन्तीम् । वार्तया उदन्तेन । मम प्राणैः समाम् (अवन्तिसुन्दरीम्) । व्यादिश्य उक्त्वा ।

अन्तरे अभ्यन्तरे । पाणिस्पर्शे विवाहे यः रागः प्रेम तेन प्रसारिते विस्फारिते । बलवत् दृढतया । अवलम्ब्य धृत्वा । सरभसम् सवेगम् । नखम् व्याघ्रनखाख्यम् आयुधम् । राजमन्दिरोद्देशम् राजगृहप्रदेशम् । शवानाम् शतम् यत्र तादृशम् । आपादयन् कुर्वन् । अचकिता भयरहिता गतिः गमनम् यस्य सः । समभवन् उद्भूताः । उदस्तः दूरीकृतः आधोरणः हस्तिपकः येन सः । रंहसा वेगेन । अभ्यवर्तत प्राचलत् । 'स्तम्बे रमते असौ (स्तम्बकर्णयो रमिजपोः इति अच् । हलदन्तात् इति अलुक् ।) तस्य रयः वेगः तेन अवधूतः दूरीकृताः ये पत्तयः पदातयः तैः दत्तम् वर्त्म मार्गः यस्यः सः । अदभ्रः बहुलः यः अभ्रनिर्घोषः मेघरसितम् तद्वत् गम्भीरेण (निर्घोषे रसितादि च इति अमरः) । अभ्यधात् अवदत् । मानुषमात्रदुष्करम् अशेष-

---

तुम्हारी क्या सेवा करूँ' यह कहकर प्रणाम करती हुई उससे उस (राजवाहन) ने 'इस समाचार से मेरी प्राणतुल्या (प्यारी) को ढाढस देना' कहकर विदा किया ।

उसी समय 'मारा गया मारा गया चण्डवर्मा सिंहवर्मा की बेटी अम्बालिका के हाथ के स्पर्श के प्रति प्रेम से भुजदण्ड बढ़ाते ही दृढ़ता से पकड़कर वेग-सहित खींचकर किसी दुष्कर कार्य करने वाले चोर के द्वारा बघनखे से । वह राजमहल के इलाके को सैकड़ों लाशों से भरकर निर्भय गति से घूम रहा है' यह बात शुरू हुई । यह सुनकर महावत को नीचे फेंककर उसी मस्त हाथी पर चढ़कर राजकुमार (राजवाहन) तेज चाल से राजमहल की ओर चल पड़ा । हाथी के वेग से हटाये गये पैदल चलने वालों ने रास्ता छोड़ दिया । महल के अन्दर घुसकर मेघ के जोर के गर्जन के समान गम्भीर आवाज में बोला—'कौन है वह महापुरुष जिसने सकल मानवों के द्वारा असम्भव महान् कार्य कर दिया । वह आये । मेरे साथ इस

---

[1] दुष्करकर्मकारिणा । [2] नखर । [3] पदाति ।

सहेमं मत्तहस्तिनमारोहतु। अभयं मदुपकण्ठवर्तिनो देवदानवैरपि विगृह्णानस्य' इति। निशम्यैवं स पुमानुपोढहर्षो निर्गत्य कृताञ्जलिराक्रम्य संज्ञासंकुचितं कुञ्जरगात्रमसक्तमध्यरुक्षत्। आरोहन्तमेवैन निर्वर्ण्य हर्षोत्फुल्लदृष्टिः 'अये! प्रियसखोऽयमपहारवर्मैव' इति पश्चान्निषीदतोऽस्य बाहुदण्डयुगलमुभयभुजमूलप्रवेशितमग्रेऽवलम्ब्य स्वमङ्गमालिङ्गयामास। स्वयं च पृष्ठतो वलिताभ्यां भुजाभ्यां पर्यवेष्टयत्। तत्क्षणोपसहृतालिङ्गनव्यतिकरश्चापहारवर्मा चापचक्रकणपकर्पण[1] प्रासपट्टिशमुसलतोमरादिप्रहरणजात[2]मुपयुञ्जाना[3]न्बलावलिप्तान्प्रतिबलवीरान् बहुप्रकारायोधिनः परिक्षिपतः क्षितौ विचिक्षेप। क्षणेन चाद्राक्षीत्तदपि सैन्यमन्येन समन्ततोऽभिमुखमभिधावता बलनिकायेन परिक्षिप्तम्।

मानुषैः कर्तुम् अशक्यम्। विगृह्णानस्य विरोधम् कुर्वाणस्य। निशम्य श्रुत्वा। उपोढः प्राप्तः। हर्षः येन सः। कृतः अञ्जलिः प्रणामः येन सः। आक्रम्य आगत्य। संज्ञया संकेतेन संकुचितम् खर्वीकृतम्। असक्तम् अलग्नम् (अस्पृष्ट्वा)। अध्यरुक्षत् आरूढः। निर्वर्ण्य निपुणम् निरीक्ष्य। हर्षोत्फुल्ला दृष्टिः यस्य सः। अये (अतर्कापतिते त्वये इति केशवः)। प्रियः च असौ सखा च (राजाहःसखिभ्यष्टच्)। भुजमूलम् कक्षम्। अग्रे (बाहुदण्डयुगलाग्रे)। वलिताभ्याम् वक्रिताभ्याम्। पर्यवेष्टयत् आलिङ्गितवान्। उपसंहृतः समाप्तः आलिङ्गनस्य व्यतिकरः संपर्कः येन सः। कणपः लोहस्तम्भः (लोहस्तम्भस्तु कणपः इति वैजयन्ती)। कर्पणः शरावाकारः अस्त्रविशेषः। प्रासः कुन्तः (प्रासस्तु कुन्तः इति अमरः)। पट्टिशः शस्त्रविशेषः (पट्टिशः स्याद् विशालाग्रः इति वैजयन्ती)। मुसलम् मुसलाकारम् लोहायुधम्। तोमरः लोहगुच्छः (तोमरो वेगदण्डवान् इति वैजयन्ती)। प्रहरणजातम् शस्त्रसमूहम्। उपयुञ्जानान् प्रेरयतः। अवलिप्तान् गर्वितान्। प्रतिबलवीरान् शत्रुपक्षीयभटान्। आयोधिनः युद्धम् कुर्वतः। परिक्षिपतः निक्षिपतः (लोकान् इति शेषः)। विचिक्षेप पातितवान्। समन्ततः परितः। अभिमुखम् सम्मुखम्। अभिधावता आगच्छता। बलानाम् सेनानाम् निकायेन समूहेन। परिक्षिप्तम् आक्रान्तम्।

मस्त हाथी पर सवार होवे। मेरे समीप रहने वाला देवों और दानवों से भी विरोध करे तो उसे डर नहीं।' यह सुनकर वह आदमी आनन्दित होकर निकलकर हाथ जोड़े हुये आकर संकेत से सिकुड़े हुये गज-शरीर पर बिना स्पर्श के चढ़ गया। चढ़ते समय ही इसे निरखकर हर्ष से विकसित दृष्टि लेकर 'अरे यह प्यारे सखा अपहार वर्मा ही हैं।' यह कहकर पीछे बैठे हुये इसके अपनी दोनो काँखों में प्रविष्ट कराये गये दोनो भुजदण्डों का सिरा पकड़कर अपने शरीर का आलिङ्गन कराया और खुद पीछे लपेटी भुजाओं से लिपटा लिया। उसी क्षण आलिङ्गन-सम्पर्क तोड़कर अपहार वर्मा ने धनुष, चक्र, कणप (लोह-स्तम्भ), कर्पण, भाले, पट्टिश, मुसल, तोमर आदि हथियारों का उपयोग कर रहे शक्ति-गर्वित अनेक प्रकार से लड़ते हुये, (लोगों को) गिराते हुए शत्रुपक्षीय वीरों को पृथ्वी पर फेंक दिया। क्षण भर में देखा कि चारो ओर सामने आ रहे अन्य सैन्य-समूह ने वह सेना भी नष्ट कर दी है।

---

[1] कर्णप। [2] जालं। [3] उपयुञ्जानः।

[1]अनन्तरं च कश्चित्कर्णिकारगौरः कुरुविन्दसवर्णकुन्तलः कमलकोमलपाणिपादः कर्णचुम्बिदुग्धधवलस्निग्धनीललोचनः कटितटनिविष्टरत्ननखः पट्टनिवसनः कृशाकृशोदरोरःस्थलः कृतहस्ततया रिपुकुलमिषुवर्षेणा[2]भिवर्षन्पादाङ्गुष्ठनिष्ठुरावघृष्टकर्णमूलेन प्रजविना गजेन संनिकृष्य पूर्वोपदेशप्रत्ययात् 'अयमेव स देवो राजवाहनः' इति प्राञ्जलिः प्रणम्यापहारवर्मणि निविष्टदृष्टिराचष्ट—'त्वदादिष्टेन मार्गेण संनिपातितमेतदङ्गराजसाहाय्यदानायोपस्थितं राजकम्[3]। [4]अखिलं च विहतविध्वस्तं स्त्रीबालहार्यशस्त्रं वर्तते। किमन्यत्कृत्यम्' इति। हृष्टस्तु व्याजहारापहारवर्मा—'देव, दृष्टिदानेनानुगृह्यतामयमाज्ञाकरः। सोऽय[5]महमेवामुना रूपेण धन-

कर्णिकारः द्रुमोत्पलः तद्वत् गौरः। कुरुविन्देन नीलमणिना सवर्णाः समानाः कुन्तलाः केशाः यस्य सः। कमलवत् कोमलम् पाणिपादम् यस्य सः। कटितटे निविष्टः रत्नयुक्तः नखः व्याघ्रनखः यस्य सः। पट्टम् दुकूलम् निवसनम् परिधानम् यस्य सः। कृशम् च अकृशम् च उदरम् उरःस्थलम् च यस्य सः (कृशोदरः अकृशोरःस्थलः)। कृतः शिक्षितः (शिक्षितं कृतमर्थवत् इति भागुरिः)। हस्तः यस्य तत्ता तया। इषूणाम् बाणानाम् वर्षेण वृष्ट्या। पादाङ्गुष्ठेन निष्ठुरं यथा स्यात् तथा अवघृष्टम् घर्षितम् कर्णमूलम् यस्य तेन। प्रजविना वेगवता। संनिकृष्य समीपम् आगत्य। पूर्वोपदेशप्रत्ययात् पूर्वोक्तपरिचयज्ञानात् प्राञ्जलिः बद्धाञ्जलिः। आचष्ट अवदत्। सन्निपातितम् आनीतम्। राजकम् राजसमूहः। स्त्रीभिः बालैः च हार्याणि शस्त्राणि यस्य तादृशम्। कृत्यम् कर्त्तव्यम्। व्याजहार उक्तवान्। आज्ञाकरः सेवकः। अहम् एव मत्तः अभिन्नः। आख्यया

इसके बाद कर्णिकार के समान गोरा, कुरुविन्द के समान केश वाला, कमल के समान कोमल हाथ-पाँव वाला, कान को चूमने वाले, दूध से सफेद, स्निग्ध और नीले नेत्र वाला, कमर के किनारे बघनखा लगाये, रेशमी वस्त्र पहने, पतली कमर और चौड़ी छाती वाला, हस्तलाघव से शत्रुओं पर बाण की वर्षा करता हुआ, पैर के अँगूठे से निर्दयतापूर्वक रगड़ी कनपटी वाले तीव्रगामी हाथी पर सवार होकर निकट आकर पहले बताये हुये परिचय से पहचानकर 'यही वे महाराज राजवाहन हैं' यह कहकर अञ्जलि बाँधकर प्रणाम कर अपहारवर्मा को एकटक देखता हुआ बोला—'आपकी बताई राह से अङ्गराज को सहायता देने के लिये उपस्थित यह राज-समाज इकट्ठा किया गया है और दुश्मन की फौज इस प्रकार घायल और विध्वस्त है कि स्त्री और बालक भी उसके हथियार छीन सकते हैं। अब क्या करना है। अब अपहारवर्मा ने प्रसन्न होकर कहा—'महाराज, इस सेवक पर दृष्टिपात कर कृपा करें। इसे मुझसे

---

१. अन्तरे। २. अभिपात्य। ३. राजन्यकम्। ४. अखिलारि० अखिलं चा०। ५. सोऽयमप्यह०; सोऽयमेवाद्य।

मित्राख्यया चान्तरितो मन्तव्यः । स एवायं निर्गमय्य बन्धनादङ्गराजमपवर्जितं च कोशवाहनमेकीकृत्यास्मद्गृह्येणामुना सहराजन्यकेनैकान्ते सुखोपविष्टमिह देवमुपतिष्ठतु यदि न दोषः' इति । देवोऽपि 'यथा ते रोचते' इति तमाभाष्य गत्वा च तन्निर्दिष्टेन मार्गेण नगराद्बहिरतिमहतो रोहिणद्रुमस्य [1]कस्यचित्क्षौमावदातसैकते गङ्गातरङ्गपवनपातशीतले तले द्विरदादवततार । प्रथमसमवतीर्णनापहारवर्मणा च स्वहस्तसत्वरसमीकृते [2]मातङ्ग इव भागीरथीपुलिनमण्डले सुखं निषसाद । तथा निषण्णं च तमुपहारवर्मार्थपालप्रमतिमित्रगुप्तमन्त्रगुप्तविश्रुतैर्मैथिलेन च प्रहारवर्मणा, काशीभर्त्रा च कामपालेन, चम्पेश्वरेण सिंहवर्मणा, सहोपागत्य धनमित्रः प्रणिपपात । देवोऽपि हर्षविद्धमभ्युत्थितः 'कथ समस्त [3]एष मित्रगणः समागतः? को नामायमभ्युदयः ?' इति कृतयथोचितोपचारान्निर्भरतरं[4] परिरेभे । काशीपतिमैथिलाङ्गराजांश्च सुहृन्निवेदितान्पितृवदपश्यत् । तैश्च

नाम्ना । अन्तरितः भिन्नः । निर्गमय्य मोचयित्वा । अपवर्जितम् इतस्ततः गतम् । गृह्येण पक्षस्थितेन । रोहिणद्रुमस्य वटवृक्षस्य (वटवृक्षस्तु रोहिणः इति वैजयन्ती) । क्षौमम् पट्टम् इव अवदातम् शुद्धम् सैकतम् सिकतामयम् स्थलम् तत्र । द्विरदात् गजात् । मातङ्गे गजे पुलिनमण्डले मण्डलाकारे पुलिने । तम् राजवाहनम् । मैथिलेन मिथिलाराजेन । भर्त्रा नरेशेन । उपागत्य समीपे आगत्य । प्रणिपपात प्रणामम् अकरोत् । हर्षेण आविद्धम् युक्तम् यथा स्यात् तथा । अभ्युदयः उन्नतिः । उपचारः संमानः । निर्भरतरम् दृढतरम् । परिरेभे आलिङ्गितवान् । निवेदितान् निर्दिष्टान् । हर्षेण कम्पितम् पलितम् वृद्धतया श्वेताः केशाः यत्र तत् यथा स्यात् तथा ।

अभिन्न और इस आकार तथा "धनमित्र" नाम के कारण (ही) भिन्न मानें । यह अगर आपत्ति न हो तो अङ्गराज (सिंहवर्मा) को बन्धन से छुड़ाकर और बिखरे खजाने तथा सवारियों को एकत्रित कर हमारे पक्ष वाले इस क्षत्रिय-समूह के साथ इस एकान्त में सुखपूर्वक बैठे हुए महाराज की सेवा में उपस्थित हो । राजा भी 'जैसा तुम ठीक समझो' कहकर उस (अपहारवर्मा) के बताये गये मार्ग से शहर के बाहर जाकर किसी बहुत बड़े बरगद के पेड़ के तले हाथी से उतरा । वहां का बलुआ स्थल रेशमी वस्त्र-सा निर्मल था । वह (स्थान) गङ्गा की लहरों से लगकर चलने वाली हवा के लगने से ठंडा था । पहले उतरकर अपहारवर्मा के द्वारा अपने हाथों शीघ्र समतल किये मण्डलाकार गंगा-तट पर यों सुखपूर्वक बैठे जैसे हाथी पर बैठे हों । उपहारवर्मा, अर्थपाल, प्रमति, मित्रगुप्त, मन्त्रगुप्त, विश्रुत, मिथिलाराज प्रहारवर्मा, काशीनरेश कामपाल और चम्पा-राज सिंहवर्मा के साथ समीप आकर धनमित्र ने इस प्रकार बैठे हुए उस (राजवाहन) को प्रणाम किया और राजा ने सहर्ष उठकर 'अरे ! यह समस्त मित्र-मण्डली आ गई है । क्या सौभाग्य है !' कहकर उनका यथोचित सत्कार कर भरपूर गले लगाया । मित्र के बताने पर काशी नरेश, मिथिला-राज और अङ्ग-नरेश को पितृ-तुल्य

---

१. कस्यांचिन्मूले । २. मातङ्ग इव स्फटिकमय इव । ३. एव । ४. उत्पीडिततरम् ।

[1]हर्षकम्पितपलितं [2]सरभसोपगूढः परमभिननन्द । ततः प्रवृत्तासु प्रीतिसंकथासु प्रियवयस्यगणानुयुक्तः स्वस्य च सोमदत्तपुष्पोद्भवयोश्चरितमनुवर्ण्य सुहृदामपि वृत्तान्तं क्रमेण श्रोतुं कृतप्रस्तावस्तांश्च तदुक्तावन्वयुङ्क्त । तेषु प्रथमं प्राह स्म किलापहारवर्मा—

इति श्रीदण्डिनः कृतौ दशकुमारचरिते राजवाहनचरितं नाम प्रथम उच्छ्वासः ॥

द्वितीयोच्छ्वासः

'देव, त्वयि तदावतीर्णे द्विजोपकारायासुरविवरं त्वदन्वेषणप्रसृते[3] च मित्रगणेऽहमपि महीमटन्नङ्गेषु गङ्गातटे बहिश्चम्पायाः 'कश्चिदस्ति तपःप्रभावोत्पन्नदिव्यचक्षुर्मरीचिर्नाम महर्षिः' इति कुतश्चित्संलपतो जनसमाजादुपलभ्यामुतो

सरभसम् सवेगम् । उपगूढः आलिङ्गितः । प्रवृत्तासु आरब्धासु । प्रीतिसंकथासु स्नेहालापेषु । प्रियाणाम् वयस्यानाम् बालमित्राणाम् गणेन अनुयुक्तः पृष्टः सन् । चरितम् जीवनम् । अनुवर्ण्य यथा पूर्वपीठिकायाम् उक्तम् तथा वर्णयित्वा । तस्य वृत्तान्तस्य उक्तौ वर्णने । अन्वयुङ्क्त नियुक्तवान् । प्रथमम् पूर्वम् ।

देव महाराज (राजवाहन) । अवतीर्णे प्रविष्टे । असुरविवरम् पातालम् । प्रसृते इतस्ततः गते । अङ्गेषु अङ्गदेशे । दिव्यचक्षुः अतीन्द्रियद्रष्टा । कुतश्चित् अज्ञातपरिचयात् । उपलभ्य ज्ञात्वा ।

माना और उनके हर्ष से सफेद बाल हिलाते हुये सवेग आलिङ्गित होकर बहुत आनन्दित हुआ । फिर प्रेमालाप चल पड़ने पर प्यारे दोस्तों के पूछने पर अपने सोमदत्त और पुष्पोद्भव का जीवन बयान कर मित्रों का वृत्तान्त भी सुनने के लिये क्रम से प्रस्ताव कर वह (वृत्तान्त) कहने को प्रेरित किया । उनमें से अपहार वर्मा ने सबसे पहले कहा—

श्री दण्डी की रचना दशकुमारचरित के अन्तर्गत राजवाहन-चरित [जीवन]
नामक प्रथम उच्छ्वास (अध्याय) समाप्त हुआ ।

दूसरा उच्छ्वास (=अध्याय)

महाराज, ब्राह्मण की भलाई के लिए तब तुम्हारे पाताल में उतर जाने और मित्र-मण्डली के तुम्हारी खोज में फैल जाने पर मैं भी पृथ्वी पर घूमता हुआ अङ्ग देश में गङ्गा के किनारे चम्पा (शहर) के बाहर-बाहर 'तप-प्रभाव से पैदा हुई अलौकिक दृष्टि वाले कोई मरीचिनामक महर्षि हैं' यह बात कर रहे किसी जन-समूह से जानकर उन (महर्षि) से तुम्हारा

---

१. हर्षनिर्भरतरम्; ०निर्भररभसो० । २. सहसोपगूढः । ३. प्रस्थिते ।

बुभुत्सुस्त्वद्गतिं तमुद्देशमगमम्। न्यशामयं च तस्मिन्नाश्रमे कस्यचिच्चूतपोतकस्य छायायां कमप्युद्विग्नवर्णं तापसम्। अमुना चातिथिवदुपचरितः क्षणं विश्रान्तः 'क्वासौ भगवान्मरीचिः, तस्मादहमुपलिप्सुः प्रसङ्गप्रोषितस्य सुहृदो गतिम्। आश्चर्यज्ञानविभवो हि स महर्षिर्मह्यां विश्रुतः' इत्यवादिषम्। अथासावुष्णमायतं च निःश्वस्याशंसत्[1]—'आसीत्तादृशो मुनिरस्मिन्नाश्रमे। तमेकदा काममञ्जरी नामाङ्ग[2]पुरीवतंसस्थानीया वारयुवतिरश्रुबिन्दुतारकितपयोधरा सनिर्वेदमभ्येत्य कीर्णशिखण्डास्तीर्णभूमिरभ्यवन्दिष्ट। तस्मिन्नेव च क्षणे मातृप्रमुखस्तदाप्तवर्गः[3] सानुक्रोशमनुप्रधावितस्तत्रैवा[4]विच्छिन्नपातमपतत्। स किल कृपालु-

अमुतः तस्मात्। बुभुत्सुः बोद्धुम् इच्छुः। तव गतिम् मार्गम्। उद्देशम् प्रदेशम्। अगमम् अगच्छम्। न्यशामयम् अपश्यम्। चूतपोतकस्य बालाम्रवृक्षस्य। उद्विग्नस्य विषण्णस्य वर्णः कान्तिः इव वर्णः यस्य तम्। अतिथिः न विद्यते (द्वितीया कापि) तिथिः यस्य [एकरात्रं तु निवसन्नतिथिर्ब्राह्मणः स्मृतः। अनित्यं हि स्थितो यस्मात्तस्मादतिथिरुच्यते। (मनुस्मृति ३।१०२)]। उपचरितः संमानितः। विश्रान्तः कृतविश्रमः। उपलिप्सुः उपलब्धुम् ज्ञातुम् इच्छुः। प्रसङ्गेन कारणेन प्रोषितस्य गतस्य। गतिम् दिशम्। आश्चर्यः चमत्कारकारी ज्ञानस्य विभवः संपत्तिः यस्य सः। विश्रुतः प्रसिद्धः। अवादिषम् अवदम्। आयतम् दीर्घम्। अशंसत् अवदत्। वतंसस्थानीया शेखरभूता (वष्टि भागुरिरल्लोपमवाप्योरुपसर्गयोः इति अकारलोपः। अवतंसः कर्णभूषणम् शिरोभूषणम् वा)। वारयुवतिः वेश्या। तारकाः सञ्जाताः अनयोः इति तारकितौ (इतच्) अश्रुबिन्दुभिः तारकितौ पयोधरौ यस्याः तादृशी। सनिर्वेदम् सर्वत्र उपेक्षासहितम्। कीर्णैः परितः प्रसृतैः शिखण्डैः केशपाशेन आस्तीर्णा कृतास्तरणा भूमिः यया सा। अभ्यवन्दिष्ट प्रणतवती। तस्याः आप्तानाम् स्वजनानाम् वर्गः। अनुक्रोशेन दयया सह वर्तमानम् सानुक्रोशम् तत् यथा स्यात् तथा। अनुप्रधावितः अनुगतः (सन्)। अविच्छिन्नः सततगतिः पातः गमनम् यस्य

मार्ग जानने का इच्छुक होकर उस प्रदेश की ओर चला और उस आश्रम में आम के एक पौधे की छाँह में उद्वेग-युक्त कान्ति वाले तपस्वी को देखा। उसके द्वारा अतिथि की भाँति सम्मानित होकर और क्षण भर आराम कर बोला—'वे श्रीमान् मरीचि कहाँ हैं ? किसी कारण परदेश गये हुये मित्र के आने की दिशा उनसे जानना चाहता हूँ क्योंकि वे महर्षि चमत्कारी ज्ञान-सम्पत्ति वाले के रूप में पृथ्वी पर ख्यात हैं।' तब उसने गर्म और दीर्घ साँस छोड़कर कहा—'इस आश्रम में वैसे ऋषि थे। एक बार अङ्ग-पुरी की शिरोमणि काममञ्जरी-नामक वेश्या ने आँसू की बूँदों से तारे-युक्त स्तन लेकर उदासीन-भाव से समीप आकर पृथ्वी पर बिखरा हुआ केश-पाश बिछाकर उन्हें प्रणाम किया। उसी क्षण उसकी माता आदिक सगों की मण्डली दया के साथ दौड़ती हुई लगातार चलती हुई वहीं पहुँची। उन दयालु (ऋषि)

---

[1] आशशंसे। [2] पुर्यवतंस। [3] तद्दासीवर्गः। [4] अत्रनिपातम।

स्तं जनमार्द्रया[1]गिराश्वास्यार्तिकारणं तां गणिकामपृच्छत् । सा तु सव्रीडेव सविषादेव सगौरवेव चाब्रवीत्—'भगवन् , ऐहिकस्य सुखस्या[2]भाजनं जनोऽयमामुष्मिकाय श्वोवसीयायार्ताभ्युपपत्तिवित्तयोर्भगवत्पादयोर्मूलं शरणमभिप्रपन्नः' इति । तस्यास्तु जनन्युदञ्जलिः पलितशारशिखण्डबन्धस्पृष्टमुक्तभूमिरभाषत—'भगवन् , [3]अस्या मे दोषमेषा वो दासी विज्ञापयति । दोषश्च मम स्वाधिकारानुष्ठापनम् । एष हि गणिकामातुरधिकारो यद्दुहितुर्जन्मनः प्रभृत्येवाङ्गक्रिया, तेजोबलवर्णमेधासंवर्धनेन दोषाग्निधातुसाम्यकृता मितेनाहारेण शरीरपोषणम्, आपञ्चमाद्वर्षात्पितुरप्यनतिदर्शनम्, जन्मदिने पुण्यदिने चोत्सवोत्तरो मङ्गलविधिः,

तत् यथा स्यात् तथा । आर्द्रया करुणापूर्णया । गिरा वाण्या । आर्त्तेः दुःखस्य । गणिकाम् वेश्याम् । व्रीडया लज्जया सह सव्रीडा । ऐहिकस्य इह भवम् तस्य । अभाजनम् अपात्रम् । जनः (अयम्) अहम् । अमुत्र जातम् आमुष्मिकम् तस्मै पारलौकिकाय । श्वोवसीयाय कल्याणाय (श्वोवसीयं शिवं शुभम् इति हलायुधः) । आर्तानाम् पीडितानाम् अभ्युपपत्तिः अनुग्रहः तेन वित्तयोः प्रसिद्धयोः । मूलम् सामीप्यम् । अभिप्रपन्नः प्राप्तः । उद्गतः अञ्जलिः यस्याः सा ऊर्ध्वीकृताञ्जलिः । पलितेन वृद्धताजातया श्वेततया शारः चित्रः यः शिखण्डः केशपाशः तस्य बन्धः तेन स्पृष्टा पश्चात् च मुक्ता भूमिः यया तादृशी । अस्याः मम पुत्र्या आरोपितः । मे मम । वः युष्माकम् । दासी (अहम्) अधिकारे कर्त्तव्ये अनुष्ठापनम् प्रेरणम् । अङ्गक्रिया उद्वर्त्तनादि कर्म (अङ्गक्रिया यदङ्गेषु हरिद्रातैलमर्दनम् इति वात्स्यायने) । वर्णः कान्तिः । मेधा धारणावती बुद्धिः । संवर्धनेन पोषणेन । दोषाः वातपित्तश्लेष्माणः । अग्निः जठराग्निः । धातवः वसादि सप्त (वसासृङ्मांसमेदोऽस्थिमज्जाशुक्राणि धातवः ।) तेषाम् साम्यम् अवैषम्यम् तत्कृता तस्य कर्त्री । आ उत्तरम् (आङ् मर्यादाभिविध्योः इति पञ्चमी) । अनतिदर्शनम् अतिदर्शनस्य अभावः । उत्सवोत्तरः उत्सवप्रधानः । मङ्गलः माङ्गल्यस्य विधिः अनुष्ठानम् । अनङ्गविधानाम् कामप्रतिपादक-

ने उस जन-मण्डली को करुणा-पूर्ण वाणी से आश्वासन देकर उस वेश्या से दुःख का कारण पूछा । वह लज्जित-सी, विषाद-युक्त-सी और गौरवान्वित-सी बोली—'श्रीमन्, इस संसार के सुख के अयोग्य मैं पारलौकिक कल्याण के लिये दुखी जनों के ऊपर कृपा करने के लिये प्रसिद्ध आपके चरण तल की शरण में आई हूँ ।' उसकी माँ ने अञ्जलि ऊँची कर भूमि (को) बालों की सफेदी से अनेक रंग वाले केश पाश के बन्धन से छूकर मुक्त करते हुये कहा—'श्रीमन् , यह आपकी सेविका इस (अपनी बेटी) के द्वारा लगाये गये अपने दोष आपको बतायेगी, अपने कर्त्तव्य में लगाती रहना (ही) मेरा दोष है । निश्चय ही वेश्या की माँ का निम्नलिखित कर्त्तव्य है । बेटी के जन्म से (ही) उबटन आदि लगाना, तेज, बल, कांति और बुद्धि को बढ़ाने वाले, दोष, अग्नि और धातुओं का अवैषम्य लाने वाले सीमित भोजन से शरीर का पोषण, पाँचवें बरस से पिता के भी दर्शनों की अति का अभाव, वर्ष-गाँठ और पुण्य दिन पर उत्सव प्रधान माङ्गलिक कृत्य, शाखाओं-सहित काम-विद्याओं का अध्यापन, नाच,

---

१. गिरोत्थाप्य । २. भाजनम् । ३. अस्यां मे दोष एषा ।

अध्यापनमनङ्गविद्यानां साङ्गानाम्, नृत्यगीतवाद्यनाट्यचित्रास्वाद्यगन्धपुष्पकलासु लिपिज्ञानवचन[1]कौशलादिषु च सम्यग्विनयनम्, शब्दहेतुसमयविद्यासु[2]वार्तामात्रावबोधनम्, आजीवज्ञाने क्रीडाकौशले सजीवनिर्जीवासु च द्यूतकलास्वभ्यन्तरीकरणम्, अभ्यन्तरकलासु वैश्वासिकजनात्प्रयत्नेन प्रयोगग्रहणम्, यात्रोत्सवादिष्वादरप्रसाधितायाः स्फीतपरिवर्हायाः प्रकाशनम्, प्रसङ्गवत्यां संगीतादिक्रियायां पूर्वसंगृहीतैर्ग्राह्यवाग्भिः सिद्धिलम्भनम्, दिङ्मुखेषु तत्तच्छिल्पवित्तकैर्यशःप्रख्यापनम्, कार्तान्तिकादिभिः कल्याणलक्षणोद्घोषणम्, पीठमर्दविटविदूष-

विधानाम्। चित्रम् चित्ररचना। आस्वाद्यम् मिष्टान्नादि भोज्यम्। विनयनम् शिक्षणम्। शब्दः व्याकरणम्। हेतुः तर्कः। समयः ज्यौतिषदिशा (समयः ज्यौतिषः सिद्धान्तः इति भूषणा)। वार्तामात्रस्य सकलवृत्तान्तस्य अवबोधनम् ज्ञानम्। आजीवः जीविका। सजीवाः (द्यूतकलाः) कुक्कुटादियुद्धम्। निर्जीवाः (द्यूतकलाः) चतुरङ्गादयः। अभ्यन्तरीकरणम् स्वायत्तीकरणम्। अभ्यन्तरकलासु रतिक्रीडासु (साभ्यन्तरकला यत्तु स्पर्श्याङ्गस्पर्शनम् रतौ इति वात्स्यायनः)। वैश्वासिकजनात् प्रामाणिकपुरुषात्। प्रयोगस्य कर्त्तव्यतायाः ग्रहणम् शिक्षणम्। आदरेण (सज्जाकुशलैः) प्रसाधितायाः अलङ्कृतायाः (प्रसाधितोऽलङ्कृतश्च भूषितश्च परिष्कृतः इति वैजयन्ती)। स्फीतः परिवर्हः सेवकजनः (परिच्छदे नृपार्हेऽर्थे परिबर्हः इति अमरः)। प्रकाशनम् प्रकटनम्। प्रसङ्गवत्याम् कार्यविशेषेण संजातायाम्। पूर्वम् (धनादिना) संगृहीतैः स्वायत्तीकृतैः ग्राह्यवाग्भिः शिक्षकैः (ग्रह्यवागुपलालकः इति वैजयन्ती)। सिद्धेः सफलतायाः लम्भनम् प्रापणम्। दिङ्मुखेषु दिगन्तरेषु। तच्छिल्पवित्तकैः नानाकलानिष्णातैः प्रख्यापनम् उद्घोषणम्। कार्तान्तिकाः लक्षणज्ञाः। (वेश्यायाः) कल्याणभूतानाम् लक्षणानाम् उद्घोषणम्। पीठमर्दः अतिधृष्टः नायकप्रियः (सखा) (पीठमर्दोऽतिधृष्टे स्यान्नाट्योक्त्या नायकप्रिये इति विश्वः)। विटः विदूषकः च नायकस्य शृङ्गारसहायौ (शृङ्गारेऽस्य सहाया विटचेटविदूषकाद्याः स्युः इति साहित्यदर्पणः)।

गान, वाद्य, अभिनय, चित्र-रचना, (मिष्टान्नादि) भोज्य, गन्ध और पुष्प की कलाओं तथा लिपि-ज्ञान और भाषण-कुशलता आदि का भली-भाँति शिक्षण, व्याकरण, तर्क और ज्योतिष की विधाओं की सकल (या केवल) रूप-रेखा का ज्ञान, जीविका-ज्ञान, क्रीड़ा-कौशल, सजीव-द्यूत-कला (बाजी लगाकर मुर्गा आदि लड़ाना) और निर्जीव द्यूत-कला (बाजी लगाकर शतरंज आदि खेलना) पर अधिकार करना, रति-कला के व्यावहारिक ज्ञान का प्रयत्न-पूर्वक विश्वस्त व्यक्तियों से ग्रहण करना, यात्रा, उत्सव आदि पर (सजाने वालों के द्वारा) आदर-पूर्वक सजे और लाव-लश्कर से घिरे हुये रूप का प्रचार, पहले से नियुक्त शिक्षकों के द्वारा प्रसङ्ग-वश आई संगीत आदि की कलाओं के क्षेत्र में सफलता तक पहुँचाना, दिशाओं में विभिन्न शिल्पों के जानकारों के द्वारा कीर्ति का उद्घोष, लक्षणों के जानने वालों से (वेश्या के) कल्याणकारी लक्षणों का प्रचार, नायक के अतिधृष्ट प्रिय सखा, विट (शृङ्गार-सखा),

---

[1] कौशलेषु। [2] वार्तावार्तावबोधनम्।

कैर्भिक्षुक्यादिभिश्च नागरिकपुरुषसमवायेषु रूपशीलशिल्पसौन्दर्यप्रस्तावना, युवजनमनोरथलक्ष्यभूतायाः प्रभूततमेन शुल्केनावस्थापनम्, स्वतो रागान्धाय तद्भावदर्शनोन्मादिताय वा जातिरूपवयोऽर्थशक्तिशौचत्यागदाक्ष्यदाक्षिण्यशिल्पशीलमाधुर्योपपन्नाय स्वतन्त्राय प्रदानम्, अधिकगुणायास्वतन्त्राय प्राज्ञतमायाल्पेनापि बहुव्यपदेशेनार्पणम्, अस्वतन्त्रेण वा गान्धर्वसमागमेन तद्गुरुभ्यः शुल्कापहरणम्, अलाभेऽर्थस्य कामस्वीकृते [1]स्वामिन्यधि[2]करणे च साधनम्, रक्तस्य दुहित्रकचारिणीव्रतानुष्ठापनम्, नित्यनैमित्तिकप्रीतिदायकतया [3]हृतशिष्टानां गम्यधनानां चित्रै-

भिक्षुकी परिव्राजिका (श्रमणा भिक्षुकी मुण्डा इति हैमः)। नागरिकाः निपुणाः । समवायेषु समाजेषु । प्रस्तावना प्रख्यापनम् । मनोरथानां लक्ष्यभूता लक्ष्यम् एव (वेश्यायाः) प्रभूततमेन अतिशयेन बहुना । शुल्केन पणेन । अवस्थानम् (नायकस्य समीपे) स्थापनम् । स्वतः स्वयम् एव । रागेण अनुरागेण तस्याः भावानां विलासादीनाम् दर्शनेन उन्मादिताय उन्मादम् प्रापिताय । शौचम् शुद्धता । त्यागः दानम् । दाक्ष्यम् दक्षता । दाक्षिण्यम् सरलता । उपपन्नाय युक्ताय । स्वतन्त्राय स्वाधीनाय (नायकाय)। प्रदानम् (वेश्यायाः)। प्राज्ञतमाय अतिशयेन विदुषे । बहुव्यपदेशेन बहुदत्तम् इति व्यपदेशेन मिथ्याप्रचारेण। गन्धर्वसमागमेन गान्धर्वविवाहेन [इच्छयान्योन्यसंयोगः कन्यायाश्च वरस्य च । गान्धर्वः स तु विज्ञेयः...॥ (मनुस्मृति ३।३२)] तस्य नायकस्य गुरुभ्यः गुरुजनेभ्यः पित्रादिभ्यः। अपहरणम् ग्रहणम्। कामेन मैत्र्याः स्वीकृते आयत्तीकृते स्वामिनि अधिकारिणि (न्यायालयस्य)। अधिकरणे व्यवहारालये (न्यायालये) साधनम् लक्ष्यसिद्धिः। रक्तस्य अनुरक्तम् प्रति। एकचारिणीव्रतम् पातिव्रत्यम्। अनुष्ठापनम् प्रवर्तनम्। नित्यदायकतया (उपहारैः) नैमित्तिकदायकतया प्रीतिदायकतया। हृतशिष्टानाम् गृहीतावशिष्टानाम्। गम्यानाम् भुजङ्गानाम् (गम्यो विटः पाल्लविको भुजङ्गः इति भागुरिः)।

विदूषक (शृंगार-सखा) तथा परिव्राजिका आदि के द्वारा नागरिकों के समूहों में (वेश्या के) सौन्दर्य, स्वभाव, कला, सुन्दरता और मधुरता की चर्चा कराना, जब (वेश्या) युवकों के मनोरथ का केन्द्र-बिन्दु बन जाय तब अत्यन्त प्रचुर फीस से (वेश्या को) (नायक के) साथ कर देना, स्वयं ही प्रेम से अन्धे, उस-(वेश्या) के विलासादि के अवलोकन से पागल कर दिये गये जाति, रूप, उम्र, धन, शक्ति, पवित्रता, दान, कुशलता, सरलता, कला, स्वभाव और मधुरता से युक्त स्वतंत्र व्यक्ति को सौंप देना, अधिक गुणी, पराधीन और अतिशय विद्वान् को थोड़ा भी लेकर "बहुत लिया है" प्रचार कर सौंप देना, पराधीन से गान्धर्व रीति से विवाह कर उसके गुरुजनों (माता-पिता आदि) से शुल्क ऐंठना, धन न मिलने पर मैत्री से यदि (प्रेमी) अनुरागी हो तो उसके लिये पुत्री से पातिव्रत्य-धर्म पालन कराना, नित्य-रूप, नैमित्तिक-रूप और स्नेह से मिले उपहारों से लिये धन से प्रेमी का जो धन बचे, उसका अद्भुत उपायों से अपहरण करना, जो (प्रेमी) धन न दे और विशेष लालची हो

---

१. प्रभौ। २. अधिकगुणे। ३. आहृत।

रुपायैरपहरणम्, अददता लुब्धप्रायेण च विगृह्यासनम्, प्रतिहस्तिप्रोत्साहनेन लुब्धस्य रागिणस्त्यागशक्तिसंधुक्षणम्, असारस्य वाक्संतक्षणैर्लोकोपक्रोशनैर्दुहितृनिरोधनैर्व्रीडोत्पादनैरन्याभियोगैरवमानैश्चापवाहनम्, अर्थदैरनर्थप्रतिघातिभिश्चानिन्द्यैरिभ्यै[1]रनुबद्धार्थानर्थसंशयान्विचार्य भूयो भूयः संयोजनमिति । गणिकायाश्च गम्यं प्रति सज्जतैव न सङ्गः । सत्यामपि प्रीतौ न मातुर्मातृकाया वा शासनातिवृत्तिः । एवं स्थितेऽनया प्रजापतिविहितं स्वधर्ममुल्लङ्घ्य क्वचिदागन्तुके रूपमात्रधने विप्रयूनि स्वेनैव धनव्ययेन रममाणया मासमात्रमत्यवाहि । गम्यजनश्च भूयानर्थयोग्यः प्रत्याचक्षाणयानया प्रकोपितः । स्वकुटुम्बकं चावसादितम् 'एषा कुमतिर्न कल्याणी' इति निवारयन्त्यां मयि वनवासाय कोपाव्य-

चित्रैः अद्भुतैः । लुब्धप्रायेण प्रायशो लोलुपेन । विगृह्य विरोध्य । असनम् क्षेपणम् (त्यागः) । प्रतिहस्तिना प्रातिवेश्येन (प्रतिहस्ती प्रातिवेश्यः इति वैजयन्ती) । त्यागशक्तेः दानबलस्य संधुक्षणम् उद्दीपनम् । न सारः धनम् यस्य तस्य । वाक्संतक्षणैः वचनतिरस्कारैः । लोकेषु उपक्रोशनैः निन्दया । निरोधनैः निवारणैः । व्रीडायाः लज्जायाः उत्पादनैः प्रदानैः । अन्येन अभियोगैः योजनैः । अवमानैः अपमानैः अपवाहनम् दूरीकरणम् । प्रतिघातिभिः निवारकैः । इभ्यैः धनिकैः । अनुबद्धान् संबद्धान् (संशयान्) । गम्यम् भुजङ्गम् । सज्जता तत्परता । मातृकायाः मातामह्याः (मातुर्माता तु मातृका इति वैजयन्ती) । अतिवृत्तिः त्यागः । क्वचित् कस्मिन्नपि । रूपम् सौन्दर्यम् एव धनम् यस्य सः । यूनि युवके । अत्यवाहि नीतम् । गम्यजनः भुजङ्गाः । भूयान् प्रचुरः । अर्थयोग्यः धनदाने समर्थः । प्रत्याचक्षणया प्रत्याख्यानं कुर्वत्या । अनया (काममञ्जर्या) । अवसादितम् नाशितम् । कल्याणी शुभप्रदा । अहार्यः ध्रुवः निश्चयः इच्छा ।

उसे विरोध कर निकाल देना, पड़ोसी के द्वारा प्रोत्साहन दिलाकर लोभी और अनुरागी व्यक्ति की दान-शक्ति को उकसाना, वाणी से तिरस्कार कर समाज में निन्दा कर, लड़की को रोककर, (प्रेमी को) लज्जित कर, (कन्या को) दूसरे के साथ कर और अपमान से दूर कर देना, अर्थ और अर्थाभाव से संबद्ध संशयों पर विचार कर धन देने वाले, आपत्ति दूर करने वाले और अनिन्दनीय धनिकों से बार-बार मिलन कराना । प्रेमी के प्रति गणिका को आकृष्ट ही होना चाहिये; आसक्ति नहीं करनी चाहिये । प्रेम के होने पर भी माँ या नानी की आज्ञा का उल्लंघन नहीं करना चाहिये । ऐसी स्थिति में (भी) इस-(काममंजरी) ने विधि के विधान से बने अपने धर्म का उल्लंघन कर किसी अपरिचित, केवल सौन्दर्य-धन वाले ब्राह्मण युवक के साथ विहार करती हुई अपने ही पैसे खर्च कर एक माह बिताया। बहुत से धन-दान-समर्थ प्रेमियों को निराकरण कर इसने नाराज (कर दिया है) और अपने परिवार को नष्ट कर दिया है । 'यह कुमति कल्याणकर नहीं है' यह कहकर मेरे रोकने पर

---

[1] अन्यः ।

स्थिता। सा चेदियमहार्यनिश्चया सर्व एष जनोऽत्रैवानन्यगतिरनशनेन संस्थास्यते' इत्यरोदीत्[1]।

अथ सा वारयुवतिस्तेन 'भद्रे, ननु दुःखाकरोऽयं वनवासः। तस्य फलमपवर्गः स्वर्गो वा। प्रथमस्तु तयोः प्रकृष्टज्ञानसाध्यः प्रायो दुःसंपाद एव, द्वितीयस्तु सर्वस्यैव सुलभः कुलधर्मानुष्ठायिनः। तदशक्यारम्भादुपरम्य मातुर्मते वर्तस्व' इति सानुकम्पमभिहिता[2]। 'यदीह भगवत्पादमूलमशरणम्, शरणमस्तु मम कृपणाया हिरण्यरेता देव एव' इत्युदमनायत। स तु मुनिरनुविमृश्य गणिकामातरमवदत्—'संप्रति गच्छ गृहान्। प्रतीक्षस्व कानिचिद्दिनानि यावदियं सुकुमारा सुखोपभोगसमुचिता सत्यरण्यवास[3]व्यसनेनोद्वेजिता भूयोभूयश्चास्माभिर्विबोध्यमाना प्रकृतावेव स्थास्यति' इति। 'तथा' इति तस्याः प्रतियाते

न अन्या गतिः उपायः यस्य तादृशः। अनशनेन उपवासेन। संस्थास्यते मरिष्यति।

वारयुवतिः वेश्या। भद्रे (हे) कल्याणि। ननु अहो। दुःखानाम् आकरः उत्पत्तिस्थानम्। अपवर्गः मोक्षः। प्रथमः (मोक्षः)। प्रकृष्टम् उत्कृष्टम्। दुःसंपादः दुःसाध्यः। कुलधर्मानुष्ठायिनः स्ववंशोचितकर्मकारिणः। अशक्यः असंभवः आरम्भः यस्य तस्मात् (तपसः)। उपरम्य निवृत्य। मते वर्तस्व आज्ञाम् पालय। अनुकम्पया करुणया सह वर्तमानं तत् यथा स्यात् तथा। अभिहिता कथिता। अशरणम् अरक्षकम्। कृपणायाः दुःखितायाः। हिरण्यरेताः अग्निः। उदमनायत उन्मनाः अभवत्। अनुविमृश्य विचार्य। गृहान् गृहम् (गृहाः पुंसि च भूम्न्येव इति अमरः)। सुकुमारा सुकोमला। समुचिता योग्या। व्यसनेन सङ्कटेन। उद्वेजिता व्याकुला। विबोध्यमाना उपदिश्यमाना। प्रकृतौ स्वभावे। प्रतियाते प्रतिनिवृत्ते। धौतम् यत् उद्गमनीयम्[4] वस्त्रयुगलम्

गुस्से से जङ्गल में रहने के लिये चल पड़ी है। यदि यह निश्चय दृढ़ किये रही तो ये सारे लोग अन्य उपाय न देखकर उपवास से मर जायेंगे। (यह) कहकर रोने लगी।

फिर वह वेश्या उस (मुनि) के द्वारा—'हे कल्याणी, यह वन में रहना दुःख का जनक है। उसका फल मोक्ष या स्वर्ग है। उनमें से पहला (मोक्ष) उत्कृष्ट ज्ञान से संभव और सामान्यतः सम्पन्न करना असंभव है और दूसरा (स्वर्ग) उन सभी व्यक्तियों को सुलभ है जो अपने वंश-धर्म का अनुष्ठान करने वाले हैं अतः असंभव-प्रयत्न वाले (इस) काम से विरत होकर माँ के कहे में रहो।' इस प्रकार करुणा-पूर्वक कही गई हुई 'अगर इस संसार में श्रीमान् (आप-) के चरण-तल अरक्षक हैं तो मुझ दुःखिनी की शरण भगवान् अग्नि ही हों' (यह) कहकर उन्मन हो गई। उधर ऋषि ने विचार कर वेश्या की माँ से कहा—"फिलहाल घर जाओ। कुछ दिन राह देखो; तब तक यह अत्यन्त कोमल, सुख भोगने के योग्य वन-वास के संकट से पीड़ित होती हुई और मेरे द्वारा बार-बार समझाई जाकर सामान्य अवस्था में रहने लगेगी।" 'ठीक है' इस प्रकार उस-(वेश्या) के स्वजनों के वापस जाने पर बहुत

---

[1] अत्रादीत्। [2] अभिहिता। सा तु प्रत्यवादीत्। [3] वासोद्वेजिता।

[4] उद्गमनीय=धौत वस्त्र-युगल। यहाँ "धौत" का अलग से भी प्रयोग होने से अर्थ "वस्त्र-

स्वजने सा गणिका तमृषिमलघुभक्तिर्धौतोद्गमनीयवासिनी नात्यादृतशरीरसंस्कारा वनतरुपोतालवालपूरणैर्देवतार्चनकुसुमो[1]च्चयावचयप्रयासैर्नैक[2]विकल्पोपहारकर्मभिः कामशासनार्थे च गन्धमाल्यधूपदीपनृत्यगीतवाद्यादिभिः क्रियाभिरेकान्ते च त्रिवर्गसंबन्धिनीभिः कथाभिरध्यात्मवादैश्चानु[3]रूपैरल्पीयसैव कालेनान्वरञ्जयत्।

एकदा च रहसि रक्तं तमुपलक्ष्य 'मूढः खलु लोको यत्सह धर्मेणार्थकामावपि गणयति' इति किंचिदस्मयत। 'कथय वासु, केनांशेनार्थकामातिशायी धर्मस्तवाभिप्रेतः' इति प्रेरिता मरीचिना लज्जामन्थरमारभताभिधातुम्— इतः किल जनाद्भगवतस्त्रिवर्गबलाबलज्ञानम्। अथवैतदपि प्रकारान्तरं दासजनानुग्रहस्य।

तत् वस्ते सा तद्वासिनी (तत् स्यादुद्गमनीयं यद्धौतयोर्वस्त्रयोर्युगम् इति अमरः)। शरीरसंस्कारः शृङ्गारः। तरुपोताः बालवृक्षाः। उच्चयः समूहः। अवचयः ग्रहणम् (उच्चयस्तरोरादानमवचयो भूमेः इति भूषणा)। नैकाः अनेकाः विकल्पाः भेदाः (विकल्पः संशये भेदे इति वररुचिः) येषाम् तैः। उपहारः पूजा। कामशासनः रुद्रः तदर्थे तन्निमित्तम् (कामशासनार्थे कामोद्दीपनार्थे च इति भूषणा)। त्रिवर्गः धर्मार्थकामाः। आत्मानमधिकृत्य ये वादाः अध्यात्मवादाः तत्त्वज्ञानकथाः। अनुरूपैः उचितैः। अन्वरञ्जयत् अनुरक्तम् अकरोत्।

रहसि एकान्ते। रक्तम् अनुरक्तम्। उपलक्ष्य उद्दिश्य। अस्मयत स्मितम् अकरोत्। (हे) वासु बाले ('अथ बाला स्याद् वासूः' इति अमरः)। अंशेन प्रकारेण। अर्थकामातिशायी अर्थकामौ अतिशेते अतिक्रम्य वर्तते। अभिप्रेतः संमतः। लज्जामन्थरम् लज्जया च मन्थरम् मन्दम् यथा स्यात् तथा। अभिधातुम् वक्तुम्। इतः मत्तः। भगवतः श्रीमतः (तव)।

कम अवधि के अन्दर-अन्दर उस वेश्या ने प्रचुर भक्ति-युक्त होकर धुले कपड़ों का जोड़ा पहनकर और अपने शृंगार की भी बहुत परवाह न कर जंगल के पौधों के थाले भरने से, देवताओं की पूजा के लिये फूल इकट्ठे करने और उठाकर लाने के प्रयत्नों से, भिन्न-भिन्न प्रकार के पूजा-कार्यों से, महादेव के निमित्त सुगंधित द्रव्य, धूप, दीप, नाच, गान और वाद्य आदि से युक्त क्रियाओं से और एकान्त में धर्म, अर्थ और काम से संबद्ध कथाओं और उचित अध्यात्मचर्चाओं से अनुरक्त कर दिया।

एकबार एकान्त में उस (मुनि को अपने प्रति) अनुरक्त देखकर (वह) उन्हें लक्षित कर 'समाज निश्चित रूप से बुद्धू है जो धर्म के साथ अर्थ और काम को भी गिनता है' (यह) कहकर मुस्कराई। 'बाले, बताओ किस प्रकार तुमने माना कि धर्म अर्थ और काम से ऊपर है।' इस प्रकार मरीचि के द्वारा प्रेरित होकर (वह) लाज से धीरे-धीरे बोलने लगी— 'निश्चय ही मुझसे श्रीमान् (आप-) का ज्ञान धर्म, अर्थ और काम के उत्कर्ष और अपकर्ष के विषय में अधिक है। या यों कहें कि प्रकारान्तर से यह भी मुझ सेवक पर कृपा है।

युगल" हो जायेगा (विशिष्टवाचकानां पदानां सति पृथग् विशेषणे विशेष्यमात्रपरत्वम्)।

[1] कुसुमसमुच्चय०। [2] अनेक। [3] अनुकूलैः।

भवतु, श्रूयताम् । ननु धर्मादृतेऽर्थकामयोरनुत्पत्तिरेव । तदनपेक्ष एव [1]धर्मो निवृत्तिसुखप्रसूतिहेतुरा[2]त्मसमाधानमात्रसाध्यश्च । सोऽर्थकामवद्बाह्यसाधनेषु नात्यायतते । तत्त्वदर्शनोपबृंहितश्च[3] यथाकथंचिदप्यनुष्ठीयमानाभ्यां नार्थकामाभ्यां बाध्यते । बाधितोऽपि चाल्पायासप्रतिसमाहितस्तमपि दोषं निर्हृत्य श्रेयसेऽनल्पाय कल्पते । तथाहि । पितामहस्य तिलोत्तमाभिलाषः, भवानीपतेर्मुनिपत्नीसहस्रसंदूषणम् पद्मनाभस्य षोडशसहस्रान्तःपुरविहारः, प्रजापतेः स्वदुहितर्यपि प्रणयप्रवृत्तिः, शचीपतेरहल्याजारता, शशाङ्कस्य गुरुतल्पगमनम्, अंशुमालिनो वडवा-

---

बलाबलयोः उत्कर्षस्य अपकर्षस्य च । ऋते विना । निवृत्त्याः यत् सुखम् तस्य या प्रसूतिः जन्म तस्याः हेतुः । आत्मनः स्वस्य समाधानमात्रेण एकाग्रतया एव साध्यः सम्पाद्यः । सः (धर्मः)। अत्यायतते अत्यधीनो भवति । तत्त्वस्य यथार्थस्य दर्शनेन विचारेण उपबृंहितः वर्द्धितः । यथाकथञ्चिदपि केनापि प्रकारेण अनुष्ठीयमानाभ्याम् सेव्यमानाभ्याम् । बाध्यते प्रतिहन्यते । प्रतिसमाहितः समाधानम् प्रापितः । निर्हृत्य दूरीकृत्य । अनल्पाय श्रेयसे मोक्षाय । कल्पते समर्थः भवति । तथा हि यथा । संदूषणम् गमनम् । पद्मनाभस्य कृष्णस्य । अन्तःपुरम् स्त्रीवर्गः । प्रणयेन प्रीत्या प्रवृत्तिः प्रवर्तनम् । शचीपतेः इन्द्रस्य । अहल्या गौतमपत्नी । जारः उपपतिः । गुरोः बृहस्पतेः तल्पम् भार्या ('तल्पं शय्याट्टदारेषु' इति अमरः)। अंशुमालिनः सूर्यस्य । वडवा

अस्तु । सुनिये । निश्चय ही धर्म के बिना अर्थ और काम की उत्पत्ति का अभाव ही होता है । मोक्ष-सुख को जन्म देने वाला और अपनी एकाग्रता से ही सम्पादित होने-योग्य धर्म उन दोनो (अर्थ और काम) का मुखापेक्षी नहीं होता । अर्थ और काम की तरह वह (धर्म) बाहरी उपायों के बहुत अधीन नहीं होता । यथार्थ के विचार से उस (धर्म) की वृद्धि होती है और किसी प्रकार से भी अपनाये जा रहे अर्थ और काम से बाधित नहीं होता । वह (धर्म) बाधित होकर भी थोड़े प्रयत्न से (ही) समाधान प्राप्त कर उस दोष को भी दूर कर परम कल्याण (मोक्ष) देने में समर्थ होता है; उदाहरणार्थः पितामह (ब्रह्मा) का तिलोत्तमा (नामक अप्सरा) पर इच्छा, पार्वती-पति (शङ्कर) का हजारों मुनि-पत्नियों का धर्म बिगाड़ना, कृष्ण का सोलह हजार स्त्रियों[4] के साथ विहार करना, प्रजापति (ब्रह्मा) का अपनी कन्या[5] (संध्या = सरस्वती) के प्रति भी प्रेम होना, शचीपति (इन्द्र)

---

[1] सः धर्मः । [2] आत्मनः तमा० । [3] ०तस्तु ।

[4] सोलह हजार पत्नियों का वर्णन भागवत १०।५९।३३ व ६९।८।४४ में आया है ।

[5] कालिका पुराण व महिम्नस्तोत्र (श्लोक २२) में कथा आती है कि ब्रह्मा अपनी पुत्री संध्या पर आसक्त होकर बढ़े । संध्या हिरनी बन गई । वे हिरन बन पीछे लगे । शिव ने देखकर ब्रह्मा को दण्ड देने के लिये पीछा किया और बाण चलाया । ब्रह्मा का सिर कटकर मृगशिरा नक्षत्र बनकर स्थित है; वहीं आर्द्रा नक्षत्र बनकर शिव-बाण भी है । कुमारिलभट्ट के अनुसार इस प्रतीक कथा का आशय है प्रजापति (सूर्य) का प्रातः अपनी पुत्री उषा की ओर पहुँचना ।

लङ्घनम्, अनिलस्य केसरिकलत्रसमागमः, बृहस्पतेरुतथ्यभार्याभिसरणम्, पराशरस्य दाशकन्यादूषणम्, पाराशर्यस्य भ्रातृदारसंगतिः, अत्रेर्मृगीसमागम इति।

अश्विनी तस्याः लङ्घनम् गमनम्। अनिलस्य वायोः। केसरिणः वानरराजस्य (अञ्जनापतेः) कलत्रेण भार्यया समागमः सङ्गमः। उतथ्यस्य (ज्येष्ठभ्रातुः)। अभिसरणम् गमनम्। पराशरस्य व्यासपितुः। दाशः कैवर्तः तस्य कन्या सत्यवती तस्याः दूषणम् गमनम्। पाराशर्यस्य पराशरपुत्रस्य (व्यासस्य)। भ्रातुः (विचित्रवीर्यस्य) दारेषु भार्ययोः संगतिः। अत्रेः (मुनेः)।

का अहल्या (गौतम की पत्नी) का प्रेमी[1] होना, चन्द्रमा का गुरु (अपने गुरु बृहस्पति) की पत्नी (तारा) से गमन,[2] अंशुमाली (सूर्य) का घोड़ी (अश्विनी) पर[3] टूटना,

---

१. वैदिक प्रतीक-कथा के अनुसार इन्द्र सूर्य रूप में उषा के पास जाते हैं। उषा को अहल्या मानकर पुराणों में इन्द्र को अहल्या-प्रेमी दिखाया गया है। रामायण की एक कथा के अनुसार अहल्या इन्द्र के फुसलाने में आ गई थी, पर दूसरी और अधिक प्रसिद्ध कथा के अनुसार अहल्या को इसलिये धोखा हुआ क्योंकि इन्द्र ने अहल्या-पति गौतम के स्नानार्थ बाहर जाने पर गौतम का रूप धारण कर धोखा दिया था। एक अन्य कथा के अनुसार इस धोखा-धड़ी में चन्द्रमा ने कव्वा बनकर सहयोग किया था। मध्य-रात्रि में बोलकर उसने गौतम को भ्रम में डाला कि सबेरा हो गया। वे नहाने निकले तो इन्द्र ने उनका रूप धारण कर अहल्या को धोखा दिया। बाद में गौतम को पता चला और उन्होंने अहल्या को पत्थर हो जाने का शाप दिया और तब तक उस अवस्था में रहना निश्चित किया जब तक राम के पैर का स्पर्श न हो जाय। बाद में राम के पैर के छूने से पत्थर अहल्या बना। "तन्त्रवार्तिक" में कुमारिलभट्ट ने बताया है कि तेज इन्द्र है और सबेरा होने पर लीन हो रही रात अहल्या है। यह व्याख्या वैदिक कथा से मिलती-जुलती है।

२. एक बार चन्द्रमा (सोम) ने राजसूय यज्ञ किया और इतना स्वेच्छाचारी हो गया कि देवताओं के गुरु बृहस्पति की पत्नी तारा को छीन लिया। बृहस्पति और ब्रह्मा के कहने का कोई असर न होने पर युद्ध हुआ। जिसमें शङ्कर के त्रिशूल से चन्द्रमा का शरीर दो टुकड़े हो गया। ब्रह्मा के हस्तक्षेप से शांति हुई और चन्द्रमा ने तारा को बृहस्पति को वापस कर दिया। चन्द्रमा और तारा के संयोग से बुध नक्षत्र का जन्म हुआ। (विष्णुपुराण ६।६)। खगोल के विद्वानों के अनुसार बुध के जन्म पर यह पौराणिक कथा रची गई है।

३. विश्वकर्मा की पुत्री संज्ञा सूर्य को ब्याही थी। पति का तेज न सह पाने से अपनी गृहस्थी छाया को सौंपकर वह घोड़ी के रूप में जंगल में तप करने लगी। सूर्य ने घोड़े के रूप में अनुगमन किया। इस अश्व-दम्पति से दो अश्विनीकुमारों का जन्म हुआ। एक दूसरी कथा के अनुसार संज्ञा अपने मायके जाना चाहती थी। पति की अनुमति न होने से दैवी शक्ति से अपनी प्रतिकृति (छाया) बनाकर घर छोड़ गई। यह छाया कहलाई और इससे ३ पुत्र हुये। जब संज्ञा लौटी, पति ने स्वीकार नहीं किया। तब संज्ञा घोड़ी के रूप में पृथ्वी पर

अमराणां च तेषु तेषु कार्येष्वासुरविप्रलम्भनानि ज्ञानबलान्न धर्मपीडामावहन्ति । धर्मपूते च मनसि नभसीव न जातु रजोऽनुषज्यते । तन्मन्ये नार्थकामौ धर्मस्य

आसुरविप्रलम्भनानि अकृत्याचरणानि ('अकृत्याचरणं यत्तदासुरं विप्रलम्भनम्' इति अजयः) । बलात् प्राबल्यात् । पीडाम् बाधाम् । आवहन्ति जनयन्ति । जातु कदाचित् । रजः रजोगुणः

वायु[1] का केसरी-पत्नी (अञ्जना) से समागम, बृहस्पति[2] का (अपने बड़े भाई) उतथ्य की पत्नी से सङ्गम, पराशर[3] का धीवर की बेटी (योजनगंधा; सत्यवती) को बरबाद करना, पराशर-पुत्र[4] (व्यास) का भाई (विचित्रवीर्य) की स्त्रियों का उपभोग करना, अत्रि[5] का

विचरण करने लगी । बाद में सूर्य को पता चला और वे घोड़े के रूप में ढूँढ़ने गये । शेष कथा पूर्ववत् है ।

१. पुञ्जिकस्थली नाम की अप्सरा शाप-वश मर्त्य-लोक में वानरी के रूप में पैदा हुई और कपि-राज केसरी की पत्नी अन्जना हुई । एक बार मनुष्य-रूप में पर्वत-शिखर पर बैठी थी कि वायु ने आकृष्ट होकर प्रेम-प्रस्ताव किया । अन्जना इस शर्त पर राजी हुई कि दैव बल से सतीत्व अक्षुण्ण रहे । यह शर्त वायु ने मान ली । दोनो के सम्पर्क से हनुमान् का जन्म हुआ जो पवन-पुत्र या मारुत कहलाये और पिता पवन के समान ही बली हुये ।

२. उतथ्य अंगिरा के पुत्र और बृहस्पति तथा संवर्त के बड़े भाई थे । उनकी पत्नी का नाम ममता था । बृहस्पति के पुत्र भरद्वाज इसी ममता से उत्पन्न हुये हैं । एक बार ममता प्रसववती थी । बृहस्पति ने प्रेम-प्रस्ताव रखा । उसने प्रसवावस्था बताकर विरोध किया पर बृहस्पति नहीं माने । गर्भ के अंदर से शिशु ने भी विरोध किया जिस पर क्रुद्ध होकर बृहस्पति ने शाप दिया कि सदा अंधकार ग्रस्त रहो । शिशु अंधा पैदा हुआ और दीर्घतमा कहलाया ।

३. शान्तनु की पत्नी सत्यवती की कथा महाभारत (आदिपर्व ६४) में आती है । उसे दाश (केवट)-राज ने पाला था । कुमारी-अवस्था में वह पिता की नाव पर यात्रियों को बैठाकर नदी-पार कराती थी । एक बार ऋषि पराशर नाव पर बैठे और बीच नदी में आसक्त होकर उन्होंने सत्यवती के लज्जा करने पर तपोबल से अंधकार कर दिया । दोनो से व्यास का जन्म हुआ । सत्यवती ने यह शर्त पूरी कराई कि कुमारीत्व अक्षुण्ण रहेगा भले ही संतान हो जाय ।

४. सत्यवती और शान्तनु के पुत्र विचित्रवीर्य संतान-रहित मरे । सत्यवती ने अपने पुत्र व्यास का स्मरण किया और उनके विचित्र-वीर्य की पत्नियों—अम्बिका और अम्बालिका—व एक दासी के गर्भ से क्रमशः धृतराष्ट्र, पाण्डु और विदुर पैदा हुये ।

५. अत्रि प्रसिद्ध ऋषि हैं । स्वायंभुव मन्वन्तर में १० प्रजापतियों में से एक थे । इस मन्वन्तर (वैवस्वत) के आरंभ में वे अग्नि-शिखा के रूप में पैदा हुये थे । दोनो जन्मों में इनकी पत्नी सती अनसूया हुईं । पहले जन्म में दत्त, दुर्वासा और सोम उनके पुत्र थे । इन्होंने अनेक वैदिक ऋचाओं की रचना की है ।

शततमीमपि कलां स्पृशत.' इति ।

श्रुत्वैतदृषिरुदीर्णरागवृत्तिरभ्यधात्—'अयि विलासिनि, साधु पश्यसि न धर्मस्तत्त्वदर्शिनां विषयोपभोगेनोपरुध्यत इति । किं तु जन्मनः प्रभृत्यर्थकामवार्तानभिज्ञा वयम् । ज्ञेयौ चेमौ किंरूपौ किंपरिवारौ किंफलौ च' इति । सा त्ववादीत्–'अर्थस्तावदर्जनवर्धनरक्षणात्मकः, कृषिपाशुपाल्यवाणिज्यसंधिविग्रहादिपरिवारः तीर्थप्रतिपादनफलश्च । कामस्तु [1]विषयातिसक्तचेतसोः स्त्रीपुंसयोर्निरतिशयसुखस्पर्शविशेषः । परिवारस्त्वस्य यावदिह रम्यमुज्ज्वलं[2] च । फलं पुनः परमाह्लादनम्, परस्परविमर्दजन्म, स्मर्यमाणमधुरम्, उदीरिताभिमानमनुत्तमम्,[3] सुखमपरोक्षं स्वसंवेद्यमेव । तस्यैव कृते विशिष्टस्थानवर्तिनः कष्टानि तपांसि, महान्ति

(अन्यत्र धूलिः) । अनुषज्यते लिप्तम् भवति ।

उदीर्णा वृद्धिम् प्राप्ता रागस्य अनुरागस्य वृत्तिः व्यापारः यस्य सः । अभ्यधात् अवदत् । अयि (कोमलामन्त्रणे, सानुरागोक्तिः) । परिवारः अङ्गम् । पाशुपाल्यम् पशुपालनम् । तीर्थेषु पात्रेषु प्रतिपादनम् दानम् । निरतिशयः श्रेष्ठः । यावत् (साकल्ये) । विमर्दः आलिङ्गनादिघर्षणम् । स्मर्यमाणम् अपि मधुरम् (का कथा भुज्यमानस्य) । उदीरितः उद्दीपितः अभिमानः अहङ्कारः यत्र तादृशम् । न विद्यते उत्तमम् यस्मात् तत् अनुत्तमम् । अपरोक्षम् प्रत्यक्षम् ।

हिरनी से रमण । ज्ञान की प्रबलता के कारण देवताओं के भिन्न-भिन्न कार्यों में अकर्म का आचरण (भी) धर्म-बाधा पैदा नहीं करता । धर्म से पवित्र हुये मन में रज (रजोगुण) उसी तरह कदापि लिप्त नहीं होती जिस तरह आकाश में रज (धूल) कभी लिप्त नहीं होती, इसलिये अर्थ और काम धर्म के सौवें अंश को भी नहीं पा सकते ।

यह सुनकर उत्तेजित अनुराग-प्रवृत्ति वाले ऋषि ने कहा—'अरी विलासिनी, ठीक विचार कर रही हो । तत्त्वदर्शियों के विषय-भोग से धर्म को बाधा नहीं पहुँचती । पर (एक कठिनाई है) जन्म से ही मैं अर्थ और काम की चर्चा से अपरिचित हूँ । जानना है कि इनका स्वरूप क्या है । (इनके) अङ्ग कौन-कौन हैं और (इनका) फल क्या है' । वह बोली—'अर्थ का विषय है कमाना, (धन) बढ़ाना और (धन) रक्षा, इसके अङ्ग हैं; खेती, पशु-पालन, वाणिज्य, संधि, विग्रह (लड़ाई) आदि; इसका फल है योग्य व्यक्ति को दान देना । काम, सांसारिक विषयों में अत्यंत आसक्त चित्त वाले स्त्री-पुरुष का अतीव सुखकारी उत्कृष्ट स्पर्श है । इसके अङ्ग इस संसार के सभी रमणीय और उज्ज्वल पदार्थ हैं और फल प्रत्यक्ष और केवल स्वानुभूति-लभ्य सुख है । उस सुख में परम-आह्लाद रहता है । एक-दूसरे के (आलिङ्गनादि) घर्षण से वह उत्पन्न होता है । याद करने (भर) से वह मधुर होता है (व्यवहार की बात ही दूसरी है), इसमें अभिमान को बढ़ावा मिलता है । इससे बढ़कर

---

[1] अभिषक्त, अभिव्यक्त । [2] उज्ज्वलं च वस्तु । [3] अनुत्तमसुखम् ।

दानानि, दारुणानि युद्धानि, भीमानि समुद्रलङ्घनादीनि च नराः समाचरन्ति' इति ।

निशम्यैतन्निय[1]तिबलान्नु तत्पाटवान्नु स्वबुद्धिमान्द्यान्नु स्वनियममनादृत्य तस्यामसौ प्रासजत् । सा सुदूरं मूढात्मानं च तं प्रवहणेन नीत्वा पुरमुदारशोभया राजवीथ्या स्वभवनमनैषीत् । अभूच्च घोषणा 'श्वः कामोत्सवः' इति । उत्तरेद्युः स्नातानुलिप्तमारचितमञ्जु[2]मालमारब्धकामिजनवृत्तं निवृत्तस्ववृत्ताभिलाषं क्षणमात्रगतेऽपि तया विना [3]दूयमानं तमृद्धिमता राजमार्गेणोत्सवसमाजं नीत्वा क्वचिदुपवनोद्देशे युवतिजनशतपरिवृतस्य राज्ञः संनिधौ स्मितमुखेन[4] तेन 'भद्रे, भगवता सह निषीद' इत्यादिष्टा सविभ्रमं कृतप्रणामा सस्मित न्यषीदत् । तत्र काचि-

संवेद्यम् अनुभवलभ्यम् । तस्य (सुखस्य) । कृते अर्थे (अर्थे कृतेऽव्ययं तावत्तादार्थ्ये वर्तते द्वयम् इति कोषः) । स्थानम् पदम् वासस्थानम् वा ।

निशम्य श्रुत्वा । नियतेः दैवस्य । पाटवात् नैपुण्यात् । मान्द्यात् मन्दतातः । नियमम् तपः । प्रासजत् प्रसक्तः अभवत् । प्रवहणेन कर्णीरथसंज्ञकेन वाहनेन । उदारा विशाला शोभा यस्याः तया । राजवीथ्या राजमार्गेण । घोषणा डिण्डिमः । श्वः आगामिनि दिने । उत्तरेद्युः अन्यस्मिन् दिने । आरचिता धृता मञ्जुः मनोहरा माला येन तम् । वृत्तम् आचरणम् । निवृत्तः दूरीकृतः स्वस्य वृत्ते आचरणे (तपसि) अभिलाषः इच्छा येन तम् । गते गमने (यापने) । दूयमानम् खिद्यमानम् । ऋद्धिमता समृद्धेन । समाजम् सभाम् । उद्देशे प्रदेशे । राज्ञः चम्पापतेः (सिंहवर्मणः) । संनिधौ सामीप्ये । तेन राज्ञा । (हे) भद्रे कल्याणि । भगवता श्रीमता (मरीचिना) । विभ्रमः विलासः । स्मितम् विहासः । न्यषीदत् निषण्णा । अभ्युपेतम् अङ्गीकृतम् । प्राणंसीत्

उत्तम वस्तु कोई नहीं है । उसी के लिये विशिष्ट पदों या तीर्थादि स्थानों के लोग कष्ट कर तप, महान् दान, दारुण युद्ध और भयंकर समुद्र-पार-गमन आदि आचरण करते हैं ।

यह सुनकर दैव बल से (हो), या उस (काम-मंजरी) की चतुरता से या अपनी बुद्धि की मन्दता से वे (ऋषि) अपने तप का तिरस्कार कर उसके प्रति आसक्त हो गये । मूढ़ता में गहराई तक पहुँचे उन्हें बन्द पालकी में शहर ले जाकर उसने विशाल शोभा वाली सड़क से होकर अपने घर पहुँचाया और डोंड़ी पिटवाई कि 'कल कामोत्सव होगा ।' दूसरे दिन उन मुनि को ऐश्वर्य-भरी सड़क से उत्सव-समाज तक ले गई । उन्होंने नहाकर चन्दनादि लेप किया था, मनोहर पुष्प-माला पहनी थी, कामियों के आचरण करने लगे थे, अपने (तप) आचरण से उनकी इच्छा हट गई थी । क्षण भर भी उसके बिना बीता तो व्याकुल हो जाते थे । बाग के एक स्थान में सैकड़ों युवतियों से घिरे राजा के समीप पहुँची । मुख पर मुस्कान लेकर उन्होंने 'हे कल्याणी, श्रीमान् (ऋषि) के साथ बैठो' (यह) आदेश दिया । विलास के साथ प्रणाम कर मुस्कराहट किये हुये बैठ गई । वहाँ एक ऊँचे तबके की महिला ने उठकर

---

१. निमित्तबलान्नु । २. मुण्ड । ३. दूयमानचित्तम् । ४. समासदत् । तत्र तेन ।

दुत्थाय बद्धाञ्जलिरुत्तमाङ्गना ‘देव, जितानयाहम्। अस्यै दास्यमद्यप्रभृत्यभ्युपेतं मया’ इति प्रभुं प्राणंसीत्। विस्मयहर्षमूलश्च कोलाहलो लोकस्योदजिहीत। हृष्टेन च राज्ञा महार्हैं रत्नालङ्कारैर्महता च परिबर्हेणानुगृह्य विसृष्टा वारमुख्याभिः पौरमुख्यैश्च गणशः प्रशस्यमाना स्वभवनमगत्वैव तमृषिमभाषत–‘भगवन्, अयमञ्जलिः, चिरमनुगृहीतोऽयं दासजनः स्वार्थं इदानीमनुष्ठेयः’ इति। स तु रागादशनिहत इवोद्भ्राम्याब्रवीत्—‘प्रिये, किमेतत्? कुत इदमौदासीन्यम्? क्व गतस्तव मय्यसाधारणोऽनुरागः?’ इति। अथ सा सस्मितमवादीत्–‘भगवन्, ययाद्य राजकुले मत्तः पराजयोऽभ्युपेतस्तस्याश्च मम च कस्मिंश्चित्संघर्षे [1]“मरीचिमावर्जितवतीव श्लाघसे’ इति [2]तयास्म्यहमधिक्षिप्ता। दास्यपणबन्धेन चास्मिन्नर्थे प्रावर्तिषि। सिद्धार्था चास्मि त्वत्प्रसादात्’ इति। स तया तथावधूतो दुर्मतिः कृतानुशयः शून्यवन्न्यवर्तिष्ट। यस्तयैवं कृतस्तपस्वी तमेव मां महा-

नतवती। उदजिहीत उद्गतः। महार्हैः बहुमूल्यैः। परिबर्हेण परिच्छदेन (गजाश्वादिभिः)। विसृष्टगमनाय अनुज्ञप्ता। वारमुख्याभिः श्रेष्ठवाराङ्गनाभिः। पौरमुख्यैः नागरिकप्रधानैः। गणशः संघशः। प्रशस्यमाना अभिवन्द्यमाना। दासजनः सेविका (अहम्)। स्वस्य तव अर्थः कृत्यम् (तपः)। अनुष्ठेयः आचरणीयः। अशनिहतः वज्रताडितः। उद्भ्राम्य उद्भ्रान्तः भूत्वा। संघर्षे स्पर्धायाम्। आवर्जितवती वशीकृतवती (नारी)। श्लाघसे आत्मगौरवम् प्रकटयसि। अधिक्षिप्ता तिरस्कृता। पणबन्धः प्रतिज्ञा। अर्थे कार्ये (तत्र आकर्षणे)। प्रावर्तिषि प्रवृत्ता। सिद्धार्था सफला। प्रसादात् कृपया। अवधूतः दूरीकृतः। कृतः अनुशयः पश्चात्तापः येन सः। शून्यवत् शून्यहृदय इव। न्यवर्तिष्ट (आश्रमम्) प्रत्यागतः। महाभाग महोदय (अपहारवर्मन्)

और अंजलि बाँधकर ‘महाराज, इससे मैं हार गई। आज से मैंने इसकी दासता अङ्गीकार कर ली’ यह कहकर राजा को प्रणाम किया। लोगों का विस्मय और हर्ष से उत्पन्न शोर उठा। प्रसन्न होकर राजा ने बेशकीमती रत्नों, गहनों, विशाल साज-बाज देकर कृपा दिखाई, श्रेष्ठ वेश्याओं ने विदा की और झुण्ड के झुण्ड प्रधान नागरिकों ने सराहना की। वह अपने घर न जाकर उन ऋषि से बोली—‘श्रीमन्, हाथ जोड़ती हूँ। चिरकाल तक अपने दास (मुझ) पर कृपा की है। अब अपना काम देखिये’। उधर वे (ऋषि) अनुराग के कारण जिस पर बिजली गिर गई है, उस व्यक्ति की भाँति उद्भ्रान्त होकर बोले—‘प्यारी, यह क्या? यह वैराग्य कहाँ से आया? मेरे प्रति जो तुम्हारा असाधारण प्रेम था वह कहाँ गया?’ तब वह (रागमञ्जरी) मुस्कराकर यह बोली—‘श्रीमन्, राज-महल में जिस स्त्री ने आज मुझसे हार स्वीकार की थी, उसके और मेरे बीच एक स्पर्धा में ‘मरीचि को वश में कर चुकी-सी डींग मारती हो’ (यह) कहकर उसने मेरा तिरस्कार किया था। मैं इस (आपको फँसाने के) कार्य में दासता की बाजी (जो हारे वह जीतने वाले का दास) लगाकर लगी थी और आपकी कृपा से सफल हो गई हूँ। उसके द्वारा उस प्रकार दूर हटाये गये हुये वे कुमति (ऋषि) पश्चात्ताप कर सूने-सूने से

---

१. महर्षिं मरीचिम्। २. तयाऽहमधिक्षिप्ता।

भाग, मन्यस्व। [1]स्वशक्तिनिषिक्तं रागमुद्धृत्य तयैव बन्धक्या महद्वैराग्यमर्पितम्। अचिरादेव शक्य आत्मा त्वदर्थ[2]साधनक्षमः कर्तुम्। अस्यामेव तावदङ्गपुर्यां चम्पायाम्’ इति।

अथ तन्मनश्च्युततमःस्पर्शभियेवास्तं रविरगात्। ऋषिमुक्तश्च रागः संध्यात्वेनास्फुरत्। तत्कथादत्तवैराग्याणीव कमलवनानि समकुचन्। अनुमतमुनिशासनस्त्वहममुनैव सहोपास्य संध्याम्, अनुरूपाभिः कथाभिस्तमनुशय्य नीतरात्रिः प्रत्युन्मिषत्युदयप्रस्थदावकल्पे कल्पद्रुमकिसलयावधारिण्यरुणार्चिषि तं नमस्कृत्य नगरायोदचलम्। अदर्शं च [3]मार्गाभ्यासवर्तिनः कस्यापि क्षपणकवि-

---

निषिक्तम् निक्षिप्तम्। उद्धृत्य दूरीकृत्य बन्धक्या कुलट्या (‘पुंश्चली धर्षणी बन्धक्यसती कुलटेत्वरी’ इति अमरः)। अर्थः प्रयोजनम् तस्य साधनम् सिद्धिः तत्र क्षमः समर्थः। अङ्गपुर्याम् अङ्गदेशस्य राजधान्याम्।

तस्य (ऋषेः) मनः। भिया भयेन। अगात् गतः। रागः अनुरागः रक्तिमा। तस्य (मुनेः) कथया दत्तम् वैराग्यम् (अनुरागरहितत्वम्। अन्यत्र लौहित्यराहित्यम्) येभ्यः तानि। समकुचन् मुद्रितानि। अनुमतम् अङ्गीकृतम्। शासनम् आज्ञा। अमुना (मुनिना)। अनुरूपाभिः अनुकूलाभिः। अनुशय्य सह शयित्वा। प्रत्युन्मिषति उदयति (सति)। उदयः पूर्वदिक्पर्वतः तस्य प्रस्थः सानुः (‘स्नुः प्रस्थः सानुरस्त्रियाम्’ इति अमरः)। तत्र दावकल्पे दवाग्निसदृशे। अवधीरिणि तिरस्कारकारिणि। अरुणम् अर्चिः कान्तिः यस्य तस्मिन् (सूर्ये)। नगराय नगरम् प्रति। उदचलम् चलितः। अदर्शम् दृष्टवान्। अभ्यासवर्ती समीपवर्ती तस्य (समीपे निकटासन्नसंनिकृष्टसनीडवत्। सदेशाभ्याससविधसमर्यादसवेशवत् इति अमरः), क्षपणकविहारस्य जैन-

---

(आश्रम) लौट आये। उसके द्वारा जिस बेचारे को यों बनाया गया, वही तपस्वी मैं हूँ, यह श्रीमान् को पता हो। अपनी (मरीचि की) शक्ति में भर दिये गये अनुराग को निकालकर उसी दुश्चरित्रा ने महान् वैराग्य दे दिया है। शीघ्र ही आपके कार्य की सिद्धि में आत्मा को समर्थ बनाया जा सकता है। अभी अङ्ग देश की राजधानी इसी चम्पा में रहो।

इसके बाद सूर्य इस तरह-अस्त हो गया मनो उन (मुनि) के मन से निकले हुये अन्धकार के स्पर्श के डर से ग्रस्त हो। ऋषि से छूटा राग (अनुराग) संध्या (राग=ललाई) के रूप में चमका। कमल-वन (या समूह) यों सिकुड़ गये ज्यों उन-(ऋषि) की कथा ने उन्हें वैराग्य (आसक्ति-रहितत्व या लाली-रहितत्व) दे दिया हो। मुनि की आज्ञा शिरोधार्य कर मैं उन्हीं के साथ संध्या-वंदन कर अनुकूल बातें करते हुये उनके साथ सोकर रात बिताकर उदयाचल के शिखर पर दावानल तुल्य कल्पवृक्ष के पल्लव का तिरस्कार करने वाले सूर्य के उदित होने पर उनको प्रणाम कर शहर के लिये रवाना हुआ और राह के पास स्थित

---

[1] स्वनिषिक्तम्। [2] संपादन। [3] अभ्याश।

हारस्य बहिर्विविक्ते रक्ताशोकखण्डे निषण्णमस्पृष्टसमाधिमाधिक्षीणमग्रगण्यमनभिरूपाणां कृपणवर्णं कमपि क्षपणकम्। उरसि चास्य शिथिलितमलनिचयान्मुखान्निपत[1]तोऽश्रुबिन्दूनलक्षयम्। अप्राक्षं चान्तिकोपविष्टः—'क्व तपः? क्व च रुदितम्? न चेद्रहस्यमिच्छामि श्रोतुं शोकहेतुम्' इति। सोऽब्रूत—'सौम्य, श्रूयताम्। अहमस्यामेव चम्पायां निधिपालितनाम्नः श्रेष्ठिनो ज्येष्ठसूनुर्वसुपालितो नाम। वैरूप्यात्तु मम विरूपक इति प्रसिद्धिरासीत्। अन्यश्चात्र सुन्दरक इति यथार्थनामा [2]कलागुणैः समृद्धो वसुना नातिपुष्टोऽभवत्। तस्य च मम च वपुर्वसुनी निमित्तीकृत्य वैरं वैरोपजीविभिः पौरधूर्तैरुदपाद्यत। त एव कदाचिदावयोरुत्सवसमाजे स्वयमुत्पादितमन्योन्यावमानमूलमधिक्षेपवचन[3]व्यतिकरमुपशमय्य

संन्यासिवासस्य। विविक्ते जनशून्ये। खण्डे समूहे। न स्पृष्टः अभ्यस्तः समाधिः नियमः येन तम्। आधिना मनोव्यथया क्षीणम्। अग्रगण्यम् श्रेष्ठम्। अनभिरूपाणाम् कुरूपाणाम्। कृपणः दीनः वर्णः कान्तिः यस्य तम्। क्षपणकम् जैनसंन्यासिनम्। शिथिलितः अदृढीकृतः मलनिचयः मलसमूहः यैः तान्। निपततः निपतनलग्नाम्। अलक्षयम् अपश्यम्। अप्राक्षम् पृष्टवान्। अन्तिकोपविष्टः समीपस्थितः। रुदितम् क्रन्दितम् (क्रन्दितं रुदितं क्रुष्टम् इति अमरः)। रहस्यम् गोप्यम्। अब्रूत अवदत्। (हे) सौम्य मनोज्ञ (अनुग्र) (सौम्यो बुधे मनोज्ञे स्यादनुग्रे सोमदैवते इति विश्वः)। श्रेष्ठिनः वणिक्प्रधानस्य। सूनुः पुत्रः। वैरूप्यात् कुरूपतया। वसुना धनेन। नातिपुष्टः क्षीणः। वपुः शरीरम् वसु धनम् च। वैरेण उपजीवन्ति इति वैरोपजीविनः तैः। अन्योन्यविमानमूलम् परस्परापमानकारणम्। अधिक्षेपस्य तिरस्कारस्य वचनानाम् व्यतिकरः सम्बन्धः यत्र तत् यथा स्यात् तथा। उपशमय्य शान्तिम्

किसी जैन-साधुओं के आवास के बाहर सुनसान में लाल अशोक के समूह वाले स्थान में बैठे हुये नियम-रहित, मनोव्यथा से दुर्बल, कुरूपों में अग्रगण्य, दीन स्वरूप वाले एक जैन साधु को देख और उसके सीने पर मुख से गिर रही, गन्दगी के जमाव को ढीला कर देने वाले आँसुओं की बूंदें लक्ष्य कीं। पास बैठ कर पूछा—'कहाँ तो तपस्या और कहाँ विलाप? यदि गोपनीय बात न हो तो शोक का कारण जानना चाहता हूँ।' उसने कहा—'सौम्य, सुनो। मैं इसी चंपा में निधिपालित नामक सेठ का बड़ा बेटा वसुपालित हूँ। कुरूपता के कारण 'विरूपक' नाम से मेरी ख्याति हो गई। यहाँ 'सुन्दरक' नामक एक दूसरा व्यक्ति था। उसका नाम यथार्थ था। वह कला-गुणों से भरपूर पर धन से बहुत पुष्ट नहीं था। शहर के लड़ाई लगाने की जीविका वाले बदमाशों ने उसके शरीर और मेरे धन को कारण बनाकर शत्रुता पैदा की। एक बार उत्सव-समाज में उन लोगों ने स्वयं उत्पन्न कराये गये परस्पर-अपमान के कारण को तिरस्कार की वाणी का सम्पर्क करते हुये शांत करके व्यवस्था दी कि 'शरीर या धन पुरुषत्व के कारण

---

[1] निपतितान्। [2] कल्याणगुणैः। [3] वचनशत।

'न वपुर्वसु वा पुंस्त्वमूलम्, अपि तु प्रकृष्टगणिकाप्रार्थ्ययौवनो हि यः स पुमान्। अतो युवतिललामभूता काममञ्जरी यं वा कामयते स हरतु सुभगपताकाम्' इति व्यवास्थापयन्। अभ्युपेत्यावां प्राहिणुव [1]तस्यै दूतान्। अहमेव किलामुष्याः स्मरोन्मादहेतुरासम्। आसीनयोश्चावयोर्मामिवोपगम्य सा नीलोत्पलमयमिवा[2]पाङ्गदामाङ्गे मम मुञ्चन्ती तं जनमपत्रपयाधोमुखं व्यधत्त। [3]सुभगमन्येन च मया स्वधनस्य स्वगृहस्य स्वगणस्य स्वदेहस्य स्वजीवितस्य च सैवेश्वरीकृता। कृतश्चाहमनया मलमल्लकशेषः। [4]हृतसर्वस्वतया चापवाहितः प्रपद्य लोकोपहासलक्ष्यतामक्षमश्च सोढुं धिक्कृतानि पौरवृद्धानामिह[5] जैनायतने मुनिनैकेनोपदिष्टमोक्षवर्त्मा सुकर एव वेषो वेशनिर्गतानामित्युदीर्णवैराग्यस्तदपि कौपीनमजहाम्।

नीत्वा। पुंस्त्वम् पौरुषम्। प्रकृष्टा उत्तमा च सा गणिका वेश्या च तया प्रार्थ्यम् स्पृहणीयम् यौवनम् यस्य सः। ललाम भूषणम्। सुभगः इति पताकाम् चिह्नम् (पदम्)। व्यवास्थापयन् मर्यादाम् कृतवन्तः। अभ्युपेत्य अङ्गीकृत्य। प्राहिणुव प्रेषितवन्तौ। तस्यै ताम् (काममञ्जरीम्) आनेतुम्। अपाङ्गः नेत्रप्रान्तः तस्य दाम यष्टिः। अपत्रपा लज्जा तया (लज्जा साऽपत्रपाऽन्यतः इति अमरः)। व्यधत्त कृतवती। आत्मानं सुभगं मनुते स सुभगंमन्यः ('आत्ममाने खश्च' अष्टाध्यायी ३।२।८३) तेन। गणस्य स्वजनवर्गस्य। जीवितस्य जीवनस्य। मलमल्लकम् कौपीनम् (आच्छादनं संपिधानं कौपीनं मलमल्लकम् इति वैजयन्ती)। हृतम् सर्वस्वम् यस्य सः। अपवाहितः निष्कासितः। प्रपद्य प्राप्य। अक्षमः असमर्थः। धिक्कृतानि धिक्कारान्। पौरवृद्धानाम् नागरिकप्रधानानाम्। जैनायतने क्षपणकदेवतालये। उपदिष्टम् मोक्षस्य वर्त्म मार्गः यस्य सः। वेशः वेश्यागृहम्। उदीर्णम् प्रबलम् वैराग्यम् उदासीनता यस्य सः। अजहाम् त्यक्तवान्।

नहीं हैं, बल्कि श्रेष्ठ वेश्या जिसके यौवन को स्पृहणीय माने वही पुरुष है, अतः युवतियों में अलङ्कार स्वरूप काममञ्जरी दोनो में जिसे पसंद करे, वही सौभाग्य-शाली होने का झंडा गाड़ देगा। यह स्वीकार कर हम दोनो ने उसको लाने के लिये दूत भेजे। मैं ही उसके कामोन्माद का कारण ठहरा। बैठे हुये हम दोनो में से मेरे ही पास पहुँचकर उसने नील-कमल-मध्य-सा कटाक्ष दाम (गुँथे फूल का डोरा जिसके छोर जोड़कर माला बनाते हैं) मेरे शरीर पर डालते हुये उस व्यक्ति (सुन्दरक) का मुख लज्जा से नीचा कर दिया। अपने को सुंदर लगाने वाले मैंने उसे अपने धन, अपने घर, अपने स्व-जन-समूह, अपने शरीर और अपने प्राणों को स्वामिनी बना दिया और इसने मेरे ऊपर केवल लँगोटी छोड़ी। उसके द्वारा सारा धन हर लेने के बाद निकाला गया, लोगों के उपहास का लक्ष्य बनकर नगर के श्रेष्ठ जनों के धिक्कार सहने में असमर्थ होकर मैंने इस जैन-मंदिर में एक मुनि के द्वारा मोक्ष-मार्ग का उपदेश पाकर, 'यह भेष वेश्यालय से निकले व्यक्ति के लिये धारण करना आसान है' यह सोचकर अधिक

---

[1] अस्यै। [2] अपाङ्गमङ्गे। [3] सुभगेन। [4] सर्वस्वतया। [5] इहैवायतने।

अथ पुनः प्रकीर्णमलपङ्कः प्रबलकेशलुञ्चनव्यथः प्रकृष्टतमक्षुत्पिपासादिदुःखः स्थानासनशयनभोजनेष्वपि द्विप इव नवग्रहो बलवतीभिर्यन्त्रणाभिरुद्वेजितः प्रत्यवामृशम्। 'अहमस्मि द्विजातिः। अस्वधर्मो ममैष [1]पाखण्डपथावतारः। श्रुतिस्मृतिविहितेनैव वर्त्मना मम पूर्वजाः प्रावर्तन्त मम तु मन्दभाग्यस्य निन्द्यवेषममन्ददुःखायतनं हरिहरहिरण्यगर्भादिदेवतापवादश्रवणनैरन्तर्यात्प्रेत्यापि निरयफलमफलं विप्रलम्भप्रायमीदृशमिदमधर्मवर्त्म धर्मवत्समाचरणीयमासीत्' इति प्रत्याकलितस्वदुर्नयः पिण्डीखण्डं विविक्तमेतदासाद्य पर्याप्तमश्रु मुञ्चामि' इति। श्रुत्वा चैतदनुकम्पमानोऽब्रवम्—'भद्र, क्षमस्व। कंचित्कालमत्रैव निवस। निर्जेन

प्रकीर्णः प्रसृतः मलपङ्कः यस्य सः। लुञ्चनम् उत्पाटनम् तस्य व्यथा यस्य सः। आसनम् उपवेशनम्। द्विपः गजः। नवः नवीनः ग्रहः ग्रहणम् यस्य सः। यन्त्रणाभिः पीडाभिः। उद्वेजितः आकुलीकृतः। प्रत्यवामृशम् विचारितवान्। द्वे जाती जन्मनी यस्य सः ब्राह्मणः क्षत्रियः वैश्यः च (अत्र वैश्यः)। अविद्यमानः स्वस्य (स्वः वा) धर्मः यत्र। पाखण्डानाम् पन्थाः तस्य अवतारः अवतरणम्। श्रुतिः वेदाः। विहितेन निर्दिष्टेन। प्रावर्तन्त अचलन्। निन्द्यः वेषः यत्र तत् (वर्त्म)। अमन्दम् तीव्रम्। आयतनम् गृहम्। हरिः विष्णुः हरः शिवः हिरण्यगर्भः ब्रह्मा च। अपवादः निन्दा तस्य श्रवणम् आकर्णनम् तस्य नैरन्तर्यम् सातत्यम् तस्मात्। प्रेत्य परलोके (प्रेत्यामुत्र भवान्तरे इति अमरः) निरयः नरकः फलम् यस्य तत् (वर्त्म)। विप्रलम्भप्रायम् वञ्चनाबहुलम्। प्रत्याकलितः विचारितः स्वस्य दुर्नयः अकर्म येन सः। पिण्डी अशोकतरुः तस्याः खण्डम् समूहः (अशोकः पिण्डिका पिण्डी इति वैजयन्ती)। विविक्तम् विजनम्। आसाद्य

वैराग्य से युक्त होकर वह लँगोटी[2] भी छोड़ दी। फिर मैंने फैली हुई गंदगी का पङ्क लेकर, बाल[3] नोचने की प्रबल पीड़ा से युक्त, अत्यधिक भूख-प्यास आदि का दुःख धारण कर, टिकने, बैठने, लेटने और खाने के विषय में भी नये-नये पकड़े गये हाथी की भाँति जबर्दस्त यन्त्रणाओं से आकुल होकर सोचा—'मैं द्विज हूँ। यह [4]पाखण्ड-मार्ग में उतरना मेरे धर्म से रहित है। मेरे पूर्वज वेदों और स्मृतियों में बताई राह से चलते थे। इसके विपरीत मुझ अभागे को ऐसे इस अधर्म के मार्ग को धर्म की तरह मानकर चलना है जिसमें निन्दनीय भेष बनाना पड़ता है, जो तीव्र दुःखों का घर है, विष्णु शिव और ब्रह्मा आदि देवताओं के लगातार निन्दा-वचन-श्रवण से परलोक में जिसका फल नरक है, जो निष्फल है तथा जिसमें धोखाधड़ी की बहुलता है।' इस प्रकार अपने कुकर्म पर विचार कर इस एकान्त अशोक-कुञ्ज में पहुँचकर जी भर कर रो रहा हूँ।' यह सुनकर करुणा दिखाता हुआ बोला—'भाई, सहन करो। कुछ समय यहीं रहो। मैं ऐसी कोशिश करूँगा कि वह वेश्या तुम्हें अपने धन से

---

[1] पाखण्डि। [2] दिगम्बर जैन सम्प्रदाय के संन्यासी नंगे रहते हैं। दूसरा संप्रदाय श्वेताम्बर है। [3] जैन धर्म अङ्गीकार करते समय बाल नोचने की प्रथा है। [4] जैन धर्म वेद-विरुद्ध होने से इसके मानने वाले पाखण्ड (नास्तिक) कहलाते हैं।

द्युम्नेनासावेव वेश्या यथा त्वां योजयिष्यति तथा यतिष्ये । सन्त्युपायास्तादृशाः' इत्याश्वास्य तमनूत्थितोहम् । नगरमाविशन्नेव चोपलभ्य लोकवादाल्लुब्ध[1]समृद्धपूर्णं पुरमित्यर्थानां नश्वरत्वं च प्रदर्श्य प्रकृतिस्थानमूनिधास्यन्कर्णीसुतप्रहिते पथि मतिमकरवम् । अनुप्रविश्य[2] च द्यूतसभामक्षधूर्तैः समगंसि । तेषां च पञ्चविंशतिप्रकारासु सर्वासु द्यूताश्रयासु कलासु [3]कौशलम्, अक्षभूमिहस्तादिषु चात्यन्तदुरुपलक्ष्याणि कूटकर्माणि, तन्मूलानि सावलेपान्यधिक्षेपवचनानि, जीवितनिरपेक्षाणि संरम्भविचेष्टितानि, सभिकप्रत्यय[4]व्यवहारान्न्यायबलप्रतापप्रा[5]यानङ्गीकृतार्थसाधनक्षमान् बलिषु सान्त्वनानि, दुर्बलेषु भर्त्सितानि, [6]पक्षरचना-

प्राप्य । द्युम्नेन धनेन (हिरण्यं द्रविणं द्युम्नम् इति अमरः) । अनु पश्चात् । आविशन् प्रविशन् । उपलभ्य ज्ञात्वा । लोकवादात् जनवाक्यात् । लुब्धाः कृपणाः समृद्धाः श्रीमन्तः (अधिकर्द्धिः समृद्धः स्यात् इति अमरः) । [7]कर्णीसुतेन चौर्यशास्त्रकर्त्रा प्रहिते प्रवर्तिते । अक्षधूर्तैः पाशनिपुणैः । समगंसि संगतः अभवम् । द्यूतम् आश्रयः यासाम् तासु द्यूताश्रयासु । कौशलम् निपुणता । अक्षभूमिः शारीस्थापनगृहम् । कूटकर्माणि कपटाचरणानि । तन्मूलानि तदाधाराणि । अवलेपः गर्वम् । अधिक्षेपः अपशब्दः । जीविते प्राणधारणे निरपेक्षाणि आसक्तिशून्यानि । संरम्भः कोपः तत्सूचकानि विचेष्टितानि कार्याणि सभिकः द्यूतकारकः (सभिका द्यूतकारकाः इति अमरः) तस्य प्रत्ययः तदुचितान् व्यवहारान् अनुष्ठानानि । न्यायः युक्तिः बलम् सामर्थ्यम् प्रतापः प्रभावः प्रायः बहुलः येषु तान्। अङ्गीकृतः स्वीकृतः च असौ अर्थः तस्य साधने सिद्धौ समर्थान् । सान्त्वनानि सामप्रयोगान् । भर्त्सितानि अपशब्दप्रयोगान् । पक्षरचनायाम् स्वपक्षीकरणे नैपुणम् कुश-

युक्त कर देगी । वैसे उपाय हैं' यों आश्वासन देकर उसके उठने के बाद उठा । शहर में प्रवेश करते ही लोगों की बातों से जानकर कि शहर कृपण धनियों से भरा है, धन की नश्वरता दिखाकर इन (नगर-निवासियों) को भविष्य में स्वाभाविक अवस्था में लाने के लिये कर्णीसुत के द्वारा प्रवर्तित मार्ग (चोरी) पर चलने का इरादा किया । जुये के अड्डे में घुसकर पाँसे के खेल में चतुर लोगों से भेंट की । उनसे सभी—पच्चीस प्रकार की जुये से संबद्ध—कलाओं में निपुणता का, पाँसे रखने की जगह और हाथ आदि के विषय में चालाकी की क्रियाओं का, जिन्हें भाँप सकना अत्यन्त कठिन है, उनसे पैदा होने वाले हेकड़ी से भरे तिरस्कार वचनों से जीवन की उपेक्षा करने वाली क्रोध-सूचक चेष्टाओं का, नाल निकालने वाले के विश्वास जमाने वाले उन आचरणों को जिनमें तर्क, शक्ति और प्रभाव का बोल-बाला है तथा जो जीते धन को पचाने में समर्थ हैं, सबलों के प्रति मधुर वचनों का, दुर्बलों के प्रति गाली-गलौज का,

---

१. लुब्धेभ्यपूर्णं; लुब्धसभिकमिभ्य पू० । २. अनुप्रपद्य । ३. अक्षभ्रमि । ४. व्यवहारन्याय । ५. प्रयोजितार्थ; जितार्थ । ६. परपक्षरचनानैपुण्यम् । ७. कलाङ्कुर, मूलदेव और मूलभद्र अन्य नाम हैं ।

नैपुणमुच्चावचानि प्रलोभनानि[1] ग्लहप्रभेदवर्णनानि, द्रव्यसंविभागौदार्यम्, अन्तरान्तराश्लीलप्रायान्कलकलानित्येतानि चान्यानि चानुभवन्न तृप्तिमध्यगच्छम् । अहसं च किंचित्प्रमाददत्तशारे क्वचित्कितवे । प्रतिकितवस्तु निर्दहन्निव क्रोधताम्रया दृशा मामभिवीक्ष्य 'शिक्षयसि रे द्यूतवर्त्म हासव्याजेन । आस्तामयमशिक्षितो वराकः । त्वयैव तावद्विचक्षणेन देविष्यामि' इति द्यूताध्यक्षानुमत्या व्यत्यषजत् । मया जितश्चासौ षोडशसहस्राणि दीनाराणाम् । तदर्धं सभिकाय सभ्येभ्यश्च दत्वार्धं स्वीकृत्योदतिष्ठम् । उदतिष्ठंश्च तत्र गतानां हर्षगर्भाः प्रशंसालापाः । प्रार्थयमानसभिकानुरोधाच्च तदगारेऽत्युदारमभ्यवहारवि-

लता । उच्चावचानि बहुविधानि । प्रलोभनानि लोभोत्पादककथाः । ग्लहस्य पणस्य (पणोऽक्षेषु ग्लहो मतः इति अमरः) प्रभेदस्य अन्यथाभावस्य वर्णनानि निरूपणानि । द्रव्यस्य द्यूतार्जितस्य संविभागे वण्टने औदार्यम् विशालहृदयता । अन्तराऽन्तरा मध्ये मध्ये । अश्लीलम् ग्राम्यभाषणम् तत् प्रायः बहुलम् यत्र (अश्लीलं ग्राम्यभाषणम् इति वैजयन्ती) । कलकलान् कोलाहलान् । अध्यगच्छम् प्राप्तवान् । प्रमादेन अनवधानेन दत्तः क्षिप्तः शारः गुटिका येन तस्मिन् । क्वचित् कस्मिंश्चित् । कितवे धूर्तद्यूतकारे । प्रतिकितवः प्रतिकूलः धूर्तः द्यूतकरः । ताम्रया लोहितया । अभिवीक्ष्य निरीक्ष्य । व्याजेन मिषेण । वराकः दयापात्रम् । विचक्षणेन पण्डितेन । देविष्यामि अक्षैः क्रीडिष्यामि । व्यत्यषजत् द्यूतक्रीडारतः अभवत् । तस्य जितधनस्य [2]अर्द्धम् । सभिकाय द्यूतकारकाय । सभ्येभ्यः द्यूतसभासदस्येभ्यः । प्रार्थयमानस्य प्रार्थनापरस्य सभिकस्य द्यूतकारस्य ।

अपनी पार्टी बनाने की चतुरता का, ऊँचे-नीचे प्रलोभनों का, दाँव के विपरीत पड़ने के निरूपण का, जीते धन के बँटवारे में (अपने भाग के प्रति थोड़ी बहुत उपेक्षा) का, बीच-बीच में गँवारू शब्दों से भरे शोर-शराबे का और इनके अतिरिक्त अन्य बातों का अनुभव करते हुए मेरा जी नहीं भरा । किसी धूर्त जुआड़ी के असावधानी से पाँसा फेंकने पर मैं हँस पड़ा । उसका प्रतिद्वन्द्वी धूर्त जुआड़ी गुस्से से लाल दृष्टि से जलाता हुआ-सा मुझे देखकर 'अरे ! हँसी के बहाने मुझे जुये का मार्ग सिखा रहा है । रहने दो इस बेचारे अशिक्षित को । पहले तुम पण्डित से ही जुआ खेलूँगा' कहकर द्यूत-अध्यक्ष की अनुमति लेकर वह मुझसे, जुये में जुट गया । वह मुझसे सोलह हजार दीनार हार गया । उसका आधा अड्डे के मालिक और अड्डे के सदस्यों को देकर और आधा (खुद) स्वीकार कर उठा । वहाँ स्थित लोगों के हर्ष-सूचक सराहना-वचन उठे (फैले) । (मुझसे) प्रार्थना कर रहे अड्डे के मालिक के अनुरोध से उसके घर

---

१. उपप्रलोभनानि । २. याज्ञवल्क्यस्मृति २।१९९ के अनुसार सभिक (नाल निकालने वाले जुये के अड्डे के संचालक) को जीते धन का ५% देना पड़ता है। यदि १०० मुद्राओं से कम हो तो यह दूना हो जाता है। आजकल इसे नाल कहते हैं और यह सामान्यतः ६¼% होता है। इसमें से पुलिस को रिश्वत दी जाती है। यहाँ आधा (=५०%) मिल जाने से सभिक हर्ष-पुलकित हो जाता है।

धिमकरवम् । यन्मूलश्च मे दुरोदरावतारः स मे विमर्दको नाम विश्वास्यतरं द्वितीयं हृदयमासीत् ।

तन्मुखेन च सारतः कर्मतः शीलतश्च सकलमेव नगरमवधार्य, धूर्जटिकण्ठकल्माषकालतमे तमसि. नीलनिवसनार्धोरुकपरिहितो, बद्धतीक्ष्णकौक्षेयकः, फणिमुखकाकलीसंदंशकपुरुषशीर्षकयोगचूर्णयोगवर्तिकामान[1]सूत्रकर्कटकरज्जुदीपभाजनभ्रमरकरण्डकप्रभृत्यनेकोपकरणयुक्तो गत्वा, कस्यचिल्लुब्धेश्वरस्य गृहे संधिं छित्वा, [2]पटभाससूक्ष्मच्छिद्रालक्षितान्तर्गृहप्रवृत्तिरन्यथो निजगृहमिवानुप्रविश्य

तस्य द्यूतकारकस्य अगारे गृहे । अभ्यवहारः भोजनम् । यः मूलम् यस्य सः (अवतारः)। दुरोदरे द्यूते अवतारः अवतरणम् विश्वास्यतरम् विशेषेण विश्वसनीयम् ।

तस्य (विमर्दकस्य) मुखेन मुखतः । सारः धनम् ततः तस्मिन् विषये । अवधार्य निश्चित्य। धूर्जटेः शिवस्य यः कण्ठः गलः तस्य यत् कल्माषम् कालिमा तद्वत् कालतमे अतिश्यामले। निवसनम् वस्त्रम् तस्य यत् अर्धोरुकम् अवगुण्ठनम् तेन परिहितः आच्छादितः । कौक्षेयकः करवालः । फणिमुखम् फणिनः सर्पस्य मुखम् इव मुखम् यस्य तत् (सुरङ्गाखननसाधनम् यन्त्रम्)। काकली कर्त्तरी । निद्राति जागर्ति वा इति ज्ञानाय संदंशकः दृढनिखातकीलोत्पाटनार्थम् यन्त्रम्। पुरुषशीर्षकम् पुरुषशीर्षाकारम् काष्ठम् (सुरङ्गायां प्रथमप्रवेशनाय कोऽपि पश्यति न वा इति ज्ञानाय)। योगचूर्णम् गम्भीरनिद्राजनकम् चूर्णम् मृच्छकटिकोक्तम् (३।१५) योगरोचना वा (अनया हि समालब्धं न मां द्रक्ष्यन्ति रक्षिणः। शस्त्रं च पतितं गात्रे रुजं नोत्पादयिष्यति)। योगवर्त्तिका अग्निम् विना प्रकाशाय दीपविशेषः (यत्प्रभया मोहमुपयान्ति जनाः इति भूषणा)। मानसूत्रम् प्रमाणरज्जुः । कर्कटकः कुलीराकृति यन्त्रम् । रज्जुः (आरोहणसाधनम्)। यद्वा कर्कटकरज्जुः रज्जुविशेषः कर्कटकयन्त्रयुक्ता रज्जुः (गृहशिखरारोहणाय) । दीपभाजनम् प्रकाशाधारः । भ्रमरकरण्डकम् दीपनिर्वापणाय शलभानाम् पेटिका । लुब्धः कृपणः च असौ ईश्वरः धनिकः च तस्य । संधिम् इष्टकासंयोगम् । पटभासः गवाक्षजालम् तस्य सूक्ष्मेण छिद्रेण

में डटकर चाभा । जिसके कारण जुये (के क्षेत्र) में मेरा पदार्पण हुआ, वह विमर्दक मेरा परम विश्वसनीय व्यक्ति और (सच कहो तो) दूसरा हृदय (ही) था ।

उसके मुख से सारे नगर का विचार, धन, कर्म व स्वभाव की दृष्टि से करके शङ्कर के गले की कालिमा के समान विशेष काले अन्धकार में नीले (=काले) वस्त्र का लबादा पहनकर धारदार तलवार बाँधकर फणिमुख (यंत्र), कैंची, सँड़सी, पुरुष-सिर, योग-चूर्ण (जिससे दूसरों को नींद आ जाय या वे न देख सकें), योग-बत्ती (बिना आग के प्रकाश देने वाला टार्च जैसा उपकरण), नापने का डोरा, केकड़ा, रस्सी (या कर्कटक-रज्जु=ऐसी रस्सी जिसके किनारे केकड़े की जैसी पकड़ के लिये कटिया लगी हो जिससे वह कमन्द की तरह इस्तेमाल हो), दीवट, भ्रमर-पेटी (पतंगों की संदूकची । पतंग रोशनी पर टूटकर बुझा देते थे) आदि बहुतेरे सामान से लैस होकर किसी कृपण धनिक के घर पहुँचकर सेंध मारकर

---

[1] बाणमान० । [2] पटभास ।

नीवीं सारमहतीमादाय, निरगाम्। नीलनीरदनिकरपीवरतमोनिबिडितायां[1] राजवीथ्यां झटिति शतह्रदासंपातमिव क्षणमालोकमलक्षयम्। अथासौ नगरदेवतेव नगरमोषरोषिता निस्संबाधवेलायां निःसृता संनिकृष्टा काचिदुन्मिषद्भूषणा युवतिराविरासीत्। 'कासि वासु ? क्व यासि ?' इति सदयमुक्त्वा त्रासगद्गदमगादीत्—'आर्य, पुर्यस्यामर्यवर्यः कुबेरदत्त[2]नामा वसति। अस्म्यहं तस्य कन्या। मां जातमात्रां धनमित्रनाम्नेऽत्रत्यायैव कस्मैचिदिभ्यकुमारायान्वजानाद्भार्यां मे पिता। स पुनरस्मिन्नत्युदारतया पित्रोरन्ते वित्तैर्निजैः [3]क्रीत्वेवार्थिवर्गाद्दारिद्र्यं दरिद्रति सत्यथोदारक इति च प्रीतलोकाधिरोपितापरश्लाघ्यनामनि वरयत्येव

लक्षिता दृष्टा अन्तर्गृहे गृहमध्ये प्रवृत्तिः वृत्तान्तः येन सः। नीवीम् धनपेटिकाम्। सारेण। धनेन महतीम् गुर्वीम्। निरगाम् निरगच्छम्। नीलाः श्यामाः ये नीरदाः मेघाः तेषाम् यः निकरः समूहः तेन पीवरम् पुष्टम् यत् तिमिरम् अन्धकारः तेन निबिडितायाम् व्याप्तायाम्। राजवीथ्याम् राजमार्गे। झटिति शीघ्रम्। शतह्रदायाः विद्युतः संपातः स्फुरणम् तम्। नगरे यः मोषः चौर्यम् तेन रोषिता कोपम् प्रापिता। निःसंबाधवेलायाम् जनसमूहाभावसमये। संनिकृष्टा समीपस्थिता। उन्मिषद्भूषणा दीप्यमानालङ्कारा। आविरासीत् प्रकटिता अभवत्। (हे) वासु बाले। सदयम् कृपया। त्रासेन भयेन गद्गदम् विह्वलम् तत् यथा स्यात् तथा। अगादीत् अवदत् पुरि पुर्याम्। अर्यवर्यः वैश्यश्रेष्ठः। जातमात्राम् जाताम् एव। इभ्यः धनिकः। अन्वजानात् प्रतिज्ञातवान्। अत्रत्याय एतद्देशभवाय। सः (पिता)। अस्मिन् धनमित्रे। अत्युदारता दानपरता तया। पित्रोः मातुः च पितुः च। अन्ते मृत्यौ। अर्थिनः याचकाः। दरिद्रति दरिद्रताम् अनुभवति (सति); वरयति प्रार्थयति (सति) इतरस्मै अन्यस्मै। सार्थवाहाय वणिजे।

खिड़की की जाली के छोटे छेद से घर के अन्दर का सारा वृत्तान्त भाँपकर बिना कष्ट के अपने घर में जैसे घुसता हूँ, वैसे घुसकर धन से भारी संदूकची लेकर निकल पड़ा। सड़क के काले बादल-दल से पुष्ट अंधकार से ढक जाने पर मैंने शीघ्र बिजली के चमकने-सा प्रकाश क्षण भर देखा। इसके बाद शहर की चोरी से जिसे गुस्सा दिलाया गया हो उस नगर-देवी की भाँति भीड़-भाड़ रहित समय में निकलकर पास आई चमकते गहने वाली एक युवती प्रकट हुई। 'बाले, तुम कौन हो; कहाँ जा रही हो?' इस प्रकार मेरे दया-पूर्वक कहने पर वह डर से विह्वल होकर बोली—'श्रीमन्, इस नगरी में कुबेरदत्त-नामक श्रेष्ठ सौदागर रहते हैं। मैं उनकी कन्या हूँ। मेरे पिता ने पैदा होते ही मुझे धनमित्र नामक यहीं पैदा हुये किसी धनी बालक को पत्नी के रूप में देने का वचन दिया था। अब वे (पिताजी), (इन धनमित्र के) माता-पिता के मरने के बाद अत्यन्त विशाल-हृदयता के कारण अपनी सम्पदाओं की बदौलत याचकों से गरीबी खरीदकर इनके गरीब हो जाने, इसके बाद 'उदारक' के नाम से प्रसन्न समाज के द्वारा रखे गये दूसरे सराहनीय नाम से युक्त होने और मेरे लिये याचना

---

[1] तमो०; निबिडपीडितायाम्। [2] वल्लभ। [3] क्रीत्वैव।

तस्मिन्मां तरुणीभूतामधन इत्यदत्त्वार्थपतिनाम्ने कस्मैचिदितरस्मै यथार्थनाम्ने सार्थवाहाय दित्सति मे पिता। तदमङ्गलमद्य किल प्रभाते भावीति ज्ञात्वा, प्रागेव प्रियतमदत्तसंकेता वञ्चितस्वजना निर्गत्य, बाल्याभ्यस्तेन वर्त्मना मन्मथाभिसरा[1] तदगारमभिसरामि; तन्मां मुञ्च। गृहाणैतद्भाण्डम्' इत्युन्मुच्य मह्यमर्पितवती। दयमानश्चाहमब्रवम्—'एहि साध्वि, त्वां नयेयं त्वत्प्रियावसथम्' इति त्रिचतुराणि पदान्युदचलम्। आपतच्च दीपिकालोकपरिलुप्यमानतिमिरभारं, यष्टिकृपाणपाणि, नागरिकबलमनल्पम्। दृष्ट्वैव प्रवेपमानां कन्यकामवदम्—'भद्रे, मा भैषीः। अस्त्ययमसिद्वितीयो मे बाहुः। अपि तु मृदुरयमुपायस्त्वदपेक्षया चिन्तितः। शयेऽहं[2] भावितविषवेगविक्रियः। त्वयाप्यमी वाच्याः 'निशि वयमिमां पुरीं प्रविष्टाः। दष्टश्च ममैष नायको दर्वीकरेणामुष्मिन्सभागृहकोणे। यदि

दित्सति दातुम् इच्छति। तत् अर्थपतये दानरूपम्। प्राक् पूर्वम्। प्रियतमेन (धनमित्रेण) दत्तः सङ्केतः मिलनस्थाननिर्देशः यस्याः सा। वञ्चिताः त्यक्ताः प्रतारिताः। अभ्यस्तेन परिचितेन। वर्त्मना मार्गेण। मन्मथः कामः अभिसरः सहायः यस्याः सा। तस्य (धनमित्रस्य) अगारम् गृहम्। अभिसरामि गच्छामि। भाण्डम् भूषणम्। उन्मुच्य उत्तार्य। आवसथम् गृहम्। आपतत् आगच्छत्। दीपिकानाम् हस्तदीपानाम् (दीपिका हस्तदीपः स्यात् इति वैजयन्ती)। आलोकेन प्रकाशेन परिलुप्यमानम् नाश्यमानम् तिमिरस्य तमसः भारः चयः येन तत्। नागरिकस्य नगररक्षाकर्तुः बलम् दलम्। न अल्पम् अनल्पम्। प्रवेपमानाम् कम्पमानाम्। भैषीः भीता भव। असिः खड्गः द्वितीयः सहायः यस्य सः। अपि तु किन्तु। अपेक्षया कृते। चिन्तितः निश्चितः। शये शयितः भवामि। भाविता प्रकटिता विषवेगस्य विक्रिया विकारः येन सः। अमी (रक्षिणः)। निशि रात्रौ। नायकः पतिः। दर्वीकरेण सर्पेण। मन्त्रवित् मन्त्रज्ञः। आहरेत्

करने पर भी जवान हो गई मुझे 'यह (तो) गरीब है' सोचकर मेरे पिता इन्हें न देकर अर्थपति-नामक किसी अन्य सार्थक नाम वाले सौदागर को देना चाहते हैं। 'वह अशुभ आज प्रातः निश्चय ही होना है' यह जानकर पहले ही प्रियतम ने मुझे मिलने का स्थान बताया और मैं अपने आत्मीयों का त्यागकर निकलकर बचपन से परिचित रास्ते से कामदेव की सहायक होकर उस (धनमित्र) के घर जा रही हूँ, अतः मुझ-(दुखिया) को छोड़ दो। यह गहना ले लो।" यह कहकर उसने उतारकर (गहना) मुझे दे दिया। दया से मैं बोला—'भली स्त्री, आ। तुझे तेरे प्रिय के घर ले जाऊँगा'। यह कहकर मैं तीन-चार कदम चला ही था कि मशाल की रोशनी से अन्धकार समूह चीरता हुआ हाथ में छड़ी और तलवार लिये कोतवाल का एक बड़ा दल आ पड़ा। उसे देखते ही मैं काँप रही लड़की से बोला—'ओ कल्याणी, मत डर। यह रही मेरी भुजा जिसकी सहायक तलवार है किन्तु तुम्हारा ख्याल कर यह कोमल उपाय निश्चित किया है। जहर चढ़ने की तेजी का विकार प्रकट कर मैं लेटूँगा और तुम उनसे कहोगी—'हम (दोनो) रात में इस नगरी में प्रविष्ट हुये थे। मेरे इन पति को उस

---

[1] ०सारा, मन्मथैकाभि०। [2] शयीय।

वः कश्चिन्मन्त्रवित्कृपालुः स एनमुज्जीवयन्मम प्राणानाहरेदनाथायाः' इति। सापि बाला गत्यन्तराभावाद्भयगद्गदस्वरा बाष्पदुर्दिनाक्षी बद्धवेपथुः कथंकथमपि गत्वा मदुक्तमन्वतिष्ठत्। अशयिषि चाहं भावितविषविक्रियः। तेषु कश्चिन्नरेन्द्राभिमानी[1] मां निर्वर्ण्य मुद्रातन्त्रमन्त्रध्यानादिभिश्चोपक्रम्याकृतार्थः 'गत एवायं कालदष्टः। तथा हि स्तब्धश्यावमङ्गम्[2], रुद्धा दृष्टिः, शान्त एवोष्मा। शुचालं वासु, श्वोऽग्निसात्करिष्यामः। कोऽतिवर्तते दैवम्' इति सहेतरैः प्रायात्।

उत्थितश्चाहमुदारकाय तां नीत्वाब्रवम्—'अहमस्मि कोऽपि तस्करः। त्वद्गतेनैव चेतसा सहायभूतेन त्वामिमामभिसरन्तीमन्तरोपलभ्य कृपया त्वत्स-

आनयेत् (रक्षेत्)। अन्या गतिः शरणम् गत्यन्तरम्। भयेन गद्गदः स्खलन् स्वरः यस्याः सा। बाष्पेण दुर्दिनम् रात्रिः (रात्रावपि दुर्दिनम् इति अमरकोषस्य रामाश्रमी टीका) अक्ष्णोः नेत्रयोः यस्याः सा। बद्धः धृतः वेपथुः कम्पः यया सा। कथंकथमपि कष्टेन। अन्वतिष्ठत् अकरोत्। अशयिषि शयितः अभवम्। भाविता प्रकाशिता विषविक्रिया विषविकारः येन सः। नरेन्द्राभिमानी विषवैद्यंमन्यः (नरेन्द्रो वार्तिके राज्ञि विषवैद्येऽपि कथ्यते इति विश्वः)। निर्वर्ण्य निपुणम् निरीक्ष्य। उपक्रम्य चिकित्सित्वा। न कृतार्थः सफलः। गतः मृतः। कालेन मृत्युना दष्टः। तथा हि उदाह्रियते। स्तब्धम् निश्चेष्टम् च श्यावम् श्यामलम् च। रुद्धा स्थिरा। ऊष्मा शरीरतापः। शुचा शोकेन। अलम् कृतम् (निषेधे)। (हे) वासु बाले। अग्निसात् अग्न्यधीनम्। अतिवर्तते अतिक्रामति। दैवम् भाग्यम्। इतरैः अन्यैः (रक्षिभिः)। प्रायात् गतवान्।

तस्करः चौरः। त्वाम् धनमित्रम् (उदारकम्) गतेन प्रविष्टेन। सहायभूतेन चेतसा एकाकिनी। अभिसरन्तीम् गच्छन्तीम्। अन्तरा मार्गमध्ये। उपलभ्य प्राप्य। अंशूनाम् किरणानाम्

सभा-गृह के कोने में साँप ने काट लिया है। अगर आप लोगों में से कोई मन्त्र जानने वाले हैं तो दयालु होकर वे इन्हें जिलाकर मुझ अनाथा के प्राण बचा दें।' उस युवती ने दूसरा उपाय न होने से डर से लड़खड़ाती आवाज से आँसुओं से हुई रात (अँधेरा) आँखों में लेकर कँपकँपी-युक्त होकर बहुत कठिनाई से जाकर मेरी कही बात की। उधर मैं जहर का विकार प्रकाशित कर लेट गया। उन लोगों में से एक अपने को विष-वैद्य लगाता था। उसने मुझे गौर से देख-भालकर मुद्रा, तन्त्र, मन्त्र, ध्यान आदि से चिकित्सा कर विफल होकर 'यह तो गया ही समझो; मृत्यु का डसा है; देखो न शरीर निश्चल और काला पड़ गया है; नजर स्थिर हो गई है, गर्मी शांत ही है। हे बाले, शोक मत करो; कल आग के हवाले करेंगे। होनहार को कौन टाल सकता है।' यह कहकर अन्यों के साथ चला गया।

मैं उठकर उदारक के पास उसे ले जाकर बोला—'मैं एक चोर हूँ। बीच (राह) में इस स्त्री को तुममें रत अपने हृदय (मात्र) को सहायक बनाकर तुम्हारे पास जाती हुई जानकर

---

[1] नरेन्द्रमानी। [2] श्याववर्णमङ्गम्।

मीपमनैषम् । भूषणमिदमस्याः’ इत्यंशुपटलपाटितध्वान्तजालं तदप्यर्पितवान् । उदारकस्तु तदादाय सलज्जं च सहर्षं च ससंभ्रमं च मामभाषत—‘आर्य, त्वयैवेयमस्यां निशि प्रिया मे दत्ता । वाक्पुनर्ममापहृता । तथा हि न जाने वक्तुं त्वत्कर्मैतदद्भुतमिति । [1]न ते स्वशीलमद्भुतवत्प्रतिभाति । नैवमन्येनापि कृतपूर्वमिति प्रतिनियतैव वस्तुशक्तिः । न हि त्वय्यन्यदीया लोभादयः । त्वयाद्य साधुतोन्मीलितेति तत्प्रायस्त्वत्पूर्वावदानेभ्यो न रोचते । दृष्टमिदानीमौदार्यस्य स्वरूपमिति त्वदाशयमननुमान्य न युक्तो निश्चयः। त्वयामुना सुकृतेन क्रीतोऽयं दास-

पटलेन समूहेन पाटितम् नाशितम् ध्वान्तस्य तमसः जालम् समूहः येन तत् (भूषणम्)। सलज्जम् (रहस्यज्ञानात्) सहर्षम् (प्रियाप्राप्त्या)। ससंभ्रमम् (आश्चर्यजनककथया)। निशि रात्रौ। दत्ता अपहृता इति अत्र परिवृत्तिरलङ्कारः (परिवृत्तिर्विनिमयो न्यूनाभ्यधिकयोर्मिथः)। तथा हि इति अत्र काव्यलिङ्गम्। ननु निश्चयेन। प्रतिभाति प्रतीयते। कृतपूर्वम् पूर्वम् कृतम्। इति (पिष्टपेषणम् प्रतिभाति यतः)। प्रतिनियता तत्तद्व्यक्तिनिष्ठा। एव (भवति एव)। (अतः न जाने वक्तुम्)। अन्यदीयाः अन्येषु लभ्याः। उन्मीलिता प्रकाशिता। तत्प्रायः साधुताबहुलेभ्यः। अवदानम् महत् कर्म तेभ्यः। तव आशयः हृदयम्। अननुमान्य अनपेक्ष्य (तव हृदयेन पूर्वम् अपि एतादृशी उदारता प्रकाशिता इत्येतस्य) उपेक्षातः। युक्तः निश्चयः। सुकृतेन पुण्येन।

मैंने दया (आ जाने) से तुम्हारे पास पहुँचा दिया है। यह रहा इसका गहना’ यह कहकर किरण-समूह से अंधकार-समूह को चीर देने वाला वह (गहना) भी दे दिया। उदारक ने वह (गहना) लेकर लज्जित, हर्षित और विह्वल होकर मुझसे कहा—‘श्रीमन्, आज की रात तुम्हीं ने मेरी इस प्रिया को मुझे प्रदान किया है लेकिन मेरी वाणी ले ली है (अदल-बदल की, मैं कृतज्ञता प्रगट करने में असमर्थ हूँ)। देखो न; क्या कहूँ यह समझ नहीं पा रहा हूँ। तुम्हारा यह काम आश्चर्य-जनक है। निश्चय ही तुम्हारा यह अपना स्वभाव अचरज की भाँति प्रतीत होता है। किसी दूसरे ने भी पहले इसे कर दिखाया है, यह बात नहीं है, यह कहूँ तो (पिष्ट-पेषण है क्योंकि) वस्तु की शक्ति तो व्यक्ति-निष्ठ ही होती है (जो बात एक में पाई जाती है, वह दूसरे में नहीं होती अतः क्या कहूँ, समझ नहीं पा रहा हूँ)। दूसरों में पाये जाने वाले लालच इत्यादि (दुर्गुण) तुममें नहीं हैं। ‘तुमसे आज कर्म की सज्जनता जगी है’ यह कहूँ तो तुम्हारे वहुतायत से वह (सज्जनता) धारण करने वाले पहले के श्रेष्ठ कार्यों को नहीं रुचेगा (संगति नहीं वैठेगी क्योंकि यह अनर्थ ध्वनित हो सकता है कि तुमने पहले ऐसे श्रेष्ठ कार्य नहीं किये)। इस समय हृदय की महत्ता का स्वरूप दिखा है, यह कहूँ तो यह निश्चय इसलिये उचित नहीं है क्योंकि तुम्हारे हृदय (के भावों) के प्रति आदर नहीं किया गया है (क्योंकि यह अनर्थ द्योतित होगा कि तुम्हारा हृदय केवल अब महान् हो सका है; पहले सङ्कुचित था)। ‘इस पुण्य से तुमने इस सेवक (मुझ-) को खरीद लिया है’ यह

---

१. नु।

जन इत्यसारमतिगरीयसा क्रीणासीति स ते प्रज्ञाधिक्षेपः। प्रियादानस्य प्रतिदानमिदं शरीरमिति तदलाभे निधनोन्मुखमिदमपि त्वयैव दत्तम्। अथवैतावदत्र प्राप्तरूपम्। अद्यप्रभृति भर्तव्योऽयं दासजनः' इति मम पादयोरपतत्। उत्थाप्य चैनमुरसोपश्लिष्याभाषिषि—'भद्र, काद्य ते प्रतिपत्तिः' इति। सोऽभ्यधत्त—'न शक्नोमि चैनामत्र पित्रोरनभ्यनुज्ञयोपयम्य जीवितुम्। अतोऽस्यामेव यामिन्यां देशमिमं जिहासामि। को वाहम्, यथा त्वमाज्ञापयसि' इति। अथ मयोक्तम्—'अस्त्येतत्। स्वदेशो देशान्तरमिति नेयं गणना विदग्धस्य पुरुषस्य। किं तु वालेयमनल्पसौकुमार्या। कष्टाः प्रत्यवायभूयिष्ठाश्च कान्तारपथाः। शैथिल्यमिव किंचित्प्रज्ञासत्त्वयोरनर्थेनेदृशेन देशत्यागेन संभाव्यते। तत्सहानया सुखमिहैव

असारम् तुच्छम् वस्तु। अतिगरीयसा सुगुरुतरेण वस्तुना। क्रीणासि विनिमयेन गृह्णासि। प्रज्ञायाः बुद्धेः अधिक्षेपः निन्दा। प्रियायाः (त्वया) दानम् तस्य। तस्याः (प्रियायाः) अलाभे अप्राप्तौ। निधनाय मरणाय उन्मुखम् उद्यतम्। प्रशस्तम् (प्रशंसायां रूपम्) (प्रसङ्गेण कथयितुम्) प्राप्तम्। अद्य अस्मात् दिनात्। भर्तव्यः पालयितव्यः। उपश्लिष्य आश्लिष्य। अभाषिषि भाषितवान्। (हे) भद्र शुभदर्शन। अद्य अधुना। प्रतिपत्तिः कर्तव्यम्। अभ्यधत्त अवदत्। न (विना) अभ्यनुज्ञया अनुमत्या। उपयम्य विवाह्य। यामिन्याम् रात्रौ। जिहासिमि हातुम् (त्यक्तुम्) इच्छामि। विदग्धस्य चतुरस्य। वाला तरुणी। अनल्पम् वहु (न अल्पम्) सौकुमार्यम् कोमलता यस्याः सा। कष्टाः क्लेशप्रदाः। प्रत्यवायभूयिष्ठाः वाधावहुलाः। कान्तारपथाः वनमार्गाः। प्रज्ञा बुद्धिः च सत्त्वम् सामर्थ्यम् च तयोः। सुखम् सुखपूर्वकम्। स्वम् स्वस्याः।

कहूँ तो 'तुम अत्यन्त ऊँचे दाम पर तुच्छ वस्तु खरीदते हो', इस रूप में वह तुम्हारी बुद्धि की निन्दा होगी। 'आपने जो प्रिया प्रदान की है, यह शरीर उसका प्रतिदान है' यह कहूँ तो (अनुचित है क्योंकि) उस (प्रिया) के न मिलने पर यह (शरीर) मौत की ओर चला जाता अतः यह भी तुम्हारा दिया हुआ है (तुम्हारी ही दी वस्तु देकर कैसे किसी उपकार का प्रतिदान हो सकता है)। या यों कहूँ कि इस विषय में प्रशस्त रूप से इस निष्कर्ष पर पहुँचा हूँ कि आज से यह सेवक आपके भरण-पोषण का पात्र है' यह कहकर मेरे पैरों पर गिर पड़ा। मैंने उसे उठाकर छाती से लगाकर कहा—'भाई, आपको क्या करना है।' वह बोला—'(इसके) माता-पिता की अनुमति के बिना इससे ब्याह कर यहाँ बचा नहीं रह सकता (वे लोग मरवा डालेंगे) इसलिये इसी रात यह स्थान छोड़ना चाहता हूँ। (लेकिन) मैं कौन होता हूँ; जैसी तुम्हारी आज्ञा।' तब मैंने कहा—'यह ठीक है। यह (अपना) देश है और यह परदेश, यह विचार चतुर व्यक्ति नहीं करते (जहाँ रहते हैं उसे अपने पौरुष से अपना बना लेते हैं)। लेकिन यह तरुणी अत्यन्त सुकुमार है (राहें जंगलों से होकर जाती हैं) और जंगल की राहों में बाधाओं की प्रचुरता है जो कष्ट-प्रद है। इस उपद्रव से स्थान छोड़ देने से बुद्धि और सामर्थ्य की कुछ शिथिलता-सी लगती है, अतः इस (पत्नी) के साथ सुख-

वस्तव्यम् । एहि । नयावैनां स्वमेवावासम्’ इति । [1]अविचारानुमतेन तेन सद्य एवैनां तद्गृहमुपनीय तयैवापसर्पभूतया तत्र मृद्भाण्डावशेषमचोरयाव । ततो निष्पत्य क्वचिन्मुषितकं[2] निधाय समुच्चलन्तौ [3]नागरिकसंपाते मार्गपार्श्वशायिनं कंचिन्मत्तवारणमुपरि[4]पुरुषमाकृष्याध्यरोहाव । ग्रैवेयप्रोतपादयुगलेन च मयोत्थाप्यमान एव [5]पातिताधोरेण पृथुलोरःस्थलपरिणतः पुरीतल्लतापरीतदन्तकाण्डः स रक्षिकबलमक्षिणोत् । अध्वंसयाव चामुनैवार्थपतिभवनम् । अपवाह्य च क्वचन जीर्णोद्याने शाखाग्राहिकयावातराव । स्वगृहगतौ च स्नातौ शयनमध्यशिश्रियाव ।

[6]तावदेवोदगादुदधेरुदयाचलेन्द्रपद्मरागश्टङ्गकल्पं कल्पद्रुमहेमपल्लवापीडपाटलं

अविचारम् यथा स्यात् तथा (विंचारेण विना) (मम प्रस्तावे) अनुमतेन दत्तस्वीकृतिना । तस्याः गृहम् । उपनीय प्रापय्य । अपसर्पः चरः (‘अपसर्पश्चरः स्पशः’ इति अमरः) । तत्र तस्मिन् (कुबेरदत्तस्य) गृहे । मृद्भाण्डानाम् मृत्तिकापात्राणाम् (एव) अवशेषः यत्र तत् यथा स्यात् तथा । निंष्पत्य निर्गत्य । मुषितकम् चोरितम् वस्तु । नागरिकाणाम् रक्षकपुरुषाणाम् संपाते समूहे । वारणः गजः तम् । उपरिपुरुषम् आरोहिणम् । ग्रैवेये कण्ठरज्ज्वाम् प्रोतम् प्रवेशितम् पादयुगलम् येन तेन (मया) । पातितः यः आधोरणः हस्तिपकः तस्य यत् पृथुलम् दीर्घम् उरःस्थलम् वक्षः तत्र परिणतः तिर्यग्दन्तप्रहारी (गजः) । पुरीतल्लता अन्त्रवल्ली (‘अन्त्रं पुरीतत्’ इति अमरः) । तया परीतम् व्याप्तम् दन्तकाण्डम् यस्य सः । रक्षिकबलम् रक्षिणाम् दलम् । अक्षिणोत् क्षयम् नीतवान् । अध्वंसयाव ध्वंसितवन्तौ । अमुना (गजेन) । अपवाह्य नीत्वा । जीर्णम् पुरातनम् । शाखाग्राहिकया शाखाग्रहणेन । अवातराव अवतीर्णवन्तौ । अध्यशिश्रियाव अधिष्ठितवन्तौ ।

उदगात् उदितः । उदधेः समुद्रात् । उदयाचलेन्द्रस्य उदयपर्वतराजस्य यत् पद्मरागश्टङ्गम् लोहितमणिशिखरम् तत्कल्पम् तस्मात् ईषत् न्यूनम् तत्तुल्यम् । पल्लवाः किसलयानि तेषाम्

पूर्वक यहीं रहो । आओ, इसे इसके घर ले चलें ।’ उसने बिना विचारे (मेरे विश्वास पर) स्वीकार कर लिया । उसके द्वारा शीघ्र ही उस-(बाला) को उसके घर पहुँचाकर उसी को जासूस बनाकर ऐसी चोरी की कि उस (कुबेरदत्त के घर) में केवल मट्टी के बरतन बच रहे । फिर निकलकर चोरी का माल कहीं रखकर चल खड़े हुये । इतने में सिपाहियों का दल आ जाने पर राह के किनारे लेटे किसी मस्त हाथी के ऊपर चढ़े आदमी को खींचकर हम दोनो (ने उतार दिया और) उस पर चढ़ गये ।

गले के रस्से में पाँव फँसाकर मेरे द्वारा उठाये जाते ही उसने गिराये हुये महावत के चौड़े सीने के भाग पर दाँतों से तिरछा प्रहार कर लता-सी आँतों से तने-से दाँत व्याप्त कर सिपाहियों का दल नष्ट-भ्रष्ट कर दिया । हम दोनो ने उसी के द्वारा अर्थपति का घर ध्वस्त करा दिया । उसे किसी पुराने बगीचे में ले जाकर डाल पकड़कर उतर गये । अपने घर पहुँचकर

---

[1] अविचार्यानुमते । [2] मुषितम् । [3] नागरिकपुरुष– । [4] उपरिपुच्छम् । [5] पतिताधोरण । [6] तावतोद– ।

पतङ्गमण्डलम्। उत्थाय च धौतवक्त्रौ प्रगेतनानि मङ्गलान्यनुष्ठायास्मत्कर्मतुमुलं पुरमनु विचरन्तावश्रृणुव वरवधूगृहेषु कोलाहलम्। अथार्थैरर्थपतिः कुबेरदत्तमाश्वास्य कुलपालिकाविवाहं मासावधिकमकल्पयत्। उपह्वरे पुनरित्यशिक्षयं धनमित्रम्—'उपतिष्ठ सखे, एकान्त एव [३]चर्मरत्नभस्त्रिकामिमां पुरस्कृत्याङ्गराजम्। आचक्ष्व च जानात्येव देवो नैककोटिसारस्य वसुमित्रस्य मां धनमित्रं नामैकपुत्रम्। सोऽहं मूलहरत्वमेत्यार्थिवर्गादस्म्यवज्ञातः। मदर्थमेव सवर्धितायां कुलपालिकायां मद्दारिद्र्यदोषात्पुनः कुबेरदत्तेन दुहितर्यर्थपतये दित्सितायामुद्वेगादुज्झितुमसूनुपनगरभवं जरद्वनमवगाह्य कण्ठन्यस्तशस्त्रिकः केनापि जटाधरेण

आपीडः समूहः तद्वत् पाटलम् श्वेतरक्तम् ('श्वेतरक्तस्तु पाटलः' इति अमरः)। पतङ्गस्य सूर्यस्य मण्डलम् बिम्बम्। धौतम् प्रक्षालितम् वक्त्रम् याभ्याम् तौ। प्रगेतनानि प्रभातोचितानि। अनुष्ठाय संपाद्य। कर्मणा (चौर्येण) तुमुलम् व्याकुलरवम्। वरस्य (अर्थपतेः) वध्वाः कुबेरदत्तकन्यायाः च। कुलपालिका (कुबेरदत्त-) कन्या ('कन्या तु कुलपालिका' इति अमरः)। मासावधिकम् मासः अवधिः यस्य तम्। अकल्पयत् निर्धारितवान्। उपह्वरे एकान्ते ('रहोऽन्तिकसुपह्वरे' इति अमरः)। उपतिष्ठ भजस्व। चर्मरत्नेन श्रेष्ठचर्मणा निर्मिताम् भस्त्रिकाम् प्रसेविकाम्। आचक्ष्व वद। नैकाः कोटयः अनेकाः येषां तादृशाः साराः धनम् यस्य तस्य। मूलहरत्वम् मूलद्रव्यनाशकत्वम् (दरिद्रताम्)। एत्य प्राप्य। अर्थिनः याचकाः। अवज्ञातः तिरस्कृतः। दित्सितायाम् दातुम् इष्टायाम्। उद्वेगात् शोकात् (उद्वेगौ शोकसंभ्रमौ इति वैजयन्ती)। उज्झितुम् त्यक्तुम्। असून् प्राणान्। उपनगरभवम् नगरसमीपस्थम्। जरत् पुरातनम् अरण्यम् वनम्। अवगाह्य प्रविश्य। कण्ठे गले न्यस्ता निहिता शस्त्रिका छुरिका येन सः (अहम्)।

नहाकर विस्तर की शरण ली। तभी समुद्र से उदय-अचल-राज के पद्मराग-मणि-शिखर के समान और कल्पवृक्ष के स्वर्ण-किसलयों के समूह के समान सफेदी लिये हुये लाल रंग का सूर्य-बिम्ब उदित हुआ। हम दोनो ने उठकर मुँह धोये, प्रभात-कालोचित माङ्गलिक कृत्य सम्पन्न किये और अपने कार्य (चोरी) से आकुल-स्वरों से व्याप्त नगर में घूमते हुये वर और वधू के घर में शोर-शराबा सुना। तब अर्थपति ने धन देकर कुवेरदत्त को आश्वासन दिया और (उसकी) कन्या के व्याह की अवधि माह भर की निश्चित की (व्याह १ माह टाल दिया)। मैंने एकान्त में धनमित्र को यों सिखाया—'मित्र, श्रेष्ठ चमड़े की यह भाथी एकान्त में भेंटकर अङ्ग-नरेश को सेवा करो; साथ ही कहना—'महाराज, जानते ही हैं कि मैं करोड़ों के स्वामी वसुमित्र का धनमित्र-नामक इकलौता लड़का हूँ। मैं सर्वस्व-रहित होकर याचकों के द्वारा तिरस्कृत हुआ। मेरे (मुझसे व्याह करने के) ही लिये पाली-पोसी गई कुलपालिका नामक कन्या को मेरे निर्धनता-दोष से कुवेरदत्त के अर्थपति को देने की इच्छा करने पर शोक से प्राण त्यागने के लिये नगर के समीप-स्थित एक पुराने जंगल में घुसकर मैंने गले पर छुरी रखी ही थी कि किसी जटाधारी व्यक्ति ने रोककर मुझसे कहा—'तुम्हारे इस बिना

---

३. चर्मभस्त्रिकाम्।

निवार्यैवमुक्तः—'किं ते साहसस्य मूलम् ?' इति। मयोक्तम्—'अवज्ञासोदर्यं दारिद्र्यम्' इति। स पुनरेवं कृपालुरन्वग्रहीत्—"तात, मूढोऽसि। नान्यत्पापिष्ठतममात्मत्यागात्। आत्मानमात्मनानवसाद्यैवोद्धरन्ति सन्तः। सन्त्युपाया धनार्जनस्य बहवः, नैकोऽपि च्छिन्नकण्ठप्रतिसंधानपूर्वस्य प्राणलाभस्य। किमनेन। सोऽस्म्यहं मन्त्रसिद्धः। साधितेयं लक्षग्राहिणी चर्मरत्नभस्त्रिका। चिरमहमस्याः प्रसादात्कामरूपेषु कामप्रदः प्रजानामवात्सम्। मत्सरिण्यां जरसि भूमिस्वर्गमत्रोद्देशे प्रवेक्ष्यन्नागतः। तामिमां प्रतिगृहाण। मदन्यत्र चेयं वणिग्भ्यो [1]वारमुख्याभ्यो वा दुग्धे इति हि तद्गता प्रतीतिः। किंतु यत्सकाशादन्यायापहृतं [2]तत्तस्मै प्रत्यर्पणीयम्।

साहसस्य विचाररहितकार्यस्य। अवज्ञा तिरस्कारः सोदर्या भगिनी यस्य तत्। दारिद्र्यम् निर्धनता। अन्वग्रहीत् कृपाम् कृतवान्। तात वत्स। मूढः ज्ञानरहितः। अन्यत् (कर्म)। अतिशयेन पापि पापपूर्णम् पापिष्ठम् अतिशयेन पापिष्ठम् पापिष्ठतमम्। आत्मनः स्वस्य त्यागात् घातात्। आत्मानम्[3] स्वम्। आत्मना स्वस्य उद्योगेन। अनवसाद्य अविनाश्य। एकः (उपायः)। प्रतिसंधानम् पुनःसंवन्धः। मन्त्रः सिद्धः यस्य सः। साधिता लब्धा। लक्षम् (धनस्य) ग्राहयति जनयति इति लक्षग्राहिणी। चर्मरत्नेन श्रेष्ठचर्मणा निर्मिता भस्त्रिका प्रसेविका। कामरूपेषु[4] कामरूपदेशे। कामप्रदः इच्छापूरकः। अवात्सम् अवसम्। मत्सरिण्याम् विद्वेषिण्याम्। जरसि वृद्धतायाम्। भूमौ स्वर्गः भूमिस्वर्गः तम् (प्रवेक्ष्यन्)। उद्देशे प्रदेशे। प्रवेक्ष्यन् प्रवेष्टुम् इच्छन्। इमाम् भस्त्रिकाम्। प्रतिगृहाण दानरूपेण स्वीकुरु। अन्यत्र विहाय। इयम् भस्त्रिका। वारमुख्याभ्यः वेश्याभ्यः। दुग्धे (धनम्) सूते। गता संबद्धा प्रतीतिः ख्यातिः। यत् यस्य सकाशात्

विचारे किये काम का क्या कारण है ?' मैं बोला—'जिसकी बहन तिरस्कार है वह गरीबी।' इसके उत्तर में उसने दयालु होकर इस प्रकार अनुग्रह किया—'वत्स, अज्ञानी हो। आत्महत्या से बढ़कर अतिशय-पाप-पूर्ण कार्य कोई दूसरा नहीं है। सज्जन अपना नाश न करके अपने उद्योग से (अपना) उद्धार करते हैं। धन कमाने के उपाय बहुत हैं; कटे गले को जोड़कर प्राण प्राप्त करने का (उपाय) एक भी नहीं है। इससे क्या लाभ ! मैं मंत्र-सिद्ध हूँ। मुझे लाखों दिलाने वाली श्रेष्ठ चमड़े की भाथी है। इसकी कृपा से बहुत समय तक कामरूप देश में जनता की इच्छायें पूर्ण करने वाला होकर रहा हूँ। बुढ़ापे के दुश्मन बनने पर पृथ्वी पर जो स्वर्ग है उसमें प्रवेश का इच्छुक होकर इस स्थान में आया हूँ। यह भेंट लो। मुझे छोड़कर यह वैश्यों और वेश्याओं को फल देती है, ऐसा इसके स्वरूप की ख्याति है। लेकिन (एक शर्त यह है कि) जिससे जो कुछ अन्याय से लिया गया हो, उसे वह वापस देना पड़ता है और न्याय की कमाई देवताओं और ब्राह्मणों के लिये छोड़नी (देनी) पड़ती है।

---

[1] वारयोषिन्मुखाभ्यः। [2] वित्तं तत्। [3] 'उद्धरेदात्मनात्मानम् (गीता ६।५)' अंश उद्धृत-सा किया गया है। [4] 'करतोया या सदानीरा' नदी के किनारे आसाम तक फैला एक प्राचीन राज्य जिसकी राजधानी का नाम प्राग्ज्योतिषपुर था।

न्यायार्जितं तु देवब्राह्मणेभ्यस्त्याज्यम् । अथेयं देवतेव शुचौ देशे निवेश्यार्च्यमाना प्रातः प्रातः सुवर्णपूर्णेव दृश्यते। स एष कल्पः” इति बद्धाञ्जलये मह्यमेनां दत्त्वा किमपि ग्रावच्छिद्रं प्राविशत् । इयं च रत्नभूता चर्मभस्त्रिका देवायानिवेद्य नोपजीव्येत्यानीता । परं तु देवः प्रमाणम्’ इति । राजा च नियतमेव वक्ष्यति—‘भद्र, प्रीतोऽस्मि । गच्छ । यथेष्टमिमामुपभुङ्क्ष्व’ इति । भूयश्च ब्रूहि—‘यथा न कश्चिदेनां मुष्णाति तथानुगृह्यताम्’ इति । तदप्यवश्यमसावभ्युपेष्यति । ततः स्वगृहमेत्य यथोक्तमर्थत्यागं कृत्वा दिने दिने वरिवस्यमानां स्तेयलब्धैरर्थैर्नक्तमापूर्य प्राह्णे लोकाय दर्शयिष्यसि । ततः कुबेरदत्तस्तृणाय मत्वार्थपतिमर्थलुब्धः कन्यकया स्वयमेव त्वामुपस्थास्यति । अथ कुपितोऽर्थपतिर्व्यवहर्तुमर्थगर्वादभियोक्ष्यते, तं च भूयश्चित्रैरुपायैः कौपीनावशेषं करिष्यावः । स्वकं चौर्यमनेनैवा-

---

समीपात् । अन्यायेन अपहृतम् गृहीतम् प्रत्यर्पणीयम् दातव्यम् । त्याज्यम् देयम् । शुचौ पवित्रे निवेश्य स्थापयित्वा । अर्च्यमाना पूज्यमाना (सती) । कल्पः विधानम् । ग्राव्णः (‘अद्रिगोत्रगिरिग्रावाचलशैलशिलोच्चयाः’ इति अमरः) शिलायाः । उपजीव्या उपभोगयोग्या । प्रमाणम् निर्णयकर्त्ता । नियतम् निश्चितम् । वक्ष्यति वदिष्यति । प्रीतः प्रसन्नः । इष्टम् अभीष्टम् । भूयः पुनः । मुष्णाति चोरयति । अभ्युपेष्यति स्वीकरिष्यति । त्यागः दानम् तम् । वरिवस्यमानाम् (वरिवस् + क्यच् । ‘नमोवरिवश्चित्रङः क्यच्’ अष्टाध्यायी ३।१।१९) पूज्यमानाम् । स्तेयेन चौर्येण । नक्तम् रात्रौ । प्राह्णे प्रभाते । लोकाय जनसमूहाय तृणाय तृणम् (‘मन्यकर्मण्यनादरे विभाषाऽप्राणिषु’ इति चतुर्थी) । उपस्थास्यति आराधयिष्यति । व्यवहर्तुम् विवादपदम् निर्णेतुम् । अभियोक्ष्यते निवेदयिष्यति । चित्रैः अद्भुतैः । कौपीनम् अवशेषः यस्य सः । स्वकम् स्वकीयम् । अभ्युपायेन

देवता की भाँति पवित्र स्थान में रखकर पूजी जा रही यह (भाथी) हर सुबह सोने से भरी ही दिखती है। यह (इसका) विधान है’ यह कहकर अंजलि बाँधे हुये मुझे यह (भाथी) देकर (वह) पत्थर के एक छेद में प्रविष्ट हो गया। यह सोचकर यह भाथी लाया हूँ कि यह रत्न-स्वरूप है; महाराज के प्रति बिना निवेदन किये इसका उपभोग उचित नहीं है। इसके बाद महाराज जो उचित समझें करें।’ राजा निश्चित रूप से ही कहेंगे—‘भाई, मैं प्रसन्न हूँ। जाओ। इसका इच्छानुसार उपभोग करो।’ तब पुनः कहना—‘ऐसी कृपा करें कि इसे कोई चुराने न पाये। यह भी वह अवश्य अङ्गीकार करेंगे। तब अपने घर पहुँचकर कहेअनुसार धन दान करके प्रतिदिन चोरी से पाये धन से रात में पूजी जा रही इसे भरकर सवेरे लोगों को दिखाना। फिर (तो) कुबेरदत्त धम से आकृष्ट होकर अर्थपति को तिनका मान- (उपेक्षित) कर कन्या के साथ खुद ही तुम्हारी अभ्यर्थना करेगा। इसके बाद अर्थपति गुस्सा होकर धन के घमण्ड से नालिश करेगा तो फिर उसे हम दोनो अद्भुत उपायों से इस स्थिति में पहुँचा देंगे कि लँगोटी भर शेष रहे। अपनी चोरी इसी युक्ति से खूब छिपी रहेगी।

भ्युपायेन सुप्रच्छन्नं भविष्यति' इति। हृष्टश्च धनमित्रो यथोक्तमन्वतिष्ठत्। तदहरेव मन्नियोगाद्विमर्दकोऽर्थपतिसेवाभियुक्तस्तस्योदारके वैरमभ्यवर्धयत्। अर्थलुब्धश्च कुबेरदत्तो निवृत्यार्थपतेर्धनमित्रायैव तनयां सानुनयं प्रादित्सत। प्रत्यबध्नाच्चार्थपतिः।

एष्वेव दिवसेषु काममञ्जर्याः स्वसा यवीयसी रागमञ्जरी नाम पञ्चवीरगोष्ठे [1]संगीतकमनुष्ठास्यतीति सान्द्रादरः समागमन्नागरजनः। स चाहं सह सख्या धनमित्रेण तत्र संन्यधिषि। [2]प्रवृत्तनृत्यायां च तस्यां द्वितीयं रङ्गपीठं ममाभून्मनः। तद्दृष्टिविभ्रमोत्पलवनसत्रापा[3]श्रयश्च पञ्चशरो भावरसानां सामग्र्यात् समुदितबल

विधिना। सुप्रच्छन्नम् सुष्ठु गूढम्। अन्वतिष्ठत् अकरोत्। तदहः तस्मिन् दिने। नियोगात् आदेशेन। अभियुक्तः संनद्धः। उदारके उदारकम् (धनमित्रम्) प्रति। निवृत्य उदासीनः भूत्वा विमुखः भूत्वा। प्रादित्सत प्रदातुम् ऐच्छत्। प्रत्यबध्नात् प्रतिबन्धम् कृतवान्।

स्वसा भगिनी। यवीयसी कनिष्ठा। पञ्चवीरगोष्ठे जनपदसभायाम् ('तत् पञ्चवीरगोष्ठं तु यत्तु जानपदं सदः' इति कोषसारः)। संगीतम् गीतादि ('गीतं वाद्यं च नृत्यं च त्रिभिः संगीतमुच्यते' इति संगीतसर्वस्वे)। अनुष्ठास्यति विधास्यति। सान्द्रः घनः आदरः यस्य सः। समागमन् समवेताः अभवन्। नागरजनः नगरवासिनः। अहम् (अपहारवर्मा)। संन्यधिषि संनिहितः अभवम्। प्रवृत्तम् आरब्धम् नृत्यम् ('अन्यद् भावाश्रयं नृत्यम्' दशरूपकम्) यया तस्याम्। रङ्गपीठम् नृत्यस्थानम्। तस्याः (रागमञ्जर्याः) दृष्टिः तस्याः विभ्रमाः विलासाः (कटाक्षाः) एव उत्पलानाम् कमलानाम् वनम् तत् एव सत् उत्तमम् चापम् धनुः तत् एव आश्रयः यस्य सः। पञ्च शराः बाणाः यस्य सः पञ्चशरः कामदेवः। भावः विभावादयः ('बाह्यार्थालम्बनो यस्तु विकारो मानसो भवेत्। स भावः कथ्यते सद्भिस्तस्योत्कर्षो रसः स्मृतः ॥')। रसाः शृङ्गारादयः। सामग्र्यात् संपूर्णतया। समुदितम् मिलितम् बलम् सैन्यम् यस्य सः। अतिमात्रम्

धनमित्र ने प्रसन्न होकर कहे-अनुसार किया। उसी दिन विमर्दक ने मेरे आदेश से अर्थपति की सेवा में नियुक्त होकर उदारक (धनमित्र) के प्रति (उसकी) शत्रुता को बढ़ावा दिया। धन से खिंचे कुबेरदत्त ने अर्थपति से विमुख होकर धनमित्र को ही अनुनय-विनय के साथ बेटी को देने की इच्छा की और अर्थपति बाधा बना।

इन्हीं दिनों 'काममंजरी की छोटी बहन रागमंजरी जनपद की एक सभा में संगीत का कार्य-क्रम प्रस्तुत करेगी' यह जानकर शहर के रहने वाले लोग परम आदर के साथ समागत हुये। मैं मित्र धनमित्र के साथ उसमें सम्मिलित हुआ। उसके नाच शुरू कर देने पर मेरा मन दूसरा रंग मंच हो गया। कामदेव ने उसके कटाक्ष (दृष्टि-विलास) के कमल-वन के सुन्दर धनुष का आश्रय पाकर भावों और रसों की सम्पूर्णता (सकल भावों और रसों से) सबल-सा

---

[1] संगीतम्। [2] नृत्तायाम्। [3] सत्रापा०।

इव मामतिमात्रमव्यथयत्। अथासौ नगरदेवतेव नगरमोषरोषिता लीलाकटाक्षमालाशृङ्खलाभिर्नीलो[1]त्पलपलाशश्यामलाभिर्मामबध्नात्। नृत्योत्थिता च सा सिद्धिलाभशोभिनी—'किं विलासात्? किमभिलाषात्? किमकस्मादेव वा?' न जाने—असकृन्मां सखीभिरप्यनुपलक्षितेनापाङ्गप्रेक्षितेन [2]सविभ्रमारेचितभ्रूलतमभिवीक्ष्य, सापदेशं च किंचिदाविष्कृतदशनचन्द्रिकं स्मित्वा, लोकलोचनमानसानुयाता प्रातिष्ठत।

सोऽहं स्वगृहमेत्य दुर्निवारयोत्कण्ठया दूरीकृताहारस्पृहः शिरःशूलस्पर्शनमपदिशन्विविक्ते तल्पे मुक्तैरवयवैरशयिषि। अतिनिष्णातश्च मदनतन्त्रे मामभ्युपेत्य धनमित्रो रहस्यकथयत्—'सखे, सैव धन्या गणिकादारिका, याभेवं

निर्भरम् (वहु) ('अतिमात्रोद्गाढनिर्भरम्' इति अमरः)। मोषः चौर्यम् तेन रोषिता क्रोधिता। लीलायुक्ताः सविलासाः ये कटाक्षाः तेषाम् मालाः ताः एव शृङ्खलाः ताभिः। नीलम् च तत् उत्पलम् कमलम् च तस्य पलाशानि ('पत्रं पलाशं छदनं दलं पर्णं छदः पुमान्' इति अमरः) तद्वत् श्यामलाभिः ('कालश्यामलमेचकाः' इति अमरः) कृष्णाभिः। अवध्नात् वशीकृतवती। उत्थिता विरता। सिद्धिः सफलता। विलासात् विभ्रमात्। अभिलाषात् प्रेम्णा। अकस्मात् यदृच्छया। असकृत् वारम् वारम्। अनुपलक्षितेन अज्ञातेन। अपाङ्गप्रेक्षितेन कटाक्षेण। आरेचिता वक्रीकृता भ्रूलता यत्र तत् यथा स्यात् तथा। अभिवीक्ष्य दृष्ट्वा। अपदेशेन मिषेण सह तत् यथा स्यात् तथा। आविष्कृता प्रकटिता दशनानाम् दन्तानाम् चन्द्रिका कौमुदी यत्र तत् यथा स्यात् तथा। स्मित्वा विहस्य। अनुयाता अनुगता (सती)। प्रातिष्ठत प्राचलत्।

शूलस्पर्शनम् वेदनाप्राप्तिम्। अपदिशन् ख्यापयन्। विविक्ते एकान्ते। तल्पे शय्यायाम्। मुक्तैः प्रसारितैः। अवयवैः अङ्गैः। अशयिषि शयितः। निष्णातः निपुणः ('निष्णातो निपुणोऽभिज्ञः' इति वैजयन्ती। 'निनदीभ्यां स्नातेः कौशले' इति षत्वम्)। मदनस्य कामस्य तन्त्रे शास्त्रे। अभ्युपेत्य प्राप्य। रहसि एकान्ते। गणिकायाः वेश्यायाः दारिका कन्या। भवतः मनः। अभि-

होकर मुझे अतीव व्यथित किया। तव उसने शहर की चोरी से क्रोधिता नगर-देवी की भाँति नीले कमल के पत्तों की भाँति काली विलास-युक्त कटाक्ष-समूह की जंजीरों से मुझे बाँध दिया। नाच समाप्त कर वह सफलता-प्राप्ति से दमकती हुई—न जाने विलास से कि प्रेम से कि संयोग से ही—वार-वार सखियों को भी अज्ञात कटाक्षों से, विलास से लता-तुल्य भौंहें टेढ़ी करती हुई, देखकर वहाने से दाँतों की चाँदनी जरा-जरा प्रगट करती हुई मुस्कराकर चल दी; लोगों के नेत्रों और मन ने अनुसरण किया।

इस स्थिति में पड़ा मैं अपने घर पहुँचकर कठिनाई से रोकी जाने योग्य उत्कण्ठा से भोजन की इच्छा दूर हटाकर सिर में पीड़ा होने की वात वताकर एकान्त में विस्तर पर अंग ढीले कर लेट गया। काम-शास्त्र में अति-कुशल धनमित्र ने मेरे पास पहुँचकर एकान्त में कहा—'मित्र, वह वेश्या-पुत्री ही सौभाग्यशालिनी है जिसके प्रति आपका मन इस प्रकार आसक्त है। उसके

---

१. पलाशदाम। २. सविभ्रममारे०।

भवन्मनोऽभिनिविशते । तस्याश्च मया सुलक्षिता भाववृत्ति । तामप्यचिरादयुग्मशरः शरशयने शाययिष्यति । स्थानाभिनिवेशिनोश्च वामयत्नसाध्यः समागमः । किं तु सा किल वारकन्यका गणिकास्वधर्मप्रतीपगामिना भद्रोदारेणाशयेन समगिरत—'गुणशुल्काहम् , न धनशुल्का । न च पाणिग्रहणादृतेऽन्यभोग्यं यौवनम्' इति । तच्च मुहुः प्रतिषिध्याकृतार्था तद्भगिनी काममञ्जरी माता च माधवसेना राजानमश्रुकण्ठ्यौ व्यजिज्ञपताम्—देव, युष्मद्दासी रागमञ्जरी रूपानुरूपशीलशिल्पकौशला पूरयिष्यति मनोरथानित्यासीदस्माकमतिमहत्याशा । साद्य मूलच्छिन्ना । यदियमतिक्रम्य स्वकुलधर्ममर्थनिरपेक्षा गुणेभ्य एव स्वं यौवनं

निविशते अभिलषति । सुष्ठु लक्षिता दृष्टा । भावस्य अनुरागस्य वृत्तिः प्रवृत्तिः । अचिरात् शीघ्रम् । अयुग्माः विषमाः (पञ्च) शराः बाणाः यस्य सः अयुग्मशरः (कामः) । शराणाम् बाणानाम् शयने शय्यायाम् । शाययिष्यति स्वापयिष्यति । स्थाने औचित्ये ('युक्ते द्वे साम्प्रतं स्थाने' इति अमरः) अभिनिवेशिनोः अभिलाषयुक्तयोः । वाम् युवयोः (तव च रागमञ्जर्याः च) । न यत्नेन साध्यः सम्भवः । समागमः मिलनम् । वारकन्यका वेश्या । गणिकानाम् वेश्यानाम् स्वधर्मः शुल्कग्रहणरूपः तेन प्रतीपगामिना विरुद्धवर्तिना । भद्रेण कल्याणजनकेन उदारेण श्रेष्ठेन च । आशयेन अभिप्रायेण । समगिरत प्रतिज्ञातवती । गुणः एव शुल्कम् मूल्यम् यस्याः सा । पाणिग्रहणम् विवाहः तस्मात् । ऋते विना । अन्येन (पुरुषेण) भोग्यम् उपभोगयोग्यम् । मुहुः पुनः पुनः । प्रतिषिध्य निषिध्य । अकृतार्था न पूर्णमनोरथा (सती) अश्रुकण्ठ्यौ रुदन्त्यौ । व्यजिज्ञपताम् निवेदितवत्यौ । युष्माकम् (तव) दासी (सेविका)[1] । अनुरूपम् उचितम् । मूलच्छिन्ना समूलम् विनष्टा । अतिक्रम्य उल्लङ्घ्य । निरपेक्षा उपेक्षाशीला । विचि-

प्रेम का झुकाव मैंने भलीभाँति लक्षित किया है। काम उसे भी शीघ्र ही बाण-शय्या पर लिटा देगा। (एक दूसरे के योग्य होने के कारण) आप दोनो की आसक्ति उचित है और मिलन अनायास ही संभव होगा। लेकिन सुना है, उस वेश्या लड़की ने वेश्या की जो अपनी विशेषतायें हैं उनके विरोधी कल्याणकारक और श्रेष्ठ विचार लेकर (प्रगट कर) प्रतिज्ञा की है कि—'मैं गुण की फीस वाली हूँ; धन की फीस वाली नहीं और युवावस्था तथा विवाह के बिना दूसरे के उपभोग योग्य नहीं होती।' उस बात का बार-बार निषेधकर असफल होकर उसकी बहन काममंजरी व माँ माधवसेना ने गले में आँसू भरकर राजा से फरियाद की है—'महाराज, आपकी सेविका रागमंजरी का स्वभाव और शिल्प-कुशलता इसके सौन्दर्य के अनुरूप (योग्य) है; यह हमारे मनोरथ पूरी करेगी, यह हम लोगों की बलवान् आशा थी। वह (आशा) आज इस कारण जड़ से उखड़ गई कि यह अपने कुल-धर्म का उल्लंघन कर धन के प्रति उपेक्षा-

---

[1] इसके पूर्व रागमञ्जरी की बहन काममञ्जरी के लिये "दासी" का प्रयोग उसकी माँ ने किया है; यों नम्रता-वश अपने लिये ही स्त्री "दासी" शब्द का प्रयोग करती है।

विचिक्रीषते । कुलस्त्रीवृत्तमेवाच्युतमनुतिष्ठासतीति । सा चेदियं देवपादाज्ञयापि तावत्प्रकृतिमापद्येत तदा पेशलं भवेत्' इति । राज्ञा च तदनुरोधात्तथानुशिष्टा सत्यप्यनाश्रवैव [१]सा यदासीत्, तदास्याः स्वसा माता च रुदितनिर्बन्धेन राज्ञे समगिरेताम्[२]—'यदि कश्चिद्भुजङ्गोऽस्मदिच्छया विनैनां बालां विप्रलभ्य नाशयिष्यति स तस्करवद्वध्यः' इति । तदेवं स्थिते धनादृते न तत्स्वजनोऽनुमन्यते । न तु धनदायासावभ्युपगच्छतीति विचिन्त्योऽत्राभ्युपायः' इति । अथ मयोक्तम्—'किमत्र चिन्त्यम् । गुणैस्तामावर्ज्य गूढं [३]धनैस्तत्स्वजनं [४]तोषयाव.' इति ।

ततश्च कांचित्काममञ्जर्याः प्रधानदूतीं धर्मरक्षितां नाम शाक्यभिक्षुकीं चीवरपिण्डदानादिनोपसंगृह्य तन्मुखेन तया बन्धक्या पणबन्धमकरवम्—'अजिनर-

---

क्रीषते विक्रेतुम् इच्छति । वृत्तम् वृत्तान्तः । अच्युतम् बद्धमूलम् । देवपादानाम् मान्यमहाराजानाम् । प्रकृतिम् स्वभावम् । आपद्येत प्राप्नुयात् । पेशलम् कुशलम् । अनुशिष्टा आदिष्टा । आश्रृणोति इति आश्रवा आज्ञाकारिणी न आश्रवा अनाश्रवा । स्वसा भगिनी (काममञ्जरी) । रुदितस्य रुदनस्य निर्बन्धः सातत्यम् तेन । समगिरेताम् निवेदितवत्यौ । भुजङ्गः विलासी ('भुजङ्गोऽहिविलासिनोः' इति विश्वः) । अस्माकम् इच्छा अस्मदिच्छा तया । विप्रलभ्य प्रतार्य । तस्करवत् चौरवत् । वध्यः हननीयः (भवता) । ऋते विना । अभ्युपगच्छति स्वीकरोति । अभ्युपायः युक्तिः । आवर्ज्य आकृष्य । गूढम् गुप्तरूपेण ।

शाक्यभिक्षुकीम् बौद्धसंन्यासिनीम् । चीवरपिण्डदानादिना वस्त्रखण्डान्नदानादिना । उपसंगृह्य वशीकृत्य । बन्धक्या वेश्यया (काममञ्जर्या) । पणबन्धम् शुल्कादिदानव्यवस्थाम् ।

शील होकर गुणों के हाथ ही अपना यौवन बेचना चाहती है । यह कुल नारी की परम्परागत चाल ही चलेगी । यदि यह श्रीमान् महाराज के आदेश से भी स्वाभाविक दशा में आ जाय तो कुशल हो ।' इस अनुरोध पर राजा के द्वारा भली-भांति समझाई जाने पर भी जब अनाज्ञाकारिणी ही रही तब इसकी बहन और माँ ने लगातार रुदन करती हुई राजा से निवेदन किया—'अगर कोई विलासी पुरुष हमारी इच्छा के बिना इस तरुणी को धोखा देकर बर्बाद करेगा तो कृपा कर चोर जैसे उसका वध कर दीजियेगा ।' (तो) ऐसी स्थिति होने पर धन के बिना उसके सारे संबंधी (ब्याह की) अनुमति नहीं देंगे । उधर वह (रागमंजरी) धन देने वाले को स्वीकार नहीं करेगी, इसलिये इस विषय में भली-भांति उपाय सोचना है । तब मैं बोला—'इसमें क्या सोचना है ? उस (वेश्या-कन्या) को गुणों से आकृष्ट कर गुप्त रूप से धन से उसके सगों को संतुष्ट करेंगे' ।

इसके बाद काममंजरी की धर्मरक्षिता-नामक एक बौद्ध संन्यासिनी प्रधान दूती को वस्त्र-खण्ड और अन्न-दान आदि से वश में करके उस (काममंजरी) वेश्या से उस (संन्यासिनी) के द्वारा लेन-देन तय किया—'मैं उदारक (धन-मित्र) का

---

१. एवं सति सा. २. समगिरताम् ३. अर्थैः. ४. तोषयिष्यामि.

त्नमुदारकान्मुषित्वा मया तुभ्यं देयम्, यदि प्रतिदानं रागमञ्जरी' इति । सोऽहं [1]संप्रतिपन्नायां च तस्यां तथा तमर्थं संपाद्य मद्गुणोन्मादिताया रागमञ्जर्याः करकिसलयमग्रहीषम् । यस्यां च निशि चर्मरत्नस्तेयवादस्तस्याः प्रारम्भे कार्यान्तरापदेशेनाहूतेषु शृण्वत्स्वेव नागरमुख्येषु मत्प्रणिधिर्विमर्दकोऽर्थपतिगृह्यो नाम भूत्वा धनमित्रमुल्लङ्घ्य बह्वतर्जयत् । उक्तं च धनमित्रेण—'भद्र, कस्तवार्थो यत्परस्य हेतोर्मामाक्रोशसि । न स्मरामि स्वल्पमपि तवापकारं मत्कृतम्' इति । स भूयोऽपि तर्जयन्निवाब्रवीत्—'स एष धनगर्वो नाम यत्परस्य भार्यां शुल्कक्रीतां पुनस्तत्पितरौ द्रव्येण विलोभ्य [2]स्वीचिकीर्षसि । ब्रवीषि च–'कस्तवापकारो मत्कृतः' इति, ननु प्रतीतमेवैतत् 'सार्थवाहस्यार्थपतेर्विमर्दको बहिश्चराः प्राणाः' इति । सोऽहं तत्कृते प्राणानपि परित्यजामि । ब्रह्महत्यामपि न परिहरामि । ममैकरात्रजागरप्रतीकारस्तवैष चर्मरत्नाहंकारदाहज्वरः' इति । तथा ब्रुवाणश्च

अजिनरत्नम् चर्मरत्नम् (भस्त्रिकारूपम्)। मुषित्वा चोरयित्वा । देयम् दास्यते । प्रतिदानम् विनिमयरूपेण दास्यते । संप्रतिपन्नायाम् सम्यक् अङ्गीकुर्वाणायाम् । अर्थम् भस्त्रिकारूपम् । स्तेयवादः चौर्यचर्चा । अन्यत् कार्यम् कार्यान्तरम् तस्य अपदेशेन मिषेण । नागरमुख्येषु नगरवासिषु प्रधानेषु। प्रणिधिः गूढपुरुषः । अर्थपतिगृह्यः अर्थपतिपक्षस्थः। नाम (अलीके)। उल्लङ्घ्य अनादृत्य । अर्थः प्रयोजनम् । आक्रोशसि निन्दसि । परस्य (अर्थपतेः) । शुल्कम् मूल्यम् । स्वीचिकीर्षसि स्वीकर्तुम् इच्छसि । सार्थवाहस्य वणिजः । बहिश्चराः बाह्याः । एकरात्रम् जागरः जागरणम् (चौर्यम्) । प्रतीकारः उपायः । चर्मरत्नम् भस्त्रिका । अमर्षेण क्रोधेन सह । अप-

चर्म-रत्न (भाथी) चुराकर तुम्हें दूँगा अगर प्रतिदान के रूप में रागमंजरी हो (मिले)।' उसके स्वीकार कर लेने पर मैंने उस प्रकार वह प्रयोजन पूर्ण कर अपने गुणों से उन्मत्त की गई रागमंजरी का नवीन पल्लव-तुल्य हाथ ग्रहण किया (ब्याह किया)। जिस रात चर्म-रत्न (भाथी) की चोरी का समाचार फैला उसके आरंभ में दूसरे काम के बहाने बुलाये गये प्रधान नागरिकों के सुनते मेरे जासूस विमर्दक ने अर्थपति के पक्ष का होने का दिखावा कर धनमित्र का अपमान कर उसे बहुत धमकी दी । धनमित्र ने कहा—'भाई, आपका कौन-सा प्रयोजन सिद्ध हो रहा है जो दूसरे के लिये मुझे भला-बुरा कह रहे हैं; आपका रत्ती भर अपकार किया हो, यह याद नहीं है ।' उसने फिर भी धमकी देते हुए-सा कहा—"यही धन का घमण्ड कहलाता है कि दूसरे की पत्नी को और वह भी दान देकर खरीदी गई को उसके माता-पिता को पैसे का लालच देकर स्वीकार करना चाहते हो और (ऊपर से) बोलते हो, 'मैंने तुम्हारा क्या अपकार किया है ।' निश्चय ही यह सर्व-विदित है कि विमर्दक सौदागर अर्थपति का बाह्य प्राण है। मैं उसके लिये प्राण भी तज सकता हूँ । ब्रह्म हत्या भी नहीं छोड़ूँगा । तुम्हारे इस चर्म-रत्न (भाथी) के अहङ्कार के बुखार की दवा बस मेरे एक रात म

---

[1] तथेति प्रतिप०. । [2] स्त्रीं. ।

पौरमुख्यैः सामर्षं [1]निषिध्यापवाहितोऽभूत् । इयं च वार्ता कृत्रिमार्तिना धनमित्रेण चर्मरत्ननाशमादावेवोपक्षिप्य पार्थिवाय निवेदिता । स चार्थपतिमाहूयोपह्वरे पृष्टवान्—'अङ्ग, किमस्ति कश्चिद्विमर्दको नामात्रभवतः' इति । तेन च मूढात्मना 'अस्ति देव, परं मित्रम् । कश्च तेनार्थः' इति कथिते राज्ञोक्तम्—'अपि शक्नोषि तमाह्वातुम् ?' इति । 'बाढमस्मि शक्तः' इति निर्गत्य स्वगृहे वेशवाटे द्यूतसभायामापणे च निपुणमन्विष्यन्नोपलब्धवान् । कथं [2]वोपलभ्येत स वराकः । स खलु विमर्दको मद्ग्राहितत्वदभिज्ञानचिह्नो[3] मन्नियोगात्त्वदन्वेषणायोज्जयिनीं तदहरेव प्रातिष्ठत । अर्थपतिस्तु[4] तमदृष्ट्वा तत्कृतमपराधमात्मसंबद्धं मत्वा मोहाद्भयाद्वा प्रत्याख्याय पुनर्धनमित्रेण [5]विभाविते कुपितेन राज्ञा निगृह्य निगडबन्धनमनीयत ।

वाहितः अपसारितः । वार्ता वृत्तान्तः । कृत्रिमा अनैसर्गिकी आर्तिः पीडा यस्य तेन । उपक्षिप्य प्रस्तावम् कृत्वा । पार्थिवाय नृपाय । उपह्वरे एकान्ते । अङ्ग भोः । अत्रभवतः श्रीमतः । अर्थः प्रयोजनम् । बाढम् (अङ्गीकारे) । वेशस्य वेश्यागृहाणाम् वाटे मार्गे । निपुणम् सावधानतया । मया (अपहारवर्मणा) । ग्राहितम् दत्तम् तव (राजवाहनस्य) अभिज्ञानस्य परिचयस्य चिह्नम् येन । नियोगात् आज्ञया । तदहः तस्मिन् अहनि । प्रातिष्ठत प्रचलितः । मोहात् अज्ञानात् । प्रत्याख्याय अस्वीकृत्य । विभाविते प्रकटीकृते (अपराधे) । निगृह्य बलात् धृत्वा । निगडबन्धनम् शृङ्खलाबन्धनम् ।

का जागरण (जागकर चोरी करना) है ।" इस प्रकार कह रहे उसे प्रधान नागरिकों ने गुस्से के साथ रोककर हटाया । बनावटी पीड़ा लेकर धनमित्र ने चर्म-रत्न (भाथी) के नाश की आशंका को बात पहले ही चलाकर यह समाचार राजा को बताया । उस-(राजा) ने अर्थपति को एकान्त में बुलाकर पूछा—'श्रीमान् जी, आपका कोई आदमी विमर्दक है क्या ?' उस मन्द-बुद्धि के 'है, महाराज, मेरा परम मित्र है । उससे क्या प्रयोजन है ?' कहने पर राजा ने कहा—'उसे बुला सकते हैं ?' 'जी हाँ; बुला सकता हूँ ।' यह कहकर उस (अर्थपति) ने निकलकर अपने घर, वेश्याओं के घरों के रास्ते, जुये के अड्डे और बाजार में (उसे) भली-भाँति ढूँढ़ा पर नहीं पाया । वह बेचारा भला कैसे मिलता ! वह विमर्दक तो उसी दिन मेरी दी हुई निशानी लेकर मेरे कहने से तुम्हारी खोज के लिये उज्जयिनी रवाना हो गया था । उधर अर्थपति उसे न पाकर उसके किये अपराध को अपने से सम्बद्ध (अपना) मानकर अज्ञान या डर से (आरोप का) खण्डन कर पुनः धनमित्र के द्वारा रिपोर्ट की जाने पर गुस्से से राजा के द्वारा जबर्दस्ती पकड़वाया जाकर हथकड़ी-बेड़ी से बाँध दिया गया ।

---

[1] आक्रुश्य । [2] चोपलभेत. । [3] ज्ञानवित्तो । [4] तु भ्रमन् ।
[5] विभावितेन ।

तेष्वेव दिवसेषु विधिना[1] कल्पोक्तेन चर्मरत्नं दोग्धुकामा काममञ्जरी पूर्वदुग्धं क्षपणीभूतं विरूपकं रहस्युपसृत्य ततोऽपहृतं सर्वमर्थजातं तस्मै प्रत्यर्प्य सप्रश्रयं च बह्वनुनीय प्रत्यागमत्। सोऽपि [2]कथंचिन्निर्ग्रन्थिकग्रहान्मोचितात्मा मदनुशिष्टो हृष्टतमः स्वधर्ममेव प्रत्यपद्यत। काममञ्जर्यपि कतिपयैरेवाहोभिरश्मन्तकशेषमजिनरत्नदोहाशया स्वमभ्युदयमकरोत्। अथ मत्प्रयुक्तो धनमित्रः पार्थिवं मिथो व्यज्ञापयत्—‘देव, येयं गणिका काममञ्जरी लोभोत्कर्षाल्लोभमञ्जरीति लोकोपक्रोशपात्रमासीत्, साद्य मुसलोलूखलान्यपि निरपेक्षं त्यजति। तन्मन्ये मच्चर्म[3]रत्नलाभं हेतुम्। तस्य खलु कल्पस्तादृशः वणिग्भ्यो वारमुख्याभ्यश्च दुग्धे नान्येभ्य इति हि तद्गता प्रतीतिः। अतोऽमुष्यामस्ति मे शङ्का’ इति। सा सद्य एव राज्ञा सह जनन्या समाहूयत। व्यथितवर्णेनेव मयोपह्वरे कथितम्—‘नून-

विधिना अनुष्ठानेन। कल्पे विधाने उक्तेन वर्णितेन। दुग्धम् गृहीतसर्वस्वम्। क्षपणीभूतम् क्षपणकवेषधारिणम् (विरूपकम्)। रहसि एकान्ते। उपसृत्य समीपे गत्वा। प्रश्रयेण विनयेन सह। निर्ग्रन्थिकस्य क्षपणकस्य ग्रहात् सिद्धान्तात् (‘निर्ग्रन्थोऽर्हः क्षपणकः श्रमणो जिन इत्यपि’ इति वैजयन्ती)। अनुशिष्टः बोधितः। प्रत्यपद्यत स्वीकृतवान्। अश्मन्तकम् चुल्लिः शेषः यस्मिन् तम् (‘अश्मन्तमुद्धानमधिश्रयणी चुल्लिरन्तिका’ इति अमरः)। प्रयुक्तः उपदिष्टः। मिथः एकान्ते। व्यशापयत् निवेदितवान्। उत्कर्षात् अतिशयात्। उपक्रोशः निन्दा। निरपेक्षम् विचाररहितम् यथा स्यात् तथा। हेतुः प्रमाणम्। कल्पः विधानम्। गता संबद्धा। प्रतीतिः ख्यातिः। व्यथितः आकुलः वर्णः कान्तिः यस्य तेन। इव (अलीके)। उपह्वरे एकान्ते। त्यागात्

उन्हीं दिनों विधान में बताई गई रीति से चर्म-रत्न (भाथी) दुहने (से लाभान्वित होने) की इच्छा से काममंजरी पहले शोषित किये गये जैन-संन्यासी बने विरूपक के पास एकान्त में पहुँचकर उससे लूटी गई सारी सम्पत्तियाँ उसे लौटाकर और विनय के साथ खूब मनाकर लौटी। उसने भी (इस प्रकार) मुश्किल से जैन-संन्यासी के सिद्धान्त से छुड़ाई गई जान लेकर मेरे कहे अनुसार खुशी-खुशी अपना (वैदिक) धर्म ही स्वीकार कर लिया। काम-मंजरी ने भी चर्म-रत्न (भाथी) दुहने की इच्छा से कुछ ही दिनों के अन्दर अपनी वह उन्नति की कि बस चूल्हा बच रहा (शेष सब दान में चला गया)। इसके बाद मेरे द्वारा लगाये गये धनमित्र ने राजा से एकान्त में निवेदन किया—‘महाराज, जो यह वेश्या काममंजरी लालच की अति से लोभ-मंजरी के नाम से समाज की निन्दा-पात्र थी, वह आज लापरवाही से मूसल, और ओखली तक दान कर रही है। वह मेरे चर्म-रत्न (भाथी) के मिलने (उसके पास होने) का प्रमाण है। उसका विधान ही वैसा है। वह बनियों और वेश्याओं को ही फल देती है; दूसरों को नहीं। यही उसके संबंध में प्रसिद्धि है, इसलिये उसपर मुझे शक है। राजा के द्वारा वह (अपनी) माँ के साथ तत्काल बुलाई गई। मैंने चेहरे पर बेचैनी लाकर एकान्त में

---

[1] विधिकल्पेन। [2] निर्ग्रन्थाप्र०; निर्ग्रन्थिकाग्रहात्। [3] लाभहेतुस्तस्याः; ०लाभं हेतुम्; ०लाभहेतु।

मार्ये, [1]सर्वस्वत्यागादतिप्रकाशादाशङ्कनीयचर्मरत्नलाभा । तदनुयोगायाङ्गराजेन समाहूयसे। भूयो भूयश्च निर्बद्ध्या त्वया नियतमस्मि तदागतित्वेनाहमपदेश्यः । ततश्च मे भावी चित्रवधः। मृते च मयि न जीविष्यत्येव ते भगिनी। त्वं च निःस्वीभूता। चर्मरत्नं च धनमित्रमेव प्रतिभजिष्यति। तदियमापत्समन्ततोऽनर्थानुबन्धिनी[2]। तत्किमत्र प्रतिविधेयम् ?' इति। तया तज्जनन्या चाश्रूणि विसृज्योक्तम्—'अस्त्येवैतदस्मद्बालिश्यान्निर्भिन्नप्रायं रहस्यम्। राज्ञश्च निर्बन्धाद् द्विस्त्रिश्चतुर्निह्नुत्यापि[3] नियतमागतिरपदेश्यैव चोरितस्य त्वयि। त्वयि [4]त्वपदिष्टे सर्वमस्मत्कुटुम्बमवसीदेत्। अर्थपतौ च तदपयशो रूढम्। अङ्गपुरप्रसिद्धं च तस्य

दानात्। प्रकाशात् विवृतत्वात्। आशङ्कनीयः चर्मरत्नस्य लाभः यस्याः सा। तस्मिन् (चर्मरत्ने) अनुयोगाय प्रश्नाय। समाहूयसे आहूता असि। निर्बद्ध्या आग्रहेण पृष्ट्या। नियतम् निश्चितम्। तस्य (चर्मरत्नस्य) आगतिः आगमनम् (लाभः) तत्त्वेन। अपदेश्यः कथनीयः। चित्रवधः अद्भुतैः उपायैः हत्या। निःस्वीभूता निर्धनीभूता। प्रतिभजिष्यति पुनः प्राप्स्यति। समन्ततः सर्वतः। अनर्थानुबन्धिनी विपत्परम्पराकारिणी। प्रतिविधेयम्-प्रतिकर्तव्यम्। विसृज्य त्यक्त्वा। बालिशस्य मूर्खस्य भावः बालिश्यम् तस्मात् (मूर्खत्वेन)। निर्भिन्नप्रायम् बाहुल्येन प्रकाशितम्। निर्बन्धात् आग्रहात्। द्विस्त्रिश्चतुः (वारम्)। निह्नुत्य संगोप्य। नियतम् निश्चितम्। आगतिः प्राप्तिः। अपदेश्या कथनीया। चोरितस्य (पदार्थस्य)। त्वयि तव विषये। अपदिष्टे कथिते। अवसीदेत् विनश्येत्। तस्मिन् (चर्मरत्ने) अपयशः अकीर्तिः। रूढम्

कहा—'महोदया, निश्चय ही (आपके) सब कुछ दान करने से बात विलकुल खुल जाने के कारण चर्म-रत्न (भाथी) के आपके पास होने का शक पैदा होने की स्थिति आई और उसके विषय में पूछ-ताछ के लिये आपको अङ्ग-नरेश के द्वारा बुलाया गया है। बार-बार जोर देकर पूछने पर निश्चित ही उस (भाथी) के आने के हेतु के रूप में आप मेरा नाम लेंगी। फिर मेरा वध अद्भुत उपायों से (यातनायें दे-देकर) होगा। मेरे मर जाने पर आपकी बहन जो ही नहीं सकेगो। आप धनी से निर्धन हो गई हैं और चर्म-रत्न (भाथी) धनमित्र के पास ही वापस पहुँच जायेगो। इस तरह यह विपत्ति हर तरफ से उपद्रव की परम्परा रचने वाली है। तो इस विषय में क्या उपाय करना चाहिये।' उस (काममंजरी) की माँ ने आँसू गिराते हुये कहा—"हमारी नादानी से ही यह गुप्त बात अधिकांश में खुल चुकी है। राजा के अड़ जानेपर दो-तीन और (ज्यादा से ज्यादा)- चार बार छिपाकर भी (अंत में) निश्चित रूप से तुम्हारा उल्लेख करते हुये चोरी के माल के आने की बात कहनी पड़ेगी। तुम्हारा नाम लेने पर हमारा सारा परिवार विनष्ट हो जायेगा। उस (चर्म-रत्न) के विषय की अकीति का अर्थपति से सम्बन्ध प्रसिद्ध हो चुका है। उस क्षुद्र की हम लोगों से दोस्ती अङ्गपुर(भर) में प्रसिद्ध है। 'वह (भाथी) उसी ने हमें दी है' यह कहकर अपनी रक्षा करना अच्छा।"

---

१. सर्वस्य। २. ०बन्धिनी महत्यापतिता। ३. द्विस्त्रिचतुरम्। ४. च व्यपदिष्टे।

कीनाशस्यास्माभिः संगतम्। अमुनैव तदस्मभ्यं दत्तमित्यपदिश्य[1] वरमात्मा गोपायितुम्' इति [2]मामभ्युपगमय्य राजकुलमगमताम्। राज्ञानुयुक्ते च 'नैष न्यायो वेशकुलस्य यद्दातुरपदेशः। न ह्यर्थैर्न्यायार्जितैरेव पुरुषा वेशमुपतिष्ठन्ति' इत्यसकृदतिप्रणुद्य[3] कर्णनासाच्छेदोपक्षेपभीषिताभ्यां दग्धबन्धकीभ्यां स एव तपस्वी तस्करत्वेनार्थपतिरग्राह्यत। कुपितेन च राज्ञा तस्य प्राणेषूद्यतो दण्डः। प्राञ्जलिना धनमित्रेणैव प्रत्यषिध्यत—'आर्य, मौर्यदत्त एष वरो वणिजाम्। ईदृशेष्वपराधे[4]ष्वसुभिरवियोगः। यदि कुपितोऽसि हृतसर्वस्वो निर्वासनीयः पाप एषः' इति। तन्मूला च धनमित्रस्य कीर्तिरप्रथत। अप्रीयत च भर्ता। पटच्चरच्छेद-

प्रसिद्धम्। कीनाशस्य क्षुद्रस्य। संगतम् मैत्री। अमुना (अर्थपतिना)। तत् (चर्मरत्नम्)। अपदिश्य कथयित्वा। वरम् इष्टम्। आत्मा स्वम्। गोपायितुम् रक्षितुम्। अभ्युपगमय्य बोधयित्वा। अनुयुक्ते पृष्टे (सति)। न्यायः औचित्यम्। वेशकुलस्य वेश्यानाम्। अपदेशः कथनम्। वेशम् वेश्यागृहम्। उपतिष्ठन्ति उपस्थिताः भवन्ति। असकृत् वारम् वारम्। अतिप्रणुद्य संगोप्य। कर्णयोः नासायाः नासिकायाः च छेदः कर्तनम् तस्य उपक्षेपः प्रस्तावः तेन भीषिताभ्याम् तर्जिताभ्याम्। दग्धे अतिदुष्टे च ते बन्धक्यौ वेश्ये (काममञ्जरी तस्य माता च) ताभ्याम्। तपस्वी दयापात्रम्। तस्करत्वेन चौररूपेण। अग्राह्यत ग्राहितः। उद्यतः प्रस्तुतः (विहितः)। प्राञ्जलिना बद्धाञ्जलिना। प्रत्यषिध्यत निवारितः। आर्य देव। मौर्येण[5] चन्द्रगुप्तमौर्येण दत्तः। असुभिः प्राणैः। पापः पापी। अप्रथत ख्याता अभवत्। अप्रीयत प्रसन्नः अभवत्। भर्ता राजा। पटच्चरच्छेदः जीर्णवस्त्रखण्डः एव शेषः अवशिष्टः यस्य सः। निरवास्यत

यह मुझे समझाकर वे दोनो राज-महल गईं। राजा के पूछने पर 'वेश्या-वर्ग के लिये (उपहार) देने वाले का नाम वता देने का नियम नहीं है। यह जरूरी नहीं है कि पुरुष ईमानदारी से की कमाई लेकर ही वेश्यालय में उपस्थित हों।' यों बार-बार छिपाकर नाक-कान कटने की बात उठाने से डरी हुई दुष्टा वेश्याओं ने उसी वेचारे अर्थपति को चोर कहकर फँसा दिया। राजा ने गुस्सा होकर उसे प्राण-दण्ड दे दिया। (तब) धनमित्र ने ही हाथ जोड़कर रोका—'महोदय, बनियों को यह वरदान मौर्य-द्वारा दिया गया है कि ऐसे अपराधों में प्राण न लिए जायँ। अगर आप गुस्सा हैं तो इस पापी का सर्वस्व छीनकर इसे देश-निकाला दे दें। धनमित्र की उस बात (सिफारिश) से उत्पन्न कीर्ति फैल गई और राजा उस पर

---

१. अपदेश्य। २. मामुपगमय्य। ३. प्ररुद्य। ४. ०धेषु नास्त्यसुभिरभियोगः।

५. मौर्य का अर्थ मौर्यवंश भी हो सकता है। चन्द्रगुप्त मौर्य का समय ईसवी सन् ३१५ है। ऐसा नियम न तो इनका बनाया हुआ सुना जाता है और न इनके समय में लिखे गये ग्रंथ "अर्थशास्त्र" (चाणक्य या कौटिल्य-रचित) में पाया जाता है। एक स्थान में वैश्यों को कुछ रियायत दी गई है पर मृत्यु-दण्ड से नहीं।

शेषोऽर्थपतिरर्थमत्तः सर्वपौरजनसमक्षं निरवास्यत। तस्यैव द्रव्याणां तु केनचिदवयवेन सा वराकी काममञ्जरी चर्मरत्नमृगतृष्णिकापविद्धसर्वस्वा सानुकम्पं [1]धनमित्राभिनोदितेन भूपेनान्वगृह्यत। धनमित्रश्चाहनि गुणिनि कुलपालिकामुपायंस्त। तदेवं सिद्धसंकल्पो रागमञ्जरीगृहं हेमरत्नपूर्णमकरवम्।

अस्मिंश्च पुरे लुब्धसमृद्धवर्गस्तथा मुषितो यथा कपालपाणिः स्वैरेव धनैर्मद्विश्राणितैः समृद्धीकृतस्यार्थिवर्गस्य गृहेषु भिक्षार्थमभ्रमत्। न ह्यलमतिनिपुणोऽपि पुरुषो नियतिलिखितां लेखामतिक्रमितुम्। यतोऽहमेकदा रागमञ्जर्याः प्रणयकोपप्रशमनाय सानुनयं [2]पायितायाः पुनः पुनः प्रणयसमर्पितमुखमधुगण्डूषमास्वादमास्वादं मदेनास्पृश्ये। शीलं हि मदोन्मादयोरमार्गेणाप्युचितक[3]र्मस्वेव

निर्वासितः। अवयवेन अंशेन। वराकी दयापात्रम्। मृगतृष्णिका मरीचिका तया अपविद्धम् हारितम् सर्वस्वम् यया सा। अनुकम्पया कृपया सह तत् यथा स्यात् तथा। अभिनोदितेन प्रेरितेन। अन्वगृह्यत अनुगृहीता। गुणिनि प्रशस्ते। उपायंस्त परिणीतवान्। सिद्धः सफलः संकल्पः मनोरथः यस्य सः। हेम स्वर्णम्।

पुरे नगरे। लुब्धाः च ते समृद्धाः च। कपालम् खर्परम् पाणौ हस्ते यस्य सः। मया विश्राणितैः दत्तैः। अलम् समर्थः। नियत्या भाग्येन। लेखाम् रेखाम्। अतिक्रमितुम् उल्लङ्घयितुम्। पायितायाः कृतसुरापानायाः। मधु मद्यम् तद्गण्डूषम् पीतोज्झितम् ('पीतशेषं तु गण्डूषम्' इति हलायुधः)। आस्वादम् (णमुल्) आस्वाद्य। मदेन मत्ततया। (सुराजन्यया) अस्पृश्ये स्पृष्टः अभवम्। उन्मादः विक्षिप्तता। अमार्गेण विरुद्धमार्गेण। उचितकर्मसु ('अभ्यस्तेऽप्युचिते न्याय्ये' इति

प्रसन्न हो गया। धन से उन्मत्त अर्थपति पर जीर्ण वस्त्र का टुकड़ा-मात्र शेष रखकर उसे सभी नगर-वासियों के सामने निर्वासित कर दिया गया। उसी की धन-दौलत के एक हिस्से से धनमित्र के द्वारा दया-पूर्वक प्रेरित किये गये राजा ने उस बेचारी काममञ्जरी पर अनुग्रह दिखाया जो सर्वस्व चर्म-रत्न (भाथी) की मृगतृष्णा में गवाँ बैठी थी। धनमित्र ने गुण शाली दिवस में कुलपालिका से ब्याह किया। (तो) इस प्रकार सफल-मनोरथ होकर मैंने रागमञ्जरी का घर सोने और रत्नों से भर दिया।

इस नगर में लोभी धनियों के वर्ग की ऐसी चोरी की गई कि वह हाथ में मट्टी का ठीकरा लेकर मेरे द्वारा दान किये गये अपने ही धन से धनी बनाये गये याचक-वर्ग के घरों में भीख के लिये घूमने लगा। (किन्तु) अत्यन्त चतुर व्यक्ति भी विधि की लिखी हुई रेखा का उल्लंघन करने में कदापि समर्थ नहीं होता। (कारण) एक बार मैंने रागमंजरी के प्रणय-क्रोध की शान्ति के लिये अनुनय-विनय-पूर्वक उसे सुरा पिलाई। बार-बार प्रेम में दी (मुख में भरो) गई मुख में भरी मदिरा की कुल्ली का स्वाद ले-लेकर नशे में आ गया। नशे और

---

१. अभिचोदितेन। २. यापितायाः; पाययितायाः। ३. अनुचित; उपचित।

प्रवर्तनम् । यदहमुपोढमदः 'नगरमिदमेकयैव[1] शर्वर्या निर्धनीकृत्य त्वद्भवनं पूरयेयम्' इति प्रव्यथितप्रियतमाप्रणामाञ्जलिशपथशतातिवर्ती मत्तवारण इव रभसच्छिन्नशृङ्खलः कयापि धात्र्या[2] शृगालिकाख्ययानुगम्यमानो नातिपरिकरोऽसिद्वितीयो रंहसा परेणोदचलम् । अभिपततोऽपि नागरिकपुरुषानशङ्कमेव विगृह्य तस्कर इति तैरभिहन्यमानोऽपि नातिकुपितः क्रीडन्निव मदावसन्नहस्तपतितेन निस्त्रिंशेन द्वित्रानेव हत्वावघूर्णमानताम्रदृष्टिरपतम् । अनन्तरमार्तरवान्विसृजन्ती शृगालिका ममाभ्यासम[3]गमत् । अबध्ये चाहमरिभिः । आपदा तु मदापहारिण्या सद्य एव बोधितस्तत्क्षणोपजातया प्रतिभया व्यचीचरम्—'अहो ! ममेयं मोहमूला

वैजयन्ती) अभ्यस्तकार्येषु । प्रवर्तनम् प्रवृत्तिः । उपोढमदः अधिकमदः । शर्वर्या रात्र्या ('अथ शर्वरी । निशा निशीथिनी रात्रिः' इति अमरः) । शतम् अतिक्रम्य वर्तते इति शतातिवर्ती । वारणः गजः । रभसेन वेगेन छिन्ना शृङ्खला येन सः । धात्री उपमाता । नातिपरिकरः स्वल्पपरिवारः । असिद्वितीयः खड्गमात्रसहायः । रंहसा वेगेन । परेण अतिशयितेन । अभिहतः संमुखम् आगच्छतः । नागरिकपुरुषान् रक्षिजनान् । अशङ्कम् निर्भयम् । विगृह्य युद्धम् कृत्वा । अभिहन्यमानः ताड्यमानः । अवसन्नः शिथिलः (निस्त्रिंशेन नृशंसखड्गौ निस्त्रिंशौ इति अमरः) खड्गेन द्विजान् द्वौ वा त्रयः वा इति द्वित्राः तान् । अवघूर्णमाना विह्वला ताम्रा रक्तवर्णा दृष्टिः नेत्रे यस्य सः । आर्त्तरवान् पीडासूचकध्वनीन् । विसृजन्ती मुञ्चन्ती । अभ्यासम् समीपम् । अवध्ये बद्धः अभवम् । मदापहारिण्या मदनाशिन्या । उपजातया उत्पन्नया । प्रतिभया प्रज्ञया ('प्रज्ञा नवनवोन्मेषशालिनो प्रतिभा मता' इति भरतः) । व्यचोचरम् विचारितवान् ।

पागलपन का यह स्वभाव ही है कि गलत रास्ते से ही सही, लगाते हैं ये उसी काम में जिसका अभ्यास हो । फल यह हुआ कि नशे में बुत होकर मैं 'यह शहर एक ही रात के अन्दर-अन्दर धन-रहित बनाकर तुम्हारी कोठी भर सकता हूँ' (यह) कहकर घबराई हुई प्रियतमा के प्रणाम के लिये जोड़े हाथ और कसमें धराने को लात मारकर वेग से जंजीर तोड़ देने वाले मतवाले हाथी की तरह बिना विशेष भृत्य-वर्ग लिये केवल तलवार सहायक बनाकर (साथ लेकर) अत्यन्त वेग से चल पड़ा । शृगालिका नामक एक धाय ने अनुसरण किया । सामने से आ रहे पुलिस वालों से भी बिना हिचक के ही लड़ाई ठानकर चोर मानकर उनसे पीटा जाकर भी विशेष क्रुद्ध नहीं हुआ । नशे से ढीले हाथ में पड़ी हुई तलवार से खेलता हुआ-सा दो-तीन को ही मारकर चक्कर खा रही लाल आँखें लेकर गिर पड़ा । तब आर्तनाद करती हुई शृगालिका मेरे पास पहुँची और दुश्मनों ने मुझे बाँध लिया । नशा उतार देने वाली आफत के द्वारा तत्काल ही जगा दिया गया । उसी क्षण पैदा हुई सूझ से मैंने विचार किया—'अरे ! अज्ञान को जड़ वाली यह महान् विपत्ति मेरे ऊपर आ पड़ी है

---

[1] इदमनयैकया । [2] धूर्तया धात्र्या । [3] अभ्याशम् ।

महत्यापदापतिता। [१]प्रसृततरं च सख्यं मया सह धनमित्रस्य, मत्परिग्रहत्वं च रागमञ्जर्याः। मदेनसा च तौ प्रोर्णुतौ[२] श्वो नियतं निग्रहीष्येते[३]। तदियमिह प्रतिपत्तिर्ययानुष्ठीयमानया मन्नियोगतस्तौ परित्रास्येते। मां च कदाचिदनर्थादितस्तारयिष्यतः'[४] इति कमप्युपायमात्मनैव निर्णीय शृगालिकामगादिषम्––'अपेहि, जरतिके, या तामर्थलुब्धां[५] दग्धगणिकां रागमञ्जरिकामजिनरत्नमत्तेन शत्रुणा मे मित्रच्छद्मना धनमित्रेण संगमितवती, सा हतासि। तस्य पापस्य चर्मरत्नमोषाद्दुहितुश्च ते साराभरणापहारादहमद्य निःशल्यमुत्सृजेयं जीवितम्' इति। सा पुनरुद्घटितज्ञा[६] परमधूर्ता साश्रुगद्गदमुदञ्जलिस्तान्पुरुषान्सप्रणाममासादितवती सामपूर्वं मम पुरस्तादयाचत––'भद्रकाः, [७]प्रतीक्षध्व कंचित्कालं यावदस्मादस्म-

मोहमूला अज्ञानहेतुः। प्रसृततरम् प्रसिद्धतरम्। मत्परिग्रहत्वम् ('परिग्रहस्तु स्वीकारे शापे पत्न्यां परिच्छदे' इति महीपः) मम भार्यात्वम्। मम एनसा ('कलुषं वृजिनैनोऽघम्' इति अमरः) अपराधेन। प्रोर्णुतौ आच्छादितौ। निग्रहीष्येते दण्डितौ भविष्यतः। प्रतिपत्तिः कर्तव्यम्। अनुष्ठीयमानया क्रियमाणया। मम नियोगतः आदेशेन। परित्रास्येते परिरक्षितो भविष्यतः। इतः अस्मात्। तारयिष्यतः उद्धरिष्यतः। आत्मना स्वयम्। अगादिषम् अवदम्। अपेहि गच्छ। (हे) जरतिके वृद्धे। अजिनरत्नम् चर्मरत्नम् (भस्त्रिका)। मित्रच्छद्मना कपटमित्रेण। संगमितवती संयोजितवती। पापस्य पापिनः (धनमित्रस्य)। चर्मरत्नस्य भस्त्रिकायाः मोषात् चौर्यात्। सारः धनम् आभरणम् अलङ्कारः तयोः अपहारात् चौर्यात्। निःशल्यम् निर्बाधम्। उत्सृजेयम् त्यजेयम्। जीवितम् जीवनम्। उद्घटितज्ञा सूचितज्ञा ('सूचनमुद्घटनं बोधिः' इति अजयः)। उदञ्जलिः बद्धाञ्जलिः। आसादितवती प्राप्तवती। सामपूर्वम् सविनयम्। पुरस्तात् पुरतः। अयाचत प्रार्थितवती। (हे) भद्रकाः सौम्याः। अस्मात् (चौरात्)। अस्म-

और मेरे साथ धनमित्र की मित्रता और रागमंजरी का मेरी पत्नी होना विशेष प्रसिद्ध हो चुका है। वे दोनों मेरे अपराध से फँसकर कल निश्चित ही दण्डित किये जायेंगे। तो इस विषय में यह करणीय है जिसे मेरे निर्देश से करने से, वे दोनो बच जायेंगे और शायद मुझे (भी) इस अनर्थ से बचा सकेंगे।' यों एक उपाय स्वयं ही निश्चित कर मैं शृगालिका से बोला—'हट बुढ़िया, तू बहुत गई बीती है। तूने उस धन-लोभी नीच वेश्या रागमंजरी का सम्बन्ध चर्म रत्न (भाथी) से घमंड में भरे मित्र के भेष में मेरे शत्रु धनमित्र से कराया है। आज उस पापी की भाथी की चोरी और तेरी बेटी के धन और गहने का अपहरण कर चुभा तीर निकालकर प्राण छोड़ रहा हूँ।' उधर वह इशारा समझने वाली महाधूर्ता आँसू से अटकते स्वर में हाथ जोड़कर प्रणाम करती हुई उन लोगों के पास पहुँची और मेरे सामने (ही) विनय के साथ प्रार्थना करने लगी—"सौम्य सज्जनो, कुछ समय रुकें जिस अवधि में

---

[१] प्रथिततरं। [२] संप्रोर्णुतौ। [३] निग्राहयिष्येते। [४] ०ष्यति। [५] त्वम्। [६] ०ज्ञाना। [७] प्रतीक्ष्यताम्।

दीयं सर्वं मुषितमर्थजातमवगच्छेयम्' इति । तथेति तैः प्रतिपन्ने पुनर्मत्समीपमासाद्य 'सौम्य, क्षमस्वास्य दासीजनस्यैकमपराधम् । अस्तु स कामं त्वत्कलत्राभिमर्शी वैरास्पदं धनमित्रः स्मरंस्तु चिरकृतां ते परिचर्यामनुग्रहीतुमर्हसि दासीं रागमञ्जरीम् । आकल्पसारो हि [1]रूपाजीवाजनः । तद्ब्रूहि क्व निहितमस्या भूषणम्' इति पादयोरपतत् । ततो दयमान इवाहमब्रवम्—'भवतु, मृत्युहस्तवर्तिनः किं [2]ममामुष्या वैरानुबन्धेन' इति तद्ब्रुवन्निव कर्ण एवैनामशिक्षयम्—'एवमेवं प्रतिपत्तव्यम्' इति । सा तु प्रतिपन्नार्थेव जीव चिरम्, प्रसीदन्तु ते देवताः, देवोऽप्यङ्गराजः पौरुषप्रीतो मोचयतु त्वाम्, एतेऽपि भद्रमुखास्तव दयन्ताम्, इति क्षणादपासरत् । आनीये [3]चाहमारक्षिकनायकस्य शासनाच्चारकम् ।

दीयम् अस्माकम् । मुषितम् चोरितम् । अर्थजातम् धनसमूहम् । अवगच्छेयम् जानीयाम् । तथा (अस्तु) । प्रतिपन्ने स्वीकृते । दासीजनस्य (मम) । कामम् यथेष्टम् । कलत्रम् अभिमृष्टवान् (धर्षितवान्) इति कलत्राभिमर्शी । वैरास्पदम् शत्रुताभाजनम् । परिचर्याम् सेवाम् । आकल्पः भूषणम् सारः प्रधानः यस्य सः । रूपम् सौन्दर्यम् आजीवः जीविका यस्याः सा रूपाजीवा (वेश्या) । अनुबन्धेन सम्बन्धेन । प्रतिपत्तव्यम् कर्त्तव्यम् । प्रतिपन्नः प्राप्तः अर्थः यया सा । आनीये आनीतः । आरक्षिकाणाम् रक्षणकारकाणाम् नायकस्य नेतुः । शासनात् आदेशात् । चारकम् बन्धनालयम् ।

जो हमारा धन चोरी हुआ है वह सब इससे जान सकूँ ।" "ठीक है" (यह) कहकर उनके द्वारा स्वीकृति दी जाने पर वह फिर से मेरे पास पहुँचकर—'सौम्य, इस सेविका का एक अपराध क्षमा करें । भले ही वह धनमित्र तुम्हारी स्त्री के साथ मुँह काला करने वाला होने से पर्याप्त शत्रुता-पात्र हो परन्तु चिरकाल तक की गई अपनी सेवा का स्मरण करते हुये आपको (अपनी) दासी रागमंजरीपर अनुग्रह करना चाहिये । निश्चय ही रूपाजीवाओं (सुन्दरता जिनकी जीविका है अर्थात् वेश्याओं) की प्रधान वस्तु आभूषण है, इसलिये बतायें कि उसके आभूषण आपने कहाँ रखे हैं' (यह) कहकर पैरों पर गिर पड़ी । तब मैंने दया का नाटक करते हुये कहा—'ठीक है; मौत के हाथ पड़े हुये मुझे उसके साथ वैर बाँधने से क्या लाभ !' यह बात बताने का ढोंग रचते हुये कान में ही उससे कहते हुये यों सिखाया—'ऐसा-ऐसा करना है । वह उद्देश्य प्राप्त करने वाली-सी बनकर 'बहुत जिओ । देवता तुम पर प्रसन्न हों । महाराज अङ्गराज भी तुम्हारी जवाँमर्दी से खुश होकर तुम्हें छुड़वा दें और ये कल्याण-दर्शन (पुलिस वाले) भी तुमपर दया करें' (वह) कहती हुई क्षण भर में हट गई और मैं पुलिस वालों के प्रधान अधिकारी के आदेश से जेल पहुँचाया गया ।

---

[1] ०जीवी; ०जीवः । [2] अमुष्यां । [3] आरक्षक ।

अथोत्तरेद्युरागत्य दृप्ततरः सुभगमानी सुन्दरंमन्यः पितुरत्ययादचिराधिष्ठिताधिकारस्तारुण्यमदादनतिपक्वः कान्तको नाम [1]नागरिकः किंचिदिव भर्त्सयित्वा मां समभ्यधत्त—'न चेद्धनमित्रस्याजिनरत्नं प्रतिप्रयच्छसि, न चेद्वा नागरिकेभ्यश्चोरितकानि प्रत्यर्पयसि, द्रक्ष्यसि पारमष्टादशानां कारणानामन्ते च मृत्युमुखम्' इति । मया तु स्मयमानेनाभिहितम्—'सौम्य, यद्यपि दद्यामाजन्मनो मुषितं धनं न त्वर्थपतिदारापहारिणः शत्रोर्मे मित्रमुखस्य धनमित्रस्य चर्मरत्नप्रत्याशां पूरयेयम् । अदत्त्वैव तदयुतमपि यातनानामनुभवेयम् । इयं मे साधीयसी संधा' इति । तेनैव क्रमेण वर्तमाने सान्त्वनतर्जनप्राये प्रतिदिनमनुयोगव्यतिकरेऽनुगु-

उत्तरेद्युः परस्मिन् दिने । दृप्ततरः विशेषेण गर्वितः । सुभगमानी सुभगम् आत्मानम् मन्यमानः ('सर्वोन्नतत्वं सौभाग्यं तद्वान् सुभग उच्यते' इति दिवाकरः) । सुन्दरंमन्यः सुन्दरताभिमानी । अत्ययात् मरणात् । अचिरात् अल्पकालात् अधिष्ठितः प्राप्तः अधिकारः येन सः । अनतिपक्वः नात्यनुभवी । नागरिकः कारापतिः ('कारापतिः नागरिकः' इति वैजयन्ती) । समभ्यधत्त अवदत् । प्रतिप्रयच्छसि प्रत्यर्पयसि । नागरिकेभ्यः नगरनिवासिभ्यः । चोरितकानि चोरितानि धनानि । कारणानाम् यातनानाम् ('कारणा तु यातना तीव्रवेदना' इति अमरः) । स्मयमानेन स्मितमुखेन । अभिहितम् कथितम् । आ आरभ्य । मुषितम् चोरितम् । दारापहारिणः पत्नीचौरस्य । मित्रमुखस्य कपटमित्रस्य ('मुखं तु वदने मुख्ये ताम्रे छद्मनि वा पुमान्' इति भागुरिः) । प्रत्याशाम् पुनः प्राप्तीच्छाम् । अयुतम् दश सहस्राणि । यातनानाम् तीव्रवेदनानाम् । साधीयसी दृढतरा । संधा प्रतिज्ञा ('संधा स्थितौ प्रतिज्ञायाम्' इति विश्वः) । वर्तमाने प्रचलति (सति) । सान्त्वनम् मधुरम् वचनम् तर्जनम् भर्त्सनम् तत्प्राये तद्बहुले । अनुयोगानाम् प्रश्नानाम् व्यतिकरे प्रकारे ('संपर्के च व्यतिकरः प्रकारेऽपि' इति अजयः) । अनुगुणम्

फिर दूसरे दिन बहुत घमण्डी, अपने को ऐश्वर्यशाली और खूबसूरत लगाने वाला, पिता की मृत्यु से हाल में ही पद पर नियुक्त, जवानी के घमंड से विशेष दक्षता-रहित कान्तक-नामक जेलर ने कुछ डाँटकर मुझसे कहा—'यदि धनमित्र का चर्मरत्न (भाथी) वापस नहीं करोगे और यदि चोरी का माल नगर-वासियों को नहीं लौटाओगे तो अट्ठारह यातनाओं का पूरा अनुभव करोगे और अन्त में मौत का मुँह देखोगे।' पर मैंने मुस्कराते हुये कहा—'सौम्य, मैं भले ही जन्मभर चुराया धन दे दूँ परन्तु अर्थपति की पत्नी को हथिया लेने वाले मित्र के भेष में अपने शत्रु धनमित्र की चर्मरत्न (भाथी) की पुनः प्राप्ति की इच्छा पूर्ण नहीं करने का। उसे बिना दिये ही दस हजार यातनायें सहूँगा। यह मेरी दृढ़तर प्रतिज्ञा है।' उसी प्रकार के क्रम के चलते रहनेपर रोज-रोज फुसलाने और धमकाने से भरे प्रश्नों के प्रकार के चलते मन-माफिक खाना पीना प्राप्त होने से इने-गिने दिनों के अन्दर-अन्दर स्वस्थ हो

---

[1] कारापतिः ।

ण न्नपानलाभात्कतिपयैरेवाहोभिर्विरोपितव्रणः प्रकृतिस्थोऽहमासम् ।

अथ कदाचिदच्युताम्बरपीतातपत्विषि क्षयिणि वासरे हृष्टवर्णा शृगालिकोज्ज्वलेन वेषेणोपसृत्य दूरस्थानुचरा मामुपश्लिष्याब्रवीत्—'आर्य, दिष्ट्या वर्धसे । फलिता तव सुनीतिः । यथा त्वयादिश्ये तथा धनमित्रमेत्याब्रवम्--'आर्य, तवैवमापन्नः [1]सुहृदित्युवाच--'अहमद्य वेशसंसर्गसुलभात्पानदोषाद्बद्धः । त्वया पुनरविशङ्कमद्यैव राजा विज्ञापनीयः--'देव, देवप्रसादादेव पुरापि तदजिनरत्नमर्थपतिमुषितमासादितम् । अथ तु भर्ता रागमञ्जर्याः कश्चिदक्षधूर्तः कलासु कवित्वेषु लोकवार्तासु चातिवैचक्षण्यान्मया समसृज्यत । तत्संबन्धाच्च वस्त्रा-

अनुकूलम् अहोभिः दिवसैः । विरोपितानि आरूढानि व्रणानि (नागरिकप्रहारजनितानि) क्षतानि यस्य सः । प्रकृतिस्थः स्वस्थः । आसम् जातः ।

अच्युतस्य विष्णोः यत् अम्बरम् वस्त्रम् तद्वत् पीता आतपस्य सूर्यप्रकाशस्य त्विट् कान्तिः यस्मिन् । क्षयिणि क्षीणे (सति) । हृष्टः प्रफुल्लः वर्णः कान्तिः यस्याः सा । उज्ज्वलेन दीप्तेन । उपसृत्य आगत्य । दूरस्थाः अनुचराः सेवकाः यस्याः सा (कारागारे सर्वेषाम् प्रवेशनिषेधात् वा गोपनीयकथाप्रसङ्गात् वा) । उपश्लिष्य समीपम् प्राप्य । फलिता सफला । शोभना च सा नीतिः च सुनीतिः । आदिश्ये आदिष्टा अभवम् । आपन्नः आपत्तिम् प्राप्तः ('आपन्न आपत्प्राप्तः स्यात्' इति अमरः) । सुहृत् सखा । वेशः गणिकाकुलम् तस्य संसर्गः संपर्कः तेन सुलभात् सहजप्राप्यात् । पानम् मद्यपानम् तत् एव दोषः तस्मात् । बद्धः धृतः (नागरिकैः) । अविशङ्कम् भयम् त्यक्त्वा । विज्ञापनीयः निवेदनीयः । देवस्य महाराजस्य प्रसादात् कृपया । पुरा पूर्वम् । मुषितम् चोरितम् । आसादितम् प्राप्तम् । अक्षधूर्तः द्यूतनिपुणः । कलासु (नृत्यगीतादिषु) । लोकवार्तासु लोकव्यवहारेषु । वैचक्षण्यात् निपुणतया । समसृज्यत सङ्गतः अभवत् । अन्तर्वर्त्ते

गया; घाव भर गये ।

तदनन्तर कभी दिन के विष्णु-वस्त्र के समान पीली धूप की कान्ति वाला होकर क्षीण होनेपर प्रसन्न आकृति लेकर श्रृगालिका सजी-धजी वेष भूषा में आकर सेवकों को दूर रखकर मेरे निकट पहुँचकर बोली—"श्रीमान्, बधाई है । आपकी सुन्दर नीति सफल हो गई । जैसा आपका आदेश था, उसके अनुसार धनमित्र के पास पहुँचकर मैंने कहा—'महोदय, इस प्रकार विपत्ति में पड़े हुये आपके मित्र ने यह कहा है—'मैं आज वेश्या-कुल के सम्पर्क से सुलभ पीने की बुराई से गिरफ्तार हो गया हूँ और तुम्हें बेधड़क होकर आज ही राजा से फरियाद करनी चाहिये—'महाराज, महाराज की कृपा से ही पहले भी वह अजिन-रत्न (भार्या) मुझे मिल गया था जब अर्थपति के द्वारा चुराया गया था । उसके बाद रागमंजरी के पति किसी चालबाज जुआड़ी से कलाओं, कविताओं और लोक-व्यवहारों में (इसके) अत्यन्त कुशल होने से मेरा मेल-जोल हुआ । उस सम्बन्ध से कपड़े और गहने भेजने आदि के द्वारा उसकी

---

[1] सुहृदमुना चैवमादिष्टोऽसि ।

भरणप्रेषणादिना तद्भार्यां प्रतिदिनमन्ववर्ते। तदसावशङ्किष्ट [१]निकृष्टाशयः कितवः। तेन च कुपितेन हृतं तच्चर्मरत्नमावरणसमुद्गकश्च तस्याः। स तु भूयः स्तेयाय भ्रमन्नगृह्यत नागरिकपुरुषैः। आपन्नेन चामुनानुसृत्य रुदत्यै [२]रागमञ्जरीपरिचारिकायै पूर्वप्रणयानुवर्तिना तद्भाण्डनिधानोद्देशः कथितः। ममापि चर्मरत्नमुपायोपक्रान्तो यदि प्रयच्छेदिह देवपादैः प्रसादः कार्यः' इति। तथा 'निवेदितश्च नरपतिरसुभिर्मामवियोज्योपच्छन्दनैरेव स्वं ते दापयितुं प्रयतिष्यते। तन्नः पथ्यम्' इति। श्रुत्वैव च त्वदनुभावप्रत्ययादनतित्रस्नुना तेन तत्तथैव संपादितम्। अथाहं [३]त्वदभिज्ञानप्रत्यायितायाः रागमञ्जर्याः सकाशाद्यथेप्सितानि [४]वस्तूनि लभ-

स्वजनवत् सादरम् आचरामि। अशङ्किष्ट जारत्वेन संदिग्धवान्। निकृष्टः नीचतमः आशयः अन्तःकरणम् यस्य सः। कितवः धूर्तः। समुद्गकः मञ्जूषा। स्तेयाय चौर्याय। अगृह्यत गृहीतः। नागरिकपुरुषैः रक्षिभिः आपन्नेन विपत्तिग्रस्तेन। अनुसृत्य अनुगम्य। परिचारिकायै सेविकायै। पूर्वप्रणयानुवर्तिना पूर्वम् प्रेम अनुस्मृत्य। तस्याः यत् भाण्डम् भूषणम् ('भाण्डं भूषणमात्रेऽपि भाण्डं मूलवणिग्धने' इति विश्वः)। तस्य यत् निधानम् स्थापनम् तस्य उद्देशः स्थानम्। उपक्रान्तः वशीकृतः ('उपक्रमो वशीकारे समारम्भे चिकित्सने' इति वैजयन्ती)। प्रयच्छेत् दद्यात्। इह अस्मिन् विषये। देवपादैः पूज्यैः देवैः (राज्ञा)। प्रसादः कृपा। कार्यः करणीयः। असुभिः प्राणैः। उपच्छन्दनैः सान्त्वनैः ('सान्त्वनोपच्छन्दने च समावनुनये' इति केशवः)। स्वम् धनम् (चर्मरत्नम्)। ते तुभ्यम् (धनमित्राय)। नः अस्माकम् पथ्यम् हितकरम्। तव अनुभावस्य प्रभावस्य प्रत्ययात् ज्ञानात्। अनतित्रस्नुना अतिशयितत्रासरहितेन। तत्र अभिज्ञानेन विश्वासोत्पादकेन चिह्नेन प्रत्यायितायाः विश्वासितायाः। यथेप्सितानि यथेच्छितानि। त्वया

पत्नी के प्रति मैं रोज आत्मीयता का व्यवहार करता हूँ। उस नीचतम हृदय वाले धूर्त ने उस (व्यवहार) शङ्का की दृष्टि से देखा और उसके कारण गुस्सा होकर वह (मेरा) चर्म-रत्न (भाथी) और उस (रागमंजरी) की गहनों की पिटारी चुरा ली। पुनः चोरी के लिये घूमता हुआ वह पुलिस के आदमियों के द्वारा गिरफ्तार कर लिया गया है। आफत में पड़कर उसने रागमंजरी की अनुसरण कर रोती हुई सेविका से पहले के प्यार का लिहाज कर उस गहने के रखने का स्थान बता दिया है। यदि उपाय से वस में होकर वह मेरा चर्म-रत्न (भाथी) भी दे सके तो इस विषय में पूज्य महाराज कृपा करें।' उस प्रकार फरियाद सुनकर राजा मुझे प्राणों से अलग न कर आश्वासनों से ही तुम्हें माल दिलाने का प्रयत्न करेंगे। वह हमारे लिये हितकर होगा।' यह सुनते ही उन (धनमित्र) ने आपके प्रभाव का ज्ञान होने से वह उसी प्रकार बिना विशेष भयभीत हुये पूरा कर दिया। इसके बाद आपकी दी हुई पहचान से विश्वास दिलाई हुई रागमंजरी के पास से मनचाही चीजें पाती हुई मैंने राजकुमारी

---

१. निकृष्टाशयतया। २. परिचारिकायै शृगालिकायै। ३. त्वदनुभाव। ४. वसूनि।

माना राजदुहितुरम्बालिकाया धात्रीं माङ्गलिकां त्वदादिष्टेन मार्गेणान्वरञ्जयम् । तामेव च संक्रमीकृत्य रागमञ्जर्याश्चाम्बालिकायाः सख्यं परमवीवृधम् । अहरहश्च नवनवानि प्राभृतान्युपहरन्ती कथाश्चित्राश्चित्तहारिणीः कथयन्ती तस्याः परं प्रसादपात्रमासम् । एकदा च [1]हर्म्यगतायास्तस्याः स्थानस्थितमपि कर्णकुवलयं स्रस्तमिति समादधती प्रमत्तेव प्रच्याव्य पुनरुत्क्षिप्य भूमेस्तेनोपकन्यापुरं कारणेन केनापि भवनाङ्गणं प्रविष्टस्य कान्तकस्योपरि [2]प्रवृत्तकुहरपारावतत्रासनापदेशात्प्रहसन्ती प्राहार्षम् । सोऽपि तेन [3]धन्यंमन्यः किंचिदुन्मुखः स्मयमानो मत्कर्मप्रहासिताया राजदुहितुर्विलासप्रायमाकारमात्माभिलाषमूलमिव यथा [4]संकल्पये-

---

आदिष्टेन प्रदर्शितेन । मार्गेण उपायेन । अन्वरञ्जयम् अनुरञ्जितवती । सङ्क्रमीकृत्य उपायीकृत्य ('प्रत्युपाये संक्रमे च निःश्रेण्यां संक्रमो मतः' इति उत्पलिनी)। सख्यम् मैत्रीम् । परम् बहु । अवीवृधम् वर्धितवती । अहरहः दिने दिने । प्राभृतानि उपहारान् ('प्राभृतं तु प्रदेशनम् । उपायनमुपग्राह्यम्' इति अमरः) । उपहरन्ती ददती । चित्राः अद्भुताः । परम् बहु । प्रसादपात्रम् कृपाभाजनम् । आसम् अभवम् । हर्म्यगतायाः प्रासादस्थितायाः । कुवलयम् कमलम् । स्रस्तम् पतितम् । समादधती सज्जयन्ती । प्रमत्ता असावधाना । प्रच्याव्य पातयित्वा । उत्क्षिप्य उत्थाप्य । तेन (कर्णकुवलयेन) । उपकन्यापुरम् कन्यान्तःपुरसमीपे । कान्तकस्य (कारापतेः) । प्रवृत्तम् आरब्धम् सुरतम् येन तस्य पारावतस्य कपोतस्य त्रासनस्य भयोत्पादनस्य अपदेशात् मिषात् ('कुहरं सुषिरे दम्भे नागलोके रतेऽपि च' इति अजयः) । प्रहसन्ती उच्चैः हसन्ती । प्राहार्षम् प्रहारम् कृतवती । सः कान्तकः । तेन (कर्णकुवलयप्रहारेण) । उन्मुखः ऊर्ध्वमुखः । स्मयमानः ईषत् हसन् । प्रहासितायाः प्रहासम् अट्टहासम् प्रापितायाः । राजदुहितुः राजकुमार्याः (अम्बालिकायाः) । विलासप्रायम् कटाक्षादिबहुलम् । आत्मनि स्वस्मिन् यः अभिलाषः अनुरागः सः एव मूलम् यस्य तम् (आकारम्) । संकल्पयेत् विचारयेत् ।

अम्बालिका की धाय माङ्गलिका को आपके दिखाये रास्ते से प्रसन्न किया । उसी को उपाय (माध्यम) बनाकर रागमंजरी और अम्बालिका की दोस्ती खूब बढ़ा दी । प्रतिदिन नये-नये उपहार देती हुई तथा अद्भुत और दिल को चुराने वाली बातें कहती हुई उस (राजकुमारी) की परम कृपा-पात्र बन गई । एक बार जब वह महल में थी उसका कर्णफूल ठीक जगह होने पर भी, "खिसक गया है" (यह) कहकर ठीक करती हुई असावधान होने का अभिनय करती हुई गिराकर फिर जमीन से उठाकर हँसती हुई मैंने किसी कारण कन्या-अन्तःपुर के समीप महल के आँगन में दाखिल हुये कान्तक के ऊपर जोड़ा खाना शुरू कर रहे कबूतर को डराने के बहाने उस (कर्णफूल) से प्रहार किया और उस (प्रहार) से अपने को धन्य मानता हुआ कुछ मुँह उठाकर मुस्कराता हुआ वह मेरे कार्य से हँसाई गई राजकुमारी के विलास की बहुलता वाली आकृति को (उसके) हार्दिक अनुराग-मूलक सी मान ले, इस

---

१. हर्म्याङ्गणगतायाः । २. प्रसक्तकुहर । ३. ०मन्यः पुरा । ४. संकल्पयेत ।

त्तथा मयापि संज्ञयैव किमपि चतुरमाचेष्टितम् । आकृष्टधन्वना च मनसिजेन सिद्धः सन्दिग्धफलेन पत्रिणातिमुग्धः कथंकथमप्यपासरत् । सायं च राजकन्याङ्गुलीयकमुद्रितां वासताम्बूलपट्टांशुकयुगलभूषणावयवगर्भां च [1]वङ्गेरिकां कयाचिद्वालिकया ग्राहयित्वा रागमञ्जर्या इति नीत्वा कान्तकस्यागारमगाम् । अगाधे च रागसागरे मग्नो नावमिव मामुपलभ्य परमहृष्यत् । अवस्थान्तराणि च राजदुहितुः सुदारुणानि व्यावर्णयन्त्या मया स दुर्मतिः सुदूरमुदमाद्यत । तत्प्रार्थिता चाहं त्वत्प्रियाप्रहितमिति ममैव मुखतांबूलोच्छिष्टानुलेपनं निर्माल्य मलिनां-

संज्ञया सङ्केतेन । चतुरम् (कर्म) चातुर्यम् । आचेष्टितम् कृतम् । आकृष्टधन्वना सज्जीकृतचापेन । मनसिजेन कामेन । विद्धः भिन्नः । दिग्धम् विषलिप्तम् (दिग्धलिप्तौ विषाक्ते च इति वैजयन्ती) फलम् शल्यम् (वाणाग्रम्) यस्य तेन । पत्रिणा बाणेन । अतिमुग्धः जडीकृतः । कथंकथमपि कष्टेन । अपासरत् अगच्छत् । अङ्गुलीयकम् मुद्रिका तेन मुद्रिताम् कृतमुद्राम् । वासः सुगन्धः च ताम्बूलम् च । कर्पूरादिभिः सुगन्धीकृतम् ताम्बूलम् वा ('घनसारादिभिर्यत्तु वासितं वासमुच्यते' इति वैजयन्ती)। पट्टांशुकयुगलम् क्षौमद्वयम् भूषणावयवाः अलङ्कारभेदाः गर्भे अभ्यन्तरे यस्याः ताम् । वङ्गेरिकाम् वेत्रमञ्जूषाम् ('वङ्गेरी वेत्रपुटिका' इति वैजयन्ती)। रागमञ्जर्याः इति मन्जुषा एषा रागमञ्जर्यर्थम् नीयते इति कपटेन उक्त्वा । अगारम् गृहम् । अगाम् अगच्छम् । अगाधे गभीरे । रागस्य अनुरागस्य । नावम् नौकाम् । उपलभ्य प्राप्य । परम् अतितराम् । अहृष्यत् प्रासीदत् । अवस्थान्तराणि कामदशाभेदान् ('नयनप्रीतिः प्रथमं चित्तासङ्गस्ततोऽर्थसंकल्पः । निद्राच्छेदस्तनुता विषयनिवृत्तिस्त्रपानाशः । उन्मादो मूर्च्छा मृतिरित्येताः स्मरदशा दशैव स्युः ।' इति रतिरहस्यम्)। सुदारुणानि सोढुम् अशक्यानि व्यावर्णयन्त्या कीर्तयन्त्या । दुर्मतिः (कान्तकः)। सुदूरम् बहु । उदमाद्यत उन्मत्तीकृतः । तेन (कान्तकेन) प्रार्थिता निवेदिता (मुखताम्बूलादिकृते)। प्रहितम् प्रेषितम् । मुखताम्बूलम् मुखचवितत्यत्तम् ताम्बूलम् । उच्छिष्टम् भुक्तशेषम् अनुलेपनम् अङ्गरागम् । निर्माल्यम् भुक्तावशिष्टम्

उद्देश्य से मैंने भी इशारे से ही कुछ चतुराई की। साथ ही साथ खिंचा धनुष लिये हुये कामदेव के द्वारा जहर-बुझी नोक के बाण से बींधा गया वह मन्द-बुद्धि बड़ी मुश्किल से हटा। फिर शाम को मैं राजकुमारी की अँगूठी की मुहर लगी सुगन्धित (या सुगन्ध), पान, रेशमी वस्त्रों की जोड़ी और भाँति-भाँति के गहनों से भरी बेत की सन्दूकची किसी लड़की को पकड़ाकर 'रागमंजरी के लिये ले जा रही हूँ' बताकर कान्तक के घर ले गई। वह (कान्तक) गहरे प्रेम-समुद्र में डूबा था; नाव सी मुझे पाकर बहुत मगन हुआ। मैंने राजकुमारी की भाँति-भाँति की असह्य काम-पीड़ा को दशायें बताती हुई उस दुर्बुद्धि को खूब उन्मत्त बना दिया। उसके (मुख-ताम्बूल आदि की) प्रार्थना करने पर 'यह तुम्हारी प्रिया का भेजा हुआ है' बताकर अपने ही मुँह का (चबाया) पान, (अपने ही शरीर से निकाला हुआ) उपभुक्त लेपन, उतारे हुये फूल और (पहनकर) गन्दा किया हुआ कपड़ा दूसरे दिन पहुँचाया और

---

[1] वङ्गेलिकां; चङ्कोलिकां; पेटिकाम् ।

शुकं चान्येद्युरुपाहरम् । तदीयानि च राजकन्यार्थमित्युपादाय च्छन्नमेवापोढानि[1] ।

इत्थं च संधुक्षितमन्मथाग्निः स एवैकान्ते मयोपमन्त्रितोऽभूत्—'आर्य, लक्षणान्येव तवाविसंवादीनि । तथा हि मत्प्रातिवेश्यः कश्चित्कार्तान्तिकः 'कान्तकस्य हस्ते राज्यमिदं पतिष्यति, तादृशानि तस्य लक्षणानि' इत्यादिक्षत् । तदनुरूपमेव च स्वामियं राजकन्यका कामयते । तदेकापत्यश्च राजा तया त्वां समागतमुपलभ्य कुपितोऽपि दुहितुर्मरणभयान्नोच्छेत्स्यति[2], प्रत्युत प्रापयिष्यत्येव यौवराज्यम् । इत्थं चायमर्थोऽर्थानुबन्धी । किमिति तात, नाराध्यते । यदि कुमारीपुरप्रवेशाभ्युपायं नावबुध्यसे ननु बन्धनागारभित्तेर्व्यामत्रयमन्तराल-

पुष्पम् । मलिनांशुकम् धृतम् वस्त्रम् । अन्येद्युः अपरस्मिन् दिने । उपाहरम् उपायनीकृतवती । तदीयानि (कान्तकेन दत्तानि मुखताम्बूलादीनि वस्तूनि) । राजकन्यार्थम् इति राजकन्यायै दास्यामि इति उक्त्वा । उपादाय गृहीत्वा । छन्नम् गुप्तम् । अपोढानि त्यक्तानि (मया) ।

इत्थम् एवं प्रकारेण संधुक्षितः प्रज्वलितः मन्मथाग्निः कामजन्यः अनलः यस्य सः । उपमंत्रितः उपदिष्टः । आर्य श्रीमन् । लक्षणानि हस्तपादादिचिह्नानि । अविसंवादीनि अविरुद्धानि । प्रातिवेश्यः प्रतिवेशी । कार्तान्तिकः सामुद्रिकः ('कार्तान्तिको लक्षणज्ञः' इति वैजयन्ती) । पतिष्यति गमिष्यति । आदिक्षत् अवदत् । कामयते इच्छति । तत् (सा कन्या) एव एकम् अपत्यम् सन्ततिः यस्य सः । समागतम् संगतम् । उपलभ्य ज्ञात्वा । उच्छेत्स्यति मारयिष्यति । प्रत्युत एतद्विपरीतम् प्रापयिष्यति गमयिष्यति । यौवराज्यम् युवराजपदम् । इत्थम् एवम् । अर्थः प्रयोजनम् । अर्थानुबन्धी अन्यप्रयोजनसाधकः । तात (आत्मीयतासूचकम् संबोधनम्) । आराध्यते सेव्यते । कुमारीपुरे कन्यान्तःपुरे प्रवेशस्य अभ्युपायम् उपायम् । अवबुध्यसे जानासि । ननु तदा । बन्धनागारस्य कारागृहस्य भित्तेः कुड्यात् । व्यामः (परिमाणविशेषः । 'व्यामो बाह्वोः सकरयोस्ततयोस्तिर्य-

उसकी दी हुई (ये ही) वस्तुयें 'राजकुमारी के लिये ले जा रही हूँ' बताकर छिपाकर फेंक दिया ।

इस प्रकार उसकी कामाग्नि प्रज्वलित हो गई । उसी दशा में एकान्त में मैंने सलाह दी—'श्रीमान्, आपके लक्षण—हाथ-पैर आदि के चिह्न-ही मिलते हैं (और प्रमाणों की जरूरत क्या है) । प्रमाण-स्वरूप मेरे पड़ोसी एक ज्योतिषी (लक्षणों के जानकार) ने भविष्य-वाणी की है कि 'यह राज्य कान्तक के हाथ पड़ेगा । वैसे ही उसके लक्षण हैं ।' उसके अनुकूल ही यह राजकुमारी तुमसे प्रेम करती है । वही राजा की इकलौती सन्तान है, अतः राजा उसके साथ तुम्हारा संबंध जानकर गुस्सा होकर भी लड़की के मरने के डर से तुम्हें नहीं मारेंगे, बल्कि युवराज-पद पर पहुँचा देंगे । इस प्रकार यह उद्देश्य दूसरे उद्देश्य से संलग्न है । तात, क्या कारण है कि आप उस उद्देश्य की आराधना नहीं करते । अगर कन्या-अन्तःपुर के प्रवेश का उपाय नहीं जानते तो भी कोई समस्या नहीं है; कारागार की दीवाल से महल की वाटिका

---

[1] अपाविध्यम्; प्राक्षिपम्; अपविद्धानि ।

[2] उत्सेत्स्यति ।

आरामप्राकारस्य केनचित्तु हस्तवतैकागारिकेन तावतीं [1]सुरङ्गां कारयित्वा प्रविष्टस्योपवनं तवोपरिष्टादस्मदायत्तैव रक्षा । 'रक्ततरो हि तस्याः परिजनो न रहस्यं भेत्स्यति' इति । सोऽब्रवीत्–'साधु, भद्रे, दर्शितम् । अस्ति कश्चित्तस्करः खननकर्मणि सगरसुतानामिवान्यतमः । स चेल्लब्धः क्षणेनैतत्कर्म साधयिष्यति' इति। 'कतमोऽसौ ? किमिति न लभ्यते ?' इति मयोक्ते 'येन तद्धनमित्रस्य चर्मरत्नं मुषितम्' इति त्वामेव निरदिक्षत् । 'यद्येवमेहि, त्वयास्मिन्कर्मणि साधिते चित्रैरुपायैस्त्वामहं मोचयिष्यामीति शपथपूर्वं तेनाभिसंधाय[2] सिद्धेऽर्थे भूयोऽपि निगडयित्वा 'योऽसौ चौरः स सर्वथोपक्रान्तः, न तु धार्ष्ट्यभूमिः प्रकृष्टवैरस्तद-

---

गन्तरम्' इति अमरः)। तस्य त्रयम् । अन्तरालम् व्यवधानम् (अन्तरम्)। आरामस्य गृहोपवनस्य। प्राकारस्य प्राचीरस्य। हस्तवता क्षिप्रकारिणा। ऐकागारिकेण चौरेण ('चौरैकागारिकस्तेनदस्युतस्करमोषकाः' इति अमरः)। तावतीम् तत्प्रमाणाम्। सुरङ्गाम् बिलम्। उपरिष्टात् अनन्तरम्। अस्माकम् आयत्ता अधीना ('अधीनो निघ्न आयत्तः' इति अमरः)। रक्ततरः विशेषेण भक्तिमान्। परिजनः सेवकवर्गः। रहस्यम्। भेत्स्यति प्रकटीकरिष्यति। साधु सम्यक्। (हे) भद्रे कल्याणि। दर्शितम् शिक्षितम्। तस्करः चौरः। खननम् बिलरचना। सगरस्य नृपविशेषस्य। अन्यतमः एकः। साधयिष्यति सम्पादयिष्यति। कतमः कः। किमिति केन कारणेन मुषितम् चोरितम्। इति (उक्त्वा)। निरदिक्षत् निर्दिष्टवान्। एहि गच्छ। त्वया (अपहारवर्मणि)। साधिते संपादिते। चित्रैः विविधैः। अभिसंधाय प्रतिज्ञाम् कृत्वा। सिद्धे पूर्णे। अर्थे प्रयोजने। निगडयित्वा बद्ध्वा। उपक्रान्तः चिकित्सितः (सामदण्डाभ्याम् बोधितः)। धार्ष्ट्यभूमिः धृष्टः।

की दूरी तीन [3]व्याम (भर ही तो) है। किसी तेज काम करने वाले चोर के द्वारा उतनी बड़ी सुरंग बनवाकर जब तुम बगीचे में प्रविष्ट हो जाओगे, उसके बाद तुम्हारी रक्षा तो हमारे हाथ में ही है। उस राजकुमारी का सेवक-वर्ग अत्यंत स्वामिभक्त है; गोपनीयता भंग नहीं करेगा। वह बोला—'खूब सुझाया तुमने, कल्याणी। एक चोर खोदने के काम में [4]सगर के पुत्रों में से एक के समान है। यदि वह मिल गया तो क्षण भर में यह काम पूरा कर देगा।' 'कौन है वह, क्या कारण है कि नहीं मिल रहा है' यह मेरे कहने पर 'जिसने धन-मित्र का चर्म-रत्न (मावो) चुराया है' यह कहकर उसने तुम्हारा ही निर्देश किया। 'अगर ऐसी बात है तो जाओ उससे 'तुम्हारे यह काम कर देने पर अनेक प्रकार के उपायों से मैं तुम्हें बचा लूँगा।' (वह) प्रतिज्ञा शपथ-पूर्वक करके उद्देश्य सफल हो जाने पर फिर से हथकड़ी-बेड़ी पहनाकर 'जो यह चोर था उसके इलाज में कोई कोर-कसर नहीं रखी गई, लेकिन वह धृष्टता की खान है।

---

[1] सुरुङ्गाम्। [2] संधाय।

[3] दोनों हाथ दायें-बायें फैला लेने पर एक पंजे से दूसरे पंज़े तक की दूरी।

[4] सगर सूर्य-वंशी राजा थे जिन्होंने अश्वमेध यज्ञ का घोडा अपने ६०,००० पुत्रों के संरक्षण में छोड़ा था। इन्द्र ने अदृश्य रहकर उसका अपहरण कर पाताल में बाँध दिया था। वे सगर-पुत्र खुदाई कर पाताल पहुँच गये थे।

जिनरत्नं दर्शयिष्यति' इति राज्ञे विज्ञाप्य 'चित्रमेनं [1]हनिष्यसि, तथा च सत्यर्थः सिद्ध्यति, रहस्यं च न स्रवति' इति मयोक्ते सोऽतिहृष्टः प्रतिपद्य 'मामेव त्वदुपप्रलोभने नियुज्य बहिरवस्थितः। [2]प्राप्तमितः परं चिन्त्यताम्' इति प्रीतेन च मयोक्तम्—'मदुक्तमल्पम्, त्वन्नय एवात्र भूयान्। आनयैनम्' इति अथानीतेनामुना मन्मोचनाय शपथः कृतः, अहं च रहस्यानिर्भेदनाय। विनिगडीकृतश्च स्नानभोजनविलेपनान्यनुभूय [3]नित्यान्धकाराद्भित्तिकोणादारभ्योरगास्येन सुरङ्गामकरवम्। अचिन्तयं चैवम्—'हन्तुमनसैवामुना मन्मोचनाय शपथः कृतः। [4]तदेनं हत्वापि नासत्यवाददोषेण स्पृश्ये' इति। निष्पततश्च मे निगडनाय प्रसार्यमाणपाणेस्तस्य पादेनोरसि निहत्य पतितस्य तस्यैवासिधेन्वा शिरो न्यकृन्तम्।

प्रकृष्टम् बद्धमूलम् वैरम् शत्रुता यस्य सः। अजिनरत्नम् भस्त्राम्। दर्शयिष्यति निधानस्थानम् कथयिष्यति। विज्ञाप्य निवेद्य। चित्रम् अद्भुतप्रकारेण। अर्थः प्रयोजनम्। सिध्यति सफलः भवति। स्रवति प्रकाशितम् भवति। प्रतिपद्य अङ्गीकृत्य। उपप्रलोभने वशीकरणे। प्राप्तम् प्रसङ्गप्राप्तम् (इदम्)। इतः अस्मात्। परम् अग्रे। प्रीतेन सानन्देन। मया (अपहारवर्मणा)। तव नयः नीतिः त्वन्नयः। अत्र अस्मिन् प्रसङ्गे। भूयान् अधिकः। अमुना (कान्तकेन)। अनिर्भेदनाय अनुद्घाटनाय। विनिगडीकृतः मुक्तः। नित्यः अखण्डः अन्धकारः यत्र तस्मात्। उरगास्येन सर्पमुखयन्त्रेण। हन्तुम् मनः यस्य तेन। अमुना (कान्तकेन)। स्पृश्ये स्पृष्टः भवामि। निष्पततः निर्गच्छतः। निगडनाय बन्धनाय। प्रसार्यमाणः पाणिः यस्य तस्य। पादेन (स्वस्य अपहारवर्मणः)। असिधेन्वा छुरिकया ('छुरिका चासिधेनुका' इति अमरः)। शिरः

उसकी शत्रुता बढ़ी-चढ़ी है; वह नहीं बतायेगा कि भाथी कहाँ रखी है' इस प्रकार राजा से निवेदन कर उसे अद्भुत प्रकार से मार डालना। वैसा घटित होने पर मतलब सिद्ध होता है और गोपनीयता भी भंग नहीं होती।' इस प्रकार मेरे कहने पर वह अत्यंत प्रसन्न होकर मेरी बात अङ्गीकार कर तुमको फुसलाने के लिये मुझे ही लगाकर बाहर खड़ा है। इसके आगे, प्राप्त प्रसंग पर विचार करो। मैंने प्रसन्न होकर कहा—'मैंने कहा तो थोड़ा ही है तुम्हारी नीति ही इस विषय में अधिक है। उसे लाओ।' इसके बाद (शृगालिका के द्वारा) लाये गये उस कान्तक ने मुझे छोड़ देने की कसम खाई और मैंने गुप्त बात न प्रगट करने की (कसम खाई)। हथकड़ी-बेड़ी से मुक्त होकर स्नान, भोजन और लेप का सुख भोगकर मैंने सर्प-मुख यन्त्र से हमेशा अँधेरे से युक्त कारागार की दीवाल के कोने से सुरंग बनाई और इस प्रकार सोचा—'इसने मुझे छोड़ने की कसम खाई है मार डालने की बात मन में रखकर ही, इसलिये इसे मारकर भी झूठ बोलने की बुराई से नहीं छुआ जाता। निकल रहे मेरे हथकड़ी-बेड़ी लगाने के लिये फैलाये हुये हाथ वाले उस-(कान्तक) की छाती पर पैर से प्रहार कर गिरा दिया और

---

१. घातयिष्यसि। २. प्राप्तरूपम्। ३. ०अन्धकाराद्भित्ति। ४ तदसुं।

अकथयं च शृगालिकाम्––'भण, भद्रे, [1]कथंभूतः कन्यापुरसंनिवेशः ? महानयं प्रयासो मा वृथैव भूत् । अमुत्र किंचिच्चोरयित्वा निवर्तिष्ये' इति । तदुपदर्शितविभागे[2] चावगाह्य कन्यान्तःपुरं प्रज्वलत्सु मणिप्रदीपेषु नैकक्रीडाखेदसुप्तस्य परिजनस्य मध्ये [3]महितमहार्घरत्न[4]प्रत्युप्तसिंहाकारदन्तपादे हंसतूलगर्भशय्योपधानशालिनि कुसुमलवच्छुरितपर्यन्ते पर्यङ्कतले दक्षिणपादपार्ष्ण्यधोभागानु[5]वलितेतरचरणाग्रपृष्ठम्, ईषद्विवृत्त[6]मधुरगुल्फसंधि, परस्पराश्लिष्टजङ्घाकाण्डम्, आकुञ्चित-

मस्तकम् (कर्म)। न्यकृन्तम् विच्छिन्नीकृतवान् । भण वद । संनिवेशः संस्थानम् ('संस्थानं संनिवेशे च स्वरूपे च निगद्यते' इति वररुचिः)। प्रयासः प्रयत्नः । अमुत्र तत्र । तया (शृगालिकया) उपदर्शितः कथितः विभागः प्रदेशः यस्य तत् । नैकाः बहवः याः क्रीडाः ताभ्यः यः खेदः क्लान्तिः तेन सुप्तस्य । परिजनस्य सेवकवर्गस्य । महितानि श्रेष्ठानि महार्घाणि बहुमूल्यानि यानि रत्नानि तैः प्रत्युप्ताः खचिताः । सिंहस्य आकारः इव आकारः येषाम् तैः दन्तैः गजदन्तैः निर्मिताः पादाः चरणाः यस्य तस्मिन् (शय्यातले)। हंसवत् (शुभ्राणि) तूलानि गर्भे अभ्यन्तरे याभ्याम् ताभ्याम् शय्यया आस्तरणेन उपधानेन उपबर्हेण शालते शोभते तस्मिन् । कुसुमानाम् पुष्पाणाम् लवैः खण्डैः छुरितः व्याप्तः पर्यन्तः प्रान्तः यस्य तस्मिन् । पर्यङ्कतले खट्वायाम् ('शयनं मञ्चपर्यङ्कपल्यङ्काः खट्वया समाः' इति अमरः)। दक्षिणपादस्य पार्ष्णेः चरणग्रन्थिनिम्नभागस्य अधोभागेन निम्नप्रदेशेन अनुवलितम् आवृतम् इतरचरणस्य अन्यचरणस्य वामचरणस्य अग्रपृष्ठम् अग्रभागः (उपरितलम्) यत्र (कर्मणि तत् यथा स्यात् तथा)। ईषत् किञ्चित् विवृत्तः वक्रीकृतः मधुरः मनोहरः गुल्फयोः चरणग्रन्थ्योः ('पादः तद्ग्रन्थी घुटिके गुल्फौ' इति अमरः) संधिः संयोगः यत्र । परस्परेण आश्लिष्टम् संलग्नम् जङ्घा प्रसृता (गुल्फजानुमध्यभागः) काण्डम् स्तम्भः इव यत्र । आकुञ्चिते ईषत् वक्रीकृते कोमले उभयजानुनी जङ्घोरुसंधी यत्र । वेल्लितम्

उसी की छुरी से (उसका) सिर काट दिया । फिर शृगालिका से बोला—'बताओ कल्याणि, कन्या-अन्तःपुर की स्थिति कैसी है ? यह महान् प्रयत्न व्यर्थ ही न चला जाय । वहाँ कुछ न कुछ-चुराकर लौटूँगा ।' उसने कन्या-अन्तःपुर के हिस्से बताये और मैने उसमें प्रवेश कर जल रहे मणि-निर्मित दीपकों के घेरे में अनेक क्रीड़ाओं की थकावट से सोये हुये नौकर-चाकरों के बीच श्रेष्ठ जौर कीमती रत्नों से जड़े सिंह की आकृति वाले हाथी-दाँत के पायों वाली, हंस के समान (सफेद) रुई भरे बिस्तर और तकिया से शोभित, फूल के टुकड़ों से युक्त किनारों वाली पलँग के ऊपर इत्मीनान से सोई हुई अत्यन्त श्वेत चादर में बिलकुल डूबी हुई एक बगल होने के कारण देर तक कौंधने की थकावट से स्थिर और शरद्-ऋतु के बादल की गोद में लेटी बिजली की भाँति राजकुमारी को देखा । वह इस प्रकार सोई थी कि दाहिने पैर के पंजे के नीचे के तले से दूसरे (बायें) पैर के सिरे का तल ढका हुआ था, मनोहर टखनों (पैर के पंजों के ऊपर की दोनों गाँठों के जोड़ कुछ-कुछ मुड़े थे, खम्भे के समान पिंडलियाँ एक-दूसरे का

---

१. ०भूतं कन्यापुरसंस्थानम् । २. विभागे; विभागः । ३. महार्हरत्न; महति महार्हरत्न । ४. प्रसुप्त । ५. अनुवेल्लिते० । ६. विवृत ।

कोमलोभयजानु, किंचिद्वेल्लितोरुदण्डयुगलम्, अधिनितम्बस्रस्तमुक्तैकभुजलताग्रपेशलम्, अपाश्रयान्तनिमिता[1]कुञ्चितेतरभुजलतोत्तानतलकरकिसलयम्, आभुग्नश्रोणिमण्डलम्, अतिश्लिष्टचीनांशुकान्त[2]रीयम्, [3]अनतिवलिततनुतरोदरम्, [4]अतनुतरनिःश्वासा[5]रम्भकम्पमानकठोरकुचकुड्मलम्, आतिरश्चीनबन्धुरशिरोधरोद्देशदृश्यमाननिष्टप्ततपनीयसूत्रपर्यस्तपद्मरागरुचकम्, अर्धलक्ष्याधरकर्णपाशनिभृतकुण्डलम्, उपरिपरावृत्तश्रवणपाशरत्नकर्णिकाकिरणमञ्जरीपिन्जरितविषमन्या-

वक्रीकृतम् ऊरू सक्थिनी (जानूपरिभागौ) एव दण्डौ तयोः युगलम् यत्र। अधिनितम्बम् नितम्बस्य (स्त्री-) कट्याः पश्चाद्भागस्य ('पश्चान्नितम्बः स्त्रीकट्याः' इति अमरः) उपरिस्रस्तम् शिथिलम् यथा स्यात् तथा मुक्तम् क्षिप्तम् एकस्याः भुजलतायाः अग्रम् अग्रभागः तेन पेशलम् रमणीयम्। अपाश्रयस्य पर्यङ्कशिरोदेशस्य अन्ते प्रान्ते निमितम् क्षिप्तम् आकुञ्चिता ईषत् कुटिलायाः इतरभुजलतायाः अन्यवाहुलतायाः उत्तानम् तलम् यस्य तादृशः करः एव किसलयम् यत्र। आभुग्नम् ईषत् वक्रीकृतम् श्रोणिः कटिः ('कटिः श्रोणिः ककुद्मती' इति अमरः) मण्डलम्) एव यत्र। अतिश्लिष्टम् अतिशयेन लग्नम् चीनांशुकस्य चीनदेशीयसूक्ष्मवस्त्रस्य अन्तरीयम् अधोवस्त्रम् यत्र। अनतिवलितम् ईषत् कम्पितम् तनुतरम् विशेषक्षीणम् उदरम् यत्र। अतनुतरेण दीर्घेण निःश्वासारम्भेण कम्पमाने कुचकुड्मले स्तनमुकुले यत्र। आ ईषत् तिरश्चीना वक्रा वन्धुरा सुन्दरी च या शिरोधरा ग्रीवा तस्याः उद्देशे प्रदेशे दृश्यमानः निष्टप्तम् विशेषेण तप्तम् तपनीयम् ('तपनीयं शातकुम्भं गाङ्गेयं भर्म कर्बुरम्।' इति अमरः)। तस्य सूत्रे तन्तौ पर्यस्तः लम्वमानः पद्मरागस्य (पद्मरागनिर्मितः) रुचकः ग्रीवाभरणविशेषः यत्र ('रुचको मङ्गलद्रव्ये ग्रीवाभरणदन्तयोः' इति विश्वप्रकाशः)। अर्धलक्ष्यः अर्धम् दृश्यमानः अधरः निम्नः ('अधस्तादपि चाधरः' इति अमरः) (शय्यालग्नः) यः कर्णपाशः चारुकर्णः तत्र निभृतम् निश्चलम् कुण्डलम् यत्र। उपरि ऊर्ध्वम् परावृत्तः समुत्तानः यः (अपरः) श्रवणपाशः चारुकर्णः तस्य रत्नकर्णिकायाः रत्ननिर्मितकर्णाभूषणस्य किरणमञ्जरीभिः किरणाङ्कुरैः (अङ्कुरतुल्यैः अल्पैः किरणैः)

आलिङ्गन किये हुई थीं, दोनो कोमल घुटने कुछ मुड़े हुये थे, दण्ड के समान जाँघों की जोड़ी कुछ घूमी थी, नितम्ब (पीठ के नीचे का भाग) पर ढीली पड़ी लता-तुल्य एक बांह के सिरे से रमणीयता छिटकी थी, सिरहाने के किनारे पड़ी तथा कुछ तिरछी दूसरी लता-तुल्य बांह वाले पल्लव तुल्य हाथ का तल (हथेली) चित हो (ऊपर आ) गया था, कमर का घेरा कुछ-कुछ तिरछा था, चीनी सूक्ष्म वस्त्र का अन्तरीय (निचला वस्त्र) शरीर से खूब चिपक गया था, विशेष क्षीण पेट कुछ हिल रहा था, दीर्घ निःश्वासों के चलने से कठोर और कली के समान आकृति वाले स्तन कांप रहे थे, कुछ तिरछी और सुन्दर ग्रीवा के प्रदेश पर दिख रहे खूब तपे सोने के तार पर लाल माणिक्य से बना रुचक (गले का एक गहना) लटक रहा था, आधा दिख रहे सुन्दर नीचे के दबे कान पर कुण्डल स्थिर था, ऊपर स्थित खुले हुये सुन्दर कान पर पड़ी रत्न-निर्मित कर्णिका (कान का एक गहना) की छोटी-छोटी किरणों से पिशङ्ग (लाल-

---

१. निहित; निमित्त। २. उत्तरीयम्। ३. नातिवलित। ४. अणुतर। ५. श्वासारम्भ।

[1]विद्धाशिथिलशिखण्डबन्धम्, आत्मप्रभापटलदुर्लक्ष्यपाटलोत्तराधरविवरम्, गण्डस्थलीसंक्रान्तहस्तपल्लवदर्शितकर्णावतंसकृत्यम्, उपरिकपोलादर्शतलनिषिक्त[2]चित्रवितान[3]पत्रजातिजनितविशेषकक्रियम्, आमीलितलोचनेन्दीवरम्, विश्रान्तभ्रूपताकम्, उद्भिद्यमानश्रमजलपुलकभिन्नशिथिलचन्दनतिलकम्, [4]आननेन्दुसंमुखालकलतं च विश्रब्धप्रसुप्तामतिधवलोत्तरच्छदनिमग्नप्रायैकपार्श्वतया चिरविलसनखेदनिश्चलां शरदम्भोधरोत्सङ्गशायिनीमिव सौदामनीं राजकन्यामपश्यम्। दृष्ट्वैव

पिञ्जरितः पिशङ्गीकृतः विषमव्याविद्धः विषमरूपेण बद्धः (वेणीकृतः) अत एव अशिथिलः शिखण्डबन्धः केशकलापः यत्र। आत्मनः स्वस्य प्रभायाः पटलेन चयेन दुर्लक्ष्येण दुःखेन दृश्यमानेन पाटलेन श्वेतरक्तेन उत्तराधरेण उपरिस्थितौष्ठेन (हेतुना) विवरम् बिलम् यत्र। गण्डस्थल्याम् कपोलदेशे संक्रान्तः मिलितः हस्तपल्लवः करकिसलयम् तेन दर्शितम् (कृतम्) कर्णावतंसस्य कर्णाभूषणस्य कृत्यम् कर्म यत्र। उपरि उपरिस्थितः कपोलः एव आदर्शः दर्पणः ('आदर्शो दर्पणः प्रोक्तः' इति अमरमाला) तस्य तले फलके निषक्तेन प्रतिबिम्बितेन चित्रस्य नानावर्णस्य ('चित्रं किर्मीरकल्माषशबलैताश्च कर्बुरे' इति अमरः) वितानस्य उल्लोचस्य ('अस्त्री वितानमुल्लोचः' इति अमरः) पत्रजातेन पत्राकारचिह्नसमूहेन जनिता उत्पादिता विशेषकक्रिया तिलककार्यम् यत्र। आ समन्तात् मीलिते निमीलिते लोचने इन्दीवरे नीलकमले इव यत्र। अविश्रान्ते स्थिरे भ्रुवौ पताके इव यत्र। उद्भिद्यमानाभ्याम् निर्गच्छद्भ्याम् श्रमजलेन स्वेदेन पुलकेन रोमाञ्चेन च भिन्नम् मिलितम् शिथिलम् (स्वेदेन) गलितम् चन्दनतिलकम् यत्र। आननेन्दोः मुखचन्द्रस्य संमुखे अलकाः चूर्णकुन्तलाः लताः इव यत्र (पूर्वोक्तानि सर्वाणि क्रियाविशेषणपदानि)। विश्रब्धम् निःशङ्कम् सुप्ताम्। अतिधवलः अत्यन्तशुभ्रः यः उत्तरच्छदः आस्तरणपटः तत्र निमग्नप्रायः बाहुल्येन 'निमग्नः एकः पार्श्वः यस्याः तत्ता (तस्याः भावः) तया। चिरम् दीर्घकालम् विलसनेन स्फुरणेन यः खेदः क्लान्तिः तेन निश्चलाम् स्थिराम् शरदि यः अम्भोधरः मेघः तस्य उत्सङ्गे क्रोडे शेते तच्छीलाम्। सौदामनीम् विद्युतम्। स्फुरन् वर्धमानः

पीला) और टेढ़ा बँधा हुआ केश-कलाप कस गया था। अपने प्रभा-पुञ्ज से कठिनाई से दिख रहे पाटल (सफेद व लाल) रंग के ऊपरी ओठ के उठ जाने से छिद्र-सा बन गया था, कपोल-प्रदेश पर पहुँचा किसलय तुल्य हाथ कर्णावतंस (कान का एक गहना) का कार्य दिखा (कर) रहा था, ऊपर स्थित कपोल के (रूपी) दर्पण (के धरातल) पर प्रतिबिम्बित रंग-बिरंगे चँदोवे की पत्र-रचना (पत्ते की आकृति) के द्वारा तिलक का कार्य उत्पन्न कर दिया गया था, नील-कमल के समान नेत्र भली-भांति मुँद गये थे, पताका-तुल्य भौंहें स्थिर हो गई थीं, प्रगट हो रहे पसीने तथा रोमांच से मिलकर चन्दन का तिलक ढीला पड़ गया था और लता तुल्य घुँघराले बाल चन्द्र-समान मुख के सामने आ गये थे। देखते ही मेरी कामोत्तेजना बढ़ गई। मैं विह्वल हो गया।

---

१. व्याविद्धशिथिल। २. निषक्त। ३. पत्रक्रिया। ४. ०खागतालकलतम्।

स्फुरदनङ्गरागश्चकितश्चोरयितव्यनिस्पृहस्तयैव तावच्चोर्यमाणहृदयः किंकर्तव्यतामूढः क्षणमतिष्ठम्। अतर्कयं च—‘न चेदिमां वामलोचनामाप्नुयां न मृष्यति मां जीवितुं वसन्तबन्धुः। असंकेतितपरामृष्टा [1]चेयमतिबाला व्यक्तमार्तस्वरेण[2] निहन्यान्मे मनोरथम्। ततोऽहमेवाघ्नीय[3]। तदियमत्र प्रतिपत्तिः’। इति नागदन्तलग्न[4]निर्यासकल्कवर्णितं फलकमादाय मणिसमुद्गकाद्वर्ण[5]वर्तिकामुद्धृत्य तां तथा शयानां तस्याश्च मामाबद्धाञ्जलिं चरणलग्नमालिखमार्यां चैताम्—

‘त्वामयमाबद्धाञ्जलि दासजनस्तमिममर्थमर्थयते।
स्वपिहि मया सह सुरतव्य[6]तिकरखिन्नैव[7] मा मैवम्॥’

अनङ्गस्य कामस्य रागः आवेशः यस्य सः। चकितः संभ्रान्तः। चोरयितव्ये चौर्यकर्मणि निःस्पृहः अभिलाषरहितः। चोर्यमाणम् ह्रियमाणम् हृदयम् यस्य सः। किंकर्तव्यतायाम् (किम् कर्तव्यम् इति) विषये मूढः ज्ञानरहितः। अतर्कयम् अचिन्तयम्। वामे सुन्दरे लोचने यस्याः ताम्। आप्नुयाम् लभेय। मृष्यति सहते। वसन्तस्य बन्धुः सखा (कामः)। असंकेतितम् यथा स्यात् तथा सङ्केतम् अकृत्वा एव। परामृष्टा स्पृष्टा (सती अतिबाला)। अतिक्रान्ता बालाम् (बाल्यावस्थाम्) (युवती)। व्यक्तम् प्रकाशम्। निहन्यात् नाशयेत्। आघ्नीय आत्मानम् हन्याम्। प्रतिपत्तिः कर्त्तव्यम्। नागदन्ते अवलम्बनकाष्ठे लग्नम् सम्बद्धम् च निर्यासस्य वृक्षस्रुतस्य चिक्कणद्रव्यस्य कल्कः क्वाथः तेन वर्णितम् रञ्जितम् च। फलकम् काष्ठपट्टिकाम्। मणिनिर्मितः समुद्गकः संपुटकः (‘समुद्गकः संपुटकः’ इति अमरः) (मञ्जूषा) तस्मात्। वर्णवर्तिकाम् तूलिकाम् (‘तूलिका वर्णवर्तिका’ इति वैजयन्ती)। उद्धृत्य उत्थाप्य (आदाय)। आबद्धः अञ्जलिः येन तम्। आर्याम् आर्याछन्दः। तल्लक्षणम् यथा वृत्तरत्नाकरे—

लक्ष्मैतत् सप्त गणा गोपेता भवति नेह विषमे जः।
षष्ठोऽयं नलघू वा चरमेऽर्धे नियतमार्यायाः॥

एताम् वक्ष्यमाणाम्। [अयम् दासजनः आबद्धाञ्जलि त्वाम् तम् इमम् अर्थम् अर्थयते (यत्)

चोरी के प्रति अनिच्छुक हो गया। बल्कि वही मेरा हृदय चुराने लगी। ‘क्या करूँ और क्या न करूँ’ इसका ज्ञान खोकर क्षण भर ठहरा रहा और सोचा—‘यदि इस सुन्दर नेत्रों वाली को न पा सका तो कामदेव (मेरा जीना नहीं सहेंगे) मुझे जीने नहीं देंगे और बिना संकेत किये (बताये) छू लेने पर यह युवती स्पष्ट आर्तनाद से मेरी मन-कामना कुचल देगी। तब मैं ही अपनी हत्या कर जान जोखिम में डाल लूँगा। इसलिये इस विषय में यह करणीय है।’ यह सोचकर खूँटी पर टँगी और लाख के रस से रँगी तख्ती लेकर मणि-निर्मित पेटी से कूँची उठाकर उस प्रकार लेटी हुई उसका तथा उसके चरणों में हाथ जोड़े लगे हुये अपना चित्र बनाया और यह आर्या-छन्द लिखा—यह सेवक (मैं) हाथ जोड़कर तुमसे इस निम्न प्रसिद्ध वस्तु की याचना करता है कि मिलन-संपर्क से थककर ही मेरे साथ सोओ; इस प्रकार कदापि नहीं।

---

[1] अतिवेलम्। [2] रवेण। [3] आघ्नी। [4] निर्यासवालुका। [5] तूलिकावर्तिकाम्। [6] मदन। [7] खिन्नेव।

हेमकरण्डकाच्च वासताम्बूलवीटिकां कर्पूरस्फुटिकां पारिजातकं चोपयुज्यालक्तकपाटलेन तद्रसेन सुधाभित्तौ चक्रवाकमिथुनं निरष्ठीवम्। अङ्गुलीयकविनिमयं[1] च कृत्वा कथंकथमपि निरगाम्। सुरङ्गया च प्रत्येत्य बन्धनागारं तत्र बद्धस्य नागरिकवरस्य सिंहघोषनाम्नस्तेष्वेव दिनेषु मित्रत्वेनोपचरितस्य 'एवं मया हतस्तपस्वी कान्तकः तत्त्वया प्रतिभिद्य रहस्यं लब्धव्यो मोक्षः' इत्युपदिश्य सह शृगालिकया निरक्रामिषम्। नृपतिपथे च [2]समागत्य रक्षिकपुरुषैरगृह्ये। अचिन्तयं च–'अलमस्मि जवेनापसर्तुमनामृष्ट एवैभिः। एषा पुनर्वराकी गृह्येत। तदिदमत्र प्राप्तरूपम्' इति तानेव चपलमभिपत्य स्वपृष्ठसमर्पितकूर्परः पराङ्मुखः स्थित्वा

सुरतव्यतिकरखिन्ना एव मया सह स्वपिहि। एवम् मा मा।] तम् प्रसिद्धम् इमम् वक्ष्यमाणम् अर्थम् वस्तु। अर्थयते प्रार्थयते। सुरतस्य व्यतिकरः सम्पर्कः तेन खिन्ना क्लान्ता। हेमकरण्डकात् स्वर्णनिर्मितायाः पेटिकायाः। वासताम्बूलवीटिकाम् सुवासितताम्बूलपत्रवीटिकाम्। स्फुटिकाम् खण्डकम्। पारिजातकम् सुवासितखदिरसारम्। अलक्तकवत् पाटलेन श्वेतरक्तेन। सुधाधवलितभित्तौ। चक्रवाकयोः कोकपक्षिणोः मिथुनम् युग्मम्। निरष्ठीवम् ष्ठीवनम् त्यक्तवान्। अङ्गुलीयकयोः मुद्रिकयोः (तस्याः स्वस्य च) विनिमयम् तस्याः मुद्रिकायाः ग्रहणम् स्वस्य च तस्याः अङ्गुलौ परिधापनम्। कथंकथमपि कष्टेन। निरगाम् निरगच्छम्। प्रत्येत्य निवृत्य। नागरिकवरस्य श्रेष्ठस्य नगरवासिनः। उपचरितस्य सेवितस्य। तपस्वी शोच्यः। प्रतिभिद्य प्रकाश्य। मोक्षः मोचनम्। निरक्रामिषम् निर्गतवान्। नृपतिपथे राजमार्गे। रक्षिकपुरुषैः रक्षायै नियुक्तैः राजपुरुषैः। अगृह्ये गृहीतः। अलम् समर्थः। जवेन वेगेन। अपसर्तुम् पलायितुम्। अनामृष्टः अस्पृष्टः। एषा (शृगालिका)। वराकी दयापात्रम्। गृह्येत धृता भवेत्। प्राप्तरूपम् युक्तम्। चपलम् शीघ्रम्। अभिपत्य समीपं गत्वा। कूर्परौ कफोणी ('कफोणिस्तु कूर्परः' इति अमरः) (भुजमध्यग्रन्थी)। पराङ्मुखः विपरीतमुखः। तस्करः चौरः। मद्राः श्रीमन्तः। वर्षीयस्याः

सोने की सन्दूकची से सुगन्धित पान के बीड़े, कपूर के टुकड़े और सुगन्धित कत्थे का उपयोग कर (खाकर) उनकी लाख के समान पाटल (सफेद-लाल) पीक थूककर चूने से पुती दीवाल पर चकवे की जोड़ी बना दी (ऐसे हिसाब से थूकी कि बिना हाथ लगाये चकवे की जोड़ी बन गई) और अँगूठी बदलकर कष्ट से बाहर हुआ। फिर सुरंग से जेल में लौटकर वहाँ बँधे उन्हीं दिनों मित्र बनाये हुये सिंहघोष नामक श्रेष्ठ नागरिक को 'मैंने इस प्रकार दीन कान्तक को मार डाला है; अब तुम रहस्य प्रगट कर रिहाई पा लो' यह बताकर शृगालिका के साथ निकल गया। सड़क पर पहुँचकर सिपाहियों के द्वारा पकड़ा गया। मैंने सोचा–'वेग से यों भागने में समर्थ हूँ कि वे छू भी न पायें पर यह बेचारी शृगालिका पकड़ी जा सकती है। ऐसी स्थिति में इस विषय में यह करना बढ़िया है' यह सोचकर उन्हीं के पास तेजी से पहुँचकर अपनी पीठ के ऊपर कोहनियां (भुजाओं की गाँठ)

---

[1] व्यतिकरम्। [2] समापत्य।

'भद्राः, यद्यहमस्मि तस्करः, बध्नीत माम्। युष्माकमयमधिकारः। न पुनरस्या वर्षीयस्याः' इत्यवादिषम्। सा तु तावतैवोन्नीतमदभिप्राया तान्सप्रणाममभ्येत्य 'भद्रमुखाः, ममैष पुत्रो वायुग्रस्तश्चिरं चिकित्सितः। पूर्वेद्युः प्रसन्नकल्पः प्रकृतिस्थ एव जातः। जातास्थया मया बन्धनान्निष्क्रमय्य स्नापितो नुलेपितश्च परिधाप्य [1]निष्प्रवाणियुगलमभ्यवहार्य परमान्नमौशीरेऽद्य कामचारः कृतोऽभूत्। अथ निशीथे भूय एव वायुनिघ्नः 'निहत्य कान्तकं नृपतिदुहित्रा रमेयम्' इति रंहसा परेण राजपथमभ्यपतत्। निरूप्य चाहं पुत्रमेवंगतमस्यां वेलायामनुधावामि। तत्प्रसीदत। बद्ध्वैनं मह्यमर्पयत' इति यावदसौ क्रन्दति तावदहं 'स्थविरे, केन देवो मातरिश्वा बद्धपूर्वः? किमेते काकाः शौङ्गेयस्य मे निग्रही-

अतिशयेन वृद्धायाः। अवादिषम् अवदम्। सा (शृगालिका)। तावता तावन्मात्रेण। उन्नीतः ऊहितः (तर्कितः) मम अभिप्रायः आशयः यया सा (अभवत्)। अभ्येत्य समीपं गत्वा। (हे) भद्रमुखाः शुभदर्शनाः। पूर्वेद्युः गते दिने। प्रसन्नकल्पः प्रसन्नः इव। प्रकृतिस्थः स्वस्थः। जाता आस्था आदरः यया तया। निष्क्रमय्य मुक्त्वा। अनुलेपितः चर्चितः। परिधाप्य धारयित्वा। निर्गता प्रवाणी तन्तुवायशलाका अस्मात् निष्प्रवाणिः नवीनं वस्त्रं ('अनाहतं निष्प्रवाणि तन्त्रकं च नवाम्बरे' इति अमरः) तस्य युगलम्। अभ्यवहार्य भोजयित्वा। परमान्नम् पायसम्। औशीरे शयनासनविषये ('औशीरं शयनासनम्' इति हलायुधः)। कामचारः नियन्त्रणरहितः। निशीथे अर्धरात्रे। भूयः पुनः। वायुनिघ्नः वाताधीनः (मत्तः) दुहित्रा कन्यया। रंहसा वेगेन। परेण महता। राजपथम् राजमार्गम्। अभ्यपतत् अधावत्। निरूप्य दृष्ट्वा। एवंगतम् एतद्दशापन्नम्। वेलायाम् समये। अनुधावामि पृष्ठतः धावामि। प्रसीदत प्रसन्नाः भवत। (हे) स्थविरे वृद्धे। मातरि आकाशे श्वयति प्रसरति इति मातरिश्वा (वायुः)। ('मातरिश्वा सदागतिः' इति अमरः)। पूर्वम् बद्धः बद्धपूर्वः। शौङ्गेयस्य श्येनस्य ('तिलच्छदस्तु शौङ्गेयो विहङ्गाराति-

रखकर उनकी तरफ पीठ कर ठहर गया और बोला—'अगर मैं चोर हूँ तो, श्रीमानो, मुझे बाँध लीजिये। आपका यह अधिकार है; इस अत्यन्त वृद्धा का नहीं।' उधर उसने उतने से ही मेरे आशय का अन्दाजा लगा लिया। प्रणाम-पूर्वक उनके पास पहुँचकर वह 'हे शुभदर्शनो, यह मेरा बेटा है। वायु (रोग) से ग्रस्त है। बहुत इलाज कराया है। पिछले दिन खुश खुश था; बिलकुल स्वस्थ हो गया था। विश्वास कर मैंने बन्धन से मुक्त कर नहलाया था, लेप लगाये थे। नये वस्त्रों की जोड़ी पहनाकर और खीर खिलाकर आज लेटने-बैठने (आदि सभी कार्यों) के लिये स्वतन्त्र कर दिया था। फिर आधी रात को फिर से वायु के वश में होकर 'कान्तक को मारकर राजकुमारी के साथ विहार करूँगा' (यह) कहकर महान् वेग से सड़क की ओर झपटा और बेटे को इस दशा में पहुँचा हुआ देखकर इस वेला में मैं पीछे-पीछे दौड़ रही हूँ। ऐसी स्थिति में प्रसन्न हों; इसे बाँधकर मुझे सौंप दें' यह कहकर जैसे ही रोने लगी वैसे ही मैं 'हे वृद्धा, किसने भगवान् वायु को पहले बांधा है? क्या ये कौवे मुझ शौङ्गेय (बाज) को वश

---

[1] अनाहतयुगलम्।

तारः ? शान्तं पापम्' इत्यधावम् । असावप्यमीभिः 'त्वमेवोन्मत्ता यानुन्मत्त इत्युन्मत्तं मुक्तवती । कस्तमिदानीं बध्नाति ?' इति निन्दिता कदर्थिता रुदत्येव मामन्वधावत् । गत्वा च रागमञ्जरीगृहं [1]चिरविरहखेदविह्वला[2]मिमां बहुविधं समाश्वास्य तं निशाशेषमनयम् । प्रत्यूषे [3]चोदारकेण च समगच्छे ।

अथ भगवन्तं मरीचिं वेशकृच्छ्रादुत्थाय पुनः [4]प्रतितप्ततपःप्रभावप्रत्यापन्नदिव्यचक्षुषमुपसंगम्य तेनास्म्येवंभूतं त्वद्दर्शनमवगमितः । सिंहघोषश्च कान्तकापचारं निर्भिद्य तत्पदे प्रसन्नेन राज्ञा प्रतिष्ठापितः तेनैव चारकसुरङ्गापथेन कन्यापुरप्रवेशं भूयोऽपि मे समपादयत् । समगंसि चाहं शृगालिकामुखविसृतवार्तानुरक्तया राजदुहित्रा । तेष्वेव दिवसेषु चण्डवर्मा सिंहवर्मावधूतदुहितृप्रार्थनः कुपितोऽभि-

रित्यपि' इति अमरः)। निग्रहीतारः निग्रहे नियन्त्रणे समर्थाः । असौ (शृगालिका) । कदर्थिता निन्दिता ('निन्दितः क्लेशने चैव वर्णने च कदर्थने' इति सज्जनः)। खेदः दुःखम् तेन विह्वलाम् आकुलाम् । बहुविधम् नानाप्रकारेण । निशायाः शेषः अवशिष्टभागः तम् । प्रत्यूषे प्रभाते । समगच्छे सङ्गतः अभवम् ।

भगवन्तम् ऐश्वर्यशालिनम् । वेशस्य वेश्यायाः कृच्छ्रात् सङ्कटात् । उत्थाय मुक्तः भूत्वा । प्रतितप्तम् पुनः चरितम् । प्रत्यापन्नम् पुनः प्राप्तम् दिव्यम् अलौकिकम् चक्षुः दृष्टिः येन तम् । उपसंगम्य मिलित्वा । एवभूतम् अनेन प्रकारेण जातम् । तत्र (राजवाहनस्य) दर्शनम् अवलोकनम् । अवगमितः ज्ञापितः । कान्तकस्य (कारापतेः) अपचारम् अपकारम् । निर्भिद्य प्रकटीकृत्य । प्रतिष्ठापितः नियुक्तः । चारकस्य कारागारस्य । समपादयत् अकारयत् । समगंसि मिलितः । शृगालिकामुखात् विसृता निर्गता या वार्त्ता वृत्तान्तः तया अनुरक्तया । सिंहवर्मणा अवधूता तिरस्कृता दुहितुः स्वकन्यायाः (दान-) प्रार्थना यस्य सः । अभियुज्य आक्रम्य । अवारुणत् अव-

में कर सकते हैं ? पाप शान्त हो' (यह) कहकर दौड़ पड़ा और वह उनके द्वारा 'मत्त को अमत्त समझकर छोड़ने वाली तुम्हीं पागल हो । उसे कौन अब बांधेगा' इन शब्दों से निन्दित हुई और रोती-रोती ही मेरे पीछे दौड़ी । मैंने रागमञ्जरी के स्थान पर पहुँचकर चिर-काल के विरह-दुख से व्याकुल उसे अनेक प्रकार से सान्त्वना देकर रात का वह अवशिष्ट भाग बिताया और सवेरे तड़के उदारक से भेंट की ।

इसके पश्चात् वेश्या-सम्पर्क के संकट से उद्धार पाकर फिर दूसरी बार किये गये तप के प्रभाव से पुनः दिव्य दृष्टि-प्राप्त श्रीमान् मरीचि से मिला । 'इस प्रकार (उन्हें) तुम्हारा दर्शन हुआ था' यह बात उन्होंने मुझे सूचित की । उधर सिंहघोष ने कान्तक के अपकार का भेद प्रकाशित कर प्रसन्न हुये राजा के द्वारा उस- (कान्तक) के स्थानपर नियुक्त होकर कारागार की सुरंग के रास्ते पुनः कन्या-अन्तःपुर में मेरे प्रवेश की व्यवस्था की और शृगालिका के मुख से निकली चर्चा से (मेरे प्रति) अनुरक्त हुई राजकुमारी से मेरी मुलाक़ात हुई । उन्हीं दिनों सिंहवर्मा के द्वारा (अपनी) कन्या के लिये की गई चण्डवर्मा की प्रार्थना ठुकरा दी गई, जिससे

---

१. चिरवियोग । २. विक्लवाम् । ३. पुनरुदा । ४. प्रतिपन्न ।

युज्य पुरमवारुणत् । अमर्षणश्चाङ्गराजो यावदरिः [1]पारिग्रामिकं विधिमाचिकीर्षति तावत्स्वयमेव [2]प्राकारं निर्भिद्य प्रत्यासन्नानपि सहायानप्रतीक्षमाणो निर्गत्याभ्यधिकबलेन विद्विषा महति संपराये [3]भिन्नवर्मा सिंहवर्मा बलादगृह्यत । [4]अम्बालिका च बलवदभिगृह्य चण्डवर्मणा हठात्परिणेतुमात्मभवनमनीयत । कौतुकं च स किल क्षपावसाने विवाह इत्यबध्नात् । अहं च धनमित्रगृहे तद्विवाहायैव पिनद्धमङ्गलप्रतिसरस्तमेवमवोचम्——'सखे, समापतितमेवाङ्गराजा[5]भिसरं राजमण्डलम् । सुगूढमेव संभूय पौरवृद्धैस्तदुपावर्तय । उपावृत्तश्च [6]कृत्तशिरसमेव शत्रुं

रुद्धवान् । अमर्षणः सकोपः । अङ्गराजः (सिंहवर्मा) । (तस्य) अरिः (मिथिलाधिपतिः) चण्डवर्मा । ग्रामम् परितः परिग्रामम् तत्र भवम् पारिग्रामिकम् ('ग्रामात्पर्यनुपूर्वात्' इति ठञ्) (परराज्यावरोधोचितम् यथा 'उपरुध्यारिमासीत राष्ट्रं चास्योपपीडयेत् । दूषयेच्चास्य सततं यवसान्नोदकेन्धनम् ॥ भिन्द्याच्चैव तडागानि प्राकारपरिखास्तथा । समवस्कन्दयेच्चैनं रात्रौ वित्रासयेत्तथा' ॥—मनुस्मृतिः ७।१९५-१९६)। आ समन्तात् चिकीर्षति कर्तुम् इच्छति । प्राकारम् दुर्गप्राचीरम् । निर्भिद्य ध्वस्तीकृत्य । प्रत्यासन्नान् समीपवर्तिनः । सहायान् साहाय्यकारिणः नृपान् । अभ्यधिकम् बहुतरम् बलम् सैन्यम् यस्य तेन (चण्डवर्मणा) । विद्विषा शत्रुणा संपराये युद्धे । भिन्नम् वर्म कवचम् यस्य सः । बलात् बलपूर्वकम् । अगृह्यत गृहीतः । बलवत् बलपूर्वकम् । अभिगृह्य गृहीत्वा । हठात् अविवेकपूर्वकम् । परिणेतुम् विवोढुम् (विवाहाय) । अनीयत नीता । कौतुकम् मङ्गलसूत्रम् । किल (संभावनायाम्) । क्षपायाः रात्रेः अवसाने अन्ते (प्रभाते) । विवाहः (भविष्यति) । इति (हेतोः) । अहम् (अपहारवर्मा) । तस्याः (अम्बालिकायाः) विवाहाय । पिनद्धः बद्धः मङ्गलप्रतिसरः मङ्गलसूत्रम् ('हस्तसूत्रं प्रतिसरः' इति वैजयन्ती) येन सः । अवोचम् अवदम् । समापतितम् आगतम् । अङ्गराजाभिसरम् अङ्गराजसाहाय्यकारि । राज्ञाम् मण्डलम् समूहः । सुगूढम् सुगुप्तम् यथा स्यात् तथा । संभूय मिलित्वा । पौरवृद्धैः सम्मानितवृद्धनागरिकैः । उपावर्तय समीपम् आनय । उपावृत्तः पुनः आगतः (सन्) । कृत्तम्

इस- (चण्डवर्मा) ने गुस्सा होकर आक्रमण किया और शहर पर घेरा डाल दिया । दुश्मन (चण्डवर्मा) जबतक घेरे की कार्रवाई (रसद, पानी आदि रोकना) करने की इच्छा करे (योजना बनाये) तब तक कुपित होकर राजा सिंहवर्मा, स्वयं ही किले की दीवार तोड़कर पास खड़े सहायकों की भी परवाह न कर निकल पड़ा और अधिक सेना वाले शत्रु (चण्डवर्मा) के द्वारा घमासान लड़ाई में कवच टूट जाने से बल-पूर्वक पकड़ लिया गया चण्डवर्मा बल-पूर्वक अम्बालिका को पकड़कर बिना सोचे-बिचारे (उससे) ब्याह करने के लिये अपने महल में ले गया । आशा (किल) में रात के अन्त में (सबेरे) 'ब्याह होगा' सोचकर मंगल सूत्र बाँध लिया । इधर मैं उस (राजकुमारी) से ब्याह के लिये ही धनमित्र के घर में मंगल-सूत्र बाँधकर उस (धनमित्र) से यों बोला—'मित्र, अङ्गराज की सहायता करने वाला राज-समूह बस आ ही गया है । बहुत छिपे-छिपे ही सम्मानित वृद्ध नागरिकों से मिलकर उसे ले आओ ।

---

१. पारग्रा० । २. सालम् । ३. ममा । ४. अम्बालिकाम् । ५. अनभिसरम् । ६. कृतकृत्यः कृत्त० ।

द्रक्ष्यसि' इति । 'तथा' इति तेनाभ्युपगते गतायुषोऽमुष्य भवनमुत्सवाकुलमुपसमाधीयमानपरिणयोपकरणमितस्ततः प्रवेशनिर्गमप्रवृत्तलोकसबाध[1]मलक्ष्यशस्त्रिकः सह प्रविश्य मङ्गलपाठकैरम्बालिकापाणिपल्लवमग्नौ साक्षिण्याथर्वणेन विधिनार्प्यमाणमादित्समानस्यायामिनं बाहुदण्डमाकृष्य च्छुरिकयोरसि प्राहार्षम् । स्फुरतश्च कतिपयानन्यानपि यमविषयमगमयम् । हतविध्वस्तं च तद्गृहमनुविचरन्वेपमानमधुरगात्रीं विशाललोचनामभिनिशाम्य तदालिङ्गनसुखमनुबुभूषुस्तामादाय गर्भगृहमविक्षम् । अस्मिन्नेव क्षणे तवास्मि नवाम्बुवाहस्तनितगम्भीरेण स्वरेणानुगृहीतः' इति ।

खण्डितम् शिरः यस्य तम् । अभ्युपगते स्वीकृते । गतम् आयुः यस्य तस्य (चण्डवर्मणः) । उत्सवाकुलम् विवाहोत्सवपूर्णम् । उपसमाधीयमानम् सम्पाद्यमानम् परिणयस्य विवाहस्य उपकरणम् वस्तुजातम् यत्र तत् । इतस्ततः सर्वत्र । प्रवेशे निर्गमे बहिः गमने च प्रवृत्तः लग्नः यः लोकः जनसमूहः तेन संबाधम् संकटम् (व्याप्तम्) । अलक्ष्या अदृश्या (गूढा) शस्त्रिका छुरिका यस्य सः । अग्नौ साक्षिणि (सति) । आथर्वणेन अथर्ववेदोपदिष्टेन (विधिना) पुरोहितेन वा ('आथर्वणः पुरोधाः स्याच्छान्तिपुष्टिकरो द्विजः' इति कामन्दकः) । आदित्समानस्य ग्रहीतुम् इच्छोः (चण्डवर्मणः) । आयामिनम् दीर्घतायुक्तम् । प्राहार्षम् हतवान् । स्फुरतः प्रतिप्रहारार्थं चञ्चलान् । यमस्य विषयम् देशम् । अगमयम् नीतवान् । अनुविचरन् सर्वत्र भ्रमन् । वेपमानानि कम्पमानानि मधुराणि सुन्दराणि गात्राणि अवयवाः यस्याः ताम् । विशाले लोचने यस्याः ताम् । अभिनिशाम्य संमुखम् दृष्ट्वा । अनुबुभूषुः अनुभवितुम् इच्छुः । गर्भगृहम् गृहमध्यवर्ती प्रकोष्ठः । प्राविक्षम् प्राविशम् । नवः च असौ अम्बुवाहः मेघः च तस्य यत् स्तनितम् गर्जनम् तद्वत् गम्भीरेण धीरेण । अनुगृहीतः अनुकम्पितः ।

लौटने पर शत्रु का सिर कटा ही देखोगे ।' 'ठीक है' कहकर उसके स्वीकार कर लेने पर उत्सव में व्यस्त, ब्याह की सामग्री के प्रबन्ध से युक्त तथा इधर-उधर घुसने व निकलने में लगे लोगों के कारण ठसाठस भरे हुये महल में छुरी छिपाकर मङ्गल-पाठ करने वालों के साथ दाखिल होकर अग्नि के साक्षी (गवाह) होने पर (बनाकर) पुरोहित के द्वारा विधि-पूर्वक सौंपे जा रहे अम्बालिका का किसलय-तुल्य हाथ ग्रहण करने के इच्छुक समाप्त उम्र वाले उस (चण्डवर्मा) की लम्बी दण्ड-तुल्य बाँह खींचकर मैंने (उसकी) छाती पर छुरी से प्रहार किया । उसकी (मदद में) हरकत कर रहे कुछ दूसरों को भी यम के देश में पहुँचा दिया । उसके हनन और विध्वंस से युक्त घर में घूमता हुआ मैं काँप रहे प्यारे अङ्गों वाली विशाललोचना (बड़ी-बड़ी आँखों वाली राजकुमारी) को सामने देखकर उसको गले लगाने के आनन्द के अनुभव का इच्छुक होकर उसे लेकर बीच के कमरे में प्रविष्ट हुआ । इसी क्षण तुम्हारे नये बादल की गरज के समान गम्भीर[2]स्वर ने कृपा की ।"

---

१. संपातम् । २. स्वर की गंभीरता प्रशस्तता की निशानी है : नाभी स्वरः सत्त्वमिति प्रशस्तं गम्भीरमेतत्त्रितयं नराणाम् । (बृहत्संहिता ६७।२५) ।

श्रुत्वा च स्मित्वा च देवोऽपि राजवाहनः 'कथमसि कार्कश्येन कर्णीसुतमप्यतिक्रान्तः' इत्यभिधाय [1]पुनरवेक्ष्योपहारवर्माणम् 'आचक्ष्व, तवेदानीमवसरः' इत्यभाषत। सोऽपि सस्मितं प्रणम्यारभताभिधातुम्—

इति श्रीदण्डिनः कृतौ दशकुमारचरिते अपहारवर्मचरितं नाम द्वितीय उच्छ्वासः ॥

तृतीयोच्छ्वासः

[2]एषोऽस्मि पर्यटन्नेकदा गतो [3]विदेहेषु। मिथिलाम[4]प्रविश्यैव बहिः क्वचिन्मठिकायां विश्रमितुमेत्य कयापि वृद्धतापस्या दत्तपाद्यः क्षणमलिन्दभूमाववास्थिषि।

कथम् अहो। कार्कश्येन कठोरतया। कर्णीसुतम् चौर्यशास्त्रकर्त्तारम्। अतिक्रान्तः जितवान् असि। अभिधाय उक्त्वा। अवेक्ष्य दृष्ट्वा। आचक्ष्व वद। आरभत आरब्धवान्। अभिधातुम् वक्तुम्।

पर्यटन् इतस्ततः भ्रमन्। विदेहेषु विदेहदेशम्। मिथिलाम् विदेहराजधानीम्। मठिकायाः अल्पमठस्य। तापस्या तपस्विन्या। दत्तम् पाद्यम् पादोदकम् यस्मै सः ('पाद्यं पादाय वारिणि' इति अमरः)। अलिन्दभूमौ बहिर्द्वाराग्रवर्ति चतुष्कम् ('प्रघाणप्रघणालिन्दा बहिर्द्वारप्रकोष्ठके')। इति अमरः।

सुनकर और मुस्कराकर महाराज राजवाहन ने कहा, 'धन्य है! तुमने कठोरता में कर्णीसुत को भी मात दे दी' (यह) कहकर फिर उपहारवर्मा को देखकर कहा—'कहो; अब तुम्हारा मौका है।' उसने मुस्कराहट के साथ प्रणाम कर कहना शुरू किया।

श्री दण्डी की रचना दशकुमारचरित के अन्तर्गत अपहारवर्मा-चरित-[जीवन]
नामक दूसरा उच्छ्वास (अध्याय) समाप्त हुआ।

तीसरा उच्छ्वास (=अध्याय)

एक बार घूमता-घामता मैं विदेह राज्य में पहुँचा। मिथिला में बिना प्रवेश किये आराम करने के लिये किसी छोटे मठ के बाहर पहुँचा। वहाँ एक बूढ़ी तपस्विनी ने पैर धोने के लिये पानी दिया और मैं क्षणभर दरवाजे के बाहर के चबूतरे पर ठहर गया। मेरे दर्शन (के क्षण)

---

[1] पुनर्निरीक्ष्य। [2] एषोऽप्यहमस्मि। [3] मगध के पूर्वोत्तर स्थित एक प्राचीन राज्य जिसकी राजधानी मिथिला थी। इसमें भूतपूर्व तिरहुत जिले और नेपाल का कुछ भाग तथा चम्पारन का पश्चिमोत्तर भाग था। [4] विदेह की राजधानी जो नेपाल का जनकपुर है।

तस्यास्तु मद्दर्शनादेव किमप्याबद्धधारमश्रु प्रावर्तत । 'किमेतदम्ब, कथय कारणम्' इति पृष्टा सकरुणमाचष्ट—'जैवातृक, ननु श्रूयते पतिरस्या मिथिलायाः प्रहारवर्मा नामासीत् । तस्य खलु मगधराजो राजहंसः परं मित्रमासीत् । तयोश्च वल्लभे [1]बलशम्बलयोरिव वसुमतीप्रियंवदे सख्यमप्रतिममधत्ताम् । अथ प्रथमगर्भाभिनन्दितां तां च प्रियसखीं दिदृक्षुः प्रियंवदा वसुमतीं सह भर्त्रा पुष्पपुरमगमत् । तस्मिन्नेव च समये मालवेन मगधराजस्य महज्जन्यमजनि । तत्र लेशतोऽपि [2]दुर्लक्षां गतिमगमन्मगधराजः । [3]मैथिलेन्द्रस्तु मालवेन्द्रप्रयत्नप्राणितः स्वविषयं प्रतिनिवृत्तो ज्येष्ठस्य संहारवर्मणः सुतैर्विकटवर्मप्रभृतिभिर्व्याप्तं राज्य[4]माकर्ण्य स्वस्रीयात्सुह्मपतेर्दण्डावयवमादित्सुरटवीपथमवगाह्य लुब्धकलुप्तसर्वस्वो-

अवास्थिषि अवस्थितः ('समवप्रविभ्यः स्थः' इति आत्मनेपदम्)। आबद्धधारम् आबद्धा अविच्छिन्ना धारा यस्य तत्। प्रावर्तत प्रचलितम् । (हे) अम्ब मातः। आचष्ट अवदत्। (हे) जैवातृक आयुष्मन् ('जैवातृकः स्यादायुष्मान्' इति अमरः) (जीवति इति)। ननु संबोधने (वत्स)। वल्लभे प्रिये (पत्न्यौ)। बलशम्बलयोः (दैत्ययोः) सख्यम् मैत्रीम्। अविद्यमाना प्रतिमा उपमा यस्य तत् (अतुलम्)। अधत्ताम् अधारयताम्। अभिनन्दिताम् आदृताम्। दिदृक्षुः द्रष्टुम् इच्छुः। अगमत् अगच्छत्। मालवेन [5]मालवराजेन (मानसारेण)। [6]मगधराजस्य (राजहंसस्य)। जन्यम् युद्धम्। अजनि जातम्। लेशतः किञ्चित्। दुर्लक्षाम् निश्चेतुम् अशक्याम्। अगमत् अगच्छत् (प्राप्तवान्)। मैथिलेन्द्रः (प्रहारवर्मा)। प्राणितः जीवितः। विषयम् देशम्। प्रतिनिवृत्तः आगतः। ज्येष्ठस्य अग्रजस्य। प्रभृतिभिः आदिभिः। व्याप्तम् आक्रान्तम्। स्वस्रीयात् भगिनीपुत्रात् ('स्वसुश्छः' इति छप्रत्ययः)। सुह्मस्य[7] सुह्मदेशस्य पत्युः स्वामिनः।

से ही उसकी आँखों से अद्भुत रूप से अविराम धारा में आँसू बह चला। 'माँ, यह क्या ? कारण बताओ' यह पूछने पर करुणा-पूर्ण ढंग से बोली—'हे आयुष्मन् वत्स, इसके पति मिथिला के प्रहारवर्मा थे। मगध के राजा राजहंस उनके परम मित्र थे। बल और शम्बल (-नामक दैत्यों) की भाँति उन दोनो की क्रमशः वसुमती (राजहंस-पत्नी) और प्रियंवदा-नामक प्रियाओं में अतुल्य मैत्री थी। कुछ समय बाद पहले गर्भ से अभिनन्दित उस प्रिय सहेली वसुमती को देखने की इच्छा लेकर प्रियंवदा पति के साथ पुष्पपुर गई। उसी समय मालवराज से मगध-नरेश की घमासान लड़ाई हुई। उसमें महाराज (राजवाहन) जिस दशा में पहुँचे, उसका जरा भी पता न चला। मालव-नरेश के प्रयत्न से मिथिला-नरेश बच गये और अपने राज्य लौट गये। 'बड़े भाई संहारवर्मा के विकटवर्मा आदि बेटों ने राज्यपर कब्जा कर लिया है' सुनकर उन्होंने (अपने) भांजे सुह्म-नरेश से सेना की एक टुकड़ी लेकर जंगल के रास्ते में प्रवेश किया। बहेलियों ने उनका सर्वस्व छीन लिया। हाथ में स्थित, उनके छोटे

---

१. शम्बर। २. दुर्लक्षिताम्। ३. मैथिलस्तु। ४. राष्ट्रम्।
५. मध्यप्रदेश में वर्तमान मालवा। ६. आधुनिक बिहार जो पंजाब और काश्मीर तक फैला था। ७. वंग (वर्तमान बङ्गला देश) के पश्चिम में स्थित पुराना राज्य। इसकी राज-

ऽभूत्। तत्सुतेन च कनीयसा हस्तवर्तिना सहैकाकिनी वनचरशरवर्षभयपलायिता वनमगाहिषि। तत्र च मे शार्दूलनखावलीढनिपतितायाः पाणिभ्रष्टः स बालकः कस्यापि कपिलाशवस्य क्रोडमभ्यलीयत। तच्छवाकर्षिणश्च व्याघ्रस्यासूनिषुरिष्वसनयन्त्रमुक्तः क्षणादलिक्षत्। भिल्लदारकैः स बालोऽपाहारि। सा त्वहं मोहसुप्ता केनापि वृष्णिपालेनोपनीय स्वं कुटीरमावेश्य कृपयोपक्रान्तव्रणा स्वस्थीभूय स्वभर्तुरन्तिकमुपतिष्ठासुरसहायतया यावद्व्याकुलीभवामि तावन्ममैव दुहिता सह यूना केनापि तमेवोद्देशमगमत्। सा भृशं रुरोद। रुदितान्ते च सा

दण्डस्य सैन्यस्य अवयवम् अङ्गम्। आदित्सुः आदातुम् (ग्रहीतुम्) इच्छुः। अटवीपथम् वनमार्गम्। अवगाह्य प्रविश्य। लुब्धकैः व्याधैः लुप्तम् हृतम् सर्वस्वम् सर्वम् धनम् यस्य सः। अभूत् अभवत्। कनीयसा अप्रथमेन। हस्तवर्तिना करस्थितेन। वनचराणाम् भिल्लानाम् शराणाम् बाणानाम् वर्षस्य वृष्टेः भयात् पलायिता। अगाहिषि प्राविशम्। शार्दूलस्य व्याघ्रस्य नखैः अवलीढा विद्धा अतएव निपतितायाः। कपिलायाः कपिलवर्णधेन्वाः शवस्य मृतशरीरस्य। क्रोडम् वक्षःस्थलम्। अभ्यलीयत लीनः अभवत्। तस्याः कपिलायाः शवम् आकर्षति इति तस्य। असून् प्राणान्। इषुः बाणः। इष्वसनम् धनुः तत् एव यन्त्रम् तस्मात् मुक्तः। अलिक्षत् अपाहरत्। भिल्लानाम् किरातानाम् दारकैः बालकैः। अपाहारि अपहृतः। मोहेन मूर्च्छया सुप्ता। वृष्णिपालेन मेषपालेन ('मेषवृष्णय एडकाः' इति अमरः)। कुटीरम् अल्पगृहम् (ह्रस्वाम् कुटीम्) ('कुटीशमीशुण्डाभ्यो रः' इति रः)। उपक्रान्तम् चिकित्सितम् व्रणम् क्षतम् यस्याः सा। भर्तुः स्वामिनः (राज्ञः)। उपतिष्ठासुः उपस्थातुम् (गन्तुम्) इच्छुः। दुहिता पुत्री। यूना तरुणेन। उद्देशम् प्रदेशम्। भृशम् अत्यन्तम्। रुरोद व्यलपत्। रुदितस्य रुदनस्य अन्ते। सार्थस्य

पुत्र के साथ मैं (वृद्धा) अकेली जंगलियों की बाण-वर्षा के डर से भागकर जंगल में प्रविष्ट हुई। वहाँ बाघ के नख-समूह से घायल होकर गिर गई और वह बालक मेरे हाथ से छूटकर एक भूरी गाय की लाश के बीच में छिप गया। क्षण-भर में धनुष-रूपी यंत्र से छूटे बाण ने उसकी लाश खींच रहे बाघ के प्राण चटकर लिये। भील बच्चों ने उस बालक का अपहरण कर लिया। उधर मैं बेहोशी में सोई थी। किसी गड़ेरिये ने लाकर अपनी छोटी कुटी में रखकर दया-पूर्वक घावों का इलाज किया। स्वस्थ होकर अपने स्वामी (राजा) के समीप उपस्थित होने की इच्छा लेकर सहायक-रहित होने के कारण जब व्याकुल होने लगी तब मेरी ही बेटी किसी युवक के साथ उसी स्थान पर पहुँची। वह खूब रोई। रोने के बाद उसने

धानी ताम्रलिप्त या दमलिप्त (वर्तमान तमलुक) के नाम से प्रसिद्ध थी जो कपिशा नदी (वर्तमान कोस्या) के दाहिने किनारे पर बसी थी। बलि के पुत्र सुह्म के नाम से इस राज्य का नाम सुह्म पड़ा था।

सार्थघाते स्वहस्तगतस्य राजपुत्रस्य किरातभर्तृहस्तगमनम्, आत्मनश्च केनापि वनचरेण व्रणविरोपणम्, स्वस्थायाश्च पुनस्तेनोपयन्तुं चिन्तिताया निकृष्टजातिसंसर्गवैक्लव्यात्प्रत्याख्यानपारुष्यम्, तदक्षमेण चामुना विविक्ते विपिने स्वशिरःकर्तनोद्यमम्, अनेन यूना यदृच्छया दृष्टेन तस्य दुरात्मनो हननम्, आत्मनश्चोपयमनमित्यकथयत्। स तु पृष्टो [1]मैथिलेन्द्रस्यैव कोऽपि सेवकः कारणविलम्बी तन्मार्गानुसारी जातः। सह तेन भर्तुरन्तिकमुपसृत्य पुत्रवृत्तान्तेन श्रोत्रमस्य देव्याः प्रियंवदायाश्चादहाव।

स च राजा दिष्टदोषाज्ज्येष्ठ[2]पुत्रैश्चिरं विगृह्य पुनरसहिष्णुतयातिमात्रं चिरं प्रयुध्य बद्धः। देवी च बन्धनं गमिता। दग्धा पुनरहमस्मिन्नपि वार्धके हतजी-

संघस्य घाते नाशे। किरातानाम् भिल्लानाम् भर्तुः स्वामिनः। व्रणानाम् क्षतानाम् विरोपणम् चिकित्सनम्। उपयन्तुं परिणेतुम्। चिन्तितायाः अभिलषितायाः। निकृष्टा नीचा। संसर्गः सम्पर्कः। वैक्लव्यात् विकलत्वेन। प्रत्याख्यानेन अस्वीकारेण यत् पारुष्यम् कठोरता। अक्षमेण सोढुम् अशक्नुवता। विविक्ते निर्जने। विपिने वने। स्वस्य दुहितुः। कर्तनम् छेदनम् तत्र उद्यमम् यत्नम्। यूना तरुणेन। यदृच्छया संयोगात्। कारणेन प्रयोजनवशात् विलम्बी कृतविलम्बः। अन्तिकम् समीपे। उपसृत्य गत्वा। वृत्तान्तेन चर्चया। श्रोत्रम् कर्णम्। देव्याः राज्ञ्याः। अदहाव अपीडयाव।

दिष्टस्य भाग्यस्य। ज्येष्ठस्य अग्रजस्य। विगृह्य युद्ध्वा। असहिष्णुतया सहने असमर्थतया। अतिमात्रम् अत्यन्तम्। चिरम् बहुकालम् यावत् प्रयुध्य युद्ध्वा। दग्धा भाग्यहीना। वार्द्धके

काफिले की हत्या होनेपर अपने हाथ के राजकुमार का भीलों के स्वामी के हाथ में पहुँचना, किसी जंगली के द्वारा अपने घावों की मरहम-पट्टी, जब स्वस्थ हो गई तब उसके द्वारा ब्याह के लिये चाही जाने पर अत्यन्त नीच जाति के सम्पर्क की (बात सोचकर) विकलता से इनकारी की कठोरता, उसे सहन न कर पाने वाले उसके द्वारा एकान्त जंगल में अपना (मेरी बेटी का) सिर काटने का प्रयत्न, संयोग से दिखे इस युवक के द्वारा उस दुष्टात्मा का मौत के घाट उतारा जाना और अपना ब्याह करने की बात बताई। पूछने पर वह मिथिला-नरेश का ही एक सेवक निकला जिसे किसी कारण देर हो गई थी और जो उनके रास्ते पर जा रहा था। उसके साथ स्वामी (राजा) के पास पहुँचकर बेटे के समाचार से इन- (मिथिला के राजा) के तथा देवी प्रियंवदा के कान दग्ध किये (कानों को पीड़ा पहुँचाई)।

उन राजा ने बड़े भाई के लड़कों (भतीजों) से चिरकाल तक युद्ध कर और फिर न सह पाने से चिरकाल तक घमासान युद्ध किया। भाग्य-दोष से पकड़ लिये गये। रानी भी गिरफ्तार हो गई। भाग्य-हीना मैंने इस बुढ़ापे में भी (यह) हीन जीवन त्यागने में असमर्थ

---

[1] मिथिलेन्द्रस्य। [2] ज्येष्ठभ्रातृपुत्रैः।

वितमपारयन्ती हातुं प्रव्रज्यां किलाग्रहीषम् । दुहिता तु मम [1]हतजीविताक्रुष्टा विकटवर्मसहादेवीं[2] कल्पसुन्दरीं किलाशिश्रियत् । तौ चेद्राजपुत्रौ निरुपद्रवावेवावर्धिष्येताम् इयता कालेन तवेमां वयोवस्थामस्प्रक्ष्येताम् । तयोश्च सतोर्न दायादा नरेन्द्रस्य प्रसह्यकारिणो भवेयुः' इति [3]प्रमन्युरभिरुरोद । श्रुत्वा च तापसीगिरमहमपि प्रवृद्धवाष्पो निगूढमभ्यधाम् 'यद्येवमम्ब, समाश्वसिहि । नन्वस्ति कश्चिन्मुनिस्त्वया तदवस्थया पुत्राभ्युपपादनार्थं याचितस्तेन स लब्धो वर्धितश्च वार्तेयमतिमहती । किमनया । सोऽहमस्मि । शक्यश्च मयासौ विकटर्मा यथाकथंचिदुपश्लिष्य व्यापादयितुम् । अनुजाः पुनरतिबहवः, तैरपि घटन्ते पौरजानपदाः ।

वृद्धावस्थायाम् । हतम् हीनम् च तत् जीवितम् जीवनम् च । अपारयन्ती अशक्नुवती । हातुम् त्यक्तुम् । प्रव्रज्याम् संन्यासम् । किल (अरुचौ) । अग्रहीषम् गृहीतवती । आक्रुष्टा विदशा । विकटवर्मणः प्रहारवर्मणः ज्येष्ठभ्रातुः पुत्रस्य महादेवीम् पट्टमहिषीम् । किल (अरुचौ) । अशिश्रियत् आश्रितवती । निरुपद्रवौ निर्विघ्नौ । इयता एतावता । अवर्धिष्येताम् वर्धितौ अभविष्यताम् । वयोऽवस्थाम् वयसः मानम् । अस्प्रक्ष्येताम् स्पृष्टौ अभविष्यताम् । सतोः वर्तमानयोः । दायादाः बान्धवाः । प्रसह्यकारिणः बलात्कारिणः । प्रकृष्टः (प्रवृद्धः) मन्युः शोकः यस्याः सा । तापस्याः गिरम् वाणीम् । अहम् उपहारवर्मा । प्रवृद्धं वाष्पं अश्रु यस्य सः । निगूढम् गुप्तरूपेण । अभ्यधाम् अवदम् । (हे) अम्ब मातः । समाश्वसिहि आश्वस्ता भव । ननु न एवम् किम् । सा अवस्था दशा यस्याः सा तया । पुत्रस्य अभ्युपपादनार्थम् पोषणाय । याचितः प्रार्थितः । वार्ता चर्चा । अतिमहती सुदीर्घा । शक्यः संभवः । यथाकथञ्चित् एतेन वा तेन वा प्रकारेण । उपश्लिष्य सामीप्यम् प्राप्य । व्यापादयितुम् हन्तुम् । अनुजाः (विकटवर्मणः) भ्रातरः अवरजाः । पुनः किन्तु । घटन्ते पक्षे तिष्ठन्ति । पौरजानपदाः नागरिकाः ग्रामीणाः च (जनाः) ।

होकर अनचाहा संन्यास ग्रहण किया । इधर मेरी बेटी ने हीन जीवन (के लोभ) से बेबस होकर विकटवर्मा की पटरानी कल्पसुन्दरी का आश्रय न चाहकर भी ग्रहण किया । यदि वे दोनो राजकुमार निर्विघ्न बड़े होते तो इतने समय के अन्दर तुम्हारी इस उम्र की बराबरी छू लेते । उन दोनो के रहते पट्टीदार लोग राजा से गुण्डई (जबर्दस्ती) न करते' यह कहकर अतिशय शोक से ग्रस्त होकर वह रो दी । तपस्विनी के वचन सुनकर मेरे भी आँसुओं में बाढ़ आ गई । मैंने अत्यन्त गुप्त रूप से कहा—'माँ, अगर यह बात है तो ढाढ़स रखो । क्या यह सच नहीं है कि उस दशा में पहुँचकर तुमने बेटे के पालन-पोषण के लिये एक मुनि से प्रार्थना की थी और उन्होंने उसे लेकर पाला-पोसा था । यह चर्चा बहुत लम्बी है । इससे लाभ क्या है । वही मैं हूँ । किसी न किसी प्रकार समीप पहुँचकर उस विकटवर्मा को खत्म कर देना मेरे लिये सम्भव है । लेकिन (उसके) छोटे भाई बहुत सारे हैं और फिर उनसे नगर-वासी और

---

[1] हतजीविकाक्रुष्टा; हतजीवना । [2] महिषीम् । [3] प्रवृद्धमन्युः ।

मां तु न कश्चिदिहत्य ईदृक्तया जनो जानाति । पितरावपि [१]तावन्मां न संविदाते, किमुतेतरे । [२]'तदेनमर्थमुपायेन साधयिष्यामि' इत्यगादिषम् । सा तु वृद्धा सरुदितं परिष्वज्य मुहुः शिरस्युपाघ्राय [३]प्रस्नुतस्तनी सगद्गदमगदत्—'वत्स, चिरं जीव । [४]भद्र तव । प्रसन्नोऽद्य भगवान्विधिः । अद्यैव प्रहारवर्मण्यधि विदेहा जाताः, यतः प्रलम्बमानपीनबाहुर्भवानपारमेतच्छोकसागरमद्योत्तारयितु[५] स्थितः । अहो ! महद्भागधेयं देव्याः प्रियंवदायाः' इति हर्षनिर्भरा स्नानभोजनादिना मामुपाचरत् । अशिश्रियं चास्मिन्मठैकदेशे निशि कटशय्याम् । अचिन्तयं च 'विनोपधिनायमर्थो न साध्यः । स्त्रियश्चोपधीनामुद्भवक्षेत्रम् । अतोऽन्तःपुरवृत्तान्तमस्या अवगम्य

इहत्यः अत्रत्यः । ईदृशः (ईदृशस्य) भावः ईदृक्ता तया (एवंरूपेण यत् अहम् प्रहारवर्मणः पुत्रः) माता च पिता च पितरौ । संविदाते जानीतः । किमुत का कथा । इतरे अन्ये । अर्थम् कार्यम् । साधयिष्यामि संपादयिष्यामि । अगादिषम् (पुनरुक्तो दोषः) अवदम् । रुदितेन रुदनेन सह वर्तमाना सा यथा स्यात् तथा । परिष्वज्य आलिङ्ग्य । मुहुः वारम् वारम् । उपाघ्राय आघ्राणम् कृत्वा । प्रस्नुतौ स्नुतदुग्धौ स्तनौ यस्याः सा । गद्गदेन स्खलद्वाण्या सह वर्तमाना सा यथा स्यात् तथा । वत्स पुत्र । चिरम् दीर्घम् । भद्रम् कल्याणम् । विधिः विधानम् । प्रहारवर्मणि ('यस्मादधिकम्' इति सप्तमी) । अधि अधीनाः ('अधिरीश्वरे') । विदेहाः विदेहदेशः (मिथिला) । यतः यस्मात् कारणात् । प्रलम्बमानौ दीर्घौ पीनौ पुष्टौ बाहू यस्य सः । उत्तारयितुम् उद्धर्तुम् । भागधेयम् भाग्यम् । हर्षनिर्भरा हर्षपूर्णा । उपाचरत् असेवत । अशिश्रियम् आश्रितवान् । मठस्य कुट्याः । निशि रात्रौ । कटस्य तृणस्य । उपधिना कपटेन ('कपटोऽस्त्री व्याजदम्भोपधयश्छद्मकैतवे' इति अमरः) । साध्यः साधयितुम् शक्यः । उद्भवस्य उत्पत्तेः क्षेत्रम् स्थानम् । अस्याः (वृद्धायाः सकाशात्) अवगम्य ज्ञात्वा । जालम् कपटम् ('जालं समूह

ग्रामवासी जनता मिली है । इसके विपरीत यहाँ का कोई व्यक्ति मुझे इस (यहाँ के राजकुमार) रूप में नहीं जानता । और तो और; माता-पिता भी मुझे नहीं पहचानते; औरों की तो बात ही क्या, इसलिये यह काम तरकीब से पूरा करूँगा' (यह कहा) । उस वृद्धा ने रोती हुई छाती से लगाया और बार-बार सिर सूँघा । उसके स्तनों से दूध बह चला । अटकती आवाज में बोली—'बेटा, चिरकाल तक जिओ । तुम्हारा कल्याण हो । आज भगवान् विधाता प्रसन्न हैं । आज ही मिथिला-देश प्रहारवर्मा के अधीन हो गया क्योंकि लम्बी और पुष्ट बाँहों वाले तुम आज इस अपार शोक-समुद्र से पार लगाने के लिये खड़े हो । रानी प्रियंवदा का महान् भाग्य धन्य है' (यह) कहकर आनन्द से भरकर उसने स्नान, भोजन आदि से मेरा सत्कार किया । मैंने इस कुटिया के एक हिस्से में रात को तिनके की सेज का आश्रय लिया और सोचा—'बिना तिकड़म के यह काम नहीं होने का और औरतें तिकड़म की खान हैं, इसलिये रनिवास का समाचार इस (वृद्धा) से जानकर उसके द्वारा एक जाल बिछाऊँ ; मेरे

---

१. यावन्माम्; तावदित्थम् । २. तमेनम् । ३. प्रस्नुत । ४. भद्र । ५. उत्तारयिता ।

तद्द्वारेण किंचिज्जालमाचरेयम्' इति । [1]चिन्तयत्येव मयि महार्णवोन्मग्नमार्तण्डतुरङ्गमश्वासरयावधूतेव व्यावर्तत त्रियामा । समुद्रगर्भवासजडीकृत इव मन्दप्रतापो दिवसकरः[2] प्रादुरासीत् ।

उत्थायावसायितदिनमुखनियमविधिस्तां मे मातरमवादिषम्—'अम्ब, जाल्मस्य विकटवर्मणः कच्चिदन्तःपुरवृत्तान्तमभिजानासि' इत्यनवसितवचन एव मयि काचिदङ्गना प्रत्यदृश्यत । तां चावेक्ष्य सा मे धात्री हर्षाश्रुकु[3]ण्ठितकण्ठमाचष्ट—'पुत्रि पुष्करिके, पश्य भर्तृदारकम् । अयमसावकृपया मया वने परित्यक्तः पुनरप्येवमागतः' इति । सा तु हर्षनिर्भरनिपीडिता चिरं प्ररुद्य बहु विलप्य शान्ता पुनः स्वमात्रा राजान्तःपुरवृत्तान्ताख्याने न्ययुज्यत । उक्तं च तया—

आनाये गवाक्षे कपटेऽपि च' इति वैजयन्ती)। आचरेयम् कुर्याम् । महार्णवात् महासागरात् उन्मग्नः उत्थितः (उदितः) यः मार्तण्डः सूर्यः तस्य तुरङ्गमाणाम् अश्वानाम् श्वासस्य रयेण वेगेन अवधूता कम्पिता । व्यावर्तत अपगता । त्रियामा त्रयः यामाः प्रहराः यस्याः सा (रात्रिः) (प्रथमः अन्तिमः च अर्धयामौ दिने गण्येते)। गर्भे अभ्यन्तरे वासः निवासः तेन जडीकृतः शीतलीकृतः । मन्दः अल्पः प्रतापः तापः यस्य सः दिवसकरः सूर्यः । प्रादुरासीत् प्रकटीभूतः ।

अवसायितः समापितः दिनस्य मुखे आरम्भे यः नियमः तस्य विधिः कृत्यम् । जाल्मस्य मूढस्य ('जडो जाल्मश्च निर्बुद्धौ स्तब्धेऽनालोच्यकारिणि' इति वैजयन्ती)। कच्चित् (प्रश्ने)। न अवसितम् समाप्तम् वचनम् यस्य तस्मिन् । अङ्गना नारी । प्रत्यदृश्यत दृष्टा । अवेक्ष्य दृष्ट्वा । धात्री उपमाता । हर्षजनितेन अश्रुणा कुण्ठितः रुद्धः कण्ठः यस्मिन् कर्मणि तत् यथा स्यात् तथा । आचष्ट अवदत् । भर्तुः स्वामिनः दारकम् पुत्रम् । अविद्यमाना कृपा दया यस्याः तया (निर्दयया)। निर्भरम् अत्यन्तम् यथा स्यात् तथा निपीडिता आक्रान्ता । हर्षेण निर्भरनिपीडिता । प्ररुद्य मुक्तकण्ठम् रुदित्वा । विलप्य आक्रन्द्य । आख्याने कथने । न्ययुज्यत नियुक्ता । अति-

(यह) सोचते-सोचते ही महासागर से निकले सूर्य के घोड़ों की साँसों के वेग से कँपी-सी रात हट गई । समुद्र के बीच रहने से शीतल कर दिया गया-सा मन्द ताप वाला सूर्य प्रगट हुआ ।

उठकर सबेरे के नियमित कृत्य समाप्त कर मैंने अपनी उस धाय से कहा—'माँ, मूर्ख विकटवर्मा के रनिवास का समाचार जानती तो हो न ?' यों मेरा कहना पूरा (भी) नहीं हुआ था कि एक स्त्री दिखी । उसे देखकर मेरी उस धाय ने आनन्द के आँसुओं से रुँधा गला लेकर कहा—'बेटी पुष्करिका, देखो राजकुमार को ! यह वही है जिसे निर्दयता से मैंने जङ्गल में छोड़ दिया था । इस प्रकार फिर आ गया है ।' वह (पुष्करिका) आनन्द से अत्यधिक आक्रान्त होकर, देर तक रुदन कर, बहुत विलाप कर शान्त होने पर पुनः अपनी माँ के द्वारा राजा के रनिवास का समाचार बताने के लिये लगाई गई और वह बोली—'राजकुमार,

---

[1] चिन्तापन्ने । [2] दिवाकरः । [3] कुञ्चित; कुण्ठ ।

'कुमार, कामरूपेश्वरस्य कलिन्दवर्मनाम्नः कन्या कल्पसुन्दरी कलासु रूपे चाप्सरसोऽप्यतिक्रान्ता पतिमभिभूय वर्तते। तदेकवल्लभः स तु बह्ववरोधोऽपि विकटवर्मा' इति। तामवोचम्—'उपसर्पैनां मत्प्रयुक्तैर्गन्धमाल्यैः। उपजनय चासमानदोषनिन्दादिना स्वभर्तरि द्वेषम्। अनुरूपभर्तृगामिनीनां च वासवदत्तादीनां वर्णनेन ग्राहयानुशयम्। अवरोधनान्तरेषु च राज्ञो विलसितानि सुगूढान्यपि प्रयत्नेनान्विष्य प्रकाशयन्ती मानमस्या वर्धय' इति। पुनरिदमम्बाम-

क्रान्ता उत्कृष्टा। अभिभूय पराभूय (आधिपत्यम् विस्तार्य) सा (कल्पसुन्दरी) एव एका केवला वल्लभा प्रिया यस्य सः। सः (विकटवर्मा)। बहुः विस्तृतः अवरोधः अन्तःपुरम् (राज्यः) यस्य सः। उपसर्प उपचर (सेवस्व)। एनाम् (कल्पसुन्दरीम्)। मया प्रयुक्तैः प्रेषितैः। उपजनय उत्पादय। असमानयोः परस्परविपरीतयोः (पतिपत्न्योः) यः दोषः तस्य निन्दादिना। स्वस्याः कल्पसुन्दर्याः भर्तरि पत्यौ (विकटवर्मणि)। अनुरूपभर्तृगामिनीनाम् स्वयोग्यपतियुक्तानाम्। अनुशयम् पश्चात्तापम्। अन्ये अवरोधाः अन्तःपुराणि (पत्न्यः) अवरोधान्तराणि तेषु। राज्ञः (विकटवर्मणः)। विलसितानि विलासक्रियाः। सुगूढानि नितराम् प्रच्छन्नानि। अन्विष्य आविष्कृत्य। प्रकाशयन्ती प्रकटयन्ती। मानम् ईर्ष्याजन्यम् कोपम्। अस्याः

कलिन्दवर्मा नामक कामरूप के राजा की बेटी कल्पसुन्दरी कलाओं और सुन्दरता में अप्सराओं से भी बढ़-चढ़कर है और पति पर हावी है। वह विकटवर्मा बहुत सारी रानियों के होने पर भी अकेली उसे ही प्रिया मानता है।' मैंने उससे कहा[1]—'इस (कल्प-सुन्दरी) को सेवा में मेरे भेजे सुगन्धित पदार्थों और मालाओं के साथ पहुँचो। दोनो (पति-पत्नी) समान नहीं हैं (तुम बढ़कर हो) इस दोष की निन्दा आदि से अपने (कल्पसुन्दरी के) पति के प्रति (कल्पसुन्दरी के मन में) शत्रुता पैदा करो। (अपने) योग्य पति पाने वाली वासवदत्ता[2] आदि के वर्णन से पश्चात्ताप ग्रहण कराओ। अन्य पत्नियों के साथ राजा के अत्यन्त गुप्त विहार भी प्रयत्न-पूर्वक पता लगाकर प्रगट करती हुई इस-(कल्पसुन्दरी) का कोप बढ़ाओ।'

---

१. मालती-माधव (२।१३) में कामन्दकी ने मालती के मन में माधव के प्रति इसी तरह प्रेम उत्पन्न करने के लिये अन्यों के प्रति घृणा पैदा की है : 'वरेऽन्यस्मिन् द्वेषः पितरि विचिकित्सा च जनिता।'

उक्त उपाय वात्स्यायन के कामसूत्र में भी आया है :

'परस्त्रियस्तु सूक्ष्मभावा दूतीसाध्या न तथात्मनेत्याचार्याः।' (५।२।१)

'सैनां शीलतोऽनुप्रविश्याख्यानकपटैः सुभगंकरणयोगैर्लोकवृत्तान्तैः कविकथाभिश्च तस्याश्च रूपविज्ञानदाक्षिण्यशीलानुप्रशंसाभिश्च तां रञ्जयेत्। कथमेवंविधायास्तवायमित्थंभूतः पतिरिति चानुशयं ग्राहयेत्। (५।४।२ से ३)। शृण्वत्यां चाहल्याशाकुन्तलादीन्यन्यान्यपि लौकिकानि च कथयेत्तद्युक्तानि। (५।४।१४)। विद्वेषं ग्राहयेत्पत्यौ रमणीयानि वर्णयेत्।...नायकस्यानुरागं च पुनश्च रतिकौशलं वर्णयेत्। (५।४।६३ से ६४)

वोचम्—'इत्थमेव त्वयाप्यनन्यव्यापारया नृपाङ्गनासावुपस्थातव्या। प्रत्यहं च यद्यत्तत्र वृत्तं तदस्मि [१]त्वयैव बोध्यः। मदुक्ता पुनरियमुदर्कस्वादुनोऽस्मत्कर्मणः प्रसाधनाय च्छायेवानपायिनी कल्पसुन्दरीमनुवर्तताम्' इति। ते च तमर्थं तथैवान्वतिष्ठताम्।

केषुचिद्दिनेषु गतेष्वाचष्ट मां मदम्बा 'वत्स, माधवीव [२]पिचुमन्दाश्लेषिणी यथासौ शोच्यमात्मानं [३]मन्येत तथोपपाद्य स्थापिता। किं भूयः कृत्यम्' इति। पुनरहमभिलिख्यात्मनः प्रतिकृतिम् [४]'इयममुष्यै नेया। नीतां चैनां निर्वर्ण्य सा नियतमेवं वक्ष्यति। 'नन्वस्ति कश्चिदीदृशाकारः पुमान्' इति। प्रतिब्रूह्येनाम्—

(कल्पसुन्दर्याः)। अम्बाम् धात्रीम्। अवोचम् अवदम्। न (त्यक्तः) अन्यः व्यापारः कार्यं यया। नृपाङ्गना राजपत्नी। असौ (कल्पसुन्दरी)। उपस्थातव्या सेव्या। प्रत्यहम् प्रतिदिनम्। वृत्तम् सञ्जातम्। बोध्यः सूचनीयः। मया उक्ता कथिता। पुनः तु। इयम् (पुष्करिका)। उदर्कः परिणामः स्वादुः मधुरः यस्य तस्य। अस्माकम् (मम) कर्मणः। प्रसाधनाय सम्पादनाय। अनपायिनी अविच्छिन्ना (सततलग्ना)। अनुवर्तताम् अनुसरतु। ते धात्री च पुष्करिका च। अर्थम् कार्यम्। तथा उक्तानुसारेण। अन्वतिष्ठताम् अकुरुताम्।

गतेषु व्यतीतेषु। आचष्ट अवदत्। माम् (उपहारवर्माणम्)। अम्बा (वृद्धा) धात्री। वत्स (हे) पुत्र। माधवी वासन्ती ('वासन्ती माधवी लता' इति अमरः। मधौ पुष्प्यति इति अण्)। पिचुमन्दाश्लेषिणी निम्बवृक्षाश्रिता ('पिचुमन्दश्च निम्बे' इति अमरः। पिचुम् कुष्ठविशेषम् मन्दयति इति)। असौ (कल्पसुन्दरी)। शोच्यम् शोचनीयम्। आत्मानम् स्वम् (कल्पसुन्दरीम्)। उपपाद्य सयुक्तिकम् संबोध्य। स्थापिता कृता। भूयः पुनः। कृत्यम् करणीयम्। अभिलिख्य चित्रयित्वा। आत्मनः स्वस्य। प्रतिकृतिम् आलेख्यम् (चित्रम्)। अमुष्यै तस्यै (कल्पसुन्दर्यै)। निर्वर्ण्य निपुणम् निरीक्ष्य। नियतम् निश्चितम्। वक्ष्यति वदिष्यति। ननु (प्रश्ने)। ईदृशः आकारः यस्य सः। पुमान् पुरुषः। प्रतिब्रूहि उत्तरय। एनाम् (कल्पसुन्दरीम्)।

फिर धाय से यह बोला—'इसी तरह अन्य कार्यों से नाता तोड़ तुम भी उस रानी की सेवा में उपस्थित होना। प्रतिदिन जो-जो घटना वहाँ घटे उस-उसके बारे में तुम्हीं को मुझे बताना है। और यह (पुष्करिका) मेरे कहने से परिणाम में सुन्दर मेरी योजना सफल बनाने के लिए परछाईं की भाँति कभी न हटने वाली बनकर कल्पसुन्दरी का अनुसरण करे। उन दोनो ने वह काम उसी (बताये हुये) तरीके से किया।

कुछ दिन बीतने पर मेरी धाय ने मुझसे बताया—'बेटा, नीम से लिपटी चमेली की भाँति वह अपने को शोचनीय (अभागी) माने, ऐसा तर्क द्वारा उसे बना दिया गया है। अब क्या करना है?' मैंने अपना चित्र फिर से बनाकर 'यह उसके पास ले जाओ। ले जाया गया यह (चित्र) गौर से देखकर वह निश्चय ही यों कहेगी—'क्या इस आकृति का कोई (आदमी) है?' इसको उत्तर देना—'अगर हो तो क्या (होगा)?' उसका जो उत्तर वह

---

[१] त्वयावबोध्यः। [२] पिचुमर्दा। [३] मन्यते। [४] अस्मत्प्रतिकृतिरियम्।

'यदि स्यात्ततः किम्' इति। तस्य यदुत्तरं साऽऽस्दयति 'तदहमस्मि प्रतिबोधनीयः' इति। सा 'तथा' इति राजकुलमुपसंक्रम्य प्रतिनिवृत्ता [1]मामेकान्ते न्यवेदयत्--'वत्स, दर्शितोऽसौ चित्रपटस्तस्यै मत्तकाशिन्यै। चित्रीयमाणा चासौ भुवनमिदं सनाथीकृतं यद्देवेऽपि कुसुमधन्वनि नेदृशी वपुःश्रीः संनिधत्ते। चित्रमेतच्चित्रतरम्। न च तमवैमि य ईदृशमिहत्यो निर्मिमीते। केनेदमालिखितम्' इत्यादृतवती व्याहृतवती च। मया च स्मेरयोदीरितम्—'देवि, सदृशमाज्ञापयसि। भगवान्मकरकेतुरप्येवं सुन्दर इति न शक्यमेव संभावयितुम्। अथ च विस्तीर्णेयमर्णवनेमिः। क्वचिदीदृशमपि रूपं दैवशक्त्या संभवेत्। अथ तु यद्येवंरूपो रूपानुरूपशिल्पशीलविद्याज्ञानकौशलो युवा महा-

ततः तर्हि। प्रतिबोधनीयः ज्ञापनीयः। तथा इति स्वीकृत्य। उपसंक्रम्य गत्वा। प्रतिनिवृत्ता प्रत्यागता। तस्यै (कल्पसुन्दर्यै)। मत्तकाशिन्यै उत्तमाङ्गनायै [मत्ता इव काशते (दृश्यते) इति]। चित्रीयमाणा विस्मयमाना ('नमोवरिवश्चित्रङः क्यच्' इति क्यजन्तादात्मनेपदम्। 'चित्रीयते विस्मयते इत्यर्थः' अष्टाध्यायी ३।१।१९)। असौ (कल्पसुन्दरी)। सनाथीकृतम् असनाथम् सनाथम् नाथवत् कृतम् इति च्विः। यत् यस्मात्। कुसुमधन्वनि मदने। वपुषः श्रीः शोभा। संनिधत्ते समीपम् आगच्छति (अस्ति)। चित्रम् प्रतिकृतिः। चित्रकरम् अतिशयेन आश्चर्यकरम्। ईदृशम् एवम् (सुन्दरम् चित्रम्)। इहत्यः एतद्देशीयः। निर्मिमीते रचयति (चित्रयति)। आलिखितम् चित्रितम्। आदृतवती आदरम् दर्शितवती। व्याहृतवती कथितवती। मया (धात्र्या)। स्मेरया हासयुक्तया। उदीरितम् कथितम्। देवि (हे कल्पसुन्दरि)। सदृशम् उचितम्। आज्ञापयसि वदसि। भगवान् श्रीमान्। मकरकेतुः कामः। शक्यम् संभवम्। संभावयितुम् सुन्दरत्वेन निदर्शयितुम्। अथ च तथापि। विस्तीर्णा विस्तृता। अर्णवः समुद्रः नेमिः परिधिः यस्याः सा (पृथ्वी) (द्रष्टव्यम् 'कालो ह्ययं निरवधिर्विपुला च पृथ्वी' इति उत्तररामचरिते)। क्वचित् कुत्रापि। देवस्य विधातुः शक्त्या। अथ तु आस्ताम् (तिष्ठतु। अस्तु। 'अथ त्वित्यभिधेयेऽस्मिन्नास्तामपि तु चाव्ययम्' इति अजयः)। एवम् ईदृशम् रूपम् आकृतिः

देगी, वह मुझे सूचित करना।' वह 'ठीक है' कहकर राजमहल में जाकर और लौटकर एकान्त में मुझसे बोली—'बेटा, उस उत्तमाङ्गना को वह चित्र-पट दिखाया। दाँतों तले उँगली दबाकर वह 'यह संसार इस (स्वरूप) से सनाथ बनाया गया है क्योंकि भगवान् कामदेव में भी ऐसी शरीर-शोभा सन्निहित नहीं है। यह नित्र बहुत आश्चर्य-जनक है। यहाँ के ऐसे किसी व्यक्ति को नहीं जानती जो इस प्रकार का (चित्र) बनाता हो। किसने यह चित्रित किया है?' (यह) आदर-पूर्वक बोली। मैंने मुस्कराते हुये कहा—'देवी, ठीक कहती हो। भगवान् कामदेव भी इतने सुन्दर हैं, यह संभावना तक नहीं की जा सकती। लेकिन यह (समुद्र परिधि वाली) पृथ्वी विशाल है। भाग्य-बल से कहीं ऐसा रूप भी हो सकता है। अच्छा, अगर इस आकृति का सौन्दर्य-सदृश कला, स्वभाव, विद्या, ज्ञान और कुशलता से युक्त

---

१. मह्यम्।

कुलीनश्च कश्चित्संनिहितः स्यात्, स किं लप्स्यते' इति । तयोक्तम्—'अम्ब, किं ब्रवीमि । शरीरं हृदयं जीवितमिति सर्वमिदमल्पमनर्हं च । ततो न किंचिल्लप्स्यते । न चेदयं [1]विप्रलम्भस्तस्यामुष्य दर्शनानुभवेन यथेदं चक्षुश्चरितार्थं भवेत्तथानुग्रहः कार्यः' इति । भूयोऽपि मया दृढतरीकर्तुमुपन्यस्तम्—'अस्ति कोऽपि राजसूनुर्नि[2]गूढं चरन् । अमुष्य वसन्तोत्सवे सह सखीभिर्नगरोपवनविहारिणी रतिरिव विग्रहिणी यदृच्छया दर्शनपथं गतासि । गतश्चासौ कामशरैकलक्ष्यतां मामन्ववर्तिष्ट । मया च वामन्योन्यानुरूपैरन्यदुर्लभैराकारादिभिर्गुणातिशयैश्च प्रेर्यमाणया तद्रचितैरेव कुसुमशेखरस्रगनुलेपनादिभिश्चिरमुपासितासि । सादृश्यं

यस्य सः एवंरूपः । रूपस्य सौन्दर्यस्य अनुरूपम् सदृशम् शिल्पम् कला शीलम् स्वभावः विद्या (अष्टादशप्रकारा) ज्ञानम् (लिप्यादीनाम्) कौशलम् नैपुण्यम् च यस्य तादृशः रूपानुरूपशीलविद्याज्ञानकौशलः । महान् च असौ कुलीनः उच्चकुलोत्पन्नः च । संनिहितः निकटस्थितः । लप्स्यते प्राप्स्यते । जीवितम् जीवनम् । अनर्हम् अयोग्यम् । ततः तस्मात् । चेत् यदि । विप्रलम्भः छलम् । (तर्हि) । तस्य पूर्वोक्तस्य । अमुष्य अस्य (तरुणस्य) । चरितः पूर्णः अर्थः मनोरथः यस्यः तत् (सार्थकम्) । अनुग्रहः कृपा । कार्यः करणीयः । भूयः पुनः । मया (वृद्धया) । दृढतरीकर्तुम् (अनुरागम्) बद्धमूलीकर्तुम् । उपन्यस्तम् कथितम् । राज्ञः नृपस्य सूनुः पुत्रः । निगूढम् प्रच्छन्नम् । चरन् भ्रमन् । अमुष्य अस्य । विग्रहिणी शरीरधारिणी । यदृच्छया दैववशात् । दर्शनपथम् दृष्टिविषयम् । गता प्राप्ता । कामस्य शराणाम् एकलक्ष्यताम् एकवेध्यताम् । एकः च असौ लक्ष्यः वेध्यः च तत्ताम् । अन्ववर्तिष्ट अनुसृतवान् । मया वृद्धया । वाम् युवयोः (तव च तरुणस्य च) । अन्योन्यानुरूपैः परस्परसदृशैः । अन्येषु दुर्लभैः अन्यदुर्लभैः । गुणानाम् अतिशयैः आधिक्यैः । प्रेर्यमाणया नोदितया । तेन रचितैः निर्मितैः तद्रचितैः । कुसुमशेखरः पुष्पमयो शिरोमाला च स्रक् माला च अनुलेपनम् उद्वर्तनम् च आदौ येषाम् तैः (वस्तुभिः) । चिरम् बहुकालम् । उपासिता सेविता [तासां मनोहराण्युपायनानि ताम्बूलमनुलेपनं स्रजमङ्गुलीयकं वासो वा तेन प्रहितं दर्शयेत् इति वात्स्यायनः (५।४।३५) ।]।

युवक और अत्यन्त कुलीन कोई व्यक्ति उपस्थित हो तो वह क्या पायेगा ?' वह बोली—'माँ, क्या कहूँ ? शरीर, हृदय और जीवन—यह सब थोड़ा और अयोग्य (मूल्य) है, अतः वह कुछ न पायेगा । यदि यह छल नहीं है तो पूर्वोक्त इस–(युवक) के दर्शन-अनुभव से यह दृष्टि सफल-मनोरथ हो, ऐसी कृपा करो ।' मैंने पुनः और पक्का करने के लिये कहा—'एक राजकुमार छिपे तौर पर पर्यटन कर रहा है । वसन्त-उत्सव में सहेलियों के साथ नगर के उद्यान में विहार करती हुई शरीरधारी रति की भाँति तुम संयोग से इसको दृष्टिगोचर हुई हो । काम के वाणों का पूरा-पूरा निशाना बना हुआ वह मेरे पीछे लगा । तुम दोनो के परस्पर अनुरूप, अन्यों के लिये दुर्लभ आकार आदि और गुणाधिक्य से प्रेरित होती हुई मैंने उसके द्वारा प्रस्तुत फूल की शिरोमाला, माला, उबटन आदि से चिरकाल तक तुम्हारी सेवा की है ।

---

[1] स्यादमु०; स्यात्तस्या अमुष्य । [2] अवरुद्धः ।

च स्वमनेन स्वयमेवाभिलिख्य [1]त्वत्समाधिगाढत्वदर्शनाय प्रेषितम्। एष चेदर्थो निश्चितस्तस्यामुष्यातिमानुषप्राणसत्त्वप्रज्ञाप्रकर्षस्य न किंचिद्दुष्करं नाम। तमद्यैव दर्शयेयम्। संकेतो देयः' इति। तया तु किंचिदिव ध्यात्वा पुनरभिहितम्—'अम्ब, तव नैतदिदानीं गोप्यतमम्। अतः कथयामि। मम तातस्य राज्ञा प्रहारवर्मणा सह महती प्रीतिरासीत्। मातुश्च मे मानवत्याः प्रियवयस्या देवी प्रियंवदासीत्। ताभ्यां पुनरजातापत्याभ्यामेव कृतः समयोऽभूत्—'आवयोः पुत्रवत्याः पुत्राय दुहितृमत्या दुहिता देया' इति। तातस्तु मां जातां प्रनष्टापत्या प्रियंवदेति प्रार्थयमानाय विकटवर्मणे दैवाद्दत्तवान्। अयं च निष्ठुरः पितृद्रोही नात्युपपन्नसंस्थानः कामोपचारेष्वलब्धवैचक्षण्यः कलासु काव्यनाटकादिषु मन्दा-

सादृश्यम् चित्रम्। स्वम् स्वकीयम्। अभिलिख्य लिखित्वा। तव समाधेः ध्यानस्य गाढत्वम् गभीरत्वम् तस्य दर्शनाय त्वत्समाधिगाढत्वदर्शनाय। एषः (पूर्वोक्तः)। चेत् यदि। अर्थः विषयः। तस्य पूर्वोक्तस्य। अमुष्य अस्य (युवकस्य)। मानुष्यम् अतिक्रान्ता अतिमानुषः प्राणः बलम् च सत्त्वम् पराक्रमः च प्रज्ञा बुद्धिः च तासाम् प्रकर्षः आधिक्यम् यस्य तस्य। दुष्करम् असाध्यम् (अवाञ्छितात् पत्युः मोचयिष्यति)। सङ्केतः इङ्गितम्। ध्यात्वा विचार्य। अभिहितम् उक्तम्। अतिशयेन गोप्यम् गोप्यतमम्। तातस्य पितुः। प्रीतिः प्रेम। प्रियवयस्या प्रियसखी। देवी राज्ञी। न जातम् उत्पन्नम् अपत्यम् ययोः ताभ्याम्। समयः शपथः। आवयोः (द्वयोः मध्ये)। पुत्रवत्याः या पुत्रजननी तस्याः। दुहितृमत्या या दुहितृ-(पुत्री) जननी तया। दुहिता पुत्री। देया विवाहनीया। तातः पिता। प्रनष्टम् मृतम् अपत्यम् पुत्रः यस्याः सा। प्रार्थयमानाय याचमानाय। निष्ठुरः निर्दयः। पितृद्रोही पितृतुल्यपितृव्यानिष्टकारकः। न अत्युपपन्नम् विशेषेण अनुगुणम् संस्थानम् (अवयव-) सन्निवेशः यस्य सः ('उपपन्नं समृद्धे च संपन्नेऽनुगुणेऽपि च' इति केशवः। 'संस्थानं मरणे गात्रे संनिवेशे च वर्तते' इति भागुरिः) (कुरूपः)। कामोप-

अपना चित्र उसने स्वयं बनाकर तुम्हारे ध्यान की गंभीरता देखने के लिये भेजा है। यदि यह बात निश्चित हो तो पूर्वोक्त मानवाधिक (अलौकिक) बल, पराक्रम और बुद्धि के आधिक्य वाले इस (तरुण) के लिये कुछ भी करना कठिन नहीं है (तुम्हें अवांछित पति से छुटकारा दिला सकता है)। उसे आज ही दिखा सकती हूँ। इशारा देना।' उसने कुछ विचार कर फिर कहा—'माँ, यह बात अब तुम्हारे लिये विशेष गोपनीय नहीं रही, इसलिये बताती हूँ। राजा प्रहारवर्मा से मेरे पिता की परम मित्रता थी और प्रियंवदा मेरी माँ मानवती की प्यारी सहेली थीं। उन दोनो (सहेलियों) ने संतान उत्पन्न होने के पहले ही तय किया था कि हम दोनो में से जिसके पुत्र हो उसके पुत्र को जिसके पुत्री हो वह पुत्री ब्याहेगी। उधर पिता जी ने मेरे पैदा होने पर मुझे यह सोचकर कि प्रियंवदा की संतान मर गई है माँग रहे विकटवर्मा को दैव-वश दे दिया। यह निर्दय पितृ-(चाचा) द्रोही अयोग्य शरीर-गठन वाला, काम-क्रीड़ाओं की कुशलता प्राप्ति से दूर, कलाओं और काव्य, नाटक आदि में अल्प रुचि

---

१. त्वत्समधिगमाय गाढं त्वद्दर्शनाय।

भिनिवेशः शौर्योन्मादी दुर्विकत्थनोऽनृतवादी चास्थानवर्षी । नातिरोचते म एष भर्ता विशेषतश्चैषु वासरेषु यदयमुद्याने मदन्तरङ्गभूतां पुष्करिकामप्युपान्तवर्तिनीमनादृत्य मयि [1]बद्धसापत्न्यमत्सरामनात्मज्ञामात्मनाटकीयां रमयन्तिकां [2]नामापत्यनिर्विशेषं मत्संवर्धितायाश्चम्पकलतायाः स्वयमवचिताभिः सुमनोभिरलमकार्षीत् । मदुपभुक्तमुक्ते चित्रकूटगर्भवेदिकागते रत्नतल्पे तया सह व्यहार्षीत् । अयोग्यश्च पुमानवज्ञातुं च प्रवृत्तः ; तत्किमित्यवेक्ष्यते । परलोकभयं चैहिकेन दुःखेनान्तरितम् । अविषह्यं हि यो योषितामनङ्गशरनिषङ्गीभूतचेतसामनिष्टजनसंवास-

चारेषु कामक्रीडासु । न लब्धम् प्राप्तम् वैचक्षण्यम् कुशलता येन सः । कलासु (चतुःषष्ट्याम्) काव्येषु श्रव्यरूपेषु नाटकेषु दृश्यरूपेषु आदिपदेन चम्प्वाख्यायिकादिषु । मन्दः अल्पः अभिनिवेशः प्रवृत्तिः यस्य सः । शौर्योन्मादी वीरतोन्मत्तः । दुष्टः च विकत्थनः आत्मश्लाघारतः च । अनृतवादी मिथ्याभाषणशीलः । अस्थानवर्षी अपात्रदाता ! अतिरोचते नितराम् रोचते प्रीतिकरः भवति । मे मह्यम् ('रुच्यर्थानां प्रीयमाणः' इति चतुर्थी) । एषु वासरेषु अधुना । यत् यतः । अयम् (मम पतिः) । मम अन्तरङ्गभूताम् आत्मीयाम् । उपान्तवर्तिनीम् समीपस्थिताम् । अनादृत्य अवज्ञाय । सपत्न्यस्य भावः सापत्न्यम् सपत्नीत्वम् तस्य मत्सरः असह्यता । बद्धः सापत्न्यमत्सरः यया ताम् । अनात्मज्ञाम् स्वयोग्यताज्ञानरहिताम् । आत्मनः स्वस्य नाटकीयाम् नर्तकीम् ('नाटकीयो नृत्तकरः' इति अजयः) । अपत्यनिर्विशेषम् सन्तानतुल्यम् यथा स्यात् तथा (क्रियाविशेषणम्) । मया संवर्धितायाः (जलसेकादिना) पालितायाः । चम्पकलतायाः अल्पचम्पकस्य । अवचिताभिः लूनाभिः । सुमनोभिः पुष्पैः । अलमकार्षीत् अलङ्कृतवान् । मया (आदौ) उपभुक्तम् अनुभूतम् (पश्चात् च) मुक्तम् त्यक्तम् तस्मिन् । चित्रकूटः क्रीडापर्वतः तस्य गर्भे गुहायाम् या वेदिका परिष्कृता भूः तत्र गते स्थिते । रत्नतल्पे रत्ननिर्मिते शयने । व्यहार्षीत् विहारम् कृतवान् । पुमान् पुरुषः । अवज्ञातुम् तिरस्कर्तुम् । प्रवृत्तः लग्नः । किमिति कथम् । अवेक्ष्यते काङ्क्ष्यते । परलोकस्य भयम् । इह भवेन ऐहिकेन । अन्तरितम् व्यवधानीकृतम् । अविषह्यम् असह्यम् । अनङ्गस्य कामस्य शराणाम् निषङ्गीभूतम् तूणीरीभूतम् (आधारी-

वाला, वीरता से प्रमत्त, डींग मारने वाला, झूठा और अयोग्यों को लुटाने वाला है । यह पति मुझे फूटी आँखों नहीं भाता । विशेषतः आजकल । (क्योंकि इधर) इसने उपवन में मेरी आत्मीय पास स्थित पुष्करिका की अवहेलना कर मेरे प्रति सौतिया डाह रखने वाली अपनी हैसियत न पहचानने वाली अपनी नर्त्तकी रमयन्तिका को मेरे द्वारा सन्तान के समान पालीपोसी गई चम्पक-लता से स्वयं तोड़े गये फूलों से अलंकृत किया है । क्रीड़ा-पर्वत की गुफा की परिष्कृत भूमि में स्थित जिस रत्न-निर्मित शय्या का उपयोग कर मैंने छोड़ा था, उस पर उसने उस (नर्तकी) के साथ विहार किया । आदमी अयोग्य है और तिरस्कार करने पर आ गया है तो कैसे परवाह की जा सकती है ? परलोक का डर इहलोक के दुःख ने ढक दिया है । कामदेव के बाणों के लिये तरकस-स्वरूप चित्त वाली नारियों को अप्रिय जन को संगति

---

१. आबद्ध । २. नामेति क्वचिन्नास्ति ।

यन्त्रणादुःखम्। अतोऽमुना पुरुषेणमामद्यो[1]द्यानमाधवीगृहे समागमय। तद्वार्ताश्रवणमात्रेणैव हि ममातिमात्रं मनोऽनुरक्तम्। अस्ति चायमर्थराशिः। अनेना[2]मुष्य पदे प्रतिष्ठाप्य तमेवात्यन्तमुपचर्य जीविष्यामि' इति। मयापि तदभ्युपेत्य प्रत्यागतम्। अतः परं भर्तृदारकः प्रमाणम्' इति।

ततस्तस्या एव सकाशादन्तःपुर[3]निवेशमन्तर्वंशिकपुरुषस्थान् प्रमदवनप्रदेशानपि विभागेनावगम्य, अस्तगिरिकूट[4]पातक्षुभितशोणित इव शोणीभवति भानुबिम्बे, पश्चिमाम्बुधिपयःपातनिर्वापितपतङ्गाङ्गारधूमसंभार इव [5]भरितनभसि तमसि

भूतम्) चेतः यासाम् तासाम्। अनिष्टः अप्रियः च असौ जनः च तेन सह संवासः संगतिः सः एव नियन्त्रणा नियमनम् तत् एव दुःखम्। उद्याने या माधवी वासन्ती (लता) तस्याः गृहे मण्डपे। समागमय संमेलय। तस्य वार्ता उदन्तः। अतिमात्रम् अत्यन्तम्। अर्थस्य धनस्य राशिः चयः। अमुष्य (पत्युः)। पदे स्थाने। तम् (तरुणम्)। उपचर्य आराध्य। मया (वृद्धया)। अभ्युपेत्य अङ्गीकृत्य। प्रत्यागतम् निवृत्तम्। अतः अस्मात्। परम् पश्चात्। भर्तृदारकः राजपुत्रः (भवान्)। प्रमाणम् (निर्णेतुम्) समर्थः।

सकाशात् समीपात्। अन्तःपुरस्य निवेशम् प्रदेशम्। अन्तर्वंशिकपुरुषाः अधिकृताः जनाः ('अन्तःपुरे त्वधिकृतः स्यादन्तर्वंशिको जनः' इति अमरः)। तेषाम् स्थानानि। प्रमदवनस्य क्रीडोद्यानस्य प्रदेशान् ('विज्ञेयं प्रमदवनं पुरोपकण्ठे शुद्धान्तैः सह रमते नृपस्तु यस्मिन्' इति हलायुधः)। विभागेन पृथक्पृथक्रूपेण। अवगम्य विदित्वा। अस्तगिरेः अस्ताचलस्य यः कूटः शिखरम् तस्मात् यः पातः पतनम् तेन क्षुभितम् निर्गतम् यत् शोणितम् रक्तम् यस्य सः। शोणीभवति रक्तीभवति (सति)। भानोः सूर्यस्य बिम्बे मण्डले। पश्चिमाम्बुधेः पश्चिमसमुद्रस्य पयसि जले पातेन पतनेन निर्वापितः शान्तीकृतः पतङ्गः सूर्यः एव अङ्गारः प्रदीप्तकाष्ठखण्डः तस्य धूमसंभारः धूमराशिः यस्मिन् तस्मिन्। भरितम् व्याप्तम् नभः येन तस्मिन्। तमसि अन्धकारे।

में बँधे रहने का दुःख असह्य होता है; इसलिये उस पुरुष से आज बगीचे की वासन्ती लता के झुरमुट में मेरी मुलाकात करा दो। उसका समाचार सुनने भर से मेरा मन अत्यन्त अनुरक्त हो गया है। यह धन-राशि है। इससे उस–(पति) के स्थान पर उस–(युवक) को बैठाकर परम आराधना कर जीवित रहूँगी।' मैं भी वह बात स्वीकार कर लौट आई। इसके पश्चात् राजपुत्र (आप ही) निर्णय लेने में समर्थ हैं।

तब उसी से रनिवास के स्थान, रनिवास के अधिकारियों के ठिकाने और क्रीड़ा-उद्यान को जगहें अलग-अलग समझकर अस्ताचल के शिखर से गिरने के कारण निकले हुये रक्त से युक्त-से सूर्य-मण्डल के लाल होने पर, पश्चिम समुद्र के जल में गिरने से बुझ गये सूर्य-रूपी अङ्गारे के धूम-पटल से युक्त-से तथा आकाश व्याप्त कर देने वाले अन्धकार के फैल जाने पर,

---

१. अद्य श्वा वा। २. अमुं स्वं पदे। ३. संनिवेशम्। ४. शिखर ५. भरिततमसि नभसि।

विजृम्भिते, परदारपरामर्शोन्मुखस्य ममाचार्यकमिव कर्तुमुत्थि[1]ते गुरु[2]परिग्रहश्लाघिनि ग्रहाग्रेसरे क्षपाकरे, कल्पसुन्दरीवदनपुण्डरीकेणेव मद्दर्शनातिरागप्रथमोपनतेन स्मयमानेन चन्द्रमण्डलेन संधुक्षमाणतेजसि[3]भुवनविजिगीषोद्यते देवे कुसुमधन्वनि, यथोचितं शयनीयमभजे । व्यचीचरं च—'सिद्धप्राय एवायमर्थः । किंतु परकलत्रलङ्घनाद्धर्मपीडा भवेत्, साप्यर्थकामयोर्द्वयोरुपलम्भे शास्त्रकारैरनुमतैवेति । गुरुजनवन्धमोक्षोपाय[4]संधिना मया चैष व्यतिक्रमः कृतः, तदपि पापं निर्हृत्य कियत्यपि [5]धर्मकलया मां [6]समग्रयेदिति । अपि त्वेतदाकर्ण्य देवो राजवाहनः

विजृम्भिते'प्रसृते (सति)। परस्य अन्यस्य दाराः पत्नी तेषाम् परामर्शः गमनम् तत्र उन्मुखस्य प्रवृत्तस्य । मम (तरुणस्य) । आचार्यस्य कर्म आचार्यकम् (आचार्य+वुञ्)। उत्थिते उदिते। गुरोः बृहस्पतेः परिग्रहः पत्नी (तारा) ताम् श्लाघते अभिलषति तच्छीले। ग्रहाग्रेसरे ग्रहप्रधाने । क्षपाकरे चन्द्रे ('नक्षत्रेशः क्षपाकरः' इति अमरः)। कल्पसुन्दर्याः वदनम् मुखम् एव पुण्डरीकम् श्वेतकमलम् तेन मम दर्शने यः अतिरागः अत्यधिकः अनुरागः तेन प्रथमम् प्राक् उपनतेन प्राप्तेन। स्मयमानेन ईषत् हसता। चन्द्रस्य मण्डलेन बिम्बेन । संधुक्षमाणम् प्रवृद्धम् तेजः यस्य तस्मिन्। भुवनस्य लोकस्य विजिगीषा विजेतुम् इच्छा तत्र उद्यते प्रवृत्ते (सति)। देवे भगवति। कुसुमधन्वनि कामे। यथोचितम् यथायोग्यम्। शयनीयम् शयनम्। अभजे अधिष्ठितवान् । व्यचीचरम् अचिन्तयम्। सिद्धप्रायः बाहुल्येन सिद्धः सफलः ! अर्थः प्रयोजनम्। परस्य अन्यस्य कलत्रस्य पत्न्याः लङ्घनात् गमनात्। धर्मपीडा धर्मनाशः। सा (धर्मपीडा)। उपलम्भे प्राप्तौ। अनुमता अनिषिद्धा। गुरुजनस्य माता-पित्रोः वन्धः वन्धनम् मोक्षः मोचनम् तयोः उपायस्य संधिः साधकता तेन। व्यतिक्रमः (धर्म-) लङ्घनम्। अपि च। निर्हृत्य दूरीकृत्य। कियत्या स्वल्पया। धर्मस्य (पितृमोचनरूपस्य) कलया अंशेन। समग्रयेत् पूर्णम् (उन्नतम्) कुर्यात्। अपि तु किन्तु। आकर्ण्य श्रुत्वा। देवः महाराजः। सुहृदः सखायः। वक्ष्यन्ति

पराई नारी से मिलन की ओर प्रवृत्त मेरे आचार्य का कर्म सम्पादित-सा करने के लिये बृहस्पति की पत्नी के इच्छुक ग्रहों में प्रधान चन्द्रमा के उदित होने पर, कल्पसुन्दरी के श्वेत कमल तुल्य मुख की भाँति मेरे दर्शन की प्रबल लालसा से पहले (ही) आ पहुँचे मुस्कराते हुये चन्द्रमण्डल के द्वारा सुलगाये जा रहे तेज वाले भगवान् कामदेव के लोक-विजय की इच्छा करने के लिये प्रवृत्त होने पर अपने लायक शय्या ग्रहण की और सोचने लगा—'यह उद्देश्य अधिकांशतः सफल ही है, लेकिन पर-नारी-गमन से धर्म को चोट पहुँचेगी। वह (चोट) भी शास्त्रकारों के द्वारा समर्थित है यदि अर्थ और काम दोनो प्राप्त हों। मैंने यह धर्म-उल्लंघन पूज्यजनों (माता-पिता) की बन्धन से मुक्ति के उपाय का साधक होने के लिये किया है। वह, यह पाप दूर कर धर्म के एक अंश से मुझको पूर्ण (उन्नति-शील) बनायेगा। लेकिन यह सुनकर

---

१. उपस्थिते। २. परिग्रहग्रहण। ३. त्रिभुवन। ४. अभिसंधिना। ५. धर्मः कलया। ६. समाश्रयेत्।

सुहृदो वा किं नु वक्ष्यन्ति' इति चिन्तापराधीन एव निद्रया परामृश्ये ।[1]अदृश्यत च स्वप्ने हस्तिवक्त्रो भगवान् । आह स्म च—'सौम्य उपहारवर्मन् , मा स्म ते दुर्विकल्पो भूत् । यतस्त्वमसि मदंशः । [2]शंकरजटाभारलालनोचिता सुरसरिदसौ वरवर्णिनी । [3]सा च कदाचिन्मद्विलोडनासहिष्णुर्मामशपत्—'एहि मर्त्यत्वम्' इति । [4]अशप्यत मया च—'यथेह बहुभोग्या तथा प्राप्यापि मानुष्यकमनेकसाधारणी भव' इति । [5]अभ्यर्थितश्चानया एकपूर्वा पुनस्त्वमेवोपचर्य यावज्जीवं

वदिष्यन्ति । चिन्तया पराधीनः विवशः । परामृश्ये स्पृष्टः अभवम् । अदृश्यत दृष्टः । हस्तिनः गजस्य वक्त्रम् मुखम् इव वक्त्रम् यस्य (गणेशः) । आह वदति । मा स्म भूत् न भवतु । दुर्विकल्पः दुर्विचारः । मम अंशः अवतारः मदंशः । शङ्करस्य शिवस्य जटाभारेण जटाजूटेन यत् लालनम् धारणम् तत्र उचिता अभ्यस्ता । सुरसरित् गङ्गा । असौ (कल्पसुन्दरी) । वरवर्णिनी सुन्दरी ('उत्तमा वरवर्णिनी' इति अमरः) । सा (गङ्गा) । कदाचित् एकदा । मया यत् विलोडनम् क्रीडा तत्र असहिष्णुः असहनशीला (सती) । माम् (गणेशम्) । अशपत् शापम् दत्तवतो । एहि प्राप्नुहि । मर्त्यत्वम् नरत्वम् । अशप्यत (तस्यै) शापः दत्तः । यथा येन रूपेण । इह अत्र (स्वर्गे) । बहुभिः (नदीत्वेन स्नानादिना) भोग्या सेव्या । तथा तेन प्रकारेण । मानुष्यकम् नरजन्म । अनेकसाधारणी अनेकभोग्या (द्विभोग्या वा) । अभ्यर्थितः प्रार्थितः । अनया (गङ्गया) । एकः पूर्वम् यस्याः ताम् । उपचर्य संसेव्य । यावज्जीवम् जीवन-

महाराज राजवाहन या मित्र न जाने क्या कहें' (यह) सोचकर चिन्ता से विवश होते हुये ही मेरा स्पर्श निद्रा ने कर लिया । सपने में भगवान् गणेश दिखाई पड़े और बोले—'सौम्य उपहारवर्मा, तुम्हारे मन में दुर्विचार न पैदा हों क्योंकि तुम मेरे अंश (अवतार) हो । शङ्कर-जटाजूट में दुलार पाने योग्य गंगा, उस उत्तमाङ्गना के रूप में है । उस (गंगा) ने एक बार मेरे आलोड़न-विलोड़न को न सहकर मुझे शाप दे दिया था—'नर-जन्म पाओ ।' मैंने भी शाप दे दिया था—'जिस तरह यहाँ बहुतों के द्वारा भोगी जाने योग्य हो, उसी प्रकार मानव-योनि में जन्म लेकर समान रूप से अनेक की होओ ।' उस (गंगा) ने अनुनय-विनय की—'पहले एक की होकर फिर तुम्हारी ही सेवा कर ; जीवन भर निरत रहूँ । (तो) यह उद्देश्य

---

१. अदृश्यत स्वप्ने भगवान्भर्गः । २. मज्जटा । ३. तां च कदाचिद्गजाननो जलक्रीडां कुर्वन्नतिव्यगाहत । सा च सपत्नीतनयविहितां विलोडनामसहमाना तमशपत् । ४. सोऽप्यहेतुकशापप्रदानात्क्रुद्धस्तामशपत् । ५. ततस्तेन प्रतिशप्ता सा विलक्षेव मामुपसृत्य सगद्गदमगदत्—'स्वामिन्, अहमनवरतभवच्चरणवरिवस्याविधायिनी न शापार्हा ।' इत्याकर्ण्य कृपाक्रान्तमनसा मयोक्तम्–'प्रिये नास्य शापोऽन्यथा भवितुमर्हति । परं त्वदनुग्रहार्थं महमात्मनोंऽशं द्विधा विभज्य विकटवर्मनृपरूपेण मिथिलापतिप्रहारवर्मात्मजोपहारवर्मात्मना च मर्त्यलोकेऽवतरिष्यामि । त्वं च कामरूपाधिपतेः कलिङ्गवर्मनाम्नः कन्या कल्पसुन्दरी नाम भूत्वा ज्यायसा मदंशेन विकटवर्मणा प्रथममल्पीयांसमनेहसं संगता तस्मिन्विकटवर्मणि मन्मूर्तावेव लयमुपगते पुनरुपहारवर्मात्मकं कनीयांसं मदंशमुपलभ्य तेन साकं विविधसुखोपभोगमनुभविष्यसि । तदयमर्थः ...इत्यादि ।

रमेयम्' इति । तदयमर्थो भव्य एव भवता निराशङ्कयः' इति । प्रतिबुध्य च प्रीतियुक्तस्तदहरपि प्रियासंकेतव्यतिकरादिस्मरणेनाहमनैषम् ।

अन्येद्युरनन्यथावृत्तिरनङ्गो मय्येवेषुवर्षमवर्षत् । अशुष्यच्च ज्योतिष्मतः प्रभामयं सरः । प्रासरच्च तिमिरमयः कर्दमः । [1]कार्दमिकनिवसनश्च दृढतरपरिकरः खड्गपाणि[2]रुपहृतप्रकृतोपस्करः स्मरन्मातृदत्तान्यभिज्ञानानि राजमन्दिरपरिखामुदम्भसमुपातिष्ठम् । अथोपखातं मातृगृहद्वारे पुष्करिकया प्रथमसंनिधापितां वेणुयष्टिमादाय तया शायितया च परिखाम्, स्थापितया च प्राकारभित्तिम[3]लङ्घयम् ।

पर्यन्तम् । तत् अतः । अर्थः विषयः (कल्पसुन्दरीग्रहणरूपः) । भव्यः निर्दोषः (क्षेमकरः) । निराशङ्कयः न आशङ्कनीयः । प्रतिबुद्धय उत्थाय । प्रीत्या प्रसन्नतया युक्तः सहितः । अहः दिनम् । प्रियायाः (कल्पसुन्दर्याः) सङ्केतः इङ्गितम् च व्यतिकरः सङ्गमः च तौ आदौ यस्य तत्स्मरणेन । अनैषम् अयापयम् ।

अन्येद्युः परस्मिन् दिने । अनन्यथावृत्तिः न विद्यते अन्यथा अन्यप्रकारा वृत्तिः व्यापारो यस्य सः (मत्पीडनपरः) । अनङ्गः कामः । इषुवर्षम् (णमुल्) इषून् बाणान् वर्षयित्वा । अशुष्यत् शोषम् प्राप्तम् । ज्योतिष्मतः सूर्यस्य । प्रभामयम् दीप्तिरूपम् (ताद्रूप्ये मयट्) । प्रासरत् प्रसारम् प्राप्तः । तिमिरमयः अन्धकाररूपः । कर्दमः पङ्कः । कार्दमिकनिवसनः कार्दमिकम् कर्दमेन अक्तम् निवसनम् वस्त्रम् यस्य सः (तादृशः सन्) ('तेन रक्तं रागात्' इति अधिकारे 'लाक्षारोचनाट्ठक्' इति सूत्रे 'शकलकर्दमाभ्यामुपसंख्यानम्' इतिं ठक्) दृढतरः स्थिरतरः परिकरः मध्यमम् यस्य सः । खड्गः असिः पाणौ करे यस्य सः । उपहृतः अङ्गीकृतः प्रकृतः तत्कालोपयोगी उपस्करः सामग्री येन सः । मात्रा धात्र्या दत्तानि सूचितानि । अभिज्ञानानि परिचयचिह्नानि । राज्ञः नृपस्य मन्दिरे गृहे या परिखा प्राचीरसंनिकृष्टखनिः ताम् उदम्भसम् उत्कटजलाम् । उपातिष्ठम् समीपे स्थितः अभवम् । उपखातम् खातस्य परिखायाः समीपे (सामीप्यार्थे अव्ययीभावः) । मातुः धात्र्याः गृहस्य द्वारे । प्रथमम् पूर्वम् संनिधापिताम् स्थापिताम् । वेणुंयष्टिम् वंशदण्डम् । आदाय गृहीत्वा । तया (वेणुयंष्ट्या) । शायितया प्रसारितया (खातस्य तटयोः तस्याः उभे मुखे स्थापयित्वा) । स्थापितया ऊर्ध्वीकृतया (वेणुयष्ट्या) । प्राकारस्य

शुभ हो; आपको आशंका-रहित रहना चाहिये ।' तब उठकर प्रसन्नता-सहित वह दिन भी मैंने प्रिया-संकेत, मिलन आदि की याद में बिताया ।

दूसरे दिन कामदेव ने सब ओर से ध्यान हटाकर मुझ पर बाण-वर्षा कर दी । सूर्य का प्रभामय ताल सूख गया । अन्धकारमय पंक फैल गया । कीचड़-सने कपड़े पहनकर कमर कसकर बाँधकर हाथ में तलवार लेकर तत्काल उपयोगी सामान संग्रह कर धाय के द्वारा दी गई पहचानें याद करता हुआ पानी से खूब भरी राज-महल की खाई के पास धाय के घर के दरवाजे पर पुष्करिका के द्वारा पहले (ही) रखा बांस (का डण्डा) लेकर उसे लिटाकर (दोनो किनारों पर रखकर पुल-सा बनाकर) खाई (पार की) और खड़ा कर परकोटे की

---

[1] अहं च कार्द० । [2] उपसंहृतप्रस्तुत । [3] अत्यलङ्घयम् ।

अधिरुह्य पक्वेष्टकचितेन गोपुरोपरितलाधिरोहिणा[1] सोपानपथेन भुवमवातरम्। अवतीर्णश्च बकुलवीथीमतिक्रम्य चम्पकावलिवर्त्मना मनागिवोपसृत्योत्तराहि करुणं चक्रवाकमिथुनरवमश्रृणवम्। पुनरुदीचा पाटलिपथेन स्पर्शलभ्य[2]विशालसौधकुड्योदरेण शरक्षेपमिव गत्वा पुनः प्राचा पिण्डीभाण्डीरखण्डमण्डितोभयपार्श्वेन सैकतपथेन किंचिदुत्त[3]रमतिक्रम्य पुनरवाचीं चूतवीथीमगाहिषि। ततश्च गहनतरमुदरोपरचितरत्नवेदिकं माधवीलतामण्डपमीषद्विवृत[4]समुद्गकोन्मिषितभासा

प्राचीरस्य भित्तिम् कुड्यम्। अधिरुह्य आरुह्य। पक्वाभिः भर्जिताभिः इष्टकाभिः चितेन व्याप्तेन। गोपुरस्य पुरद्वारस्य उपरितलम् ऊर्ध्वभागम् अधिरोहति इति गोपुरोपरितलाधिरोहिणा। भुवम् भूमिम्। अवातरम् अवतीर्णवान्। बकुलानाम् बकुलाख्यवृक्षाणाम् वीथीम् श्रेणीम्। अतिक्रम्य उल्लङ्घ्य। चम्पकानाम् चम्पकवृक्षाणाम् या अवलिः श्रेणी तस्याः वर्त्मना मार्गेण। मनाक् अल्पम्। उपसृत्य गत्वा। उत्तराहि उत्तरस्याम् दिशि कुत्रापि दूरवर्तिनि स्थाने ('आहि च दूरे' इति आहिप्रत्ययः। अव्ययपदम्)। करुणम् दैन्यपूर्णम्। चक्रवाकयोः कोकयोः मिथुनस्य युगलस्य रवम् कूजितम्। अश्रृणवम् आकर्णितवान्। उदीचा उत्तरया दिशा। पाटलीनाम् पाटलावृक्षाणाम् पथा मार्गेण। स्पर्शेन लभ्यम् लब्ध्यम् विशालम् महत् सौधस्य प्रासादस्य कुड्यम् भित्तिः तस्य उदरेण मध्यभागेन। शरक्षेपम् बाणविषयपर्यन्तम्। प्राचा पूर्वया दिशा। पिण्डी रक्ताशोकवृक्षः ('रक्ताशोके तु पिण्डी स्यात्' इति वैजयन्ती। 'पिण्डी स्यात्तगरेऽलाबूखर्जूरीभेदयोरपि' इति विश्वः) भाण्डीरो मल्लिका तयोः खण्डम् समूहः तेन मण्डितौ शोभितौ उभौ पार्श्वौ यस्य तेन। सैकतेन बालुकामयेन पथा मार्गेण। उत्तरम् उत्तराम् दिशम्। अतिक्रम्य गत्वा। अवाचीम् दक्षिणाम् दिशम्। चूतानाम् आम्रवृक्षाणाम् वीथीम् श्रेणीम्। अगाहिषि प्राविशम्। ततः तत्पश्चात्। गहनतरम् सान्द्रतरम्। उदरे मध्यभागे उपरचिता रत्नवेदिका यत्र तम् (मण्डपम्)। ईषत् अल्पम् यथा स्यात् तथा विवृतः उद्घाटितः यः समुद्गकः (मञ्जुषायाः आवरणम्)। उन्मिषिता निःसृता भाः दीप्तिः यस्याः तया (दीपवर्त्या)। दीपस्य प्रदीपस्य वर्त्या वर्तिकया।

दीवाल लाँघ गया। चढ़कर पकी ईंट से बने और शहर के फाटक के ऊपर चढ़ने वाले सीढ़ी के मार्ग से जमीन पर उतरा। फिर उतरकर मौलसिरी वृक्षों की श्रेणी पारकर चम्पक वृक्षों की श्रेणी की राह पकड़कर थोड़ा ही चलकर उत्तर दिशा में चकवा-चकवी के जोड़े का आर्त्तनाद सुना। फिर उत्तर दिशा से चलकर पाटला-वृक्षों के रास्ते छूकर जाते हुये विशाल महल की दीवार के मध्य भाग से होता हुआ लगभग वाण पहुँचने की दूरी तय कर फिर पूर्व की दिशा पकड़कर लाल अशोक और मल्लिका के वृक्षों के समूह से शोभित दोनो बगलों वाले रेतीले पथ से कुछ उत्तर फिर दक्षिण दिशा की ओर चलकर आम के वृक्षों की श्रेणी में प्रवेश किया। फिर इसके बाद मध्य भाग में बनी रत्न-निर्मित वेदी वाले माधवी-लता के घने

---

१. रोहेण। २. विमलसौधकुट्टिमोदरेण। ३. अन्तरम्। ४. समुद्गकसंपुटको०।

दीपवर्त्या न्यरूपयम् । प्रविश्य चैकपार्श्वे फुल्लपुष्पनिरन्तरकुरण्टपोतपङ्क्तिभित्तिपरिगतं गर्भगृहम्, अवनिपतितारुणाशोकलता[1]मयमभिनवकुसुमकोरकपुलकलाञ्छितं प्रत्यग्रप्रवालपटलपाटल कपाटमुद्घाट्य प्राविक्षम् । तत्र चासीत्स्वा[2]स्तीर्णं कुसुमशयनम्, [3]सुरतोपकरणवस्तुगर्भाश्च कमलिनीपलाशसंपुटाः, दन्तमयस्तालवृन्तः, सुरभिसलिलभरितश्च [4]भृङ्गारकः । समुपविश्य मुहूर्तं विश्रान्तः परिमलमतिशयवन्तमाघ्रासिषम् । अश्रौष च मन्दमन्द पदशब्दम् । श्रुत्वैव संकेतगृहान्निर्गत्य रक्ताशोकस्कन्धपार्श्वव्यवहिताङ्गयष्टिः स्थितोऽस्मि । सा च सुभ्रूरसु[5]षीम-

---

न्यरूपयम् अवलोकितवान् । एकपार्श्वे एकस्मिन् भागे । फुल्लानि विकसितानि पुष्पाणि येषाम् तादृशाः निरन्तराः अविरलाः च ये कुरण्टपोताः अल्पपीतकुरवकाः ('कुरण्टस्तु सुपीतकः' इति अमरः) तेषाम् पङ्क्तिः सा एव भित्तिः कुड्यम् तया परिगतम् व्याप्तम् । गर्भगृहम् अभ्यन्तरगृहम् । अवन्याम् भूमौ पतिताः लग्नाः याः अरुणाः रक्ताः अशोकलताः अशोकशाखाः तन्मयम् तद्रचितम् । अभिनवाः नूतनाः ये कुसुमकोरकाः पुष्पमुकुलाः ते एव पुलकाः रोमाञ्चाः तैः लाञ्छितम् चिह्नितम् । प्रत्यग्रम् नवीनम् यत् प्रवालपाटलम् पल्लवसमूहः तेन पाटलम् श्वेतरक्तम् । उद्घाट्य उन्मोच्य । प्राविक्षम् प्राविशम् । सुष्ठु यथा स्यात् तथा आस्तीर्णम् स्थापितम् । कुसुमशयनम् पुष्पनिर्मितशय्या । सुरतस्य रतिक्रीडायाः उपकरणानि साधनानि वस्तूनि गर्भे येषाम् तादृशाः । कमलिन्याः पद्मिन्याः यानि पलाशानि पत्राणि तेषाम् संपुटाः द्रोण्यः । दन्तमयः गजदन्तनिर्मितः । तालवृन्तः व्यजनम् । सुरभि सुगन्धयुक्तम् सलिलम् जलम् तेन भरितः पूरितः । भृङ्गारकः जलपात्रविशेषः ('भृङ्गारः कनकालुका' इति अमरः) । मुहूर्तम् क्षणम् (यावत्) । विश्रान्तः क्लमरहितः । परिमलम् गन्धम् । अतिशयवन्तम् आधिक्ययुक्तम् (अधिकम्) आघ्रासिषम् आघ्रातवान् । अश्रौषम् श्रुतवान् । मन्दमन्दम् धीरम् । पदस्य चरणस्य शब्दम् ध्वनिम् । रक्ताशोकस्कन्धस्य पार्श्वे एकस्मिन् प्रदेशे व्यवहिता अङ्गयष्टिः यस्य तादृशः (सन्) । सुभ्रूः शोभना भ्रूः यस्याः सा । असुषीमकामा न सुषीमः शीतलः कामः मन्मथः यस्याः सा

मण्डप में दीपक की जरा-सा खुले आवरण से झाँक रही रोशनी वाली बत्ती से (के प्रकाश में) देखा । एक भाग में प्रवेश कर खिले फूल वाली लगातार उगे हुये जरा-जरा पीले कुरवक-वृक्षों की पाँतों की दीवाल से व्याप्त अन्दर वाले कमरे में भूमि पर गिरी लाल अशोक की शाखा से व्याप्त, नवीन पुष्प-मुकुल-रूपी रोमांच से चिह्नित ताजे पत्तों के समूह से गुलाबी किवाड़ खोलकर प्रविष्ट हुआ । वहाँ भली-भाँति बिछी हुई फूलों की सेज थी, कमलिनी के पत्तों के दोने थे जिनके अन्दर के भाग में केलि-क्रीड़ा का साधन बनने वाली वस्तुयें थीं, हाथी के दाँत का पंखा था और सुगन्धित जल से भरा भृङ्गारक (एक प्रकार का बरतन) था । घड़ी भर बैठकर विश्राम कर अत्यधिक सुगन्ध पाई । पैर की धीमी-धीमी आवाज सुनी । सुनते ही मैं संकेत-गृह से निकलकर लाल अशोक के तने के एक हिस्से से अङ्ग-यष्टि आड़ में करके

---

१. शाखा । २. विस्तीर्णम् । ३. मदनो० । ४. भृङ्गारः । ५. सुषो (शो) मकामा ।

कामा शनैरुपेत्य तत्र मामदृष्ट्वा बलवद्व्यथिष्ट । व्यसृजच्च मत्तराजहंसीव कण्ठरागवल्गुगद्गदां गिरम्—'व्यक्तमस्मि विप्रलब्धा । नास्त्युपायः प्राणितुम् । अयि हृदय, किमिदमकार्यं कार्यवदध्य[1]वस्य तदसंभवेन[2] किमेवमुत्ताम्यसि ? भगवन्पञ्चबाण, कस्तवापराधः कृतो मया ? यदेवं दहसि; न च भस्मीकरोषि' इति । अथाहमाविर्भूय विवृतदीपभाजनः 'भामिनि, ननु बह्वपराद्धं भवत्या चित्तजन्मनो यदमुष्य जीवितभूता[3] रतिराकृत्या कदर्थिता, [4]धनुर्यष्टिर्भ्रूलताभ्याम् , भ्रमरमालामयी[5] ज्या नीलालकद्युतिभिः, अस्त्राण्यपाङ्गवीक्षित[6]वृष्टिभिः, महारजनध्वज-

('सुषीमः शिशिरो जडः' इति अमरः) । उपेत्य प्राप्य । बलवत् नितराम् । अव्यथिष्ट व्यथाम् प्राप्तवती । व्यसृजत् अत्यजत् । कण्ठस्य यः रागः स्वरविशेषः तेन वल्गुः सुन्दरः गद्गदः अस्पष्टभाषणम् यत्र तादृशीम् । गिरम् वाणीम् । व्यक्तम् स्पष्टम् । विप्रलब्धा प्रतारिता ('विप्रलब्धा प्रियं तत्रादृष्ट्वा संतापसकुला' इति "रसरत्नहारः" "भूषणा" च) । प्राणितुम् जीवितुम् । अयि (कोमलामन्त्रणे) (खेदोक्तिः) । अकार्यम् अकरणीयम् (कुत्सितम् कृत्यम्) । कार्यवत् कर्तव्यवत् (कर्तव्यम् मत्वा) । अध्यवस्य निश्चित्य । तदसंभवेन तस्य असंभवेन अशक्यतया । उत्ताम्यसि उत्तप्तम् भवसि । पञ्चबाण पञ्च बाणाः यस्य सः तत्सम्बुद्धौ (हे काम) । तव त्वाम् प्रति । दहसि ज्वलयसि । भस्मीकरोषि अभस्म (माम्) भस्म करोषि [(च्विप्रत्ययः) [। आविर्भूय प्रकटितः भूत्वा । विवृतम् उद्घाटितम् दीपस्य प्रदीपस्य भाजनम् पात्रम् येन तादृशः (सन्) । भामिनि (हे) कोपने । ननु निश्चयेन । बहु अधिकम् यथा स्यात् तथा । अपराद्धम् अपराधः कृतः । भवत्या त्वया (कल्पसुन्दर्या) । चित्तात् मनसः जन्म यस्य सः तस्य (कामस्य) । अमुष्य तस्य । जीवितभूता प्राणस्वरूपा । रतिः कामपत्नी । कदर्थिता तिरस्कृता । धनुर्यष्टिः धनुः शरासनम् यष्टिः दण्डः इव । भ्रुवौ लते इव ताभ्याम् । भ्रमराणाम् मधुपानाम् माला समूहः तन्मयी तन्निर्मिता । ज्या मौर्वी । नीलाः श्यामाः च ते अलकाः चूर्णकुन्तलाः च तेषाम् द्युतिभिः प्रभाभिः । अस्त्राणि आयुधानि ।

खड़ा हो गया । उधर सुन्दर भौंह तथा शीतलता-रहित काम वाली धीरे से पहुँचकर वहाँ मुझे न देखकर बहुत अधिक व्यथित हुई । साथ ही मस्त राजहंसिनी की भाँति गले के राग से सुन्दर लड़खड़ाते स्वरों वाले वचन बोली—'स्पष्ट ही छली गई हूँ । जीने का उपाय नहीं है । ओ हृदय, यह क्या है (किया) ? अनुचित कार्य कर्तव्य की भाँति निश्चित कर उसके असंभव होने पर इस प्रकार क्यों दुःखी हो रहे हो ? हे भगवान् कामदेव, मैंने तुम्हारा क्या बिगाड़ा है जो इस प्रकार जलाते हो; भस्म नहीं कर देते ।' अब मैंने प्रगट होकर दीपक का बरतन खोलकर 'हे भामिनी, निश्चय ही (तुमने) कामदेव के प्रति बहुत बड़ा अपराध किया है जो उसकी जीवन-स्वरूप रति को अपने आकार से, धनुष-यष्टि को दोनो लता-तुल्य भौंहों से, भौंरों के झुण्ड से बनी प्रत्यंचा काले घुँघराले बालों की प्रभाओं से, हथियार कटाक्ष को बरसातों से, कुसुम्भ के रंग में रँगे ध्वज-वस्त्र की प्रभा ओंठ की किरणों के समूह से, पहले

---

[1] अध्यवसाय । [2] ०संभवे । [3] ०भूतां रतिमाकृत्या कदर्थितवती । [4] धनुर्यष्टिम् । [5] ०मयीं ज्याम् । [6] वीक्षितैः ।

पटांशुकं दन्तच्छदमयूखजालैः, प्रथमसुहृन्म[1]लयमारुतः परिमलपटीयसा निःश्वासपवनेन, परभृतरुत[2]मतिमञ्जुलैः प्रलापैः, पुष्पमयी[3] पताका भुजयष्टिभ्याम्, दिग्वि[4]जयारम्भपूर्णकुम्भमिथुनमुरोजकुम्भयुगलेन, क्रीडासरो नाभिमण्डलेन, संनाह्यरथः श्रोणिमण्डलेन, भवनरत्नतोरणस्तम्भयुगलमूरुयुगलेन, लीलाकर्णकिसलय चरणतलप्रभाभिः। अतः स्थान एव त्वां दुनोति मीनकेतुः। मां पुनरनपराधमधिकमायासयतीत्येष एव तस्य दोषः तत्प्रसीद सुन्दरि, जीवय मां जीवनौषधिभिरिवापाङ्गैरनङ्गभुजङ्गदष्टम्' इत्याश्लिष्टवान्। अरीरमं [5]चानङ्गरागपेशलविशाललो-

अपाङ्गेन दृष्टिकोणेन यत् वीक्षितम् दर्शनम् (कटाक्षः) तस्य वृष्टिभिः। महारजनम् कुसुम्भम् तेन रक्तः यः ध्वजस्य पटः वस्त्रम् तस्य अंशुकम् प्रभा ('स्यात् कुसुम्भं वह्निशिखं महारजनमित्यपि' इति अमरः)। दन्तच्छदः ओष्ठः तस्य ये मयूखाः किरणाः तेषाम् जालैः समूहैः। प्रथमः श्रेष्ठः च असौ सुहृत् सखा च प्रथमसुहृत्। मलयस्य मलयपर्वतस्य मारुतः पवनः। परिमले सुगन्धप्रसरणे पटीयसा विशेषदक्षेण निःश्वासस्य पवनेन। परभृतस्य कोकिलस्य रुतम् कूजितम्। अतिमञ्जुलैः विशेषमनोज्ञैः ('मनोज्ञं मञ्जु मञ्जुलम्' इति अमरः)। प्रलापैः कण्ठध्वनिभिः। पुष्पमयी कुसुमनिर्मिता। भुजयष्टिभ्याम् भुजौ बाहू यष्टी दण्डे इव ताभ्याम्। दिशाम् विजयस्य आरम्भे आदौ (स्थापितः) यः पूर्णः कुम्भः घटः तस्य मिथुनम् युगलम्। उरोजौ स्तनौ एव कुम्भौ घटौ तयोः युगलेन युग्मेन। क्रीडासरः क्रीडार्थम् सरः तडागः। संनाह्यरथः संग्रामार्थम् सज्जीकृतः रथः। श्रोणिमण्डलेन मण्डलाकारेण नितम्बेन। भवने यौ रत्नतोरणस्तम्भौ तयोः युगलम् द्वयी तेन। लीलाकर्णकिसलयम् लीलार्थम् विलासार्थम् यत् कर्णकिसलयम् कर्णावतंसपल्लवम्। चरणतलस्य प्रभाभिः द्युतिभिः। अतः अनेन सिद्धम् यत्। स्थाने युक्तम् ('युक्ते द्वे सांप्रतं स्थाने' इति अमरः)। दुनोति पीडयति। मीनः मत्स्यः केतुः ध्वजः केतौ ध्वजे वा यस्य सः (कामः)। अनपराधम् अविद्यमानः अपराधः यस्य तम्। अधिकम् नितराम्। आयासयति व्यथयति। तत् तर्हि। प्रसीद प्रसन्ना भव। जीवय जीवनम् देहि। जीवनौपधिभिः जीवनभूताभिः ओषधिभिः। अपाङ्गैः कटाक्षैः। अनङ्गः कामः एव भुजङ्गः सर्पः

(श्रेष्ठ) मित्र मलय पवन को सुगन्ध देने में विशेष निपुण निःश्वास वायु से, कोकिल की कूक अत्यन्त मनोहर प्रलापों से, फूलों से बनी पताका भुजा-यष्टियों से, दिग्विजय के आरम्भ में (रखे गये) भरे घड़े का जोड़ा घड़े के समान स्तनों की जोड़ी से, क्रीड़ा-सरोवर नाभिमण्डल से, लड़ाई के लिये तैयार रथ श्रोणि-मण्डल से, महल के रत्न-निर्मित तोरण के खंभों का जोड़ा जाँघों के जोड़े से और विलासार्थ कान में लगाया गया नया पत्ता पैर के तलुये की आभाओं से तिरस्कृत कर दिया है, इसलिये कामदेव ठीक ही तुमको पीड़ित कर रहा है। इसके विपरीत उसने मुझ निरपराध को बहुत सताया है; बस यही उसका दोष है। इसलिये हे सुन्दरी, प्रसन्न हो जाओ। काम-रूपी साँप से काटे मुझे जिला देने वाली दवा के समान कटाक्षों से जिला दो' (यह) कहकर गले लगाया। काम की चमक से सुन्दर और विशाल नेत्रों

---

[1] सुहृदं...मारुतम्। [2] कुलम्। [3] ०मयीं पताकाम्। [4] रथमण्डलम्।
[5] अनङ्गरागावेशपेशलां विशाल०।

चनाम् । अवसितार्थां चारक्तवलि[1]तेक्षणमीषत्स्वेदरेखोद्भेदजर्जरितकपोलमूलामनर्गल[2]कलप्रलापिनीम्, [3]अरुणदशनकररुहार्पणव्यतिकरामत्यर्थपरिश्लथाङ्गीमार्तामिव लक्षयित्वा मानसीं शारीरीं च धारणां शिथिलयन्नात्मानमपि तया समानार्थमापादयम् तत्क्षणविमुक्तसंगतौ रतावसानिकं विधिमनुभवन्तौ चिरपरिचिताविवाति[4]गूढविश्रम्भौ क्षणमवातिष्ठावहि। [5]पुनरहमुष्णमायतं च निःश्वस्य किंचिद्दीनदृष्टिः सचकितप्रसारिताभ्यां भुजाभ्यामेनामनतिपीड परिष्वज्य नातिविशदमचुम्बिषम्।

तेन दष्टम् । इति एवम् उक्त्वा । आश्लिष्टवान् आलिङ्गितवान् । अरीरमम् रमितवान् । अनङ्गरागेण मदनदीप्त्या पेशले रम्ये विशाले आयते च लोचने नेत्रे यस्याः ताम् । अवसितः पूर्णः अर्थः प्रयोजनम् (रतिक्रीडारूपम्) यस्याः ताम् (कृतार्थाम्) । आ ईषत् रक्तम् लोहितम् वलितम् वक्रितम् च ईक्षणम् दृष्टिः यस्याः ताम् । ईषत् अल्पा या स्वेदस्य घर्मस्य रेखा तस्याः उद्भेदेन निर्गमेण जर्जरितम् क्लिष्टम् (व्याप्तम्) कपोलस्य गण्डस्य मूलम् तलम् यस्याः ताम् । अनर्गलम् निरन्तरम् (अप्रतिहतम् वा) कलम् मधुरः अस्पष्टः ध्वनिः तत् प्रलपति इति ताम् । अरुणम् रक्तवर्णम् (नायकस्य) दशनस्य दन्तस्य कररुहस्य नखस्य च अर्पणम् क्षतम् (दन्तक्षतम् नखक्षतम् च) तस्य व्यतिकरः सम्बन्धः यस्याः ताम् । अत्यर्थम् अत्यन्तम् यथा स्यात् तथा परिश्लथानि श्रान्तानि अङ्गानि अवयवाः यस्याः ताम् । आर्ताम् व्यथिताम् । लक्षयित्वा दृष्ट्वा । मानसीम् मनसः इयम् मानसी ताम् । शरीरस्य इयम् शारीरी ताम् । धारणाम् स्थिरताम् ('शरीरधारणा यत्तु भौतिकं तु निरीक्षणम् । मानसं तु मुनीनां स्यादाश्रमेषु विसर्पणम् । अभ्यासं धारयेद्रेतो यावत्स्यात्कृतिनिर्वृतिः ॥' इति वात्स्यायनः) । तया (कल्पसुन्दर्या) । समानार्थम् तुल्यावस्थम् । आपादयम् कृतवान् । तत्क्षणविमुक्तसंगतौ तस्मिन् क्षणे विमुक्तम् त्यक्तम् सङ्गतम् आलिङ्गनम् याभ्याम् तौ । रतावसानिकम् रतिक्रीडासमाप्तकालोचितम् । विधिम् व्यापारम् अतिगूढः अत्यन्तगुप्तः विश्रम्भः विश्वासः ययोः तौ । क्षणम् क्षणपर्यन्तम् । अवातिष्ठावहि (आवाम्) अवस्थितौ । पुनः ततः । अहम् (उपहारवर्मा) । उष्णम् तप्तम् यथा स्यात् तथा । आयतम् दीर्घम् यथा स्यात् तथा । किञ्चित् अल्पम् यथा स्यात् तथा । दीना दैन्यपूर्णा दृष्टिः अवलोकनम् यस्य सः । सचकितम् चकितेन शङ्कितेन सह तत् यथा स्यात् तथा प्रसा-

वाली उसके साथ विहार किया । उसे कृतार्थ, कुछ-कुछ लाल और तिरछी दृष्टि वाली, पसीने की छोटी रेखा (प्रवाह) के निकलने से सने कपोल-मूल वाली, बेरोक, मधुर और अस्पष्ट शब्द कहती हुई, दाँत और नाखून के लाल क्षत-दान के सम्बन्ध वाली, अत्यधिक ढीले अंग लिये हुये व्यथित-सी देखकर मानसिक और शरीरिक स्थिरता शिथिल करते हुये मैंने अपने को भी उसके समान स्थिति से युक्त बनाया । उसी समय साथ छोड़कर केलि-क्रीड़ा के अन्त में किये जाने योग्य कृत्य का अनुभव करते हुये चिरकाल से परिचित से अत्यन्त गूढ़ विश्वास से युक्त हम दोनो क्षण भर अवस्थित रहे । तदनन्तर मैंने गर्म तथा लम्बी साँस छोड़कर कुछ-कुछ दीनतपूर्ण दृष्टि लेकर आशंका से फैलाई गई बाँहों से उसे हलके दबाव के साथ छाती से लगाकर

---

१. चिकुरितेक्षणाम् । २. कलकलप्रलापिनीम् । ३. अकरुण । ४. अतिरूढ ।
५. तदाऽऽवयोर्वियोगकाले समुपायाते पुनरहमुष्णम् ।

अश्रुमुखी तु सा यदि प्रयासि नाथ, प्रयातमेव मे जीवितं गणय। नय मामपि। न चेदसौ दासजनो निष्प्रयोजनः' इत्यञ्जलिमवतंसतामनैषीत्। अवादिषं च ताम्—'अयि मुग्धे, कः सचेतनः स्त्रियमभिकामयमानां नाभिनन्दति। यदि मदनुग्रहनिश्चलस्त्वमभिसंधिराचराविचारं मदुपदिष्टम्। आदर्शय रहसि राज्ञे मत्सादृश्यगर्भं चित्रपटम्। आचक्ष्व च—'किमियमाकृतिः पुरुषसौन्दर्यस्य पारमारूढा न वा' इति। 'बाढमा[1]रूढा' इति नूनमसौ वक्ष्यति। ब्रूहि भूयः—'यद्येवम्, अस्ति काऽपि तापसी देशान्तरभ्रमणलब्धप्रागल्भ्या मम च मातृभूता। तयेदमा-

---

रिताभ्याम् विस्तृताभ्याम् भुजाभ्याम् बाहुभ्याम्। एनाम् (कल्पसुन्दरीम्)। अनतिपीडम् शिथिलम्। परिष्वज्य आलिङ्ग्य। नातिविशदम् नातिस्पष्टम्। अचुम्बिषम् चुम्बितवान्। अश्रूणि वाष्पम् मुखे यस्याः सा अश्रुमुखी। सा (कल्पसुन्दरी)। प्रयासि गच्छसि। नाथ (हे) स्वामिन्। प्रयातम् गतम्। जीवितम् जीवनम्। गणय जानीहि। दासजनः दासी (कल्पसुन्दरी)। निर्गतम् प्रयोजनम् अर्थः (प्राणरूपम्) यस्मात् सः निष्प्रयोजनः (दासोजनः) निष्प्राणः)। अवतंसताम् शिरोभूषणताम्। अनैषीत् अनयम्। अवादिषम् उक्तवान्। अयि (कोमलामन्त्रणे)। मुग्धे (हे) वालसरले। चेतनेन जीवनेन सह। अभिकामयमानाम् अभिलषन्तीम् (स्वयम् अनुरक्ताम्)। अभिनन्दति काङ्क्षति। मदनुग्रहनिश्चलः मम अनुग्रहे मयि कृपाकरणे निश्चलः दृढः। अभिसंधिः अभिप्रायः। आचर कुरु। अविचारम् अविद्यमानः विचारः यत्र तत् यथा स्यात् तथा। मदुपदिष्टम् मया उपदिष्टम् कथितम्। आदर्शय दर्शय। रहसि एकान्ते। राज्ञे (पत्ये विकटवर्मणे)। मत्सादृश्यगर्भम् मम सादृश्यम् आकृतिः गर्भे फलके यस्य तादृशम्। आचक्ष्व वद। पुरुषसौन्दर्यस्य पुरुषे यत् सौन्दर्यम् (संभवति) तस्य। पारम् पराम् काष्ठाम्। आरूढा प्राप्ता। बाढम् एवम् (निश्चयेन)। नूनम् निश्चयेन। वक्ष्यति वदिष्यति। ब्रूहि वद। भूयः पुनः। तापसी तपस्विनी। अन्यः देशः स्थानम् देशान्तरम् तत्र भ्रमणेन पर्यटनेन लब्धम् प्राप्तम् प्रागल्भ्यम् पटुता यया सा। मातृभूता जननीस्वरूपा (माता एव)। आलेख्य-

---

अनधिक-स्पष्ट रूप से चूमा। उधर उसने चेहरे पर आँसू लेकर 'अगर स्वामिन्, जाओगे तो मेरे प्राण गये समझो। मुझे भी ले चलो, नहीं तो यह दासी व्यर्थ (मरी हुई) होगी' (यह) कहकर अञ्जलि को शिरोभूषण बनाया (सिर तक हाथ ले जाकर जोड़े)। उत्तर में मैंने उससे कहा—'अरी भोली, चाहने वाली स्त्री को कौन प्राणी नहीं अपनाता। यदि तुम्हारा अभिप्राय मेरे ऊपर कृपा करने (मुझे अपनाने) के लिये दृढ़ है तो मेरे कहे पर बिना सोच-विचार के चलो। एकान्त में राजा को मेरी आकृति से युक्त चित्र-पट दिखाना और कहना—'यह आकार पुरुष-सुन्दरता की पराकाष्ठा पर पहुँचा है या नहीं'? 'हाँ, पहुँचा है,' वह निश्चय ही कहेगा। फिर कहना—'अगर ऐसी बात है तो देश-देश-भ्रमण से पटुता-प्राप्त और मेरी मातृस्वरूपा एक तपस्विनी है। उसने यह चित्राकृति सामने रखकर मुझसे कहा था—'वैसा अनु-

---

१. परमा०।

लेख्यरूपं पुरस्कृत्याहमुक्ता—'सोऽस्ति तादृशो मन्त्रो येन त्वमुपोषिता पर्वणि विविक्तायां भूमौ पुरोहितैर्हुतमुक्ते सप्तार्चिषि नक्तमेकाकिनी शतं चन्दनसमिधः, शतमगुरुसमिधः, कर्पूरमुष्टीः, पट्टवस्त्राणि च प्रभूतानि हुत्वा भविष्यस्येवमाकृतिः। अथ चालयिष्यसि घण्टाम्। घण्टापुटक्वणिताहूतश्च भर्ता भवत्यै[1]सर्वरहस्यमाख्याय निमीलिताक्षो यदि त्वामालिङ्गेत्, इयमाकृतिरमुमुपसंक्रामेत्। त्वं तु भविष्यसि यथापुराकारैव। यदि भवत्यै भवत्प्रियाय चैवं [2]रोचेत, न चास्मिन्विधौ विसंवादः [3]कार्यः' इति। वपुश्चेदिदं तवाभिमतं सह सुहृन्मन्त्रिभिरनुजैः पौरजानपदैश्च

रूपम् चित्रगतसौन्दर्यम्। पुरस्कृत्य समक्षम् विधाय। अहम् (कल्पसुन्दरी) । उपोषिता अनाहारा। पर्वणि अमावास्यायाम् (पूर्णिमायाम् वा)। विविक्तायाम् पवित्रायाम् (विजनायाम् वा)। हुतमुक्ते (आदौ) हुतः (पश्चात्) मुक्तः त्यक्तः तस्मिन्। सप्तार्चिषि अग्नौ। नक्तम् रात्रौ। एकाकिनी ('एकदाकिनच्चासहाये' इति आकिनच्प्रत्ययः) । शतम् शतमिताः। चन्दनसमिधः चन्दनकाष्ठानि। कर्पूरमुष्टीः कर्पूरस्य मुष्टीः अनेकशः बद्धकरपरिमितम् कर्पूरम् ('मुष्टिर्बद्धकरे' इति विश्वः)। पट्टवस्त्राणि कौशेयवस्त्राणि। प्रभूतानि बहूनि। एवम् एतादृशी आकृतिः आकारः यस्याः सा। चालयिष्यसि कम्पयिष्यसि (वादयिष्यसि)। घण्टाम् वाद्यविशेषम्। घण्टापुटक्वणिताहूतः घण्टापुटस्य क्वणितेन ध्वनिना आहूतः आकारितः। भर्ता पतिः (विकटवर्मा)। भवत्यै त्वाम् (कल्पसुन्दरीम्) प्रति। सर्वरहस्यम् सर्वम् च तत् रहस्यम् गुप्तविषयान् च। आख्याय उक्त्वा। निमीलिताक्षः निमीलिते पिहिते अक्षिणी नेत्रे येन सः। त्वाम् (कल्पसुन्दरीम्)। इयम् (चित्रपटस्था त्वत्संक्रान्ता च)। अमुम् तम् (विकटवर्माणम्)। उपसंक्रामेत् संक्रान्ता भवेत्। यथापुराकारा यथापूर्वाकृतिः। भवत्प्रियाय भवत्याः तव (कल्पसुन्दर्याः) प्रियाय पत्ये। एवम् पूर्वोक्तम्। रोचेत अभिमतम् स्यात्। विधौ क्रियायाम्। विसंवादः अन्यथाभावः ('विसंवादोऽन्यथाभावः' इति वैजयन्ती)। कार्यः करणीयः (त्वया)। चेत् यदि। तव (पत्युः)। अभिमतम् इष्टम्। सुहृन्मन्त्रिभिः सुहृदः मित्राणि च मन्त्रिणः सचिवाः च तैः। अनुजैः लघुभिः भ्रातृभिः। पौराः नगरवासिनः च जानपदाः ग्रामवासिनः च

भूत मंत्र है जिससे तुम उपवास कर अमावस (या पूर्णिमा) के दिन पवित्र (या निर्जन) भूमि पर पुरोहितों के द्वारा हवन कर छोड़ दी गई अग्नि में रात के समय अकेली रहकर चन्दन की सौ समिधायें (लकड़ियाँ) और अगर की (भी) सौ (ही) लकड़ियाँ, मुट्ठियों कपूर और बहुत से रेशमी कपड़ों को हवन कर इस आकार के हो जाओगे। फिर घण्टा हिलाना। तब घण्टे के दोनो भागों की आवाज से बुलाये गये पति यदि तुमसे सारा रहस्य बताकर आँख मूँदकर सीने से लगायेगा तो यह आकार उसमें स्थानान्तरित हो जायेगा। तुम पहले की तरह आकार वाली हो जाओगी। अगर तुम्हें और तुम्हारे प्रिय को यह रुचे तो इस अनुष्ठान में गलती मत करना'। यदि यह काया तुम्हें पसन्द हो तो मित्रों, मंत्रियों, छोटे भाइयों,

---

[1] सर्वं रहस्यजातम्। [2] रोचते। [3] शङ्क्यः।

संप्रधार्य[1] तेषामप्यनुमते[2]'कर्मण्यभिमुखेन स्थेयम्' इति । स नियतमभ्युपैष्यति । पुनरस्यामेव प्रमदवनवाटी[3]श्रृङ्गाटिकायामाथर्वणिकेन विधिना संज्ञपितपशुनाभिहुत्य मुक्ते हिरण्यरेतसि तद्धूमशमनेन[4] संप्रविष्टेन मयास्मिन्नेव लतामण्डपे स्थातव्यम् । त्वं पुनः प्रगाढायां प्रदोषवेलायामालपिष्यसि कर्णे कृतनर्मस्मिता विकटवर्माणम्—'धूर्तोऽसि त्वमकृतज्ञश्च । मदनुग्रहलब्धेनापि रूपेण लोकलोचनोत्सवायमानेन मत्सपत्नीरभिरमयिष्यसि । नाहमात्मविनाशाय वेतालोत्थापनमाचरेयम्' इति । श्रुत्वेदं त्वद्वचः स यद्व[5]दिष्यति तन्मह्यमेकाकिन्युपागत्य निवेदयिष्यसि । ततः परमहमेव ज्ञास्यामि । मत्पदचिह्नानि चोपवने पुष्करिकया प्रमार्जय'

तैः । संप्रधार्य निश्चित्य । अनुमते समर्थिते (सति) । कर्मणि (अस्मिन्) विधौ । अभिमुखेन उद्योगशीलेन (त्वया पत्या) । स्थेयम् स्थातव्यम् । सः (विकटवर्मा) । नियतम् निश्चयेन । अभ्युपैष्यति स्वीकरिष्यति । प्रमदवनवाट्याम् क्रीडोद्याने प्रदेशे या श्रृङ्गाटिका अल्पचतुष्पथः ('श्रृङ्गाटकचतुष्पथे' इति अमरः) तस्याम् । आथर्वणिकेन अथर्ववेदोपदिष्टेन । विधिना अनुष्ठानेन । संज्ञपितः मारितः च असौ पशुः च संज्ञपितपशुः तेन ('संज्ञपितं विशसितं समालब्धम्' इति वररुचिः) । अभिहुत्य हुत्वा । मुक्ते त्यक्ते (सति) । हिरण्यरेतसि अग्नौ । तद्धूमशमनेन तस्य (अग्नेः) धूमस्य धूम्रस्य शमनेन शान्त्या (सह एव) । संप्रविष्टेन आगतेन । प्रगाढायाम् अतिदृढायाम् । प्रदोषवेलायाम् रात्रिमुखसमये । आलपिष्यसि वदिष्यसि । कृतनर्मस्मिता कृतम् नर्मस्मितम् परिहासविहासः यया सा । विकटवर्माणम् (पतिम्) । धूर्तः वञ्चकः । न कृतज्ञः उपकारज्ञः । मदनुग्रहलब्धे मम अनुग्रहेण कृपया लब्धे प्राप्ते । रूपेण आकारेण (सौन्दर्येण वा) । लोकानाम् जनानाम् (भुवनानाम् वा) लोचनयोः नेत्रयोः उत्सवायमानेन उत्सववत् आचरता । मत्सपत्नीः मम सपत्नीः । अभिरमयिष्यसि आनन्दयिष्यसि । आत्मनः स्वस्य विनाशाय हानये । वेतालोत्थापनम् वेतालस्य भूतविशेषस्य उत्थापनम् उत्पादनम् । आचरेयम् कुर्याम् (कर्तुम् शक्नोमि) । त्वद्वचः तव वचः वचनम् । उपागत्य समीपे आगत्य । निवेदयिष्यसि वदिष्यसि । ततः तस्मात् । परम् पश्चात् । मत्पदचिह्नानि मम पदयोः

नगर-वासियों और ग्रामीणों के साथ निश्चय करके इस कार्य के उनके द्वारा भी अनुमोदित हो जाने पर तुम्हें उद्योगशील होना चाहिये' । वह निश्चय ही स्वीकार कर लेगा । फिर इसी क्रीड़ा-उद्यान के एक हिस्से में बने चौराहे पर अथर्ववेदानुसार अनुष्ठान से मारे गये पशु से हवन कर अग्नि के छोड़ दिये जाने पर उसका धुआँ शान्त हो जाने पर अन्दर आया मैं इसी लता-मण्डप में रहूँगा । उधर तुम शाम के समय के दृढ़ हो जाने पर परिहास की मुस्कान लेकर कान में विकटवर्मा से कहना—'तुम चालबाज और किये को न मानने वाले हो। मेरी कृपा से लोगों के नेत्रों के लिये उत्सव बनने वाली आकृति पाकर मेरी सौतों को सुख दोगे । मैं अपने (ही) सत्यानाश के लिये वेताल जगाने का काम नहीं करने की' । तुम्हारी यह बात सुनकर वह जो कहेगा, वह मेरे पास अकेली आकर बताना । उसके बाद मैं ही समझ लूँगा । तुम इतना और करना कि मेरे पाँव के निशान पुष्करिका से पुँछवा देना' । वह 'अच्छा' कहकर

---

१. संमन्त्र्य । २. कर्मण्यस्मिन् । ३. वीथी । ४. धूमपटलेन संह । ५. वक्ष्यति ।

इति। सा 'तथा' इति शास्त्रोपदेशमिव मदुक्तमादृत्यातृप्तसुरतरागैव कथंकथमप्यगादन्तःपुरम्। अहमपि यथाप्रवेशं निर्गत्य स्वमेवावासमयासिषम्।

अथ सा मत्तकाशिनी तथा तमर्थमन्वतिष्ठत्। अतिष्ठच्च तन्मते स दुर्मतिः। अभ्रमच्च पौरजानपदेष्वियमद्भुतायमाना वार्ता—'राजा किल विकटवर्मा देवीमन्त्रबलेन देवयोग्यं वपुरासादयिष्यति। नून[1]मेष विप्रलम्भो नातिकल्याणः। कैव कथा प्रमादस्य। स्वस्मिन्नेवान्तःपुरोपवने स्वाग्रमहिष्यैव संपाद्यः किलायमर्थः। तथा हि बृहस्पतिप्रतिमबुद्धिभिर्मन्त्रिभिरप्य[2]भ्यूह्यानुमतः। यद्येवं भावि नान्यदतः

चरणयोः चिह्नानि अङ्कान्। प्रमार्ज्य प्रोञ्छ्य। तथा आम्। शास्त्रस्य उपदेशम् नीतिम्। मदुक्तम् मम उक्तम् कथितम् (वचनम्)। आदृत्य संमान्य। अतृप्तसुरतरागा न तृप्तः पूर्णः सुरते रतौ रागः अभिलाषः यस्याः सा। कथंकथमपि अतिकृच्छ्रेण। अगात् अगच्छत्। यथाप्रवेशम् प्रवेशम् अनतिक्रम्य (यथा प्रविष्टः तथैव)। स्वम् स्वकीयम्। आवासम् निवासस्थानम्। अयासिषम् अगच्छम्।

अथ तदनन्तरम्। सा (कल्पसुन्दरी)। मत्तकाशिनी उत्तमाङ्गना ('वरारोहा मत्तकाशिन्युत्तमा वरवर्णिनी' इति अमरः)। तथा (येन प्रकारेण उक्ता) तेन प्रकारेण। तम् उक्तम् अर्थम् प्रयोजनम्। अन्वतिष्ठत् अकरोत्। तन्मते तस्याः मते परामर्शे। सः (विकटवर्मा)। दुर्मतिः दुष्टा मतिः यस्य। अभ्रमत् प्रासरत्। पौराः नागरिकाः च जानपदाः ग्रामीणाः च तेषु। अद्भुतायमाना अद्भुतवत् आचरन्ती (विचित्रा) वार्ता उदन्तः। किल (ऐतिह्ये)। देवीमन्त्रबलेन देव्याः राज्ञ्याः (कल्पसुन्दर्याः) मन्त्रस्य बलेन। देवयोग्यम् सुरोचितम्। वपुः शरीरम्। आसादयिष्यति प्राप्स्यति। नूनम् निश्चयेन। विप्रलम्भः वञ्चना। न (अपितु)। अतिकल्याणः अत्यन्तशुभः। कथा चर्चा। प्रमादस्य मत्ततायाः। स्वस्य निजस्य अग्रमहिष्या पट्टराज्ञ्या (कल्पसुन्दर्या)। सम्पाद्यः करिष्यते। किल (ऐतिह्ये)। अर्थः प्रयोजनम् (कार्यम्)। तथा हि अपरम् च। बृहस्पतिप्रतिमा गुरुतुल्या बुद्धिः येषाम् तैः। अभ्यूह्य वितर्क्य (विचार्य)। अनुमतः

मेरे कहे का शास्त्र-उपदेश की भाँति आदर कर केलि-क्रीड़ा-अनुराग अतृप्त ही धारणकर बहुत कठिनाई से रनिवास में गई। मैं भी जैसे प्रविष्ट हुआ था, वैसे ही निकलकर अपने ही निवास-स्थान पर चला गया।

इसके बाद उस उत्तमांगना ने वह काम उसी तरह किया और वह दुर्बुद्धि उसकी सलाह से चला। नगरवासियों और ग्रामीणों में यह विचित्र प्रकार की खबर फैल गई—'सुना जाता है कि राजा विकटवर्मा रानी के मंत्र-बल से देवताओं के योग्य देह पा जायेंगे। निश्चय ही यह धोखा नहीं है; अत्यन्त शुभ (समाचार) है; प्रमाद की तो बात ही क्या! अपने ही रनिवास वाले बगीचे में अपनी महारानी द्वारा ही यह कार्य होगा, ऐसा सुनते हैं। इसके अलावा बृहस्पति-तुल्य बुद्धि वाले मन्त्रियों ने भी तर्क-वितर्क करके इसका अनुमोदन किया है। अगर

---

[1] एष न विप्रलम्भोऽतिक। [2] अभूदनुमतः।

परमस्ति किंचिदद्भुतम् । अचिन्त्यो हि मणिमन्त्रौषधीनां प्रभावः' इति प्रसृतेषु लोकप्रवादेषु प्राप्ते पर्वदिवसे, प्रगाढायां प्रौढतमसि प्रदोषवेलायामन्तःपुरोद्यानादुदैरय[1]द्धूर्जटिकण्ठधूम्रो धूमोद्गमः। क्षीराज्यदधितिलगौरसर्षपवसामांसरुधिराहुतीनां च परिमलः पवनानुसारी दिशि दिशि प्रावात्सीत् । प्रशान्ते च सहसा धूमोद्गमे तस्मिन्नहमविशम् । निशान्तोद्यानमगाच्च गजगामिनी । आलिङ्ग्य च मां सस्मितं समभ्यधत्त—'धूर्त, सिद्धं ते समीहितम् । अवसितश्च पशुरसौ। अमुष्य प्रलो[2]भनाय त्वदादिष्टया दिशा मयोक्तम्—'कितव, न साधयामि ते

अनुमोदितः । एवम् तथा । भावि भविष्यति । अतः अस्मात् । परम् महत् । अद्भुतम् विचित्रा कथा । अचिन्त्यः विचारसीमातिक्रान्तः । हि यतः (निश्चयेन वा)। मणिः च मन्त्रः च ओषधिः च तासाम्। प्रभावः बलम् । प्रसृतेषु व्याप्तेषु । लोकप्रवादेषु जनचर्चासु । प्राप्ते आगते। पर्वदिवसे अमायाम् । प्रगाढायाम् दृढायाम् । प्रौढम् गाढम् (घनम्) तमः यस्याः तस्याम् प्रौढतमसि । प्रदोषवेलायाम् सायङ्काले । अन्तःपुरस्य उद्यानात् उपवनात् । उदैरयत् उदगच्छत् । धूर्जटेः शिवस्य कण्ठवत् धूम्रः कृष्णलोहितः । धूमस्य धूम्रस्य उद्गमः प्रारम्भः । क्षीरम् दुग्धम् च आज्यम् घृतम् च दधि च तिलः च गौरसर्षपाः सिद्धार्थाः ('सिद्धार्थस्त्वेष धवलः' इति अमरः) च वसा वपा च मांसम् च रुधिरम् रक्तम् च तेषाम् आहुतीनाम् परिमलः गन्धः । पवनानुसारी पवनेन सह गमनशीलः । प्रावात्सीत् आगच्छत्। प्रशान्ते नष्टे । च ततः । सहसा अकस्मात् । धूमस्य धूम्रस्य उद्गमे आरम्भे । तस्मिन् (उद्याने)। अविशम् प्रविष्टः। निशान्तस्य गृहस्य उद्यानम् उपवनम् ('निशान्तवस्त्यसदनम्' इति अमरः)। आगमत् आगच्छत्। गजगामिनी गजवत् मन्दगतिः । सस्मितम् स्मितेन अल्पहासेन सह तत् यथा स्यात् तथा । समभ्यधत्त उक्तवती । धूर्त मायाविन् । सिद्धम् सफलम् । ते तव (उपहारवर्मणः)। समीहितम् इच्छा । अवसितः समाप्तः (मुमूर्षुः)। पशुः पशुवत् विवेकहीनः । असौ (विकटवर्मा)। अमुष्य तस्य (विकटवर्मणः)। प्रलोभनाय आकर्षणाय । त्वदादिष्टया त्वया (उपहारवर्मणा) आदिष्टया कथितया। दिशा रीत्या। मया (कल्पसुन्दर्या) । कितव (रे) धूर्त ।

यह होगा तो कोई दूसरी बात इससे बढ़कर अचरज की नहीं होगी। निश्चय ही मणियों, मंत्रों और जड़ी-बूटियों की शक्ति सोची नहीं जा सकती ।' इस प्रकार अफवाहों के फैल जाने पर अमावास्या का दिन आने पर गाढ़ अन्धकार वाली सन्ध्या-वेला के दृढ़ हो जाने पर रनिवास के बगीचे से शंकर के गले के समान काले और लाल धुयें का निकलना शुरू हुआ। दूध, घी, दही, तिल्ली, सफेद सरसों, चर्बी, मांस और खून की आहुतियों की गन्ध हवा के पीछे लगकर दिशा-दिशा में पहुँची। एकाएक धुयें का निकलना रुकने पर मैं उसमें घुसा। हाथी की चाल चलने वाली वह गृह-वाटिका में आ पहुँची और मुझे छाती से लगाकर मुस्कराहट के साथ बोली—'धूर्त, तुम्हारा चाहा सफल हो गया। वह जानवर समाप्त हुआ (समझो)। उसको लालच देने के लिए तुम्हारी बताई रीति से मैं बोली—'धूर्त, तुम्हारी

---

१. उदैरत । २. चोपप्रलोभनाय ।

सौन्दर्यम् । एवं सुन्दरो हि त्वमप्सरसामपि स्पृहणीयो भविष्यसि, किमुत मानुषीणाम् । मधुकर इव निसर्गचपलो[1] यत्र क्वचिदासज्जति भवादृशो नृशंसः’ इति । तेन तु मे पादयोर्निपत्याभिहितम्—‘रम्भोरु, सहस्व मत्कृतानि दुश्चरितानि[2] । मनसापि न चिन्तयेयमितः परमितरनारीम् । त्वरस्व प्रस्तुते[3] कर्मणि’ इति । तदहमीदृशेन वैवाहिकेन नेपथ्येन त्वामभिसृतवती । प्रागपि रागाग्निसाक्षिकमनङ्गेन गुरुणा दत्तैव तुभ्यमेषा जाया । पुनरपीमं जातवेदसं साक्षीकृत्य स्वहृदयेन दत्ता’ इति प्रपदेन[4] चरणपृष्ठेन निष्पीड्योत्क्षिप्तपादपार्ष्णिरितरेतरव्यतिषक्तकोमला-

साधयामि सम्पादयामि । ते तव (विकटवर्मणः) । एवम् पूर्वोक्तप्रकारेण (चित्रपटवत्) । हि यतः । त्वम् (विकटवर्मा) । अप्सरसाम् देवस्त्रीणाम् । स्पृहणीयः अभिलषणीयः । किमुत का कथा । मानुषीणाम् नारीणाम् । मधुकरः भ्रमरः । निसर्गेण स्वभावेन चपलः चञ्चलः । यत्र क्वचित् कुत्रापि (अविवेकेन) । आसज्जति आसक्तः भवति । नृशंसः क्रूरः । तेन (विकटवर्मणा) । मे मम (कल्पसुन्दर्याः) । निपत्य पतित्वा । अभिहितम् कथितम् । रम्भा कदली इव ऊरुः सक्थि यस्याः तत्सम्बुद्धौ । सहस्व क्षमस्व । मत्कृतानि मया कृतानि । दुश्चरितानि दुष्टानि चरिवानि कृतानि (कार्याणि) । इतः अस्मात् । परम् पश्चात् । इतरा अन्या च सा नारी च ताम् । त्वरस्व शीघ्रताम् कुरु । प्रस्तुते उपस्थिते । कर्मणि अनुष्ठाने । तत् तस्मात् कारणात् । अहम् (कल्पसुन्दरी) । ईदृशेन प्रदर्शितेन । वैवाहिकेन विवाहसम्बन्धिना । नेपथ्येन वेषेण । अभिसृतवती प्राप्तवती । प्राक् पूर्वम् । रागः अनुरागः एव अग्निः सः एव साक्षी यस्मिन् कर्मणि तत् यथा स्यात् तथा रागाग्निसाक्षिकम् । अनङ्गेन कामेन । गुरुणा गुरुजनेन (पितृभूतेन) (महता वा) । दत्ता विवाहिता । एषा कल्पसुन्दरीरूपा जाया स्त्री । पुनः भूयः, जातवेदसम् अग्निम् । स्वस्य निजस्य । (कल्पसुन्दर्याः) हृदयेन । दत्ता समर्पिता । इति (उक्त्वा) । प्रपदेन चरणाग्रेण (‘पादाग्रं प्रपदम्’ इति अमरः) । निष्पीड्य पीडयित्वा । उत्क्षिप्तपादपार्ष्णिः उत्क्षिप्तौ उत्थापितौ यौ पादौ चरणौ तयोः पार्ष्णी गुल्फदेशौ यया सा । इतरेतरम् परस्परम् यथा स्यात् तथा व्यतिषिक्तम् लग्नम् कोमला अङ्गुलिः एव दलम् पल्लवम् तेन ।

सुन्दरता की सिद्धि नहीं करने की क्योंकि इस प्रकार सुन्दर बनकर तुम अप्सराओं के भी काम्य (चाहे जाने योग्य) हो जाओगे; (मर्त्यलोक की) नारियों की तो बात ही क्या । भौंरे की भाँति तुम्हारे जैसा स्वभाव से ही चंचल क्रूर व्यक्ति जहाँ चाहता है वहाँ चिपट जाता है । उधर वह मेरे पाँवों पर गिरकर बोला—‘केले के वृक्ष की भाँति जाँघ वाली, मेरे किये खराब आचरण माफ करो । अब से पर-नारी का विचार मन में भी न लाऊँगा । उपस्थित कार्य में जल्दी लगो ।’ तो मैं इस प्रकार के विवाह के वेश में तुम्हारे पास आ पहुँची हूँ । पहले भी इस (मुझ) नारी को गुरु-जन (पिता) कामदेव ने अनुराग की आग को साक्षी बनाकर तुम्हें दे गान्धर्व विवाह करा दिया है । अब फिर से इस अग्नि को साक्षी बनाकर अपने (मेरे) हृदय ने दे दिया है ।’ इतना कहकर पैर के अगले भाग से चरण का पृष्ठ-भाग दबाकर पाँव को

---

[1] निसर्गचापलात् । [2] दुश्चरित्राणि । [3] प्रकृते । [4] पादाग्रेण ।

ङ्गुलिदलेन भुजलताद्वयेन[1] कन्धरां ममावेष्ट्य सलीलमाननमानमय्य स्वयमुन्नमितमुखकमला विभ्रान्तविशालदृष्टिरसकृदभ्यचुम्बत्।

अथैनाम् 'इहैव कुरण्टकगुल्मगर्भे तिष्ठ यावदहं निर्गत्य साधयेयं साध्यं सम्यक्' इति विसृज्य तामुपसृत्य होमानलप्रदेशमशोकशाखावलम्बिनीं घण्टामचालयम्। अकूजच्च सा तं जनं कृतान्तदूतीवाह्वयन्ती। प्रावर्तिषि चाहमगुरु-[2] चन्दनप्रमुखानि होतुम्। अयासीच्च राजा यथोक्तं देशम्। शङ्कापन्नमिव किंचित्सविस्मयं विचार्य[3] तिष्ठन्तमब्रवम्––'ब्रूहि सत्यं भूयोऽपि मे भगवन्तं चित्रभा-

भुजौ बाहू लते इव भुजलते तयोः द्वयम् युगलम् तेन। कन्धराम् ग्रीवाम्। मम (उपहारवर्मणः)। आवेष्ट्य आलिङ्ग्य। लीलया विलासेन सह तत् यथा स्यात् तथा। आननम् (मम) मुखम्। उन्नमय्य उत्थाप्य। उन्नमितमुखकमला उन्नमितम् उत्थापितम् मुखकमलम् यया सा। विभ्रान्ता घूर्णिता च विशाला आयता च दृष्टिः ईक्षणम् यस्याः सा। असकृत् न सकृत् बहुवारम्। अभ्यचुम्बत् चुम्बितवती (माम्)।

अथ ततः। एनाम् (कल्पसुन्दरीम्)। इह अत्र। कुरण्टकाः पीतकुरबकाः ('तत्र क्षीणे कुरबकस्तत्र पीते कुरण्टकः' इति अमरः) तेषाम् गुल्मः स्तम्बः ('अप्रकाण्डे स्तम्बगुल्मौ' इति अमरः) तस्य गर्भे अभ्यन्तरे। साधयेयम् सफलयेयम्। साध्यम् कार्यम्। सम्यक् सुष्ठु। विसृज्य प्रेषयित्वा। ताम् (कल्पसुन्दरीम्)। उपसृत्य समीपे गत्वा। होमाय आहुतये अनलः अग्निः तस्य प्रदेशः स्थानम् तम्। अशोकशाखावलम्बिनीम् अशोकशाखायाम् आबद्धाम्। घण्टाम् वाद्यविशेषम्। अचालयम् चालितवान्। अकूजत् अध्वनत्। सा (घण्टा)। तम् (विकटवर्माणम्)। कृतान्तस्य यमस्य दूती। आह्वयन्ती आकारयन्ती। प्रावर्तिषि प्रवृत्तः अभवम्। अयासीत् अगच्छत्। राजा (विकटवर्मा)। यथोक्तम् पूर्वकथितम्। देशम् स्थानम्। शङ्कापन्नम् आशङ्कितम्। किञ्चित् ईषत् विस्मयेन आश्चर्येण सह वर्तमानम्। विचार्य चिन्तयित्वा। तिष्ठन्तम् स्थितम्। अब्रवम् अवदम्। ब्रूहि वद। भूयः पुनः। चित्रभानुम् अग्निम्। अनेन भाविना। रूपेण सौन्द-

एड़ी उठाये-उठाये परस्पर सटी कोमल उँगलियों के पत्तों वाली बाहु-लता की जोड़ी से मेरी गरदन लपेटकर विलास के साथ (मेरा) मुँह उठाकर खुद उठाया हुआ मुख-कमल लेकर घूम रही बड़ी-बड़ी आँखें लिये मुझे बार-बार चूमा।

इसके बाद इसे 'इस पीले कुरबक की झाड़ी के अन्दर ही रुको जिससे इस बीच में निकलकर कार्य भली-भाँति पूरा कर लूँ' (यह) कहकर विदा कर हवन की आग वाली जगह के पास पहुँचकर अशोक की डाल से लटक रहा वह घण्टा हिलाया। वह, यमराज की दूती की भाँति उस व्यक्ति को बुलाती हुई आवाज करने लगी। उधर मैंने अगर, चन्दन आदि होमना शुरू कर दिया। राजा बताये गये स्थान में गया। 'शङ्का (डर या शक)-ग्रस्त-सा है और कुछ अचरज में पड़ा है', यह सोचकर बैठने पर उससे कहा—'फिर से मुझे सच-सच

---

[1] तलेन। [2] अगरु। [3] निचाय्य।

नुमेव साक्षीकृत्य । न चेदनेन रूपेण मत्सपत्नीरभिरमयिष्यसि, ततस्त्वयीदं रूपं संक्राम[1]येयम्' इति । स तदैव 'देव्येवेयम्, नोपधिः' इति स्फुटोपजातसंप्रत्ययः प्रावर्तत शपथाय । स्मित्वा पुनर्मयोक्तम्—'किं वा शपथेन । कैव हि मानुषी मां परिभविष्यति । यद्यप्सरोभिः संगच्छसे, संगच्छस्व कामम् । कथय कानि ते रहस्यानि ? तत्कथनान्ते हि त्वत्स्वरूपभ्रंशः' इति । सोऽब्रवीत्—'अस्ति बद्धो मत्पितु [2]कनीयान्भ्राता प्रहारवर्मा । तं विषान्नेन व्यापाद्याजीर्णदोषं ख्यापयेयमिति मन्त्रिभिः सहाध्यवसितम् । अनुजाय विशालवर्मणे दण्डचक्रं पुण्ड्र[3]देशाभिक्रमणाय दित्सितम् । पौरवृद्धश्च पाञ्चालिकः परित्रातश्च सार्थ-

र्येण । मत्सपत्नीः मम सपत्नीः । ततः तर्हि । इदम् (मदीयम्) । रूपम् सौन्दर्यम् । संक्रामयेयम् संयोजयेयम् । तदा तस्मिन् समये । देवी राज्ञी (कल्पसुन्दरी) । उपधिः कपटम् । स्फुटम् स्पष्टम् यथा स्यात् तथा उपजातः उत्पन्नः संप्रत्ययः विश्वासः यस्य सः । प्रावर्तत प्रवृत्तः अभवत् । स्मित्वा विहस्य । मया (उपहारवर्मणा) । किम् कः लाभः । वा (वाक्यालङ्कारे) । का कतमा । एव (वाक्यालङ्कारे) । मानुषी नारी । परिभविष्यति तिरस्करिष्यति । अप्सरोभिः देवस्त्रीभिः । सङ्गच्छसे सङ्गतः भविष्यसि । संगच्छस्व सङ्गतः भव । कामम् इच्छानुसारेण । कथय वद । तत्कथनान्ते तस्य पूर्वोक्तस्य कथनस्य (रहस्य-) चर्चायाः अन्ते समाप्तौ । हि एव । त्वत्स्वरूपभ्रंशः तव स्वरूपस्य आकृतेः भ्रंशः नाशः (भविष्यति) । अब्रवीत् अवदत् । मत्पितुः मम पितुः । कनीयान् लघुः । विषान्नेन विषमिश्रितेन अन्नेन भोज्येन । व्यापाद्य मारयित्वा । अजीर्णदोषम् विषूचिकारोगम् । प्रख्यापयेयम् प्रकाशयिष्यामि (विषूचिकया मृतः इति) । अध्यवसितम् निर्णीतम् । अनुजाय लघुने भ्रात्रे । दण्डचक्रम् दण्डस्य सैन्यस्य ('दण्डो यमे मानभेदे लगुडे दमसैन्ययोः' इति विश्वः) चक्रम् समूहम् । पुण्ड्रदेशाभिक्रमणाय पुण्ड्र- (नामकस्य) देशस्य स्थानस्य अभिक्रमणाय ग्रहणाय । दित्सितम् दातुम् इच्छितम् । पौरवृद्धः पौरेषु नगरवासिषु वृद्धः । पाञ्चालिकः (इतिनामा) । पारिजातः (इतिनामा) । सार्थवाहः

बताओ भगवान् अग्नि को साक्षी बनाकर । अगर इस सुन्दरता से युक्त होकर मेरी सौतों से केलि करोगे तो यह सौन्दर्य तुममें स्थानान्तरित नहीं कर सकती ।' वह उसी समय 'यह रानी ही है; छल नहीं (हो रहा है)', (यह) सोचकर स्पष्ट रूप से उत्पन्न प्रगाढ़ विश्वास लेकर सौगन्ध के लिये तैयार हो गया । मैंने मुस्कराकर फिर कहा—'सौगन्ध से क्या (लाभ) ! भला कौन मर्त्यलोक-नारी मेरा तिरस्कार कर सकती है ? अगर अप्सराओं से मिलते हो तो मन-माफिक मिलो । बताओ, तुम्हारे रहस्य कौन-कौन हैं ? वह कहने के अन्त में ही तुम्हारे अपने रूप का लोप होगा ।' वह बोला—'मेरे पिता के छोटे भाई (चाचा) प्रहारवर्मा गिरफ्तार हैं । उन्हें जहर मिले अन्न से मारकर हैजा' (हो गया था, यह) प्रसिद्ध कर दूँगा, यह मंत्रियों के साथ निश्चय किया है । छोटे भाई विशालवर्मा को पुण्ड्र देश (पूर्वी बंगाल का एक जिला) जीतने के लिये कमान देने की इच्छा की है । इसके अलावा बूढ़े नगर-वासी

---

१. संक्रम० । २. कनिष्ठः प्रहार० । ३. पुण्ड्राभियोगाय ।

वाहः खनति[1]नाम्नो यवनाद्वज्रमेकं वसुन्धरामूल्यं लघीयसार्घेण लभ्यमिति ममैकान्तेऽमन्त्रयेताम् । गृहपतिश्च ममान्तरङ्गभूतो जनपदमहत्तरः शतहलिरलीकवादशीलमवलेपवन्तं दुष्टग्रामण्यमनन्तसीरं जनपदकोपेन घातयेयमिति दण्डधरानुद्धारकर्मणि मत्प्रयोगान्नियोक्तुमभ्युपागमत् । इत्थमिदमचिर[2]प्रस्तुतं रहस्यम् ।' इत्याकर्ण्य तम् 'इयत्तवायुः । उपपद्यस्व स्वकर्मोचितां गतिम्' इति च्छुरिकया द्विधाकृत्य [3]कृत्तमात्रं तस्मिन्नेव प्रवृत्तस्फीतसर्पिषि हिरण्यरेतस्यजूहवम् । अभूच्चासौ भस्मसात् । अथ स्त्रीस्वभावादीषद्विह्वलां हृदय-

वणिक् । खनतिनाम्नः खनतिः इति नाम यस्य तस्य । वज्रम् हीरकम् । वसुन्धरामूल्यम् वसुन्धरा पृथ्वी (एव) मूल्यम् यस्य तादृशम् । लघीयसा अल्पेन । अर्घेण मूल्येन । लभ्यम् प्राप्यम् । अमन्त्रयेताम् उक्तवन्तौ । गृहपतिः सततदानशीलः । अन्तरङ्गभूतः अन्तरङ्गः आत्मीयः एव । जनपदस्य ग्रामस्य महत्तरः अधिकृतविशेषः । शतहलिः (इतिनामा) । अलीकवादशीलम् मिथ्याभाषणस्वभावेन युक्तम् । अवलेपवन्तम् सगर्वम् । दुष्टग्रामण्यम् दुष्टः च असौ ग्रामणीः ग्रामाध्यक्षः च तम् । अनन्तसीरः (इतिनामा) तम् । जनपदस्य लोकानाम् कोपेन क्रोधेन । घातयेयम् विनाशयिष्यामि । दण्डधराः सेनापतयः तान् । उद्धारकर्मणि उन्मूलनकार्ये । मत्प्रयोगात् मम प्रयोगात् नियोगात् (आदेशेन) । अभ्युपागमत् स्वीकृतवान् । इत्थम् एवम् । अचिरप्रस्तुतम् अचिरम् शीघ्रम् यथा स्यात् तथा प्रस्तुतम् निष्पन्नम् । रहस्यम् गोप्यम् । इति एवम् । आकर्ण्य श्रुत्वा । इयत् एतावत् (एव) । आयुः जीवनम् । उपपद्यस्व प्राप्नुहि । स्वकर्मोचिताम् स्वस्य निजस्य कर्मणः कार्यस्य उचिताम् अनुरूपाम् । गतिम् दशाम् । इति इदम् उक्त्वा । छुरिकया असिपुत्र्या । द्विधाकृत्य खण्डयित्वा । कृत्तमात्रम् खण्डितम् एव (छेदनसमकालम्) । प्रवृत्तम् (क्षेप्तुम्) आरब्धम् स्फीतम् प्रचुरम् सर्पिः घृतम् यत्र तस्मिन् । हिरण्यरेताः अग्निः

पाञ्चालिक तथा सौदागर परिश्रात ने मुझे एकान्त में सलाह दी है कि खनति-नामक यवन (अरब फ़ारस या यूनान का निवासी) से पृथ्वी के मूल्य वाला एक हीरा थोड़े दाम में पा लिया जाय, सदा अन्नादि दानी और मेरे आत्मीय स्वरूप ग्राम के प्रधान शतहलि (नाम) ने 'झूठ बोलने के स्वभाव वाले, अपने को लगाने वाले दुष्ट ग्राम-प्रधान अनन्तसीर (आगे बताया गया है कि यह प्रहारवर्मा का आदमी है) को जिले (वालों) को भड़काकर मरवा दूँगा' (यह) कहकर सेनापतियों को मेरे आदेश से (उसे) उखाड़ने के काम में लगाने की हामी भरी है । इस प्रकार यह हाल के रहस्य हैं' यह सुनकर उससे 'इतना (ही) तुम्हारा जीवन है । अपने कर्म के अनुरूप फल पाओ' (यह) कहकर छुरी से दो-टूक करके काटते ही उसी आग में होम दिया । उसमें प्रचुर घी डालना शुरू कर दिया गया था । फिर वह राख बन गया । इसके बाद स्त्री-स्वभाववश कुछ घबड़ाई हुई हृदय-प्रिया को समझा बुझाकर उसके

---

१. असभीति । २. प्रसृतम् । ३. कृत्तगात्रम् ।

वल्लभां समाश्वास्य हस्तकिसलयेऽवलम्ब्य गत्वा तद्गृहमनुज्ञयास्याः सर्वाण्यन्तःपुराण्याहूय सद्य एव सेवां दत्तवान्। सविस्मितविलासिनीसार्थमध्ये कंचिद्विहृत्य कालं विसृष्टावरोधमण्डलस्तामेव संहतोरुमूरूप[1]पीडं भुजोपपीडं चोपगूह्य तल्पेऽभिरमयन्नल्पामिव तां निशामत्यनैषम्। अलभे च तन्मुखात्तद्राजकुलस्य शीलम्। उषसि स्नात्वा कृतमङ्गलो मन्त्रिभिः सह समगच्छे। तांश्चाब्रवम्—'आर्याः, रूपेणैव सह परिवृत्तो मम स्वभावः। य एष विषान्नेन हन्तु चिन्तितः पिता मे स मुक्त्वा स्वमेतद्राज्यं[2] भूय एव ग्राहयितव्यः। पितृवदमुष्मिन्वयं

तस्मिन्। अजूहवम् क्षिप्तवान्। अभूत् अभवत्। भस्मसात् पूर्णतः भस्म ('विभाषा सातिः कार्त्स्न्ये' इति सातिप्रत्ययः)। अथ ततः। स्त्रीस्वभावात् स्त्रीणाम् स्वभावात्। ईषत् किञ्चित्। विह्वलाम् व्याकुलाम्। हृदयवल्लभाम् प्राणप्रियाम्। समाश्वास्य उपसान्त्व्य। हस्तकिसलये करपल्लवौ। अवलम्ब्य गृहीत्वा। तत् प्रस्तुतम्। गृहम् प्रासादम्। अनुज्ञया आदेशेन। अस्याः (कल्पसुन्दर्याः)। अन्तःपुराणि अन्तःपुरवर्तिजनान्। आहूय आकार्य। सद्यः तत्कालम्। सेवाम् नियोगम् (कार्यम्)। विस्मितेन आश्चर्येण (नपुंसके भावे क्तः) सह वर्तमानाः च ताः विलासिन्यः सुन्दर्यः तासाम् सार्थः समूहः तस्य मध्ये। कञ्चित् कमपि। विहृत्य विहारम् कृत्वा। विसृष्टावरोधमण्डलः विसृष्टः त्यक्तः अवरोधस्य अन्तःपुरस्य मण्डलः समूहः येन सः। ताम् (कल्पसुन्दरीम्)। संहतोरूम् संहतौ सम्बद्धौ (अतः शोभनौ) ऊरू सक्थिनी यस्याः ताम्। ऊरूपपीडम् ऊर्वोः सक्थ्नोः उपपीडा पीडनम् यत्र तत् यथा स्यात् तथा। भुजोपपीडम् भुजयोः बाह्वोः उपपीडा पीडनम् यत्र तत् यथा स्यात् तथा। उपगुह्य आलिङ्ग्य। तल्पे शय्यायाम्। अभिरमयन् सुखयन्। इव (दीर्घाम् अपि)। निशाम् रात्रिम्। अत्यनैषम् अतिवाहितवान्। अलभे प्राप्तवान्। तन्मुखात् तस्याः (कल्पसुन्दर्याः) मुखात्। राजकुलस्य राज्ञः नृपस्य कुलम् वंशः तस्य। शीलम् शिष्टाचारपरम्पराम्। उषसि प्रातःकाले। कृतमङ्गलः कृतम् मङ्गलम् मङ्गलाचारः येन सः। समगच्छे मिलितः अभवम्। अब्रवम् उक्तवान्। आर्याः (हे) सज्जनाः। रूपेण आकृत्या। परिवृत्तः विपरीतः जातः। चिन्तितः निश्चितः। पिता पितृव्यः (पितृतुल्यत्वात्)। मुक्त्वा कारागारात् अपनीय। स्वम् स्वकीयम्। भूयः पुनः। ग्राहयितव्यः दातव्यः। पितृवत्

नये पत्ते के समान हाथ को सहारा देकर उसके महल में पहुँचकर उसके आदेशानुसार रनिवास के समस्त लोगों को बुलाकर तत्काल ही सेवा सौंपी। अचरज में पड़ी सुन्दरियों के समूह के बीच में कुछ समय विहार कर रनिवास की मण्डली को बिदा कर दिया और उसी जुटी जाँघों वाली सुन्दरी को कभी जाँघ दबा-दबाकर और कभी बाँह दबा-दबाकर तथा गले लगाकर सेज पर प्रसन्न करता हुआ वह रात ऐसे बिता दी जैसे छोटी-सी रही हो। उसके मुख से राजवंश के स्वभाव का पता लगाया। सवेरे तड़के नहाकर माङ्गलिक कृत्य करके मंत्रियों से मिला और उनसे बोला—"सज्जनो, आकार के साथ-साथ मेरा स्वभाव भी बदल गया है। जिन पिता जी को जहर मिला भोजन देकर मारना सोचा था, उन्हें रिहाकर यह अपना राज्य

---

[1] ऊरुपीडमुरःपीडं च।   [2] स्वयमेव तद्राज्यम्।

शुश्रूषयैव वर्तामहे। न ह्यस्ति पितृवधात्पर पातकम्’ इति। भ्रातरं च विशालवर्माणमाहूयोक्तवान्—‘वत्स, न सुभिक्षाः सांप्रतं पुण्ड्राः। ते दुःखमोहोपहतास्त्यक्तात्मानो राष्ट्रं नः [1]सस्मृद्धमभिद्रवेयुः। अतो मुष्टिवधः[2] सस्यवधो वा यदोत्पद्यते तदाभियास्यसि। नाद्य यात्रा युक्ता’ इति। नगरवृद्धावप्यलापिषम्—‘अल्पीयसा मूल्येन महार्हं [3]वज्रवस्तु माऽस्तु मे लभ्यं धर्मरक्षायै, तदनुगुणेनैव मूल्येनादः[4] क्रीयताम्’ इति। शतहलिं च राष्ट्रमुख्यमाहूयाख्यातवान्—‘योऽसावनन्तसीरः प्रहारवर्मणः पक्ष इति निनाशयिषितः, सोऽपि पितरि मे प्रकृतिस्थे किमिति नाश्येत, तत्त्वयापि तस्मिन्संरम्भो न कार्यः’ इति। त इमे सर्वमा-

पितरि ताते इव (‘तत्र तस्येव’ इति वतिः)। अमुष्मिन् तस्मिन् (प्रहारवर्मणि)। वयम् अहम्। शूश्रषया सेवया। वर्तामहे व्यवहरामः। पितृवधात् पितुः (पितृव्यस्य प्रहारवर्मणः) वधात् घातात्। परम् अधिकम्। पातकम् पापम्। सुभिक्षाः अन्नैः समृद्धाः। साम्प्रतम् अधुना। पुण्ड्राः पुण्ड्रदेशः। ते पुण्ड्राः (पुण्ड्रदेशः)। दुःखम् च मोहः अज्ञानम् च दुःखमोहौ ताभ्याम् उपहताः आक्रान्ताः। त्यक्तात्मानः त्यक्तः आत्मा जोवनाशा यैः तादृशाः (सन्तः)। राष्ट्रम् राज्यम्। नः अस्माकम्। अभिद्रवेयुः आक्रामेयुः। मुष्टिवधः बीजनाशः। सस्यवधः धान्यनाशः। उत्पद्यते संभविष्यति। अभियास्यसि आक्रमिष्यसि। यात्रा युद्धयात्रा [(अभियानम्) यानकालमाह याज्ञवल्क्यः यदा सस्यगुणोपेतं परराष्ट्रं तदा व्रजेत् इति भूषणा।]। नगरवृद्धौ (पाञ्चालिकपारित्रातौ)। अलापिषम् अवदम्। अल्पीयसा अल्पतरेण। महार्हम् बहुमूल्यम्। वज्रम् हीरमणिः एव वस्तु। मा न। लभ्यम् प्राप्यम्। धर्मरक्षायै धर्मस्य रक्षायै। तत् तर्हि। अनुगुणेन उचितेन। अदः तत् (वज्रम्)। क्रीयताम् क्रयः क्रियताम्। राष्ट्रमुख्यम् प्रधानम्। आख्यातवान् उक्तवान्। पक्षः सहायः। निनाशयिषितः नाशयितुम् इष्टः। पितरि पितृव्ये (प्रहारवर्मणि)। प्रकृतिस्थे पूर्वपदस्थे (जाते)। किमिति केन कारणेन। नाश्येत हन्येत। तत् तर्हि। त्वया

पुनः उनसे ग्रहण करवाना है। पिता-तुल्य उनके प्रति हमें सेवा-शुश्रूषा ही करनी चाहिये। निश्चय ही पितृ-वध से बढ़कर पाप नहीं होता।’ फिर भाई विशालवर्मा को बुलाकर बोला—‘भैया, इस समय पुण्ड्र देश में सुभिक्ष (अच्छी पैदावार) नहीं है (; दुर्भिक्ष है), वह दु.ख और अज्ञान से पीड़ित होकर जीवन की आशा छोड़कर हमारे समृद्धिशाली देश पर आक्रमण कर सकता है। इसलिये जब बीज के नाश या उपज के नाश की स्थिति पैदा हो, तब आक्रमण करना। इस समय रण-यात्रा उचित नहीं है। फिर नगर के दोनो प्रतिष्ठित व्यक्तियों से बोला—‘धर्म की रक्षा के लिये औने-पौने दाम में बेशकीमती चीज मुझे प्राप्त नहीं होनी चाहिये, अतः उचित मूल्य पर ही वह खरीद करें।’ गाँव के मुखिया शतहलि को बुलाकर बोला—जिस अनन्तसीर को प्रहारवर्मा के पक्ष का समझकर मार डालना चाहा था, अब उसे क्यों मारा जाय; मेरे पिता जी तो पूर्व पद पर स्थित हो गये हैं। इसलिये उस विषय में तुम्हें भी गुस्सा नहीं करना चाहिये।’ वे सभी, सभी परिचय की बातें पाकर ‘वही है यह’,

---

[1] सुमिक्षम्। [2] बन्धः। [3] वज्रम्; वस्तु। [4] मूल्येनादानं क्रियताम्।

मिज्ञानिकमुपलभ्य 'स एवायम्' इति निश्चिन्वाना विस्मयमानाश्च मां महादेवीं च प्रशंसन्तो मन्त्रबलानि चोद्घोषयन्तो बन्धनात्पितरौ निष्क्रामय्य[1] स्वं राज्यं प्रत्यपादयन्। अहं च तया मे धात्र्या सर्वमिदं ममाचेष्टितं रहसि पित्रोरवगमय्य प्रहर्षकाष्ठाधिरूढयोस्तयोः पादमूलमभजे। अभज्ये च यौवराज्यलक्ष्म्या तदनुज्ञातया। प्रसाधितात्मा देवपादविरहदुःखदुर्भगान्भोगान्निर्विशन्भूयोऽस्य पितृसखस्य सिंहवर्मणो लेख्याच्चण्डवर्मणश्चम्पाभियोगमवगम्य शत्रुवधो मित्ररक्षा चोभयमपि करणीयमेव' इत्यलघुना लघुसमुत्थानेन सैन्यचक्रेणाभ्यसरम्। अभूवं

(शतहलिना)। तस्मिन् (अनन्तर्सीरे)। संरम्भः कोपः। आभिज्ञानिकम् अभिज्ञानम् (स्वार्थे ठक्) (परिचयोत्पादकम् चिह्नम्)। उपलभ्य ज्ञात्वा। सः (विकटवर्मा)। अयम् पुरः दृश्यमानः। निश्चिन्वानाः निर्णयम् कुर्वन्तः। विस्मयमानाः आश्चर्ययुक्ताः। महादेवीम् राज्ञीम्। उद्घोषयन्तः प्रकटयन्तः। पितरौ (उपहारवर्मणः) मातरम् पितरम् च। निष्क्रामय्य मोचयित्वा। स्वम् आत्मीयम्। प्रत्यपादयम् अददु'। चेष्टितम् कृतम् (कार्यम्)। रहसि एकान्ते। पित्रोः माता च पिता च पितरौ तयोः। अवगमय्य ज्ञापयित्वा। प्रहर्षकाष्ठाधिरूढयोः प्रहर्षस्य परमानन्दस्य काष्ठा सीमा ताम् अधिरूढौ तयोः। अभजे आश्रितवान्। अभज्ये सेवितः अभवम्। यौवराज्यलक्ष्म्या यौवराज्यस्य युवराजपदस्य लक्ष्म्या शोभया। तदनुज्ञातया ताभ्याम् मातापितृभ्याम् अनुज्ञातया आदिष्टया (आदेशेन प्राप्तया)। प्रसाधितात्मा प्रसाधितः सफलीकृतः आत्मा प्रयत्नः येन सः ('आत्मा यत्नो धृतिर्बुद्धिः' इति अमरः)। देवस्य राज्ञः राजवाहनस्य) पादयोः चरणयोः विरहदुःखेन वियोगक्लेशेन दुर्भगान् अप्रियान्। निर्विशन् उपभुञ्जानः। भूयः पुनः। पितृसखस्य पितुः प्रहारवर्मणः सख्युः मित्रस्य। लेख्यात् पत्रात्। चम्पाभियोगम् चम्पाक्रमणम्। अवगम्य ज्ञात्वा। करणीयम् कर्त्तव्यम्। अलघुना न लघु अलघु (विशालम्) तेन। लघु शीघ्रम् समुत्थानम् गमनम् यस्य तेन। सैन्यचक्रेण सेनासमूहेन। अभ्यसरम् प्रचलितः

इस प्रकार निश्चय और विस्मय दिखाते हुये मेरी और पटरानी की तारीफ करते हुये मन्त्र की शक्ति की जय-जयकार करते हुये कैद से माता और पिता को निकलवाकर अपना राज्य दे दिया। उधर मैंने अपनी उस धाय के द्वारा अपनी यह सारी कारगुजारी एकान्त में माता-पिता को अवगत कराई। वे दोनो परम आनन्द की सीमा पर पहुँच गये। उनके चरणों की सेवा की। उनकी अनुमति होने पर युवराज-पद के ऐश्वर्य का भागी बना। अपना प्रयत्न सफल करके महाराज के चरणों से हुये वियोग की व्यथा से अवाछनीय भोगों का भागता हुआ पुनः पिता जी के मित्र इन सिंहवर्मा का पत्र पाकर चण्डवर्मा का चम्पा पर आक्रमण जानकर 'शत्रु का वध और मित्र की रक्षा ये दोनो ही काम करने हैं' यह सोचकर शीघ्र चलने वाली विशाल सेना के दल के साथ बढ़ा। और फिर मैं आपके चरणों की शोभा के

---

[1] निष्क्रमय्य।

च भूमिस्त्वत्पादलक्ष्मीसाक्षात्क्रियामहोत्सवानन्दराशेः' इति ।

श्रुत्वैतद्देवीं राजवाहनः सस्मितमवादीत्—'पश्यत पारतल्पिकमुपधियुक्तमपि गुरुजनबन्धव्यसनमुक्तिहेतुतया दुष्टामित्रप्रमापणाभ्युपायतया राज्योपलब्धिमूलतया च पुष्कलावर्थधर्मावप्यरीरधत् । किं हि 'बुद्धिमत्प्रयुक्तं नाभ्युपैति शोभाम्' इति । अर्थपालमुखे निधाय स्निग्धदीर्घां दृष्टिम् 'आचष्टां भवानात्मीयचरितम्' इत्यादिदेश । सोऽपि बद्धाञ्जलिरभिदधे—

इति श्रीदण्डिनः कृतौ दशकुमारचरिते उपहारवर्मचरितं नाम तृतीय उच्छ्वासः ।

———

अभवम् । अभूवम् अभवम् । भूमिः भाजनम् । तत्र पादयोः लक्ष्म्याः शोभायाः या साक्षात्क्रिया दर्शनम् सा एव महोत्सवः तस्य आनन्दराशेः हर्षसमूहस्य ।

एतत् उपर्युक्तम् । सस्मितम् विहासेन सह । अवादीत् उक्तवान् । पारतल्पिकम् (परतल्प+ठक्) । परस्त्रीगमनम् (कर्तृ) । उपधियुक्तम् छलसहितम् । गुरुजनानाम् पूजनीयानाम् बन्धः गुरुजनबन्धः सः एव व्यसनम् दुःखम् तस्मात् या मुक्तिः मोचनम् सा एव हेतुः यस्य तत्ता तया । दुष्टः च असौ अमित्रः शत्रुः च दुष्टामित्रः तस्य यत् प्रमापणम् वधः तस्य अभ्युपायः उपायः तत्ता तया । राज्यस्य या उपलब्धिः प्राप्तिः तत् एव मूलम् कारणम् यस्य तत्ता तया । पुष्कलौ प्रचुरौ । अर्थधर्मौ अर्थः धर्मः च तौ । अरीरधत् असाधयत् । बुद्धिमत्प्रयुक्तम् बुद्धिमता प्रयुक्तम् कृतम् । अभ्युपैति प्राप्नोति । निधाय कृत्वा । स्निग्धदीर्घाम् स्निग्धा स्नेहयुक्ता च दीर्घा स्थिरा च ताम् । आचष्टाम् कथयतु । आत्मीयम् स्वीयम् चरितम् जीवनम् । आदिदेश आज्ञप्तवान् । बद्धाञ्जलिः कृतनमस्कृतिः । अभिदधे कथितवान् (वक्ष्यमाणम्) ।

साक्षात्कार से उत्पन्न महान् उत्सव की आनन्द-राशि का पात्र बना ।'

इतना सुनकर राजवाहन ने रानी से मुस्कराकर कहा—'देखो, कपट से युक्त पर-स्त्री-गमन ने भी पूज्य जनों के बन्धन-रूपी संकट से मुक्ति दिलाने का कारण होने, दुष्ट दुश्मन के नाश का अच्छा उपाय होने और राज्य-प्राप्ति का मूल होने के कारण प्रचुर अर्थ और धर्म की सिद्धि कर ली । बुद्धिमान् के द्वारा किया गया कौन उपाय निश्चय ही शोभित नहीं होता' यह कहकर अर्थपाल के मुख पर स्नेह-पूर्ण तथा स्थिर दृष्टि डालकर 'आप अपनी जीवन कथा कह डालें' यह बोले । अब उसने हाथ जोड़कर कहा—

श्री दण्डी की रचना "दशकुमारचरित" के अन्तर्गत उपहारवर्मा-चरित-नामक तीसरा उच्छ्वास समाप्त हुआ ।

———

---

१. बुद्धिमद्भिः प्र० ।

चतुर्थोच्छ्वासः

'देव, सोऽहमप्येभिरेव सुहृद्भिरेककर्मोर्मिमालिनेमिभूमिवलयं परिभ्रमन्नुपासरं कदाचित्काशीपुरीं[1] वाराणसीम्। उपस्पृश्य मणिभङ्गनिर्मलाम्भसि मणिकर्णिकायामविमुक्तेश्वरं भगवन्तमन्धकमथनमभिप्रणम्य प्रदक्षिणं परिभ्रमन्पुरुषमेकमायामवन्तमायसपरिघपीवराभ्यां भुजाभ्यामाबध्यमानपरिकरमविरतरुदितोच्छूनताम्रदृष्टिमद्राक्षम्। अतर्कयं च—'कर्कशोऽयं पुरुषः, कार्पण्यमिव वर्षति

देव (हे) महाराज (राजवाहन)। सः तदवस्थः। अहम् (अर्थपालः)। एभिः वक्ष्यमाणैः। सुहृद्भिः मित्रैः। एककर्मा एकम् समानम् (भवदन्वेषणरूपम्) कर्म कार्यम् यस्य सः। ऊर्मिमाली ऊर्मीणाम् तरङ्गाणाम् माला समूहः अस्य अस्ति इति (समुद्रः) सः एव नेमिः सीमा यस्य तत् ('नेमिस्तु चक्रधारायां सीमधर्मव्यवस्थयोः' इति अजयः)। भूवलयम् भूः वलयम् कङ्कणम् इव तत्। परिभ्रमन् अटन्। उपासरम् प्राप्तवान्। काशीपुरीम् काशते (शोभते) शिवत्रिशूले अथ वा काशयति (प्रकाशयति) सर्वम् इति काशी। वाराणसी (वरणासी च नद्यौ द्वे पुण्ये पापहरे उभे। तयोरन्तर्गता या तु सैषा वाराणसी श्रुता)। उपस्पृश्य स्नात्वा। मणीनाम् रत्नानाम् भङ्गाः खण्डाः तद्वत् निर्मलम् स्वच्छम् अम्भः जलम् यस्याः तस्याम् मणिभङ्गनिर्मलाम्भसि। मणिकर्णिकायाम् एतन्नामके तीर्थे (विष्णोः तपसा विस्मितस्य शिवस्य मणिमयकुण्डलपतनात् इदम् नाम प्रचलितम्)। अविमुक्तस्य काश्याः ईश्वरम् स्वामिनम् (शिवम्) (न वियुक्तं शिवाभ्यां यदविमुक्तं ततो विदुः)। अन्धकमथनम् अन्धकासुरनाशकम् (शिवम्) (स व्रजत्यन्धवद् यस्मादनन्धोऽपि हि भारत। तमन्धकोऽयं नाम्नेति प्रोचुस्तत्र निवासिनः॥)। अभिप्रणम्य नत्वा। प्रदक्षिणम् परिभ्रमन् परिक्रमम् कुर्वन्। आयामः दैर्घ्यम् तद्वन्तम् (दीर्घाकृतिम्)। आयसः अयसा लोहेन निर्मितः यः परिघः अर्गलः तद्वत् पीवरौ मांसलौ ताभ्याम्। भुजाभ्याम् बाहुभ्याम्। आबध्यमानः क्रियमाणः परिकरः कक्षाबन्धः ('कक्षाबन्धः परिकरः' इति वैजयन्ती) येन तम्। अविरतम् निरन्तरम् यत् रुदितम् रोदनम् तेन उच्छूने शोथयुक्ते ताम्रे रक्ते च दृष्टी नेत्रे यस्य तम्। अद्राक्षम् दृष्टवान्। अतर्कयम् विचारितवान्। कर्कशः कठोरः।

चौथा उच्छ्वास

महाराज, उस स्थिति में पड़ा हुआ मैं भी इन्हीं साथियों के समान कार्य करता हुआ लहर-मालाधारी समुद्र की सीमा वाले भूमि-मण्डल पर टहलता हुआ किसी समय काशीपुरी वाराणसी पहुँचा। रत्न-खण्डों के समान निर्मल जल वाले मणिकर्णिका तीर्थ में स्नान कर काशीपति भगवान् अन्धकासुर नाशक (शङ्कर) को प्रणाम कर परिक्रमा कर एक आदमी को देखा जो बड़े डील-डौल वाला था, जो लोहे के ब्यौड़े के समान मोटी भुजाओं से कमर कस रहा था तथा जिसके नेत्र बिना रुके हुये रोने से सूजे और लाल थे। तब मैंने सोचा—'यह आदमी कठोर है। क्षीण-पुतलियाँ लिये दृष्टि दीनता बरसाती-

---

[1] (एतन्नास्ति क्वचित्)।

[1]क्षीणतारं चक्षुः, आरम्भश्च साहसानुवादी, नूनमसौ प्राणनिःस्पृहः किमपि कृच्छ्रं प्रियजनव्यसनमूलं [2]प्रपित्सते। तत्पृच्छेयमेनमस्ति चेन्ममापि कोऽपि [3]साहाय्यदानावकाशस्तमेन[4]मभ्युपेत्येत्यपृच्छम्—'भद्र, संनाहोऽयं साहसमवगमयति। न चेद् गोप्यमिच्छामि श्रोतुं शोकहेतुम्' इति। स मा सबहुमानं निर्वर्ण्य 'को दोषः? श्रूयताम्' इति क्वचित्करवीरतले मया सह निषण्णः कथामकार्षीत्—'महाभाग, सोऽहमस्मि [5]पूर्वेषु कामचरः पूर्णभद्रो नाम गृहपतिपुत्रः। प्रयत्नसंवर्धितोऽपि पित्रा दैवच्छन्दानुवर्ती चौर्यवृत्तिरासम्। अथास्यां

कार्पण्यम् दैन्यम्। वर्षति प्रकटयति। क्षीणतारम् क्षीणा म्लाना तारा कनीनिका यस्य तत्। चक्षुः दृष्टिः। आरम्भः अध्यवसायः। साहसम् शौर्यम् तदनुवादी तत्सूचकः। नूनम् निश्चयेन। प्राणनिःस्पृहः प्राणेषु जीवने निःस्पृहः मोहरहितः। किमपि अलौकिकम्। कृच्छ्रम् कष्टम्। प्रियाः च ते जनाः च तेषाम् यत् व्यसनम् विपत् तत् एव मूलम् यस्य तादृशम्। प्रपित्सते जिगमिषति। तत् तर्हि। पृच्छेयम् अनुयुञ्जीय। साहाय्यदानावकाशः सहायताकरणावसरः। तम् उपर्युक्तम्। अभ्युपेत्य समीपे गत्वा। भद्र सौम्य। संनाहः उद्योगः। साहसम् प्राणनिरपेक्षम् कर्म। अवगमयति सूचयति। गोप्यम् अप्रकाशनीयम्। शोकहेतुम् शोकस्य दुःखस्य हेतुम् कारणम्। सबहुमानम् बहुमानेन सम्मानेन सह तत् यथा स्यात् तथा। निर्वर्ण्य निध्याय। क्वचित् कस्मिन्नपि। करवीरः वृक्षविशेषः तस्य तले अधः। निषण्णः उपविष्टः। कथाम् चर्चाम् (वक्ष्यमाणाम्)। अकार्षीत् कृतवान्। महाभाग महोदय। सः (पृष्टः जनः)। पूर्वेषु पूर्वदेशेषु। कामचरः स्वेच्छागमनकर्त्ता। गृहपतिपुत्रः गृहपतेः ग्रामाध्यक्षस्य पुत्रः। प्रयत्नेन प्रयासेन संवर्धितः पालितः। दैवस्य भाग्यस्य छन्दः इच्छा तदनुवर्त्ती तद्वशम् गतः। चौर्यवृत्तिः चौर्यम्

सी है और निश्चय साहस सूचित करता है। निश्चय ही यह प्राणों की परवाह न करने वाला है और ऐसे सङ्कट में पड़ेगा जो आत्मीयों के संकट का कारण बनेगा। (तो) इससे पूछना चाहिये कि मेरे लिये सहायता देने का कोई अवसर है या नहीं। उपर्युक्त इस व्यक्ति के पास पहुँचकर मैंने पूछा—'सौम्य, यह उद्योग साहस की सूचना देता है। यदि गोपनीय बात न हो तो मैं शोक का कारण सुनना चाहता हूँ।' उसने मुझे बहुत इज्जत से देखकर 'क्या हर्ज है; सुनें' (यह) कहकर किसी कनैल के पेड़ के नीचे मेरे साथ बैठकर बातें कीं—'श्रीमान्, अब आपका परिचित हो गया मैं पूर्व के देशों में स्वच्छन्द विचरण करने वाला ग्रामाध्यक्ष का बेटा पूर्णभद्र हूँ। पिता के द्वारा प्रयत्न-पूर्वक पाला-पोसा गया होने पर भी दैव के वश होकर चोरी से जीविका चलाने वाला बना। इसके बाद इस काशी नगरी में

---

[1] म्लानतारम्। [2] प्रतिपत्स्यते। [3] साहाय्यावकाशः। [4] अभ्युपपद्ये इति। [5] पूर्वेषुकाम०।

शंकराचार्य संस्कृत मह

काशीपुर्यामर्यवर्यस्य कस्यचिद्गृहे चोरयित्वा रूपाभिग्राहितो [1]बद्धः । [2]वध्ये च मयि मत्तहस्ती मृत्युविजयो नाम हिंसाविहारी [3]राजगोपुरोपरितलाधिरूढस्य पश्यतः कामपालनाम्न उत्तमामात्यस्य शासनाज्जनकण्ठरवद्विगुणितघण्टारवो मण्डलितहस्त[4]काण्ड समभ्यधावत् । अभिपत्य च मया निर्भयेन निर्भर्त्सितः परिणमन्दारुखण्डसुषिरानुप्रविष्टोभयभुजदण्ड[5]चण्डघट्टितप्रतिमानो[6]भीतवन्न्यवर्तिष्ट । भूयश्च नेत्रा जातसंरम्भेण निकामदारुणैर्वागङ्कुशपाद[7]पातैरभिमुखीकृतः । मयापि द्विगुणा-

एव वृत्तिः व्यापारः यस्य सः । अर्यवर्यस्य वैश्यश्रेष्ठस्य ('स्यादर्यः स्वामिवैश्ययोः' इति अमरः) । रूपाभिग्राहितः रूपेण चौर्यलब्धेन वस्तुना अभिग्राहितः धृतः । वध्ये वधार्हे । मत्तः उन्मत्तः च सः हस्ती गजः च । हिंसाविहारी हिंसायाम् अन्यप्राणहरणे विहरति आनन्दम् लभते इत्येवंशीलः । राज्ञः नृपस्य गोपुरस्य नगरद्वारस्य ('गोपुरं हि प्रतोल्यां च नगरद्वारयोरपि' इति महीपः) । उपरितलम् ऊर्ध्वदेशः तत्र अधिरूढस्य अधिष्ठितस्य । उत्तमः प्रधानः च सः अमात्यः मन्त्री च तस्य । शासनात् आदेशात् । जनानाम् कण्ठस्य रवेण शब्देन द्विगुणितः वर्धितः घण्टायाः रवः शब्दः यस्य तादृशः । मण्डलितः मण्डलाकारम् कृतम् हस्तकाण्डम् शुण्डादण्डः यत्र तत् यथा स्यात् तथा । समभ्यधावत् अभ्यपतत् । अभिपत्य वेगेन समीपम् आगत्य । निर्भयेन निर्गतम् भयम् भीतिः यस्मात् तादृशेन । निर्भर्त्सितः तर्जितः । परिणमन् तिर्यक् दन्तप्रहारं कुर्वन् ('तिर्यग्दन्तप्रहारस्तु गजः परिणतो मतः' इति हलायुधः) । दारुणः काष्ठस्य दण्डस्य शकलस्य सुषिरम् बिलम् तत्र अनुप्रविष्टौ अन्तर्निहितौ यौ उभयभुजदण्डौ ताभ्याम् चण्डम् भयङ्करम् यथा स्यात् तथा घट्टितम् संघर्षितम् प्रतिमानम् दन्तयोः मध्यभागः ('दन्तयोरुभयोर्मध्यं प्रतिमानं प्रचक्षते' इति वैजयन्ती) यस्य सः । भीतवत् भीतः इव । न्यवर्तिष्ट विमुखः अभवत् । भूयः पुनः । नेत्रा हस्तिपकेन । जातसंरम्भेण जातः संरम्भः क्रोधः यस्य तेन । निकामदारुणैः निकामम् अत्यन्तम् यथा स्यात् तथा दारुणैः कठोरैः । वाक् वाणी च अङ्कुशः सृणिः च पादयोः चरणयोः पातः आघातः च तैः । अभिमुखीकृतः संमुखीकृतः । द्विगुणाबद्धमन्युना द्विगुणम् यथा स्यात् तथा आबद्धः धृतः मन्युः क्रोधः येन तेन ('मन्युः दैन्ये क्रतौ क्रुधि' इति अमरः) ।

एक श्रेष्ठ वैश्य के घर चोरी कर चुराये गये माल के साथ पकड़ा और बाँधा गया । मुझ वध-योग्य के ऊपर राजा के नगर-द्वार के ऊपर चढ़कर देख रहे काम-पाल-नामक प्रधान मंत्री के आदेश से मृत्यु विजय नामक मस्त हाथी डण्डे के समान, सूँड़ का घेरा बनाता हुआ टूट पड़ा। उसे हिंसा में आनन्द आता था तथा उसके घण्टे की आवाज जनता के गले की ध्वनि से दुगुनी हो रही थी । निर्भय होकर मेरे द्वारा झपटकर डाँटा गया वह दाँतों का तिरछा प्रहार करने लगा । मैंने लकड़ी के टुकड़े के छेद में घुसे दोनो भुज-दण्डों से प्रचण्ड-रूप से उसके दाँतों के मध्य भाग को रगड़ा तो डरा-सा लौट गया । तब क्रोध में आये महावत के द्वारा अत्यन्त भयङ्कर वाणी, अंकुश और पैर की चोटों से सामने लाया गया । दूने क्रोध में आकर

---

[1] अबध्ये । [2] बद्धेः । [3] राजद्वारगोपु० । [4] ०काण्डः; मण्डलितकरः ।
[5] दण्डघटित । [6] मीत इव । [7] पादैः ।

बद्धमन्युना निर्भर्त्स्याभिहतो [1]निवृत्यापाद्रवत् । अथ [2]मयोपेत्य सरभसमाक्रुष्टो [3]रुष्टश्च यन्ता 'हन्त मृतोऽसि कुञ्जरापसद' इति निशितेन वारणेन वारणं मुहुर्मुहुरभिघ्नन्निर्याणभागे कथमपि मदभिमुखमकरोत् । अथावोचम्—'अपसरतु द्विप[4]कीट एषः । अन्यः कश्चिन्मातङ्गपतिरानीयताम् । येनाहं मुहूर्तं विहृत्य गच्छामि गन्तव्यां गतिम्' इति दृष्ट्वैव स मां रुष्टमुद्गर्जन्त[5]मुत्क्रान्तयन्तृनिष्ठुराज्ञः पलायिष्ट । मन्त्रिणा पुनरहमाहूयाभ्यधायिषि—'भद्र, [6]मृत्युरेवैष मृत्युविजयो नाम हिंसाविहारी । सोऽयमपि तावत्त्वयैवंभूतः कृतः । तद्विरम्य कर्मणोऽस्मान्मलीमसात्किमलमसि प्रतिपद्यास्मानार्यवृत्त्या वर्तितुम्'

निर्भर्त्स्य सतर्ज्य । अभिहतः ताडितः । निवृत्य विमुखः भूत्वा । उपाद्रवत् पलायितः । अथ ततः । उपेत्य समीपे गत्वा । सरभसम् सवेगम् । आक्रुष्टः आक्रोशम् प्रापितः । रुष्टः कुपितः । यन्ता हस्तिपकः । हन्त (क्रोधसूचकम् अव्ययपदम्) । कुञ्जरापसद गजाधम ('निहीनेऽपसदो जाल्मः' इति वैजयन्ती) । निशितेन तीक्ष्णेन । वारणेन अङ्कुशेन । वारणम् गजम् ('वारणस्तु गजे प्रोक्तो वारणं तन्निवारणे' इति अजयः) । मुहुः मुहुः पुनः पुनः । अभिघ्नन् ताडयन् । निर्याणभागे अपाङ्गदेशे ('अपाङ्गदेशो निर्याणम्' इति अमरः) । कथमपि अतिक्लेशेन । मदभिमुखम् मम सम्मुखीनम् । अथ ततः । अवोचम् अवदम् । अपसरतु दूरम् गच्छतु । द्विपकीटः द्विपः गजः कीटः इव । अन्यः अपरः । मातङ्गपतिः गजयूथराजः । मुहूर्तम् क्षणम् । विहृत्य क्रीडित्वा । गन्तव्याम् प्राप्तव्याम् । गतिम् दशाम् (मरणम्) । सः (गजः) । रुष्टम् कुपितम् । उद्गर्जन्तम् उच्चैः आक्रोशन्तम् । उत्क्रान्ता उल्लङ्घिता यन्तुः हस्तिपकस्य निष्ठुरा क्रूरा आज्ञा आदेशः येन सः (गजः) । पलायिष्ट पलायितः । अभ्यधायिषि अभिहितः (कथितः) । भद्र सौम्य । एव साक्षात् । एवंभूतः (पलायनोन्मुखः) । तत् तर्हि । विरम्य विरतः सन् । कर्मणः कार्यात् (चौर्यात्) । मलीमसात् मलिनात् (निन्दितात्) । अलम् समर्थः । प्रतिपद्य प्राप्य । आर्यवृत्त्या-आर्या श्रेष्ठा च सा वृत्तिः आचारः च तया । वर्तितुम्

मेरे द्वारा भी डाँटा गया । फिर मुँह फेरकर भागा । फिर वेग के साथ पास पहुँचकर मेरे द्वारा भला-बुरा कहे गये हुये महावत ने 'अहो ! रे अधम हाथी, मर गया है ?' (इस प्रकार) कहकर तेज अंकुश से हाथी की आँखों की कोर में वार-बार प्रहार करते हुये मेरी ओर किया । तब मैं बोला—'दूर हटे यह कीड़े-सा हाथी । कोई दूसरा श्रेष्ठ हाथी लाया जाय जिससे मैं घड़ी भर खेलकर गन्तव्य दशा प्राप्त करूँ ।' वह मुझे क्रुद्ध और जोर से गरजता हुआ देखकर महावत की क्रूर आज्ञा का उल्लंघन कर भाग निकला । फिर मंत्री ने मुझे बुलाकर कहा—'सौम्य, हिंसा में आनन्द पाने वाला यह मृत्यु-विजय (साक्षात्) मृत्यु ही है । उतने प्रसिद्ध उसे भी तुमने ऐसा बना दिया है (अतः) यह मलिन कार्य बन्द कर क्या हमारे आश्रय में

---

१. विवृत्य । २. अनुपत्य । ३. रुष्टः स । ४. द्विरदवराकः । ५. उत्क्रामन्तम् । ६. मृत्युरिवैष ।

इति । 'यथा[1]ज्ञापितोऽस्मि' इति विज्ञापितोऽयं मया मित्रवन्मय्यवर्तिष्ट ।

पृष्टश्च मयैकदा रहसि जातविश्रम्भेणाभाषत स्वचरितम्—'आसीत्कुसुमपुरे राज्ञो रिपुंजयस्य मन्त्री धर्मपालो नाम विश्रुतधीः [2]श्रुतर्षिः । अमुष्य पुत्रः सुमित्रो नाम पित्रैव समः प्रज्ञागुणेषु । तस्यास्मि द्वैमातुरः कनीयान्भ्राताहम् । वेशेषु विलसन्तं मामसौ विनयरुचिरवारयत् । अवार्यदुर्नयश्चाहमपसृत्य दिङ्मुखेषु भ्रमन्यदृच्छयास्यां वाराणस्यां प्रमदवने मदनदमनाराधनाय निर्गत्य सह

व्यवहर्तुम् । यथा येन प्रकारेण । आज्ञापितः आदिष्टः (तथा करिष्यामि) । विज्ञापितः निवेदितः । अयम् पूर्वोक्तः (मन्त्री) । मयि मम विषये । अवर्तिष्ट व्यवहृतवान् ।

पृष्टः (मन्त्री) । मया (पूर्णभद्रेण) । रहसि एकान्ते । जातविश्रम्भेण जातः उत्पन्नः च सः विश्रम्भः विश्वासः तेन । अभाषत उक्तवान् । स्वस्य (स्वम् वा) चरितम् जीवनम् (कथाम्) । कुसुमपुरे पाटलिपुत्रे । राज्ञः नृपस्य । रिपुञ्जयस्य रिपुञ्जय इतिनाम्नः । विश्रुता प्रसिद्धा धीः बुद्धिः यस्य सः विश्रुतधीः । श्रुतर्षिः[3] अधीतवेदः । अमुष्य तस्य (धर्मपालस्य) । पित्रा जनकेन । समः तुल्यः । प्रज्ञागुणेषु धीगुणेषु ('शुश्रूषा ग्रहणं चैव श्रवणं चावधारणम् । ऊहापोहोऽर्थविज्ञानं तत्त्वज्ञानं च धीगुणाः' इति कामन्दके) । द्वैमातुरः द्वयोः मात्रोः अपत्यम् (वैमात्रेयः) ('मातुरुत्संख्यासंभद्र०' अष्टाध्यायी ४।१।११५) । कनीयान् भ्राता अनुजः । अहम् (मन्त्री) । वेशेषु वेश्यासमाश्रयेषु । विलसन्तम् विहरन्तम् । असौ (ज्येष्ठभ्राता सुमित्रः) । विनये रुचिः अभिनिवेशः यस्य तादृशः । अवारयत् निषिद्धवान् । अवार्यः दूरीकर्तुम् अशक्यः दुर्नयः दुर्नीतिः यस्य सः । अपसृत्य पलाय्य । दिङ्मुखेषु दिगन्तेषु । यदृच्छया दैववशात् । प्रमदवने क्रीडोद्याने अन्तःपुरोचितवने वा ('स्यादेतदेव प्रमदवनमन्तःपुरोचितम्' इति अमरः) ।

रहकर सज्जनों की रीति से चलने में समर्थ हो ?' 'जैसी आपकी आज्ञा' इस प्रकार मेरा निवेदन सुनकर मेरे प्रति ये मित्र के समान व्यवहार करने लगे ।

फिर एक बार एकान्त में मैंने उत्पन्न विश्वास से (उत्साहित होकर) उनसे पूछा और उन्होंने अपनी जीवन-कथा यों कही—'कुसुमपुर में राजा रिपुञ्जय का मन्त्री धर्मपाल था जिसकी बुद्धि प्रसिद्ध थी तथा जो श्रुतर्षि (वेद पढ़ा हुआ) था । उसका पुत्र सुमित्र था जो बुद्धि-गुणों में पिता के ही समान था । उसका सौतेला छोटा भाई हूँ मैं । वेश्याओं के घर मौज उड़ाते हुये मुझे उस अनुशासन-प्रिय ने रोका । मेरी दुर्नीति निवारण-योग्य नहीं थी । दूर जाकर दिशाओं के कोने में भ्रमण करता हुआ संयोग से इस वाराणसी के प्रमद-वन (आनन्द-

---

[1] यथाऽऽज्ञापयसि । [2] नाम श्रुतऋषिः; वेदश्रुतऋषिः ।

[3] ७ विभिन्न नामों के ऋषियों का समूह सप्तर्षि कहलाता है । ऐसे दो समूह मिलते हैं । ऋषियों के ७ प्रकार भी माने गये हैं (जिनमें प्रारम्भ के ४ ही आज-कल प्रसिद्ध हैं) : ऋषि, महर्षि, देवर्षि, ब्रह्मर्षि, परमर्षि, काण्डर्षि और श्रुतर्षि ।

सखीभिः कन्दुकेनानु[1]क्रीडमानां काशीभर्तुश्चण्डसिंहस्य [2]कन्यां कान्तिमतीं नाम चकमे। कथमपि समगच्छे च। अथच्छन्नं च विहरता कुमारीपुरे सा मयासीदापन्नसत्त्वा। कंचित्सुतं च प्रसूतवती। [3]मृतजात इति सोऽपविद्धो रहस्यनिर्भेदभयात्परिजनेन क्रीडाशैले। शबर्या च श्मशानाभ्यासं नीतः। तयैव निवर्तमानया निशीथे राजवीथ्यामारक्षिकपुरुषैरभिगृह्य तर्जितया दण्डपारुष्यभीतया निर्भिन्नप्रायं रहस्यम्। राजाज्ञया निशीथेऽह[4]माक्रीडनगिरिदरीगृहे विश्रब्ध-

मदनदमनस्य महादेवस्य आराधनाय पूजनाय। सह सार्धम्। सखीभिः आलीभिः। कन्दुकेन गेन्दुकेन। अनुक्रीडमानाम् खेलन्तीम्। काश्याः वाराणस्याः भर्तुः नृपस्य। चण्डसिंहस्य चण्डसिंह इतिनाम्नः। चकमे अभिलषितवान्। कथमपि अतिक्लेशेन। समगच्छ मिलितः। छन्नम् गुप्तम् यथा स्यात् तथा। विहरता विलसता। कुमारीपुरे कन्यान्तःपुरे। सा (कान्तिमती नाम राजकन्या)। आपन्नसत्त्वा जातगर्भा ('आपन्नसत्त्वा स्याद् गुर्विण्यन्तर्वत्नी च गर्भिणी' इति अमरः)। प्रसूतवती जनितवती। मृतजातः मृतः च जातः च (गर्भे एव मृतः)। सः (सुतः)। अपविद्धः त्यक्तः। रहस्यम् गोप्यम् तस्य निर्भेदः प्रकटनम् तस्मात् यत् भयम् भीतिः तस्मात्। परिजनेन दासीजनेन। क्रीडाशैले क्रीडापर्वते। शबर्या भिल्ल्या। श्मशानस्य अभ्यासम् समीपम्। तया (शबर्या)। निवर्तमानया (श्मशानात्) परावर्तमानया। निशीथे अर्द्धरात्रे। राजवीथ्याम् राजमार्गे। आरक्षिकपुरुषैः प्रहरकैः। अभिगृह्य धृत्वा। तर्जितया भीषितया। दण्डस्य निग्रहस्य यत् पारुष्यम् कठोरता तेन भीतया त्रस्तया। निर्भिन्नप्रायम् बाहुल्येन प्रकाशितम्। राजाज्ञया राज्ञः नृपस्य आज्ञया आदेशेन। निशीथे अर्द्धरात्रे। आक्रीडनगिरिः क्रीडापर्वतः तस्य दरीगृहे कन्दरायाम्। विश्रब्धम् विश्वासपूर्वकम् यथा स्यात् तथा प्रसुप्तस्य निद्रितस्य। तया

उद्यान) में महादेव की आराधना के लिये निकलकर काशी-नरेश चण्डसिंह की कन्या कान्तिमती को पाने की अभिलाषा की। उस समय वह सखियों के साथ गेंद खेल रही थी। किसी तरह मिला भी। तदनन्तर लुके-छिपे कन्या-अन्तःपुर में विहार कर रहे मेरे कारण वह गर्भवती हो गई। उसने एक पुत्र को जन्म भी दिया। वह मरा पैदा हुआ था, इसलिये नौकरों-चाकरों ने पोल खुल जाने के डर से उसे क्रीड़ा-पर्वत पर छोड़ दिया। एक भीलनी उसे मसान के पास ले गई। आधी रात को लौटते समय सड़क पर पहरेदारों के द्वारा पकड़कर डराई जाने पर कठोर दण्ड से डरकर उसने गुप्त भेद करीब-करीब खोल दिया। राजा के आदेश से आधी रात को क्रीड़ा-पर्वत के गुफा-घर में जब मैं विश्वास-पूर्वक गहरी नींद में पड़ा था, उस

---

१. परिक्रीडमानाम्। २. क्रीडमानां कन्यां कान्तिमतीं नाम चकमे। ३. सूतजातः। ४. आक्रीड।

प्रसुप्तस्तयोपदर्शितो यथोपपन्नरज्जुबद्धः श्मशानमुपनीय मातङ्गोद्यतेन कृपाणेन प्राजिहीर्ष्यें। नियतिबलाल्लून[1]बन्धस्तमसिमाच्छिद्यान्त्यजं तमन्यांश्च कांश्चित्प्रहृत्यापासरम्। अशरणश्च भ्रमन्नटव्यामेकदाश्रु[2]मुख्या कयापि दिव्याकारया [3]सपरिचारया कन्ययोपास्थायिषि। सा मामञ्जलिकिसलयोत्तंसितेन मुखविलोलकुन्तलेन मूर्ध्ना प्रणम्य[4] मया सह वनवटद्रुमस्य कस्यापि महतः प्रच्छायशीतले तले निषण्णा 'कासि वासु, कुतोऽस्यागता, कस्य हेतोरस्य मे प्रसीदसि' इति साभिलाषमाभाषिता मया वाङ्मयं मधुवर्षमवर्षत्—[5]"आर्य, नाथस्य यक्षाणां मणिभद्रस्यास्मि दुहिता तारावली नाम। साहं कदाचिदगस्त्यपत्नीं

(शबर्या)। उपदर्शितः सङ्केतितः। यथोपपन्नया तत्कालप्राप्तया रज्ज्वा दोरकेण बद्धः संयतः। उपनीय नीत्वा। मातङ्गोद्यतेन मातङ्गेन चाण्डालेन उद्यतेन उत्थापितेन कृपाणेन खड्गेन। प्राजिहोर्ष्यें प्रहर्तुम् इष्टः। नियतेः भाग्यस्य बलात् प्रभावात्। लूनबन्धः लूनः छिन्नः बन्धः बन्धनम् यस्य सः। असिम् खड्गम्। आच्छिद्य आकृष्य। अन्त्यजम् चाण्डालम्। अशरणः न विद्यते शरणम् सहायकः यस्य तादृशः (सन्)। अटव्याम् वने। अश्रुमुख्या अश्रु मुखे वदने यस्याः तया। दिव्याकारया दिव्यः अलौकिकः आकारः आकृतिः यस्याः तया। सपरिचारया परिचारः सेवा लक्षणया तदुपकरणानि तेन सह वर्तमानया। उपास्थायिषि सङ्गतः अभवम्। सा (कन्या)। माम् (मन्त्रिणम्)। अञ्जलिः एव किसलयः पल्लवः तेन उत्तंसितेन भूषितेन। मुखे आनने विलोलाः चञ्चलाः कुन्तलाः केशाः यस्य तेन। मूर्ध्ना मस्तकेन। प्रच्छायेन विस्तृतच्छायया शीतले। निषण्णा उपविष्टा। वासु बाले। कुतः कस्मात् स्थानात्। हेतोः कारणात्। अस्य एतावदवस्थस्य। मे मम। प्रसीदसि प्रसन्ना भवसि। साभिलाषम् अभिलाषेण स्पृहया सह तत् यथा स्यात् तथा। आभाषिता उक्ता (सती)। वाङ्मयम् वाणीरूपम्। मधुवर्षम् मधुवृष्टिम्। आर्य महोदय। नाथस्य अधिपतेः। दुहिता पुत्री। अपावर्तमाना

(भीलनी) के द्वारा मेरी ओर संकेत किया गया। मैं उसी समय मिली रस्सी से बाँधा गया। मसान में ले जाकर चाण्डाल के द्वारा उठाई गई तलवार से मेरी हत्या करना तय किया गया। भाग्य बल से मेरे बन्धन टूट गये और मैं वह तलवार छीनकर उस शूद्र तथा अन्य कई लोगों पर प्रहार कर भाग गया। असहाय होकर जगल में घूम रहा था कि एक बार मुँह पर आँसू लिये किसी अलौकिक आकार वाली कन्या सेवा सामग्री के साथ उपस्थित हुई। उसने अञ्जलि-रूपी पल्लव से विभूषित मुख पर चञ्चल हो रहे बालों वाले सिर से मुझे प्रणाम कर मेरे साथ एक महान् जंगली बरगद के पेड़ की घनी छाया से ठण्डे तल में बैठकर 'हे बाला, तुम कौन हो ? कहाँ से आई हो ? किस कारण ऐसी अवस्था में पड़े हुये मेरे ऊपर तुमने कृपा की है ?' इस प्रकार मेरे स्नेह से बात करने पर वाणी की मधु-वृष्टि की—'श्रीमान्, यक्षों के स्वामी मणिभद्र की कन्या तारावली हूँ। उस रूप में कभी अगस्त्य को

---

१. बन्धनः। २. उदश्रुमुख्या। ३. सपरिवारया। ४. प्रणिपत्य। ५. नाथ।

लोपामुद्रां नमस्कृत्यापावर्तमाना मलयगिरेः परेतावासे [1]वाराणस्याः कमपि दारकं रुदन्तमद्राक्षम् । आदाय चैनं तीव्र[2]स्नेहान्मम पित्रोः संनिधिमनैषम् । अनैषीच्च मे पिता देवस्यालकेश्वरस्यास्थानीम् । अथाहमाहूयाज्ञप्ता हरसखेन 'वाले, बालेऽस्मिन्कीदृशस्ते भावः' इति । 'औरस इवास्मिन्वत्से वत्सलता' इति मया विज्ञापितः 'सत्यमाह वराकी' इति तन्मूलामतिमहतीं कथामकरोत् । तत्रैतावन्मयावगतम् 'त्वं किल शौनकः शूद्रकः कामपालश्चाभिन्नः । बन्धुमती विनयवती कान्तिमती चाभिन्ना । वेदिमत्यार्य[3]दासी सोमदेवी चैकैव । [4]हंसावली शूरसेना[5] सुलोचना चानन्या । नन्दिनी रङ्गपताकेन्द्रसेना चापृथग्भूता' या किल शौनकावस्थायामग्निसाक्षिकमात्मसात्कृता गोपकन्या सैव किलार्यदासी पुनश्चाद्य

निवर्तमाना । मलयगिरेः मलयाचलात् । परेतावासे महाश्मशाने । दारकम् बालकम् । रुदन्तम् क्रन्दन्तम् । अद्राक्षम् अपश्यम् । आदाय गृहीत्वा । एनम् (बालकम्) । मम (कन्यायाः) । पित्रोः माता च पिता च पितरौ तयोः । सन्निधिम् पार्श्वे । अनैषम् अनयम् । अनैषीत् अनयत् । अलकेश्वरस्य कुवेरस्य । आस्थानीम् सभाम् ('आस्थानी क्लीवमास्थानम्' इति अमरः) । आज्ञप्ता आदिष्टा । हरसखेन कुवेरेण । वाले कन्ये । बाले बालके । भावः स्नेहः । औरसे उरसि भवः (स्वोदरजातः) तस्मिन् । वत्से बालके । वत्सलता स्नेहः । विज्ञापितः निवेदितः (कुवेरः) । वराकी कृपार्हा । तन्मूलाम् सः (बालकः) मूलम् कारणम् यस्याः ताम् । तत्र (तस्याम् कथायाम्) । मया (तारावल्या) । एतावत् एतत् (एव) । अवगतम् ज्ञातम् । त्वम् (मन्त्री) । किल निश्चयेन । अभिन्नः एकः । अभिन्ना एका । अनन्या एका । अपृथग्भूता एका । किल निश्चयेन । शौनकावस्थायाम् शौनकजन्मनि । अग्निसाक्षिकम् अग्निम् साक्षीकृत्य । आत्मसात्कृता परिणीता । गोपस्य आभीरस्य कन्या पुत्री । किल निश्चयेन । बालः पूर्ववर्णितः ।

पत्नी लोपामुद्रा को प्रणाम कर लौटती हुई मैंने मलय-पर्वत के श्मशान में वाराणसी के किसी बालक को रोते हुये देखा । फिर उसे लेकर प्रबल-स्नेह-वश अपने माता-पिता के समीप ले गई । मेरे पिता राजा कुबेर को सभा में ले गये । कुबेर ने बुलाकर मुझसे कहा— 'हे बाला, इस बालक के प्रति तुम्हारे हृदय में कैसा स्नेह है ?' 'इस बालक के प्रति वही वात्सल्य है जो अपने जाये पुत्र के प्रति होता है' इस प्रकार मेरे निवेदन करने पर 'बेचारी सच कहती है' यह कहकर खूब लम्बी कहानी कही जिसका मूल वह (बालक) था । वहाँ इतना मुझे पता चला । तुम्हीं अभिन्न रूप से शौनक, शूद्रक और कामपाल हो । बन्धुमती, विनयवती और कान्तिमती (तीनो) एक हैं । वेदिमती, आर्यदासी और सोमदेवी समान ही हैं । हंसावली, शूरसेना और सुलोचना अभिन्न हैं । नन्दिनी, रङ्गपताका और इन्द्रसेना एक हैं । वही मैं गोप-कन्या जिसे शौनक रूप में रहने पर अग्नि को साक्षी बनाकर तुमने अपनी बनाया था आर्यदासी होकर फिर आज तारावली हो गई हूँ । तुम्हारे शूद्रक

---

[1] वाराणस्याम् । [2] तीव्रस्नेहा । [3] अर्यदासी; यक्षदासी; यज्ञदासी ।
[4] हंसावती । [5] सुरसेना ।

तारावलीत्यभूवम्। बालश्च किल शूद्रकावस्थे त्वय्यार्यदास्यवस्थायां मय्युदभूत्। अवर्ध्यत च विनयवत्या स्नेहवासनया। स तु तस्यां कान्तिमत्यवस्थायामद्योदभूत्। एवमनेकमृत्युमुखपरिभ्रष्टं दैवान्मयोपलब्धं तमेकपिङ्गादेशाद्वने तपस्यतो राजहंसस्य देव्यै वसुमत्यै तत्सुतस्य भाविचक्रवर्तिनो राजवाहनस्य परिचर्यार्थं

किल निश्चयेन। त्वयि (कामपाले सति); मयि (तारावल्याम्)। उदभूत् जातः। अवर्ध्यत अपाल्यत। विनयवत्या शूद्रकस्य प्रथमपत्न्या। स्नेहवासनया वात्सल्यभावेन। सः (बालकः)। तस्याम् (विनयवत्याम्)। अनेकेभ्यः मृत्युमुखेभ्यः परिभ्रष्टम् च्युतम्। प्रथमतः कान्तिमतीसखीभिः क्रीडापर्वते त्यक्तः पश्चात् च शबर्या श्मशानभूमौ। दैवात् भाग्यात्। एकपिङ्गस्य कुबेरस्य आदेशात् आज्ञया। तपस्यतः तपः चरतः। देव्यै राज्यै। तत्सुतस्य तस्य

अवस्था में रहने पर निश्चय ही (यह) बालक आर्य-दासी के रूप में स्थित मेरे गर्भ में आया था। फिर विनयवती ने वात्सल्य भाव से इसे पाला-पोसा किन्तु अब वह कान्तिमती अवस्था में विद्यमान उस (विनयवती) के गर्भ से पैदा हुआ है[1]। इस प्रकार कई मौतों के मुख से गिरे (बचे) हुये भाग्य-वश मुझे मिल गये उसे कुबेर की आज्ञा से जगल में तपस्या कर रहे राजहंस की रानी वसुमती को उसके पुत्र भावी चक्रवर्ती (सम्राट्) राजवाहन की सेवा के

---

१. यहाँ तीन जन्मों का हाल बताया गया है। पति-पत्नी का सम्बन्ध तीनो जन्मों में (पति और उसकी पाँच पत्नियों का) रहता है :—

	पति	पत्नियाँ				
पहला जन्म	शौनक	बन्धुमती	वेदिमती	हंसावली	नन्दिनी	गोपकन्या
दूसरा ,,	शूद्रक	विनयवती	आर्यदासी	शूरसेना	रङ्गपताका	आर्यदासी
तीसरा ,,	कामपाल	कांतिमती	सोमदेवी	सुलोचना	इन्द्रसेना	तारावली

दूसरे जन्म में आर्य-दासी दो पत्नियों का नाम है। पहले जन्म में लड़का क्या था, यह नहीं बताया गया है। तारावली ने पूर्व जन्म में इस बालक को जन्म दिया था, पर इस जन्म में क्रम ठीक नहीं रहा और वह तारावली की सौत कान्तिमती के गर्भ से पैदा हुआ। विनयवती ने पूर्व-जन्म में पाला-पोसा था। उस आत्मीयता से (इस जन्म में कान्तिमती के रूप में पैदा हुई तो) पूर्व जन्म में पोषित पुत्र औरस पुत्र के रूप में प्राप्त हुआ। पुनर्जन्म की ऐसी घटनायें प्राचीन साहित्य में प्रचुरता से मिलती हैं।

यह लड़का पिता कामपाल के लिये सङ्कट का कारण हुआ। बाद में यही अर्थपाल कहलाया। इस समय यही राजवाहन से अपनी कथा बता रहा है।

समर्प्य गुरुभिरभ्यनुज्ञाता कृतान्तयोगात्कृतान्तमुख[1]भ्रष्टस्य ते पादपद्मशुश्रूषार्थमागतास्मि' इति ।

श्रुत्वा तामनेकजन्मरमणीमसकृदाश्लिष्य हर्षाश्रुमुखो मुहुर्मुहुः सान्त्वयित्वा तत्प्रभावदर्शिते महति मन्दिरेऽहर्निशं भूमि[2]दुर्लभान्भोगानन्वभूवम् । द्वित्राणि दिनान्यति[3]क्रम्य मत्तकाशिनीं तामवादिषम्—'प्रिये, प्रत्यपकृत्य मत्प्राणद्रोहिणश्चण्डसिंहस्य वैरनिर्यातनसुखमनुबुभूषामि' इति । तया सस्मितमभिहितम्—'एहि कान्त, कान्तिमतीदर्शनाय नयामि त्वाम्' इति । स्थितेऽर्धरात्रे राज्ञो वासगृहमनीये । ततस्तच्छिरोभागवर्तिनीमादायासियष्टिं प्रबोध्यैनं प्रस्फुरन्तमब्रवम्—'अहमस्मि भवज्जामाता । भवदनुमत्या विना तव

(राजहंसस्य) सुतस्य पुत्रस्य । परिचर्यार्थम् सेवार्थम् । समर्प्य दत्त्वा । गुरुभिः (पित्रादिभिः) अभ्यनुज्ञाता आदिष्टा । कृतान्तयोगात् दैवयोगात् ('कृतान्तो यमसिद्धान्तदैवाकुशलकर्मसु' इति अमरः) । कृतान्तस्य यमस्य मुखात् भ्रष्टस्य निर्गतस्य । ते (तव कामपालस्य)। ताम् (तारावलीम्) ।

अनेकेषु जन्मसु रमणीम् पत्नीम् । असकृत् वारम् वारम् । आश्लिष्य आलिङ्ग्य । हर्षाश्रुमुखः आनन्दनिर्गताश्रुपूर्णमुखः । मुहुःमुहुः वारम् वारम् । सान्त्वयित्वा आश्वास्य । तस्याः (तारावल्याः) प्रभावात् (यक्षकन्यात्वात्) दर्शिते प्रकटीकृते । अहर्निशम् दिवारात्रम् । भूमिदुर्लभान् अलौकिकान् (दिव्यान्) । द्वित्राणि कतिपयानि । अतिक्रम्य अतिवाह्य । मत्तकाशिनोम् उत्तमाङ्गनाम् । ताम् (तारावलीम्) अवादिषम् अवदम् । प्रत्यपकृत्य प्रत्यपकारम् कृत्वा । मम प्राणद्रोहिणः जीवननाशेच्छुकस्य । वैरनिर्यातनम् वैरशुद्धिम् । अनुबुभूषामि अनुभवितुम् इच्छामि । तया (तारावल्या) । सस्मितम् विहासेन सह । अभिहितम् उक्तम् । एहि आगच्छ । कान्त प्रिय । स्थिते आगते । अर्धरात्रे निशीथे । राज्ञः (चण्डसिंहस्य) । वासगृहम् गर्भागारम् । अनीये नीतः (अहम्) । तस्य चण्डसिंहस्य शिरोभागवर्तिनीम् । असियष्टिम् खड्गम् । प्रबोध्य जागरयित्वा । एनम् (चण्डसिंहम्) । प्रस्फुरन्तम् कम्पमानम् ।

लिये सौंपकर पूज्य जनों की अनुमति पाकर दैवयोग से यम के मुख से छूटे तुम्हारे चरणकमलों की सेवा के लिये आई हूं ।'

उक्त बातें सुनकर कई जन्मों की प्रिय पत्नी उसे बार-बार गले लगाकर मुख पर आनन्द के आँसू लिये हुये मैंने बार-बार ढाढ़स देकर उसकी सामर्थ्य से दिखाये गये एक बड़े घर में रात-दिन पृथ्वी पर दुर्लभ भोग भोगे । दो-तीन दिन बिताकर उस उत्तमाङ्गना से बोला—'हे प्रिये, अपने जानी दुश्मन चण्डसिंह से बदला लेकर बदला लेने में जो आनन्द है, उसे भोगना चाहता हूँ' । उसने मुस्कराहट के साथ कहा—'आओ प्रिय, तुम्हें कान्तिमती के दर्शन के लिये ले चलूँ ।' आधी रात होने पर मैं राजा के गर्भ-गृह में ले जाया गया । तदनन्तर उसके सिरहाने रखी हुई छड़ी के समान तलवार लेकर उसे जगाया । उस समय वह काँप रहा था । उससे बोला—'मैं हूँ आपका दामाद; आपकी आज्ञा के बिना आपकी कन्या

---

१. परिभ्रष्टस्य । २. इन्द्रदु० । ३. अतीत्य ।

कन्याभिमर्शी। तमपराधमनुवृत्त्या प्रमार्ष्टुमागतः' इति। [1]सोऽतिभीतो मामभिप्रणम्याह—'अहमेव मूढोऽपराद्धः यस्तव दुहितृसंसर्गानुग्राहिणो ग्रहग्रस्त इवोत्क्रान्तसीमा समादिष्टवान्वधम्। तदास्तां कान्तिमती राज्यमिदं मम च जीवितमप्यद्य प्रभृति भवद[2]धीनम्' इत्यवादीत्। अथापरेद्युः प्रकृतिमण्डलं [3]संनिपात्य विधिवदात्मजाया पाणिमग्राहयत्। अश्रावयच्च तनयवार्तां तारावली कान्तिमत्यै, सोमदेवीसुलोचनेन्द्र नाभ्यश्च पूर्वजातिवृत्तान्तम्। इत्थमहं मन्त्रिपदापदेशं यौवराज्यमनुभवन्विहरामि विलासिनीभिः' इति।

स एवं मादृशेऽपि जन्तौ परिचर्यानुबन्धी बन्धुरेकः सर्वभूतानामलसकेन

अब्रवम् अवदम्। भवदनुमत्या भवतः तव अनुमत्या सम्मत्या। कन्याभिमर्षी कन्याभोक्ता। अनुवृत्त्या सेवया। प्रमार्ष्टुम् क्षालयितुम् (दूरीकर्तुम्)। सः (चण्डसिंहः)। माम् (कामपालम्)। आह अवदत्। मूढः मोहग्ररतः। अपराद्धः अपराधकर्त्ता। यः अहम् (चण्डसिंहः)। तव (कामपालस्य)। दुहितुः कन्यायाः संसर्गेण भोगेन अनुग्राहिणः कृपाकर्तुः। ग्रहग्रस्तः ग्रहाविष्टः। उत्क्रान्ता उल्लङ्घिता सीमा मर्यादा येन सः। समादिष्टवान् आज्ञप्तवान्। आस्ताम् तिष्ठतु। कान्तिमती (कन्या)। जीवितम् प्राणाः। अद्य अस्मात् दिनात्। प्रभृति आरभ्य। अवादीत् अवदत्। अथ ततः। अपरेद्युः द्वितीये दिने। प्रकृतिमण्डलम् प्रजावर्गम्। विधिवत् विधिपूर्वकम्। आत्मजायाः कन्यायाः। पाणिम् अग्राहयत् विवाहम् अकरोत्। तनयवार्ताम् तनयस्य पुत्रस्य वार्ताम् वृत्तान्तम्। पूर्वजातिवृत्तान्तम् पूर्वजन्मवृत्तम्। इत्थम् एवम्। अहम् (कामपालः)। मन्त्रिपदस्य अपदेशः मिषम् यत्र तत्। विलासिनीभिः कामिनीभिः। इति (पूर्वोक्तम् कामपालवचनम्)।

(पूर्णभद्रः उवाच)। सः (कामपालः)। एवम् अनेन प्रकारेण। जन्तौ तुच्छे जने। परिचर्यानुबन्धी सेवापरायणः। बन्धुः मित्रभूतः। एकः श्रेष्ठः। सर्वभूतानाम् सर्वप्राणिनाम्।

का स्पर्श करने वाला। वह अपराध (हत्या-रूपी) सेवा से मिटाने आया हूँ।' उसने बहुत भय भीत होकर और मुझे निकट से प्रणाम कर कहा—'मैं ही मोह-ग्रस्त और अपराधी हूँ जो कन्या से संपर्क कर मेरे प्रति कृपाशील आपके वध की आज्ञा ग्रह-ग्रस्त की भाँति सीमा का उल्लंघन कर दे दी थी। (तो) कान्तिमती को जाने दो (वह तो तुच्छ दान है; उसके अतिरिक्त), यह राज्य और मेरा जीवन आज से आपके अधीन है।' इसके बाद उसने दूसरे दिन प्रजा-समूह को इकट्ठा कर विधि-पूर्वक कन्या का पाणि-ग्रहण कराया। उधर तारावली ने कान्तिमती को पुत्र का समाचार तथा सोमदेवी, सुलोचना और इन्द्रसेना को पूर्व-जन्म का वृत्तान्त सुनाया। इस प्रकार मैं मन्त्री-पद के बहाने युवराज पद का भोग करता हुआ सुन्दरी स्त्रियों के साथ विहार कर रहा हूँ।

इस प्रकार मुझ जैसे तुच्छ जन (पूर्ण भद्र) तक के प्रति सेवा-परायण और समस्त

---

१. सोऽथ भीतः। २. त्वदधीनम्। ३. संनिधाप्य।

स्वर्गते श्वशुरे, ज्यायसि च श्याले चण्डघोषनाम्नि स्त्रीष्वतिप्रसङ्गात्प्रागेव क्षयक्षीणायुषि, पञ्चवर्षदेशीयं सिंहघोषनामानं कुमारमभ्यषेचयत्। अवर्धयच्च विधिनैनं स साधुः। तस्याद्य यौवनोन्मादिनः पैशुन्यवादिनो दुर्मन्त्रिणः कतिचिदासन्नन्तरङ्गभृताः। तैः किलासावित्थमग्राह्यत—'प्रसह्यैव स्वसा तवामुना भुजङ्गेन संगृहीता। पुनः प्रसुप्ते राजनि प्रहर्तुमुद्यतासिरासीत्। तेनास्मै [१]तत्क्षणप्रवुद्धेन भीत्यानुनीय दत्ता कन्या। त च देवज्येष्ठं चण्डघोषं विषेण हत्वा बालोऽयमसमर्थ इति तमद्यापि प्रकृतिविश्रम्भणायोपेक्षितः। क्षिणोति च

अलसकेन क्षयेण ('क्षयस्त्वलसको मतः' इति वैजयन्ती)। स्वः स्वर्गम्। श्वशुरे (चण्डसिंहे)। ज्यायसि ज्येष्ठे। श्याले पत्नीभ्रातरि ('श्यालाः स्युर्भ्रातरः पत्न्याः' इति अमरः)। अतिप्रसङ्गात् अत्यन्तासक्तेः। प्राक् पूर्वम्। क्षयेण क्षीणम् नष्टम् आयुः जीवितकालः यस्य तस्मिन्। पञ्चवर्षदेशीयम् ईषद् असमाप्तपञ्चवर्षदशम् ('ईषदसमाप्तौ कल्पब्देश्यदेशीयरः')। कुमारम् बालकम् (श्यालम्)। अभ्यषेचयत् अभिषेकम् अकारयत्। एनम् (सिंहघोषम्)। सः (कामपालः)। साधुः महात्मा। तस्य (सिंहघोषस्य)। अद्य एषु दिनेषु। यौवनोन्मादिनः तारुण्यमदगर्विताः। पैशुन्यवादिनः पैशुन्यम् दौर्जन्यम् तत् वदन्ति इति। दुर्मन्त्रिणः दुष्टाः मन्त्रिणः। कतिचित् कतिपये। अन्तरङ्गभूताः आप्ताः। तैः मन्त्रिभिः। किल (अलीके)। असौ (सिंहघोषः)। इत्थम् अनेन (वक्ष्यमाणेन) प्रकारेण। अग्राह्यत शिक्षितः। प्रसह्य बलात्कारेण। स्वसा भागिनी (कान्तिमती)। अमुना (कामपालेन)। भुजङ्गेन विटेन। संगृहीता प्राप्ता। प्रसुप्ते निद्रिते। राजनि (चण्डसिंहे)। प्रहर्तुम् हन्तुम्। उद्यतासिः उत्थापितखड्गः (खड्गपाणिः)। तेन (चण्डसिंहेन)। अस्मै (कामपालाय)। तत्क्षणप्रबुद्धेन तत्कालजागरितेन। भीत्या भयेन। अनुनीय सान्त्वयित्वा। दत्ता विवाहिता। देवस्य (भवतः) राज्ञः ज्येष्ठम् अग्रजम्। अयम् (भत्रान् सिंहघोषः)। असमर्थः अशक्तः। इति इत्थम् चिन्तयित्वा। त्वम् (सिंहघोषः)। प्रकृतेः प्रजानाम् विश्रम्भणाय विश्वासोत्पादनार्थम्। उपेक्षितः त्यक्तः (न मारितः)। क्षिणोति

प्राणियों के श्रेष्ठ बन्धु उनने ससुर के क्षय से स्वर्ग जाने पर और चण्डघोष-नामक बड़े साले के अधिक स्त्री-प्रसङ्ग से पहले ही क्षय से क्षीणायु हो जाने पर सिंहघोष नामक लगभग पन्द्रह वर्षीय (ससुर चण्डसिंह के) बालक का अभिषेक किया। उन (कामपाल) सज्जन ने विधिपूर्वक उसको पाला-पोसा और बड़ा किया। अब उस (सिंहघोष) के जवानी से उन्मत्त चुगलखोर कुछ दुष्ट मन्त्री जिगरी दोस्त हो गये। उन लोगों ने उसे इस प्रकार पट्टी पढ़ाई—'उस आवारे (कामपाल) ने बल-पूर्वक तुम्हारी बहन को हथिया लिया है' फिर राजा के गहरी नींद में होने पर वार करने के लिये इसने तलवार उठाई थी। उसी समय जाग उठे उन्होंने डरकर अनुनय-विनय की और इसे कन्या दे दी। महाराज के बड़े भाई उन चण्डघोष को जहर देकर मारने के बाद 'वह (सिंहघोष) बच्चा होने के कारण अशक्त है' यह सोचकर (और) प्रजा का विश्वास पाने के लिये आपको छोड़ रखा है। वह कृतघ्न

---

[१] दैवात्तत्क्षण।

पुरा स कृतघ्नो भवन्तम्। तमेवान्तकपुरमभिगमयितुं यतस्व' इति। स तथा दूषितोऽपि यक्षिणी[1]भयान्नामुष्मिन्पापमाचरितुमशकत्। एषु किल दिवसेष्व[2]यथापूर्वमाकृतौ कान्तिमत्याः समुपलक्ष्य राजमहिषी सुलक्षणा नाम सप्रणयमपृच्छत्—'देवि, नाहमयाथातथ्येन विप्रलम्भनीया। कथय तथ्यं केनेदमयथापूर्वमाननारविन्दे[3] तवैषु वासरेषु' इति। सा त्ववादीत्—'भद्रे, स्मरसि किमद्याप्ययाथातथ्येन किंचिन्मयोक्तपूर्वम्। सखी मे तारावली सपत्नी च किमपि

च पुरा क्षयम् नेष्यति ('यावत्पुरानिपातयोर्लट् इति' भविष्यत्सामीप्ये लट्)। सः (कामपालः)। कृतघ्नः अकृतज्ञः। भवन्तम् (सिंहघोषम्)। तम् (कामपालम्)। अन्तकस्य यमस्य पुरम् नगरम्। अभिगमयितुम् प्रापयितुम्। सः (सिंहघोषः) तथा तेन प्रकारेण (दुर्मन्त्रिभिः)। दूषितः भेदितः। यक्षिणोभयात् यक्षिण्याः (तारावल्याः) भयात् भीत्या। अमुष्मिन् तस्मिन् (कामपाले)। पापम् अनिष्टम् (हननरूपम्)। आचरितुम् कर्तुम्। अशकत् अपारयत्। एषु वर्त्तमानेषु। अयथापूर्वम् पूर्वम् अलक्षितम् विकारम्। आकृतौ आकारे। कान्तिमत्याः तारावलीसपत्न्याः। राजमहिषी (सिंहघोषपत्नी)। सप्रणयम् सस्नेहम्। अयाथातथ्येन असत्येन। विप्रलम्भनीया प्रतारणीया। तथ्यम् सत्यम्। केन केन कारणेन। इदम् दृश्यमानम्। अयथापूर्वम् नवीनम् वस्तु। आननारविन्दे मुखकमले। एषु वर्तमानेषु। वासरेषु दिवसेषु। सा (कान्तिमती)। अवादीत् अवदत्। भद्रे देवि (सुलक्षणे)[४]। अद्य अस्मात् दिनात् आरभ्य। अयथातथ्येन तथा (सत्यम्) अनतिक्रम्य यथातथम् तस्य भावः याथातथ्यम् न याथातथ्यम् अयाथातथ्यम् तेन। उक्तपूर्वम् पूर्वम् उक्तम्। कलुषिता-

आपको (बाद में) मार देगा। उसे ही यम की नगरी पहुँचाने के लिये प्रयत्न कीजिये।' वह (सिंहघोष) इस प्रकार भरा जाने पर भी यक्षिणी (तारावली) के डर से उस (कामपाल) के प्रति अनिष्ट करने में समर्थ न हुआ। इन्हीं दिनों कान्तिमती के मुख पर परिवर्तन भाँपकर रानी सुलक्षणा ने प्रेम पूर्वक पूछा—'हे देवी, असत्य बोलकर मुझे बहकाइयेगा मत। सच-सच कहें' इन दिनों किस कारण आपके मुख कमल पर यह अभूतपूर्व परिवर्तन है। उस (कान्तिमती) ने कहा—'हे कल्याणी, इस दिन से लेकर कभी पहले मैंने कुछ असत्य-रूप में कहा हो, ऐसा क्या स्मरण है? मेरी सहेली और सौत तारावली मलिन हृदय वाली है। एकान्त में पति ने (धोखे में) उसे मेरे नाम से बुला

---

[1] प्रभावात्; प्रभावभयात्। [2] अयथापूर्व्यम्। [3] आननारविन्दम्।

[४] "भद्रे" संबोधन रानी के प्रति है और "देवि" संबोधन रानी की ननद के प्रति। यह उलटा है। सामान्यतः रानी को "देवि" कह कर संबोधित करते हैं। ननद का पद बड़ा है और कामपाल के राज-निर्माता होने से कान्तिमती ही वास्तविक रानी है, आदि कहकर किसी तरह समाधान किया जा सकता है।

कलुषिताशया रहसि भर्त्रा मद्गोत्रापदिष्टा प्रणयमप्युपेक्ष्य[1] प्रणम्यमानाप्यस्माभिरुपोढमत्सरा प्रावसत्। अवसीदति च नः पतिः। अतो मे दौर्मनस्यम्' इति। तत्प्रायेणैकान्ते सुलक्षणया कान्ताय कथितम्। अथासौ [2]निर्भयोऽद्य प्रियतमाविरहपाण्डुभिरवयवैर्धैर्यस्तम्भिताश्रुपर्याकुलेन चक्षुषोष्मश्वासशोषिताभिरिवानतिपेशलाभिर्वाग्भिर्वियोगं दर्शयन्तम्, कथमपि राजकुले कार्याणि कारयन्तम्, पूर्वसंकेतितैः पुरुषैरभिग्राह्यावन्धयत्। तस्य किल [3]स्थाने स्थाने दोषा[4]नुद्घोष्य तथोद्धरणीये चक्षुषी यथा तन्मूलमेवास्य मरणं भवेत्' इति। अतोऽत्रैकान्ते यथेष्टमश्रु मुक्त्वा तस्य साधोः पुरः प्राणान्मोक्तुकामो बध्नामि परिकरम्' इति।

शया कलुषितः मलिनः (कुपितः) आशयः हृदयम् यस्याः तादृशी सती। रहसि एकान्ते। मम गोत्रम् नाम मद्गोत्रम् तेन अपदिष्टा आहूता ('गोत्रं नाम्नि कुलेऽचले' इति वैजयन्ती)। प्रणयम् (अस्मासु) प्रेम। उपेक्ष्य अगणयित्वा। प्रणम्यमाना प्रणामपूर्वकम् प्रार्थिता। उपोढमत्सरा उपोढः प्ररूढः मत्सरः द्वेषः यस्याः सा। प्रावसत् देशान्तरम् अगच्छत्। अवसीदति क्लेशम् लभते। नः मम। दौर्मनस्यम् दुःस्थितम् मनः अस्य दुर्मनाः तस्य भावः दौर्मनस्यम्। तत् उपर्युक्तम्। प्रायेण बाहुल्येन। सुलक्षणया (राज्ञ्या)। कान्ताय पत्ये (सिंहघोषाय)। असौ (सिंहघोषः)। प्रियतमायाः (तारावल्याः) विरहेण पाण्डुभिः विवर्णैः। अवयवैः अङ्गैः। धैर्येण धीरतया स्तम्भितानि अवरुद्धानि यानि अश्रूणि तैः पर्याकुलेन व्याकुलेन। ऊष्मणा श्वासैः च शोषिताभिः क्षीणाभिः। अनतिपेशलाभिः अनतिकोमलाभिः। कथमपि कष्टेन। राजकुले राजप्रासादे। कार्याणि कर्त्तव्यानि। कारयन्तम् साधयन्तम् (कामपालम्)। पूर्वसङ्केतितैः प्राक् सूचितैः। अभिग्राह्य ग्राहयित्वा। अबन्धयत् बन्धनम् अनयत्। तस्य (कामपालस्य)। किल श्रूयते। उद्घोष्य प्रकटीकृत्य। तथा तेन प्रकारेण। उद्धरणीये उत्पाटनीये। यथा येन प्रकारेण। तत् नेत्रोत्पाटनम् एव मूलम् कारणम् यस्य तादृशम्। यथेष्टम् यथेच्छम्। तस्य (कामपालस्य)। साधोः सज्जनस्य। पुरः पूर्वम्। मोक्तुकामः मोक्तुम् त्यक्तुम् कामः अभिलाषः यस्य सः। परिकरम् कटिम् (इति पूर्णभद्रस्य वचनम्)।

दिया। (बस) प्रेम की भी उपेक्षा कर और हम लोगों के पैर पड़ने पर भी डाह में पगी हुई परदेश चल दी। अब हमारे पति क्लेश पा रहे हैं जिससे मेरा मन खराब हो गया है।' वह बात प्रायः सारी की सारी सुलक्षणा (रानी) ने एकान्त में (अपने) पति से कह दी। इसके बाद उस (राजा) ने निडर होकर आज प्रियतमा के वियोग से पीले पड़े अङ्गों, धैर्य से रुके आँसुओं से व्याकुल दृष्टि तथा ताप और साँस के द्वारा सुखाये गये कुछ कठोर वचनों से वियोग प्रगट करते हुये कठिनाई से राज-महल के कार्य कराते हुये उन (कामपाल) को पहले से निर्दिष्ट किये गये आदमियों से पकड़वाकर बँधवा दिया। सुना जाता है कि उन (कामपाल) के दोषों को जगह-जगह घोषित कर आँखें इस तरह निकाली जायेंगी कि उसी के कारण उनकी मौत हो जाय।' इसलिये, यहाँ एकान्त में जीभर रोकर उन सज्जन (कामपाल) के (मरने के) पहले प्राण छोड़ने का इच्छुक होकर कमर कस रहा हूँ।

---

[1] अभ्युपेक्ष्य। [2] निर्भरोद्यत्प्रिय०। [3] स्थानस्थानेषु। [4] दोषम्।

मयापि तत्पितृव्यसनमाकर्ण्य पर्यश्रुणा सोऽभिहितः—'सौम्य, किं तव गोपायित्वा। यस्तस्य सुतो यक्षकन्यया देवस्य राजवाहनस्य पादशुश्रूषार्थं देव्या वसुमत्या हस्त[1]न्यासः कृतः सोऽहमस्मि। शक्ष्यामि सहस्रमपि सुभटानामुदायुधानां हत्वा पितरं मोचयितुम्। अपि तु संकुले यदि कश्चित्पातयेत्तदङ्गे शस्त्रिकां सर्व एव मे यत्नो भस्मनि हुतमिव भवेत्' इति। अनवसितवचन एव मयि महानाशीविषः प्राकाररन्ध्रेणोदैरयच्छिरः। तमहं मन्त्रौषधबलेनाभिगृह्य पूर्णभद्रमब्रवम्—'भद्र, सिद्धं नः समीहितम्। अनेन तातमलक्ष्यमाणः संकुले यदृच्छया पातितेन नाम दंशयित्वा तथा विषं स्तम्भयेयं यथा मृत[2]इत्युदास्येत।

मया (अर्थपालेन)। पितुः (कामपालस्य) व्यसनम् आपदम्। पर्यश्रुणा रुदता। सः (पूर्णभद्रः)। अभिहितः कथितः। सौम्य भद्र। गोपायित्वा अपह्नुत्य। तस्य (कामपालस्य)। यक्षकन्यया (तारावल्या)। हस्तन्यासः हस्ते न्यासः निक्षेपः। शक्ष्यामि पारयिष्यामि। सुभटानाम् श्रेष्ठयोद्धृणाम्। उदायुधानाम् उद्यतशस्त्राणाम्। अपि तु किं तु। सङ्कुले जनसङ्कटे। पातयेत् क्षिपेत्। तदङ्गे तस्य (कामपालस्य) अङ्गे शरीरे। शस्त्रिकाम् आयुधम्। अनवसितवचने अनवसितम् असमाप्तम् वचनम् यस्य तस्मिन्। आशीविषः [आशिषि (आस्याम् वा) विषम् यस्य सः पृषोदरादित्वात् दीर्घसलोपौ] सर्पः। प्राकारस्य भित्तेः रन्ध्रेण छिद्रेण। उदैरयत् ऊर्ध्वम् अकरोत्। तम् (सर्पम्)। अहम् (अर्थपालः)। अभिगृह्य धृत्वा। भद्र सौम्य। सिद्धम् सफलम्। नः आवयोः। समीहितम् अभिलषितम्। अनेन (सर्पेण)। तातम् पितरम् (कामपालम्)। अलक्ष्यमाणः (परैः) अदृश्यमानः। सङ्कुले जनसंबाधे। यदृच्छया संयोगेन। नाम (अलीके)। स्तम्भयेयम् निश्चलम् कुर्याम्। उदास्येत

फिर मैंने पिता (कामपाल) के उस सङ्कट की बात सुनकर रोकर उस (पूर्णभद्र) से कहा—'भद्र, तुमसे छिपाकर क्या लाभ? उन (कामपाल) का जो पुत्र यक्ष-कन्या (तारावली) के द्वारा महाराज राजवाहन की चरण सेवा के लिये रानी वसुमती के हाथों में धरोहर की तरह सौंपा गया है, वह मैं हूँ। हजारों शस्त्र उठाये हुये महान् वीरों को मारकर पिता को छुड़ाने में समर्थ होऊँगा। किन्तु अगर भीड़-भाड़ में उनके शरीर पर किसी ने हथियार चला दिया तो मेरा सारा यत्न उसी प्रकार व्यर्थ हो जायेगा जैसे राख पर किया हुआ होम'। मेरी बात अभी अधूरी ही थी कि एक बड़े साँप ने दीवाल के छेद से सिर निकाला। उसे मैंने मन्त्र और जड़ी-बूटी के प्रभाव से पकड़कर पूर्णभद्र से कहा—'सौम्य, हमारा मनोरथ सफल हो गया। 'यह भीड़भाड़ में संयोग से गिर गया', यों भ्रम में डालकर अप्रकट रहता हुआ इससे पिता को डसवाकर यों जहर रोकूँगा कि 'ये मर गये हैं'

---

[1] हस्ते न्यासः [2] अपदिश्येत; उत्सृज्येत।

त्वया तु मुक्तसाध्वसेन माता मे बोधयितव्या—'यो यक्ष्या वने देव्या वसुमत्या हस्तार्पितो युष्मत्सूनुः सोऽनुप्राप्तः पितुरवस्थां मदुपलभ्य बुद्धिबलादित्थमाचरिष्यति । त्वया तु मुक्तत्रासया[1] राज्ञे प्रेषणीयम्—'एष खलु क्षत्रधर्मो यद्बन्धुरबन्धुर्वा दुष्टः स निरपेक्षं निग्राह्य इति । स्त्रीधर्मश्चैष यददुष्टस्य दुष्टस्य वा भर्तुर्गतिर्गन्तव्येति । तदहममुनैव सह चिताग्निमारोक्ष्यामि । [2]युवतिजनानुकूलः पश्चिमो विधिरनुज्ञातव्य.' इति । स एवं निवेदितो नियतमनुज्ञास्यति । ततः स्वमेवागारमानीय काण्ड[3]पटीपरिक्षिप्ते विविक्तोद्देशे दर्भसंस्तरणमधिशाय्य

उपेक्ष्येत । त्वया (पूर्णभद्रेण)। मुक्तम् त्यक्तम् साध्वसम् भयम् येन तेन । माता (कान्तिमती)। मे मम । बोधयितव्या उपसान्त्वयितव्या। यक्ष्या (तारावल्या) । वसुमत्याः राजहंसपत्न्याः । युष्मत्सूनुः युष्माकम् तत्र सूनुः पुत्रः (अर्थपालः)। अनुप्राप्तः आगतः। पितुः (कामपालस्य)। मत् मत्तः। उपलभ्य ज्ञात्वा। इत्थम् वक्ष्यमाणप्रकारेण। मुक्तः त्यक्तः त्रासः भयम् यथा तया। प्रेषणीयम् संदेष्टव्यम्। खलु एव। क्षत्रधर्मः क्षत्रस्य क्षत्रियस्य धर्मः नियमः। निरपेक्षम् निर्विचारम्। निग्राह्यः दण्डनीयः। गतिः पदवी। गन्तव्या अनुसरणीया । तत् अतः । अहम् (कान्तिमती) । अमुना तेन (कामपालेन)। युवतिजनानुकूलः स्त्रीजनोचितः। पश्चिमः अन्तिमः। विधिः नियमः। अनुज्ञातव्यः आदेष्टव्यः। सः (राजा सिंहघोषः)। नियतम् निश्चितरूपेण। अनुज्ञास्यति अनुमोदिष्यते। ततः तत्पश्चात्। स्वम् स्वकीयम्। आगारम् गृहम्। आनीय आदाय। काण्डपट्या जवनिकया परिक्षिप्त परिवृते ('अपटी काण्डपट्टः स्यात् प्रतिसीरा जवन्यपि। तिरस्करिणी' इति हैमः)। विविक्तोद्देशे विविक्तः निर्जनः च असौ उद्देशः स्थानम् च तस्मिन् । दर्भसंस्तरणम् कुशनिर्मितशय्यायाम् ।

यह सोचकर लोग उपेक्षा कर दें (आँखें निकालते हुये मार डालने की बात न सोंचें)। उधर तुम डर छोड़कर मेरी माँ को समझाना कि 'यक्षिणी (तारावली) ने जंगल में रानी वसुमती के हाथों में जिसे सौंपा था, तुम्हारा वह बेटा आ गया है और मुझसे पिता की हालत जानकर बुद्धि के प्रभाव से इस प्रकार कार्य करेगा'। इधर आपको डर त्यागकर राजा के पास संदेश भेजना है कि 'यही क्षत्रिय का नियम है कि बन्धु हो या बन्धु से भिन्न, यदि अपराधी है तो वह बिना लिहाज के दण्डनीय है और यह स्त्री का धर्म है कि पति चाहे भला हो, चाहे दुष्ट, उसके रास्ते का अनुसरण करना चाहिये, अतः मैं उनके साथ ही चिता की आग पर चढ़ूँगी। आपको युवतियों के लिये उचित अंतिम विधि के लिये अनुमति देनी चाहिये।' इस प्रकार प्रार्थना करने पर वह (राजा) अवश्य ही अनुमति दे देगा। इसके बाद अपने ही घर लाकर परदे से घेरकर एकान्त स्थान में कुश के बिछौने पर लिटाकर स्वयम् सह-

---

[1] मुक्तसाध्वसया । [2] अभिजनानुरूपः । [3] पट ।

स्वयं कृतानुमरणमण्डनया त्वया च तत्र संनिधेयम्। अहं च बाह्यकक्षागतस्त्वया प्रवेशयिष्ये। ततः पितरमुज्जीव्य तदभिरुचितेनाभ्युपायेन चेष्टिष्यामहे' इति। स 'तथा' इति हृष्टतरस्तूर्णमगमत्।

अहं तु घोषणास्थाने चिञ्चावृक्षं घन[1]तरविपुलशाखमारुह्य गूढतनुरतिष्ठम्। आरूढश्च लोको यथायथ[2]मुच्चैः स्थानानि। उच्चावच[3]प्रलापाः प्रस्तुताः। तावन्मे पितरं तस्करमिव पश्चाद्बद्धभुजमुद्धुरध्वनिमहाजनानुयातमानीय[4]मदभ्यास एव स्थापयित्वा मातङ्गस्त्रिरघोषयत्—'एष मन्त्री कामपालो राज्यलोभाद्भर्तारं चण्डसिंहं युवराजं चण्डघोषं च [5]विषान्नेनोपांशु हत्वा पुनर्देवोऽपि सिंहघोषः

अधिशाय्य शाययित्वा। कृतम् रचितम् अनुमरणस्य सहमरणस्य मण्डनम् भूषणम् यया तया। त्वया (कान्तिमत्या)। संनिधेयम् उपस्थातव्यम्। अहम् (अर्थपालः)। बाह्यकक्षागतः बहिःप्रकोष्ठस्थितः। ततः तदनन्तरम्। पितरम् (कामपालम्)। उज्जीव्य जीवयित्वा। तदभिरुचितेन तस्य (पितुः कामपालस्य) अभिरुचितेन अभिमतेन। अभ्युपायेन उपायेन। चेष्टिष्यामहे प्रयतिष्यामहे। इति (अर्थपालवचनम्)। सः (पूर्णभद्रः)। तथा आम्। इति (उक्त्वा)। हृष्टतरः विशेषेण प्रसन्नः। तूर्णम् शीघ्रम्। अगमत् अगच्छत्।

अहम् (अर्थपालः)। घोषणायाः वधघोषणायाः स्थाने। चिञ्चावृक्षम् तिन्तिडीवृक्षम्। घनतराः विपुलाः च शाखाः यस्य तम्। गूढतनुः गुप्तशरीरः। लोकः दर्शकाः। उच्चावचप्रलापाः उच्चनीचवचनानि। प्रस्तुताः आरब्धाः। तावत् तदा एव। मे मम (अर्थपालस्य)। पितरम् (कामपालम्)। तस्करम् चौरम्। बद्धभुजम् बद्धः भुजः बाहुः यस्य तम्। उद्धुरः निरर्गलः ध्वनिः शब्दः यस्य तादृशः यः महाजनः जनसंबाधः तेन अनुयातम् अनुगतम्। आनीय आदाय। मदभ्यासे मम (अर्थपालस्य) अभ्यासे समीपे। मातङ्गः चाण्डालः। त्रिः त्रीन् वारान् अघोषयत् असूचयत्। भर्तारम् स्वामिनम् (राजानम्)। विषान्नेन विषमिश्रितेन भोजनेन। उपांशु एकान्ते। देवः राजा। पूर्णयौवनः पूर्णम् यौवनम् यस्य तादृशः। इति (विचार्य)।' अमुष्मिन्

मरण वाला सिंगार कर तुमको वहाँ उपस्थित रहना है। उधर मैं बाहरी कमरे में स्थित रहूँगा; मुझे प्रविष्ट करा लेना। तब पिता को जिलाकर उनको रुचने वाले उपाय से प्रयत्न करूँगा।' उस-(पूर्णभद्र) ने 'ठीक' कहकर खूब खुश होकर शीघ्र प्रयाण किया।

इधर मैं घोषणा की जगह एक विशेष घनी और बड़ी डाल वाले इमली के पेड़ पर चढ़कर शरीर छिपाकर बैठा। लोग यथोचित रूप से उच्च स्थानों पर चढ़ गये। ऊँची-नीची बकवादें शुरू हो गईं। इसी बीच मेरे पिता जी को मेरे समीप ही बैठाया गया। चोर की भाँति उनकी बाँहें पीछे बाँध दी गई थीं तथा बेरोक आवाज कर रही भीड़ पीछे-पीछे चल रही थी। चाण्डाल ने तीन बार घोषणा की—'इस मंत्री कामपाल ने राज्य के लालच में स्वामी चण्डसिंह और युवराज चण्डघोष को विष-मिले भोजन से एकांत में मारकर फिर राजा

---

१. लम्बघनतर। २. उच्चस्था०। ३. प्रलापः प्रस्थितः। ४. अभ्याशे। ५. विषेण।

पूर्णयौवन इत्यमुष्मिन्पापमाचरिष्यन्विश्वासाद्रहस्यभूमौ पुनरमात्यं शिवनागमाहूय स्थूणमङ्गारवर्षं च राजवधायोपजप्य तैः स्वामिभक्त्या विवृतगुह्यो 'राज्यकामुकस्यास्य ब्राह्मणस्यान्धतमसप्रवेशो न्याय्य' इति प्राड्विवाकवाक्यादक्ष्युद्धरणाय नीयते। पुनरन्योऽपि यदि स्यादन्यायवृत्तिस्तमप्येवमेव यथार्हेण दण्डेन योजयिष्यति देवः' इति। श्रुत्वैतद्वद्धकलकले महाजने पितुरङ्गे प्रदीप्त[1]शिरसमाशीविषं [2]न्यक्षिपम्। अहं च भीतो नामावप्लुत्य तत्रैव [3]जनानुलीनः क्रुद्धव्यालदष्टस्य तातस्य विहितजीवरक्षो विषं क्षणादस्तम्भयम्। अपतत् [4]स भूमौ मृतकल्पः। प्रालपं च 'सत्यमिदं राजावमानिनं दैवो दण्ड एव

(सिंहघोषे)। विश्वासात् विश्वासम् आस्थाय। रहस्यभूमौ एकान्ते। अमात्यम् मन्त्रिणम्। शिवनागम् शिवनागनामानम्। स्थूणम् स्थूणनामानम्। अङ्गारवर्षम् अङ्गारवर्षनामानम्। राजवधाय राज्ञः (सिंहघोषस्य) वधाय मारणाय। उपजप्य भेदम् कृत्वा। तैः (मन्त्रिभिः)। विवृतगुह्यः विवृतम् उद्घाटितम् गुह्यम् रहस्यम् यस्य सः। राज्यकामुकस्य राज्येच्छुकस्य। अन्धतमसम् अन्धम् च तमः च अन्धतमसम् ('अवसमन्धेभ्यस्तमसः' इति अच्)। न्याय्यः उचितः। इति (हेतोः)। प्राड्विवाकस्य न्यायाधिकारिणः ('द्रष्टरि व्यवहाराणां प्राड्विवाकाक्षदर्शकौ' इति अमरः) (प्राट् प्रश्नः च विवाकः विवेकः च प्राड्विवाकौ तौ यस्य तस्य) वाक्यात् कथनात्। अद्युद्धरणाय अक्ष्णोः नेत्रयोः उद्धरणाय उत्पाटनाय। अन्यायवृत्तिः दुष्टाचरणः। यथार्हेण यथोचितेन। एतत् पूर्वोक्तम्। वद्धकलकले आरब्धकोलाहले। महाजने जनसमूहे। पितुः (कामपालस्य) अङ्गे शरीरे। प्रदीप्तम् ज्वलत् शिरः यस्य तम्। आशीविषम् सर्पम्। न्यक्षिपम् पातितवान्। अहम् (अर्थपालः)। नाम (अलीके)। अवप्लुत्य निपत्य। जनानुलीनः जनसंमर्दमिलितः। क्रुद्धव्यालदष्टस्य कुपितसर्पदष्टस्य। तातस्य पितुः (कामपालस्य) विहिता कृता जीवरक्षा प्राणरक्षा येन सः। अस्तम्भयम् स्तम्भितवान्। सः (कामपालः)। मृतकल्पः मृततुल्यः। प्रालपम् उच्चैः अवदम्। राजावमानिनम् नृपापकारिणम्। दैवः देवपातितः। अयम्

सिंहघोष को भी भरी जवानी में देखकर उनके प्रति अपराध करने के उद्देश्य से विश्वास के कारण गुप्त स्थान में मंत्री शिवनाग को बुलाया था और राजा की हत्या के लिये स्थूण और अङ्गारवर्ष से सलाह की। उन्होंने स्वामि भक्ति के कारण पोल खोल दी। 'राज्य-लोलुप ब्राह्मण के लिये लगातार अन्धकार में प्रवेश उचित है' इस न्यायाधीश-निर्णय से आँखें निकालने के लिये इसे ले जाया जा रहा है। 'इसके अलावा भी और कोई अन्याय करने वाला होगा तो उसे भी महाराज इसी प्रकार यथोचित दण्ड देंगे।' यह सुनकर भीड़ के लगातार शोर गुल करने पर मैंने पिता जी के शरीर पर जल रहे मस्तक वाला साँप फेंक दिया। फिर मैंने डरने का अभिनय करते हुये कूदकर वहीं लोगों में गायब होकर गुस्सैल साँप से डसे हुये पिता का जीवन-रक्षक होकर नहर क्षण भर में रोक दिया। वे मरे-से जमीन पर गिर पड़े। फिर मैं चिल्लाया—'यह सच है कि राजा का अपकार करने वाले

---

१. शिखम्। २. व्यक्षि०। ३. जनादनुलीनः, जनादुपलीनः। ४. एष।

स्पृशतीति । यद्यमक्षिभ्यां विनावनिपेन चिकीर्षितः, प्राणैरेव वियोजितो विधिना' इति । मदुक्तं च केचिदन्वमन्यन्त, अपरे पुनर्निनिन्दुः । दर्वीकरस्तु तमपि चण्डालं दष्ट्वाऽऽरूढत्रासद्रुतलोकदत्तमार्गः प्राद्रवत् ।

अथ मदम्बा पूर्णभद्रबोधितार्था तादृशेऽपि व्यसने नातिविह्वला [1]कुलपरिजनानुयाता पद्भ्यामेव [2]धीरमागत्य मत्पितुरुत्तमाङ्गमुत्सङ्गेन धारयन्त्यासित्वा। राज्ञे [3]समादिशत्—'एष मे पतिस्तवापकर्त्ता न वेति [4]दैवमेव जानाति। न मेऽन्यथास्ति चिन्तया फलम् । अस्य तु पाणिग्राहकस्य गतिमननुप्रपद्यमाना भवत्कुलं कलङ्कयेयम् । अतोऽनुमन्तुमर्हसि भर्त्रा सह चिताधिरोहणाय माम्' इति । श्रुत्वा

(कामपालः) । अक्षिभ्याम् नेत्राभ्याम् । अवनिपेन नृपेण । विना रहितः । चिकीर्षितः कर्तुम् इष्टः । विधिना दैवेन । मदुक्तम् मम (अर्थपालस्य) उक्तम् कथितम् (वचनम्) । अन्वमन्यन्त अनुमोदितवन्तः । अपरे अन्ये । पुनः तु । निनिन्दुः अनिन्दन् । दर्वीकरः सर्पः (दर्वी फणाकरः यस्य सः । दर्वीम् फणाम् करोति) । आरूढेन उत्पन्नेन त्रासेन भयेन द्रुतः पलायितः यः लोकः जनसमूहः तेन दत्तः कृतः मार्गः गमनावकाशः यस्य सः । प्राद्रवत् पलायत ।

अथ ततः । मदम्बा मम अम्बा माता (कान्तिमती) । पूर्णभद्रेण बोधितः ज्ञापितः अर्थः विषयः यस्याः सा । तादृशे दारुणे । व्यसने विपदि । नातिविह्वला नात्यधीरा । कुलपरिजनानुयाता कुलेन बन्धुभिः परिजनैः भृत्यैः च अनुयाता अनुगता (सती) । पद्भ्याम् पदातिः । धीरम् मन्दम् । मत्पितुः मम पितुः (कामपालस्य) । उत्तमाङ्गम् शिरः । उत्सङ्गे क्रोडे । धारयन्ती स्थापयन्ती । आसित्वा उपविश्य । राज्ञे नृपाय । समादिशत् व्यज्ञापयत् । पतिः स्वामी (कामपालः) दैवम् विधिः । फलम् प्रयोजनम् । पाणिग्राहकस्य पत्युः । गतिम् दशाम् । अननुप्रपद्यमाना अननुगच्छन्ती । भवत्कुलम् भवताम् कुलम् वंशम् । कलङ्कयेयम् कलङ्कितम् कुर्याम् । अनुमन्तुम्

को दैवी दण्ड ही मिल रहा है। देखो न; राजा ने इसे आँखों से वंचित करना चाहा और विधाता ने प्राणों से ही पृथक् कर दिया।' मेरे कहे का कई ने समर्थन किया पर कई ने निन्दा की। उधर साँप उस चाण्डाल को भी डसकर डर से भरे हुये अतः भाग खड़े हुये लोगों के द्वारा दी गई राह पाकर भाग गया।

अब मेरी माँ जिससे सब बातें पूर्णभद्र ने कह दी थीं वैसे संकट में भी बहुत आकुल न होती हुई पैदल ही धीरे-धीरे आई। परिवार के लोगों और नौकर-चाकर उसके पीछे चल रहे थे। मेरे पिता जी का सिर गोद में लेकर बैठकर राजा के पास संदेश भेजा—'ये मेरे पति आपके अपकारी हैं या नहीं, यह विधाता ही जानता है। मुझे इस सोच-विचार से कोई लाभ नहीं है। इन हाथ पकड़ने वाले की राह से न चलकर आपके खानदान में बट्टा लगाऊँगी, इसलिये पति के साथ चिता पर चढ़ने की अनुमति मुझे देने की कृपा करें। फिर

---

१. अल्पपरिजना० । २. सधीरम् । ३. समदिशत् । ४. दैवो जानाति ।

चैतत्प्रीतियुक्तः[1]समादिक्षत्क्षितीश्वरः—'क्रियतां कुलोचितः संस्कारः। [2]उत्सवोत्तरं च पश्चिमं विधिसंस्कारमनुभवतु मे भगिनीपतिः' इति। चण्डाले तु मत्प्रतिषिद्धसकलमन्त्रवादिप्रयासे संस्थिते 'कामपालोऽपि कालदष्ट एव' इति स्वभवनोपनयनममुष्य स्वमाहात्म्यप्रकाशनाय महीपतिरन्वमंस्त। [3]आनीतश्च पिता मे विविक्तायां भूमौ [4]दर्भशय्यामधिशाय्य स्थिताऽभूत्। अथ मदम्बा मरणमण्डनमनुष्ठाय सकरुणं सखीरामन्त्र्य, मुहुरभिप्रणम्य भवनदेवता [5]यत्ननिवारितपरिजनाक्रन्दिता पितुर्मे शयनस्थानमेकाकिनी प्राविक्षत्। तत्र च पूर्वमेव पूर्णभद्रोपस्थापितेन च मया वैनतेयतां गतेन निर्विषीकृतं भर्तारमैक्षत।

अनुज्ञातुम्। प्रीतियुक्तः प्रीत्या प्रसन्नतया युक्तः। समादिक्षत् आज्ञापयत्। क्षितीश्वरः राजा (सिंहघोषः)। उत्सवोत्तरम् उत्सवप्रधानम्। पश्चिमम् अन्तिमम्। विधिसंस्कारम् विध्युक्तम् संस्कारम्। मया (अर्थपालेन) प्रतिषिद्धः निवारितः सकलानाम् सर्वेषाम् मन्त्रवादिनाम गारुडिकानाम् प्रयासः यत्नः यस्मिन् तस्मिन्। संस्थिते मृते। कालदष्टः कालेन मृत्युना दष्टः मारितः। अमुष्य (कामपालस्य)। स्वस्य माहात्म्यस्य औदार्यस्य प्रकाशनाय प्रकटनाय। महीपतिः राजा (सिंहघोषः)। अन्वमंस्त अन्वमोदयत्। आनीतः प्रापितः। विविक्तायाम् निर्जनायाम्। दर्भशय्याम् दर्भाणाम् कुशानाम् शय्याम् शयनम्। [6]अधिशाय्य शाययित्वा। मदम्बा मम (अर्थपालस्य) अम्बा माता। मरणमण्डनम् मरणकालोचितम् मण्डनम् आभूषणम्। अनुष्ठाय परिधाय। सकरुणम् आर्त्तम्। सखीः सहचरीः। आमन्त्र्य आपृच्छय। मुहुः पुनः। अभिप्रणम्य नत्वा। भवनदेवताः गृहदेवताः। यत्नेन निवारितम् दूरीकृतम् परिजनस्य भृत्यवर्गस्य क्रन्दितम् विलापः यया सा। प्राविक्षत् प्राविशत्। तत्र (पितुः शयनस्थाने)। पूर्णभद्रोपस्थापितेन पूर्णभद्रेण उपस्थापितेन निवेशितेन। वैनतेयताम् गरुडताम्। गतेन

यह सुनकर राजा ने आनन्द के सहित आदेश दिया—'वंश के अनुरूप संस्कार किये जांय। मेरे जीजा जी धूम-धाम की प्रधानता वाला विधिपूर्वक किया गया अंतिम संस्कार भोगें।' चाण्डाल के प्रति किये गये ओझाओं के सारे प्रयत्न मैंने काट दिये। उसके मर जाने पर 'कामपाल भी काल के द्वारा डस ही लिया गया' यह मानकर राजा ने अपने बड़प्पन का प्रचार करने के लिये उनको अपने घर ले आने की (हमें) अनुमति दे दी। तब मेरे पिता जी लाये गये और निर्जन भूमि में कुश की सेज पर उन्हें लिटा दिया गया। इसके बाद मेरी माँ मृत्यु (सती होने) के समय का श्रृंगार करके करुणोत्पादक रीति से सहेलियों से बातें कर पुनः गृह देवताओं को प्रणाम कर प्रयत्न-पूर्वक नौकर-चाकर का रोना-पीटना बन्द कराकर मेरे पिता जी के लेटने के स्थान में अकेली प्रविष्ट हुई और वहाँ पहले ही पूर्णभद्र के द्वारा जमा दिये गये गरुड़ बने हुये मेरे द्वारा विष-रहित कर दिये गये हुये पति को देखा।

---

१. प्रतिसमादिक्षत्। २. उत्सवान्तरम्। ३. नीतश्च। ४. संस्तरमधिशयानः। ५. यत्नेन निवार्य परिजनाक्रन्दितानि।

६. चिन्त्य प्रयोग क्योंकि "अभूत्" और "अधिशाय्य" के कर्त्ता भिन्न-भिन्न हैं।

हृष्टतमा पत्युः पादयोः पर्यश्रुमुखी प्रणिपत्य मां मुहुर्मुहुः प्रस्नुतस्तनी परिष्वज्य सहर्षबाष्पगद्गदमगदत्—'पुत्र, योऽसि जातमात्रः पापया मया परित्यक्तः, स किमर्थमेव मामतिनिर्घृणामनुगृह्णासि। अथवैष निरपराध एव ते जनयिता। युक्तमस्य प्रत्यानयनमन्तकाननात्। क्रूरा खलु तारावली या त्वामुपलभ्यापि तत्त्वतः कुबेरादसमर्प्य मह्यमर्पितवती देव्यै वसुमत्यै। सैव वा सदृशकारिणी। नहि तादृशाद्भाग्यराशेर्विना [1]मादृशो जनोऽल्पपुण्यस्तवार्हति कलप्रलापामृतानि कर्णाभ्यां पातुम्। एहि, परिष्वजस्व' इति भूयो भूयः शिरसि जिघ्रन्त्यङ्कमारोप-

प्राप्तेन। निर्विषीकृतम् विषरहितम्। भर्तारम् पतिम् (कामपालम्)। ऐक्षत अपश्यत्। हृष्टतमा विशेषेण हृष्टा प्रसन्ना। पत्युः (कामपालस्य)। पर्यश्रुमुखी परिगतम् अश्रु यत्र तादृशम् मुखम् यस्याः सा। प्रणिपत्य नत्वा। माम् (अर्थपालम्)। मुहुः वारम्। प्रस्नुतस्तनी स्रवत्पयःपयोधरा। परिष्वज्य आलिङ्ग्य। सहर्षम् हर्षेण आनन्देन सह वर्तमानम् यत् वाष्पम् तेन गद्गदम् स्खलदक्षरम् यथा स्यात् तथा। अगदत् अवदत्। जातमात्रः जातः उत्पन्नः एव। पापया पापिन्या। मया (कान्तिमत्या)। सः (अर्थपालः)। किमर्थम् केन कारणेन। एवम् पूर्वोक्तप्रकारेण। माम् (कान्तिमतीम्)। अतिनिर्घृणाम् अतिनिर्दयाम्। अनुगृह्णासि दयसे। अथवा (पूर्वोक्तसंशोधने)। एषः (कामपालः)। ते तव (अर्थपालस्य)। जनयिता पिता। युक्तम् उचितम्। अस्य (कामपालस्य)। प्रत्यानयनम् परावृत्य आनयनम्। अन्तकस्य यमस्य आननात् मुखात्। क्रूरा निर्दया। खलु निश्चयेन। तारावली (यक्षी)। त्वाम् (अर्थपालम्)। उपलभ्य ज्ञात्वा। तत्त्वतः यथार्थतः। असमर्प्य अदत्त्वा। मह्यम् (कांतिमत्यै)। देव्यै राज्ञ्यै। सा (तारावली)। वा (पूर्वोक्तसंशोधने)। सदृशकारिणी उचितकारिणी। भाग्यराशेः सौभाग्यचयस्य (वसुमत्याः)। विना त्यक्ता। मादृशः मत्सदृशः अल्पम् पुण्यम् यस्य सः। तव (अर्थपालस्य)। कलः मन्जुलः यः प्रलापः शिशुशब्दः सः एव अमृतानि। एहि आगच्छ। परिष्वजस्व आलिङ्ग। इति (उक्त्वा)। भूयः पुनः। अङ्कम् क्रोडम्। आरोपयन्ती उप-

वह परम आनंदित होकर आँसुओं से भरी हुई पति के पैरों में गिरी और मुझे गले लगाया। उस समय उसके स्तनों से दूध टपकने लगा। हर्ष-पूर्ण आँसुओं से लड़खड़ाते गले से बोली—'बेटा, जिसे पैदा होते ही मुझ पापिन ने त्याग दिया था, वे तुम क्यों इस तरह मुझ महान् निर्दय पर कृपा कर रहे हो! या यों कहूँ कि ये तुम्हारे पिता जो निरपराध ही हैं; यम के मुख से इन्हें वापस ले आना ही उचित है। तारावली निश्चय ही निर्दय है जिसने कुबेर से वास्तविक रूप में जानकर भी तुमको मुझे न सौंपकर रानी वसुमती को दे दिया। या कहना चाहिये उस-(तारावली) ने ही उचित किया। वैसी भाग्य की खान (वसुमती) को छोड़कर मुझ जैसे कम पुण्य वाले व्यक्ति को तुम्हारी मधुर तोतली बोली की सुधायें कानों से पीने का अधिकार नहीं है। आओ; गले लगाओ' यह कहकर बार-बार सिर सूँघती हुई

---

१. अस्मादृशः।

यन्ती, तारावलीं गर्हयन्त्यालिङ्गयन्त्यश्रुभिरभिषिञ्चन्ती चोत्कम्पिताङ्गयष्टिरन्या-[१]दृशीव क्षणमजनिष्ट। जनयितापि मे नरकादिव स्वर्गम्, तादृशाद्व्यसनात्तथाभूतमभ्युदयमारूढः पूर्णभद्रेण विस्तरेण यथावृत्तान्तमावेदितो भगवतो मघवतोऽपि भाग्यवन्तमात्मानमजीगणत्। मनागिव[२] च मत्सबन्धमाख्याय हर्षविस्मितात्मनोः पित्रोरकथयम्—'आज्ञापयत काद्य नः प्रतिपत्तिः' इति। पिता मे प्राब्रवीत्—'वत्स, गृहमेवेदमस्मदीयमतिविशालप्राकार[३]वलयमक्षय्यायुध-[४]स्थानम्। अलङ्घ्यतमा च गुप्तिः। उपकृताश्च मयातिबहवः सन्ति सामन्ताः। प्रकृतयश्च भूयस्यो न मे व्यसनमनुरुध्यन्ते। सुभटानां चानेकसहस्रमस्त्येव ससुहृत्पुत्रदारम्। अतोऽत्रैव कतिपयान्यहानि स्थित्वा बाह्याभ्यन्तरङ्गान्कोपा-

वेशयन्ती। गर्हयन्ती निन्दन्ती। अभिषिञ्चन्ती स्नपयन्ती। उत्कम्पिता उच्चैः कम्पिता अङ्गयष्टिः यष्टितुल्यम् अङ्गम् यस्याः सा। अन्यादृशी अन्यस्त्रीसमा। क्षणम् मुहूर्त्तम् (यावत्)। अजनिष्ट जाता। जनयिता पिता। मे मम (अर्थपालस्य)। तादृशात् पूर्वोक्तात् विषमात् वा। व्यसनात् विपत्तेः। तथाभूतम् पूर्वोक्तम्। अभ्युदयम् उन्नतिम्। आरूढः प्राप्तः। यथावृत्तान्तम् वृत्तान्तम् अनतिक्रम्य। भगवतः श्रीमतः। मघवतः इन्द्रात्। आत्मानम् स्वम्। अजीगणत् अमन्यत। मनाक् अल्पम्। मत्सम्बन्धम् मम सम्बन्धम् (घटिते स्वकृतम्)। आख्याय वर्णयित्वा। हर्षेण आनन्देन विस्मितः आश्चर्यान्वितः आत्मा मनः ययोः तयोः। पित्रोः मातुः च पितुः च। नः अस्माकम्। प्रतिपत्तिः इतिकर्तव्यता। प्राब्रवीत् अवदत्। वत्स पुत्र। अस्मदीयम् अस्माकम्। अतिविशालः सुमहान् प्राकारस्य भित्तेः वलयः मण्डलः यस्य तादृशम्। अक्षय्याणाम् अपरिमितानाम् आयुधानाम् अस्त्राणाम् स्थानम् संग्रहस्थलम्। अलङ्घ्यतमा अतिशयेन अनतिक्रमणीया। गुप्तिः रक्षा। सामन्ताः अधीनभूपालाः। प्रकृतयः प्रजाः। भूयस्यः बहवः। व्यसनम् विपदम्। अनुरुध्यन्ते अनुमन्यन्ते। सुभटानाम् श्रेष्ठानाम् सैनिकानाम् सुहृदः मित्राणि पुत्राः दाराः पत्न्यः च तैः सह वर्तमानम्। अतः अनेन कारणेन। अत्र (गृहे)। कतिपयानि कानिचित्। अहानि दिनानि। बाह्याः बहिरङ्गाः च अभ्यन्तरङ्गाः अन्तरङ्गाः च। कोपान् क्रोधान्। उत्पादयिष्यामः

गोद में बैठाती हुई, तारावली को भला-बुरा कहती हुई, गले लगाती हुई, आँसुओं से नहलाती हुई जोर से कांप रही छड़ी-तुल्य देह लिये क्षण भर दूसरी-जैसी ही हो गई। और मेरे पिता वैसे संङ्कट से वैसी उन्नति पर यों पहुँचे जैसे नरक से स्वर्ग गये हों। पूर्णभद्र ने विस्तारपूर्वक जा कुछ जैसे घटित हुआ था वह वैसे ही बताया। उन्होंने अपने को भगवान् इन्द्र से भी अधिक भाग्यशाली माना। मैंने जरा-सा ही अपनी भूमिका बताकर आनन्द से आश्चर्ययुक्त मन वाले माता-पिता से कहा—'बतायें कि अब हमारी दिशा क्या होगी।' मेरे पिता जो बोले—'बेटा, हमारा यह घर ही अत्यन्त विस्तीर्ण परकोटे के घेरे वाला और असीमित हथियारों की जगह है। इसकी रक्षा विशेष रूप से अक्षुण्ण है। मेरे द्वारा लाभान्वित सामन्त बहुत अधिक हैं। अत्यधिक संख्या में जनता मेरी विपत्ति नहीं चाहती। कई हजार श्रेष्ठ सिपाही अपने मित्रों, पुत्रों और पत्नियों के साथ हैं ही। इसलिये, यहीं कुछ दिन रुककर

---

[१] अन्यादृशी। [२] एष। [३] शाल। [४] आयुधग्रामम्।

नुत्पादयिष्यामः। कुपितांश्च संगृह्य प्रोत्साह्यास्य [1]प्रकृत्यमित्रानुत्थाप्य सहजांश्च द्विषः, दुर्दान्तमेनमुच्छेत्स्यामः’ इति। 'को दोषः, तथास्तु’ इति तातस्य मतमन्वमंसि।

तथास्मासु प्रतिविधाय तिष्ठत्सु राजाऽपि विज्ञापितोदन्तो जातानुतापः पारग्रामिकान्प्रयोगान्प्रायः प्रायुङ्क्त। ते चास्माभिः प्रत्यहमहन्यन्त। अस्मिन्नेवावकाशे पूर्णभद्रमुखाच्च राज्ञः शय्यास्थानमवगम्य तदैव स्वोदवसितभित्तिकोणादारभ्योरगास्येन सुरङ्गामकार्षम्। गता च सा भूमिस्वर्गकल्पमनल्पकन्यकाजनं

जनयिष्यामः। कुपितान् क्रुद्धान्। संगृह्य पक्षे कृत्वा। प्रोत्साह्य प्रोत्साहितान् कृत्वा। अस्य (सिंहघोषस्य)। प्रकृत्यमित्रान् प्रतिवासिशत्रून्। उत्थाप्य तस्य विरोधाय प्रोत्साह्य। सहजान् जन्मनः आरभ्य। द्विषः शत्रून्। दुर्दान्तम् दुर्विनीतम्। उच्छत्स्यामः उन्मूलयिष्यामः। तातस्य पितुः। मतम् अभिप्रेतम्। अन्वमंसि अनुमोदितवान् अहम्।

तथा पूर्वोक्तेन प्रकारेण। प्रतिविधाय प्रतिविधानम् कृत्वा। राजा (सिंहघोषः)। विज्ञापितः निवेदितः उदन्तः वृत्तम् यस्मै सः। जातः उत्पन्नः अनुतापः पश्चात्तापः यस्मिन् (न मया कामपालस्य शरीरम् कान्तिमतीप्रार्थितम् दातव्यम् आसीत् इति)। पारग्रामिकान् प्रयोगान् परग्रामे भवान् सैन्यप्रेषणादिरूपान् ['उपरुध्यारिमासीत राष्ट्रं चास्योपपीडयेत्। दूषयेच्चास्य सततं यवसान्नोदकेन्धनम्॥' इति विज्ञानेश्वरः (मिताक्षरायाम्)]। प्रायः बहुलम्। प्रायुङ्क्त प्रयुक्तवान्। ते (प्रयोगाः)। प्रत्यहम् प्रतिदिनम्। अहन्यन्त विफलीकृताः। अवकाशे अवसरे। राज्ञः (सिंहघोषस्य) स्वस्य यत् उदवसितम् गृहम् तस्य भित्तेः कुड्यस्य कोणात्। उरगास्येन सर्पमुखाकारेण यन्त्रेण। सुरङ्गाम् बिलम्। अकार्षम् अकरवम्। सा (सुरङ्गा)। भूम्याम् स्वर्गः भूमिस्वर्गः तस्मात् ईषत् न्यूनः भूमिस्वर्गकल्पः तम्। अनल्पः

बाहरी और भीतरी कोप उत्पन्न करेंगे। नाराज लोगों को मिलाकर और उभाड़कर, इसके प्रकृति-शत्रुओं[2] और सहज शत्रुओं[3] को चढ़ाकर इस दुर्विनीत को उखाड़ फेंकेंगे।’ ‘क्या हर्ज है! ऐसा ही हो’ यह कहकर मैंने पिता के मत का अनुमोदन किया।

हमारे उस प्रकार उपाय करके बैठने पर उधर राजा ने समाचारों की सूचना पाकर पश्चात्ताप कर बहुलता से घुसपैठियों वाले प्रयोग किये पर वे (प्रयोग) हमारे द्वारा नष्ट कर दिये गये। इसी अवसर पर पूर्णभद्र के मुख से राजा के सोने की जगह जानकर उसी समय अपने निवास की दीवाल के कोने से शुरू करके एक सुरङ्ग उरगास्य यंत्र से बनाई। वह (सुरंग) एक ऐसे स्थान तक पहुँची जो पृथ्वी पर स्वर्ग के समान था और जहाँ लड़कियाँ

---

[1] प्राक्तनानमि०।

[2] प्रकृति-शत्रु—वे शत्रु जिनको भूमि-आदि सम्पत्ति सटी हुई होने से रोज-रोज विवाद खड़े होते हैं।

[3] सहज-शत्रु—पिता की शत्रुता होने से जो जन्म लेते ही शत्रु हो जाते हैं।

कमप्युद्देशम् । अव्यथिष्ट च दृष्ट्वैव स मां नारीजनः । तत्र काचिदिन्दुकलेव [1]स्वलावण्येन रसातलान्धकारं [2]निर्धुनाना, विग्रहणीव देवी [3]विश्वंभरा, हरगृहिणीवासुरविजयायावतीर्णा, पातालमागता गृहिणीव भगवतः कुसुमधन्वनः, राजलक्ष्मीरिवानेकदुर्नृपदर्शनपरिहाराय महीविवरं प्रविष्टा, निष्टप्तकनकपुत्रिकेवावदातकान्तिः कन्यका, चन्दनलतेव मलयमारुतेन, मद्दर्शनेनोदकम्पत । तथाभूते च तस्मिन्नङ्गनासमाजे, कुसुमितेव काशयष्टिः, पाण्डुशिरसिजा स्थविरा काचिच्चरणयोर्मे निपत्य त्रासदीनमब्रूत—'दीयतामभयदानमस्मा अनन्यशरणाय स्त्रीजनाय । किमसि देवकुमारो दनुजयुद्धतृष्णया रसातलं विविक्षुः । आज्ञापय

बहुः कन्यकाजनः कन्यकाः यत्र तम् । कमपि अज्ञातम् । उद्देशम् प्रदेशम् । अव्यथिष्ट व्यथितः अभवत् । माम् (अर्थपालम्) । नारीजनः नार्यः । काचित् एका । इन्दुकला चन्द्रलेखा । रसातलस्य अन्धकारम् तमः निर्धुनाना विशेषेण दूरीकुर्वाणा । विग्रहिणी शरीरधारिणी । विश्वम्भरा पृथ्वी । हरगृहिणी पार्वती (दुर्गा) । असुराणाम् चण्डमुण्डादीनाम् विजयाय । गृहिणी पत्नी । भगवतः श्रीमतः । कुसुमधन्वनः कामस्य । अनेकेषाम् बहूनाम् दुर्नृपाणाम् दुष्टभूपानाम् दर्शनस्य अवलोकनस्य परिहाराय उपेक्षणाय । महीविवरम् पातालम् । निष्टप्ता संतापिता या कनकपुत्रिका स्वर्णनिर्मितपुत्तलिका । अवदाता गौरी कान्तिः द्युतिः यस्याः सा । मलयमारुतेन मलयवायुना । मद्दर्शनेन मम दर्शनेन अवलोकनेन । उदकम्पत उच्चैः अकम्पत कम्पिता अभवत् । अङ्गनासमाजे स्त्रीसमूहे ('पशूनां समजोऽन्येषां समाजोऽथ सधर्मिणाम्' इति अमरः) कुसुमिता संजातकुसुमा । काशयष्टिः शरलता । पाण्डवः श्वेताः शिरसिजाः केशाः यस्याः सा । स्थविरा वृद्धा । त्रासेन भयेन दीनम् अशरणम् यथा स्यात् तथा । अब्रूत अवदत् । अस्मै प्रस्तुताय । न अन्यः शरणम् यस्य तस्मै । स्त्रीजनाय स्त्रीभ्यः । दनुजैः दैत्यैः यत् युद्धम् तस्मिन् तृष्णया अभिलाषेण । रसातलम् पातालम् । विविक्षुः प्रवेष्टुम् इच्छुः । आज्ञापय कथय । कस्य हेतोः केन कारणेन । सा (वृद्धा) । मया (अर्थ-

बहुत थीं । मुझे देखते ही वह नारी-दल व्यथित हो गया । वहाँ एक लड़की मुझे देखकर इस तरह जोर से काँप उठी जैसे मलय पवन से चन्दन की लता काँपती है । वह चन्द्रमा की रेखा-सी दिखती थी । अपने लावण्य से पाताल का अँधेरा दूर भगा रही थी । मूर्तिमती देवी पृथ्वी सी थी । असुरों को जीतनें के लिये अवतार लेने वाली दुर्गा-सी थी । पाताल में आई हुई भगवान् काम की पत्नी-सी थी । अनेक दुष्ट राजों के दर्शन से बचने के लिये पाताल में प्रविष्ट राज-लक्ष्मी-सी थी । उसकी आभा खूब तपी हुई सोने की पुतली की भाँति गोरी थी । उस स्त्री समाज के उस स्थिति में हो जाने पर फूली कास की छड़ी की भाँति सफेद बालों वाली एक बुढ़िया मेरे पैरों पर गिरकर डर से असहाय होकर बोली—'इस स्त्री-दल को अभय-दान देने की कृपा करें; (आपके अतिरिक्त) कोई दूसरा इसका सहायक नहीं है । क्या आप देवता-पुत्र हैं जो दैत्यों से युद्ध करने के लोभ में पाताल में प्रविष्ट होने के इच्छुक हैं । बतायें

---

[1] आत्मला० । [2] निह्नुवाना । [3] वसुंधरा ।

कोऽसि ? कस्य हेतोरागतोऽसि ?' इति । सा तु मया प्रत्यवादि—'सुदत्यः मास्म भवत्यो[1]भैषुः। अहमस्मि द्विजाति[2]वृषात्कामपालाद्देव्यां कान्तिमत्यामुत्पन्नोऽर्थपालो नाम । सत्यर्थे निजगृहान्नृपगृहं सुरङ्गयोपसरन्निहान्तरे वो दृष्टवान् । कथयत काः स्थ यूयम् ? कथमिह निवसथ ?' [3]इति । सोदञ्जलिरुदीरितवती—'भर्तृदारक[4] भाग्यवत्यो वयम्, यास्त्वामेभिरेव चक्षुर्भिरनघमद्राक्ष्म । श्रूयताम् । यस्तव मातामहश्चण्डसिंहः, तेनास्यां लीलावत्यां चण्डघोषः कान्तिमतीत्यपत्यद्वयमुदपादि । चण्डघोषस्तु युवराजोऽत्यासङ्गादङ्गनासु राजयक्ष्मणा [5]सुरक्षयमगादन्तर्वत्न्यां देव्यामाचारवत्याम् । अमुया चेयं मणिकर्णिका नाम कन्या प्रसूता । अथ प्रसववेदनया मुक्तजीविताचारवती पत्युरन्तिकमगमत् । अथ देवश्चण्डसिंहो मामाहूयोपह्वरे समाज्ञापयत्—

पालेन)। प्रत्यवादि उत्तरिता । सुदत्यः शोभनाः दन्ताः यासाम् तत्सम्बुद्धौ ('वयसि दन्तस्य दतृ' इति समासान्तः दत्रादेशः)। मा स्म भैषुः न भयम् कुरुत । द्विजातिवृषात् ब्राह्मणश्रेष्ठात् । अर्थे प्रयोजने । नृपस्य (सिंहघोषस्य) गृहम् । उपसरन् आगच्छन् । इह अत्र । अन्तरे मध्ये । वः युष्मान् । दृष्टवान् अपश्यम् । सा (वृद्धा) । उदञ्जलिः बद्धाञ्जलिः । उदीरितवती कथितवती । भर्तृदारक राजकुमार । अनघम् कुशलम् । अद्राक्ष्म अपश्याम । देव्याम् राज्ञ्याम् । लीलावत्याम् लीलावतीनाम्न्याम् । अपत्यद्वयम् सन्तानयुगलम् । उदपादि उत्पादितम् । अत्यासङ्गात् अत्यासक्तेः । अङ्गनासु कामिनीषु । राजयक्ष्मणा क्षयरोगेण । सुरक्षयम् देवगृहम् (स्वर्गम्)। अगात् अगच्छत् । अन्तर्वत्न्याम् गर्भिण्याम् (अन्तः अस्ति अस्याम् गर्भः । 'अन्तर्वत्पतिवतोर्नुक्')। देव्याम् राज्ञ्याम् आचारवत्याम् आचारवतीनाम्न्याम् । अमुया (आचारवत्या)। प्रसूता जनिता । अथ ततः । मुक्तम् त्यक्तम् जीवितम् जीवनम् यया सा । पत्युः (चण्डघोषस्य)। अन्तिकम् समीपे । अगमत् अगच्छत् । अथ ततः । देवः राजा । माम् (वृद्धाम्)। उपह्वरे एकान्ते । समाज्ञापयत् अवदत् । ऋद्धिमती

कि आप कौन हैं ? किसलिये पधारे हैं ?' मैंने उसके उत्तर में कहा—'हे सुदतियो (सुन्दर दंत-पंक्ति-शोभित), आप लोग मत डरें । मैं श्रेष्ठ ब्राह्मण कामपाल का देवी कान्तिमती के गर्भ से उत्पन्न पुत्र अर्थपाल हूँ । प्रयोजन होने पर अपने घर से राजा के घर सुरंग से आते हुये यहाँ मध्य में आप लोगों को देखा है । बतायें कि आप लोग कौन हैं ? कैसे यहाँ रह रहीं हैं ?' उसने हाथ जोड़कर कहा-'राजकुमार, हम भाग्यवान् हैं जो तुम्हें इन्हीं नेत्रों से सकुशल देखा है । सुनो । जो तुम्हारे नाना चण्डसिंह हैं उनकी चण्डघोष और कान्तिमती ये दो सन्तानें इन रानी लीलावती से उत्पन्न हुईं । युवराज चण्डघोष तो रानी आचारवती के गर्भवती होने पर कामिनियों के प्रति अत्यधिक आसक्ति से क्षय-रोग के कारण स्वर्ग सिधार गये और इसके द्वारा यह मणिकर्णिका-नामक कन्या जनी गई है । फिर प्रसव की पीड़ा से आचारवती मरकर पति के समीप चली गई । तत्पश्चात् राजा चण्डसिंह ने मुझे बुलाकर

---

[1] बिभयुः । [2] वृषभात् । [3] इति प्राब्रवम् । [4] भट्टारक । [5] असुक्षयम् ।

'ऋद्धिमति कन्यकेयं कल्याणलक्षणा। तामिमां मालवेन्द्रनन्दनाय दर्पसाराय विधिवद्वर्धयित्वा दित्सामि। बिभेमि च कान्तिमतीवृत्तान्तादारभ्य कन्यकानां प्रकाशावस्थापनात्। अत इयमरातिव्यसनाय कारिते महति भूमिगृहे कृत्रिमशैलगर्भोत्कीर्णनानामण्डपप्रेक्षागृहे प्रचुरपरिबर्हया भवत्या संवर्ध्यताम्। अस्त्यत्र भोग्यवस्तु[1]वर्षशतेनाप्यक्षय्यम्' इति। स [2]तथोक्त्वा निजवासगृहस्य [3]द्व्यङ्गुलभित्तावर्धपादं किष्कुविष्कम्भमुद्धृत्य तेनैव द्वारेण स्थानमिदमस्मानवीविशत्। इह च नो वसन्तीनां द्वादश समाः समत्ययुः। इयं च वत्सा तरुणीभूता।

वृद्धानाम तत्सम्बुद्धौ। कन्यका वालिका। इयम् (मणिकर्णिका)। कल्याणलक्षणा शोभनावयवा। ताम् पूर्वोक्ताम्। इमाम् (मणिकर्णिकाम्)। मालवेन्द्रस्य मालवराजस्य नन्दनाय पुत्राय। विधिवत् विध्युक्तमार्गेण। वर्धयित्वा पालयित्वा। दित्सामि दातुम् इच्छामि। बिभेमिं भयम् प्राप्नोमि। कान्तिमत्याः वृत्तान्तात् वृत्तात्। आरभ्य प्रभृति। कन्यकानाम् वालिकानाम्। प्रकाशम् सर्वजनसमक्षम् अवस्थापनात् संस्थापनात। इयम् (मणिकर्णिका)। अरातिभ्यः शत्रुभ्यः यत् व्यसनम् विपत् तस्मै तन्निवारणाय। कारिते रचिते। महति विशाले। भूमिगृहे भूतलान्तर्गृहे। कृत्रिमः रचितः यः शैलः पर्वतः तस्य गर्भे मध्ये उत्कीर्णाः रचिताः नानामण्डपाः यत्र तादृशानि प्रेक्षागृहाणि नृत्यगृहाणि यत्र तस्मिन्। प्रचुरः महान् परिबर्हः भृत्यसमाजः यस्याः तया। भवत्या (वृद्धया)। संवर्ध्यताम् पाल्यताम्। अत्र (भूमिगृहे)। भोग्यम् भोगार्हम्। अक्षय्यम् अशक्यक्षयम् ('क्षय्यजय्यौ शक्यार्थे' इति निपातः)। सः (चण्डसिंहः) तथा पूर्वोक्तम्। दयङ्गुलभित्तौ अङ्गुलिद्वयपरिमाणायाम् भित्तौ कुड्ये। अर्धपादम् पाषाणपिधानम्। किष्कुविष्कम्भम् हस्तपरिणाहम् ('किष्कुर्हस्ते वितस्तौ च' इति अमरः। 'परिणाहस्तु विष्कम्भः' इति वैजयन्ती)। उद्धृत्य उत्पाटय। अस्मान् (कन्यकाजनम्)। अवीविशत् प्रवेशम् अकारयत्। इह अत्र। नः अस्माकम्। समाः वर्षाणि। समत्ययुः अतिक्रान्ताः। इयम् (मणिकर्णिका)। वत्सा पुत्री। तरुणीभूता युवती जाता।

एकान्त में कहा—'हे ऋद्धिमती, यह बालिका शुभ लक्षणों वाली है। इसे पाल पोसकर मालव-नरेश के पुत्र दर्पसार को विधि-पूर्वक दान करना चाहता हूँ पर कान्तिमती वाली घटना के समय से लड़कियों को बाहर रखने में डरता हूँ। इसलिये, इसे शत्रुओं के संकट के (समय बचाव के) लिये बनवाये हुये बड़े तहखाने में बड़ी संख्या में नौकर-चाकर लेकर तुम पालना-पोसना जिसमें कृत्रिम पर्वत के मध्य नक्काशे गये अनेक मण्डपों वाले नृत्य-गृह हैं। इसमें उपभोग- योग्य सामग्री इतनी है जो सैकड़ों वर्षों तक उपभोग करने पर भी न चुक सके।' उन्होंने उस प्रकार कहकर अपने निवास-गृह से दो अंगुल दूर की दीवाल पर हाथ भर लम्बाई का पत्थर का ढक्कन उठाकर उसी दरवाजे से इस जगह हमें प्रविष्ट करा दिया। यहाँ रहते हम लोगों को बारह साल हो गये और यह बेटी जवान हो गई पर

---

[1] वर्षशतेन। [2] तथोक्तम्। [3] अङ्गनभित्ता०।

न चाद्यापि स्मरति राजा। काममियं पितामहेन दर्पसाराय संकल्पिता। त्वदम्बया कान्तिमत्या चेयं गर्भस्थैव द्यूतजिता स्वमात्रा तवैव जायात्वेन समकल्प्यत। तदत्र प्राप्तरूपं चिन्त्यतां कुमारेणैव' इति। तां पुनरवोचम्—'अद्यैव राजगृहे किमपि कार्यं साधयित्वा प्रतिनिवृत्तो युष्मासु यथार्हं प्रतिपत्स्ये' इति। येनैव दीपदर्शितबिलपथेन गत्वा स्थितेऽर्धरात्र तदर्धपादं प्रत्युद्धृत्य वासगृह प्रविष्टो विश्रब्ध[1]सुप्त सिंहघोषं जीवग्राहमग्रहीषम्। आकृष्य च तमहिमिवाहिशत्रुः स्फुरन्तममुनैव भित्तिरन्ध्रपथेन स्त्रैणसंनिधिमनैषम्। आनीय च स्वभवनमायसनिगडसंदित[2]चरणयुगलमवनमितमलिनवदनमश्रुबहु-

राजा (सिंहघोषः)। कामम् यथेच्छम्। इयम् (मणिकर्णिका)। त्वदम्बया तत्र (अर्थपालस्य) अम्बया जनन्या। द्यूतजिता द्यूतपणद्वारा प्राप्ता। स्वमात्रा स्वस्याः मात्रा (आचारवत्या)। तव (अर्थपालस्य)। जायात्वेन पत्नीरूपेण। समकल्प्यत संकल्पिता। प्राप्तरूपम् प्रशस्तम् प्राप्तम् (कर्त्तव्यम्) (प्रशंसायाम् रूपप्)। कुमारेण राजकुमारेण। ताम् (वृद्धाम्)। अवोचम् अवदम्। साधयित्वा संपाद्य। प्रतिपत्स्ये वर्तिष्ये। अर्धपादम् प्रस्तरपिधानम्। प्रत्युद्धृत्य उद्घाट्य। वासगृहम् गर्भगृहम्। विश्रब्धम् विश्वासपूर्वकम् यथा स्यात् तथा सुप्तम् निद्रितम्। जीवग्राहम् प्राणसहितम् ('समूलाकृतजीवेषु हन्कृञ्ग्रहः' इति णमुल्)। अग्रहीषम् आक्रान्तवान्। तम् (सिंहघोषम्)। अहिम् सर्पम्। अहिशत्रुः गरुडः। स्फुरन्तम् कम्पमानम्। भित्तिरन्ध्रपथेन सुरङ्गया। स्त्रैणस्य स्त्रीणाम् समूहस्य संनिधिम् समीपम् ('स्त्रीपुंसाभ्यां नञ्स्नञौ भवनात्' इति समूहार्थे नञ्)। अनैषम् अनयम्। आनीय आदाय। अयः लोहम् तस्य इदम् आयसम् निगडम् श्रृङ्खला तेन संदितम् सम्यक् दितम् ('बद्धं निगडितं दितम्' इति वैजयन्ती)। चरणयोः युगलम् यस्य तम्। अवनमितम् नम्रीकृतम् मलिनम्

आज भी राजा खोज-खबर नहीं ले रहे हैं। भले ही तुम्हारे पितामह ने दर्पसार के लिये इसे संकल्पित कर लिया था, पर तुम्हारी माँ कान्तिमती के द्वारा यह तभी जुये में जीत ली गई थी जब पेट में थी और अपनी माँ के द्वारा तुम्हारी ही पत्नी के रूप में संकल्प कर दी गई थी। तो इस विषय में जो सर्वोत्तम कर्त्तव्य दिखे, उस पर राजकुमार (आप) ही विचार करें।' मैंने उससे फिर कहा—'आज ही राज-महल में कुछ काम बनाकर लौटकर तुम लोगों के बारे में जो उचित होगा, उसका विधान करूँगा।' दिये से दिखाये गये उसी छेद के रास्ते जाकर आधी रात होने पर वह पत्थर का ढक्कन उठाकर गर्भ-गृह में घुसकर विश्वास-पूर्वक सोये हुये सिंहघोष को जीते जी जा पकड़ा। वह काँप रहा था। उसे ऐसे खींचकर जैसे गरुड़ साँप को खींचता है, इसी दीवाल के छेद वाले रास्ते से औरतों के समूह के समीप ले गया। फिर अपने महल में लाकर अपने माता-पिता को एकान्त में उसे दिखाया। उसके दोनो पैर लोहे की बनी बेड़ी से बँधे थे, मुँह झुकाया हुआ और मलिन

---

[1] ०प्रसुप्तम्। [2] संदानित।

लरक्तचक्षुषमेकान्ते जनयित्रोरदर्शयम् । अकथयं च बिलकथाम् । अथ पितरौ [1]प्रहृष्टतरौ तं निकृष्टाशयं निशाम्य बन्धने नियम्य तस्या दारिकाया यथार्हेण कर्मणा मां पाणिमग्राहयेताम् । [2]अनाथकं च तद्राज्यमस्मदायत्तमेव जातम् । प्रकृतिकोपभयात्तु मन्मात्रा मुमुक्षितोऽपि न मुक्त एव सिंहघोषः । तथास्थिताश्च वयमङ्गराजः सिंहवर्मा देवपादानां भक्तिमान् कृतकर्मा चेत्यमित्राभियुक्तमेनभ्यसराम । अभूवं च भवत्पादपङ्कजरजोनुग्राह्यः । स चेदानीं भवच्चरणप्रणामप्रायश्चित्तमनुतिष्ठतु सर्वदुश्चरितक्षालनमनार्यः सिंहघोषः’ इत्यर्थपालः प्राञ्जलिः प्रणनाम । देवोऽपि राजवाहनः ‘बहु पराक्रान्तम्, बहूपयुक्ता च बुद्धिः,

विवर्णम् मुखम् येन सः । अश्रुभिः वहलरक्तम् अतिलोहितम् चक्षुः नेत्रम् यस्य तम् । जनयित्रोः मातापित्रोः । पितरौ माता (कान्तिमती , पिता (कामपालः) च । प्रहृष्टतरौ विशेषेण प्रहृष्टौ प्रसन्नौ । निकृष्टः नीचः आशयः चित्तम् यस्य तम् । निशाम्य दृष्ट्वा । बन्धने कारागारे । नियम्य बद्ध्वा । तस्याः पूर्वोक्तायाः । दारिकायाः कन्यायाः (मणिकर्णिकायाः) । यथार्हेण यथोचितेन । कर्मणा विधिना । माम् (अर्थपालम्)। अग्राहयेताम् ग्राहितवन्तौ । न नाथः रक्षकः (सिंहघोषाभावे) यत्र तादृशम् अनाथकम् । अस्माकम् आयत्तम् मदधीनम् । जातम् भूतम् । प्रकृतीनाम् प्रजानाम् कोपस्य क्रोधस्य भयात् । मम मात्रा (कान्तिमत्या) । मुमुक्षितः मोक्तुम् इष्टः ।तथास्थिताः तदवस्थाः । वयम् अहम् (अर्थपालः) । देवपादानाम् श्रीमताम् राज्ञाम् (भवताम्) । भक्तिमान् भक्तियुक्तः । कृतानि कर्माणि उपकाराः येन सः । अमित्रैः शत्रुभिः अभियुक्तम् आक्रान्तम् । एनम् (सिंहवर्माणम्) । अभ्यसराम आगच्छाम । अभूवम् अभवम् । भवतः (राजवाहनस्य) पादपङ्कजयोः चरणकमलयोः यत् रजः धूलिः तेन अनुग्राह्यः कृपायोग्यः । भवतः (राजवाहनस्य) चरणयोः प्रणामः नतिः एव प्रायश्चित्तम् । अनुतिष्ठतु आचरतु । सर्वाणि च तानि दुश्चरितानि पापानि च तेषां क्षालनम् शोधकम् । अनार्यः दुष्टः । प्राञ्जलिः बद्धाञ्जलिः । प्रणनाम अनमत् । देवः राजा । बहु अत्यधिकम् । पराक्रान्तम्

था और आँखें आँसुओं से बहुत लाल थीं । मैंने बिल की कहानी कही। इसके बाद माता-पिता ने बहुत प्रसन्न होकर उस नीच-चित्त वाले को देखकर और जेल में बन्द कर उसकी लड़की (यहाँ भतीजी) से यथोचित विधि से मेरा विवाह किया । वह (या उसका) असहाय राज्य हमारे ही अधीन हो गया । मेरी माँ सिंहघोष को छोड़ना चाहती थी पर जनता के क्रोध के डर से उसे नहीं छोड़ा गया । वैसी स्थिति में पहुँचे हुये हम ‘अङ्ग-नरेश सिंहवर्मा पूज्य महाराज के भक्त और उपकार्य हैं’– यह सोचकर शत्रु से आक्रान्त इनकी ओर आये । फिर मैं आपके चरण-कमल-धूलि का कृपाभाजन बना । अब वह दुष्ट सिंहघोष समस्त पापों को धो देने वाले आपके चरणों में प्रणाम का प्रायश्चित्त करे’ यह कहकर अर्थपाल ने हाथ जोड़कर प्रणाम किया । तब महाराज राजवाहन ने ‘खूब पराक्रम दिखाया । बुद्धि का खूब

---

१. नितरां हृष्टौ । २. अनायकम् ।

मुक्तबन्धस्ते श्वशुरः पश्यतु माम्' इत्यभिधाय भूयः प्रमतिमेव पश्यन्प्रीतिस्मेरः 'प्रस्तूयतां तावदात्मीयं चरितम्' इत्याज्ञापयत् ।

इनि श्रीदण्डिनः कृतौ दशकुमारचरित उपहारवर्मचरितं नाम चतुर्थ उच्छ्वासः ।

पञ्चमोच्छ्वासः

सोऽपि प्रणम्य विज्ञापयामास—'देव देवस्यान्वेषणाय दिक्षु भ्रमन्नभ्रंकषस्यापि [1]विन्ध्यपार्श्वरूढस्य वनस्पतेरधः, परिणतपतङ्गबालपल्लवावतंसिते

पराक्रमः कृतः । बहु नितराम् । उपयुक्ता उपयोगम् नीता । मुक्तः दूरीकृतः बन्धः बन्धनम् यस्य सः । ते तव (अर्थपालस्य) । श्वशुरः पत्न्याः पिता (अत्र पितृव्यः । श्वशुरस्य भ्राता अपि श्वशुरः) । माम् (राजवाहनम्) । इति पूर्वोक्तम् । अभिधाय उक्त्वा । भूयः पुनः । प्रमतिम् प्रमतिनामानम् । प्रीत्या आनन्देन स्मेरः ['नमिकम्पिस्म्यजसकमहिंसदीपो रः' (अष्टाध्यायी ३ । २ । १६७)] स्मिताननः (सन्) । प्रस्तूयताम् आरभ्यताम् । तावत् प्रथमम् । आत्मीयम् स्वीयम् । चरितम् जीवनम् (जीवनकथा) । आज्ञापयत् अवदत् । कृतौ रचनायाम् ।

सः प्रमतिः । अपि ततः । विज्ञापयामास निवेदितवान् । देव महाराज । देवस्य महाराजस्य (भवतः राजवाहनस्य) । अभ्रंकषस्य गगनस्पृशः (वारिदस्पृशः वा । 'अभ्रं मेघो वारिवाहः' इति अमरः । 'द्योदिवौ द्वे स्त्रियामभ्रम्' इति अमरः । 'सर्वकूलाभ्रकरीरेषु कषः' इति खच् । 'अरुर्द्विषदजन्तस्य मुम्' इति मुमागमः) । विन्ध्यस्य विन्ध्यनाम्नः पर्वतस्य पार्श्वे समीपे रूढस्य उत्पन्नस्य । वनस्य पतिः वनस्पतिः अपुष्पवृक्षः तस्य ('तैरपुष्पाद् वनस्पतिः' इति अमरः) । अधः तलभागे । परिणतः अस्तोन्मुखः यः पतङ्गः सूर्यः सः एव बालपल्लवः किसलयः

उपयोग किया । रिहा किये हुये तुम्हारे ससुर मुझसे मिलें' यह कहकर फिर प्रमति को ही देखते हुये आनन्द से मुस्कुराते हुये कहा—'अब पहले अपनी राम-कहानी आरम्भ करो ।'

श्री दण्डी को रचना "दशकुमार-चरित" के अन्तर्गत "अर्थपाल-चरित"
नामक चौथा उच्छ्वास समाप्त हुआ ।

पांचवाँ उच्छ्वास

तब उसने प्रणाम कर निवेदन किया—'महाराज, महाराज (आप)-की खोज में मैं दिशाओं में घूमता हुआ गगनचुम्बी विन्ध्याचल के समीप भी पहुँचा । वहाँ उगे हुये एक वृक्ष

---

[1] विन्ध्यपादपार्श्वरूढवन० ।

पश्चिमदिगङ्गनामुखे पल्वलाम्भस्युपस्पृश्योपास्य संध्याम् तमःसमीकृतेषु निम्नोन्नतेषु, गन्तुमक्षमः क्षमातले किसलयैरुपरचय्य शय्यां शिशयिषमाणः, शिरसि कुर्वन्नञ्जलिम्, 'यास्मिन्वनस्पतौ वसति देवता सैव मे शरणमस्तु शरारुचक्रचारभीषणायां शर्वगलश्यामशार्वरान्धकारपूराध्मातगभीरगह्वरायामस्यां महाटव्यामेक[1]कस्य मे प्रसुप्तस्य' इत्युपधाय वामभुजमशयिषि। ततः क्षणादेवावनिदुर्लभेन स्पर्शेनासुखायिषत किमपि गात्राणि, आह्लाद[2]यिषतेन्द्रियाणि, अभ्यमनायिष्ट चान्तरात्मा, विशेषतश्च हृषितास्तनूरुहाः, पर्यस्फुरन्मे दक्षिणभुजः।

तेन अवतंसिते भूषिते। पश्चिमदिक् एव अङ्गना कामिनी तस्याः मुखे। पल्वलस्य अल्पसरसः ('वेशन्तः पल्वलं चाल्पसरः' इति अमरः) अम्भसि जले। उपस्पृश्य आचम्य ('उपस्पर्शस्त्वाचमनम्' इति अमरः)। तमसा अन्धकारेण समीकृतेषु समतलीकृतेषु। निम्नोन्नतेषु उच्चावचभूमिभागेषु। अक्षमः असमर्थः। क्षमातले पृथ्वीतले। किसलयैः पल्लवैः। उपरचय्य कृत्वा। शिशयिषमाणः शयितुम् इच्छन्। कुर्वन् अञ्जलिम् प्रणमन्। शरणम् सहायः। शरारूणाम् हिंस्राणाम् चक्रम् समूहः तस्य चारेण सञ्चरणेन भीषणायाम् भयङ्कर्याम्। शर्वस्य शिवस्य गलः कण्ठः तद्वत् श्यामः कृष्णः यः शार्वरः शर्वर्याः रात्रेः अयम् अन्धकारः तस्य पूरः प्रवाहः तेन आध्मातानि पूरितानि गभीराणि गम्भीराणि गह्वराणि गुहाः यस्याम्। महती च सा अटवी वनम् च तस्याम्। एककस्य एकाकिनः। उपधाय आधारीकृत्य। वामभुजम् वामबाहुम्। अशयिषि शयितः अभवम्। क्षणात् क्षणानन्तरम्। अवन्या भूम्या दुर्लभेन दुरापेन। असुखायिषत सुखितानि जातानि ('सुखादिभ्यः कर्तृवेदनायाम्' इति क्यङ्। लुङि सिच इट्)। किमपि अनिर्वचनीयम् यथा स्यात् तथा। गात्राणि अङ्गानि। आह्लादयिषत आह्लादम् अलभन्त। अभ्यमनायिष्ट अभिमतम् अलभत। हृषिताः उदञ्चिताः (हृषेरुदञ्चनेऽर्थे 'हृषेर्लोमसु' इति इडागमः)। तनूरुहाः रोमाणि। पर्यस्फुरत् अस्पन्दत। मे मम (प्रमतेः)। कथम् केन प्रकारेण। नु (वितर्के)।

के नीचे पश्चिम-दिशा-रूपी रमणी के मुख के डूब रहे सूर्य-रूपी नये पत्ते से विभूषित होने पर एक छोटे तालाब के जल के पास आकर पानी पीकर संध्या-उपासना कर अन्धकार से समतल बने हुये ऊँचे-नीचे स्थानों पर चलने में असमर्थ होता हुआ पृथ्वी-तल पर नये पत्तों से सेज बनाकर शयन का इच्छुक होकर जोड़े हुये हाथ सिर तक ले जाकर 'जो देवता इस वृक्ष पर रहते हैं वे ही हिंसक जन्तुओं के समूह के चलने-फिरने से भयंकर और शिव के गले के समान काले रात्रि-अंधकार के प्रवाह से भरे गहरे गुफाओं वाले इस महान् वन में अकेले नींद में डूबे हुये मेरे सहायक हों' यह कहकर बायीं बाँह को तकिया बनाकर लेट गया। इसके बाद क्षण भर ही बीता था कि भूमि पर दुर्लभ स्पर्श से मेरे अङ्ग अनिर्वचनीय रूप से सुखी हुये, इन्द्रियाँ आह्लादित हो उठीं, मन को अभिमत फल मिल गया, रोयें विशेष रूप से खड़े हो गये और दाहिनी बाँह फड़कने लगी। 'यह कैसे हुआ' यह कहकर धीरे-धीरे

---

[1] एकाकिनः।

[2] आह्लादिषत।

'कथं न्विदम्' इति मन्दमन्दमुन्मिषन्नुपर्यच्छचन्द्रातपच्छेदकल्पं शुक्लांशुकवितानमैक्षिषि । वामतो वलित[1]दृष्टिः समया सौधभित्तिं चित्रास्तरणशायिनमतिविश्रब्धप्रसुप्तमङ्गनाजनमलक्षयम् । दक्षिणतो दत्तचक्षुरीषद्गलितस्तनांशुकाम्, अमृतफेनपटलपाण्डुरशयनशायिनीम्, आदिवराहदंष्ट्रांशुजाललग्नाम्, अंसस्रस्तदुग्ध[2]सागरदुकूलोत्तरीयाम्, भयसाध्वसमूर्च्छितामिव धरणीम्, अरुणाधरकिरणबालकिसलयलास्यहेतुभिराननारविन्दपरिमलोद्वाहिभिर्निःश्वासमातरिश्वभि-

इति (उक्त्वा)। उन्मिषन् नेत्रे उन्मीलयन्। अच्छः निर्मलः यः चन्द्रस्य आतपः आलोकः तस्य यः छेदः खण्डः तत्कल्पम् तत्तुल्यम्। शुल्कांशुकवितानम् श्वेतवस्त्रोल्लोचम् ('अस्त्री वितानमुल्लोचः' इति अमरः)। ऐक्षिषि दृष्टवान्। वामतः वामभागे। वलिता उन्मुखीकृता दृष्टिः चक्षुः येन सः। समया समीपे। सौधभित्तिम् प्रासादकुड्यम् ('अभितःपरितःसमया···' इति द्वितीया)। चित्रास्तरणशायिनम् विचित्रशय्यासुप्तम्। अतिविश्रब्धम् अत्यन्तविश्वासपूर्वकम् प्रसुप्तम् निद्रितम्। अङ्गनाजनम् कामिनीसमूहम्। अलक्षयम् अपश्यम्। दक्षिणतः दक्षिणभागे। दत्तम् निहितम् चक्षुः दृष्टिः येन सः। ईषत् गलितम् पतितम् स्तनांशुकम् कुचावरणवस्त्रम् यस्याः ताम्। अमृतस्य फेनपटलम् डिण्डीरसमूहः तद्वत् पाण्डुरे श्वेते शयने शय्यायाम् शायिनीम् शयिताम् (अतः)। आदिवराहस्य वराहरूपेण अवतीर्णस्य विष्णोः या दंष्ट्रा दशनः तस्या अंशूनाम् किरणानाम् यत् जालम् समूहः तत्र लग्नाम् संबद्धाम्। असात् स्कन्धदेशात् स्रस्तम् दुग्धसागरः क्षीरसागरः एव दुकूलस्य पट्टवस्त्रस्य उत्तरीयम् यस्याः ताम्। भयेन यत् साध्वसम् संभ्रमः तेन मूर्च्छिताम्। धरणीम् पृथ्वीम्। अरुणः ताम्रः अधरः तस्य किरणाः ते एव बालकिसलयानि नवीनपल्लवाः तेषाम् लास्यम् तत्र हेतुभिः कारणभूतैः। आननारविन्दस्य मुखकमलस्य परिमलम् सौगन्ध्यम् उद्वहन्ति तैः आननारविन्दपरिमलोद्वाहिभिः। निःश्वासमातरिश्वभिः निःश्वासपवनैः। ईश्वरस्य रुद्रस्य ईक्षणस्य (तृतीयनेत्रस्य) दहनेन

आँखें खोलते हुये मैंने ऊपर स्वच्छ चाँदनी के टुकड़े के समान सफेद कपड़े का चँदोवा देखा। बायीं तरफ दृष्टि मोड़कर महल की दीवार के पास रंग-बिरंगे बिस्तर पर लेटा हुआ अत्यन्त विश्वास-पूर्वक गहरी नींद में डूबा हुआ स्त्री-समूह देखा। दाहिनी तरफ दृष्टि डाली तो एक युवती को देखा। उसके स्तन का वस्त्र कुछ गिर पड़ा था। वह अमृत के फेन-समूह के समान सफेद सेज पर लेटी थी। वराह-अवतार-धारी विष्णु की दाढ़ की किरणों के समूह में लगी हुई, कन्धे से गिरे क्षीर-सागर-रूपी रेशमी वस्त्र के उत्तरीय वाली, डर की घबराहट से बेहोश पृथ्वी के समान थी। लाल रंग के निचले ओंठ की किरणों के नवीन पत्तों के नृत्य में कारण बनने वाली मुख-कमल-सुगन्ध वहन करने वाली निःश्वास-पवनों से

---

[1] चलित। [2] क्षीरसागर।

रीश्वरेक्षणदहनदग्धं स्फुलिङ्गशेषमनङ्गमिव संधुक्षयन्तीम्, अन्तः सुप्तषट्पदमम्बुजमिव जातनिद्रसरसमामीलितलोचनेन्दीवरमाननं दधानाम्, ऐरावतमदावलेपलूनापविद्धामिव नन्दनवनकल्पवृक्षरत्नवल्लरीं कामपि तरुणीमालोकयम्। अतर्कयं च—'क्व गता सा महाटवी? कुत इदमूर्ध्वाण्ड[1]कपालसंपुटोदरोल्लेखिशक्तिध्वजशिखरशूलोत्सेधं सौधमागतम्? क्व च तदरण्यस्थलीसमास्तीर्णं पल्लवशयनम्? कुतस्त्यं चेदमिन्दुगभस्तिसंभारभासुरं हंसतूलदुकूलशयनम्? एष च

अग्निना दग्धम् ज्वलितम्। स्फुलिङ्गशेषम् अग्निकणमात्रावशेषम्। अनङ्गम् कामम्। संधुक्षयन्तीम् वर्धयन्तीम्। अन्तः अभ्यन्तरे सुप्तः षट्पदः भ्रमरः यत्र तत् अम्बुजम् कमलम्। जाता निद्रा यस्य तत्। सरसम् मनोहरम्। आमीलिते मुद्रिते लोचनेन्दीवरे नयननीलकमले यत्र तत्। आननम् मुखम्। दधानाम् धारयन्तीम्। ऐरावतस्य इन्द्रगजस्य मदजनितेन अवलेपेन गर्वेण (आदौ) लूनाम् छिन्नाम् (पश्चात्) अपविद्धाम् त्यक्ताम्। नन्दनवने इन्द्रोद्याने यः कल्पवृक्षः तस्य रत्नमयीम् वल्लरीम् मञ्जरीम् ('वल्लरी मञ्जरी स्त्रियौ' इति अमरः)। कामपि एकाम्। तरुणीम् युवतिम्। आलोकयम् अपश्यम्। अतर्कयम् अचिन्तयम्। क्व कुत्र। महती च सा अटवी वनम् च। कुतः कस्मात् स्थानात्। इमम् पुरतः दृश्यमानम्। ऊर्ध्वाण्डकपालम् आकाशम् ('अप एव ससर्जादौ तासु वीर्यमथासृजत्। तदण्डमभवद् हैमं सहस्रांशुसमप्रभम्॥ तस्मिञ्जज्ञे स्वयं ब्रह्मा सर्वलोकपितामहः। नखैर्हिरण्यगर्भः स तदण्डं बिभिदे समम्॥ ताभ्यां च शकलाभ्यां च दिवं भूमिं च निर्ममे।' इति मनुः) तस्य यः संपुटः आवरणम् तत् उल्लिखति स्पृशति इत्येवंशीलम्। शक्तिध्वजस्य कार्तिकेयस्य शिखरम् गृहाग्रम् तत्र यत् शूलम् तद्वत् उत्सेधः उन्नतिः यस्य तत् ('सेनानीः क्रौञ्चशत्रुश्च कुमारः शक्तिकेतनः' इति अजयः। 'शिखरं मण्डपतलमग्रिमं वृक्षशैलयोः' इति उत्पलः। 'अस्त्राण्यारोपयेदग्रे कुमारं स्थापयेत्तले। नन्द्यावर्त इति ख्यातः प्रासादो देवभूभुजाम्॥' इति लघुदीपिका)। सौधम् भवनम्। अरण्यस्थल्याम् वनप्रदेशे समास्तीर्णम् आस्तृतम्। पल्लवशयनम् पत्ररचिता शय्या। कुतस्त्यम् कुतो भवम् इन्दोः चन्द्रस्य गभस्तयः किरणाः तेषाम् संभारः समूहः तद्वत् भासुरम् दीप्तिमत्। हंसतूलाः हंसस्य मृदुलाः पक्षाः तत्तुल्येन दुकूलेन पट्टवस्त्रेण निर्मितम् शयनम् शय्या। एषः समीपे

महादेव के नेत्र की आग से जले और अग्नि-कण-मात्र के रूप में बचे हुये काम देव को प्रज्वलित-सा कर रही थी। वह मनोरम मुख धारण कर रही थी जो अन्दर सोये हुये भौंरे वाले कमल की भाँति निद्रित था तथा जिसके नयन-रूपी नील-कमल मुँदे थे। वह ऐरावत की मस्ती के घमण्ड से तोड़ी और फिर छोड़ी गई नन्दन-वन के कल्पवृक्ष की रत्नमयी मंजरी के समान थी। मैंने सोचा—'कहाँ गया वह बड़ा जंगल और कहाँ से आ गया यह महल जो आकाश के आवरण के मध्य भाग को कुरेद रहा है तथा जिसकी ऊँचाई कार्तिकेय- निवास के शिखर के शूल के समान है। कहाँ वह पत्तों की सेज जो वन प्रदेश में बिछी थी और कहाँ से आ गई यह हंस के मुलायम पंखों के समान रेशमी वस्त्र की सेज जो चन्द्रमा की किरणों

---

[1] ०ण्डसंपुटो०; ०कपालोल्लेखि।

को नु शीतरश्मिकिरण[1]रज्जुदोलापरिभ्रष्टमूर्च्छित इवाप्सरोगणः स्वैरसुप्तः सुन्दरीजनः? का चेयं देवीवारविन्दहस्ता शारदशशाङ्क[2]मण्डलामलदुकूलोत्तरच्छदमधिशेते शयनतलम्? न तावदेषा, यतो मन्दमन्दमिन्दुकिरणैः संवाह्यमाना कमलिनीव [3]संकुचति । भग्नवृन्तच्युतरसबिन्दुशबलितं पाकपाण्डु चूतफलमिवोद्भिन्नस्वेदरेखं गण्डस्थलमालक्ष्यते, अभिनवयौवनविदाहदुर्लभोष्मणे कुचतटे वैवर्ण्यमुपैति [4]वर्णकम् । वाससी च [5]परिभोगानुरूप धूसरिमाणमादर्श-

---

दृश्यमानः । नु (वितर्के) । शीतरश्मेः चन्द्रस्य किरणाः एव रज्जवः तासाम् या दोला हिन्दोलिका तस्याः परिभ्रष्टः अत एव मूर्च्छितः । अप्सरसाम् देवस्त्रीणाम् गणः समूहः । स्वैरम् स्वच्छन्दम् यथा स्यात् तथा सुप्तः । सुन्दरीजनः सुन्दरीसमूहः । अरविन्दम् कमलम् हस्ते यस्याः सा (लक्ष्मीः) । शारदः शरदि भवः यः शशाङ्कः चन्द्रः तस्य मण्डलम् बिम्बम् तद्वत् अमलम् स्वच्छम् दुकूलम् पट्टवस्त्रम् तत् एव उत्तरच्छदः आस्तरणम् यस्य तत् । तावत् (वाक्यालङ्कारे) । देवयोषा सुरस्त्री । इन्दोः चन्द्रस्य किरणैः । संवाह्यमाना मर्द्यमाना । सङ्कुचति निद्राति (देवानाम् अस्वप्नत्वात्) । भग्नम् नष्टम् वृन्तम् प्रसवबन्धनम् यस्य अत एव च्युताः स्रुताः रसबिन्दवः अत एव शबलितम् नानावर्णम् । पाकेन पक्वतया पाण्डु श्वेतम् चूतफलम् आम्रफलम् । उद्भिन्ना निर्गता स्वेदस्य घर्मजलस्य रेखा धारा यत्र । आलक्ष्यते दृश्यते । गण्डस्थलम् कपोलदेशः । अभिनवम् नूतनम् यत् यौवनम् तारुण्यम् तस्य यः विशिष्टः दाहः तेन निर्भरः अतिशयितः ऊष्मा तापः यत्र । कुचतटे स्तनसीम्नि । वैवर्ण्यम् मलिनत्वम् । उपैति प्राप्नोति । वर्णकम् अङ्गरागः । वाससी वस्त्रे । परिभोगानुरूपम् व्यवहारोचितम् । धूसरिमाणम् मालिन्यम् । आ समन्तात्

के समूह के समान चमकीली है । यह स्वतंत्र रूप से सोया हुआ सुन्दरी-समूह कौन है जो चन्द्रमा की [6]किरण-रूपी डोरी के हिंडोले से गिरकर बेहोश अप्सरा-समूह-सा है और यह कौन है जो हाथ में कमल लिये हुये स्वरूप वाली देवी लक्ष्मी-सी है तथा शरद् ऋतु के चन्द्र-मण्डल के समान निर्मल रेशमी वस्त्र की चादर वाली शय्या पर लेटी है । यह अप्सरा नहीं है क्योंकि चन्द्र-किरणों के द्वारा मंद-मंद मर्दित कमलिनी की भाँति निद्रित[7] है। निकल पड़ी हुई पसीने की धार वाला कपोल-प्रदेश पकने से सफेद हो गये आम के फल की तरह दिखता है जिसका डण्ठल टूट जाने से रस की बूँद बह गई है और इसीलिये जो चितकबरा हो गया है। स्तन-सीमा नवीन यौवन की प्रचण्ड जलन से अत्यंत ताप-युक्त है । उस पर अङ्ग राग का

---

[1] किरणरजतरज्जु । [2] ०ण्डलं पर्यङ्कतलमेतदमल...च्छदमधिशेते । [3] निद्राति ।
[4] वर्णकः । [5] परीभोग ।

[6] यह माना जाता है कि अप्सरायें चन्द्रमा की किरणों से पैदा हुई हैं । कादम्बरी में भी ऐसी ही उत्पत्ति आई है ।

[7] अप्सरा होती तो आँख न मुँदती जिससे निद्रित न होती । अप्सरा देव-लोक की होती है और वहाँ रहने वालों—देव-लोक-वासियों—की पलक नहीं झपकती। यह अन्तर नैषध १४।१९ में मनोहर रीति से वर्णित है ।

यतः तदेषा मानुष्येव दिष्ट्या चानुच्छिष्टयौवना, यतः सौकुमार्यमागताः सन्तोऽपि संहता इवावयवाः, प्रस्निग्धतमापि पाण्डुतानुविद्धेव देहच्छविः, दन्तपीडानभिज्ञतया नातिविशदरागो मुखे, विद्रुमद्युतिरधरमणिः अनत्यापूर्णमारक्तमूलं चम्पककुड्मलदलमिव कठोरं कपोलतलम्, अनङ्गबाणपातमुक्ता[1]शङ्कं च विश्रब्धमधुरं सुप्यते, न चैतद्वक्षःस्थल निर्दयविमर्दविस्तारितमुखस्तन[2]युगलम्, अस्ति

दर्शयतः प्रकटयतः। तत् तर्हि। मानुषी मानवी। दिष्ट्या भाग्येन। अनुच्छिष्टम् अनुपभुक्तम् यौवनम् तारुण्यम् यस्याः सा। यतः यस्मात् कारणात्। सौकुमार्यम् कोमलताम्। आगताः प्राप्ताः। संहताः मिलिताः। अवयवाः अङ्गानि। प्रस्निग्धतमा अतिशयेन प्रस्निग्धा। पाण्डुतया श्वेततया अनुविद्धा स्यूता। देहस्य छविः कान्तिः। दन्तपीडा दन्तक्षतव्यथा तत्र अनभिज्ञता अपरिचयः तया। नातिविशदरागः नातिस्पष्टरक्तिमा। विद्रुमम् प्रवालम् तस्य द्युतिः प्रभा इव द्युतिः यस्य सः। अधरः मणिः इव। अनत्यापूर्णम् अनतिपूर्णम् (ईषत्पूर्णम्)। आ ईषत् रक्तम् लोहितम् मूलम् तलभागो यस्य तत्। चम्पकस्य चम्पकपुष्पस्य कुड्मलदलम् मुकुलपत्रम्। अनङ्गः कामः तस्य बाणानाम् यः पातः पतनम् तस्य मुक्ता त्यक्ता शङ्का भयम् यस्मिन् कर्मणि तत् यथा स्यात् तथा। विश्रब्धम् विश्वाससहितम् च मधुरम् मनोहरम् च यथा स्यात् तथा। निर्दयम् गाढम् यः विमर्दः मर्दनम् तेन विस्तारितम् आयतीकृतम् मुखम् यस्य तादृशम् स्तनयुगलम्

रंग फीका पड़ जाता है[3]। दोनो कपड़े पूर्वरूप से उपभोगोचित मलिनता[4] दिखा रहे हैं। इससे सिद्ध है कि यह मानवी ही है। सौभाग्य से इसका यौवन (दूसरे के द्वारा) भोगा हुआ नहीं है क्योंकि अङ्ग कोमलता-युक्त और जुड़े से हैं। देह की कांति विशेष चिकनी होकर भी सफेदी से युक्त है। दन्त-क्षत की पीड़ा से परिचय न होने से मुख पर ललाई बहुत स्पष्ट नहीं है, मणि तुल्य निचले ओंठ को प्रभा मूँगे की-सी है। गाल की सतह बहुत भरी नहीं हैं, उसका निचला भाग कुछ-कुछ लाल है और वह चम्पक की कली की पंखुड़ी सी कठोर है। कामदेव के बाणों के वार की अशङ्का छोड़कर विश्वास पूर्वक और मनोरम ढंग से सोया जा रहा है। इस छाती के दोनो स्तनों का मुख प्रगाढ़ मर्दन से बढ़ा

---

१. शङ्कामुक्ततया। २. युगमुकुलम्।

३. देव लोक-वासियों के अङ्गराग, माला आदि में परिवर्तन नहीं होता। अप्सरा होती तो देव लोक-वासी होने से अङ्गराग का रंग हलका न होता (द्रष्टव्य नैषधचरित १४।२२)।

४. कपड़ों में मलिनता धूल से आती है और देव-लोक-वासियों के शरीर पर धूल नहीं पड़ती। यदि यह अप्सरा होती तो इसके कपड़े मलिन न दिखते (द्रष्टव्य नैषधचरित १४।२०)।

चानतिक्रान्तशिष्टमर्यादचेतसो ममास्यामासक्तिः। आसक्त्यनुरूपं पुनराश्लिष्टा यदि स्पष्टमार्तरवेणैव सह निद्रां मोक्ष्यति। अथाहं न लक्ष्यामि चानुपश्लिष्य शयितुम्। अतो यद्भावि तद्भवतु। भाग्यमत्र परीक्षिष्ये' इति स्पृष्टास्पृष्टमेव किमप्याविद्धरागसाध्वसं लक्ष्यसुप्तः स्थितोऽस्मि। सापि किमप्युत्कम्पिना[1] रोमोद्भेदवता वामपार्श्वेन सुखायमानेन मन्दमन्दजृम्भिकारम्भमन्थराङ्गी, त्वङ्गदग्रपक्ष्मणोश्चक्षुषोरलसतान्त-तारकेणानतिपक्व-निद्राकषा[2]यितापाङ्ग-परभागेन

कुचद्वयम् यस्य तत्। अनतिक्रान्ता अनुल्लङ्घिता शिष्टमर्यादा येन तादृशं चेतः चित्तम् यस्य तस्य मम (प्रमतेः)। आसक्तेः अनुरूपम् सदृशम्। आश्लिष्टा आलिङ्गिता। यदि (तर्हि)। स्पष्टम् निश्चितम् मोक्ष्यति त्यक्ष्यति। अथ (अपरः पक्षः)। अनुपश्लिष्य अनालिङ्ग्य। अतः गत्यन्तराभावात्। भावि भविष्यत्। अत्र अस्मिन् विषये। इति एवम् चिन्तयित्वा। स्पृष्टास्पृष्टम् (कियत्) स्पृष्टम् (कियत्) अस्पृष्टम् च। आविद्धे स्यूते रागः साध्वसम् भयम् च यस्मिन् कर्मणि तत् यथा स्यात् तथा। लक्ष्यसुप्तः सुप्तः इव। उत्कम्पिना उत्कम्पनशीलेन। रोमोद्भेदवता रोमाञ्चयुक्तेन। वामपार्श्वेन (उपलक्षणे तृतीया)। सुखायमानेन सुखम् अनुभवता। मन्दमन्दम् यथा स्यात् तथा जृम्भिकानाम् जृम्भानाम् आरम्भेण मन्थरम् अलसम् अङ्गम् यस्याः सा। त्वङ्गत् चलत् अग्रपक्ष्म पक्ष्माग्रम् ययोः तयोः। अलसे मन्दे तान्ते क्लान्ते तारके कनीनिके यस्य तेन। अनतिपक्वा अपूर्णा या निद्रा तया कषायितः लोहितः अपाङ्गयोः नेत्रप्रान्तयोः परभागः गुणोत्कर्षः

हुआ नहीं है और शिष्ट-मर्यादा का उल्लंघन न करने वाले चित्त के (वाले) मेरी असक्ति है।[3] अगर असक्ति के अनुरूप इसका आलिङ्गन किया गया तो स्पष्ट है कि आर्त्तनाद के हो साथ निद्रा त्यागेगी और इसे बिना गले लगाये लेट न सकूँगा, इसलिये जो होना है, वह हो, इस विषय में भाग्य को परीक्षा करूँगा। यह सोचकर कुछ छूकर और कुछ न छूकर (हटकर) ही अवर्णनीय रूप से अनुराग और भय से लिप्त होकर सोया-सा बन गया। वह भी अवर्णनीय रूप से सुख का अनुभव कर रही जोर से काँप रही और रोमांच-युक्त बाँयीं बगल लेकर धीमी-धीमी जँभाई के आरम्भ से आलस्य-युक्त शरीर वाली होकर हिल रहे बरौनियों के अग्रभाग वाले नेत्रों के आलस्य-युक्त और थकी पुतलियों वाले और अधूरी नींद से लाल

---

१. उत्कम्पिता। २. कषायदर्शितरागोपाङ्गपरभागेण।

३. वक्ता को इतना आत्म-विश्वास है कि जब मैंने कभी अधर्म नहीं किया है तब मेरा चित्त ऐसी नारी के प्रति असक्त हो ही नहीं सकता जिसका वरण धर्म-विरुद्ध होगा। "अभिज्ञान-शाकुन्तल" में दुष्यन्त ने भी बिल्कुल इसी आशय की बात कही है:—"असंशयं क्षत्र-परिग्रहक्षमा यदार्यमस्यामभिलाषि मे मनः।"

युगलेनेषदुन्मिषन्ती,त्रासविस्मयहर्षरागशङ्काविलास[1]विभ्रमव्यवहितानि व्रीडान्तराणि कानि कान्यपि कामेनाद्भुतानुभावेनावस्थान्तराणि कार्यमाणा, परिजनप्रबोधनोद्यता गिरं कामावेगपरवशं हृदयमङ्गानि च साध्वसायाससंबध्य[2]मानस्वेदपुलकानि कथं कथमपि निगृह्य, सस्पृहेण मधुरकूणितत्रिभागेन मन्दमन्दप्रचारितेन चक्षुषा मदङ्गानि निर्वर्ण्य, दूरोत्सर्पितपूर्वकायापि तस्मिन्नेव शयने सचकितमशयिष्ट। अजनिष्ट मे रागाविष्टचेतसोऽपि किमपि निद्रा। पुनरन-

(गुणोत्कृष्टयोः नेत्रप्रान्तयोः) यस्य तेन। ईषत् अल्पम्। उन्मिषन्ती नेत्रे उन्मीलयन्। अपरिचितपुरुषदर्शनेन त्रासः भयम्, कुतः अयम् आगतः इति विस्मयः, अङ्गसङ्गसुखेन रागः अनुरागः किमयं करिष्यति इति शङ्का, विलासः प्रियप्राप्तौ अङ्गचेष्टाविशेषः, विभ्रमः अस्रस्तम् अपि वस्त्रम् भूषणम् वा स्रस्तमिति प्रदर्श्य उचितस्थाने स्थापनाभिनयः ('अस्थाने भूषणादीनां विन्यासो विभ्रमो मतः' इति) तैः व्यवहितानि विरलीकृतानि। व्रीडा लज्जा अन्तरा मध्ये येषाम् तानि। कानि कानि सर्वथा अनिर्वचनीयानि। अद्भुतः विचित्रः अनुभावः प्रभावः यस्य तेन। अन्याः विभिन्नाः अवस्थाः दशाः अवस्थान्तराणि। कार्यमाणा अनुभाव्यमाना। परिजनानाम् दासीनाम् प्रबोधनाय जागरणाय उद्यता प्रस्तुता। गिरम् वाणीम्। कामस्य आवेगः आवेशः तेन परवशम् विवशम्। साध्वसम् भयम् आयासः खेदः ताभ्याम् संबध्यमानानि स्वेदपुलकानि घर्मजलरोमहर्षणे यत्र। कथं कथमपि कष्टेन। निगृह्य निरुध्य। सस्पृहेण सतृष्णेन। मधुरम् यथा स्यात् तथा कूणितः सङ्कुचितः त्रिभागः प्रान्तः यस्य तेन। मन्दमन्दम् ईषत् प्रचारितेन संचारितेन। मम अङ्गानि अवयवान्। निर्वर्ण्य दृष्ट्वा। दूरम् अधिकम् उत्सर्पितः ऊर्ध्वीकृतः पूर्वकायः कायस्य देहस्य पूर्वभागः यया सा। शयने शय्यायाम्। सचकितम् सभयम्। अशयिष्ट शयिता। अजनिष्ट जाता। मे मम (प्रमतेः)। रागेण अनुरागेण आविष्टम् ग्रस्तम् चेतः मनः यस्य तस्य। किमपि अनिर्वाच्यम् अनुकूलः अप्रियः यः स्पर्शः तेन दुःखायत्तम्

गुणोत्कृष्ट (नेत्र-) कोनों वाले युगल से जरा देखती हुई, डर, आश्चर्य, आनन्द, अनुराग, आशङ्का, विलास और विभ्रम से टूटते क्रम वाली, बीच-बीच में लज्जा से युक्त, एक से एक अवर्णनीय दशाओं का अद्भुत प्रभाव वाले कामदेव के द्वारा कराया गया अनुभव पाती हुई नौकरों-चाकरों को जगाने के लिये तत्पर होकर वाणी, काम के आवेश के अधीन हुये हृद और भय तथा खेद के द्वारा जिनमें पसीना और रोमांच लाया जा रहा है उन अङ्गों को बहुत कठिनाई से रोककर सतृष्ण प्यारे ढंग से संकुचित किये हुये कोने वाले धीरे-धीरे हिलाये जा रहे नेत्र से मेरे अङ्गों को निहारकर शरीर का ऊपरी भाग खूब ऊपर कर उसी शय्या पर डरी-डरी लेटी रही। यद्यपि मेरा चित्त अनुराग के आवेश में था, फिर भी नींद

---

[1] विन्यास। [2] संवर्ध्यमान।

नुकूलस्पर्शदुःखायत्त[1]गात्रः प्राबुध्ये । प्रबुद्धस्य च सैव मे महाटवी, तदेव तरुतलम्, स एव पत्रास्तरः ममाभूत् । विभावरी च व्यभासीत्[2] । अभूच्च मे मनसि 'किमयं स्वप्नः ? किं विप्रलम्भो वा ? किमियमासुरी दैवी वा कापि माया ? यद्भावि तद्भवतु । नाहमिदं तत्त्वतो नाव[3]बुध्य मोक्ष्यामि भूमिशय्याम् । यावदायुरत्रत्यायै देवतायै प्रति[4]शयितो भवामि' इति निश्चितमतिरतिष्ठम् ।

अथाविर्भूय कापि रविकराभितप्तकुवलयदामतान्ताङ्गयष्टिः, [5]क्लिष्टनिवसनोत्तरीया, निरलक्तकरूक्षपाटलेन निःश्वासोष्मजर्जरितत्विषा दन्तच्छदेन वमन्तीव कपिलधूमधूम्रं विरहानलम्, अनवरतसलिलधाराविसर्जनाद्रुधिरावशेषमिव

दुःखाधीनम् गात्रम् शरीरम् यस्य सः । प्राबुध्ये जागरितः । मे मम (प्रमतेः) । पत्राणाम् आस्तरः शय्या । विभावरी रात्रिः व्यभासीत् विभाता (प्रभाता) । अभूत् अभवत् । विप्रलम्भः प्रतारणम् । असुरस्य इयम् आसुरी । देवस्य इयम् दैवी । अहम् (प्रमतिः) । तत्त्वतः सत्यत्वेन । नावबुध्य अज्ञात्वा । मोक्ष्यामि त्यक्ष्यामि । यावदायुः यावज्जीवनम् । अत्रत्यायै वनस्थितायै । प्रतिशयितः कृतशय्यः । निश्चितमतिः स्थिरबुद्धिः ।

अथ तदनन्तरम् । आविर्भूय प्रकटीभूय । काऽपि एका । रवेः सूर्यस्य करैः किरणैः अभितप्तम् यत् कुवलयानाम् नीलकमलानाम् दाम माला तद्वत् तान्ता क्लान्ता अङ्गयष्टिः देहलता यस्याः सा । क्लिष्टम् जीर्णम् निवसनभूतम् परिधानभूतम् उत्तरीयम् ऊर्ध्ववस्त्रम् यस्याः सा । निरलक्तकः अलक्तकरागरहितः अतः रूक्षः शुष्कः पाटलः स्वभावलोहितः च तेन । निःश्वासानाम् ऊष्मणा तापेन जर्जरिता म्लाना त्विट् कान्तिः यस्य तेन । दन्तच्छदेन ओष्ठेन । वमन्ती उद्गिरन्ती (त्यजन्ती) । कपिलः पिङ्गलः यः धूमः तेन धूम्रम् आरक्तश्यामम् । अनवरतम् सततम् यत् सलिलधारायाः जलधारायाः विसर्जनम् त्यागः तस्मात् रुधिरावशेषम् रक्तमात्रशेषम् लोहिततरम्

अवर्णनीय रूप से आ गई । फिर मेरा शरीर अप्रिय स्पर्श से दुःख के अधीन हो गया और मैं जाग गया । जागने पर मेरे सामने वही बड़ा जंगल, वही पेड़ का तल और वही पत्तों का विस्तर हो गया । फिर रात सवेरे में बदल गई । मेरे मन में आया—'(क्या) यह सपना है अथवा (क्या) यह धोखा है अथवा (क्या) यह कोई आसुरी या दैवी माया है । जो होना है, वह हो । मैं इसे सही-सही जाने बिना भूमि-शय्या नहीं छोड़ूँगा । जीवन भर यहाँ के देवता के (दर्शन के) लिये धरना देकर बैठा रहूँगा ।' इस प्रकार पक्का इरादा कर पड़ा रहा ।

इसके बाद एक सुन्दरी नारी प्रगट हुई । उसकी छड़ी के समान काया सूर्य-किरणों से खूब तपी नील-कमलों की माला के समान मुर्झायी हुई थी । उसके पहनने का ऊपरी वस्त्र गन्दा था । वह आलता-रहित, रूखे, गुलाबी तथा निःश्वास की गर्मी से म्लान कान्ति वाले ओंठ के द्वारा भूरे धुयें से कुछ लाल और काले रंग की वियोग-अग्नि उगल-सी रही थी । उसके विशेष लाल नेत्र-युगल में लगातार जल-धारा छोड़ने से रक्त-मात्र शेष प्रतीत होता

---

१. दुःखायमान । २. व्ययासीत् । ३. अनवबुध्य । ४. प्रतिशयितोऽस्मि । ५ क्लिन्न ।

लोहिततरं द्वितयमक्ष्णोरुद्वहन्ती, कुलचारित्रबन्धनपाशविभ्रमेणैकवेणीभूतेन केश[1]पाशेन नीलांशुक[2]चीरचूडिकापरिवृता पतिव्रतापताकेव सचरन्ती, क्षामक्षामापि देवतानुभावादनतिक्षीणवर्णावकाशा सीमन्तिनी, प्रणिपतन्तं मां प्रहर्षोत्कम्पितेन भुजलताद्वयेनोत्थाप्य पुत्रवत्परिष्वज्य शिरस्युपाघ्राय वात्सल्यमिव स्तन[3]युगलेन स्तन्यच्छलात्प्रक्षरन्ती, शिशिरेणाश्रुणा निरुद्धकण्ठी स्नेह[4]गद्गदं व्याहार्षीत्—'वत्स [5]यदि वः कथितवती मगधराजमहिषी वसुमती मम हस्ते बालमर्थपालं निधाय[6]कथां च कांचिदात्मभर्तृपुत्रसखीजनानुबद्धां[7]राजराजप्रवर्तितां कृत्वान्तर्धानमगादात्मजा मणिभद्रस्येति, साहमस्मि वो जननी। पितुर्वो धर्म-

रक्ततरम्। द्वितयम् युगलम्। अक्ष्णोः नेत्रयोः। उद्वहन्ती धारयन्ती। कुलम् वंशमर्यादा चारित्रम् चरित्रम् तयोः बन्धनाय पाशस्य रज्ज्वाः विभ्रमः विलासः इव विभ्रमः यस्य तेन। एकवेणीभूतेन एकवेण्याकारेण। केशपाशेन मूर्धजकलापेन (उपलक्षिता)। नीलम् कृष्णम् च तत् अंशुकचीरम् वस्त्रखण्डम् च तन्निर्मिता या चूडिका कूर्पासः तया परिवृता आवृता। पतिव्रतायाः पताका वैजयन्ती। सञ्चरन्ती भ्रमन्ती। क्षामक्षामा अतिक्षीणा। देवतानुभावात् देवताप्रभावात्। अनतिक्षीणः अनत्यल्पः वर्णावकाशः वर्णोज्ज्वलता यस्याः सा। सीमन्तिनी सुन्दरी। प्रणिपतन्तम् नमस्कारम् कुर्वन्तम्। माम् (प्रमतिम्) प्रहर्षेण अत्यानन्देन उत्कम्पितेन उच्चैः वेपमानेन। परिष्वज्य आलिङ्ग्य। वात्सल्यम् पुत्रस्नेहम्। स्तन्यस्य दुग्धस्य छलात् कपटात्। प्रक्षरन्ती स्रवन्ती। शिशिरेण शीतलेन। निरुद्धः स्तब्धः कण्ठः गलः यस्याः सा। स्नेहेन गद्गदम् स्खलत्। व्याहार्षीत् अवदत्। वत्स पुत्र। वः युष्मान्। मगधराजस्य महिषी राज्ञी। ('कृताभिषेका महिषी' इति अमरः) मम (वसुमत्याः)। निधाय स्थापयित्वा। आत्मनः स्वस्य च भर्त्रा पत्या (कामपालेन) च पुत्रेण (अर्थपालेन) च सखीजनेन कान्तिमत्यादिकेन च अनुबद्धाम् सम्बद्धाम्। राजराजेन कुबेरेण प्रवर्तिताम् प्रोक्ताम्। कृत्वा उक्त्वा। अन्तर्धानम् तिरोधानम्। अगात् प्राप्नोत्। आत्मजा पुत्री। मणिभद्रस्य मणिभद्रनाम्नः (यक्षस्य) (तर्हि

था। वंश और चरित्र के बन्धन की फाँस के विलास वाला एक चोटी के रूप में स्थित केशकलाप धारण कर रही थी। नीले कपड़े के टुकड़े से बनी चूड़िका (पूरे शरीर को ढकने वाला एकमात्र कपड़ा) से ढकी हुई पतिव्रता की वैजयन्ती सी संचार कर रही थी। अत्यन्त दुबली होने पर भी देवता के प्रभाव से उसकी वर्ण-उज्ज्वलता विशेष कम नहीं हुई थी। मैंने प्रणाम किया तो उसने अत्यन्त आनन्द से जोर से काँप रही लता-तुल्य दोनो बाँहों से उठाकर बेटे के समान छाती से लगाकर सिर सूँघकर दोनो स्तनों से दूध के बहाने वत्सलता टपकाती सी शीतल आँसू से रुँधा गला लेकर स्नेह से गद्गद होकर कहा—'अगर मगधनरेश की रानी वसुमती ने तुमसे बताया है कि मणिभद्र की पुत्री मेरे हाथ में बालक अर्थपाल को रखकर अपने पति, पुत्र और सहेलियों से सम्बद्ध कुबेर द्वारा बताई गई कथा कहकर अन्त-

---

[1] कलापेन। [2] अंशुकरचितचीरचूलिका। [3] मुखेन। [4] गर्भम्।
[5] यद्। [6] परिदाय। [7] अनुविद्धाम्।

पालसूनोः सुमन्त्रानुजस्य कामपालस्य पादमूलान्निष्कारणकोपकलुषिताशया प्रोष्यानुशयविधुरा स्वप्ने केनापि रक्षोरूपेणोपेत्य शप्तास्मि—'चण्डिकायां त्वयि वर्षमात्रं वसामि प्रवासदुःखाय' इति ब्रुवतैवाहमाविष्टा प्राबुध्ये । गतं च तद्वर्षं वर्षसहस्रदीर्घम् । अतीतायां तु यामिन्यां देवदेवस्य त्र्यम्बकस्य श्रावस्त्यामुत्सवसमाजमनुभूय बन्धुजनं च स्थानस्थानेभ्यः[1]संनिपातितमभिसमीक्ष्य मुक्त-

जानीहि)। अहम् (तारावली) । वः युष्माकम् (तव) । [2]जननी (मित्रजननीत्वात्)। वः युष्माकम् (तव)। धर्मपालस्य सूनोः पुत्रस्य । सुमित्रस्य अनुजस्य । निष्कारणम् यथा स्यात् तथा कोपेन क्रोधेन कलुषितः विकृतः आशयः मनः यस्याः सा । प्रोष्य प्रवासम् कृत्वा । अनुशयेन पश्चात्तापेन विधुरा पीडिता । रक्षोरूपेण राक्षसाकृत्या । उपेत्य आगत्य । चण्डिकायाम् क्रोधनायाम् । त्वयि (तारावल्याम्) वर्षमात्रम् वर्षम् (यावत्) एव । प्रवासस्य दूरदेशवासस्य दुःखाय दुःखम् दातुम् । ब्रुवता वदता । अहम् (तारावली) आविष्टा आवेशम् प्राप्ता । प्राबुध्ये जागरिता । गतम् व्यतीतम् । वर्षाणाम् सहस्रम् तद्वत् दीर्घम् आयतम् । अतीतायाम् व्यतीतायाम् । यामिन्याम् रात्रौ । देवानाम् देवस्य । त्र्यम्बकस्य महादेवस्य । श्रावस्ती नाम नगरी तस्याम् । उत्सवसमाजम् उत्सवगोष्ठीम् । अनुभूय उपभुज्य । स्थानस्थानेभ्यः नानादेशेभ्यः । संनिपतितम् समवेतम् । अभिसमीक्ष्य दृष्ट्वा । मुक्तः नष्टः शापः यस्याः सा । पत्युः (कामपालस्य)

र्धान हो गई थी तो (तुम्हें विदित हो कि) वह तुम्हारी माँ मैं हूँ । तुम्हारे [3]पिता, पुत्र और सुमित्र-अनुज कामपाल के चरणों से, अकारण उत्पन्न क्रोध से मलिन मन लेकर दूर हो गई थी और पश्चात्ताप से दुःखी थी । सपने में एक राक्षस-आकृति ने आकर शाप दे दिया—'परदेश-वास का दुःख देने के लिये क्रोधी स्वभाव वाली तुझमें वर्ष भर रहूँगा' यह कहते हुए उसके द्वारा ग्रसी गयी जाग गई । फिर वह एक हजार साल जितना लम्बा साल बीता । पिछली रात में 'देवताओं के भी देवता महादेव के श्रावस्ती में उत्सव के लिए जुटनेवाले मेले का आनन्द लेकर जगह-जगह से इकट्ठे हुए बन्धु-बान्धवों को देखकर शाप से छूटी हुई

---

[1] समापतितम् ।

[2] तारावली पूर्व जन्म में आर्यदासी थी । तब उससे अर्थपाल (पूर्व जन्म में , पैदा हुआ था । तब उसका क्या नाम था, यह नहीं आया है । वह (अर्थपाल) इस जन्म में तारावली की सौत कान्तिमती के गर्भ से पैदा हुआ । यों पूर्व जन्म तथा इस जन्म के सम्बन्ध से तारावली, अर्थपाल की माँ है । प्रमति, अर्थपाल का मित्र है, अतः तारावली उसे पुत्र ही कहती है । विलसन ने यह तत्त्व न समझकर लेखक की त्रुटि माना है । भूषणा और बालविबोधिनी व्याख्या में कामपाल को प्रमति का चाचा कहा गया है । यह सम्बन्ध भी ठीक नहीं है, क्योंकि कामपाल प्रमति के पितामह सितवर्मा के सहयोगी (मंत्री) धर्मपाल का पुत्र है । प्रमति के चाचा का नाम सत्यवर्मा है ।

[3] प्रमति के मित्र अर्थपाल के पिता कामपाल हैं । मित्र-पिता के नाते प्रमति के भी पिता हुये ।

शापा पत्युः पार्श्वमभिसरामीति प्रस्थितायामेव मयि, त्वमत्राभ्युपेत्य 'प्रतिपन्नोऽस्मि[1] शरणमिहत्यां देवताम्' इति प्रसुप्तोऽसि। एवं शापदुःखाविष्टया तु मया तदा न तत्त्वतः परिच्छिन्नो भवान्। अपि तु शरणागत[2]मविरलप्रमादायामस्यां महाटव्यामयुक्तं परित्यज्य गन्तुमिति मया त्वमपि स्वपन्नेवासि नीतः। प्रत्यासन्ने च तस्मिन्देवगृहे पुनरचिन्तयम्—'कथमिह तरुणेनानेन सह समाजं गमिष्यामि' इति। अथ राज्ञः श्रावस्तीश्वरस्य यथार्थनाम्नो धर्मवर्धनस्य कन्यां नवमालिकां घर्मकालसुभगे कन्यापुरविमानहर्म्यतले विशालकोमलतलं शय्या-

पार्श्वम् निकटम्। अभिसरामि गच्छामि। प्रस्थितायाम् प्रचलितायाम्। मयि (तारावल्याम्) त्वम् (प्रमतिः)। अत्र (वने)। अभ्युपेत्य प्राप्य। प्रपन्नः प्राप्तः। इहत्याम् अत्रत्याम्। एवम् पूर्वोक्तप्रकारेण। शापः एव दुःखम् तेन आविष्टया ग्रस्तया। मया (तारावल्या) तदा (तव प्रार्थनाकाले)। तत्त्वतः यथार्थतः। परिच्छिन्नः ज्ञातः। अपि तु किंतु। अविरलाः निरन्तराः प्रमादाः विपत्तयः यत्र तस्याम्। महाटव्याम् विशालवने। अयुक्तम् अनुचितम्। परित्यज्य त्यक्त्वा। मया (तारावल्या) त्वम् (प्रमतिः)। प्रत्यासन्ने समीपवर्तिनि (सति)। देवगृहे शिवमन्दिरे। कथम् केन प्रकारेण। इह अत्र। तरुणेन युवकेन। समाजम् सधर्मिणाम् समूहम्। अथ तत्पश्चात्। राज्ञः नृपस्य। श्रावस्त्याः तन्नाम्न्याः नगर्याः ईश्वरस्य स्वामिनः। यथार्थम् अन्वर्थम् नाम यस्य तस्य। धर्मवर्धनस्य धर्मवर्धननाम्नः। नवमालिकाम् नवमालिकानाम्नीम्। घर्मकाले ग्रीष्मर्तौ सुभगे सुखदे। कन्यापुरस्य कन्यान्तःपुरस्य विमानम् सप्ततलगृहम् तस्य हर्म्यतले कुट्टिमे। शय्यातलम् शयनम् (अधिशीङ्स्थासां कर्म इति द्वितीया)। अधिशयानाम्

मैं पति के पास पहुँचूँगी' यह सोचकर मैं रवाना हुई ही थी कि तुम यहाँ पहुँचकर 'यहाँ के देवता की शरण में आया हूँ' यह कहकर गहरी नींद में सो गये। उक्त प्रकार से शाप के दुःख से ग्रस्त मैंने उस समय तुम्हें ठीक-ठीक नहीं जाना था, 'किन्तु शरणागत को लगातार उपद्रवों वाले इस घोर जंगल में छोड़कर जाना अनुचित है' यह सोचकर मैं सोती अवस्था में ही तुम्हें ले गई। उस देव-मन्दिर के पास आने पर मैंने फिर सोचा—'यहाँ मेले में इस नवयुवक के साथ कैसे जाऊँगी'? इसके बाद श्रावस्ती[3]के स्वामी यथार्थ नाम वाले राजा धर्मवर्धन की पुत्री नवमालिका को कुमारी अन्तःपुर के सातमंजिले महल की गर्मी की ऋतु में सुहावनी

---

१. प्रतिपन्नः। २. अविरत।

३. श्रावस्ती—प्राचीन नगरी जो लव की राजधानी थी। तब इसका नाम शरावती (रघुवंश १५।९७) था। बुद्ध के समय इसका नाम सवत्थिपुर पड़ा और आज यह सहेत महल कहलाती है। बुद्ध यहाँ २५ वर्ष रहे थे। यह उत्तर कोसल प्रदेश की राजधानी रह चुकी है। यह अयोध्या से उत्तर ९३ किलोमीटर की दूरी पर इरावती नदी के दक्षिणी किनारे पर है।

तलमधिशयानां यदृच्छयोपलभ्य 'दिष्ट्येयं सुप्ता, परिजनश्च [1]गाढनिद्रः। शेतामयमत्र मुहूर्तमात्रं ब्राह्मणकुमारो यावत्कृतकृत्या निवर्तेय' इति त्वां [2]तत्र शाययित्वा तमुद्देशमगमम्। दृष्ट्वा चोत्सवश्रियम्, निर्विश्य च स्वजनदर्शनसुखमभिवाद्य च त्रिभुवनेश्वरमात्मालीकप्रत्याकलनोपारूढसाध्वसं च नमस्कृत्य भक्तिप्रणतहृदयां भगवतीमम्बिकाम्, तया गिरिदुहित्रा देव्या सस्मितम् 'अयि भद्रे मा भैषीः। भवेदानीं भर्तृपार्श्वगामिनी। गतस्ते शापः' इत्यनुगृहीता सद्य एव प्रत्यापन्नमहिमा प्रतिनिवृत्य दृष्ट्वैव त्वां यथावदभ्यजानाम्—'कथं मत्सुत एवायं वत्सस्यार्थपालस्य प्राणभूतः सखा प्रमतिरिति पापया मयास्मिन्नज्ञानादौ-

शयिताम्। यदृच्छया दैवयोगेन। उपलभ्य प्राप्य। दिष्ट्या अदृष्टेन। इयम् (नवमालिका)। परिजनः भृत्यवर्गः। गाढा सान्द्रा निद्रा यस्य सः। शेताम् शयनम् करोतु। अयम् (प्रमतिः)। अत्र (हर्म्यतले)। मुहूर्तमात्रम् क्षणम् यावत्। कृतम् कृत्यम् कार्यम् यया सा। निवर्तेय आगच्छेयम्। इति (चिन्तयित्वा)। त्वाम् (प्रमतिम्)। तत्र (हर्म्यतले)। उद्देशम् स्थानम् (देवमन्दिरम्)। अगमम् अगच्छम्। उत्सवस्य श्रियम् शोभाम्। निर्विश्य उपभुज्य। अभिवाद्य प्रणम्य। त्रिभुवनस्य त्रिलोक्याः ईश्वरम् स्वामिनम् (शिवम्)। आत्मनः स्वस्य अलीकम् अपराधः ('अलीकमपराधः स्यादसत्याप्रिययोरपि' इति सज्जनः)। तस्य प्रत्याकलनम् ज्ञानम् तेन उपारूढम् जातम् साध्वसम् भयम् यत् तत् यथा स्यात् तथा। नमस्कृत्य नत्वा। भक्त्या प्रणतम् नतम् हृदयम् यस्याः सा। अम्बिकाम् पार्वतीम्। गिरेः हिमालयस्य दुहित्रा पुत्र्या। सस्मितम् विहासेन सह। अयि (कोमलामन्त्रणे)। भद्रे कल्याणि। मा न। भैषीः भयम् प्राप्नुहि। इदानीम् अधुना। गतः समाप्तः। अनुगृहीता कृपाविषयीकृता। सद्यः शीघ्रम्। प्रत्यापन्नः पुनः प्राप्तः महिमा प्रभावः यया सा। प्रतिनिवृत्य उपागत्य। त्वाम् (प्रमतिम्)। यथावत् यथार्थतः। अभ्यजानाम् ज्ञातवती। कथम् किम् (अहो) मम (तारावल्याः)। सुतः पुत्रः। वत्सस्य पुत्रस्य। प्राणभूतः प्राणः एव। सखा मित्रम्। पापया पापिन्या। मया (तारा-

फर्श पर विस्तृत और मुलायम सेज पर दैवयोग से लेटी हुई पाकर 'भाग्य से यह सोई है और नौकर-चाकर गहरी नींद में मग्न हैं। यहाँ यह ब्राह्मण-बालक घड़ी भर लेटे; इस बीच कार्य पूरा कर लौट आऊँ' यह सोचकर तुम्हें वहाँ लिटाकर उस जगह गई। फिर मैंने उत्सव की शोभा देखकर आत्मीय लोगों के दर्शन का सुख भोगकर त्रिलोकी पति (शिव) को प्रणाम कर अपने अपराध के ज्ञान से भयभीत होकर भक्ति में झुका हुआ हृदय लेकर भगवती पार्वती को प्रणाम किया। उन देवी पर्वत-कन्या ने मुस्कराकर 'अरी कल्याणी, मत डरो। अब पति के पास जाने की तैयारी करो; तुम्हारा शाप गया' यह कहकर अनुग्रह किया। तत्काल ही मेरा पुराना प्रभाव मुझे फिर मिल गया। लौटकर मैंने देखते ही तुम्हें ठीक-ठीक पहचान लिया और 'अरे !

---

१. गाढसुप्तः। २. अमुत्र।

दासीन्यमाचरितम् । अपि चायमस्यामासक्तभावः । कन्या चैनं कामयते युवानम् । उभौ चेमौ लक्ष्यसुप्तौ त्रपया साध्वसेन वान्योन्यमात्मानं न विवृण्वाते । गन्तव्यं च मया । कामाघ्रातयाप्यनया कन्यया [1]रहस्यरक्षणाय न समाभाषितः सखीजनः परिजनो वा । नयामि तावत्कुमारम् । पुनरपीममर्थं [2]लब्धलक्षो यथोपपन्नैरुपायैः साधयिष्यति' इति मत्प्रभावप्रस्वापितं भवन्तमेतदेव पत्त्रशयनं प्रत्यनैषम् । एवमिदं वृत्तम् । 'एषा चाहं पितुस्ते पादमूलं प्रत्युपसर्पेयम्' इति प्राञ्जलिं मां भूयो भूयः परिष्वज्य शिरस्युपाघ्राय कपोलयोश्चुम्बित्वा स्नेहविह्वला गतासीत् ।

वल्या)। अस्मिन् प्रमतौ । उदासीनस्य भावः औदासीन्यम् (उपेक्षा)। आचरितम् कृतम् । अयम् (प्रमतिः)। अस्याम् (नवमालिकायाम्)। आसक्तः अनुरक्तः भावः हृदयम् यस्य सः । एनम् (प्रमतिम्)। कामयते अभिलषति । युवानम् तरुणम् । उभौ द्वौ अपि । इमौ (प्रमतिः च नवमालिका च)। लक्ष्यसुप्तौ अलीकनिद्रायुक्तौ । त्रपया लज्जया । साध्वसेन भयेन । अन्योन्यम् परस्परम् । आत्मानम् स्वम् । विवृण्वाते प्रकटयतः। गमनीयम् गन्तव्यम् । मया (तारावल्या) कामाघ्रातया कामस्पृष्टया । अनया (नवमालिकया)। समाभाषितः कथितः । कुमारम् बालकम् । इमम् अनुरागरूपम् । अर्थम् विषयम् । लब्धलक्षः प्राप्तावसरः । यथोपपन्नैः युक्तियुक्तैः । मम प्रभावेण महिम्ना प्रस्वापितम् निद्रामग्नीकृतम् । भवन्तम् (प्रमतिम्)। एतत् प्रस्तुतम् । पत्त्रशयनम् पर्णशय्याम् । प्रत्यनैषम् पुनः अनयम् । एवम् पूर्वोक्तप्रकारेण । इदम् (घटना)। वृत्तम् घटितम् । अहम् (तारावली)। पितुः (कामपालस्य)। ते तव । प्रत्युपसर्पेयम् पुनः गच्छेयम् । प्राञ्जलिम् बद्धाञ्जलिम् । माम् (प्रमतिम्)। भूयो भूयः पुनः पुनः । परिष्वज्य आलिङ्ग्य । स्नेहेन वात्सल्येन विह्वला आविष्टा ।

प्रमति ! यह तो पुत्र अर्थपाल का प्राण-स्वरूप मित्र (होने से) मेरा पुत्र ही है । मुझ पापिन ने अज्ञान वश इसकी उपेक्षा की । इसके अलावा इसका हृदय इस कन्या के प्रति आसक्त है और यह (कन्या) इस युवक को चाहती है । ये दोनो सोये बने हैं और लज्जा या भय से एक दूसरे के प्रति अपने को नहीं खोल रहे हैं । मुझे जाना भी है । काम से जकड़ ली गई होने पर भी इस कन्या ने रहस्य छिपाने के लिए सखियों तथा सेवकों से नहीं बताया है । अच्छा; बालक को ले चलूँ । अवसर पाकर यथोचित उपायों से यह फिर इस उद्देश्य की सिद्धि कर लेगी' यह सोचकर अपने प्रभाव से गहरी नींद में मग्न किये गये तुम्हें इसी पत्तों की सेज पर दुबारा ले आई । इस प्रकार यह घटना घटित हुई । 'अब तुम्हारे पिता जी के चरणों में फिर से पहुँच रही हूँ' यह कहा । मैंने हाथ जोड़े । मुझे बार-बार सीने से लगाकर, मेरा सिर सूँघकर और दोनो गाल चूमकर स्नेह-विभोर होती हुई चली गई ।

---

[1] गुह्य० । [2] लब्धक्षणः; लब्धलक्षणः ।

अहं च पञ्चबाणवश्यः श्रावस्तीमभ्यवर्तिषि । मार्गे च महति निगमे नैगमानां ताम्रचूडयुद्धकोलाहलो महानासीत् । अहं च तत्र संनिहितः किंचिदस्मेषि । संनिधिनिषण्णस्तु मे वृद्धविटः कोऽपि ब्राह्मणः शनकैः स्मितहेतुमपृच्छत् । अब्रवं च—'कथमिव नारिकेलजातेः प्राच्यवाटकुक्कुटस्य प्रतीच्य[१]वाटः पुरुषैरसमीक्ष्य बलाकाजातिस्ताम्रचूडो बलप्रमाणाधिकस्यैव प्रतिविसृष्टः' इति । सोऽपि तज्ज्ञः 'किमज्ञैरेभिर्व्युत्पादितैः । तूष्णीमास्स्व' इत्युपहस्तिकायास्ताम्बूलं कर्पूरसहितमुद्धृत्य मह्यं दत्त्वा चित्राः कथाः कथयन्क्षणमतिष्ठत् । प्रायुध्यत चातिसंरब्धमनुप्रहारप्रवृत्तस्वपक्षमुक्तकण्ठीरवरव विहङ्गमद्वयम् । जितश्चासौ प्रतीच्य-

अहम् (प्रमतिः) । पञ्चबाणस्य कामस्य वश्यः वशीभूतः । अभ्यवर्तिषि तदभिमुखम् अगच्छम् । निगमे वणिक्पथे ('निगमः पुरे । वेदे वणिक्पथे मार्गे' इति महीपः) । निगमे भवाः नैगमाः वणिजः तेषाम् ('नैगमो वाणिजो वणिक्' इति अमरः) । ताम्रचूडानाम् कुक्कुटानाम् युद्धेन कोलाहलः ('कृकवाकुस्ताम्रचूडः कुक्कुटश्चरणायुधः' इति अमरः) । अहम् (प्रमतिः) । तत्र (निगमे) । संनिहितः उपस्थितः । अस्मेषि स्मितम् अकरवम् । संनिधौ समीपे निषण्णः उपविष्टः । मे मम (प्रमतेः) । वृद्धविटः वृद्धधूर्तः । शनैः मन्दम् । स्मितस्य विहसनस्य हेतुम् कारणम् । अब्रवम् अवदम् । प्राच्यवाटकुक्कुटस्य पूर्वश्रेणीकस्य कुक्कुटस्य ('वाटः पुमान् पथि श्रेणौ' इति वररुचिः) प्रतीच्यवाटः पश्चिमश्रेणीकः । असमीक्ष्य अविचार्य । बलाकाजातिः बलाकाजातीयः ('दीर्घग्रीवः सितवपुर्महाप्राणः स्रवन्मदः । बलाका जातिरित्युक्तस्तदन्यो नारिकेलजः ॥' इति वैजयन्ती) । बलेन शक्त्या च प्रमाणेन आकारेण च अधिकस्य महतः प्रतिविसृष्टः युद्धाय प्रेषितः । सः (वृद्धविटः) तज्ज्ञः तद्रहस्यज्ञाता । अज्ञैः मूर्खैः । व्युत्पादितैः व्युत्पादनैः (नपुंसके भावे क्तः) ज्ञानचर्चया । तूष्णीम् मौनम् अवलम्ब्य । आस्स्व तिष्ठ । इति (उक्त्वा) । उपहस्तिकायाः ताम्बूलपेटिकायाः ['पूगाद्यावपनी चर्म (वस्त्र) भस्त्रिका चोपहस्तिका' इति वैजयन्ती] । चित्राः विचित्राः । प्रायुध्यत प्रकर्षेण अयुध्यत । अतिसंरब्धम् अतिकुपितम् । अनु-

इधर मैं कामदेव का वशवर्त्ती होकर श्रावस्ती की ओर सिधारा । राह में सौदागरों के एक बड़े मार्ग (हाट) पर सौदागरों की मुर्गों की लड़ाई से बहुत शोर-गुल हो रहा था । मैं उसमें उपस्थित हुआ और जरा मुस्कराने लगा । मेरे पास में बैठे एक बूढ़े चालाक ब्राह्मण ने धीरे से मुस्कराने का कारण पूछा । मैं बोला—'लोगों ने भला कैसे बिना समझे-बूझे ताकत और कद में निश्चत रूप से बड़े नारिकेल नस्ल के पूर्वी श्रणी के मुर्गे के सामने बलाका नस्ल का पश्चिमी श्रेणी का मुर्गा छोड़ दिया है' । वह भी उस बात का जानकार था । 'इन मूर्खों से ज्ञान की बातें करने से क्या फायदा ! चुप बैठे रहो' यह कहकर पान की थैली से कपूरयुक्त पान निकालकर मुझे देकर आश्चर्य-जनक कहानियाँ कहता हुआ क्षण भर खड़ा रहा । पक्षियों (मुर्गों) का जोड़ा अत्यन्त क्रोध में भरकर टक्कर लेता रहा । जो मुर्गा जवाबी हमले के लिए उद्यत होता था, उसके पक्ष वाले उसके लिए सिंहनाद करते थे । वह पश्चिम श्रेणी

---

[१] वाटपुरुषैः ।

वाटकुक्कुटः। सोऽपि विटब्राह्मणः स्ववाटकुक्कुट[1]विजयहृष्टः मयि वयोविरुद्धं सख्यमुपेत्य तदहरेव स्वगृहे स्नानभोजनादि कारयित्वोत्तरेद्युः श्रावस्तीं प्रति यान्तं मामनुगम्य 'स्मर्तव्योऽस्मि सत्यर्थे' इति मित्रवद्विसृज्य प्रत्ययासीत्।

अहं च गत्वा श्रावस्तीमध्वश्रान्तो बाह्योद्याने लता[2]मण्डपे शयितोऽस्मि। हसकरव[3]प्रबोधितश्चोत्थाय कामपि क्वणितनूपुरमुखराभ्यां चरणाभ्यां मदन्तिकमुपसरन्तीं युवतीमद्राक्षम्। सा त्वागत्य स्वहस्तवर्तिनि चित्रपटे लिखितं मत्सदृशं कमपि[4] पुरुष मां च पर्यायेण निर्वर्णयन्ती सविस्मयं सवितर्कं सहर्षं च क्षणमवातिष्ठत। मयापि तत्र चित्रपटे मत्सादृश्यं पश्यता तद्दृष्टिचेष्टितमनाकस्मिकं

प्रहारे प्रत्याघाते प्रवृत्तः लग्नः यः स्वपक्षः कुक्कुटपक्षः तेन मुक्तः कण्ठीरवरवः सिंहघोषः यस्य तत्। विहङ्गमयोः पक्षिणोः द्वयम् युगलम्। जितः पराजितः। मयि (प्रमतौ) वयसः विरुद्धम् (यतः समवयसोरेव मैत्री भवति) सख्यम् मैत्रीम्। उपेत्य प्राप्य। तदहः तस्मिन् दिने ('कालाध्वनोरत्यन्तसंयोगे' इति द्वितीया)। उत्तरेद्युः परदिने। यान्तम् गच्छन्तम्। अनुगम्य अनुसृत्य। सति पूर्णे। अर्थे कार्ये। विसृज्य परित्यज्य। प्रत्ययासीत् प्रतिनिवृत्तः।

अहम् (प्रमतिः)। अध्वना मार्गेण (मार्गचलनेन) श्रान्तः क्लान्तः हंसकस्य नूपुरस्य रवेण ध्वनिना प्रबोधितः जागरितः। क्वणितेन शब्दायमानेन नूपुरेण मञ्जीरेण मुखराभ्याम् वाचालाभ्याम्। मम प्रमतेः अन्तिकम् समीपे। उपसरन्तीम् आगच्छन्तीम्। अद्राक्षम् अपश्यम्। लिखितम् चित्रितम्। मया सदृशम् तुल्यम्। पुंरूपम् पुरुषाकृतिम्। माम् (प्रमतिम्)। पर्यायेण क्रमेण। निर्वर्णयन्ती निपुणम् पश्यन्ती। सविस्मयम् कथम् असौ एव चित्रपटलिखितः इति विस्मयेन आश्चर्येण सह। सवितर्कम् नूनम् असौ एव अयम् इति वितर्केण विश्वासेन सह। सहर्षम् 'सखीमनोरथः पूर्णः' इति हर्षेण आनन्देन सह। क्षणम् निमेषम् यावत्। अवातिष्ठत स्थिता। मया (प्रमतिना)। मम (प्रमतेः) सादृश्यम् सदृशाकृतिम्। तस्याः (युवत्याः) दृष्टेः नयनयोः चेष्टितम् क्रियाम्। अनाकस्मिकम् सहेतुकम्। ननु (अनुनये)। सर्वसाधारणः सर्वोपभोग्यः।

वाला मुर्गा हार गया। उधर वह सयाना ब्राह्मण अपनी श्रेणी के मुर्गे की जीत से आनन्दित होकर मुझसे उम्र के विरुद्ध दोस्ती करके उस दिन पूरे समय अपने घर ही स्नान भोजन आदि कराकर दूसरे दिन श्रावस्ती जा रहे मेरे पीछे चलकर 'काम हो जाने पर मुझे याद रखना' यह कहकर मित्र की भाँति विदा देकर लौटा।

उधर मैं श्रावस्ती जाकर रास्ता चलने से थककर बाहरी बगीचे के लता-कुंज में लेट गया। नूपुर की आवाज से जागकर उठा और बज रहे नुपुरों से बातूनी चरणों से अपने पास आ रही किसी युवती को देखा। वह आकर अपने हाथ में स्थित चित्र-पट पर चित्रित मेरे-जैसी किसी पुरुषाकृति को और मुझे बारी बारी गौर से देखती हुई विस्मय, विश्वास और आनन्द के साथ क्षण भर खड़ी रह गई। मैंने उस चित्रपट पर अपने सदृश आकृति को देखते

---

१. स्वकुक्कुट। २. मण्डले। ३. हंसरव। ४. कमपि पुरुषम्।

मन्यमानेन 'ननु सर्वसाधारणोऽयं रमणीयः पुण्यारामभूमिभागः। किमिति चिरस्थितिक्लेशोऽनुभूयते। ननूपवेष्टव्यम्' इत्यभिहिता सा सस्मितम् 'अनुगृहीतास्मि' इति न्यषीदत्। संकथा च देश[1]वार्तानुविद्धा काचनावयोरभूत्। कथासंश्रिता च सा 'देशातिथिरसि। दृश्यन्ते च तेऽध्वश्रान्तानीव गात्राणि। यदि न दोषो मद्गृहेऽद्य विश्रमितुमनुग्रहः क्रियताम्' इत्यशंसत्। अहं च 'अयि मुग्धे नैष दोषः, गुण एव' इति तदनुमार्गगामी तद्गृहतो राजार्हेण स्नानभोजनादिनोपचरितः, सुखं निषण्णो रहसि पर्यपृच्छ्ये—'महाभाग दिगन्तराणि भ्रमता कच्चिदस्ति किंचिदद्भुतं भवतोपलब्धम्' इति। ममाभवन्मनसि 'महदिदमाशास्पदम्। एषा खलु निखिलपरिजनसंबाध-

पुण्यारामभूमिभागः पवित्रोपवनप्रदेशः। किमिति केन कारणेन। चिरस्थितिक्लेशः बहुकालोत्थानपीडा। अभिहिता कथिता। सा (युवती)। न्यषीदत् उपाविशत्। संकथा परस्परभाषणम्। देशवार्तानुबद्धा स्थानचर्चासम्बद्धा। आवयोः मम प्रमतेः तस्याः युवत्याः च। कथासंश्रिता चर्चारता। सा (युवती) देशातिथिः अस्मिन् स्थाने आगतः अतिथिः। अध्वना मार्गेण (मार्गचलनेन) श्रान्तानि क्लान्तानि। गात्राणि अङ्गानि। अनुग्रहः कृपा। अशंसत् अवदत्। अहम् (प्रमतिः)। अयि (कोमलामन्त्रणे)। मुग्धे सरले। तदनुमार्गगामी तद्युवत्यनुगामी। राजार्हेण राजोचितेन। उपचरितः सत्कृतः। सुखम् सुखपूर्वकम्। निषण्णः उपविष्टः। रहसि एकान्ते। पर्यपृच्छ्ये पृष्टः अभवम्। महाभाग महाशय। दिगन्तराणि विभिन्नाः दिशः। कच्चित् (प्रश्ने)। अद्भुतम् विचित्रम्। उपलब्धम् प्राप्तम्। मम (प्रमतेः)। अभवत् जातम्। इदम् सख्या उपरि सङ्केतितम्। आशास्पदम् आशाजनकम्। एषा (युवती)। खलु निश्चयेन। निखिलाः सर्वे च ये परिजनाः भृत्यजनाः तेषाम्

हुये 'उसकी दृष्टि की क्रिया आकस्मिक नहीं है' यह मानते हुये उससे 'निवेदन है कि पवित्र उद्यान का रमणीय प्रदेश सबके लिये है। क्यों देर तक खड़ी रहने का कष्ट भोग रही हैं? कृपया बैठ जाँय' यह कहा। इस पर वह मुस्कराकर कृपा-पात्र बनाई गई हूँ' यह कहकर बैठ गई। हम दोनों के बीच स्थान-चर्चा से सम्बद्ध कुछ बात-चीत हुई। बात में लगी उसने कहा कि 'आप इस स्थान के अतिथि हैं और आप के अंग राह चलने से थके-से दिखते हैं। अगर दोष न हो तो मेरे घर में आज विश्राम करने की कृपा की जाय'। तब मैं—'अरी भोली, यह दोष नहीं; गुण ही है' यह कहकर उसके मार्ग का अनुगामी होकर उसके घर पहुँचा। वहाँ राजोचित स्नान-भोजन आदि से मेरी खातिर की गई। जब एकान्त में सुख-पूर्वक बैठा, तब उसने पूछा—'महोदय, भिन्न भिन्न दिशाओं में भ्रमण करते हुये आपको कोई न कोई वैचित्र्य मिला होगा, ऐसी आशा है'। मेरे मन में आया—'यह बात बहुत आशा जनक है। निश्चय ही

---

[1] अनुविद्धा।

संलक्षितायाः सखी राजदारिकायाः । चित्रपटे चास्मिन्नापि तदुपरि विरचितसितवितानं हर्म्यतलम्, तद्गतं च प्रकामविस्तीर्णं शरदभ्रपटलपाण्डुरं शयनम्, तदधिशयिनी च निद्रालीढलोचना ममैवेयं प्रतिकृतिः । अतो नूनमनङ्गेन सापि राजकन्या तावतीं भूमिमारोपिता यस्यामसह्यमदनज्वर[1]व्यथितोन्मादिता सती सखीनिर्बन्धपृष्टविक्रियानिमित्ता चातुर्येणैतद्रूपनिर्माणेनैव समर्थमुत्तरं दत्तवती । रूपसंवादाच्च[2]संशयानया[3]पृष्टो भिन्द्या[4]मस्याः सशयं यथानुभवकथनेन' इति जातनिश्चयोऽब्रवम्—'भद्रे देहि चित्रपटम्' इति । सा त्वर्पितवती मद्धस्ते । पुनस्तमादाय तामपि व्याजसुप्तामुल्लसन्मदनरागविह्वलां वल्लभामेक[5]त्रैवाभिलिख्य

सम्बाधे समूहे संलक्षितायाः दृष्टायाः । राजदारिकायाः राजकुमार्याः । तत् अनुभूतम् । उपरि विरचितम् स्थापितम् सितम् श्वेतम् वितानम् उल्लोचः यस्य तादृशम् । हर्म्यतलम् कुट्टिमम् । तत् गतम् प्राप्तम् । प्रकामम् अत्यन्तम् विस्तीर्णम् आयतम् । शरदि यत् अभ्रम् मेघः तस्य यत् पटलम् तद्वत् पाण्डुरम् शुभ्रम् । शयनम् शय्या । तत् अधिशेते इति तदधिशायिनी । निद्रया आलीढे व्याप्ते लोचने नेत्रे यस्याः सा । मम (प्रमतेः) प्रतिकृतिः चित्रम् । नूनम् निश्चयेन । अनङ्गेन कामेन । तावतीम् तत्परिमाणाम् । भूमिम् मर्यादाम् । आरोपिता स्थापिता । सखीभिः निर्बन्धेन आग्रहेण पृष्टम् विक्रियानिमित्तम् विकारकारणम् यस्याः सा । एतस्य रूपस्य आकृतेः निर्माणेन । समर्थम् उपयुक्तम् । रूपस्य चित्रितस्य पुरुषस्य आकृत्याः संवदात् सादृश्यात् । संशयानया संदिहानया । अनया (युवत्या) । भिन्द्याम् खण्डयेयम् । अस्याः (युवत्याः) संशयम् संदेहम् । यथानुभवस्य यथादृष्टस्य कथनेन । जातः उत्पन्नः निश्चयः यस्य सः । अब्रवम् अवदम् । भद्रे कल्याणि । अर्पितवती दत्तवती । मम (प्रमतेः) हस्ते । तम् (चित्रपटम्) । ताम् (नवमालिकाम्) । व्याजेन कपटेन सुप्ताम् । उल्लसन् वृद्धिम् गच्छन् यः मदनरागः प्रेम तेन विह्वलाम् आकुलाम् । वल्लभाम् प्रियाम् । एकत्र एकस्मिन् स्थाने । अभिलिख्य चित्रयित्वा ईदृशस्य

यह उस राजकुमारी की सहेली है जो सम्पूर्ण सेविकाओं के समूह में मुझे दिखी थी । इस चित्र-पट पर भी वह फर्श है जिसके ऊपर सफेद चँदोवा तना था, उसमें रखी हुई वह सेज है जो अत्यन्त लम्बी-चौड़ी और शरद् ऋतु के मेघ-पटल के समान श्वेत थी और उस पर लेटी हुई यह प्रतिच्छाया मेरी ही है जिसके नेत्र नींद में मग्न हैं । इसलिये निश्चय ही कामदेव के द्वारा वह राजकुमारी भी उतनी ऊँचाई तक पहुँचा दी गई है जिसमें असहनीय काम-ज्वर से पीड़ित उन्मत्त बनाई गई है । परिवर्तन का कारण हठ पूर्वक सखियों के द्वारा पूछा जाने पर उसने चतुरता से इस आकृति की रचना के द्वारा ही उपयुक्त उत्तर दिया है । आकृति के मिलने से संदेह कर रही (कहीं संयोग से मिलता-जुलता दूसरा व्यक्ति न हो) इसके द्वारा पूछा जाने पर अनुभवानुसार कथन से इसका सन्देह काट दूँ' यह सोचते-सोचते मेरे मन में निश्चय उत्पन्न हो गया और मैं बोला—'हे कल्याणी, चित्र-पट दो' । उसने मेरे हाथ में (वह) दे दिया । फिर उसे लेकर एक जगह ही प्रिया का अंकन कर दिया जिसमें वह सोने

---

[1] कामज्वरोन्माथिता । [2] संशयादनया । [3] आपृच्छ्यै । [4] भिन्दानि । [5] तत्रैव ।

'काचिदेवंभूता युवतिरीदृशस्य पुंसः पार्श्वशायिन्यरण्यानीप्रसुप्तेन मयोपलब्धा। किलैष स्वप्नः' इत्यालपं च। हृष्टया तु तया विस्तरतः पृष्टः सर्वमेव वृत्तान्तमकथयम्। असौ च सख्या मन्निमित्तान्यवस्थान्तराण्यवर्णयत्। तदाकर्ण्य च 'यदि तव सख्या मदनुग्रहोन्मुखं मानसम् गमय कानिचिदहानि। कमपि कन्यापुरे निराशङ्कनिवासकरण[1]मुपायमारचय्यागमिष्यामि' इति कथंचिदेनामभ्युपगमय्य गत्वा तदेव खवट वृद्धविटेन समगंसि।

सोऽपि ससंभ्रमं विश्रमय्य तथैव स्नानभोजनादि कारयित्वा रहस्यपृच्छत्—'आर्य कस्य हेतोरचिरेणैव प्रत्यागतोऽसि।' प्रत्यवादिषमेनम्—'स्थान एवाहमार्येणास्मि पृष्टः। श्रूयताम्। अस्ति हि श्रावस्ती नाम नगरी। तस्याः पतिरपर इव धर्मपुत्रो धर्मवर्धनो नाम राजा। तस्य दुहिता, प्रत्यादेश इव श्रियः, प्राणा

चित्रितानुरूपस्य। पुंसः पुरुषस्य। अरण्यान्याम् महारण्ये ('महारण्यमरण्यानी' इति अमरः)। प्रसुप्तेन निद्रितेन। मया (प्रमतिना)। उपलब्धा प्राप्ता। किल (संभावनायाम्)। आलपम् अवदम्। हृष्टया प्रसन्नया। तया (युवत्या)। अहम् (प्रमतिः) निमित्तम् येषाम् तानि मन्निमित्तानि। अवस्थान्तराणि विभिन्नाः अवस्थाः दशाः। तव (युवत्याः)। मयि यः अनुग्रहः कृपा तत्र उन्मुखम् उत्कण्ठितम्। गमय यापय। अहानि दिनानि। निराशङ्कम् निर्भयम् यथा स्यात् तथा निवासः अवस्थितिः तत्करणम् तत्कारकम्। आरचय्य कृत्वा। एनाम् युवतिम्। अभ्युपगमय्य सम्यक् बोधयित्वा। खर्वटम् ग्रामम्। समगंसि संगतः (मिलितः)।

सः वृद्धविटः। ससंभ्रमम् सचकितम्। विश्रमय्य विश्रमम् कारयित्वा। रहसि एकान्ते। आर्य सुजन। कस्य हेतोः केन कारणेन। अचिरेण शीघ्रम्। प्रत्यागतः प्रतिनिवृत्तः। प्रत्यवादिषम् प्रत्यवदम्। एनम् वृद्धविटम्। स्थाने युक्तम्। आर्येण महोदयेन (भवता)। धर्मपुत्रः युधिष्ठिरः। तस्य (धर्मवर्धनस्य)। दुहिता पुत्री। प्रत्यादेशः निरसनम् ('प्रत्याख्यानं निरसनं

का बहाना बनाये हुई थी तथा उठ रहे प्रेम से व्याकुल थी। फिर बोला—कोई इस प्रकार की युवती इस प्रकार के पुरुष की बगल में लेटी हुई बड़े जंगल में गहरी नींद में मग्न मेरे द्वारा देखी गई थी। क्या यह सपना हो सकता है?' वह आनन्दित हो गई और उसने विस्तार से पूछा। मैंने सारा का सारा हाल कह दिया। फिर उसने सखी (राजकुमारी) की उन भिन्न-भिन्न दशाओं का वणन किया जो मेरे कारण हुई थीं। वह बात सुनकर 'अगर तुम्हारी सहेली का मन मेरे ऊपर कृपा करने को प्रवृत्त है तो कुछ दिन बिताओ। कन्या-अन्तःपुर में निर्भय होकर रहने का उपाय रचकर आऊँगा' यह किसी तरह समझा बुझाकर उसी गाँव में पहुँच कर सयाने बूढ़े से मिला।

उधर उसने चकित होकर विश्राम कराया। उसी प्रकार स्नान, भोजन आदि कराकर एकान्त में पूछा—'महोदय, किस कारण जल्दी ही लौट आये?' मैंने उसे उत्तर दिया—'श्रीमान् (आप-) के द्वारा उचित ही पूछा गया है। सुनिये। श्रावस्ती नाम की एक नगरी है। उसके स्वामी दूसरे युधिष्ठिर की भाँति राजा धर्मवर्धन हैं। उनकी नवमालिका नामक कन्या

---

[1] कारणम्।

इव कुसुमधन्वनः, सौकुमार्यविडम्बितनवमालिका, नवमालिका नाम कन्यका। सा मया समापत्तिदृष्टा कामनाराचपङ्क्तिमिव कटाक्षमालां मम मर्मणि व्यकिरत्। तच्छल्योद्धरणाक्षमश्च धन्वन्तरिसदृशस्त्वदृते नेतरोऽस्ति वैद्य इति प्रत्यागतोऽस्मि। तत्प्रसीद कंचिदुपायमा[1]चरितुम्। अयमहं परिवर्तितस्त्रीवेषस्ते कन्या नाम भवेयम्। अनुगतश्च मया त्वमुपगम्य धर्मासनगतं वक्ष्यसि—'ममेयमेकैव दुहिता। जातमात्रायां त्वस्यां जनन्यस्याः संस्थिता। माता च पिता च भूत्वाहमेव व्यवर्धयम्। एतदर्थमेव विद्यामयं शुल्कमर्जितुं गतोऽभूदवन्तिनगरीमुज्जयिनीमस्मद्वैवाह्यकुलजः कोऽपि विप्रदारकः। तस्मै चेयम-

प्रत्यादेशो निराकृतिः' इति अमरः)। कुसुमधन्वनः कामस्य। सौकुमार्येण कोमलतया विडम्बिता उपहसिता नवमालिका नवमालिकानाम्नी लता यया सा। कन्यका कुमारी। समापत्तिदृष्टा यदृच्छाविलोकिता। कामस्य नाराचाः बाणाः तेषाम् पङ्क्तिः ताम्। कटाक्षाणाम् नेत्रप्रान्तानाम् माला समूहः ताम्। मर्मणि जीवस्थाने ('जीवस्थानं भवेन्मर्म' इति हलायुधः)। व्यकिरत् निक्षिप्तवती। तस्य शल्यस्य कीलस्य उद्धरणे निष्कासने क्षमः समर्थः। धन्वन्तरिः देववैद्यः तत्सदृशः तत्तुल्यः। ऋते विना। इतरः अन्यः। प्रत्यागतः पुनः आगतः। आचरितुम् कर्तुम्। अहम् (प्रमतिः)। परिवर्तितः धृतः स्त्रीवेषः नारीरूपम् येन सः। नाम (अलीके)। मया (प्रमतिना)। त्वम् वृद्धविटः। धर्मासनगतं विचारासनम् प्राप्तम्। वक्ष्यसि वदिष्यसि। मम (वृद्धविटस्य)। इयम् (प्रमतिः कन्यावेषधारी)। जातमात्रा जाता एव तस्याम्। संस्थिता मृता। व्यवर्धयम् अपालयम्। विद्यामयम् विद्यारूपम्। शुल्कम् मूल्यम्। अर्जितुम् प्राप्तुम्। अवन्त्याः अवन्तीनाम्नः प्रदेशस्य नगरी। अस्माकम् वैवाह्ये विवाहयोग्ये कुले वंशे जातः। विप्रस्य ब्राह्मणस्य दारकः पुत्रः। तस्मै ब्राह्मणपुत्राय। इयम् (प्रमतिः कन्यावेषधारी)। अनुमता

कुमारी है। वह लक्ष्मी की काट, काम देव के प्राणों के समान और कोमलता से नवमालिका (लता) का उपहास करने वाली है। संयोग से वह मुझे दिखाई दी है। उसने मेरे मर्म-स्थल काम बाणों की पाँत की भाँति कटाक्षों के समूह से भर दिये हैं। तुम्हें छोड़कर अन्य उसकी नोक निकालने में समर्थ धन्वन्तरि[2] के समान वैद्य नहीं है, यह सोचकर लौट आया हूँ। इसलिये कोई तरकीब भिड़ाकर मेरे उपर कृपा करो। मैं औरत का भेष बनाकर तुम्हारी लड़की का स्वाँग[3] रचूँ और तुम्हारे पीछे पीछे चलूँ। जिस समय धर्मवर्धन न्यायाधीश के आसन पर हों, उस समय तुम पहुँचकर कहना—'यह मेरी एक ही लड़की है। इसके पैदा होते ही इसकी माँ मर गई थी। माँ-बाप होकर मैंने ही इसे पाला पोसा है। इसी के लिये विद्यारूपी मूल्य अर्जित करने के लिये एक ब्राह्मण बालक अवन्ति की नगरी उज्जयिनी गया है।

---

१. आरचयितुमर्हसि।

२. देवताओं के वैद्य जो समुद्र-मन्थन के समय निकले १४ रत्नों में से एक हैं। इस नाम के एक वैद्य को विक्रमादित्य के ९ रत्नों में से एक भी माना जाता है।

३. मिलती जुलती कहानी कथासरित्सागर (१२।२२) में भी मिलती है।

नुमता दातुमितरस्मै न योग्या। तरुणीभूता चेयम्। स च विलम्बितः। तेन तमानीय पाणिमस्या ग्राहयित्वा तस्मिन्न्यस्तभारः संन्यसिष्ये। दुरभिरक्षतया तु दुहितॄणां मुक्तशैशवानाम्, विशेषतश्चामातृकाणाम्, इह देव मातृपितृस्थानीयं प्रजानामापन्नशरणमागतोऽस्मि। यदि वृद्धं [1]ब्राह्मणमधीतिनमगतिमतिथिं च मामनुग्राह्यपक्षे गणयत्यादिराजचरितधुर्यो देवः, सैषा भवद्भुज[2]-

अभिलषिता। इतरस्मै अन्यस्मै। विलम्बितः विलम्बम् कृतवान्। तेन (कारणेन)। तम् ब्राह्मणकुमारम्। आनीय आदाय। तस्मिन् ब्राह्मणबालके। न्यस्तः अर्पितः भारः येन सः। संन्यसिष्ये संन्यासम् आश्रयिष्ये। दुरभिरक्षतया दुःखेन रक्षणयोग्यत्वात्। दुहितॄणाम् पुत्रीणाम्। मुक्तम् त्यक्तम् शैशवम् बाल्यम् याभिः तासाम् (युवतीनाम्)। अमातृकाणाम् जननीरहितानाम्। इह अत्र। देवम् राजानम् (भवन्तम्)। मातृपितृस्थानीयम् मातृपितृभूतम्। आपन्नानाम् शरणागतानाम् शरणम् रक्षकम् ('शरणं गृहरक्षित्रोः' इति अमरः)। अधीतिनम् अधीतवेदम्। अगतिम् न गतिः सहायः यस्य तम्। अनुग्राह्याणाम् अनुग्रहपात्रस्य पक्षे कोटौ। गणयति मन्यते। आदिराजः प्रथमनृपः (मनुः) तस्य चरितम् जीवनम् इव चरितम् येषाम् तेषाम् धुर्यः श्रेष्ठः। देवः राजा (भवान्)। एषा (प्रमतिः)। अखण्डितम् अक्षुण्णम् चारित्रम्

वह ऐसे वंश में उत्पन्न है जिसमें हम लोगों की ब्याह-शादी हो सकती है। यह उसके योग्य है, उसके साथ इसका ब्याह करने को हम राजी हैं, दूसरे के साथ नहीं। यह जवान हो गई है और वह देर कर रहा है। इसलिये उसे लाकर इसका ब्याह उससे कराकर उस पर बोझ डालकर संन्यास लूँगा। बचपन छोड़ चुकने वाली विशेषतः मातृ-रहित लड़कियों की रक्षा कठिन होने से यहाँ महाराज (आप-) के पास आया हूँ। आप प्रजा के माता पिता की जगह पर हैं और शरणागतों की शरण हैं। अगर मुझ वेद-पाठी, असहाय और अतिथि ब्राह्मण को पहले राजा (मनु[3]) के-से जीवन वाले लोगों में श्रेष्ठ महाराज (आप) कृपा-योग्यों की कोटि में मानें तो यह आपकी भुजा की छाँह में अक्षुण्ण-चरित्र-युक्त होकर तब तक

---

[1] अतिथिमिति। [2] भुजतरु।

[3] आदिराज का अर्थ अपने वंश के प्रथम या आरंभ के राजा या राजे भी हो सकता है। महाभारत में अविक्षितपुत्र आदिराज का नाम आता है :—

'अविक्षितः परिक्षित्तु शबलाश्वश्च वीर्यवान्। आदिराजो विरागश्च शाल्मलिश्च महाबलः॥'

इनके प्रसिद्ध न होने से यहाँ इनसे आशय नहीं हो सकता।

रघुवंश (१।११) में वैवस्वत मनु को पहला राजा बताया गया है :—

वैवस्वतो मनुर्नाम माननीयो मनीषिणाम्। आसीन् महीक्षितामाद्यः प्रणवश्छन्दसामिव।

राजा पृथु के नाम से पृथ्वी-नाम चला, अतः कुछ लोगों के द्वारा पृथ्वी-लोक में उन्हें भी प्रथम राजा माना जाता है।

च्छायामखण्डितचारित्रा तावदध्यास्तां यावदस्याः पाणिग्राहकमानयेयम्’ इति । स एवमुक्तो नियतमभिमनायमानः स्वदुहितृसंनिधौ मां [1]वासयिष्यति । गतस्तु भवानागामिनि मासि फाल्गुने फल्गुनीषूत्तरासु भाविनि राजान्तःपुरजनस्य तीर्थयात्रोत्सवो भविष्यति । तीर्थस्थानात्प्राच्यां दिशि गोरुतान्तरमतिक्रम्य वानीरवलयमध्यवर्तिनि कार्तिकेयगृहे करतलगतेन शुक्लाम्बरयुगलेन स्थास्यसि । स खल्वहमनभिशङ्क एवैतावन्तं कालं सहाभिविहृत्य राजकन्यया भूयस्तस्मिन्नुत्सवे गङ्गाम्भसि विहरन्विहारव्याकुले कन्यकासमाजे मग्नोपसृतस्त्वदभ्यास एवोन्मङ्क्ष्यामि । पुनस्त्वदुपहृते वाससी परिधायापनीतदारिकावेषो जामाता नाम

यस्याः सा । तावत् तदवधि । आस्ताम् तिष्ठतु । यावत् यदवधि । अस्याः (कन्यायाः । प्रमतेः) पाणिग्राहकम् भाविनम् पतिम् । सः (राजा धर्मवर्धनः) । नियतम् निश्चितम् । अभिमनायमानः अनुमोदमानः । स्वस्य दुहितुः पुत्र्याः (नवमालिकायाः) संनिधौ समीपे । माम् (प्रमतिम्) । वासयिष्यति स्थापयिष्यति । भवान् (वृद्धविटः) । आगामिनि भाविनि । मासि मासे । फल्गुनीषु उत्तरासु उत्तरफल्गुनीनक्षत्रे । प्राच्याम् पूर्वस्याम् । गोरुतम् गवाम् धेनूनाम् रुतम् ध्वनिः तावत्परिमितम् अन्तरम् (यत्पर्यन्तम् गोकृतः शब्दः व्याप्नोति) । अतिक्रम्य उल्लङ्घ्य । वानीराणाम् वेतसानाम् वलयः मण्डलम् तस्य मध्यवर्तिनि । कार्त्तिकेयस्य षडाननस्य गृहे मन्दिरे । करतलम् गतेन स्थितेन। शुक्लम् श्वेतम् च तत् अम्बरम् वस्त्रम् च तस्य युगलेन युग्मेन । अहम् (प्रमतिः)। न अभिशङ्का भयम् यस्य सः । अभिविहृत्य समन्ततः क्रीडित्वा । भूयः पुनः । गङ्गायाः अम्भसि जले । विहरन् क्रीडन् । विहारे जलक्रीडायाम् व्याकुले व्यस्ते । कन्यकानाम् बालानाम् समाजे समूहे मग्नः जलमग्नः च उपसृतः चलितः च । तव (वृद्धविटस्य) अभ्यासे समीपे । उन्मङ्क्ष्यामि उत्थितः भविष्यामि । त्वया (वृद्धविटेन) उपहृते आनीते । वाससी वस्त्रे । परिधाय धारयित्वा । अपनीतः दूरीकृतः दारिकायाः कन्यायाः वेषः येन सः । नाम (अलीके) ।

रहें जब तक इसके भावी पति को न ले आऊँ । ऐसा कहने पर वह (राजा) निश्चित रूप से स्वीकार कर अपनी लड़की के समीप मुझे रखेगा । तुम अगले फागुन के महीने में उत्तर फाल्गुनी नक्षत्र आने पर राजा की रानियों के आगामी तीर्थ-यात्रा-उत्सव में तीर्थस्थान से पूर्वी दिशा में गाय का रँभाना जहाँ तक सुनाई पड़े उतनी दूर पहुँचकर वेत के घेरे के बीच में स्थित कार्तिकेय मंदिर पर पहुँचकर हथेली में रखे हुये श्वेत वस्त्र के जोड़े के साथ रहना । मैं निश्चय ही निडर ही रहकर इतने समय तक राजकुमारी के साथ क्रीड़ायें कर फिर उस उत्सव में गङ्गा के जल में विहार करता हुआ लड़कियों के झुण्ड के विहार में व्यस्त हो जाने पर डुबकी मारकर तुम्हारे निकट ही पहुँचकर निकलूँगा । फिर तुम्हारे लाये दो कपड़े पहनकर लड़की का भेष हटाकर जामाता का स्वांग रचकर तुम्हारा ही अनुसरण

---

[1] आवास० ।

भूत्वा त्वामेवानुगच्छेयम्। नृपात्मजा तु मामितस्ततोऽन्विष्यानासादयन्ती 'तया विना न भोक्ष्ये' इति [1]रुदत्येवावरोधने स्थास्यति। तन्मूले च महति कोलाहले, क्रन्दत्सु परिजनेषु, रुदत्सु [2]सखीजनेषु, शोचत्सु पौरजनेषु, किंकर्तव्यतामूढे सामात्ये पार्थिवे, त्वमास्थानीमेत्य मां स्थापयित्वा वक्ष्यसि—

'देव स एष मे जामाता तवार्हति श्रीभुज आराधनम्। अधीती चतुर्ष्वाम्नायेषु, गृहीती षट्स्वङ्गेषु, आन्वीक्षिकीविचक्षणः, चतुःषष्टिकलागमप्रयोगचतुरः, विशेषेण गजरथतुरङ्गतन्त्रवित्, इष्वसनास्त्रकर्मणि गदायुद्धे च निरुपमः, पुराणेतिहासकुशलः, कर्ता काव्यनाटकाख्यायिकानाम्, वेत्ता सोपनिषदोऽ-

त्वाम् (वृद्धविटम्)। नृपस्य (धर्मवर्धनस्य) आत्मजा पुत्री (नवमालिका)। माम् (प्रमतिम्)। इतस्ततः अत्र तत्र च। अन्विष्य अनुसंधाय। अनासादयन्ती अप्राप्नुवती। तया (प्रमतिरूपया कन्यकया)। भोक्ष्ये भोजनम् करिष्यामि। रुदती विलपन्ती। अवरोधने राजान्तःपुरे। तत् (प्रमतेः अन्तर्धानम्) मूलम् कारणम् यत्र तस्मिन् तन्मूले। शोचत्सु शोकम् कुर्वत्सु। पौरजनेषु नागरिकेषु। अमात्यैः मन्त्रिभिः सह वर्तमाने सामात्ये। पार्थिवे नृपे (धर्मवर्धने)। त्वम् (वृद्धविटः)। आस्थानीम् राजधानीम्। एत्य प्राप्य। माम् (प्रमतिम्)। स्थापयित्वा पुरतः कृत्वा। वक्ष्यसि वदिष्यसि। देव राजन्। सः पूर्वोक्तः। एषः प्रस्तुतः। मे मम (वृद्धविटस्य)। जामाता भावी कन्यापतिः। श्रीभुजः लक्ष्मीभोक्तुः (भवतः) आराधनम् सेवाम्। अधीती कृताध्ययनः। आम्नायेषु वेदेषु ('क्तस्येन्विषयस्य कर्मण्युपसंख्यानम्' इति वार्तिकेन सप्तमी)। गृहीती बोद्धा। अङ्गेषु वेदाङ्गेषु (शिक्षा कल्पो व्याकरणं निरुक्तं ज्योतिषां गतिः। छन्दोविचितिरित्येव षडङ्गो वेद उच्यते)। आन्वीक्षिकी तर्कविद्या अध्यात्मविद्या वा तस्यां विचक्षणः दक्षः चतुःषष्टिः कलाः तासाम् आगमः ज्ञानम् तस्य प्रयोगे उपयोगे चतुरः दक्षः। गजाः च रथाः च तुरङ्गाः च तेषाम् तन्त्रम् विधानम् तद्विद् तज्ज्ञः। इष्वसनम् धनुः अस्त्राणि च तेषाम् कर्मणि प्रयोगे। निर्गता उपमा यस्य सः निरुपमः। अद्वितीयः पुराणम् च इतिहासः पुरावृत्तम् ('इतिहासः पुरावृत्तम्' इति अमरः) च तत्र कुशलः निपुणः। कर्ता निर्माता। काव्यम् च नाटकम् च आख्यायिकाः कादम्बरीहर्षचरितादिप्रबन्धविशेषाः तासाम् ('प्रसृता-

करूँगा। उधर राजकुमारी मुझे इधर-उधर खोजकर न पाती हुई 'उसके बिना भोजन नहीं करूँगी' यह कहकर रोती हुई रनिवास में रहेगी। इस (घटना) के कारण हुये महान् शोर-गुल में नौकर चाकरों के क्रन्दन करने पर, सखियों के रुदन करने पर, नगरवासियों के शोक-मग्न होने पर और मंत्री-सहित राजा के हाथ-पाँव फूल जाने पर तुम सभा में पहुँचकर मुझे सामने रखकर कहना—'महाराज, वही मेरा जामाता यह है। यह श्रीमान् की सेवा के योग्य है, चार वेदों का अध्ययन कर चुका है, छह (वेद-) अङ्गों को समझ चुका है, तर्क (या अध्यात्म) शास्त्र में दक्ष है। चौसठ[3] कलाओं के ज्ञान का उपयोग करने में चतुर है, विशेषतः हाथी, रथ और घोड़े के प्रबन्ध का जानकार, धनुष और हथियार के कार्य तथा गदा-युद्ध में बेजोड़, पुराण और इतिहास में निपुण, काव्य, नाटक और आख्यायिका का

---

[1] रुदत्यवस्थास्यते। [2] अवरोध। [3] "कामसूत्र" की टीका देखें।

र्थशास्त्रस्य, निर्मत्सरो गुणेषु, विश्रम्भी सुहृत्सुशक्यः,[1] सविमागशीलः, श्रतधरः, गतस्मयश्च। नास्य दोषमणीयांसमप्युपलभे। न च गुणेष्वविद्यमानम्। तन्मादृशस्य ब्राह्मणमात्रस्य न लभ्य एष सबन्धी। दुहितरमस्मै समर्प्य वार्धकोचितमन्त्याश्रमं संक्रामेयम्, यदि देवः साधु मन्यते इति। स इदमाकर्ण्य वैवर्ण्याक्रान्तवक्त्रः परमुपेतो वैलक्ष्यमारप्स्यतेऽनुनेतु[2]मनित्यतादिसंकीर्तनेनात्रभवन्तं मन्त्रिभिः सह। त्व तु तेषामदत्तश्रोत्रो मुक्तकण्ठं रुदित्वा[3] चिरस्य बाष्पकुण्ठकण्ठः काष्ठान्याहृत्याग्निं संधुक्ष्य राज[4]मन्दिरद्वारे चिताधिरोहणायोप-

नाकुलश्राव्यशब्दार्थपदवृत्तिना। गद्येन युक्तोदात्तार्था सोच्छ्वासाऽऽख्यायिका मता॥ वृत्तं व्याख्यायते तस्या नायकेनाथ चेष्टितम्। वक्त्रं चापरवक्त्रं च काले भाव्यर्थशंसि च। कवेरभिप्रायकृतैरङ्कनैः कैश्चिदाननैः।' इति भूषणा)। वेत्ता ज्ञाता। उपनिषदा रहस्येन सह वर्तमानस्य। अर्थशास्त्रस्य नीतिशास्त्रस्य पूर्वमीमांसायाः वा। निर्गतः मत्सरः द्वेषः यस्मात् सः। गुणेषु गुणविषये। विश्रम्भी विश्वासवान्। सुहृत्सु मित्रेषु। शक्यः प्रियंवदः ("शक्यः प्रियंवदः प्रोक्तः" इति हलायुधः)। संविभागशीलः सहभागी। श्रुतधरः श्रुतस्य धारणे समर्थः। गतः दूरीभूतः स्मयः गर्वः यस्मात्। अस्य (जामातुः)। अणीयांसम् लघुतरम्। उपलभे प्राप्नोमि। अविद्यमानम् (गुणम्)। तत् तर्हि। ब्राह्मणमात्रस्य ब्राह्मणशब्दमात्रजुष्टस्य। लभ्यः प्राप्यः। दुहितरम् कन्याम्। अस्मै जामात्रे। समर्प्य दत्त्वा। वार्द्धके वृद्धतायाम् उचितम् अन्त्यम् अन्तिमम् (संन्यासम्) सङ्क्रामेयम् गच्छेयम्। देवः महाराजः (भवान्)। साधु सम्यक्। सः (राजा)। आकर्ण्य श्रुत्वा। वैवर्ण्येन मालिन्येन आक्रान्तम् व्याप्तम् वक्त्रम् मुखम् यस्य सः। परम् अधिकम्। उपेतः प्राप्तः। वैलक्ष्यम् लज्जाम्। अनुनेतुम् प्रसादयितुम्। अनित्यता संसारस्य असारता तदादिसंकीर्तनेन तत्प्रभृतिवर्णनेन। अत्रभवन्तम् आदरणीयम् (भवन्तम् वृद्धविटम्)। त्वम् (वृद्धविटः)। न दत्तम् श्रोत्रम् श्रवणधैर्यम्। मुक्तकण्ठम् तारस्वरेण। चिरस्य बहुकालम् यावत्। बाष्पेण अश्रुणा कुण्ठः रुद्धः कण्ठः गलः यस्य सः। काष्ठानि दारूणि। आहृत्य आदाय। संधुक्ष्य प्रज्वाल्य। चितायाम् अधिरोहणाय आरोहणाय।

निर्माता है, रहस्य-सहित अर्थशास्त्र (या पूर्व मीमांसा) का ज्ञाता, गुणों के विषय में डाह-शून्य, मित्रों के प्रति विश्वासी, प्रिय वचन बोलने वाला, सहभागी, सुना हुआ याद कर लेने वाला और गर्व-रहित है, इसमें बुराई तिल भर भी नहीं पाता। गुणों में से कोई इसमें न हो, ऐसा भी नहीं देखता। तो मुझ जैसे नाम-मात्र के ब्राह्मण को यह सम्बन्धी दुर्लभ है। अगर महाराज (आप) ठीक समझें तो पुत्री को इसे सौंपकर बुढ़ापे में शोभा देने वाले अंतिम आश्रम (संन्यास) में स्थानांतरित हो जाऊँ।' यह सुनकर उनका मुँह मलिनता से आक्रान्त हो जायेगा। अत्यधिक लज्जित होकर मंत्रियों के साथ असारता इत्यादि की चर्चाओं से आपकी अनुनय-विनय शुरू कर देंगे। उधर तुम उनकी वात पर कान न देकर गला फाड़कर देर तक रोना। आँसू से रुँधा गला लेकर लकड़ियाँ जुटाकर आग जलाकर राजमहल के द्वार पर चिता पर चढ़ने का उद्योग करना। तभी तुम्हारे चरणों पर मंत्रियों-

---

१. शक्तः। २. समनुनेतुम्। ३. विरुद्य बाष्प०। ४. राजद्वारे।

क्रमिष्यसे । स तावदेव त्वत्पादयोर्निपत्य सामात्यो नरपतिरनू[1]नैरर्थैस्त्वामुपच्छन्द्य दुहितरं मह्यं दत्त्वा मद्योग्यतासमाराधितः समस्तमेव राज्यभारं मयि समर्पयिष्यति । सोऽयमभ्युपायोऽनुष्ठेयो यदि तुभ्यं रोचते' इति । [2]सोऽपि पटुविटानामग्रणीरसकृदभ्यस्तकपटप्रपञ्चः पाञ्चालशर्मा यथोक्तमभ्यधिक च निपुणमुपक्रान्तवान् । आसीच्च मम समीहितानामहीन[3]कालसिद्धिः । अन्वभवं च मधुप इव नवमालिकामार्द्रसुमनसम् । अस्य राज्ञः सिंहवर्मणः साहाय्यदानं सुहृत्संकेतभूमिगमनमित्युभयमपेक्ष्य सर्वबलसंदोहेन चम्पामिमामुपगतो दैवाद्देवदर्शनसुखमनुभवामि' इति ।

उपक्रमिष्यसे आरप्स्यसे । तावत् तदा । अनूनैः अधिकैः । अर्थैः धनैः । त्वाम् (वृद्धविटम्) । उपच्छन्द्य संतोष्य । दुहितरम् कन्याम् । मह्यम् (प्रमतये) । मम योग्यतया समाराधितः संतुष्टः । अभ्युपायः उपायः । अनुष्ठेयः करणीयः । तुभ्यम् (वृद्धविटाय) । सः (वृद्धविटः) । पटवः चतुराः च ते विटाः धूर्ताः च तेषाम् । अग्रणीः प्रमुखः । असकृत् अनेकान् वारान् अभ्यस्तः सेवितः कपटस्य छलस्य प्रपञ्चः विस्तारः येन । पाञ्चालशर्मा (विप्रनाम) । यथोक्तम् मदुक्तानुसारेण । अभ्यधिकम् मदुक्तात् अपि अधिकतरम् । निपुणम् निपुणतया । उपक्रान्तवान् संपादितवान् । मम (प्रमतेः) । समीहितानाम् ईप्सितानाम् । न हीनः नीचः श्रेष्ठः (उचितः) च सः कालः समयः च तेन सिद्धिः सफलता । अन्वभवम् उपयुक्तवान् । मधुकरः भ्रमरः नवमालिकाम् मालतीलताम् नवमालिकानाम्नीम् राजकुमारीम् च । आर्द्राः प्रत्यग्राः सुमनसः पुष्पाणि यस्याः ताम् (लताम्) आर्द्रम् प्रेमार्द्रम् शोभनम् मनः यस्याः सा (राजकन्या) । सिंहवर्मणः (चम्पाराजस्य) । सुहृदाम् मित्राणाम् सङ्केतभूमिम् मिलनस्थानम् । उभयम् द्वयम् अपि । अपेक्ष्य संमान्य । सर्वम् च तत् बलम् सैन्यम् च तस्य संदोहेन समूहेन । चम्पाम् चम्पानाम्नीम् नगरीम् । इमाम् प्रस्तुताम् । उपगतः प्राप्तः । दैवात् भाग्येन । देवस्य महाराजस्य (भवतः राजवाहनस्य) दर्शनसुखम् ।

सहित वे राजा साहब गिरेंगे और प्रचुर धन से तुम्हें संतुष्ट कर बेटी मुझे देकर मेरी योग्यता से संतुष्ट होकर सारा का सारा राज्य-भार मुझे सौंप देंगे । वह उपाय यह है । यदि तुम्हें रुचे तो यह करना । चतुर धूर्तों के सरदार उस पञ्चाल शर्मा ने कपट-प्रपञ्च का अभ्यास अनेक बार किया था । उसने कहे के अनुसार और उससे भी अधिक चतुराई से काम शुरू किया । मेरे ईप्सित में सफलता उचित अवधि में ही मिल गई । फिर मैंने प्रेमार्द्र सुन्दर मन वाली नवमालिका (राजकुमारी). का उपभोग उसी प्रकार किया जैसे भौंरा ताजे फूलों वाली नवमालिका (चमेली) का (उपभोग) करता है । इन राजा सिंहवर्मा को सहायता देना और मित्रों के मिलने की जगह पहुँचना—इन दोनो बातों पर ध्यान देकर समस्त सेना के समूह के साथ इस चम्पा (नगरी) में पहुँचकर सौभाग्य से महाराज के दर्शन का सुख भोग रहा हूँ ।

---

[1] रभिमतैः । [2] सोऽतिपटुर्विटग्रामणीः । [3] अचिरकाल; काल-फल ।

श्रुत्वैतत्प्रमतिचरितं स्मितमु[1]कुलितमुखनलिनः 'विलासप्रायमूर्जितम्, मृदुप्रायं चेष्टितम्, इष्ट एष मार्गः प्रज्ञावताम्। अथेदानीमत्रभवान्प्रविशतु' इति मित्रगुप्तमैक्षत क्षितीशपुत्रः।

इति श्रीदण्डिनः कृतौ दशकुमारचरिते प्रमतिवर्मचरितं नाम पञ्चम उच्छ्वासः।

षष्ठ उच्छ्वासः

सोऽप्याचचक्षे – देव सोऽहमपि सुहृत्साधारणभ्रमणकारणः सुह्मेषु [2]दामलिप्ताह्वनगरस्य बाह्योद्याने महान्तमुत्सवसमाजमालोकयम्। तत्र[3]क्वचिदतिमुक्तकलतामण्डपे कमपि वीणावादेनात्मान विनोदयन्तमुत्कण्ठितं युवानमद्राक्षम्,

प्रमतेः चरितम् जीवनकथाम्। स्मितेन विहासेन मुकुलितम् संकुचितम् मुखनलिनम् मुखकमलम् यस्य सः। विलासप्रायम् विलासबहुलम्। ऊर्जितम् पराक्रमः। मृदुप्रायम् बहुलतया कोमलम्। चेष्टितम् कार्यम्। इष्टः ईप्सितः प्रज्ञावताम् बुद्धिमताम्। अत्रभवान् आदरणीयः। प्रविशतु (वर्णनक्रमम् इति शेषः)। मित्रगुप्तम् (धर्मपालपौत्रम् सुमन्त्रपुत्रम्)। ऐक्षत अपश्यत्। क्षितीशस्य नृपस्य पुत्रः (राजवाहनः)।

सः मित्रगुप्तः। आचचक्षे अवदत्। सुहृत्साधारणम् मित्रसमानम् भ्रमणकारणम् यस्य सः। सुह्मेषु सुह्मदेशे। दामलिप्तम् आह्वं नाम यस्य तस्य। आलोकयम् अपश्यम्। क्वचित् कुत्रापि। अतिमुक्तलता माधवीलता तस्याः मण्डपे। वीणावादेन वीणावादनेन। विनोदयन्तम् प्रसादयन्तम्। उत्कण्ठितम् व्याकुलितम्। युवानम् तरुणम्। अद्राक्षम् अपश्यम्। अप्राक्षम्

प्रमति की यह जीवन-कथा सुनकर राजकुमार का मुख-कमल मुस्कराहट से सकुचित हो गया। 'विलास-बहुल पराक्रम किया। कोमलता-बहुल प्रयत्न किया। बुद्धिमानों को यह रास्ता अभीष्ट है। अच्छा अब आदरणीय महोदय (आप) रंग-मंच पर प्रगट हों' यह कहकर मित्रगुप्त की ओर देखा।

श्री-दण्डी की रचना 'दशकुमारचरित' में 'प्रमति-चरित' नामक पाँचवाँ
उच्छ्वास समाप्त हुआ।

छठा उच्छ्वास

फिर वह बोला—'महाराज, उस स्थिति में मेरे भ्रमण का कारण भी वही था जो समान रूप से मित्रों का था। सुह्म-प्रदेश के दामलिप्त-नामक नगर के बाहरी उपवन में एक बड़ा मेला देखा। वहाँ कहीं माधवी लता-कुञ्ज में वीणा-वादन से अपने दिल का भार हलका

---

[1] मुकुलितनयनः। [2] दामलिप्ताह्वस्य। [3] अतिमुक्तक।

अप्राक्षं च—'भद्र को नामायमुत्सवः ? किमर्थं वा समारब्धः? केन वा निमित्तेनोत्सवमनादृत्यैकान्ते भवानुत्कण्ठित इव परिवादिनीद्वितीयस्तिष्ठति ?' इति। सोऽभ्यधत्त— 'सौम्य सुह्मपतिस्तुङ्गधन्वा नामानपत्यः प्रार्थितवानमुष्मिन्नायतने विस्मृतविन्ध्यवासरागं वसन्त्या विन्ध्यवासिन्याः पादमूलानपत्यद्वयम्। अनया च किलास्मै प्रतिशयिताय स्वप्ने समादिष्टम्—'समुत्पत्स्यते तवैकः पुत्रः, जनिष्यते चैका दुहिता। स तु तस्याः पाणिग्राहकमनुजीविष्यति। सा तु सप्तमाद्वर्षादारभ्याऽऽपरिणयनात्प्रतिमासं कृत्तिकासु कन्दुकनृत्येन गुणवद्भर्तृलाभाय मां समाराधयतु। यं [1]चाभिलषेत्सामुष्मै देया। स चोत्सवः [2]कन्दुकोत्सवनामास्तु' इति। ततोऽल्पीयसा कालेन राज्ञः प्रियमहिषी मेदिनी नामैकं

अपृच्छम्। भद्र सौम्य। किमर्थम् केन कारणेन। समारब्धः उपक्रान्तः। निमित्तेन कारणेन। अनादृत्य उपेक्ष्य। परिवादिनी वीणा द्वितोया सहाया यस्य सः ('विपञ्ची सा तु तन्त्रीभिः सप्तभिः परिवादिनी' इति अमरः)। अभ्यधत्त अवदत। न अपत्यम् संततिः यस्य सः। अमुष्मिन् अस्मिन्। आयतने देवमन्दिरे। विस्मृतः विन्ध्ये विन्ध्यपर्वते वासे निवासे रागः अनुरागः यस्मिन् कर्मणि तत् यथा स्यात् तथा। विन्ध्यवासिन्याः दुर्गायाः। अनया (दुर्गया)। किल (ऐतिह्ये)। अस्मै सुह्मनरेशाय। प्रतिशयिताय आफलम् सोपवासम् उपविष्टाय। स्वप्ने निद्रायाम्। समादिष्टम् कथितम्। समुत्पत्स्यते जनिष्यते। तव (सुह्मपतेः)। सः (पुत्रः)। तस्याः (पुत्र्याः)। पाणिग्राहकम् पतिम्। अनुजीविष्यति लोकयात्रार्थम् तदधीनः भविष्यति। सा (राजकन्या)। आरभ्य प्रभृति। अपरिणयनात् परिणयनम् (विवाहम्) यावत्। कृत्तिकासु कृत्तिकानक्षत्रे। कन्दुकवत् नृत्यम् तेन माम् (दुर्गाम्)। समाराधयतु प्रसादयतु। अभिलषेत् इच्छेत्। अमुष्मै तस्मै। उत्सवः (विवाहोत्सवः)। राज्ञः नृपस्य (तुङ्गधन्वनः)। प्रिया च सा महिषी

करते हुये किसी व्याकुल नौजवान को देखा और पूछा—'सौम्य, इस उत्सव का नाम क्या है, किसलिये शुरू किया गया है और किस कारण उत्सव की उपेक्षा कर आप आकुल-से एकान्त में वीणा के साथ ठहरे हैं ?' वह बोला, 'सौम्य, सुह्म-नरेश तुङ्गधन्वा निःसंतान हैं। इस देव-मंदिर में विन्ध्य (पर्वत) के निवास का अनुराग भूलकर रह रही विन्ध्यवासिनी (दुर्गा) के चरणों में उन्होंने दो सन्तानों की प्रार्थना की थी और अनशन कर बैठ गये थे। कहते हैं, इन (देवी) ने उनसे नींद में कहा—'तुम्हारे एक लड़का होगा और एक लड़की पैदा होगी। वह उसके पति पर आश्रित रहेगा। वह सातवें वर्ष से लेकर ब्याह तक हर महीने कृत्तिका-नक्षत्र में गुणवान् पति पाने के लिये कन्दुक-नृत्य के द्वारा मेरी आराधना करे। वह जिसके प्रति आसक्त हो, उससे ब्याह कर देना। उस उत्सव का नाम कन्दुकोत्सव हो। फिर थोड़े समय के अन्दर राजा की प्यारी रानी मेदिनी ने एक पुत्र को जन्म दिया।

---

[1] सामिलषेत्। [2] कन्दुकनामा।

पुत्रमसूत । समुत्पन्ना चैका दुहिता । साद्य कन्या कन्दुकावती नाम सोमापीडां देवीं कन्दुकविहारेणाराध[1]यितुमागमिष्यति । तस्यास्तु सखी चन्द्रसेना नाम धात्रेयिका मम प्रियासीत् । 'सा चैषु दिवसेषु राजपुत्रेण भीमधन्वना बलवदनुरुद्धा । तदहमुत्कण्ठितो मन्मथशरशल्यदुःखोद्विग्नचेताः कलेन वीणारवेणात्मानं किंचिदाश्वासयन्विविक्तमध्यासे' इति ।

अस्मिन्नेव च क्षणे किमपि नूपुरक्वणितमुपातिष्ठत् । आगता च काचिदङ्गना । दृष्ट्वैव स एनामुत्फुल्लदृष्टिरुत्थायोप[2]गुह्य गाढमुपगूढकण्ठश्च तया तत्रैवोपाविशत् । अशंसच्च–'सैषा मे प्राणसमा, यद्विरहो दहन इव दहति माम् । इदं च मे जीवितमपहरता राजपुत्रेण मृत्युनेव निरुष्मतां नीतः । न च शक्ष्यामि राजसूनुरित्यमुष्मि-

राज्ञी च । असूत जनितवती । दुहिता कन्या । सोमः चन्द्रः आपीडे शेखरे ('आपीडः शेखरः समौ' इति वैजयन्ती) यस्याः ताम् (दुर्गाम्) । कन्दुकविहारेण कन्दुकनृत्येन । धात्री उपमाता तस्याः अपत्यम् इयम् स्त्री धात्रेयिका ("स्त्रीभ्यो ढक्") । बलवत् बलपूर्वकम् । अनुरुद्धा विवशीकृता । मन्मथस्य कामस्य यत् शरशल्यम् बाणाग्रम् तस्मात् यत् दुःखम् तेन उद्विग्नम् आकुलम् चेतः मनः यस्य सः । कलेन गम्भीरेण ("कलो मन्द्रस्तु गम्भीरे" इति अमरः) । वीणारवेण वीणाशब्देन । आश्वासयन् उपसान्त्वयन् । विविक्तम् एकान्तम् । अध्यासे उपविशामि ।

नूपुरस्य क्वणितम् ध्वनिः । उपातिष्ठत् उपस्थितम् । अङ्गना स्त्री । एनाम् (स्त्रियम्) । उत्फुल्ला विकसिता दृष्टिः नेत्रम् यस्य सः (तरुणः) । उपगूह्य आलिङ्ग्य । गाढम् बलवत् । उपगूढः आलिङ्गितः कण्ठः यस्य सः । तया (स्त्रिया) । अशंसत् अवदत् । सा पूर्वोक्ता । एषा प्रस्तुता स्त्री । मे मम (तरुणस्य) । यस्याः विरहः यद्विरहः । दहनः अग्निः ; दहति ज्वलयति । माम् (तरुणम्) । अपहरता नाशयता । निर्गतम् उष्म तेजः यस्मात् तत्ताम् निरुष्मताम् (मृत्युम्) । अमुष्मिन् तस्मिन् (राजकुमारे) । पापम् अनिष्टम् । आचरितुम् कर्तुम् । अनया

एक पुत्री भी पैदा हुई । उस कन्या का नाम कन्दुकावती है । वह आज सोमापीडा (जिसके ललाट का आभूषण चन्द्रमा है । दुर्गा) देवी को कन्दुक-नृत्य से प्रसन्न करेगी । उसकी धाय की लड़की चन्द्रसेना मुझे प्रिय थी । वह इन दिनों राजकुमार भीमधन्वा के द्वारा जबर्दस्ती रोक ली गई है । इसलिये मैं आकुल और कामदेव के बाण की नोक से उत्पन्न दुःख से पीड़ित चित्त लेकर वीणा के गम्भीर नाद से एकान्त में अपने को कुछ ढाढस देता हुआ बैठा हूँ ।'

इसी क्षण कुछ नूपुर की रुनझुन उपस्थित हुई और कोई सुन्दरी आई । उसे देखते ही इसकी दृष्टि खिल गई । उठकर इसने जोर से सीने से लगाया । फिर उसके गले लगाने पर वहीं बैठ गया और बोला—'मेरी प्राण-समान वही यह है जिसका वियोग आग की तरह मुझे जलाता है । मेरा यह जीवन हरण कर रहे राजकुमार ने मौत की तरह मुझे ऊष्मा-रहित बना दिया है । उसके राजकुमार होने के कारण उसका अनिष्ट करने में भी समर्थ नहीं हूँ.

---

१. आराधयिष्यति । २. उपगूह्य गाढमिति नास्ति क्वचित् ।

न्पापमाचरितुम्. अतोऽनयाऽऽत्मानं सुदृष्टं कारयित्वा त्यक्ष्यामि निष्प्रतिक्रियान्प्राणान्' इति। सा तु पर्यश्रुमुखी समभ्यधात्—'मा स्म नाथ मत्कृतेऽध्यवस्यः साहसम्। यस्त्वमुत्तमात्सार्थवाहादर्थदासादुत्पद्य कोशदास इति गुरुभिरभिहितनामधेयः पुनर्मय्यत्यासङ्गाद्वेशदास इति द्विषद्भिः प्रख्यापितोऽसि, तस्मिंस्त्वय्युपरते यद्यहं जीवेय नृशंसो [1]वेश इति समर्थयेयं लोकवादम्। अतोऽद्यैव नय मामीप्सितं देशम्' इति। स तु मामभ्यधत्त—'भद्र भवद्दृष्टेषु राष्ट्रेषु कतमत्समृद्धं संपन्नसस्यं सत्पुरुषभूयिष्ठं च' इति। तमहमीषद्विहस्याब्रवम्—'भद्र विस्तीर्णेयमर्णवाम्बरा। न पर्यन्तोऽस्ति स्थानस्थानेषु रम्याणां जनपदानाम्। अपि तु न चेदिह युवयोः सुखनिवासकारणं कमप्युपायमुत्पादयितुं शक्नुयाम्

(प्रियया)। निष्प्रतिक्रियान् प्रतीकारे असमर्थान्। पर्यश्रुमुखी रुदती। समभ्यधात् अवदत्। अध्यवस्यः कुरु। साहसम् प्राणसङ्कटकारकम् कर्म। उत्तमात् श्रेष्ठात्। सार्थवाहात् वणिजः। अर्थदासात् (अर्थदास इति नाम्नः)। उत्पद्य जन्म लब्ध्वा। अभिहितम् कृतम् नामधेयम् नाम यस्य सः। मयि (चन्द्रसेनायाम्) अत्यासङ्गः अत्यधिकानुरागः यस्य सः। वेशस्य वेश्यायाः दासः सेवकः। द्विषद्भिः शत्रुभिः। प्रख्यापितः प्रसिद्धीकृतः। उपरते मृते। नृशंसः क्रूरः। वेशः वेश्या। समर्थयेयम् दृढीकुर्याम्। लोकवादम् जनचर्चाम्। ईप्सितम् इच्छितम्। देशम् स्थानम्। सः (कोशदासः) माम् (मित्रगुप्तम्)। अभ्यधत्त अवदत्। भवता (मित्रगुप्तेन) दृष्टेषु। समृद्धम् ऐश्वर्ययुक्तम्। सम्पन्नम् पर्याप्तम् सस्यम् धान्यम् यत्र। सत्पुरुषभूयिष्ठम् सुजनबहुलम्। ईषत् अल्पम्। अर्णवः समुद्रः अम्बरम् वस्त्रम् यस्याः सा (पृथ्वी)। पर्यन्तः समाप्तिः। जनपदानाम् देशानाम् ("नीवृज्जनपदो देशः" इति अमरः)। चेत् यदि। इह अत्र (दामलिप्तनगरे)। युवयोः (कोशदासस्य चन्द्रसेनायाः च)। सुखम् यथा स्यात् तथा निवासः तस्य

(बदला लेने की सामर्थ्य नहीं है)। इसलिये इसके द्वारा अपने को भली-भाँति अवलोकित कराकर बदला लेने में असमर्थ इन प्राणों को छोड़ दूँगा। उधर उसने आँसुओं से भीगकर कहा—'स्वामिन् मेरे लिये यह भयंकर कार्य मत करो; तुम्हारा जन्म श्रेष्ठ सौदागर अर्थदास से हुआ है। पूज्य जनों ने तुम्हारा नाम 'कोशदास' रखा है पर मेरे प्रति अत्यधिक आसक्ति से शत्रुओं ने तुम्हें 'वेश्या-दास' के नाम से प्रसिद्ध कर दिया है। ऐसी स्थिति में रहते हुये तुम्हारे स्वर्गीय हो जाने पर यदि मैं जीवित रहूँगी तो 'वेश्या क्रूर होती है' इस कहावत की पुष्टि करूँगी। इसलिये आज ही मुझे इच्छित स्थान में ले चलो।' इधर वह मुझसे बोला—'सौम्य, आपके देखे हुये राज्यों में से कौन सा राज्य ऐसा है जो समृद्धिशाली हो, जहाँ धान्य भरा-पूरा हो और जहाँ सज्जनों की बहुलता हो।' मैंने थोड़ा मुस्कराकर उससे कहा—'सौम्य समुद्र के वस्त्र वाली (पृथ्वी) लम्बी-चौड़ी है। स्थान-स्थान पर रमणीय प्रदेश हैं और उनका अंत नहीं है। किन्तु यदि तुम दोनों को सुख-पूर्वक निवास कराने वाला कोई उपाय रचने

---

[1] वेशजनः।

ततोऽहमेव भवेयमध्वदर्शी'। तावतोदैरत रणितानि मणिनूपुराणाम्। अथासौ जातसंभ्रमा 'प्राप्तैवेयं भर्तृदारिका कन्दुकावती कन्दुकक्रीडितेन देवीं विन्ध्यवासिनीमाराधयितुम्। अनिषिद्धदर्शना चेयमस्मिन्कन्दुकोत्सवे। सफलमस्तु युष्मच्चक्षुः। आगच्छतं द्रष्टुम्। अहमस्याः संकाशवर्तिनी भवेयम्' इत्ययासीत्। तामन्वयाव चावाम्। महति रत्नरङ्गपीठे स्थितां प्रथमं ताम्रोष्ठीमपश्यम्। अतिष्ठच्च सा सद्य एव मम हृदये। न मयान्येन वान्तराले दृष्टा। चित्रीयाविष्टचित्तश्चाचिन्तयम्—'किमियं लक्ष्मीः। नहि नहि। तस्याः किल हस्ते विन्यस्तं कमलम्, अस्यास्तु हस्त एव कमलम्। [1]भुक्तपूर्वा चासौ पुरातनेन पुंसा पूर्वराजैश्च, अस्याः पुनरनवद्यमयाततयामं च यौवनम्' इति चिन्तयत्येव मयि, सान[2]घसर्वगात्री व्य-

कारणम् जनकम्। ततः तर्हि। अहम् (मित्रगुप्तः)। अध्वदर्शी मार्गदर्शकः। तावता (अपवर्गे तृतीया)। उदैरत आविर्भूतानि। रणितानि शब्दाः। मणिनूपुराणाम् मणिनिर्मितमञ्जीराणाम्। असौ (चन्द्रसेना)। जातः संभ्रमः संवेगः यस्याः सा। भर्तृदारिका राजकुमारी। कन्दुकक्रीडितेन कन्दुकनृत्येन। अनिषिद्धम् अप्रतिहतम् दर्शनम् यस्याः सा। युष्मच्चक्षुः युवयोः चक्षुः दृष्टिः। अस्याः (कन्दुकावत्याः) सकाशवर्तिनी समीपस्था। अयासीत् अगच्छत्। ताम् चन्द्रसेनाम्। अन्वयाव अन्वगच्छाव। आवाम् अहम् मित्रगुप्तः कोशदासः च। रत्नरङ्गपीठे रत्ननिर्मिते आसने। ताम्रः अरुणः ओष्ठः यस्याः ताम् (कन्दुकावतीम्)। सद्यः तत्कालम् मया (मित्रगुप्तेन)। अन्तराले मध्ये (पूर्वम्)। चित्रीया विस्मयः तया आविष्टम् ग्रस्तम् चित्तम् यस्य सः। विन्यस्तम् स्थापितम्। भुक्तपूर्वा पूर्वम् भुक्ता। पुरातनेन पुंसा विष्णुना। पूर्वाः प्राचीनाः च ते राजानः च पूर्वराजाः तैः। अनवद्यम् अनिन्द्यम्। अयाततयामम् प्रत्यग्रम्। मयि (मित्रगुप्ते)। सा (कन्दुकावती)। अनघम् निर्दोषम् सर्वम् गात्रम् अङ्गम् यस्याः सा।

में समर्थ न होऊँगा तो मैं ही राह दिखाऊँगा। इतने में मणि निर्मित पायलों की रुनझुन प्रगट हुई। अब वह घबड़ाकर बोली 'यह राजकुमारी कन्दुकावती कन्दुक नृत्य से देवी विन्ध्यवासिनी की आराधना करने के लिये बस आ पहुँची है। इस कन्दुकोत्सव में इसके दर्शन की रोक नहीं है। तुम दोनों के नेत्रों को अपना फल मिले। देखने आओ। मैं इसके समीप पहुँच रही हूँ' यह कहकर चली गई। हम दोनों उसके पीछे-पीछे गये। मैंने पहला बार महान् रत्न-निर्मित आसन पर वर्तमान ताम्रोष्ठी (लाल ओंठ वाली) को देखा और वह मेरे हृदय में तत्क्षण विराजमान हो गई। मैंने या किसी दूसरे ने पहले उसे नहीं देखा था। मेरा चित्त विस्मय-अभिभूत हो गया। सोचने लगा—'क्या यह लक्ष्मी है? नहीं-नहीं; सुनते हैं, उसके हाथ में कमल रखा है; इसका तो हाथ ही कमल है। उसका उपभोग पुरातन पुरुष (विष्णु) तथा पहले के राजों ने किया है; इसके विपरीत इसका यौवन अनिन्दनीय और ताजा है, इस प्रकार मैं सोच ही रहा था कि उसने श्रद्धा से भगवती को प्रणाम कर तीव्र प्रेम

---

१. अभुक्तपूर्वा चासौ। २. अनवद्य।

त्यस्तहस्तपल्लवाग्रस्पृष्टभूमिरालोलनीलकुटिलालका [1]सविभ्रमं [2]भगवतीमभिवन्द्य कन्दुकममन्दरागरूषिताक्षमनङ्गमिवालम्बत। लीलाशिथिलं च भूमौ मुक्तवती। मन्दोत्थितं च किंचित्कुञ्चिताङ्गुष्ठेन प्रसृतकोमलाङ्गुलिना पाणिपल्लवेन समाहत्य हस्तपृष्ठेन चोन्नीय, चटुलदृष्टिलाञ्छितं स्तबकमिव भ्रमरमालानुविद्धमवपतन्तमाकाश एवाग्रहीत् अमुञ्चच्च। मध्य[3]विलम्बितलये द्रुतलये मृदु[4]मृदु च प्रहरन्ती तत्क्षणं चूर्णपदमदर्शयत्। प्रशान्तं च त निर्दयप्रहारैरुदपातयत्। विपर्ययेण च

व्यत्यस्तौ परावर्तितौ (अधः कृतौ) हस्तपल्लवौ तयोः अग्राभ्याम् अग्रभागाभ्याम् स्पृष्टा भूमिः यया सा। आ ईषत् लोलाः चञ्चलाः नीलाः श्यामाः कुटिलाः वक्राः च अलकाः चूर्णकुन्तलाः यस्याः सा। विभ्रमेण विलासेन सह तत् यथा स्यात् तथा। अभिवन्द्य प्रणम्य। अमन्दः अधिकः यः रागः रक्तिमा तेन रूषितानि रञ्जितानि अक्षीणि नेत्रतुल्यचिह्नानि यस्य तम् (कन्दुकम्)। पक्षे अमन्दः यः रागः अनुरागः तेन रूषिते विराजिते अक्षिणी यस्य तम् अनङ्गम् कामम्। आलम्बत आश्रयत। लीलया क्रीडया शिथिलम् क्लान्तम् यथा स्यात् तथा। मन्दम् यथा स्यात् तथा उत्थितम् उन्नतम्। किञ्चित् ईषत् कुञ्चितः वक्रितः अङ्गुष्ठः यस्य तेन। प्रसृताः विस्तारिताः कोमलाः अङ्गुलयः यस्य तेन। पाणिः करः पल्लवः किसलयम् इव तेन। समाहत्य ताडयित्वा। हस्तपृष्ठेन करतलपश्चाद्भागेन। उन्नीय उत्थाप्य। चटुलया चपलया दृष्ट्या चक्षुषा लाञ्छितम् चिह्नितम्। स्तबकः गुच्छः तम्। भ्रमराणाम् माला तया अनुविद्धम् अनुगतम्। अवपतन्तम् नीचैः आगच्छन्तम्। आकाशे मध्ये। मध्ये विलम्बितः मन्दः लयः पतनम् यस्य तस्मिन् (कन्दुके)। द्रुतः शीघ्रः लयः पतनम् यस्य तस्मिन् (कन्दुके) ("विलम्बितं द्रुतं मध्यं तत्त्वमोघो घनं क्रमात्। तालः कालक्रियामानम्" इति अमरः)। मृदु कोमलम् यथा स्यात् तथा। अमृदु तीव्रम् यथा स्यात् तथा। प्रहरन्ती ताडयन्ती। तत्क्षणम् (कालाध्वनोरत्यन्तसंयोगे)। चूर्णपदम् गत्यनुसारि क्षेपणम् ("गत्यागत्योरानुलोम्येन न्यूनाधिक्यक्षेपणं तच्चूर्णपदम्" इति कन्दुकतन्त्रे)। तम् (कन्दकम्)। निर्दयाः तीव्राः च ते प्रहाराः ताडनानि च

से विराजित नेत्र वाले कामदेव की भाँति चटक ललाई से रँगे चिह्नों वाले गेंद को पकड़ लिया। खेल में ढीला पड़ने पर उसे जमीन पर डाल दिया। जब मन्द गति से वह ऊपर उठा तब कुछ मुड़े अँगूठे वाले और फैली कोमल अँगुलियों वाले पल्लव-तुल्य हाथ से पीटकर हथेली के पीछे के भाग से उछालकर उसे चंचल दृष्टि से चिह्नित कर उस फूल के गुच्छे के समान बना दिया जिसकी ओर भौंरों को भीड़ जा रही है। फिर नीचे गिरते हुये उसे बीच में ही पकड़ लिया और छोड़ दिया। बीच में पतन गति मन्द होने पर मन्द और तीव्र (पतन-गति) होने पर तीव्र चोट की। इस तरह उसी क्षण चूर्णपद’[5] दिखाया। फिर, वह बिलकुल शान्त हुआ तो निर्दय प्रहारों से उछाला और विपरीत स्थिति अपनाकर प्रहार क्रमशः हलके

---

१. ससंभ्रमम्। २. भगवतीं भवानीम्। ३. विलम्बितद्रुतमध्यलये। ४. च मृदुमृदु।

५. गेंद के जाने के और लौटने की गति के कम होने पर कम गति से फेंकना और गति के ज्यादा होने पर तेज गति से फेंकना चूर्णपद कहलाता है।

प्राशमयत् । पक्षमृज्वागतं च वामदक्षिणाभ्यां कराभ्यां पर्यायेणाभिघ्नन्ती शकुन्तमिवोदस्थापयत् । दूरोत्थितं च प्रपतन्तमाहत्य गीतमार्गमार[1]चयत् । प्रतिदिशं च गमयित्वा [2]प्रत्यागमयत् । एवमनेककरणमधुरं विहरन्ती रङ्गतस्य रक्तचेतसो जनस्य प्रतिक्षणमुच्चा[3]वचाः प्रशंसावाचः प्रतिगृह्णती, [4]तत्क्षणारूढविश्रमं कोशदासमंसेऽवलम्ब्य कण्टकितगण्डमुत्फुल्लेक्षणं च मय्यभिमुखीभूय तिष्ठति तत्प्रथमावतीर्णकंदर्पकारितकटाक्षदृष्टिस्तदनुमार्गविलसितलीलाञ्चितभ्रूलता, श्वासानिलवेगान्दोलितैर्दन्तच्छदरश्मिजालैर्लीलापल्लवैरिव मुखकमलपरिमलग्रहतैः ।

उदपातयत् उच्चैः अक्षिपत् । विपर्ययेण वैपरीत्यम् आलम्ब्य । प्राशमयत् प्रशान्तम् अकरोत् । पक्षम् पार्श्वम् । ऋजु सरलम् । पर्यायेण क्रमेण अभिघ्नती ताडयन्ती । शकुन्तः पक्षी तम् । उदस्थापयत् उदनमयत् । आहत्य प्रहृत्य । गीतमार्गम् दशपदचङ्क्रमणम् ("दशपदचङ्क्रमणं गीतमार्गं विदुः" इति कन्दुकतन्त्रे)। आरचयत् अकरोत् । गमयित्वा नीत्वा । प्रत्यागमयत् प्रत्यानीतवती । अनेककरणेन विविधव्यापारेण मधुरम् रमणीयम् यथा स्यात् तथा । विहरन्ती भ्रमन्ती । रङ्गतस्य दर्शकस्य । रक्तम् अनुरक्तम् चेतः मनः यस्य सः । जनस्य जनसमूहस्य । उच्चावचाः श्रेष्ठाः साधारणाः च प्रतिगृह्णती शृण्वती । तत्क्षणे आरूढः भूतः विश्रम्भः विश्वासः यस्मिन् तत् यथा स्यात् तथा । अंसे स्कन्धे । अवलम्ब्य आश्रित्य । कण्टकितौ पुलकितौ गण्डौ कपोलौ यस्मिन् कर्मणि तत् यथा स्यात् तथा । मयि (मित्रगुप्ते) । अभिमुखीभूय संमुखीभूय । तत् एव प्रथमम् अवतीर्णः आगतः यः कन्दर्पः कामः तेन कारिताः कटाक्षाः यया तादृशी दृष्टिः यस्याः सा । तत् उपर्युक्तम् (कटाक्षपातनम्) । अनु पश्चात् । मार्गे (कन्दुकावत्याः मम मित्रगुप्तस्य च मध्यगते) विलसिते शोभिते लीलया विलासेन अञ्चिते शोभिते भ्रूलते यस्याः सा । श्वासस्य यः अनिलः वायुः तस्य वेगेन आन्दोलितैः कम्पितैः । दन्तच्छदस्य ओष्ठस्य रश्मीनाम् किरणानाम् जालैः समूहैः । लीलापल्लवैः लीलार्थम् क्रीडार्थम् (गृहीतैः)

कर बिलकुल शान्त किया। फिर बगल में सीधा आया तो बायें और दाहिने हाथों से बारी-बारी से पीटकर चिड़िया की तरह उड़ाया । दूर तक उठकर तेजी से गिरा तो, खूब पीटकर 'गीत-[5] मार्ग की सृष्टि कर दी । प्रत्येक दिशा में चलाकर लौटा लाई । इस प्रकार अनेक कार्यों से मधुरता छिटकाकर विहार करती हुई अनुरागी चित्त वाले दर्शक-जनों के क्षण-क्षण निकले श्रेष्ठ और साधारण प्रशंसा वाक्य ग्रहण करने लगी । उस समय विश्वास-पूर्वक कोशदास के कंधे का सहारा लेकर रोमांचित कपोल और खिले नेत्र लेकर उसके सामने रुख करके मेरे स्थित होने पर उस समय पहली बार प्रविष्ट कामदेव ने उसकी दृष्टि कटाक्ष-पूर्ण बना दी । उसके पश्चात् (हम दोनो के बीच के) रास्ते पर उसकी क्रीड़ा से शोभित लता तुल्य भौंहें विलसित हुईं । साँस की हवा के वेग से हिलाये गये ओंठ की किरणों के समूह क्रीड़ा के लिये लिये गये पल्लवों की भाँति लग रहे थे । उनसे मुख-कमल की उत्तम

---

[1] आचरत् । [2] प्रत्यागमत् । [3] उच्चावचम् । [4] प्रतिक्षणारूढविभ्रमम् ।

[5] दस कदम चलना ।

णलोलानलिनस्ताडयन्ती, मण्डलभ्रमणेषु कण्दुकस्यातिशीघ्रप्रचारतयाविशन्तीव मद्दर्शनलज्जया पुष्पमयं पञ्जरम्, पञ्चबिन्दुप्रसृतेषु पञ्चापि पञ्चबाणबाणान्युगपदिवाभिपततस्त्रासेनाघट्टयन्ती, गोमूत्रिकाप्रचारेषु घनदर्शितरागविभ्रमा विद्युल्लतामिव विडम्बयन्ती, भूषणमणिरणितदत्तलयसंवादिपादचारम्, अपदेशस्मितप्रभानिषिक्तबिम्बाधरम्, अंसस्रंसितप्रतिसमाहितशिखण्डभारम्, [1]समाघट्टितक्वणि-

किसलयैः। मुखकमलस्य परिमलग्रहणाय सुगन्धप्राप्तये लोलान् चपलान्। अलिनः भ्रमरान्। मण्डलभ्रमणेषु मण्डलाकारगमनेषु (कन्दुकस्य)। (स्वस्य) अतिशीघ्रम् प्रचारितया धावनेन। मम (मित्रगुप्तस्य) दर्शनेन या लज्जा तया। पुष्पमयम् पुष्पनिर्मितम्। पञ्चबिन्दुना गतिविशेषेण (पञ्चभिः आवर्तः प्रहारः। 'पञ्चावर्त्तप्रहारस्तु पञ्चबिन्दुरुदाहृतः')। प्रसृतेषु प्रसारेषु (नपुंसके भावे क्तः)। पञ्चबाणस्य कामस्य बाणाः तान्। युगपत् समम्। अभिपततः। त्रासेन भयेन। अवघट्टयन्ती तीव्रम् यथा स्यात् तथा अपसारयन्ती। गोमूत्रिका विद्युद्गतिः ("गोमूत्रिकेति विद्भिश्चारः शातह्रदो मतः") तया प्रचारेषु गतिषु। घनम् अतिमात्रम् दर्शितः प्रकटितः रागस्य अनुरागस्य विभ्रमः विलासः यया सा कन्दुकावती। घने मेघम् प्रति दर्शितः रागस्य रक्तिम्नः विभ्रमः लीला यया सा। विद्युल्लताम् विद्युद्रेखाम्। विडम्बयन्ती अनुकुर्वती। भूषणेषु ये मणयः रत्नानि तेषाम् रणितेन दत्तः कृतः यः लयः विलम्बितः मध्यः द्रुतः वा तत्संवादी तदनुकारी पादचारः चरणक्षेपः यत्र तत् यथा स्यात् तथा। अपदेशेन मिषेण यत् स्मितम् विहासः तस्य या प्रभा कान्तिः तया निषिक्तः व्याप्तः बिम्ब इव अधरः यत्र तत् यथा स्यात् तथा। अंसे स्कन्धे स्रंसितः पतितः पश्चात् प्रतिसमाहितः स्थानम् प्रापितः शिखण्डभारः केशपाशः यत्र तत् यथा स्यात् तथा। समाघट्टितः सञ्चालितः अतः क्वणितः शब्दितः रत्नमेखलागुणः रत्ननिर्मितकाञ्ची-

गंध लेने के लिये चंचल भौंरों पर प्रहार कर रही थी। घेरे में लगाये गये चक्करों के समय गेंद की गति तेज होने से लगता था कि मुझे देखने से उत्पन्न लाज से (पर्दे के लिये) फूल के पिंजड़े में प्रविष्ट हो रही है। गेंद के पञ्चबिन्दुरूप[2] में प्रसरणों के समय लगता था कि कामदेव के एक साथ झपट रहे पाँचो बाणों को भय से तीव्र गति से हटा रही है। गोमूत्रिका[3] रूप में गेंद की गतियों के होने पर बादलों में ललाई का विलास दिखाने वाली बिजली-रेखा का अनुकरण सा करती हुई अनुराग का विलास अत्यधिक प्रगट करती थी। इन स्वरूपों में राजकुमारी ने बैठकर, उठकर, आँख बन्द कर, आँख खोलकर, ठहरकर और चलकर अत्यन्त विचित्रता दिखाती हुई इस प्रकार चारो ओर क्रीड़ा की कि पैरों की चाल गहनों में लगी हुई मणियों की आवाज से बनाई गई लय को संगत करने लगी, बहाने

---

१. आबाद्धतक्वणितमेखलागुणम्।

२. एक साथ तेजी से पाँच बार प्रहार जिनकी तेजी से गेंद का इस तरह दौड़ना कि पाँच बूँदें मात्र दिखाई पड़ें।

३. बिजली की चाल।

तरलमेखलागुणम्,अञ्चितोत्थितपृथुनितम्बविलम्बित[1]विचलदंशुको[2]ज्ज्वलम्,आकुञ्चितप्रसृतवेल्लितभुजलताभिहतललितकन्दुकम्, [3]आवर्जितबाहुपाशम्,[4] परि[5]वर्तितत्रिकविलग्नलोलकुन्तलम्,अवगलितकर्णपूरकनकपत्रप्रतिसमाधानशीघ्रतानतिक्रमितप्रकृतक्रीडम्, असकृदुत्क्षिप्यमाणहस्तपादबाह्याभ्यन्तरभ्रान्तकन्दुकम्, अवनमनोन्नमननैरन्तर्यनष्टदृष्टमध्ययष्टिकम्, अवपतनोत्पतनविपर्य[6]स्तमुक्ताहारम्,

दाम यत्र तत् यथा स्यात् तथा । अञ्चितम् शोभितम् यथा स्यात् तथा उत्थितः पृथुः विशालः नितम्बः तस्मात् लम्बि विचलत् अंशुकम् तेन उज्ज्वलम् यथा स्यात् तथा। आकुञ्चिता वक्रीकृता च प्रसृता विस्तारिता च वेल्लिता भ्रामिता च या भुजलता तया अभिहतः ताडितः ललितः रम्यः कन्दुकः यत्र तत् यथा स्यात् तथा । आवर्जितः आनमितः बाहुपाशः यत्र तत् यथा स्यात् तथा । परिवर्तितम् आकुञ्चितम् त्रिकम् स्कन्धास्थिद्वयमध्यभागः ("त्रिकत्रिकाटिकायां च पृष्ठवंशाधरेऽपि च" इति वैजयन्ती) तत्र विलग्नाः संबद्धाः लोलाः चञ्चलाः कुन्तलाः केशाः यत्र तत् यथा स्यात् तथा । अवगलितस्य स्थानात् भ्रष्टस्य कर्णपूरस्य कर्णपूरभूतस्य कनकपत्रस्य प्रतिसमाधाने पुनः स्थाने स्थापने या शीघ्रता तया अनतिक्रमिता अनुल्लङ्घिता प्रकृता आरब्धा क्रीडा यत्र तत् यथा स्यात् तथा । असकृत् वारम् वारम् उत्क्षिप्यमाणौ प्रसार्यमाणौ हस्तौ च पादौ च तेषाम् बाह्यम् आभ्यन्तरम् च तत्र भ्रान्तः कन्दुकः यत्र तत् यथा स्यात् तथा। अवनमनम् नतिः उन्नमनम् उत्थानम् तयोः नैरन्तर्येण सातत्येन नष्टा अदर्शनम् गता (नैरन्तर्यस्य समाप्तौ च) दृष्टा मध्ययष्टिः शरीरस्य मध्यभागः यत्र तत् यथा स्यात् तथा। अवपतनेन अधोगमनेन उत्पतनेन उन्नमनेन विपर्यस्तः अव्यवस्थितः मुक्ताहारः यत्र तत् यथा स्यात्तथा। अङ्कुरितेन ईषत्

से की गई मुस्कान की कान्ति से कुँदरू के समान निचला ओंठ व्याप्त हो गया, केश-पाश कंधे से खिसका और फिर अपने स्थान पर पहुँचा दिया गया, रत्न-निर्मित करधनी की डोर टकरांहट पाकर शब्द करने लगी, गेंद मोड़े गये, फैले और नचाई गई लता-तुल्य भुजाओं के द्वारा पिटकर सुन्दर हो गया, भुजा-पाश झुक गये, मोड़े गये कंधों की हड्डियों के बीच वाले भाग पर चंचल केश बिखर गये, खिसक गये कर्णपूर[7] के रूप में लगाये गये स्वर्ण-पत्र को पुनः ठीक जगह लगाने में, शीघ्रता के कारण हो रही क्रीड़ा भंग नहीं हुई, बार-बार उठाये जा रहे हाथ पैरों के बाहर और अन्दर गेंद घूमने लगा,झुकने और उठने की निरन्तरता (लगातार होने) से छड़ी के समान शरीर का मध्य भाग गायब होकर (निरन्तरता कम होने पर) फिर दिखाई पड़ जाता था, गिरने और उठने से मोतियों की माला अस्त-व्यस्त

---

[1] लम्बितचेलम्; नितम्बविलम्बित। [2] अंशुकाञ्चलम्। [3] आवर्तित।
[4] पाशानुविद्धपरि०। [5] उपरि परि०। [6] निर्व्यवस्थ।
[7] एक प्रकार का कर्ण आभूषण।

अङ्कुरितघर्मसलिलदूषितकपोलपत्रभङ्गशोषणाधिकृतश्रवणपल्लवानिलम्, आगलितस्तनतटांशुकनियमनव्यापृतैकपाणिपल्लवं च निषद्योत्थाय निमील्योन्मील्य स्थित्वा गत्वा चैवातिचित्रं पर्यक्रीडत राजकन्या । अभिहत्य भूतलाकाशयोरपि क्रीडान्तराणि [1]दर्शनीयान्येकेनैवानेकेनैव कन्दुकेनादर्शयत् । चन्द्रसेनादिभिश्च प्रियसखीभिः सह विहृत्य विहृतान्ते चाभिवन्द्य देवीं [2]मनसा मे सानुरागेणेव परिजनेन चानुगम्यमाना, कुवलयशरमिव कुसुमशरस्य मय्यपाङ्गं समर्पयन्ती, सापदेशमसकृदावर्त्यमानवदनचन्द्रमण्डलतया स्वहृदयमिव मत्समीपे प्रेरितं प्रतिनिवृत्तं न वेत्यालोकयन्ती, सह सखीभिः कुमारीपुरमगमत् ।

अहं चानङ्गवि[3]ह्वलः स्ववेश्म गत्वा कोशदासेन यत्नवदत्युदारं स्नानभोज-

---

उत्पन्नेन घर्मसलिलेन स्वेदेन दूषितः प्रक्षालितः यः कपोलयोः पत्रभङ्गः पत्ररचना तस्याः शोषणे अधिकृतः नियुक्तः श्रवणपल्लवयोः कर्णस्थितयोः पत्रयोः अनिलः वायुः यत्र तत् यथा स्यात् तथा । आगलितम् स्रस्तम् यत् स्तनतटांशुकम् कुचप्रान्ते स्थितम् वस्त्रम् तस्य नियमने रोधने व्यापृतः रतः एकः पाणिपल्लवः यत्र तत् यथा स्यात् तथा । निषद्य उपविश्य । अतिचित्रम् अत्यन्तविचित्रप्रकारेण । पर्यक्रीडत परितः अक्रीडत् । अभिहत्य प्रहृत्य । क्रीडान्तराणि अन्याः क्रीडाः । विहृतस्य (नपुंसके भावे क्तः) विहारस्य अन्ते । अभिवन्द्य प्रणम्य । कुवलयम् नीलकमलम् एव शरः बाणः तम् । कुसुमम् पुष्पम् शरः बाणः यस्य (कामस्य) तस्य । मयि (मित्रगुप्ते) । अपाङ्गः नेत्रप्रान्तः तम् । अपदेशेन व्याजेन छलेन । ("अपदेशः स्मृतो लक्ष्ये निमित्तव्याजयोरपि" इति विश्वः) । असकृत् वारम् वारम् आवर्त्यमानम् नियोज्यमानम् वदनचन्द्रस्य मुखचन्द्रस्य मण्डलम् यस्याः तत्ता तया । आलोकयन्ति पश्यन्ति । कुमारीपुरम् कन्यान्तःपुरम् । अगमत् अगच्छत् ।

अहम् (मित्रगुप्तः) । च ततः । अनङ्गेन कामेन विह्वलः आकुलः (सन्) । स्वस्य स्वम् वा वेश्म गृहम् । कोशदासेन कोशदास इति नाम्ना जनेन । यत्नवत् प्रयत्नपूर्वकम् । अत्युदारम्

हो गई, जरा-जरा निकले पसीने से धुली कपोल-स्थित पत्र-रचना सुखाने के लिये कानों पर स्थित पत्ते की हवा नियुक्त कर दी गई तथा स्तनों के ढालू भाग के खिसके हुये कपड़े को रोकने में पल्लव-तुल्य एक हाथ व्यस्त हो गया । (गेंद) पीटकर जमीन और आसमान में अन्य दर्शनीय क्रीड़ायें एक ही गेंद से इस तरह दिखलाईं जैसे अनेक गेंदों से दिखला रही हो । चन्द्रसेना-आदि प्रिय सखियों के साथ खेलकर खेल के अंत में देवी को प्रणाम कर मेरे प्रेमी चित्त की भाँति नौकर-चाकरों को पीछे लिये हुये मेरे ऊपर कामदेव के नील कमल के बाण सा कटाक्ष अर्पित करती हुई, बहाने से बार-बार (मेरी ओर) मुख चन्द्र-मण्डल इस तरह फिराती हुई सखियों के साथ कन्या-अन्तःपुर चली गई कि उसके इस स्थिति में होने के कारण ऐसा लगा कि मेरे पास भेजे हुये अपने हृदय को देख रही है कि लौट आया या नहीं ।

उधर मैं कामातुर होकर अपने घर गया । कोशदास ने प्रयत्न-पूर्वक अत्युत्तम स्नान-

---

[1] एकेनैव वाऽनेकेनैव । [2] मन्मनसा सानु० । [3] विद्धः ।

नादिकमनुभावितोऽस्मि । सायं चोपसृत्य चन्द्रसेना रहसि मां प्रणिपत्य पत्युरंसमंसेन प्रणयपेशलमाघट्टयन्त्युपाविशत् । आचष्ट च हृष्टः कोशदासः—'भूयासमेवं यावदायुरायताक्षि, त्वत्प्रसादस्य पात्रम्' इति । मया तु सस्मितमभिहितम्—'सखे ! किमेतदाशास्यम् । अस्ति किंचिदञ्जनम् । अनया [1]तदक्तनेत्रया राजसूनुरुपस्थितो वानरीमिवैनां द्रक्ष्यति, विरक्तश्चैनां पुनस्त्यक्ष्यति' इति । तया तु स्मेरयास्मि कथितः—'सोऽयमार्येणाज्ञाकरो जनोऽत्यर्थमनुगृहीतः, यदस्मिन्नेव जन्मनि मानुषं वपुरपनीय वानरीकरिष्यते । तदास्तामिदम् । अन्यथापि सिद्धं नः समीहितम् । अद्य खलु कन्दुकोत्सवे भवन्तमवह[2]सितमनोभवाकारमभि-

अत्युत्तमम् । अनुभावितः अनुभवविषयीकृतः । सायम् सन्ध्याकाले । उपसृत्य आगत्य । चन्द्रसेना इति नाम्नी सखी । रहसि एकान्ते । माम् (मित्रगुप्तम्)। प्रणिपत्य नत्वा । पत्युः (कोशदासस्य) । अंसम् स्कन्धम् । अंसेन स्वस्कन्धेन प्रणयेन प्रेम्णा पेशलम् मधुरम् यथा स्यात् तथा । आघट्टयन्ती स्पृशन्ती । आचष्ट अवदत् । हृष्टः प्रसन्नः कोशदासः चन्द्रसेनापतिः । भूयासम् (भविष्ये) स्याम् । एवम् पूर्वोक्तप्रकारेण । यावदायुः जीवनपर्यन्तम् । आयते दीर्घे अक्षिणी नेत्रे यस्याः सा आयताक्षी तत्सम्बुद्धौ (हे) आयताक्षि (चन्द्रसेने) । तव चन्द्रसेनायाः प्रसादस्य कृपायाः पात्रम् भाजनम् । मया (मित्रगुप्तेन) । सस्मितम् ईषद्धासपूर्वकम् । अभिहितम् उक्तम् । सखे मित्र (कोशदास) । आशास्यम् (केवलम्) अनुभवनीयम् । अञ्जनम् कज्जलम् । अनया (चन्द्रसेनया) । तेन अञ्जनेन अक्ते रञ्जिते नेत्रे नयने यस्याः तया । राजसूनुः राजकुमारः (चन्द्रसेनाम् प्रति लुब्धः) । उपस्थितः युक्तः । एनाम् (चन्द्रसेनाम्) । तया (चन्द्रसेनया) । स्मेरया हासयुक्तया । सः अयम् अहम् (चन्द्रसेना) । आज्ञाकरः आज्ञापालकः । अत्यर्थम् अत्यन्तम् । अनुगृहीतः कृतार्थः । मानुषम् मनुष्यस्य इदम् । वपुः शरीरम् । अपनीय दूरीकृत्य । अवानरः (स्त्रीजनः) वानरः करिष्यते इति वानरीकरिष्यते (अभूततद्भावे च्विः) । तद् वर्णितम् । इदम् उपायकरणम् । आस्ताम् भवतु (त्यज्यताम्) । अन्यथा उपायान्तरेण । सिद्धम् सफलम् । नः अस्माकम् । समीहितम् इच्छितम् (मनोरथः) । भवन्तम् (मित्रगुप्तम्) ।

भोजन आदि का उपभोग कराया । फिर शाम को चन्द्रसेना आकर एकान्त में मुझे प्रणाम कर पति का कन्धा (अपने) कन्धे से प्रेम-मधुर-रूप में सटाती हुई बैठ गई । कोशदास ने प्रसन्न होकर कहा—'विशालनयने, भगवान् करे मैं इसी तरह जीवन भर तुम्हारी कृपा का पात्र बना रहूँ ।' मैंने मुस्कराकर कहा—'मित्र, क्या यह (केवल) आशा की बात है । एक काजल है, उसे आँखों में आँजकर यह राजकुमार की सेवा में पहुँचेगी तो वह इसे बन्दरिया की तरह देखेगा और निराश होकर छोड़ देगा' । उधर उसने हँसती हुई कहा—'श्रीमान् के द्वारा मुझ आज्ञाकारी जन पर अत्यधिक कृपा की गई है जो इसी जन्म में मनुष्य का शरीर हटाकर बन्दर बनाई जाऊँगी । उसे छोड़िये । दूसरी तरह से भी हमारा मनोरथ सफल है । आज निश्चय ही कन्दुकोत्सव में कामदेव के रूप की हँसी उड़ाने वाले आपको

---

[1] यदक्त ।

[2] अपहसित ।

लषन्ती रोषादिव शम्बर[1]द्विषातिमात्रमायास्यते राजपुत्री। सोऽयमर्थो विदितभावया मया स्वमात्रे तया च तन्मात्रे महिष्या च मनुजेन्द्राय, निवेदयिष्यते। विदितार्थस्तु पार्थिवस्त्वया दुहितुः पाणिं ग्राहयिष्यति। ततश्च त्वदनुजीविना राजपुत्रेण भवितव्यम्। एष हि देवतासमादिष्टो विधिः। त्वदायत्ते च राज्ये नालमेव[2] त्वामतिक्रम्य मामवरोद्धुं भीमधन्वा। तत्सहतामय त्रिचतुराणि दिनानि' इति मामामन्त्र्य प्रियं चोपगूह्य प्रत्ययासीत्। मम च कोशदासस्य च तदुक्तानुसारेण बहुविकल्पयतोः कथंचिदक्षीयत क्षपा। क्षपान्ते च कृतयथो-

अवहसितः उपहसितः मनोभवस्य कामदेवस्य आकारः रूपम् येन तम्। रोषात् कोपात्। इव प्रतीयते। [3]शम्बरद्विषा कामेन। अतिमात्रम् अत्यन्तम् ("अतिमात्रोद्गाढनिर्भरम्" इति अमरः)। आयास्यते खिद्यते। राजपुत्री (कन्दुकावती)। सः अयम् उक्तः। अर्थः वस्तु। विदितः ज्ञातः भावः तत्त्वम् यया। मया (चन्द्रसेनया)। स्वस्याः मात्रे जनन्यै। तया (कन्दुकावत्या)। तस्याः मात्रे जनन्यै। महिष्या राज्ञ्या। मनुजेन्द्राय राज्ञे। निवेदयिष्यते कथयिष्यते। विदितः ज्ञातः अर्थः वस्तु येन तादृशः। पार्थिवः राजा। त्वया (मित्रगुप्तेन)। दुहितुः कन्यायाः (कन्दुकावत्याः)। पाणिम् ग्राहयिष्यति विवाहम् कारयिष्यति। तव अनुजीविना सेवकेन। राजपुत्रेण (चन्द्रसेनालुब्धेन)। एषः पूर्वोक्तः। हि निश्चयेन। देवतया दैवेन समादिष्टः निर्दिष्टः। विधिः अदृष्टम्। त्वदायत्ते त्वदधीने। अलम् समर्थः। अतिक्रम्य उल्लङ्घ्य। माम् (चन्द्रसेनाम्)। अवरोद्धुम् बलेन निरोद्धुम्। भीमधन्वा नाम राजकुमारः। तत् अतः। सहताम् प्रतीक्षताम्। अयम् (कोशदासः)। माम् (मित्रगुप्तम्)। आमन्त्र्य उक्त्वा। प्रियम् पतिम् (कोशदासम्)। उपगूह्य आलिङ्ग्य। प्रत्ययासीत् अगच्छत्। मम (मित्रगुप्तस्य)। तस्याः (चन्द्रसेनायाः) उक्तस्य कथनस्य। बहु अत्यधिकम्। विकल्पयतोः उच्चावचम् विचारयतोः। कथंचित् महता क्लेशेन। अक्षीयत व्यतीता। क्षपा रात्रिः। कृतः यथोचितः नियमः विधिः येन। तम् पूर्वोक्तम्

चाहती हुई राजकुमारी को, लगता है, गुस्से से कामदेव बहुत सता रहा है। यह अनुकूल बात भाव ताड़ गई मैं अपनी माँ से, वे उसकी माँ से और रानी राजा से कहेंगी। उधर राजा सब बात जानकर कन्या का पाणि-ग्रहण तुमसे करा देंगे। फिर राजकुमार तुम्हारे सेवक हो जायेंगे। निश्चय ही वह विधान देवताओं के द्वारा निर्दिष्ट है। फिर राज्य के तुम्हारे अधीन हो जाने पर भीमधन्वा तुम्हारा उल्लंघन कर मुझे रोकने में कभी समर्थ न होगा। तो ये तीन-चार दिन प्रतीक्षा करें।' यह मुझसे कहकर और प्रिय (पति) को गले लगाकर चली गई। मेरी और कोशदास की रात उसके कहे मुताबिक बहुत संकल्प-विकल्प करते हुये किसी तरह

---

[1] हरद्विषा। [2] एष।

[3] कृष्ण के पुत्र प्रद्युम्न ने शम्बर-नामक राक्षस को मारा था। वे काम के अवतार माने जाते हैं, अतः कामदेव का नाम शम्बर-शत्रु पड़ गया है।

चितनियमस्तमेव प्रियादर्शनसुभगमुद्यानोद्देशमुपागतोऽस्मि। तत्रैव चोपसृत्य राजपुत्रो निरभिमानमनुकूलाभिः कथाभिर्मामनुवर्तमानो मुहूर्तमास्त। नीत्वा चोपकार्यामात्मसमेन स्नानभोजनशयनादिव्यतिकरेणोपाचरत्। तल्पगतं च स्वप्नेनानुभूयमानप्रियादर्शनालिङ्गनसुखमायसेन निगडेनाति[1]बलवद्बहुपुरुषैः पीवरभुजदण्डोपरुद्धमबन्धयन्माम्। प्रतिबुद्धं च सहसा समभ्यधात्—'अयि दुर्मते' श्रुतमालपितं हतायाश्चन्द्रसेनाया जालरन्ध्रनिःसृतं तच्चेष्टावबोधकप्रयुक्तयानया कुब्जया, त्वं किलाभिलषितो वराक्या कन्दुकावत्या तव किलानुजीविना मया स्थेयम्। तद्वचः किलानतिक्रमता मया चन्द्रसेना कोशदासाय दास्यते' इत्यु-

पूर्वानुभूतम् वा। प्रियायाः कन्दुकावत्याः दर्शनेन सुभगम् उत्कृष्टम्। उद्यानोद्देशम् उपवनभागम्। उपगतः प्राप्तः। (तत्र उपवने) उपसृत्य गत्वा। राजपुत्रः (भीमधन्वा)। निरभिमानम् अहङ्कार-रहितम् यथा स्यात् तथा। अनुकूलाभिः इष्टाभिः। कथाभिः चर्चाभिः। अनुवर्त्तमानः अनुचरन्। मुहूर्तम् क्षणम्। आस्त अतिष्ठत्। उपकार्याम् पटमण्डपम्। आत्मसमेन स्वलभ्येन। व्यतिकरेण विधानेन। उपाचरत् असेवत। तल्पगतम् शय्यास्थितम्। स्वप्नेन स्वप्नावस्थया अनुभूयमानम् अनुभवविषयीक्रियमाणम् प्रियायाः दर्शनम् आलिङ्गनम् च तत् एव सुखम् यस्य तम्। आयसेन लौहनिर्मितेन। निगडेन शृङ्खलया। अतिबलवद्भिः बहुभिः पुरुषैः पीवराभ्याम् पीनाभ्याम् भुजदण्डाभ्याम् दण्डतुल्यबाहुभिः उपरुद्धम् वशीकृतम्। अबन्धयत् बन्धने पातितवान्। माम् (मित्रगुप्तम्)। प्रतिबुद्धम् जागरितम्। सहसा अकस्मात्। समभ्यधात् अवदत्। अयि रे। दुर्मते दुष्टबुद्धे। आलपितम् कथितम्। हतायाः मन्दभागिन्याः। जालस्य जालमार्गस्य रन्ध्रेण छिद्रेण निःसृतम् बहिः आगतम्। तस्याः (चन्द्रसेनायाः) चेष्टायाः कार्यकलापस्य अवबोधाय ज्ञानाय प्रयुक्तया नियुक्तया। अनया पुरः दृश्यमानया। त्वम् (मित्रगुप्तः)। किल असंभाव्ये अर्थे ("वार्तासंम्भाव्ययोः किल" इति अमरः)। वराक्या हतभाग्यया। तव (मित्रगुप्तस्य)। अनुजीविना सेवकेन। मया (भीमधन्वना)।'स्थेयम् वर्तितव्यम्। तव (मित्रगुप्तस्य) वचः

बीती। रात बीतने पर यथोचित कृत्य संपन्न कर प्रिया के दर्शन से उत्कृष्ट उसी उपवन भाग में पहुँचा। वहीं पहुँचकर राजकुमार अभिमान-रहित होकर घड़ी भर अभीष्ट बातों से मेरे अनुसार चलता रहा। तंबू में ले जाकर अपने जैसे स्नान-भोजन शय्या आदि प्रबन्ध से सेवा की। पर, सेज पर स्थित मुझे जब सपना प्रिया के दर्शन और आलिङ्गन के सुख का अनुभव करा रहा था, तभी मुझे लोहे की जंजीर से अत्यन्त बलवान् बहुत सारे आदमियों के द्वारा मोटे भुज-दण्डों से विवश कर बँधवा दिया। फिर जब मैं जागा तब एकाएक मुझसे बोला—'अरे दुष्ट-बुद्धि, सुन लिया है, अभागिन चन्द्रसेना की बात खिड़की के छेद से निकलने पर उसके रंग-ढंग जानने के लिये लगाई गई इस कुबड़ी ने। तुमसे तो बेचारी कन्दुकावती को प्यार हो गया है। मुझे तो तुम्हारा सेवक बनकर रहना है और मैं तो तुम्हारी आज्ञा का उल्लंघन न करते हुये चन्द्रसेना को कोशदास के हाथों में सौंप दूँगा' यह कहकर समीप-

---

[1] अतिबलपुरुषैः।

क्त्वा पार्श्वचरं पुरुषमेकमालोक्याकथयत्—'प्रक्षिपैनं सागरे' इति। स तु लब्धराज्य इवातिहृष्टः 'देव, यदाज्ञापयसि' इति यथादिष्टमकरोत्। अहं तु निरालम्बनो भुजाभ्यामितस्ततः स्पन्दमानः किमपि काष्ठं दैवदत्तमुरसोपश्लिष्य तावदप्लोषि, यावदपासरद्वासरः शर्वरी च सर्वा। प्रत्युषस्यदृश्यत किमपि वहित्रम्। अमुत्रासन्यवनाः ते मामुद्धृत्य रामेषुनाम्ने नाविकनायकाय कथितवन्तः– कोप्ययमायसनिगडबद्ध एव जले लब्धः पुरुषः। सोऽयमपि सिञ्चेत्सहस्रं द्राक्षाणां क्षणेनैकेन' इति। अस्मिन्नेव क्षणे नैकनौकापरिवृतः कोऽपि मद्गुरभ्य-

---

वचनम्। अनतिक्रमता अनुल्लङ्घता। मया (भीमधन्वना)। सागरे समुद्रे। लब्धम् प्राप्तम् राज्यम् येन तादृशः। अतिहृष्टः अतिप्रसन्नः। यथादिष्टम् आदिष्टम् (सागरप्रक्षेपम्) अनतिक्रम्य। निरालम्बनः असहायः। इतस्ततः अत्र तत्र। स्पन्दमानः चेष्टमानः। उरसा वक्षसा। उपश्लिष्य आलिङ्ग्य। अप्लोषि प्लवने रतः आसम्। अपासरत् व्यतीतः। वारः दिनम्। शर्वरी रात्रिः। सर्वा क्लेशेन असह्या। प्रत्युषसि प्रभाते। वहित्रम् जलयानम्। अमुत्र तस्मिन् (जलयाने) यवनाः वैदेशिकाः। रामेषुः इति नाम यस्य तस्मै। नाविकानाम् नायकाय अधिपतये। अपिः संभावनायाम् ("गर्हासमुच्चयप्रश्नशङ्कासंभावनास्वपि" इति अमरः)। द्राक्षाणाम् मृद्वीकानाम्। नैकनौकापरिवृतः बहुजलयानयुक्तः। मद्गुः युद्धपोतः। आबिभयुः भयम्

स्थित एक आदमी को देखकर बोला—'फेक दो इसे समुद्र में।' उधर वह ऐसा प्रसन्न हुआ जैसे राज पा गया हो। 'महाराज, जैसी आज्ञा' कहकर उसने आदेश के अनुसार किया। उधर से असहाय होकर बाँहें इधर-उधर चलाकर भाग्य के द्वारा दिये गये एक काठ को छाती से लगाकर तब तक तैरता रहा जब तक दिन और सारी रात बीत नहीं गई। सवेरे एक नाव दिखाई दी। उसमें यवन[1] थे। उन्होंने मुझे उठाकर रामेषु[2] नामक नाविक-प्रधान से कहा—'लोहे की जंजीर से बँधा हुआ ही (दास बनाने के लिये बाँधने की जरूरत नहीं है) एक आदमी पानी में मिला है। यह एक क्षण में अंगूर के हजार पौधे सींच[3] सकता है।' इसी समय बहुत सी नावों से घिरा हुआ एक युद्ध-पोत झपटा। यवन डर गये।

---

[1] विलसन के अनुसार ये अरब देश-वासी थे जो दण्डी के समय भारत तथा चीन से समुद्री व्यापार करने वालों में प्रधान थे।

[2] यह नाम भारतीय प्रतीत होता है जिससे यह लगता है कि उस समय भारतीय जहाजरानी में बहुत कुशल थे। उनकी आवश्यकता विदेशियों तक को पड़ती थी। या ये इस देश में बस गये विदेशी या अरब-वासी थे जो भारतीयों में इतने घुल-मिल गये थे कि ऐसे बड़े पद पर भी विदेशी को नियुक्त कर लेते थे।

[3] अपने खेत में लगाया जाय या इसे गुलाम बनाकर बेचा जाय तो इस क्षमता से इसकी विक्रयदर निर्धारित हो सकती है। उस समय अंगूर के बड़े बाग थे और उनके मालिक मजदूरी के लिये गुलाम खरीदते थे, यह अनुमान लगाया जा सकता है।

धावत्। आबिभयुर्यवनाः। तावदतिजवा नौकाः श्वान इव वराहमस्मत्पोतं पर्यरुत्सत। प्रावर्तत च संप्रहारः। पराजयिषत[1] यवनाः। तानहमगतीनवसीदतः समाश्वास्यालपिषम्—'अपनयत मे निगडबन्धनम्। अयमहमवसादयामि वः सपत्नान्' इति। अमी तथाकुर्वन् सर्वांश्च तान्प्रतिभटान्भल्लवर्षिणा भीमटंकृतेन शार्ङ्गेण लवलवीकृताङ्गानकार्षम्। अवप्लुत्य हतविध्वस्तयोधमस्मत्पोतसंसक्तपोतममुत्र नाविकनायकमनभिसरमभिपत्य जीवग्राहमग्रहीषम्। असौ चासीत्स एव भीमधन्वा। तं चाहमवबुध्य जातव्रीडमब्रवम्—'तात, किं दृष्टानि कृतान्तविलसितानि' इति। ते तु सांयात्रिका मदीयेनैव शृङ्खलेन तमतिगाढं बद्ध्वा

प्राप्तवन्तः। अतिजवाः अतिवेगवत्यः। श्वानः कुक्कुराः। वराहम् शूकरम्। अस्माकम् पोतम् जलयानम्। पर्यरुत्सत परितः निरुद्धवत्यः। प्रावर्त्तत आरभत। संप्रहारः युद्धम्। पराजयिषत पराजिताः। न गतिः शरणम् येषाम् तान्। अवसीदतः विषादम् गच्छतः। समाश्वास्य उपसान्त्व्य। आलपिषम् अवदम्। अपनयत दूरीकुरुत। मे मम। निगडबन्धनम् शृङ्खलाबन्धम्। अवसादयामि नाशयिष्यामि। वः युष्माकम्। सपत्नान् शत्रून्। अमी (यवनाः)। तथा मदनुसारेण। प्रतिभटान् शत्रून्। भल्लवर्षिणा बाणवर्षिणा। भीमम् भयङ्करम् टङ्कृतम् (नपुंसके भावे क्तः) टङ्कारः यस्य तेन शार्ङ्गेण धनुषा। लवः भागः तस्य लवः लवलवः। अलवलवं लवलवं कृतम् लवलवीकृतम् अङ्गम् येषाम् तादृशान्। अकार्षम् कृतवान्। अवप्लुत्य निपत्य। हताः मारिताः विध्वस्ताः नाशिताः योधाः भटाः यस्मिन् तत्। अस्माकम् पोते नौकायाम् संसक्तम् लग्नम् पोतम् (प्रति)। अमुत्र तस्मिन् (पोते)। न अभिसरः सहायः यस्य ("अनुप्लवः सहायश्चानुचरोऽभिसरः समाः" इति अमरः)। अभिपत्य आक्रम्य। जीवग्राहम् जीवन्तम् एव (णमुल्प्रत्ययः)। असौ (नाविकनायकः)। सः पूर्वानुभूतः। भीमधन्वा (बन्धनक्षेपकः राजकुमारः)। अवबुध्य ज्ञात्वा। जाता उत्पन्ना व्रीडा लज्जा यस्य तम्। अब्रवम् अवदम्। तात वत्स। कृतान्तस्य दैवस्य विलसितानि चेष्टितानि ("कृतान्तो यमसिद्धान्तदैवाकुशलकर्मसु" इति अमरः)। सांयात्रिकाः पोतवाणिजः ("सांयात्रिकः पोतवणिक्" इति अमरः)। शृङ्खलेन

तभी अत्यन्त वेग वाली नावों ने हमारा जहाज इस तरह घेर लिया जैसे कुत्ते सूअर को घेर लेते हैं। युद्ध छिड़ गया। यवन हार गये। वे असहाय होकर कष्ट पा रहे थे। उन्हें ढाढ़स देकर मैं बोला—'मेरी जंजीर का बन्धन दूर करो। मैं तुम्हारे शत्रुओं को नष्ट कर दूँगा।' उन्होंने वैसा किया। तब उन सब शत्रुओं के अङ्ग बाण बरसाते हुये भयंकर टंकार वाले धनुष से खण्ड-खण्ड कर दिये। मरे और घायल योद्धाओं वाले, हमारे जहाज से लगे (उस) जहाज पर कूदकर उसमें असहाय पड़े अधिपति पर टूटकर जीता पकड़ लिया। वह था वही भीमधन्वा। उसे पहचाना तो वह लज्जित हो गया। उससे बोला, 'वत्स क्या भाग्य की चेष्टायें देखीं?' उधर जहाज के उन सौदागरों ने मेरी ही जंजीर से उसे खूब कसकर बाँधा, आनन्द-

---

[1] पराजयिषत; पराजैषत।

हर्षकिलकिलारवमकुर्वन्मां चापूजयन् ।

दुर्वारा[1] तु सा नौरनुकूलवातनुन्ना दूरमभिपत्य कमपि द्वीपं निबिडमाश्लिष्टवती । तत्र च स्वादु पानीयमेधांसि कन्दमूलफलानि संजिघृक्षवो गाढपाति[2]तशिलावलयमवातराम । तत्र चासीन्महाशैलः । सोऽहम् 'अहो रमणीयोऽयं पर्वतनितम्बभागः, कान्ततरेयं गन्धपाषाणव[3]त्युपत्यका, शिशिरमिदमिन्दीवरारविन्दमकरन्दबिन्दुचन्द्रकोत्तरं गोत्रवारि, रम्योऽयमनेकवर्णकुसुममञ्जरी[4]मञ्जुलतरस्तरुवनाभोगः' इत्यतृप्ततरया दृशा बहुबहु पश्यन्नलक्षिताध्यारूढक्षोणीध्रशिखरः

निगडेन । तम् (भीमधन्वानम्) । अतिगाढम् सुदृढम् । हर्षकिलकिलारवम् हर्षसूचकम् किलकिलारवम् अनुकरणशब्दम् ।

दुर्वारा अप्रतिरोधा । नौः नौका । अननुकूलः प्रतिकूलः च सः वातः वायुः च तेन नुन्ना प्रेरिता । अभिपत्य वेगेन गत्वा । निबिडम् गाढम् । आश्लिष्टवती आलिङ्गितवती । तत्र (द्वीपे) । स्वादु मधुरम् । पानीयम् जलम् । एधांसि इन्धनानि । संजिघृक्षवः संग्रहीतुकामाः । गाढम् दृढम् पातितम् स्थापितम् शिलावलयम् प्रस्तरमण्डलम् यथा स्यात् तथा । अवातराम अवतीर्णवन्तः । तत्र (द्वीपभागे) । महान् च असौ शैलः पर्वतः च । नितम्बभागः शैलमध्यदेशः । कान्ततरा सुन्दरतरा । गन्धपाषाणवती मनःशिलादिधातुपाषाणमयी । उपत्यका पर्वतासन्नभूमिः ("उपत्यकाद्रेरासन्ना भूमिः" इति अमरः) । शिशिरम् शीतलम् । इन्दीवराणि नीलकमलानि (तदाख्यानि) अरविन्दानि कमलानि तेषाम् मकरन्दबिन्दुभिः मधुकणिकाभिः चन्द्रकोत्तरम् मेचकप्रचुरम् मयूरबर्हवत् नानावर्णम् । गोत्रवारि पर्वतनिर्झरजलम् । रम्यः रमणीयः । अनेकवर्णाः नानावर्णयुक्ताः कुसुममन्जर्यः पुष्पवल्लर्यः ताभिः मन्जुलतरः अतीव मनोऽभिरामः । तरुवनस्य वृक्षप्रधानस्य अरण्यस्य आभोगः विस्तारः । अतृप्ततरया अत्यन्तम् सतृष्णया (दर्शनेच्छातिशयात्) । दृशा दृष्ट्या । बहु बहु वारम् वारम् । अलक्षितम् अज्ञातम् यथा स्यात् तथा अध्यारूढम् आरूढम् क्षोणीधरस्य पर्वतस्य शिखरम् येन सः । शोणीभूतम् रक्तवर्णीभूतम् । उत्प्रभाभिः

सूचक किलकारी भरी और मेरी खातिर की ।

उधर वह अनिवारणीय नाव उलटी हवा से प्रेरित होकर दूर तक झपटती हुई किसी द्वीप में पहुँचकर कसकर उससे चिपक गई । वहाँ स्वादिष्ट पानी, ईंधन, कन्द-मूल और फल इकट्ठे करने की इच्छा से सुदृढ़ रूप से पत्थर की चक्की (लंगर) गिराकर उतर पड़े । वहाँ विशाल पर्वत था । 'धन्य है पर्वत का यह रमणीय मध्य भाग ! धन्य है यह अतीव सुन्दर सुगन्धित पत्थरों की घाटी ! धन्य है यह पहाड़ी झरने का जल जो शीतल और नील-कमल-नामक कमलों के मधु-बिन्दुओं से उभरे हुए मोरपंख की छटा वाला है । धन्य है यह कमनीय वृक्ष-प्रधान जंगल का विस्तार जो नाना-रंगों की पुष्प-मञ्जरियों से विशेष सुन्दर है !' यह कहकर मैं अतीव अतृप्त दृष्टि से बहुत-बहुत देखता हुआ पहाड़ के शिखर पर कब चढ़ गया,

---

१. दुर्वहा । २. पतित । ३. शैलेयवती । ४. मन्जरीभरः ।

शोणीभूतमुत्प्रभाभिः पद्मरागसोपानशिलाभिः किमपि नालीकपरागधूसरं सरः समध्यगमम्। तत्र स्नातश्च[1] कांश्चिदमृतस्वादून्बिसभङ्गानास्वाद्य,अंसलग्नकह्लारस्तीरवर्तिना केनापि भीमरूपेण ब्रह्मराक्षसेनाभिपत्य कोऽसि ? कुतस्त्योऽसि ?' इति निर्भर्त्सयताभ्यधीये। निर्भयेन च मया सोऽभ्यधीयत–'सौम्य, सोऽहमस्मि द्विजन्मा। शत्रुहस्तादर्णवम्, अर्णवाद्यवननावम्, यवननावश्चित्रग्रावाणमेनं पर्वतप्रवरं गतो यदृच्छयास्मिन्सरसि विश्रान्तः, भद्रं तव' इति। सोऽब्रूत —'न चेद्ब्रवीषि प्रश्नानश्नामि त्वाम्' इति। मयोक्तम्—'पृच्छा तावद् भवतु' इति। अथावयोरेकयार्ययासीत्संलापः—

उद्गतकान्तिभिः पद्मरागसोपानशिलाभिः माणिक्यमयसोपानप्रस्तरैः। किमपि अवर्णनीयम्। नालीकस्य पद्मस्य ("नालीकम् पद्मबाणयोः" इति वैजयन्ती)। परागैः किञ्जल्कैः धूसरम् ईषत्पाण्डु ('ईषत्पाण्डुस्तु धूसरः" इति अमरः)। सरः तडागम्। समभ्यगमम् प्राप्तवान्। अमृतवत् स्वादून् मधुरान्। विसस्य मृणालस्य भङ्गान् खण्डान्। अंसे स्कन्धे लग्नम् सक्तम् कह्लारम् श्वेतकमलम् यस्य सः। भीमरूपेण भयङ्कराकृत्या। अभिपत्य सहसा आगत्य। कुतस्त्यः कुतः आगतः। निर्भर्त्सयता तर्जयता। अभ्यधीये कथितः। मया (मित्रगुप्तेन)। अभ्यधीयत कथितः। सौम्य भद्र। द्विजन्मा द्विजः। अर्णवः समुद्रः तम्। नावम् नौकाम्। नावः नौकातः। चित्राः वहुवर्णाः। अद्भुताः वा ग्रावाणः प्रस्तराः यत्र तम्। पर्वतप्रवरम् पर्वतश्रेष्ठम्। गतः प्राप्तः। यदृच्छया स्वेच्छया। भद्रम् कल्याणम्। सः (ब्रह्मराक्षसः)। अब्रूत उक्तवान्। चेत् यदि। ब्रवीषि उत्तरयसि। अश्नामि भक्षयिष्यामि। पृच्छा प्रश्नः। तावत् प्रथमम्। आवयोः मम राक्षसस्य च। आर्यया आर्यानाम्ना छन्दसा। संलापः परस्परभाषणम्। क्रूरम् निर्दयम्। गृहिणः

यह पता ही न चला और एक अवर्णनीय तालाब के पास पहुँचा जो ऊपर उठ रही कान्ति वाले लाल (माणिक्य) की सीढ़ियों के पत्थरों से लाल और कमल के पराग से भूरा हो गया था। वहां नहाकर अमृत की तरह स्वादिष्ट मृणाल (कमल-डण्ठल) के कुछ टुकड़ों का स्वाद लिया। मेरे कन्धे पर श्वेत-कमल लगा था। तभी तटवर्ती भयंकर आकृति वाले एक ब्रह्म राक्षस ने झपटकर डाँटते हुए मुझसे कहा, 'कौन हो ? कहाँ के हो ?' लेकिन मैंने निडर होकर उससे कहा—'भद्र, मैं ब्राह्मण हूँ। दुश्मन के हाथ से समुद्र में, समुद्र से यवनों की नाव में, यवनों की नाव से रंग-बिरंगे (अद्भुत) पत्थर वाले इस श्रेष्ठ पहाड़ पर पहुँचकर यों ही इस तालाब में थकावट मिटा रहा था। तुम्हारा कल्याणे हो।' वह बोला—'यदि प्रश्न का उत्तर नहीं दोगे तो तुम्हें खा जाऊँगा।' मैंने कहा—'तो फिर प्रश्न हो।' अब हम दोनो के बीच एक आर्या (छन्द) में वातचीत हुई :—

---

[1] स्नात्वा ततश्च।

क्लान्तां चोद्वहन्वनं जगाहे। स्वमांसासृगपनीतक्षुत्पिपासां तां नयन्नन्तरे[1] कमपि निकृत्त[2]पाणिपादकर्णनासिकमवनिपृष्ठे विचेष्टमानं पुरुषमद्राक्षीत्। तमप्यार्द्राशयः स्कन्धेनोद्वहन्कन्दमूलमृगबहुले गहनोद्देशे यत्नरचितपर्णशालश्चिरमवसत्। अमुं च रोपितव्रणमिङ्गुदीतैलादिभिरामिषेण शाकेनात्मनिर्विशेषं पुपोष। पुष्टं च तमुद्रिक्तधातुमेकदा मृगान्वेषणाय च प्रयाते धन्यके सा धूमिनी रिरंसयोपातिष्ठत्। भर्त्सितापि तेन बलात्कारमरीरमत्। निवृत्तं च पतिमुदकाभ्यर्थिनम् 'उद्धृत्य कूपात्पिब,[3] रुजति मे शिरः शिरोरोगः' इत्युदञ्चनं सरज्जुं पुरश्चिक्षेप। उदञ्चन्तं[4] च तं कूपादपः, क्षणात्पृष्ठतो गत्वा प्रणुनोद। तं च विकलं स्कन्धेनो-

धारयन्। जगाहे अविशत्। मांसम् च असृक् रक्तम् च ताभ्याम् अपनीता दूरीकृता क्षुत् क्षुधा च पिपासा तृषा च यस्याः ताम्। नयन् वहन्। अन्तरे मध्ये। निकृत्तम् छिन्नम् पाणिपादकर्णनासिकम् (पाणिः च पादः च कर्णः च नासिका च इति समाहारद्वन्द्वसमासः) यस्य तम्। अवन्याः पृथ्व्याः पृष्ठे तले। विचेष्टमानम् लुठन्तम्। अद्राक्षीत् अपश्यत्। आर्द्रः दयायुक्तः आशयः हृदयम् यस्य सः। कन्दानि च मूलानि च मृगाः च बहुलानि यत्र तस्मिन्। गहनस्य वनस्य उद्देशे प्रदेशे। यत्नेन रचिता पर्णशाला उटजः येन सः। चिरम् बहुकालम्। अमुम् (पुरुषम्)। रोपितव्रणम् शुष्कक्षतम्। इङ्गुदी तापसतरुः (इति अमरः)। आमिषेण मांसेन। आत्मनिर्विशेषम् स्वतुल्यम्। पुपोष अवर्धयत्। उद्रिक्तधातुम् ष्टशरीरम्। एकदा एकस्मिन् काले। प्रयाते गते। रिरंसया रन्तुम् इच्छया। उपातिष्ठत् तस्य समीपे उपस्थिता। भर्त्सिता सकोपम् निवारिता। बलात्कारम् बलपूर्वकम्। अरीरमत् क्रीडाम् अकरोत्। निवृत्तम् परावृत्य आगतम्। उदकाभ्यर्थिनम् जलाकाङ्क्षिणम्। रुजति पीडयति। उदञ्चनम् जलनिष्कासनपात्रम् ("उत्सेचनं सेकपात्रं तथोदञ्चनमित्यपि।" इति वैजयन्ती)। सरज्जुम् रज्ज्वा दोरकेण सह वर्तमानम्। पुरः (पत्युः) पुरतः। चिक्षेप त्यक्तवती। उदञ्चयन्तम् निष्कासयन्तम्। तम् (पतिम्)। अपः जलम्। प्रणुनोद

में प्रविष्ट हुआ। अपने गोश्त और खून से उसकी भूख-प्यास दूर कर उसे ढोते हुए उसने बीच में किसी आदमी को जमीन पर तड़पता हुआ देखा। उसके हाथ, पैर, कान और नाक कटी थीं। करुणार्द्र-चित्त होकर उसे भी कन्धे पर ढोते हुये जंगल के एक ऐसे हिस्से में पहुचा जहाँ कन्द-मूल और पशुओं की बहुतायत थी। वहाँ यत्न-पूर्वक पत्तों की कुटी बनाकर चिरकाल तक रहा। हिंगोट के तेल आदि से उसके घाव सुखाकर मांस और साग से उसका पोषण अपने और उसमें कोई फर्क न रखकर किया। जब वह तगड़ा हो गया और उसकी धातुओं में वृद्धि हो गई तब एक बार जब धन्यक पशु की खोज में चला गया था, उसके पास वह धूमिनी रमण की इच्छा से उपस्थित हुई। उसके द्वारा डाँटी जाने पर भी उसने जबर्दस्ती रमण किया। पति ने लौटकर पानी माँगा तब 'कुयें से निकाल कर पी लो। सिर की बीमारी (पीड़ा) मुझे कष्ट दे रही है।" यह कहकर रस्सी के साथ पानी निकालने का बरतन सामने फेंक दिया। जब वह कुयें से पानी निकाल रहा था, 'तब उसने क्षण भर

---

[1] अन्तरा। [2] अरिनिकृत्त। [3] पिब जलम्। [4] उदञ्चयन्तम्।

दुह्य देशाद्देशान्तरं परिभ्रमन्ती पतिव्रताप्रतीतिं लेभे, बहुविधाश्च पूजाः। पुनरवन्तिराजानुग्रहादतिमहत्या भूत्या न्यवसत्। अथ पानीयार्थिसार्थजनसमापत्तिदृष्टोद्धृतमवन्तिषु भ्रमन्तमाहारार्थिन भर्तारमुपलभ्य सा धूमिनी 'येन मे पतिर्विकलीकृतः स दुरात्मायम्' इति तस्य साधोश्चित्रवधमज्ञेन राज्ञा समादेशयांचकार। धन्यकस्तु दत्तपश्चाद्बन्धो वध्यभूमिं नीयमानः सशेषत्वादायुषः 'यो मया विकलीकृतोऽभिमतो भिक्षुः, स चेन्मे पापमाचक्षीत, युक्तो मे दण्डः' इत्यदीनमधिकृत जगाद। को दोषः' इत्युपनीय दर्शितेऽमुष्मिन्स विकलः पर्यश्रुः पादपतितस्तस्य साधोस्तत्सुकृतमसत्याश्च तस्यास्तथाभूतं दुश्चरितमार्य-

---

प्रेरितवती। तम् (पुरुषम्)। विकलम् हीनाङ्गम्। उदुह्य नीत्वा। अन्यः देशः देशान्तरम्। पतिव्रताप्रतीतिम् सतीख्यातिम्। लेभे प्राप्नोत्। बहुविधाः विविधाः। पूजाः सम्मानानि। भूत्या ऐश्वर्येण। पानीयार्थिनः जलेच्छवः च ते सार्थजनाः वणिजः तैः समापत्त्या यदृच्छया दृष्टः अवलोकितः च उद्धृतः (कूपात्) च तम्। भर्तारम् पतिम्। उपलभ्य प्राप्य। पतिः (विकलः)। दुरात्मा दुष्टः। साधोः सज्जनस्य। चित्रवधम् विचित्रप्रकारेण मारणम्। अज्ञेन अजानता। समादेशयांचकार आज्ञापयत्। दत्तः अर्पितः पश्चात् पृष्ठे बन्धः बन्धनम् यस्य सः। वध्यभूमिम् वधस्थानम्। सशेषत्वात् अवशिष्टतया। आयुषः जीवनस्य। अभिमतः निर्णीतः। चेत् यदि। मे मम। पापम् अपराधम् (विकलीकरणरूपम्)। आचक्षीत कथयेत्। युक्तः उचितः। अदीनम् दीनतारहितम् यथा स्यात् तथा। अधिकृतम् अधिकारिणम्। जगाद अवदत्। उपनीय (धन्यकम्) आदाय। अमुष्मिन् तस्मिन् (धन्यके)। पर्यश्रुः परिगतम् व्याप्तम् अश्रु नेत्रजलम् यस्य सः। तत् अनुभूतम्। सुकृतम् पुण्यम् (स्वम् प्रति उपकारम्)। असत्याः कुलटायाः। तस्याः (धूमिन्याः)। तथाभूतम् पूर्वाचरितम्। दुश्चरितम् पापम्। आर्या श्रेष्ठा बुद्धिः मतिः यस्य सः।

में पीछे पहुँचकर ढकेल दिया। फिर उस अङ्ग-हीन को कंधे पर लादकर उसने एक जगह से दूसरी जगह घूमती हुई, सती के रूप में प्रसिद्धि और अनेक प्रकार का सम्मान प्राप्त किया। इसके बाद अवन्ति-नरेश की कृपा से अत्यधिक ऐश्वर्य के साथ रहने लगी। तब उस धूमिनी ने पति को देखा जो पानी के इच्छुक सौदागरों के द्वारा संयोग से देखा और निकाला गया था तथा अवन्ति में भोजन की इच्छा से घूम रहा था। उस-(धूमिनी) ने 'जिसके द्वारा मेरा पति अङ्ग-रहित किया गया है, वह दुष्ट यह रहा' (यह) कहकर न जानने वाले राजा के द्वारा उस सज्जन के विचित्र प्रकार से वध की आज्ञा कराई। जब धन्यक के हाथ पीछे बाँध दिये गये और उसे फाँसी-घर ले जाया जा रहा था, तब उसने उम्र बची होने से 'जिस भिखारी के बारे में यह निर्णय किया गया है कि उसे मैंने अङ्ग-रहित किया है, यदि वह मेरा अपराध कहे तो मुझे दी गई सजा ठीक है' (यह) अधिकारी से दीनता-रहित होकर कहा। 'क्या हर्ज है' कहकर उसे ले जाकर उस अङ्ग-रहित को दिखाया गया। उस सद्बुद्धि वाले ने आँसुओं से तर होकर पैर पर गिरकर उस भले आदमी का वह पुण्य और उस

बुद्धिराचचक्षे। कुपितेन राज्ञा विरूपितमुखी सा दुष्कृतकारिणी कृता श्वभ्यः पाचिका। कृतश्च धन्यकः प्रसादभूमिः। तद्ब्रवीमि—'स्त्रीहृदयं क्रूरम्' इति।

पुनरनुयुक्तो गोमिनीवृत्तान्तमाख्यातवान्—'अस्ति द्रविडेषु काञ्ची नाम नगरी। तस्यामनेककोटिसारः श्रेष्ठिपुत्रः शक्तिकुमारो नामासीत्। सोऽष्टादशवर्षदेशीयश्चिन्तामापेदे—'नास्त्यदाराणामननुगुणदाराणां वा सुखं नाम। तत्कथं नु गुणवद्विन्देयं[1] 'कलत्रम्' इति। अथ परप्रत्ययाहृतेषु दारेषु यादृच्छिकीं संपत्तिमनभिसमीक्ष्य कार्तान्तिको नाम भूत्वा वस्त्रान्तपिनद्धशालिप्रस्थो भुवं बभ्राम।

आचचक्षे अवर्णयत्। कुपितेन क्रुद्धेन। विरूपितम् नासादिच्छेदेन कुत्सितम् मुखम् यस्याः सा ताम्। सा (धूमिनी)। दुष्कृतकारिणी पापिनी। श्वभ्यः कुक्कुरेभ्यः। पाचिका पाककर्त्री। प्रसादभूमिः कृपापात्रम्। तत् अतः। ब्रवीमि वदामि।

पुनः ततः। अनुयुक्तः पृष्टः। गोमिन्याः वृत्तान्तम् चर्चाम्। आख्यातवान् अवदत्। द्रविडेषु द्रविडदेशे[2]। तस्याम् (काञ्च्याम्[3])। अनेककोटिसारः बहुकोटिमूलधनयुक्तः। श्रेष्ठिनः वणिजः पुत्रः। अष्टादशवर्षदेशीयः किंचिन्न्यूनाष्टादशवर्षः (ईषदसमाप्तौ कल्पब्देश्यदेशीयरः)। आपेदे प्राप्तः। न दाराः भार्या येषाम् तेषाम्। न अनुगुणाः अनुकूलाः दाराः भार्या येषाम् तेषाम्। विन्देयम् प्राप्नुयाम्। कलत्रम् भार्याम्। परस्य अन्यस्य प्रत्ययेन विश्वासेन आहृतेषु आनीतेषु दारेषु भार्यायाम्। यादृच्छिकीम् अभीष्टाम्। सम्पत्तिम् गुणसम्पत्तिम्। अनभिसमीक्ष्य अदृष्ट्वा। कार्तान्तिकः लक्षणज्ञः ("कार्तान्तिको लक्षणज्ञः" इति वैजयन्ती)। नाम (अलोके)। वस्त्रस्य अन्तेन प्रान्तेन पिनद्धम् शालिप्रस्थम् धान्यमानविशेषः येन सः।

कुलटा का उस प्रकार का पाप कह दिया। राजा ने कुपित होकर उस पापिनी का मुख (नाक-कान काटकर) विकृत कराकर कुत्तों की रसोइया बना दिया और धन्यक को कृपापात्र बनाया। इसलिये कहता हूँ—'स्त्री का हृदय निर्दय होता है।'

फिर पूछा जाने पर मैंने गोमिनी का वृत्तान्त कहा—'द्रविड़ देश में काञ्ची-नामक नगरी है। उसमें शक्तिकुमार नामक कई करोड़ की पूँजी वाला सेठ पुत्र था। वह जब लगभग अट्ठारह वर्ष का हो गया, तब उसने सोचा—'उस व्यक्ति को निश्चय ही सुख नहीं है जिसके पत्नी न हो या अनुकूल पत्नी न हो। तो गुणी पत्नी कैसे प्राप्त करूँ?' इसके बाद दूसरों के विश्वास पर लाई गई पत्नियों में अभीष्ट (गुण-) वैभव न देखकर सामुद्रिक (रेखा से भविष्य बताने वाला) का स्वांग रचकर कपड़े के छोर में प्रस्थ (चार सेर) भर शालि (एक प्रकार का

---

१. विधेयम्।

२. गोदावरी के दक्षिण कावेरी के आस-पास का भाग। इसके उत्तर में जंगल था। इसकी राजधानी काञ्ची थी।

३. काञ्ची आधुनिक कांजीवरम् है। यह द्रविड़ देश की राजधानी थी। यह वेगावती नदी के तट पर बसी है और मद्रास से पश्चिम-दक्षिण दिशा में ६७ किलोमीटर की दूरी पर है।

'लक्षणज्ञोऽयम्' इत्यमुष्मै कन्याः कन्यावन्तः प्रदर्शयांबभूवुः । यां कांचिल्लक्षणवतीं सवर्णां कन्यां दृष्ट्वा स किल स्म ब्रवीति—'भद्रे, शक्नोषि किमनेन शालिप्रस्थेन गुणवदन्नमस्मानभ्यवहारयितुम्' इति । स हसितावधूतो गृहाद्गृहं प्रविश्याभ्रमत् । एकदा तु शिविषु कावेरीतीर[1]पत्तने सह पितृभ्यामवसितमहर्धिमवशीर्णभवनसारां धात्र्या प्रदर्श्यमानां कांचन विरलभूषणां कुमारीं ददर्श । अस्यां संसक्तचक्षुश्चातर्कयत्—'अस्याः खलु कन्यकायाः सर्व एवावयवा नातिस्थूला नातिकृशा नातिह्रस्वा नातिदीर्घा न विकटा मृजावन्तश्च । रक्ततलाङ्गुली यवमत्स्य-

भुवम् पृथ्वीम् । बभ्राम अभ्रमत् । अमुष्मै (शक्तिकुमाराय) । कन्यावन्तः कन्यापितरः । प्रदर्शयांबभूवुः अदर्शयन् । लक्षणवतीम् सुलक्षणाम् । सवर्णाम् समानजातीयाम् । सः (शक्तिकुमारः) । किल (ऐतिह्ये) । स्म ब्रवीति अवदत् । भद्रे कल्याणि । गुणवत् स्वादु । अभ्यवहारयितुम् भोजयितुम् । हसितः उपहसितः अवधूतः तिरस्कृतः च । शिविषु कावेरीदक्षिणतीरेषु ['शिविर्मरुद्रथायास्तु दक्षिणं तीर (वर्ष) मिष्यते ।' इति वैजयन्ती] । कावेरीतीरपत्तने कावेरीतटवर्त्तिनि पत्तने नगरे । पितृभ्याम् माता च पिता च पितरौ ताभ्याम् । अवसिता समाप्ता महती ऋद्धिः सम्पत्तिः यस्याः ताम् । अवशीर्णम् नष्टम् भवनम् गृहम् सारम् श्रेष्ठम् धनम् यस्याः ताम् । प्रदर्श्यमानाम् प्रस्तूयमानाम् । विरलानि अल्पानि भूषणानि अलङ्काराः यस्याः ताम् । कुमारीम् बालाम् । ददर्श अपश्यत् । अस्याम् (बालायाम्) । संसक्ते लग्ने चक्षुषी नेत्रे यस्य सः । अतर्कयत् अचिन्तत् । अवयवाः अङ्गानि । नातिस्थूलाः अनतिपीनाः । नातिकृशाः अनतिपुष्टाः । नातिह्रस्वाः अनत्यल्पाः । नातिदीर्घाः अनतिविस्तीर्णाः विकटाः कुरूपाः । मृजा शुद्धिः तद्वन्तः । रक्तम् अरुणम् तलम् यासाम् ताः अङ्गुलयः ययोः तौ । यवः सस्यविशेषः मत्स्यः मीनः कमलम् जलजम् कलशः घटः तदादयः अनेकाः बहवः पुण्याः शुभाः

अनाज) बाँधकर पृथ्वी का भ्रमण करने लगा । जिस किसी सुन्दर लक्षणों वाली सजातीय कन्या को देखता था, कहता था—'हे कल्याणी, क्या तुम इस प्रस्थ भर शलि से हमें स्वादिष्ट भोजन करा सकतीं हो ?' उसकी हँसी उड़ाई गई और तिरस्कार किया गया । एक घर से दूसरे घर में प्रवेश कर घूमा । एक वार शिवि[2] नामक देश में कावेरी नदी के किनारे के नगर में अपने माता-पिता के साथ (आई) एक लड़की को देखा । उसका महान् वैभव समाप्त हो चुका था । कोठी और श्रेष्ठ धन बर्बाद हो चुका था । गहने बहुत कम थे । धाय ने उसे दिखाया । उस पर नेत्र गड़ाकर उसने सोचा—'इस कन्या के सभी अङ्ग निश्चय ही न तो बहुत मोटे हैं, न बहुत पतले हैं । न बहुत छोटे हैं और न बहुत लम्बे । कुरूप नहीं हैं । स्वच्छता-युक्त हैं । हाथों की उँगलियों के नीचे का भाग लाल है । उन-(हाथों) पर

---

[1] कावेरीदक्षिणतीरेषु ।

[2] कावेरी नदी के दक्षिणी किनारे पर स्थित स्थान । उत्तर दिशा में स्थित गांधार देश के पास भी एक शिवि-नामक देश था जो राजा शिवि के नाम पर था । यहाँ उससे मतलब नहीं है ।

कमलकलशाद्यनेकपुण्यलेखालाञ्छितौ करौ, समगुल्फसंधी[1] मांसलावशिरालौ चाङ्घ्री, जङ्घे चानुपूर्ववृत्ते, पीवरोरुग्रस्ते इव दुरुपलक्ष्ये जानुनी, सकृद्विभक्तश्चतुरस्रः ककुन्दरविभागशोभी रथाङ्गाकारसंस्थितश्च नितम्बभागः, तनुतरमीषन्निम्नं गम्भीर नाभिमण्डलम्, वलित्रयेण चालंकृतमुदरम्, उरोभागव्यापिनावुन्मग्नचूचुकौ[2] विशालारम्भशोभिनौ पयोधरौ, धनधान्यपुत्रभूयस्त्वचिह्नलेखालाञ्छिततले स्निग्धोद[3]ग्रकोमलनखमणी ऋज्व[4]नुपूर्ववृत्तताम्राङ्गुली संनतांसदेशे सौकुमार्यवत्यौ

लेखाः रेखाः ताभिः लाञ्छितौ चिह्नितौ। समे छिद्ररहिते गुल्फे घुटिके ("तद्ग्रन्थी घुटिके गुल्फौ" इति अमरः) तयोः संधिः ययोः तौ। मांसलौ पुष्टौ। अशिरालौ शिरारहितौ। अङ्घ्री चरणौ। अनुपूर्ववृत्ते क्रमेण स्थूले। पीवरौ पीनौ यौ ऊरू ताभ्याम् ग्रस्ते आक्रान्ते दुरुपलक्ष्ये दुर्दर्शे। सकृत् समम् ("एकवारे समे सकृत्" इति अजयः)। चतस्रः अस्रयः यस्य चतुरस्रः सर्वतः समः। ककुन्दरविभागशोभी नितम्बस्थितगर्तेन यः विभागः तेन शोभते एवंशीलः। रथाङ्गस्य चक्रस्य आकारेण आकृत्या संस्थितः विराजितः। तनुतरम् विशेषेण तनु सूक्ष्मम्। ईषत् किञ्चित्। निम्नम् नतम्। गम्भीरम् गभीरम्। वलित्रयेण त्रिवल्या। अलङ्कृतम् भूषितम्। उन्मग्ने उद्गते चूचुके ययोः तौ ("चूचुकं तु कुचाग्रं स्यात्" इति अमरः)। विशालारम्भशोभिनौ अतिविस्तारेण शोभमानौ। पयोधरौ स्तनौ। धनम् च धान्यम् सस्यं च पुत्राः च तेषाम् भूयस्त्वम् बहुलता तस्य सूचिकाः याः चिह्नलेखाः चिह्नभूताः रेखाः ताभिः लाञ्छितम् चिह्नितम् तलम् ययोः ते। स्निग्धाः मसृणाः उदग्राः श्रेष्ठाः कोमलाः मृदुलाः च (नखाः मणयः इव) नखमणयः ययोः ते। ऋज्वः सरलाः अनुपूर्ववृत्ताः क्रमेण वर्तुलाः ताम्राः अरुणाः च अङ्गुलयः ययोः ते। संगतः नतः अंसदेशः स्कन्धप्रान्तः ययोः त। सौकुमार्यवत्यौ कोमलता-

---

जौ, मछली, कमल, घड़ा आदि अनेक मंगल-रेखाओं के चिह्न हैं। पैरों के टखनों का जोड़ बराबर (छेद-रहित) है। वे (पैर) मांसल हैं और नसों से भरे नहीं दिखते। पिण्डलियाँ क्रमशः (नीचे से ऊपर) अधिक गोल होती जाती हैं। घुटने मांसल जाँघों के द्वारा लील से लिये गये हैं, अतः उन्हें कठिनाई से लक्ष्य किया जा सकता है। नितम्ब-(पीठ के नीचे का फूला भाग) प्रदेश समान रूप से बँटा हुआ, एकरूप, गर्त के विभाग से शोभित होने वाला तथा पहिये की आकृति में विराजमान है। गोलाकार नाभि बहुत पतली, कुछ दबी और गहरी है। पेट तीन रेखाओं से विभूषित है। स्तन वक्ष-प्रदेश भर में व्याप्त हैं। उनके अग्र भाग उठे हुये हैं तथा अतिविस्तार से वे शोभित हैं। लता-तुल्य भुजाओं में स्थित हथेली धन, अन्न और पुत्रों की अधिकता-सूचक चिह्न वाली रेखा से चिह्नित है, उन-(बाहु-लताओं) के मणि-तुल्य नख चिकने, श्रेष्ठ और कोमल हैं, उँगलियाँ सीधी, क्रमशः गोलाई लिये हुये

---

[1] मग्नगुल्फसंधी। [2] उन्मुखाननचूचुकौ। [3] स्निग्धोदर। [4] मृदु।

निमग्नपर्वसंधी च बाहुलते, तन्वी कम्बुवृत्तवन्धुरा च कंधरा, वृत्तमध्यविभक्तरागाधरम् असंक्षिप्तचारुचिबुकम् आपूर्णकठिनगण्डमण्डलम् संगतानुवक्रनीलस्निग्धभ्रूलतम् अनतिप्रौढतिलकुसुमसदृशनासिकम् असितधवलरक्तत्रिभागभासुरम[1]धुराधीरसचारमन्थरायतेक्षणम् इन्दुशकलसुन्दरललाटम् इन्द्रनीलशिलाकाररम्यालकपङ्क्ति द्विगुणकुण्डलितम्लाननालीकनालललितलम्बश्रवणपाशयुगलमाननकमलम्, अनतिभङ्गुरो बहुलः पर्यन्तोऽप्यकपिलरुचिरायामवानेकैकनिसर्ग-

सहिते निमग्नः ईषत् अवनतः पर्वसन्धिः ययाः ते। तन्वी क्षीणा। कम्बुः शङ्खः ("शङ्खः स्यात् कम्बुरस्त्रियौ" इति अमरः)। तद्वत् वृत्ता वर्तुला वन्धुरा शोभना। कन्धरा ग्रीवा। वृत्तम् वर्तुलम् मध्ये मध्यभागे तत्र विभक्तः पृथक्कृतः रागः रक्तिमा यस्य तादृशः अधरः यस्मिन् तत्। असंक्षिप्तम् बहु चारु शोभनम् चिबुकम् हनुः यत्र तत्। आपूर्णम् पुष्टम् कठिनम् अशिथिलम् गण्डमण्डलम् मण्डलाकारः गण्डः कपोलः यत्र तत्। न संगते परस्परमिलिते अनुवक्र वक्राकारे नीले श्यामे च स्निग्धे मसृणे च भ्रूलते यत्र तत्। अनतिप्रौढम् नातिविकसितम् तिलकुसुमम् तत्सदृशी नासिका यत्र तत्। असितः कृष्णः च धवलः श्वेतः च रक्तः अरुणः च (एते) त्रयः भागाः यत्र तादृशे च भासुरे उज्ज्वले च मधुरे मनोज्ञे च अधीरसञ्चारे (अधीरः चञ्चलः संचारः गतिः ययोः ते) च मन्थरे मन्दे च आयते विस्तृते च ईक्षणे नेत्रे यत्र तत्। इन्दोः चन्द्रस्य शकलम् खण्डम् तद्वत् सुन्दरम् ललाटम् अलिकम् यत्र तत्। इन्द्रनीलस्य नीलमणेः या शिला तदाकारा रम्या रमणीया अलकपङ्क्तिः चूर्णकुन्तलावलिः यत्र तत्। द्विगुणम् द्विः आवृत्तम् कुण्डलितम् कुण्डलरूपेण धृतम् म्लानम् मलिनम् यत् नालीकम् कमलम् ("नालीकः शरशल्याङ्गेष्वब्जखण्डे नपुंसकम्।" इति मेदिनी।) तस्य नालेन वृन्तेन ललितौ सुन्दरौ लम्बौ च यौ श्रवणपाशौ (प्रशस्तौ श्रवणौ कर्णौ श्रवणपाशौ) तयोः युगलम् यत्र। अनतिभङ्गुरः नातिकुटिलः। पर्यन्ते प्रान्ते अकपिला न कपिला पिङ्गला रुचिः कान्तिः यस्य सः। आयामः विस्तारः तद्वान्। एकै-

पतली होती जाती तथा लाल हैं, कंधे का भाग अच्छी तरह झुका है, उन-(बाहु-लताओं) में कोमलता है तथा जोड़ की गाँठ दबी हुई है। गरदन पतली तथा शंख के समान गोल और सुन्दर है। मुख कमल के समान है। उसमें निचला ओंठ गोल है; उस (ओंठ) के मध्य भाग में लालिमा बँटी हुई है। ठोड़ी अत्यन्त कमनीय है। गोल गाल भरा हुआ और तना है। लता के समान भौंहें न सटी हुई, टेढ़ी, काली, तथा चिकनी हैं। नाक तिल के उस फूल के समान है जो अत्यन्त विकसित नहीं हुआ है। आँखें काले, सफेद और लाल इन तीन भागों से युक्त, चमकीली, आकर्षक और चंचल गति वाली, धीमी और विस्तृत हैं। ललाट चन्द्रमा के खण्ड के समान सुन्दर है। घुँघराले बालों की पाँत नीलम के सिल की आकृति की और रमणीय है। सुन्दर कानों की जोड़ी दुहरे किये गये और कुण्डल बनाये गये मुँदे कमल की नाल के कारण सुंदर और लंबी है। केश-कलाप बहुत टेढ़ा नहीं है।

---

[1] मधुरधीर।

समस्निग्धनीलो गन्धग्राही च मूर्धजकलापः । सेयमाकृतिर्न व्यभिचरति शीलम् । आसज्जति च मे हृदयमस्यामेव । [1]तत्परीक्ष्यैनामुद्वहेयम् । अविमृश्यकारिणां हि नियतमनेकाः पतन्त्यनुशयपरम्पराः' इति स्निग्धदृष्टिराचष्ट—'भद्रे, कच्चिदस्ति कौशलं शालिप्रस्थेनानेन संपन्नमाहारमस्मानभ्यवहारयितुम्' इति ।

कम् निसर्गेण स्वभावेन समः तुल्यः च स्निग्धः मसृणः च नीलः श्यामः च । गन्धग्राही सुगन्धयुक्तः । मूर्धजकलापः केशपाशः । ("स्निग्धोन्नताग्रतनुताम्रनखौ कुमार्याः पादौ समोपचितचारुनिगूढगुल्फौ । श्लिष्टाङ्गुली कमलकान्तितलौ च यस्यास्तामुद्वहेद् यदि भुवोऽधिपतित्वमिच्छेत् ॥ मत्स्याङ्कुशाब्जयववज्रहलासिचिह्नावस्वेदनौ मृदुतलौ चरणौ प्रशस्तौ । जङ्घे च रोमरहिते विपुले सुवृत्ते जानुद्वयं सममतुल्यमसंधिदेशम् ॥ ऊरू घनौ करिकरप्रतिमावरोमावश्वत्थपत्रसदृशं विपुलं च गुह्यम् ॥ विस्तीर्णमांसोपचितो नितम्बो गुरुश्च धत्ते रशनाकलापम् । नाभिर्गभीरा विपुलाऽङ्गनानां प्रदक्षिणावर्तगता च शस्ता ॥ मध्यं स्त्रियास्त्रिवलनान्तमरोमशं च वृत्तौ घनावविषमौ कठिनावुरःस्थौ । रोमप्रवर्धितमुरो मृदु चाङ्गनानां ग्रीवा च कम्बुनिचिताऽर्थसुखानि धत्ते ॥ बन्धुजीवकुसुमोपमोऽधरो मांसलो रुचिरबिम्बरूपधृक् । कुन्दकुड्मलनिभाः समा द्विजा योषितां पतिसुखामितार्थदाः ॥ दाक्षिण्ययुक्तमशठं परपुष्टहंसवल्गुप्रभाषणमदीनमसौख्यं च । नासा समा समपुटा रुचिरप्रशस्ता दृङ्नीलनीरजदले द्युतिहारिणी च ॥ नो संगते नातिपृथू न लम्बे शस्ते भ्रुवौ बालशशाङ्कवक्रे । अर्धेन्दुसंस्थानमलोमशं च शस्तं ललाटं न तलं न तुङ्गम् ॥ कर्णयुग्ममपि युक्तमांसलं शस्यते मृदु समं समाहितम् । स्निग्धनीलमृदुकुञ्चितलम्बाः मूर्धजाः शुभकराः शिरःस्थिताः ॥ इति वराहमिहिरः ।" इति भूषणा ।) सा अनुभूता । इयम् पुरो दृश्यमाना । आकृतिः (कुमार्याः) रूपम् । व्यभिचरति त्यजति । शीलम् स्वभावम् आकारानुगामि शीलम् ("न ह्याकृतिः सुसदृशं विजहाति वृत्तम्" मृच्छकटिकम् ९।१६ । "न तादृशा आकृतिविशेषा गुणविरोधिनो भवन्ति" अभिज्ञानशाकुन्तलम् । "यत्राकृतिस्तत्र गुणा वसन्ति" बृहत्संहिता ७०।२३। "यत्राकारस्ततो गुणाः" अग्निपुराणम् २४४।६। "आकृतिमनुगृह्णन्ति गुणाः" विद्धशालभञ्जिका) । आसज्जति आसक्तं भवति । अस्याम् (कुमार्याम्) । तत् अतः । एनाम् (कुमारीम्) । उद्वहेयम् परिणयेयम् । अविमृश्यकारिणाम् अविचार्य कार्ये प्रवृत्तानाम् । हि निश्चयेन । नियतम् निःसंशयम् । अनुशयानाम् पश्चात्तापानाम् ("भवेदनुशयो द्वेषे पश्चात्तापानुबन्धयोः" इति विश्वः) परम्पराः संततयः । आचष्ट अवदत् । कच्चित् (प्रश्ने) । सम्पन्नम्

बहुत है । किनारे-किनारे भी पिङ्गल (लालिमा-युक्त काली), कान्ति रहित और विस्तार-युक्त है । प्रत्येक स्वभाव से समान, चिकना और काला है । यह अनुभूत आकार अच्छे स्वभाव से रहित नहीं हो सकता । और मेरा दिल इसी के प्रति लगा है । अतः परीक्षा करके इससे ब्याह करना चाहिये । यह पूर्ण निश्चित है कि बिना विचारे काम करने वालों के ऊपर अनेक पश्चात्ताप की परम्परायें गिरती हैं, यह सोचकर स्नेहपूर्ण दृष्टि लेकर बोला—'हे कल्याणी, क्य तुममें इस प्रस्थ भर शालि से तैयार किया हुआ भोजन मुझे कराने का कौशल

---

१. अथ च ।

ततस्तया वृद्धदासी साकूतमालोकिता। तस्य हस्तात्प्रस्थमात्रं धान्यमादाय क्वचिदलिन्दोद्देशे सुसिक्तसंमृष्टे दत्तपादशौचमुपावेशयत्। सा कन्या तान्गन्धशालीन्संक्षुद्य मात्रया विशोष्यातपे मुहुर्मुहुः परिवर्त्य स्थिरसमायां भूमौ नालीपृष्ठेन मृदुमृदु घट्टयन्ती तुषैरखण्डैस्तण्डुलान्पृथक्चकार। जगाद च धात्रीम्—'मातः, एभिस्तुषैरर्थिनो भूषणमृजाक्रियाक्षमैः स्वर्णकाराः। तेभ्य इमान्दत्वा लब्धाभिः काकिणीभिः स्थिरतराण्यनत्यार्द्राणि नातिशुष्काणि काष्ठानि मितंपचां स्थालीमुभे शरावे चाहर' इति। तथाकृते तया तांस्तण्डुलान[1]नतिनिम्नोत्तान-

निष्पन्नम् समृद्धम् वा। आहारम् भोजनम्। अस्मान् माम्। अभ्यवहारयितुम् भोजयितुम्। तया (कुमार्या)। साकूतम् साभिप्रायम् ("आकूतं स्यादभिप्रायः" इति हलायुधः)। आलोकिता दृष्टा। तस्य (शक्तिकुमारस्य)। आदाय गृहीत्वा। क्वचित् कुत्रापि। अलिन्दोद्देशे द्वारोपान्तप्रदेशे। सुष्ठु सिक्ते जलेन शीतलीकृते संमृष्टे शुद्धीकृते। दत्तम् पादशौचम् पादप्रक्षालनाय जलम् यस्मै तम् (शक्तिकुमारम्)। गन्धशालीन् सुगन्धयुक्तान् धान्यविशेषान्। संक्षुद्य कुट्टयित्वा। मात्रया अल्पपरिमाणेन ("मात्रा परिच्छदे वर्णे मानेऽल्पे" इति रत्नमाला)। विशोष्य निर्जलीकृत्य। आतपे सूर्यतापे। मुहुः मुहुः वारम् वारम्। परिवर्त्य इतस्ततः संचाल्य। स्थिरा कठिना च समा च तस्याम्। नालीपृष्ठेन मुसलविशेषेण। मृदु मृदु शनैः शनैः। घट्टयन्ती मर्दयन्ती। अखण्डैः अभग्नैः। तुषैः धान्यत्वग्भिः। धात्रीम् उपमातरम्। अर्थिनः प्रार्थिनः। भूषणानाम् अलङ्काराणाम् मृजाक्रियायाम् शुद्धीकरणे क्षमैः समर्थैः। लब्धाभिः (मूल्यरूपेण प्राप्ताभिः)। काकिणीभिः कपर्दिकाभिः मुद्राविशेषैः ("वराटकानां दशकद्वयं स्यात् सा काकिणी" इति भास्करः)। स्थिरतराणि सारयुक्तानि। अनत्यार्द्राणि अनतिसजलानि (किञ्चित् आर्द्राणि मन्दतापार्थम्) नातिशुष्काणि अनतिनिर्जलानि (मात्रया शुष्काणि शीघ्रदाहनिवारणाय)। काष्ठानि इन्धनानि। मितम् अल्पम् पचति इति मितंपचा (मितनखे च इति खश्)। स्थालीम् पाकपात्रम्। उभे द्वे। शरावे मृत्पात्रे ("शरावो वर्धमानकः" इति अमरः)। आहर आनय।

है।' तब उसने बूढ़ी नौकरानी को अभिप्राय के साथ देखा। उसके हाथ से प्रस्थ भर अन्न लेकर दरवाजे के पास के एक स्थान को भली-भाँति पानी से तर और साफ कर पैर धोने का पानी देकर बैठाया। उस लड़की ने उन सुगंधित शालियों को मलकर धूप में सीमित रूप से सुखाकर धीरे-धीरे उलट-पलटकर कड़ी और समतल जमीन पर नाली (एक प्रकार का मूसल) के नीचे के भाग से हलके हाथों कूटती हुई बिना टूटी भूसी के साथ चावल अलग कर लिये। फिर धाय से बोली—'माता, यह भूसी गहनों को साफ करने में समर्थ है। स्वर्णकार इसके ग्राहक हैं। उन्हें यह देकर प्राप्त काकिणियों (विशेष सिक्के) से ठोस, न अधिक गीली और न अधिक सूखी लकड़ियाँ कम चीज पकाने लायक (छोटी) हाँड़ी और दो कसोरे ले आओ।' उसके वैसा कर देने पर उसने वे चावल कुछ दबी, ऊपर मुख वाली तथा

---

[1] नातिनिम्न।

विस्तीर्णकुक्षौ ककुभोलूखले लोहपत्रवेष्टितमुखेन समशरीरेण विभाव्यमानमध्यतानवेन व्यायतेन गुरुणा खादिरेण मुसलेन चतुरल[1]लितोत्क्षेपणावक्षेपणायासितभुजमसकृदङ्गुलीभिरुद्धृत्योद्धृत्यावहत्य शूर्पशोधितकणकिंशारुकांस्तण्डुलानसकृदद्भिः प्रक्षाल्य क्वथितपञ्चगुणे जले दत्तचुल्लीपूजा प्राक्षिपत्। प्रश्लथावयवेषु प्रस्फुरत्सु तण्डुलेषु मुकुलावस्थामतिवर्तमानेषु संक्षिप्यानलमुपहितमुखपिधानया स्थाल्यान्नमण्डमगालयत्। दर्व्या चाव[2]घट्य मात्रया परिवर्त्य[3] समपक्वेषु सिक्थेषु

अनतिनिम्नः नातिनतः उत्तानः ऊर्ध्वमुखः विस्तीर्णः कुक्षिः उदरम् यस्य तस्मिन्। ककुभः वृक्षविशेषः ("ककुभो भूरुहे वीणाप्रसेवे" इति महीपः) तेन निर्मिते उलूखले। लोहपत्रेण पत्राकारेण लोहेन वेष्टितम् आवृतम् मुखम् यस्य तेन। विभाव्यमानम् संभाव्यमानम् मध्ये तानवम् कृशता यस्य तेन। व्यायतेन दीर्घेण। गुरुणा स्थूलेन। खादिरेण खदिरकाष्ठनिर्मितेन। चतुरम् निपुणम् च ललितम् शोभनम् उत्क्षेपणेन ऊर्ध्वीकरणेन अवक्षेपणेन अधःपातनेन आयासितौ क्लेशितौ भुजौ बाहू यस्मिन् कर्मणि तत् यथा स्यात् तथा। असकृत् वारम् वारम्। उद्धृत्य परिवर्त्य। अवहत्य ईषत् ताडयित्वा। शूर्पेण शोधिताः दूरीकृताः कणाः क्षुद्रखण्डाः किंशारुकाः सस्यशूकानि ("किंशारुः सस्यशूकं स्यात्" इति अमरः।) येषाम् तान्। असकृत् वारम् वारम्। अद्भिः जलैः। क्वथिते उष्णीकृते च पञ्चगुणे च। दत्ता कृता चुल्लीपूजा यया सा। प्रश्लथाः प्रकर्षेण श्लथाः शिथिलाः अवयवाः अङ्गानि येषाम् तेषु। प्रस्फुरत्सु स्पन्दमानेषु। मुकुलावस्थाम् कठिनस्थितिम् अतिवर्तमानेषु अतिक्रामत्सु। संक्षिप्य मन्दीकृत्य। अनलम् अग्निम्। उपहितम् स्थापितम् मुखे पिधानम् आवरणम् यस्याः तया। अन्नमण्डम् भक्तरसम्। अगालयत् अपातयत्। अवघट्य अवगाह्य। मात्रया अंशतः। समम् यथा स्यात् तथा।

फैले पेट वाली ककुभ (वृक्ष की लकड़ी) की बनी ओखली में मूसल से पीटा। उस-(मूसल) का मुँह लोहे की चादर से मढ़ा था, उसकी काया समतल थी, मध्य में पतलापन प्रतीत होता था, विशेष बड़ा, भारी और खैर की लकड़ी से बना था। निपुण और सुन्दर उत्क्षेपण (मूसल ऊपर उठाने की क्रिया) तथा अवक्षेपण (नीचे गिराने की क्रिया) के द्वारा (चावल) उँगलियों से बार-बार उठा-उठाकर (उलट-पलटकर) इस तरह धीरे-धीरे कूटा कि बाँहें थक गईं। चावल की कनियाँ और बाली के अग्रभाग सूप से पछोड़कर चांवल बार-बार पानी से धोकर उबले हुये पँचगुने पानी में, चूल्हे की पूजा (पकाये जाने वाले अन्न का थोड़ा भाग चूल्हे की आग में डालकर) के बाद, डाल दिया। जब चावल के अङ्ग, खूब ढीले हो गये, वे फूल गये तथा कली की (कड़ी) स्थिति पार कर गये, तब आग कम कर उस बटलोई से जिसके मुख पर ढक्कन लगाया गया था माँड़ गिरवा दिया। फिर कलछुल से चलाकर सीमित रूप से उलट-पुलटकर भात के समान रूप से पक जाने पर वह बटलोई औंधा

---

[1] ललितक्षेपणोत्क्षेपणायासित। [2] चावगाह्य। [3] परावृत्य।

तां स्थालीमधोमुखोमवातिष्ठिपत् । इन्धनान्यन्तःसाराण्यम्भसा समभ्युक्ष्य प्रशमिताग्नीनि कृष्णाङ्गारीकृत्य[1] तदर्थिभ्यः प्राहिणोत्—'एभिर्लब्धाः काकिणीर्दत्त्वा शाक घृत दधि तैलमामलक चिञ्चाफल च यथालाभमानय' इति । तथानुष्ठिते च तया द्वित्रानुपदंशानुपपाद्य तदन्नमण्डमार्द्रवालुकोपहितनवशरावगतमिति मृदुना तालवृन्तानिलेन शीतलीकृत्य सलवणसंभार दत्ताङ्गारधूपवास च संपाद्य, तदप्यामलकं श्लक्ष्णपिष्टमुत्पलगन्धि कृत्वा धात्रीमुखेन स्नानाय तमचोदयत् । तया च स्नानशुद्धया दत्ततैलामलकः क्रमेण सस्नौ । स्नातः[2] सिक्तमृष्टकुट्टिमे फलकमारुह्य पाण्डुहरितस्य[3] त्रिभागशेषलूनस्याङ्गणकदलीपलाशस्योपरि

सिक्थाः भक्तं तेषु । अवातिष्ठिपत् अस्थापयत् । इन्धनानि काष्ठानि । अन्तःसाराणि अदग्धोदराणि । अम्भसा जलेन । समभ्युक्ष्य सिक्त्वा । प्रशमितः शान्ताकृतः अग्निः येषाम् तानि । कृष्णाङ्गारीकृत्य शीतान् अङ्गारान् कृत्वा । तेषाम् (अङ्गाराणाम्) अर्थिभ्यः प्रार्थिभ्यः । प्राहिणोत् प्रैषयत् । एभिः (अङ्गारैः) लब्धाः (मूल्यरूपेण) प्राप्ताः । चिञ्चाफलम् तिन्तिडोफलम् । यथालाभम् लाभम् प्राप्तं वस्तु अनतिक्रम्य । तथा उक्तानुसारेण । अनुष्ठिते कृते । तया धात्र्या । द्वित्रान् कतिपयान् । उपदंशान् शाकादोन् । उपपाद्य पक्त्वा । आर्द्रवालुकायाम् उपहितम् स्थापितम यत् नवम् शरावम् तत्र गतम् स्थितम् सलवणसंभारम् लवणाद्युपकरणयुक्तम् । दत्तः अङ्गारधूपस्य दग्धाङ्गारे स्थापितस्य हिङ्ग्वादिद्रव्यस्य धूपस्य वासः गन्धः यस्मै तथाभूतम् सम्पाद्य कृत्वा । श्लक्ष्णम् सम्यक् यथा स्यात् तथा पिष्टम् । उत्पलगन्धि पद्मगन्धयुक्तम् । तम् (शक्तिकुमारम्) । अचोदयत् प्रैरयत् । तया (कुमार्या) । दत्तम् तैलम् आमलकम् च यस्मै सः । सस्नौ स्नातवान् । सिक्ते जलार्द्रीकृते मृष्टे शुद्धोकृते च कुट्टिमे बद्धभूमो । फलकम् पोठम् । आरुह्य उपविश्य । पाण्डु श्वेतम् च हरितम् च तस्य । तृतीयः भागः त्रिभागः सः शेषः यस्मिन् कर्मणि तथा लूनस्य छिन्नस्य । अङ्गणे अजिरे या कदलो कदलोवृक्षः तस्याः पला-

दी । ठोस लकड़ियाँ जल से तर कर उनकी आग शान्त कर उन्हें कोयले के रूप में बदल दिया और उनके ग्राहकों के पास भेज दिया कि इनसे प्राप्त काकिणियाँ देकर साग, घो, दहा, तेल, आँवला और इमली जितना मिल सके ले आओ । उसके द्वारा वैसा किये जाने पर दो-तीन व्यञ्जन तैयार कर भात के उस माँड़ को नये सकोरे में रखकर और गोली रेत पर बैठाकर बहुत हल्की पखे को हवा से ठंढा कर नमक आदि सामान डाला और जलते कोयले पर सुगंधित पदार्थ रखकर धुयें से सुगंधित किया । फिर उक्त आँवले का बारीक चूर्ण कमल की सुगंध से युक्त करके धाय के द्वारा स्नान कर लेने को प्रेरित किया । उस (लड़को) ने (स्वयं) स्नान से शुद्ध होकर तेल और आँवला दिया और उस (शक्तिकुमार) ने क्रम से स्नान किया । स्नान कर सिंची और साफ को हुई फर्श पर रखे पोढ़े पर बैठकर आँगन के केले के पेड़ के सफेद और हरे (हलके हरे) और इस प्रकार तोड़े गये हुये पत्ते के ऊपर कि तीन भाग (पेड़ पर ही) शेष रहें रखे हुये गीले सकोरों का जोड़ा पकड़ता हुआ बैठ गया ।

---

[1] निरुष्णाङ्गारीकृत्य । [2] स्नपितः । [3] हरितत्रि० ।

शरावद्वयं दत्त[1]मार्द्रैरभिमृशन्नतिष्ठत्। सा तु तां पेयामेवाग्रे समुपाहरत्। पीत्वा चापनीताध्वक्लमः प्रहृष्टः प्रक्लिन्नसकलगात्रः स्थितोऽभूत्। ततस्तस्य शाल्योदनस्य दर्वीद्वयं दत्त्वा सर्पिर्मात्रां सूपमुपदंशं चोपजहार। इमं च दध्ना च त्रिजातकावचूर्णितेन सुरभिशीतलाभ्यां च कालशेयकाञ्जिकाभ्यां शेषमन्नमभोजयत्। सशेष एवान्धस्यसावतृप्यत्। अयाचत च पानीयम्। अथ नवभृङ्गारसंभृतागुरुधूपधूपितमभिनवपाटलाकुसुमवासितमुत्फुल्लोत्पलग्रथितसौरभं वारि [2]नालीधारात्मना पातयांबभूव। सोऽपि मुखोपहितशरावेण हिमशिशिरकणकरालि-

शरस्य पत्रस्य। अभिमृशन् स्पृशन्। सा (कुमारी)। अग्रे प्रथमम्। समुपाहरत् आनीतवती। पेयाम् ससिक्थाम् (ओदनयुक्तम् मण्डम्) ("मण्डोऽसिक्थः ससिक्था पेया परिसिक्था यवागूश्च घनसिक्था विलेपी परिस्रुतस्त्वोदनो भक्तः" इति वाग्भटः)। अपनीतः दूरीकृतः अध्वक्लमः मार्गखेदः येन सः। प्रहृष्टः रोमाञ्चितः। प्रक्लिन्नम् विशेषेण आर्द्रम् सकलम् गात्रम् अङ्गम् यस्य सः। दर्वीद्वयम् दर्वीद्वयगृहीतम् परिमाणम्। सर्पिर्मात्राम् अल्पम् घृतम्। सूपम् वरान्नम्। उपदंशम् शाकादि। उपजहार उपानयत्। इमम् शक्तिकुमारम्। त्रिजातकम् सुगन्धिद्रव्यविशेषः तेन अवचूर्णितेन विलोडितेन। सुरभिभ्याम् सुगन्धिभ्याम् च शीतलाभ्याम् च। कालशेयम् तक्रम् ("दण्डाहतं कालशेयमरिष्टमपि गोरसः" इति अमरः)। काञ्जिकम् अम्लद्रव्यविशेषः ताभ्याम्। अन्नम् ओदनम्। अभोजयत् अखादयत्। सशेषे अवशिष्टे। अन्धसि ओदने ("मिस्सा स्त्री भक्तमन्धोऽन्नमोदनोऽस्त्री सदीदिविः" इति अमरः)। असौ (शक्तिकुमारः)। अतृप्यत् तृप्तः जातः। पानीयम् जलम्। अथ ततः। नवे नूतने भृङ्गारे जलपात्रविशेषे संभृतम् पूरितम्। अगुरुधूपेन गन्धद्रव्यविशेषधूपेन धूपितम् सुगन्धीकृतम् अभिनवैः प्रत्यग्रैः पाटलाकुसुमैः वासितम् सुगन्धीकृतम्। उत्फुल्लैः विकसितैः उत्पलैः कमलैः ग्रथितम् लग्नम् सौरभम् गन्धः यत्र तत्। वारि जलम्। नाली भृङ्गारनाली तस्याः धारात्मना धारारूपेण। पातयांबभूव अपातयत्। सः (शक्तिकुमारः)। मुखे उपहितम् स्थापितम् शरावम् तेन। हिमवत् तुषारवत् शिशिरैः शीतलैः कणैः करालिते विका-

उधर उस (लड़की) ने वह पेया (भात-युक्त माँड़) ही पहले परोसी। उसे पीकर उसकी राह चलने की थकावट दूर हो गई। रोमाञ्च हो आया और सारा शरीर खूब (पसीने से) गीला लिये हुये बैठ गया। फिर शाली का वह भात दो कलछुल देकर थोड़ा घी, चटनी और सब्जो परोसी और इस (शक्तिकुमार) को त्रिजातक (एक सुगंधित पदार्थ) के साथ फेंटे हुये दही से सुगंधित और शीतल मट्ठे तथा काँजी के साथ शेष भात खिलाया। भात के बचे रहने पर ही वह तृप्त हो गया और पानी माँगने लगा। इसके बाद नये भृङ्गार (एक प्रकार का टोंटीदार बरतन) में भरा, अगर के धुयें से सुगंधित, ताजे पाटला पुष्पों से वासित खिले कमलों से सुगंध-युक्त जल टोंटी की धार के रूप में गिराया। फिर उसने मुख पर रखे हुये सकोरे से वह पानी गले तक पिया। उसकी वरौनियाँ बर्फ-जैसे ठण्डे कणों से विस्तारित तथा

---

१. अद्भिः। २. नालीति नास्ति क्वचित्।

तारुणायमानाक्षिपक्ष्मा धारारवाभिनन्दितश्रवणः स्पर्शसुखोद्भिन्नरोमाञ्चकर्कश-कपोलः परिमलप्रवालो[1]त्पीडफुल्लघ्राणरन्ध्रो माधुर्यप्रकर्षा[2]वर्जितरसनेन्द्रियस्तदच्छं पानीयमाकण्ठं पपौ । शिरःकम्पसञ्ज्ञावारिता च पुनरपरकरकेणाचमनमदत्त कन्या । वृद्धया तु तदुच्छिष्टमपोह्य हरितगोमयोपलिप्ते कुट्टिमे स्वमेवोत्तरीय-कर्पटं व्यवधाय क्षणमशेत । परितुष्टश्च विधिवदुपयम्य कन्यां निन्ये । नीत्वैतद-नपेक्षः कामपि गणिकामवरोधमकरोत् । तामप्यसौ प्रियसखीमिवोपाचरत् । पतिं च दैवतमिव मुक्ततन्द्रा पर्यचरत् । गृहकार्याणि चाहीनमन्वतिष्ठत् । परिजनं च दाक्षिण्यनिधिरात्माधीनमकरोत् । तद्गुणवशीकृतश्च भर्ता सर्वमेव कुटुम्बं तदा-

सिते अरुणायमाने रक्तीकृते अक्षिपक्ष्मणी यस्य सः । धारारवेण धारापतनशब्देन अभिनन्दिते मुदिते-श्रवणे कर्णौ यस्य सः । स्पर्शसुखेन कन्यायाः करस्पर्शसुखेन उद्भिन्नेन प्रादुर्भूतेन रोमाञ्चेन कर्कशौ कठिनौ कपोलौ यस्य सः । परिमलस्य यः प्रवाहः धारा तस्य उत्पीडेन भारेण फुल्ले विकसिते घ्राणस्य नासिकायाः रन्ध्रे बिले यस्य सः । माधुर्यस्य मधुरतायाः यः प्रकर्षः अतिशयः तेन आवर्जितम् वशीकृतम् रसनेन्द्रियम् जिह्वा यस्य सः । तत् उक्तम् । अच्छम् विमलम् । पानीयम् जलम् । आकण्ठम् कण्ठम् यावत् (आतृप्ति) । पपौ अपिबत् । शिरसः कम्पः कम्पनम् सः एव संज्ञा सङ्केतः तया वारिता निषिद्धा । अपरेण अन्येन करकेण जलपात्रेण आचमनम् पानार्थम् जलम् ("स्नात्वा पीत्वा क्षुते सुप्ते भुक्त्वा रथ्योपसर्पणे । आचान्तः पुन-राचामेद्वासो विपरिधाय च ॥" इति याज्ञवल्क्यः) । अदत्त अददात् । तस्य (शक्तिकुमारस्य) उच्छिष्टम् भुक्तावशेषम् अपोह्य दूरीकृत्य । स्वम् निजम् । उत्तरीयकर्पटम् उत्तरीयवस्त्रभागम् । व्यवधाय आस्तीर्य । अशेत शयनम् अकरोत् । विधिवत् शास्त्रोक्तविधिना । उपयम्य परिणीय । निन्ये अनयत् । एतस्याम् (कुमार्याम्) अनपेक्षः आदररहितः । गणिकाम् वेश्याम् । अवरोधम् भार्याम् । ताम् (गणिकाम्) । असौ (कन्या) । उपाचरत् सम्मानितवती । दैवतम् देवता । मुक्ता त्यक्ता तन्द्रा आलस्यम् यया सा । पर्यचरत् असेवत । अहानम् चारुरूपेण । अन्वतिष्ठत् अकरोत् । परिजनम् दासवर्गम् । दाक्षिण्यस्य उदारतायाः निधिः निधानम् (सती) । आत्मा-

लाल हो रही थीं । सुगंध-प्रवाह के दबाव से नाक के छिद्र खिल गये थे । मधुरता की अधिकता से जीभ आकृष्ट हो गई थी । सिर हिलाने के संकेत से रोकी जाने पर कन्या ने फिर दूसरे जल-पात्र से आचमन के लिये जल दिया । उधर वृद्धा के द्वारा उसका जूठा हटाकर हरे गोबर से लीपो फर्श पर वह अपना उत्तरीय वस्त्र-भाग बिछाकर क्षण भर लेटा । संतुष्ट होकर विधि-पूर्वक विवाह कर कन्या को ले गया । ले जाने के बाद इसकी परवाह न कर उसने एक वेश्या को पत्नी बनाया । उस (लड़की) ने उस (वेश्या) के प्रति भी प्यारी सहेली जैसा आदर किया और आलस्य छोड़कर देवता की भाँति पति की सेवा की । घर के काम सुचारु रूप से किये । उदारता की निधि बनकर उसने नौकर-चाकर-वर्ग को अपने वश में कर लिया । उसके गुणों से वशीभूत होकर पति ने सारा का सारा परिवार उसके ही अधीन

---

[1] प्रवाहो० । [2] आवर्तित ।

यत्तमेव कृत्वा तदेकाधीनजीवितशरीरस्त्रिवर्गं निर्विवेश । तद् ब्रवीमि—'गृहिणः प्रियहिताय दारगुणाः' इति ।

ततस्तेनानुयुक्तो निम्बवतीवृत्तमाख्यातवान्—'अस्ति सौराष्ट्रेषु वलभी नाम नगरी । तस्यां गृहगुप्तनाम्नो गुह्यकेन्द्रतुल्यविभवस्य नाविकपतेर्दुहिता रत्नवती नाम । तां किल मधुमत्याः समुपागम्य बलभद्रो नाम सार्थवाहपुत्रः

धीनम् स्ववंशीभूतम् । तस्याः (बालायाः) गुणेन वशीकृतः । तस्याः (बालायाः) आयत्तम् (तदधीनम्) । तस्याः (बालायाः) एव एकस्याः अधीनम् जीवितम् प्राणाः शरीरम् देहः च यस्य सः । त्रिवर्गम् (धर्मम् अर्थम् कामम् च इति) पुरुषार्थत्रयम् । निर्विवेश भुक्तवान् । तत् अतः ।

ततः गोमिनीकथानन्तरम् । तेन (ब्रह्मराक्षसेन) । अनुयुक्तः पृष्टः । निम्बवत्याः वृत्तम् कथाम् । आख्यातवान् अवर्णयत् । सौराष्ट्रेषु सौराष्ट्रदेशे । गृहगुप्तः इति नाम यस्य तस्य । गुह्यकेन्द्रः कुबेरः तत्तुल्यः विभवः धनम् यस्य तस्य । नाविकानाम् पोतवणिजाम् पतिः स्वामी तस्य । दुहिता कन्या । किल (ऐतिह्ये) । मधुमती कापि नगरी तस्याः । समुपागम्य आगत्य । सार्थवाहस्य वणिजः पुत्रः । पर्यणैषीत् पर्यणयत् । तया (रत्नवत्या) । रहसि एकान्ते । रभसेन

करके उस अकेली के अधीन प्राण और शरीर करके धर्म, अर्थ और काम का उपभोग किया । अतः मेरा कहना है—'गृहस्थ के प्रिय और हित के लिये पत्नी के गुण होते हैं ।'

इसके बाद उस (ब्रह्म-राक्षस) के पूछने पर उस (मित्रगुप्त) ने निम्बवती की कहानी कही—'सौराष्ट्र[1]-नामक देश में वलभी[2] नामक नगरी है । उसमें गृहगुप्त नामक कुबेर के तुल्य धन वाले नाविक-स्वामी की लड़की का नाम रत्नवती था । मधुमती[3] (-नामक स्थान) से आकर बलभद्र-नामक सौदागर-पुत्र ने उससे ब्याह किया ।

---

१. वर्तमान काठियावाड़ । इसका दूसरा नाम आनर्त है । इसकी राजधानी द्वारका थी ।

२. भावनगर से पश्चिमोत्तर १६ किलोमीटर की दूरी पर स्थित वर्तमान बिलबी जहाँ ऐतिहासिक अवशेष खुदाई से प्राप्त हुये हैं । बाम्बे गजेटियर के अनुसार वलेह नामक आधुनिक कस्बा ही प्राचीन वलभी है जो काठियावाड़ से पूरब थी । इससे ४० किलोमीटर पूरब भावनगर है और इतनी ही दूरी पर उत्तर में शत्रुञ्जय नामक स्थान है । नगरी का अर्थ राजधानी भी लिया जाता है जिससे वलभी को सौराष्ट्र की दूसरी राजधानी या कभी की राजधानी माना जा सकता है ।

३. इस नाम का स्थान अन्यत्र नहीं मिलता । मधुपुरी मथुरा को कहते हैं । हो सकता है, उसके पर्यायवाची के रूप में यह नाम प्रचलित रहा हो । मधु एक राक्षस था जिसके नाम पर मधुपुरी नाम पड़ा है ।

पर्यणैषीत्। तयापि नववध्वा रहसि रभसविघ्नितसुरतसुखो झटिति द्वेषमल्पेतरं बबन्ध। न तां पुनर्द्रष्टुमिष्टवान्। तद्गृहागमनमपि सुहृद्वाक्यशतातिवर्ती लज्जया परिजहार। तां च दुर्भगां तदा प्रभृत्येव 'नेयं रत्नवती, निम्बवती चेयम्' इति स्वजनः परजनश्च[1] परिबभूव। गते च कस्मिंश्चित्काले[2] सा त्वनुतप्यमाना 'का मे गतिः' इति विमृशन्ती कामपि वृद्धप्रव्राजिकां[3] मातृस्थानीयां देवशेषकुसुमैरुपस्थितामपश्यत्। तस्याः पुरो रहसि सकरुणं रुरोद। तयाप्यश्रुमुख्या बहुप्रकारमनुनीय रुदितकारणं पृष्टा त्रपमाणापि कार्यगौरवात्कथंचिदब्रवीत्—'अम्ब, किं ब्रवीमि। दौर्भाग्यं नाम जीवन्मरणमेवाङ्गनानाम्, विशेषतश्च

कोपेन विघ्नितम् व्याहतम् सुरतसुखम् यस्य सः। झटिति शीघ्रम्। अल्पेतरम् बहुम्। बबन्ध अधारयत्। ताम् (रत्नवतीम्)। इष्टवान् ऐच्छत्। तस्याः गृहे आगमनम् प्रवेशम्। सुहृदाम् मित्राणाम् वाक्यानाम् परामर्शवचनानाम् शतम् अगणितम् अतिवर्तते अतिक्रामति इति एवंशीलः। परिजहार अत्यजत्। दुर्भगाम् दौर्भाग्यग्रस्ताम्। तदा तस्मात् क्षणात्। प्रभृति आरभ्य। स्वजनः आत्मीयवर्गः। परजनः शत्रुवर्गः। परिबभूव तिरस्कृतवान्। सा (रत्नवती)। अनुतप्यमाना पश्चात्तापम् प्राप्ता। गतिः मार्गः। विमृशन्ती विचारयन्ती। प्रव्राजिकाम् संन्यासिनीम्। मातृस्थानीयाम् मातृतुल्याम्। देवशेषकुसुमैः निर्माल्यपुष्पैः। पुरः समक्षम्। रहसि एकान्ते। रुरोद व्यलपत्। तया (प्रव्राजिकया)। उदश्रु (उद्गतम् अश्रु यत्र तत्) मुखम् यस्याः तया। बहुप्रकारम् विविधम्। अनुनीय सान्त्वयित्वा। रुदितस्य रोदनस्य कारणम् हेतुम्। त्रपमाणा लज्जमाना। कार्यगौरवात् कार्यमहत्त्वात्। कथंचित् येन केन प्रकारेण। अब्रवीत् अवदत्। अम्ब मातः। ब्रवीमि वदामि। दौर्भाग्यम् पतिवैमुख्यम्। नाम निश्चयेन।

उस नव-वधू ने एकान्त में कोप (या उतावली) से रमण सुख में बाधा डाली। इससे शीघ्र ही उस (बलभद्र) ने उसके प्रति अत्यधिक द्वेष दृढ़ कर लिया। उसे फिर देखने की इच्छा नहीं की। उसके घर में प्रवेश तक मित्रों की सैकड़ों सलाहों की उपेक्षा कर लज्जा से छोड़ दिया। तब से उस अभागिन के प्रति 'यह रत्नवती नहीं; यह निम्बवती है' कहकर आत्मीय वर्ग और पराये लोग उसका तिरस्कार करने लगे। फिर कुछ समय बीतने पर उसने पश्चात्ताप-युक्त होकर 'अब मेरे लिये कौन रास्ता (उपाय) है' यह सोचती हुई माता-तुल्य, देवता से बचे (या उस पर चढ़े) फूलों के साथ उपस्थित हुई एक बूढ़ी सन्यासिनी के दर्शन किये। उसके सामने एकान्त में करुणा-पूर्वक रोई। उसके मुख पर भी आँसू छलछला आये। उसने अनेक प्रकार से सान्त्वना देकर रोने का कारण पूछा। लजाती हुई भी उस (रत्नवती) ने कार्य का महत्त्व देखती हुई किसी प्रकार कहा—'माँ, क्या कहूँ! निश्चय ही पति का मुँह फेर लेना नारियों के लिये जीती-जागती मौत है, विशेषतः कुलवधुओं के लिये। उसका मैं

---

[1] परिजनश्च। [2] कालान्तरे। [3] परिव्राजिकाम्।

कुलवधूनाम्। तस्याहमस्म्युदाहरणभूता। मातृप्रमुखोऽपि ज्ञातिवर्गो मामवज्ञयैव पश्यति। तेन सुदृष्टां मां कुरु। न चेत्त्यजेयमद्यैव निष्प्रयोजनान्प्राणान्। आविरामाच्च मे रहस्यं नाश्राव्यम्' इति पादयोः पपात। सैनामुत्थाप्योद्बाष्पोवाच—'वत्से, माध्यवस्य साहसम्। इयमस्मि त्वन्निदेशवर्तिनी। [1]यावति ममोपयोगस्तावति भवाम्यनन्याधीना। [2]यद्येवासि निर्विण्णा तपश्चर त्वं मदधिष्ठिता पारलौकिकाय कल्याणाय। नन्वयमुदर्कः प्राक्तनस्य दुष्कृतस्य, यदनेनाकारेणेदृशेन शीलेन जात्या चैवंभूतया समनुगता सती [3]अकस्मादेव भर्तृद्वेष्यतां गतासि। यदि कश्चिदस्त्युपायः पतिद्रोहप्रतिक्रियायै दर्शयामुम्, मतिर्हि ते पटीयसी' इति। अथासौ कथंचित्क्षणमधोमुखी ध्यात्वा दीर्घोष्णश्वास-

अङ्गनानाम् स्त्रीणाम्। मातृप्रमुखः जनन्यादिः। ज्ञातिवर्गः आत्मीयजनाः। अवज्ञया उपेक्षया। सुदृष्टाम् दर्शनयोग्याम्। न चेत् अन्यथा। अद्य अधुना। निष्प्रयोजनान् निरर्थकान्। आ यावत्। विरामात् मृत्योः। आश्राव्यम् कथनीयम्। पपात अपतत्। सा (वृद्धा)। एनाम् (रत्नवतीम्)। उद्बाष्पा उद्गतम् वाष्पम् अश्रु यस्याः सा। उवाच अवदत्। वत्से पुत्रि। मा न। अध्यवस्य कुरु। साहसम् अविमृश्यकारिताम्। इयम् अहम्। तव निदेशवर्तिनी आज्ञाकारिणी। यावति (अवधौ विषये वा)। उपयोगः अपेक्षा। अनन्याधीना न अन्याधीना (त्वदधीना)। निर्विण्णा वैराग्ययुक्ता। मदधिष्ठिता मया अधिष्ठिता आश्रिता। परलोके भवम् पारलौकिकम् तस्मै। ननु निश्चयेन। उदर्कः परिणामः ("उदर्कः फलमुत्तरम्" इति अमरः)। प्राक्तनस्य पूर्वकृतस्य। दुष्कृतस्य पापस्य। आकारेण शरीराकृत्या। शीलेन स्वभावेन। जात्या कुलेन। एवंभूतया श्रेष्ठया। समनुगता युक्ता। अकस्मात् सहसा। भर्तुः पत्युः द्वेष्यताम् अप्रियताम्। पत्युः द्रोहः पराङ्मुखत्वम् तस्य प्रतिक्रियायै दूरीकरणाय। दर्शय उपदिश। अमुम् तम्। ते तव। पटीयसी अतिशयेन पटुः। असौ सा (रत्नवती)। ध्यात्वा विचार्य। दैवतम

नमूना ही हूँ। माँ आदि सगे लोगों का समूह मुझे तिरस्कार-पूर्वक ही देखता है। अतः मुझे ऐसा बनाओ कि देखी जा सकूँ, अन्यथा अभी निरर्थक प्राण छोड़ दूँगी। मृत्यु पर्यन्त मेरा रहस्य सुनाने-योग्य नहीं है।' यह कहकर वह चरणों पर गिर पड़ी। उसने इसे उठाया और निकल आये आँसुओं से युक्त होकर बोली—'बेटी, दुःसाहस (बिना बिचारे काम) मत करो। मैं तुम्हारी आज्ञा-पालक हूँ। जितनी अवधि में मेरा उपयोग तुम्हें करना हो, उतनी अवधि में मैं दूसरे के अधीन नहीं (तुम्हारे ही अधीन) हूँ। अगर वैराग्य-युक्त हो तो मेरी छाया में रहकर परलोक के कल्याण के लिये तप करो। निश्चय ही यह पहले के पाप का फल है जो इस व्यक्तित्व, ऐसे स्वभाव और ऐसे वंश की धनी होकर (भी) एकाएक ही पति की अप्रिय हो गई हो। अगर पति की नाराजगी दूर करने का कोई उपाय हो तो उसे सुझाओ। निश्चय ही तुम्हारी बुद्धि अधिक कुशल है।' तब वह किसी प्रकार क्षण भर मुँह

---

१. यावत् .तावत्। २. यद्यवम्। ३. एकदैव।

पूर्वमवोचत्--'भगवति, पतिरेव दैवतं वनितानाम्, विशेषतः कुलजानाम्। अतस्तच्छुश्रूषणाभ्युपायहेतुभूतं किंचिदाचरणीयम्। अस्त्यस्मत्प्रातिवेश्यो वणिगभिजनेन विभवेन राजान्तरङ्गभावेन च सर्वपौरानतीत्य वर्तते। तस्य कन्या कनकवती नाम मत्समानरूपावयवा ममातिस्निग्धा सखी। तया सह तद्विमानहर्म्यतले ततोऽपि द्विगुणमण्डिता विहरिष्यामि। त्वया तु तन्मातृप्रार्थनं सकरुणमभिधाय मत्पतिरेतद्गृहं कथचनानेयः। समीपगतेषु च युष्मासु क्रीडामत्ता नाम कन्दुकं भ्रंशयेयम्। अथ तमादाय तस्य हस्ते दत्त्वा वक्ष्यसि—'पुत्र, तवेयं भार्यासखी निधिपतिदत्तस्य सर्वश्रेष्ठिमुख्यस्य कन्या कनकवती नाम त्वामियमनवस्थो निष्करुणश्चेति रत्नवतीनिमित्तमत्यर्थं निन्दति।

देवता। वनितानाम् नारीणाम्। तस्य शुश्रूषणस्य सेवायाः अभ्युपायः उपायः तस्य हेतुभूतम् कारणरूपम्। आचरणीयम् करणीयम्। अस्माकम् प्रातिवेश्यः प्रतिवेशी। अभिजनेन कुलीनतया। विभवेन ऐश्वर्येण। राज्ञः अन्तरङ्गभावेन विश्वासपात्रतया। पौरान् नगरवासिनः। अतीत्य अतिक्रम्य। मम समानम् तुल्यम् रूपम् आकृतिः अवयवाः अङ्गानि च यस्याः स। स्निग्धा प्रिया। तस्याः विमानस्य सप्तभूमिगृहस्य ("विमानो व्योमयाने च सप्तभूमिगृहेऽपि च" इति अमरकोषस्य व्याख्यासुधाटीकायाम्)। हर्म्यतले धनिगृहे ("हर्म्यादि धनिनां वासः" इति अमरः।) ततः तस्याः (कनकवत्याः)। द्विगुणम् यथा स्यात् तथा मण्डिता अलङ्कृता। त्वया (प्रव्राजिकया)। तस्याः (कनकवत्याः) मातुः प्रार्थनम् प्रार्थनाम् (कनकवतीमाता त्वाम् प्रार्थयते इति उक्त्वा)। अभिधाय उक्त्वा। मम पतिः (बलभद्रः) एतस्याः (कनकवत्याः)। कथंचन केनापि प्रकारेण। आनेयः आनेतव्यः। युष्मासु त्वयि च पतिषु च (आदरार्थे बहुवचनम्)। क्रीडया खेलेन मत्ता उन्मत्ता। नाम (अलीके)। भ्रंशयेयम् पातयेयम्। तम् (कन्दुकम्)। तस्य (पत्युः)। वक्ष्यसि वदिष्यसि। तत्र (बलभद्रस्य)। इयम् (कनकवती)। भार्यायाः (रत्नवत्याः) सखी। न अवस्था स्थिरता यस्य सः। निष्करुणः निर्दयः। अत्यर्थम्

नीचा किये हुये सोचकर लम्बी और गर्म साँस छोड़कर बोली—'हे भगवती, पति ही स्त्रियों का देवता है, विशेष कर उनका जो कुलीन हैं। इसलिये उसकी सेवा के उपाय का जो कारण हो ऐसा कुछ करना है। मेरा पड़ोसी एक बनिया है। कुलीनता, ऐश्वर्य और राजा की विश्वास-पात्रता में वह सभी नागरिकों के ऊपर है। उसकी कन्या कनकवती की आकृति और अङ्ग मेरे समान हैं और वह मेरी अत्यंत प्यारी सखी है। उसके साथ उसकी सतमंजिली कोठी के ऊपर उससे भी दूना सिंगार कर विहार करूँगी। उधर तुम उसकी माँ की प्रार्थना करुणा-पूर्वक कनकवती की माँ ने आपको बुलाया है) कहकर इनके घर में मेरे पति को किसी प्रकार ले आना। तुम लोगों के पास पहुँच जाने पर मैं खेल में मतवाली का अभिनय कर गेंद गिरा दूँगी। तब वह (गेंद) लेकर उस (बलभद्र) के हाथ में देकर कहना—'बेटा, यह तुम्हारी पत्नी की सहेली निधिपतिदत्त नामक समस्त सेठों के प्रधान की बेटी कनकवती है। रत्नवती को कारण बनाकर यह तुम्हें अस्थिर और निर्दय कहकर बुरा-भला कहा करती

तदेष कन्दुको विपक्षधनं प्रत्यर्पणीयम्' इति । स तथोक्तो नियतमुन्मुखीभूय तामेव प्रियसखीं मन्यमानो मां, बद्धाञ्जलिः याचमानायै मह्यं भूयस्त्वत्प्रार्थितः साभिलाषमर्पयिष्यति । तेन रन्ध्रेणोपश्लिष्य रागमुज्ज्वलीकृत्य यथासौ कृतसंकेतो देशान्तरमादाय मां गमिष्यति तथोपपादनीयम्' इति ।[1]हर्षाभ्युपेतया चानया तथैव संपादितम् । अथैतां कनकवतीति वृद्धतापसीविप्रलब्धो बलभद्रः सरत्न[2]साराभरणामादाय निशि नीरन्ध्रे तमसि प्रावसत् । सा तु तापसी वार्तामापादयत्—'मन्देन मया निर्निमित्तमुपेक्षिता रत्नवती, श्वशुरौ च परिभूतौ, सुहृदश्चातिवर्तिताः । तदत्रैव संसृष्टो जीवितुं जिह्रेमीति बलभद्रः पूर्वेद्युर्मामकथयत् । नूनमसौ तेन नीता व्यक्तिश्चाचिराद्भविष्यति' इति ।

अत्यधिकम् । विपक्षस्य विरोधिनः धनम् (कन्दुकरूपम्) । प्रत्यर्पणीयम् निवर्तनीयम् । नियतम् निश्चितम् । ताम् (कनकवतीम्) । बद्धः अन्जलिः यस्मिन् कर्मणि तत् यथा स्यात् तथा । याचमानायै प्रार्थयमानायै । भूयः पुनः । त्वया प्रार्थितः । अभिलाषेण स्पृहया सह । अर्पयिष्यति दास्यति । रन्ध्रेण व्याजेन । उपश्लिष्य आलिङ्ग्य । रागम् प्रेम । उज्ज्वलीकृत्य वर्धयित्वा । असौ (बलभद्रः) । कृतः सूचितः संकेतः मिलनस्थानम् येन सः । माम् (रत्नवतीम्) । उपपादनीयम् करणीयम् । हर्षाभ्युपेतया आनन्दयुक्तया । अनया (वृद्धया) । संपादितम् कृतम् । एताम् (रत्नवतीम्) । इति (प्रख्याप्य) । वृद्धतापस्या विप्रलब्धः प्रतारितः । रत्नेन सारेण उत्कृष्टेन धनेन आभरणेन सह वर्तमानाम् । नीरन्ध्रे गाढे । तमसि अन्धकारे । प्रावसत् देशान्तरम् अगच्छत् । वार्ताम् उदन्तम् । आपादयत् प्राचारयत् । मन्देन मूर्खेण । मया (बलभद्रेण) । निर्निमित्तम् अकारणम् । उपेक्षिता तिरस्कृता । श्वश्रूः च श्वशुरः च (एकशेषः) । परिभूतौ अपमानितौ । सुहृदः मित्राणि । अतिवर्तिताः अतिक्रान्ताः । तत् अतः । संसृष्टः (रत्नवत्या) संगतः । जिह्रेमि लज्जे । पूर्वेद्युः गते दिने । नूनम् निश्चितम् । असौ (रत्नवती) । व्यक्तिः रहस्योद्घाटनम् । अचिरात् शीघ्रम् । तस्य (बलभद्रस्य) बान्धवाः

है । इसलिये विरोधी का धन यह गेंद वापस कर दो ।' इस प्रकार कहे जाने पर वे निश्चय ही मुँह सामने कर मुझे वही (मेरी) प्यारी सहेली मानते हुये हाथ जोड़कर प्रार्थना कर रही मुझे पुनः तुम्हारी प्रार्थना पर स्पृहा के साथ (गेंद) दे देंगे । उस बहाने गले लगाकर प्रेम बढ़ाकर वे मिलने की जगह बताकर मुझे लेकर दूसरे स्थान चले जायँ, ऐसा करना है' । इस आनन्द से भरी हुई इस (बुढ़िया) ने वैसा ही किया । फिर इसे कनकवती बता कर बूढ़ी तपस्विनी के द्वारा ठगे गये बलभद्र ने रत्न, उत्कृष्ट धन और गहना लेकर रातको गाढ़ अंधकार में प्रवास किया । उधर उस तपस्विनी ने अफवाह फैलाई—'मुझ मूर्ख के द्वारा रत्नवती अकारण ही उपेक्षित की गई, सास-ससुर का तिरस्कार हुआ और मित्रों की बात टाली गई । तो यहीं साथ रहते हुये जीने में लज्जा लगती है' यह बात कल बलभद्र ने मुझसे कही थी । निश्चय ही वह (रत्नवती) उसके द्वारा ले जाई गई है । जल्दी ही सब साफ हो जायेगा ।'

---

[1] सहर्षा० । [2] सरत्नाभरणाम् ।

तच्छ्रुत्वा तद्बान्धवास्तदन्वेषणं प्रति शिथिलयत्नास्तस्थुः। रत्नवती तु मार्गे कांचित्पण्यदासीं संगृह्य तयोह्यमानपाथेयाद्युपस्करा खेटकपुरमगमत्। अमुत्र च व्यवहारकुशलो बलभद्रः स्वल्पेनैव मूलेन महद्धनमुपार्जयत्। पौराग्रगण्यश्चासीत्। परिजनश्च भूयानर्थवशात्समाजगाम। ततस्तां प्रथमदासीम् 'न कर्म करोषि, दृष्ट मुष्णासि, अप्रियं ब्रवीषि' इति परुषमुक्त्वा बह्वताडयत्। चेटी तु प्रसादकालोपाख्या[1]तरहस्यस्य वृत्तान्तैकदेशमात्तरोषा निर्बिभेद। तच्छ्रुत्वा लुब्धेन तु दण्डवाहिना पौरवृद्धसंनिधौ 'निधिपतिदत्तस्य कन्यां कनकवतीं मोषेणापहृत्यास्मत्पुरे निवसत्येष दुर्मतिर्बलभद्रः। तस्य सर्वस्वहरण न भवद्भिः प्रतिबन्धनीयम्' इति नितरामभर्त्स्यत[2]। भीतं च बलभद्रमभिजगाद रत्नवती—

बन्धवः। तस्य (बलभद्रस्य) अन्वेषणम् अनुसन्धानम्। प्रति विषये। शिथिलः मन्दीभूतः यत्नः उद्यमः येषाम् ते। पण्यदासीम् विक्रयार्थम् प्रस्तुता दासी सेविका ("चेटी चिरण्टी दासी च" इति वैजयन्ती) ताम्। संगृह्य गृहीत्वा। तया (दास्या)। उह्यमानाः नीयमानाः पाथेयम् मार्गे भक्षणसामग्री तत् आदौ येषाम् ते उपस्कराः सामग्री यया। अगमत् अगच्छत्। अमुत्र तत्र। व्यवहारे वाणिज्ये कुशलः। मूलेन मूलधनेन। पौराणाम् नागरिकाणाम् अग्रगण्यः उत्तमः। भूयान् बहुः। अर्थवशात् धनलोभात्। समाजगाम मिलितः। मुष्णासि चोरयसि। ब्रवीषि वदसि। परुषम् कठोरम्। चेटी दासी। प्रसादकाले प्रसन्नतासमये। आख्यातम् कथितम् च तत् रहस्यम् गोप्यम् च तस्य। वृत्तान्तस्य उदन्तस्य। एकदेशम् एकम् भागम्। आत्तः प्राप्तः रोषः कोपः यया सा। निर्बिभेद उद्घाटितवती। लुब्धेन लोभमग्नेन ("लुब्धोऽभिलाषुकस्तृष्णक्" इति अमरः)। दण्डवाहिना दण्डाधिकारिणा। पौराः नागरिकाः तेषु ये वृद्धाः तेषाम् संनिधौ समीपे। मोषेण चौर्येण। अस्माकम् पुरे नगरे। प्रतिबन्धनीयम् निषेधनीयम्। नितराम् अधिकम्। । अभर्त्स्यत अनिन्द्यत। अभिजगाद अवदत्। ब्रूहि वद। माता च पिता च

वह बात सुनकर उसके भाई-बन्धु उसकी खोज के विषय में कोशिशें ढीली कर बैठ गये। उधर रत्नवती राह में मिलने के लिये आई किसी दासी को खरीदकर खेटकपुर गई। वह (दासी) उसका मार्ग-भोजन आदि सामान ढो रही थी। फिर वहाँ व्यापार में चतुर बलभद्र ने बहुत थोड़ी पूँजी से बहुत धन कमाया और नागरिकों में प्रमुख हो गया। धन के कारण बहुत नौकर-चाकर प्राप्त हुये। तब (कभी) उस पहली दासी को 'काम नहीं करती; जो दिखता है, चुरा लेती है, अप्रिय वचन बोलती है' यह कठोरता-पूर्वक कहकर बहुत मारा। उधर दासी ने गुस्से में आकर प्रसन्नता के समय खोल दिये गये रहस्य के समाचार का एक भाग प्रगट कर दिया। उसे सुनकर लालची दण्डवाही (मजिस्ट्रेट या मेयर) ने बूढ़े नागरिकों की उपस्थिति में 'निधिपतिदत्त की कन्या कनकवती को चोरी से हर कर हमारे शहर में यह दुष्ट बुद्धि वाला बलभद्र रह रहा है। उसके सर्वस्व का हरण करने में आप लोग बाधा न देंगे।' यह कहकर बहुत निन्दा की। रत्नवती ने डरे हुये बलभद्र से कहा—'डरना मत। कहो कि

---

[1] पाख्यातमस्या वृ०। [2] अतर्ज्यत।

'न भेतव्यम् । ब्रूहि--'नेयं निधिपति[1]दत्तकन्या कनकवती वलभ्यामेव गृहगुप्तदुहिता रत्नवती नामेयं दत्ता पितृभ्यां मया च न्यायोढा । न चेत्प्रतीथ[2] प्रणिधिं प्रहिणुतास्या बन्धुपार्श्वम्' इति । बलभद्रस्तु तथोक्त्वा श्रेणीप्रातिभाव्येन तावदवातिष्ठत यावत्तत्पुरलेख्यलब्धवृत्तान्तो गृहगुप्तः खेटकपुरमागत्य सह जामात्रा दुहितरमतिप्रीतः[3] प्रत्यनैषीत् । तथा दृष्ट्वा रत्नवती कनकवतीति भावयतस्तस्यैव बलभद्रस्यातिवल्लभा जाता । तद्ब्रवीमि—'कामो नाम संकल्पः' इति ।

तदनन्तरमसौ नितम्बवतीवृत्तान्तमप्राक्षीत् । सोऽहमब्रवम्—'अस्ति शूरसेनेषु मथुरा नाम नगरी । तत्र कश्चित्कुलपुत्रः कलासु गणिकासु चातिरक्तः मित्रार्थं स्वभुजमात्रनिर्व्यूढानेककलहः, कलहकण्टक इति कर्कशैरभिख्यापिताख्यः

पितरौ (एकशेषः) ताभ्याम् । न्यायेन न्यायमार्गेण ऊढा परिणीता । प्रतीथ विश्वसिथ । प्रणिधिम् गूढचरम् । प्रहिणुत प्रेषयत । अस्याः (रत्नवत्याः) । बन्धूनाम् बान्धववर्गस्य पार्श्वम् श्रेणी प्रातिभाव्येन श्रेणी स्वजातीयवणिजः ताम् प्रतिभूस्थाने कृत्वा । तस्य पुरस्य नगरस्य लेख्येन पत्रेण लब्धः प्राप्तः वृत्तान्तः उदन्तः येन सः । दुहितरम् कन्याम् । प्रत्यनैषीत् अनयत् । भावयतः विचारयतः । अतिवल्लभा अधिकप्रिया । जाता अभवत् । तत् अतः । ब्रवीमि वदामि । कामः इच्छा । नाम निश्चयेन । संकल्पः निश्चयः ।

तदनन्तरम् ततः । असौ (ब्रह्मराक्षसः) । अप्राक्षीत् अपृच्छत् । सः (उक्तः) । अहम् (मित्रगुप्तः) । अब्रवम् अवदम् । शूरसेनेषु शूरसेनदेशे । तत्र (मथुरायाम्) । कुलपुत्रः शूद्रः ("कुलपुत्रः कुलीने च शूद्रे च" इति वैजयन्ती) । कलासु चतुःषष्टिमितासु । गणिकासु वेश्यासु । अतिरक्तः अतीव आसक्तः । मित्रार्थम् सुहृद्हेतोः । स्वभुजेन एव निर्व्यूढाः शमिताः अनेके कलहाः येन सः । कलहस्य कण्टकः बाधकः, कर्कशैः परुषवादिभिः । अभिख्यापिता प्रसिद्धीकृता आख्या नाम यस्य

यह निधिपतिदत्त की कन्या कनकवती नहीं है । वलभी के ही गृहगुप्त की रत्नवती नामक लड़की है । (इसके) माता-पिता के द्वारा मुझे प्रदान की गई है और मैंने न्याय-मार्ग से इससे विवाह किया है । यदि विश्वास न हो तो गुप्तचरों को इसके बन्धु-बान्धवों के पास भेजें ।' ऐसा कहकर बलभद्र श्रेणी की जमानत पर तब तक प्रतीक्षा करता रहा जब तक उस नगर से आये पत्र से समाचार जानकर गृहगुप्त खेटकपुर आकर दामाद के साथ लड़की को प्रसन्नता के साथ ले नहीं गया । वैसा देखकर 'रत्नवती कनकवती (बनी) है' यह विचार करते हुये बलभद्र की वह अत्यन्त प्रिय हो गई । इसलिये कहता हूँ—'निश्चय ही इच्छा (वही है जो) संकल्प (का रूप धारण कर लेती) है' ।

इसके बाद उसने नितम्बवती की बात पूछी । पूछने पर मैंने कहा—'शूरसेन देश में मथुरा नाम की नगरी है । वहाँ कोई शूद्र कलाओं और वेश्याओं के प्रति बहुत आसक्त होकर रहता था । मित्रों के लिये केवल अपनी बाहुओं से उसने बहुत सारे झगड़े दूर किये थे जिससे कठोर वचन बोलने वाले लोगों ने उसका नाम 'कलह-कण्टक' रखकर प्रसिद्ध कर

---

[1] दत्तस्य ।   [2] प्रतीतिरस्मिन्नर्थे ।   [3] अतिप्रीतिः ।

प्रत्य[1]वात्सीत् । स चैकदा कस्यचिदागन्तोश्चित्रकरस्य हस्ते चित्रपटं ददर्श । तत्र काचिदालेख्यगता युवतिरालोकमात्रेणैव कलहकण्टकस्य कामातुरं चेतश्चकार । स च तमब्रवीत्—'भद्र, विरुद्धमिवैतत्प्रतिभाति यतः कुलजादुर्लभं वपुः, आभिजात्यशंसिनी च नम्रता, पाण्डुरा च मुखच्छविः, [2]अनतिपरिभुक्तसुभगा च तनुः, प्रौढतानुविद्धा च दृष्टिः । न चैषा प्रोषितभर्तृका प्रवासचिह्नस्यैक[3]वेण्यादेरदर्शनात् । लक्ष्म चैतद्दक्षिणपार्श्ववर्ति । तदियं वृद्धस्य कस्यचिद्वणिजो नातिपुंस्त्वस्य यथार्हसंभोगालाभपीडिता गृहिणी त्वयातिकौशलाद्यथादृष्टमालिखिता भवितुमर्हति' इति । स तमभिप्रशस्याशंसत्—'सत्यमिदम् । अवन्तिपुर्यामुज्जयिन्यामनन्तकीर्तिनाम्नः सार्थवाहस्य भार्या

सः । प्रत्यवात्सीत् प्रत्यवसत् । आगन्तोः देशान्तरात् आगतस्य । चित्रकरस्य चित्रकारस्य । ददर्श अपश्यत् । आलेख्यम् चित्रम् गता । आलोकमात्रेण केवलेन दर्शनेन । चेतः मनः । चकार अकरोत् । सः (कलहकण्टकः) । तम् (चित्रकरम्) । अब्रवीत् अवदत् । विरुद्धम् (परस्पर-) विपरीतम् लक्षणम् । एतत् (चित्रम्) । प्रतिभाति प्रतीयते । कुलजया कुलीनया दुर्लभः दुष्प्रापम् । वपुः शरीरम् । आभिजात्यम् कुलीनताम् शंसिनी शंसति वदति इति । पाण्डुरा शुभ्रा । मुखस्य छविः कान्तिः । न अतिपरिभुक्ता च सुभगा सुन्दरी च । तनुः देहः । प्रौढतया प्रगल्भतया अनुविद्धा युक्ता । प्रोषितः प्रवासवर्त्ती भर्त्ता पतिः यस्याः सा । वेणी केशबन्धः ("वेणी कचस्य बन्धे स्यान्नदीनां संगमेऽपि च" इति विश्वः) । लक्ष्म चिह्नम् । नातिपुंस्त्वस्य अल्पपुरुषत्वस्य । यथार्हस्य यथोचितस्य संभोगस्य अलाभेन अप्राप्त्या पीडिता । त्वया (चित्रकरेण) । यथादृष्टम् दृष्टम् अनतिक्रम्य । आलिखिता चित्रिता । सः (चित्रकरः) । तम् (कलहकण्टकम्) । अभिप्रशस्य प्रशंसाम् कृत्वा । अशंसत् अवदत् । सार्थवाहस्य वणिजः भार्या

दिया था । उसने एक बार बाहर से आये हुये किसी चित्रकार के हाथ में चित्र-पट देखा । उसमें चित्र-रूप में स्थित किसी युवती ने दर्शन-मात्र से ही कलह-कण्टक का मन कामातुर बना दिया । तब उसने उस-(चित्रकार) से कहा—'भाई, यह (आकृति) परस्पर-विरुद्ध लक्षणों वाली लगती है । क्योंकि शरीर कुल-वधुओं के लिये दुर्लभ (वेश्याओं में पाया जाने वाला) है पर नम्रता, कुलीनता बताती है । मुख की शोभा शुभ्र है, शरीर का भोग अधिक नहीं किया गया है (जिससे छोटी उम्र की नायिका की मुग्धता का आभास होता है) और वह सुन्दर है पर दृष्टि प्रौढ़ता में पगी है । यह प्रोषित-भर्तृका (जिसका पति परदेश गया हो) नहीं है क्योंकि प्रवास के निशान एक चोटी आदि दर्शन का अभाव है । और यह निशान दाहिनी बगल में है । तो यह तुम्हारे द्वारा अत्यन्त कुशलता से देखे-अनुसार चित्रित किसी बूढ़े, अल्प-पुरुषत्व वाले बनिये की यथोचित भोग की अप्राप्ति से पीड़ित गृहिणी होनी चाहिये ।' उस-(चित्रकार) ने उसकी प्रशंसा कर कहा—'यह सच है । अवन्तिपुरी की उज्जयिनी में अनंतकीर्ति-नामक सौदागर की नितम्बवती-नामक सार्थक नाम वाली पत्नी है

---

[1] परिव्राज । [2] नातिपरिभोगसुलभा । [3] एकेति नास्ति क्वचित् ।

यथार्थनामा[1], नितम्बवती नामैषा सौन्दर्यविस्मितेन मयैवमालिखिता' इति। स तदैवोन्मनायमानस्तद्दर्शनाय परिवव्राजोज्जयिनीम् । भार्गवो नाम भूत्वा भिक्षानिभेन[2] तद्गृहं प्रविश्य तां ददर्श । दृष्ट्वा चात्यारूढमन्मथो निर्गत्य पौरमुख्येभ्यः श्मशानरक्षामयाचत । अलभत च । तत्र लब्धैश्च शवावगुण्ठनपटादिभिः कामप्यर्हन्तिकां नाम श्रमणिकामुपासांचक्रे । तन्मुखेन च नितम्बवतीमुपांशु[3] मन्त्रयामास । सा चैनां निर्भर्त्सयन्ती प्रत्याचचक्षे । श्रमणिकामुखाच्च दुष्करशीलभ्रंशां कुलस्त्रियमुपलभ्य रहसि दूतिकामशिक्षयत्—'भूयोऽप्युपतिष्ठ सार्थवाहभार्याम् । ब्रूहि चोपह्वरे, संसारदोषदर्शनात्समाधिमास्थाय मुमुक्षमाणो मादृशो जनः कुलवधूनां शीलपातने घटत इति क्व घटते ।

पत्नी । यथार्थनामा अन्वर्थनाम्नी । सः (कलहकण्टकः) । उन्मनायमानः उत्कण्ठितः। तस्याः दर्शनाय । परिवव्राज अगच्छत् । भार्गवः दैवज्ञः ("भार्गवौ शुक्रदैवज्ञौ" इति वैजयन्ती) । नाम (अलीके) । भिक्षानिभेन भिक्षाव्याजेन ("निभो व्यांजसदृक्षयोः" इति विश्वः) । तस्याः (नितम्बवत्याः) गृहम् । ददर्श अपश्यत् । अत्यारूढमन्मथः प्रवृद्धकामः । पौरमुख्येभ्यः नागरिकश्रेष्ठेभ्यः । अयाचत प्रार्थयत । तत्र श्मशाने । शवानाम् अवगुण्ठनपटाः आवरणवस्त्राणि तदादिभिः । श्रमणिकाम् बौद्धपरिव्राजिकाम् । उपासांचक्रे आसेवे । तस्याः (श्रमणिकायाः) मुखेन द्वारा । उपांशु रहसि । मन्त्रयामास अवदम् । सा (नितम्बवती) । एनाम् (श्रमणिकाम्) । निर्भर्त्सयन्ती निन्दन्ती । प्रत्याचचक्षे प्रत्याख्यात् । दुष्करः शीलस्य पतिव्रतारूपस्य भ्रंशः नाशः यस्याः ताम् । कुलस्त्रियम् कुलवधूम् । उपलभ्य ज्ञात्वा । रहसि एकान्ते । दूतिकाम् (श्रमणिकाम्) । भूयः पुनः । उपतिष्ठ गच्छ । सार्थवाहस्य वणिजः भार्याम् पत्नीम् । ब्रूहि वद । उपह्वरे एकान्ते । समाधिम् योगम् । आस्थाय अवलम्ब्य । मुमुक्षमाणः मुक्तिम् इच्छन् । मादृशः मत्सदृशः । घटते यतते । क्व कथम् । घटते संभवति । एतद्

यह । सुन्दरता से ठगे रह गये मैंने इस तरह इसे चित्रित किया है ।' वह तत्क्षण ही उत्कण्ठा से भरकर उसके दर्शन के लिये उज्जयिनी गया । ज्योतिषी का भेष बनाकर भीख (माँगने) के बहाने उसके घर में घुसकर उसे देख आया । देखकर उसका प्रेम बहुत बढ़ गया । निकलकर उसने प्रमुख नागरिकों से श्मशान की रखवाली का काम माँगा और पाया । वहाँ प्राप्त लाश को ढकने के कपड़े आदि से अर्हन्तिका नामक किसी बौद्ध भिक्षुणी की सेवा करने लगा । फिर उसके द्वारा एकान्त में नितम्बवती से बातें कीं । उसने इस (भिक्षुणी) की निन्दा करती हुई इनकार कर दिया । भिक्षुणी से यह जानकर कि कुल-वधुओं के शील का नाश कठिन है, उसने दूती (भिक्षुणी) को एकांत में सिखाया—'सौदागर की पत्नी के पास फिर जाओ और एकान्त में कहो, 'संसार की बुराइयाँ देखने से समाधि लगाकर मुक्ति का इच्छुक मुझ जैसा व्यक्ति कुल-वधुओं के शील की हत्या का प्रयत्न करे, यह कैसे संगत है ? अत्यधिक

---

[1] नामधेया । [2] मिषेण । [3] उपनिमन्त्रयामास ।

एतदपि त्वमत्युदारया[1]समृद्ध्या रूपेणातिमानुषेण प्रथमेन वयसोपपन्नां किमितरनारीसुलभं चापलं स्पृष्टं न वेति परीक्षा कृता। तुष्टाऽस्मि तवैवमदुष्टभावतया। त्वामिदानीमुत्पन्नापत्यां द्रष्टुमिच्छामि। भर्ता तु भवत्याः केनचिद्ब्रह्मणाधिष्ठितः पाण्डुरोगदुर्बलो भोगे चासमर्थः स्थितोऽभूत्। न च शक्यं तस्य विघ्नमप्रतिकृत्यापत्यमस्माल्लब्धुम्। अतः प्रसीद। वृक्षवाटिकामेकाकिनी प्रविश्य मदुपनीतस्य कस्यचिन्मन्त्रवादिनश्छन्न[2]मेव हस्ते चरणमर्पयित्वा तदभिमन्त्रितेन प्रणयकुपिता नाम भूत्वा भर्तारमुरसि प्रहर्तुमर्हसि। उपर्यसावुत्तमधातुपुष्टिमूर्जितापत्योत्पादनक्षमामासादयिष्यति। अनुवर्तिष्यते देवीमिवात्रभवतीम्। नात्र शङ्का कार्या' इति। सा तथोक्ता व्यक्तमभ्युपैष्यति। नक्तं मां वृक्षवाटिकां प्रवेश्य तामपि प्रवेशयिष्यसि। तावतैव त्वयाऽहमनुगृहीतो भवेयम्' इति। सा

(चापलम्)। अत्युदारया अत्यधिकया। समृद्धया ऐश्वर्येण। अतिमानुषेण मानुषम् अतिक्रम्य वर्तते इति तेन। प्रथमेन वयसा यौवनेन। उपपन्नाम् युक्ताम्। इतरा अन्या च नारी च तया सुलभम्। चापलम् चञ्चलता अदुष्टः दोषरहितः भावः हृदयम् यस्याः तत्ता तया। उत्पन्नम् अपत्यम् सन्तानम् यस्याः ताम्। अधिष्ठितः ग्रस्तः। शक्यम् सम्भवम्। अप्रतिकृत्य प्रतीकारम् अकृत्वा। अस्मात् (पत्युः)। वृक्षवाटिकाम् वृक्षयुक्तम् उपवनम्। मया उपनीतस्य आनीतस्य। मन्त्रवादिनः मन्त्रज्ञस्य। छन्नम् गुप्तम्। तेन (मन्त्रवादिना) अभिमन्त्रितेन मन्त्रेण पूतीकृतेन (चरणेन)। प्रणयकुपिता मानिनी। नाम (अलीके)। उपरि ततः। असौ (पतिः)। उत्तमा च सा धातोः पुष्टिः वृद्धिः ताम्। ऊर्जितस्य सबलस्य अपत्यस्य संततेः उत्पादने जनने क्षमाम् समर्थाम्। आसादयिष्यति प्राप्स्यति। अनुवर्तिष्यते अनुगमिष्यति। अत्रभवतीम् पूज्याम्। अत्र अस्मिन् विषये। शङ्का सन्देहः। उक्ता कथिता। व्यक्तम् निःसंशयम्। उपपादितवती

धन-दौलत, मनुष्यों से बढ़कर सुन्दरता और युवावस्था से युक्त तुम्हें अन्य-स्त्री-सुलभ यह चंचलता भी छू गई है या नहीं, यह परीक्षा कर ली। तुम्हारे निर्दोष हृदय वाली होने से मैं संतुष्ट हूँ। अब देखना चाहती हूँ कि तुम्हारे संतान हो जाय, लेकिन तुम्हारे पति किसी ग्रह से ग्रस्त, पाण्डु-नामक रोग से क्षीण तथा भोग में असमर्थ हो गये हैं। यह संभव नहीं है कि बिना उनके विघ्न को हटाये उनसे संतान प्राप्त की जाय। इसलिये प्रसन्न हो जाओ। वृक्षों वाले बगीचे में अकेली घुसकर मेरे द्वारा लाये गये किसी मन्त्रज्ञाता के हाथ में गुप्त रूप से पैर देकर उसके द्वारा अभिमंत्रित पैर से प्रणय-कुपिता का अभिनय कर पति की छाती पर तुम्हें प्रहार करना चाहिये। तब वे बली सन्तान उत्पन्न करने में समर्थ धातु की उत्तम वृद्धि प्राप्त करेंगे। देवी की भाँति (मानकर) माननीय तुम्हारा वे अनुसरण करेंगे। इस विषय में संशय न करना।' इस प्रकार कहने पर वह निःसंदेह स्वीकार कर लेगी। रात को मुझे वृक्षों वाले बग़ीचे में प्रविष्ट कराकर उसे भी प्रविष्ट कराना। इतने से ही तुम्हारे द्वारा मैं कृत-कार्य हो जाऊँगा। उसने उसी प्रकार से तैयारी कराया। वह बहुत प्रसन्न होकर उसी

---

१. अत्युदारतया। २. स्वच्छन्दमेव।

तथैवोप[1]पादितवती । सोऽतिप्रीतस्तस्यामेव क्षपायां वृक्षवाटिकागतो नितम्बवतीं निर्ग्रन्थिकाप्रयत्नेनोपनीतां पादे परामृशन्निव हेमनूपुरमेकमाक्षिप्य[2] च्छुरिकयोरुमूले किंचिदालिख्य[3] द्रुततरमपासरत् । सा तु सान्द्रत्रासा स्वमेव दुर्नयं गर्हमाणा जिघांसन्तीव श्रमणिकां तद्व्रणं भवनदीर्घिकायां प्रक्षाल्य दत्त्वा[4] पटबन्धनं सामयापदेशादपरं चापनीय नूपुरं शयनपरा त्रिचतुराणि दिनान्येकान्ते निन्ये । स धूर्तः 'विक्रेष्ये' इति तेन नूपुरेण तमनन्तकीर्तिमुपाससाद । स दृष्ट्वा 'मम गृहिण्या एवैष नूपुरः कथमयमुपलब्धस्त्वया' इति तमब्रुवाणं निर्बन्धेन पप्रच्छ । स तु 'वणिग्ग्रामस्याग्रे वक्ष्यामि' इति स्थितोऽभूत् । पुनरसौ गृहिण्यै 'स्वनूपुरयुगलं प्रेषय' इति संदिदेश । सा च सलज्जं ससाध्वसं च 'अद्य रात्रौ विश्रामप्रविष्टायां

(नितम्बवतीम्) स्वीकारितवती । सः (कलहकण्टकः) । क्षपायाम् रात्रौ । निर्ग्रन्थिकायाः श्रमणिकायाः प्रयत्नेन । उपनीताम् आनीताम् । परामृशन् स्पृशन् । आक्षिप्य अवतार्य । छुरिकया शस्त्रिकया । ऊरुमूले सक्थिनिम्नतः । आलिख्य क्षतम् कृत्वा । द्रुततरम् अतिशीघ्रम् । अपासरत् पलायत । सान्द्रः गाढः त्रासः भयं यस्याः सा । स्वम् स्वकीयम् । दुर्नयम् अनौचित्यम् । गर्हमाणा निन्दन्ती । जिघांसन्ती हन्तुम् इच्छन्ती । व्रणम् क्षतम् । भवने गृहे या दीर्घिका जलाशयः तस्याम् । पटबन्धनम् पट्टिकाम् । आमयेन रोगेण सह सामया (अस्मि) इति अपदेशात् व्याजेन । अपनीय दूरीकृत्य । शयनपरा शयनलग्ना । निन्ये अयापयत् । नूपुरः मञ्जीरः (पदभूषणम्) ("मञ्जीरो नूपुरोऽस्त्रियाम्" इति अमरः) तेन । उपाससाद समीपम् प्राप्तवान् । सः (अनन्तकीर्तिः) । गृहिण्याः पत्न्याः । तम् (कलहकण्टकम्) । अब्रुवाणम् अनुत्तरयन्तम् । निर्बन्धेन हठेन । पप्रच्छ अपृच्छत् । सः (कलहकण्टकः) । वणिग्ग्रामस्य वणिक्समूहस्य । अग्रे समक्षम् । वक्ष्यामि वदिष्यामि । असौ (वणिक्) । सलज्जम् लज्जया सह । ससाध्वसम् साध्वसेन भयेन सह । विश्रामाय प्रविष्टायाम् (मयि) । प्रभ्रष्टः पतितः ।

रात में वृक्षों वाले बगीचे में पहुँचकर भिक्षुणी के यत्न से लाई गई नितम्बवती का पैर छूता-सा सोने की एक पायल उतारकर चाकू से जाँघ के निचले भाग में कुछ खोदकर बहुत जल्दी भाग गया। उधर उसने अत्यधिक भय लेकर अपनी ही दुर्नीति को कोसती हुई भिक्षुणी को मार डालने को इच्छुक सी वह घाव महल की बावली में धोकर पट्टी बाँधकर बीमारी के बहाने दूसरी पायल उतारकर बिस्तर से लगकर तीन-चार दिन एकान्त में बिताये। वह धूर्त 'बेचूँगा' सोचकर उस पायल के साथ उस अनन्तकीर्ति के पास पहुँचा। उसने देखकर 'मेरी घर वाली का ही यह नूपुर है। कैसे यह तुम्हारे हाथ लगा ?' कहकर उसके न बोलने पर हठ-पूर्वक पूछा। वह 'वैश्य-समाज के सामने कहूँगा' कहकर ठहर गया। फिर उसने अपनी पत्नी के पास संदेश भेजा कि अपनी पायलों की जोड़ी भेजो-। उसने लज्जा और भय के साथ 'आज रात जब मैं आराम करने के लिये वृक्षों वाले बगीचे में प्रविष्ट हुई थी, ढीली बँधी

---

[1] उपग्राहितवती । [2] आकृष्य । [3] उल्लिख्य । [4] पटेन च बद्ध्वा ।

वृक्षवाटिकायां प्रभ्रष्टो ममैकः प्रशिथिलबन्धो नूपुरः। सोऽद्याप्यन्विष्टो न दृष्टः। स पुनरयं द्वितीयः' इत्यपर प्राहिणोत्। अनया च वार्तयाऽमुं पुरस्कृत्य स वणिग्वणिग्जनसमाजमाजगाम। स चानुयुक्तो धूर्तः सविनयमावेदयत्—'विदितमेव खलु वो यथाऽह युष्मदाज्ञया पितृवनमभिरक्ष्य तदुपजीवी प्रतिवसामि। लुब्धाश्च कदाचिन्मद्दर्शनभीरवो निशि दहेयुरपि शवानीति निशास्वपि श्मशानमधिशये। अपरेद्युर्दग्धादग्धं मृतकं चितायाः प्रसभमाकर्षन्तीं श्यामाकारां नारीमपश्यम्। अर्थलोभात्तु निगृह्य भयं[1] सा संगृहीता[2]। शस्त्रिकयोरुमूले यदृच्छया किंचिदुल्लिखितम्। एष च नूपुरश्चरणादाक्षिप्तः। तावत्येव द्रुतगतिः सा पलायिष्ट। सोऽयमस्यागमः। परं भवन्तः प्रमाणम्' इति। विमर्शे[3] च तस्याः

प्रशिथिलबन्धः अदृढबन्धनः। प्राहिणोत् प्रेषितवती। वार्तया वृत्तान्तेन। अमुम् (कलहकण्टकम्)। पुरस्कृत्य गृहीत्वा। सः (कलहकण्टकः)। अनुयुक्तः पृष्टः। आवेदयत् अवदत्। वः युष्माकम्। यथा यत्। युष्माकम् आज्ञया। पितृवनम् श्मशानम्। तदुपजीवी श्मशानजीवी। लुब्धाः करचौर्येच्छुकाः। मद्दर्शनभीरवः मम दर्शनेन भयशीलाः। निशि रात्रौ। दहेयुः ज्वलयेयुः। अपिः संभावनायाम्। अपरेद्युः अपरे दिवसे। दग्धादग्धम् अर्द्धदग्धम्। प्रसभम् बलात्कारेण। श्यामाकाराम् युवत्याकृतिम्। निगृह्य परित्यज्य। संगृहीता धृता। शस्त्रिकया छुरिकया। यदृच्छया स्वेच्छया। आक्षिप्तः अवतारितः। तावति तदा। द्रुतगतिः शीघ्रगतिः। पलायिष्ट पलायत। अस्य (नूपुरस्य)। आगमः प्राप्तिः। परम् अतः परम्। प्रमाणम् निर्णये समर्थाः।

हुई मेरी एक पायल गिर गई थी। ढूँढ़ी पर आज तक न मिली। और वह दूसरी वाली (पायल) यह है' कहकर दूसरी (पायल) भेज दी। इस समाचार के साथ और उस (कलहकण्टक) को लेकर वह बनिया वैश्य-समाज में पहुँचा। पूछने पर वह धूर्त नम्रता के साथ बोला—'आप लोगों को विदित ही है कि मैं आप लोगों के आदेश से श्मशान की रक्षा कर उससे अपनी जीविका चलाता हुआ रह रहा हूँ। लालची लोग कभी मेरी दृष्टि में पड़ने से डरकर रात में लाशें जला सकते हैं, यह संभावना है, यह सोचकर मैं रातों में भी श्मशान में लेटता हूँ। पिछले दिन अधजली लाश चिता से बलपूर्वक खींचती हुई युवती की आकृति वाली एक स्त्री को देखा। धन के लालच से डर दबाकर उसे पकड़ा। छूरी से (उसकी) जाँघ के नीचे यों ही कुछ खोद दिया और यह पायल पैर से उतार ली। इतने में ही वह शीघ्र गति से भाग गई। इसका आगमन मेरे द्वारा अनुभूत यह है। इसके बाद आप लोग

---

१. साध्वसं. २. संनिगृ.। ३. विमर्शेन।

शाकिनीत्वमैकमत्येन पौराणामभिमतमासीत्। भर्त्रा च परित्यक्ता तस्मिन्नेव श्मशाने बहु विलप्य पाशेनोद्बध्य मर्तुकामा तेन धूर्तेन नक्तमगृह्यत। अनुनीता च—'सुन्दरि त्वदाकारोन्मादितेन मया त्वदावर्जने बहूनुपायान्भिक्षुकीमुखेनोपन्यस्य तेष्वसिद्धेषु पुनरयमुपायो यावज्जीवमसाधारणीकृत्य रन्तुमाचरितः।

विमर्शे मिथः विचारे। तस्याः (नितम्बवत्याः)। शाकिनीत्वम्[1] पिशाचीत्वम। पौराणाम् नागरिकाणाम्। विलप्य रुदित्वा। पाशेन रज्ज्वा। उद्बध्य बद्ध्वा। मर्तुम् कामः इच्छा यस्याः सा। नक्तम् रात्रौ। अगृह्यत गृहीता। तव आकारेण रूपेण उन्मादितेन उन्मत्तीकृतेन। तव आवर्जने अनुकूलीकरणे। भिक्षुक्याः श्रमणिकायाः मुखेन द्वारा। उपन्यस्य कृत्वा। असिद्धेषु विफलेषु। यावज्जीवम् जीवनपर्यन्तम्। असाधारणीकृत्य सर्वोत्कृष्टत्वेन मत्वा। रन्तुम्

निर्णय करने में समर्थ हैं।' विचार-विमर्श होने पर उसका डाइन होना नागरिकों का सर्वसम्मत निर्णय हुआ। फिर पति के द्वारा छोड़ी गई वह रात को उसी श्मशान में बहुत रो-धोकर फाँस से अपने को बाँधकर मरने की इच्छुक हुई। तभी उस धूर्त के द्वारा पकड़ी गई और यों मनाई गई—'हे सुन्दरी, तुम्हारे सौन्दर्य से उन्मत्त बनाये गये मैंने तुम्हें अनुकूल बनाने के लिये भिक्षुणी के द्वारा बहुतेरे उपाय किये। उनके विफल होने पर फिर यह उपाय आजीवन

---

[1] "बृहत्कथा" (लंबक १२ तरंग ८) में उद्धृत "वेताल पञ्चविंशिका" में यही उपाय अपनाया गया है। राजकुमार वज्रमुकुट का मंत्री बुद्धि-शरीर राजकुमार के लिये पद्मावती को प्राप्त करने के लिये उसे सलाह देता है कि उसके घर जाकर कमर में जलते शूल से घाव कर दो और गहने उतार लाओ। राजकुमार वैसे ही घाव करता है और गले की मुक्तावली उतार लाता है। फिर उसे बेचा और प्रचार किया जाता है कि इस देश के राजकुमार को बलि देने के लिये एक डाइन आई थी। मैंने उसकी कमर जलते त्रिशूल से दाग दी है और यह गहना गले से खींच लिया है। पद्मावती के माता-पिता ने उसे डाइन समझकर निर्वासित कर दिया

तदागमनहृष्टोऽथ मन्त्रिपुत्रो नृपात्मजम्। जगाद हन्त गच्छाद्य पद्मावत्या गृहं निशि॥ ततस्तस्याः सनिद्रायाः शूलेनाङ्कं कटीतटे। दत्त्वाग्नितप्तेनादाय तदाभरणसंचयम्॥ प्रातर्गत्वा-श्मशानं च सोऽभूत्तापसवेषभृत्। स्वैरं राजसुतं तं च विदधे शुद्धरूपिणम्॥ अब्रवीत्तं च गच्छैकमितोऽलंकरणादिमाम्। मुक्तावलीं समादाय त्वं विक्रेतुमिवापणे॥ श्रुत्वैतद्विजनं कृत्वा स धूर्तस्तमभाषत। अहं तपस्वी भ्राम्यामि सदारण्येष्वितस्ततः॥ सोऽहं दैवादिह प्राप्तः श्मशानेऽत्र स्थितो निशि। अपश्यं योगिनीचक्रं समागतमितस्ततः॥ तन्मध्ये चैकयाऽऽनीय योगिन्या राजपुत्रकः। उद्घाटितहृदम्भोजो भैरवाय निवेदितः॥ अतिप्रवृत्ता च मया क्रुद्धेन जघनस्थले। अङ्किता सा त्रिशूलेन मन्त्रप्रज्वालिताश्रिणा॥ हृता मुक्तावली चेयं तस्याः कण्ठान्मया तदा। सैषाऽथ तापसानर्हा विक्रेया मम वर्तते॥ ग्रस्तः सुतो मे डाकिन्या तयेत्युत्पन्ननिश्चयः। पितृभ्यां शोच्यमानायाः पुरान्निर्वासनं व्यधात्॥

तत्प्रसीदानन्यशरणायास्मै दासजनाय' इति मुहुर्मुहुश्चरणयोर्निपत्य प्रयुज्य सान्त्वशतानि तामगत्यन्तरामात्मवश्यामकरोत् । तदिदमुक्तम्—'दुष्करसाधनं प्रज्ञा' इति ।

स चेदमाकर्ण्य ब्रह्मराक्षसो मामपूपुजत् । अस्मिन्नेव क्षणे नातिप्रौढपुंनागमुकुलस्थूलानि मुक्ताफलानि सह सलिलबिन्दुभिरम्बरतलादपतन् । अहं तु 'किंन्विदम्' इत्युच्चक्षुरालोकयन्कमपि राक्षसं कांचिदङ्गनां विचेष्टमानगात्रीमाकर्षन्तमपश्यम् । 'कथमपहरत्यकामामपि स्त्रियमनाचारो नैर्ऋतः' इति गगनगमनमन्दशक्तिरशस्त्रश्चातप्ये । स तु[1] मत्संबन्धी ब्रह्मराक्षसः 'तिष्ठ तिष्ठ पाप, क्वापहरसि ?' इति भर्त्सयन्नुत्थाय राक्षसेन समसृज्यत । तां तु रोषादन[2]पेक्षाप-

विहर्तुम् । आचरितः कृतः । अनन्यशरणाय न अन्यः शरणम् यस्य तस्मै । मुहुः मुहुः वारम् वारम् । प्रयुज्य उक्त्वा । सान्त्वानां प्रियवचनानाम् शतानि असंख्यानि । न गत्यन्तरम् (अन्या) गतिः) यस्याः सा अगत्यन्तरा ताम् । आत्मवश्याम् स्ववशीभूताम् । तत् अतः ।

अपूपुजत् अपूजयत् । नातिप्रौढानि अनतिपुष्टानि पुंनागस्य बकुलस्य मुकुलानि कलिकाः तद्वत् स्थूलानि । मुक्ताफलानि मौक्तिकानि । अम्बरतलात् आकाशात् । नु (वितर्के) । उद्गते उपरिस्थिते चक्षुषी नेत्रे यस्य सः । विचेष्टमानानि विशेषेण चेष्टमानानि प्रयतमानानि गात्राणि अङ्गानि यस्याः ताम् । कथम् अहो । न कामः यस्याः ताम् (कामरहिताम्) । अनाचारः दुष्टाचारः । नैर्ऋतः राक्षसः । गगने आकाशे गमने उत्पतने मन्दा अल्पा शक्तिः यस्य सः । न शस्त्राणि यस्य सः । अतप्ये तप्तः अभवम् । मम सम्बन्धी परिचितः । पाप पापिन् । क्व कुत्र । भर्त्सयन् निन्दन् । समसृज्यत अयुध्यत । रोषात् कोपात् । न अपेक्षा तया अपविद्धाम् त्यक्ताम् ।

तुम्हें असामान्य रूप में प्रतिष्ठित कर विहार करने के लिये किया है । तो इस दास पर जिसकी शरण कोई अन्य नहीं है कृपा करो ।' यह कहकर बार-बार चरणों पर गिरकर और सैकड़ों प्रिय वचन प्रयुक्त कर अन्य मार्ग-रहित उसे अपनी आज्ञाकारी बना लिया । अतः मैंने यह कहा कि जो कार्य करना कठिन है, उसके करने का उपाय बुद्धि है ।'

अब यह सुनकर उस ब्रह्म राक्षस ने मेरी आव-भगत की । इसी क्षण अल्प-विकसित मौलसिरी की कलियों के समान बड़े-बड़े मोती पानी की बूँदों के साथ आकाश से गिरे । मैं 'क्या है यह ?' यह कहकर आँखें ऊपर कर देखने लगा । मैंने एक राक्षस को एक स्त्री को खींचता हुआ देखा । वह अंगों को बहुत चला रही थी । 'अहो ! न चाह रही होने पर भी इस स्त्री को दुराचारी राक्षस अपहरण किये ले जा रहा है ।' यह कहकर आकाश में पहुँचने में असमर्थ और शस्त्र हीन होने से दुखी हुआ । उधर मेरे परिचित उस ब्रह्म राक्षस ने 'ठहर-ठहर, पापी, कहाँ हरे लिये जा रहा है ?' यों डाँटने लगा । तभी राक्षस उठकर उससे भिड़

---

[1] तम् । [2] अनपेक्षया ।

विद्धाममरवृक्षमञ्जरीमिवान्तरिक्षादापतन्तीमुन्मुखप्रसारितोभयकरः कराभ्यामग्रहीषम् । उपगृह्य च वेपमानां संमीलिताक्षीं मदङ्गस्पर्श[1]सुखेनोद्भिन्नरोमाञ्चां तादृशीमेव तामनवतारयन्नतिष्ठम् । तावत्तावुभावपि शैलश्रृङ्गभङ्गैः पादपैश्च रभसोन्मूलितैर्मुष्टिपादप्रहारैश्च[2]परस्परमक्षपयेताम् । पुनरहमतिमृदुनि पुलिनवति कुसुमलवलाञ्छिते सरस्तीरेऽवरोप्य सस्पृहं निर्वर्णयंस्तां मत्प्राणैकवल्लभां राजकन्यां कन्दुकावतीमलक्षयम् । सा हि मया समाश्वास्यमाना तिर्यङ्मामभिनिरूप्य जातप्रत्यभिज्ञा सकरुणमरोदीत् । अवादीच्च—'नाथ, त्वद्दर्शनादुपोढरागा तस्मिन्कन्दुकोत्सवे पुनः सख्या चन्द्रसेनया त्वत्कथाभिरेव समाश्वासि-

अमराणाम् देवानाम् वृक्षस्य मञ्जरीम् । अन्तरिक्षात् आकाशात् । उन्मुखम् तद्दिशम् प्रति प्रसारितौ उभयकरौ येन सः । अग्रहीषम् गृहीतवान् । उपगृह्य गृहीत्वा । वेपमानाम् कम्पमानाम् । संमीलिते निमीलिते अक्षिणी नेत्रे यया ताम् । मम अङ्गस्य देहस्य स्पर्शेन यत् सुखम् तेन उद्भिन्नाः उद्गताः रोमाञ्चाः यस्याः ताम् । तादृशीम् तदवस्थाम् । अनवतारयन् भूमौ अस्थापयन् । तौ (राक्षसौ) । शैलस्य पर्वतस्य श्रृङ्गाणाम् शिखराणाम् भङ्गैः खण्डैः । पादपैः वृक्षैः । रभसा वेगेन । उन्मूलितैः उत्पाटितैः । मुष्टीनाम् पादानाम् च प्रहारैः ताडनैः । अक्षपयेताम् अनाशयताम् । अतिमृदुनि अतिकोमले । पुलिनम् जलोत्थितम् स्थानम् तद्वति । कुसुमानाम् पुष्पाणाम् लवः लेशः तेन लाञ्छिते चिह्निते । सरसः तडागस्य तीरे तटे । अवरोप्य उत्तार्य । सस्पृहम् साभिलाषम् । निर्वर्णयन् निपुणम् पश्यन् । मम प्राणानाम् एकवल्लभाम् एकप्रियाम् । अलक्षयम् अपश्यम् । सा (कन्दुकावती) । मया (मित्रगुप्तेन) । समाश्वास्यमाना उपसान्त्व्यमाना । तिर्यक् ग्रीवाम् वक्रीकृत्य । अभिनिरूप्य सुष्ठु दृष्ट्वा । जाता प्रत्यभिज्ञा सः एव अयम् इति पूर्वदृष्टस्मरणम् यस्याः सा । अवादीत् अवदत् । उपोढः आरूढः रागः प्रेम यस्याः

गया । उधर वह स्त्री गुस्से में आकर उपेक्षा से फेंकी गयी । मैंने उस ओर दोनो हाथ फैलाकर स्वर्ग-लोक के वृक्ष की मंजरी की भाँति आकाश से गिरती हुई उसे दोनो हाथों से पकड़ लिया । उसे पकड़कर उसी अवस्था में बिना उतारे ही स्थित रहा । वह काँप रही थी । आँखें मूँदे थीं । मेरे शरीर के स्पर्श-सुख से उसके रोयें खड़े हो गये थे । तब तक इन दोनों ने भी पहाड़ की चोटियों के खण्डों, वेग से जड़ से उखाड़े हुये वृक्षों और घूसों तथा लातों की चोटों से एक-दूसरे को मार डाला । अब मैंने अत्यन्त कोमल, पानी से निकली हुई भूमि से युक्त, फूल के टुकड़ों से चिह्नित सरोवर-तट पर उतारकर प्रेम पूर्वक गौर से देखा । वह मेरे प्राणों की एकमात्र प्रिया राजकुमारी कन्दुकावती निकली । मेरे ढाढ़स बँधाने पर वह तिरछी नजर से मुझे गौर से देखकर पहचानकर करुणा-पूर्वक रोने लगी और बोली—'स्वामी, तुमको उस कन्दुकोत्सव में देखने से मुझे प्यार हो गया था । फिर सखी चन्द्रसेना ने तुम्हारी चर्चाओं से

---

१. स्पर्शसुखेनेव । २. अस्मात्परं "जानुमिश्र" इत्यस्ति एकस्मिन् पुस्तके ।

तास्मि। 'त्वं किल समुद्रमध्ये मज्जितः पापेन मद्भ्रात्रा भीमधन्वना' इति श्रुत्वा सखीजनं परिजनं च वञ्चयित्वा जीवितं जिहासुरेकाकिनी क्रीडावनमुपागमम्। तत्र च मामचकमत कामरूप एष राक्षसाधमः। सोऽयं मया भीतयावधूतप्रार्थनः स्फुरन्तीं मां निगृह्याभ्यधावत्। अत्रैवमवसितोऽभूत्। अहं च दैवात्तवैव जीवितेशस्य हस्ते पतिता। भद्रं तत्र' इति श्रुत्वा च तया सहावरुह्य, नावमध्यारोहम्। मुक्ता च नौः प्रतिवातप्रेरिता तामेव दामलिप्तां प्रत्युपातिष्ठत्। अवरूढाश्च वयमश्रमेण। 'तनयस्य च तनयायाश्च नाशादनन्यापत्यस्तुङ्गधन्वा सुह्मपतिनिष्कलः[1] स्वयं सकलत्र एव निष्कलङ्कगङ्गारोधस्यनशनेनोपरन्तुं प्रतिष्ठते। सह तेन मर्तुमिच्छत्यनन्यनाथोऽनुरक्तः पौरवृद्धलोकः' इत्यश्रुमुखीनां प्रजानामाक्रन्दमशृणुम। अथाहमस्मै राज्ञे यथावृत्तमाख्याय तदपत्यद्वयं प्रत्यर्पितवान्।

सा। तव कथाभिः। किल (ऐतिह्ये)। पापेन पापिना। मम भ्रात्रा। परिजनम् सेवकवर्गम्। वञ्चयित्वा त्यक्त्वा। जीवितम् जीवनम्। जिहासुः हातुम् त्यक्तुम् इच्छुः। उपागमम् आगच्छम्। अचकमत अकामयत। कामरूपः मायावी। राक्षसेषु अधमः नीचः। अवधूता तिरस्कृता प्रार्थना यस्य सः। स्फुरन्तीम् कम्पमानाम्। निगृह्य धृत्वा। अवसितः समाप्तः। अभूत् अभवत्। दैवात् भाग्यात्। जीवितेशस्य प्राणनाथस्य। भद्रम् कल्याणम्। अवरुह्य अवतीर्य (पर्वतात्)। नावम् नौकाम्। मुक्ता चालिता। प्रतिवातेन विपरीतेन वायुना। उपातिष्ठत् प्राप्ता। अश्रमेण परिश्रमम् विना। न विद्यते अपत्यम् यस्य सः अनपत्यः। निष्कलः वृद्धः। कलत्रेण पत्न्या सह। निष्कलङ्के पापरहिते गङ्गायाः रोधसि तटे। अनशनेन उपवासेन। उपरन्तुम् मर्तुम्। प्रतिष्ठते प्रचलति। अनन्यनाथः शरणरहितः। अश्रु मुखे यासाम् तासाम्। आक्रन्दम् विलापम्। अस्मै तुङ्गधन्वने। आख्याय उक्त्वा। अपत्यद्वयम् सन्तानयुगलम् (कन्दुकावतीम् भीमधन्वानम् च)। तेन (तुङ्ग-

ही मुझे धैर्य बँधाया था। सुना गया था कि मेरे पापी भाई भीमधन्वा ने तुम्हें समुद्र के बीच डुबा दिया था। यह सुनकर सखियों और दासी-वर्ग को छोड़कर प्राण त्यागने की इच्छा लेकर अकेली क्रीड़ा-उद्यान में पहुँची थी। वहाँ इच्छानुरूप भेष बना लेने वाले इस नीच राक्षस ने मेरी कामना की। मैं डर गई और उसकी प्रार्थना ठुकरा दी। मैं काँपने लगी। वह मुझे पकड़ कर भागा। यहाँ इस भाँति समाप्त हो गया। भाग्य से मैं प्राणेश तुम्हारे ही हाथ में गिरी। तुम्हारा मंगल हो।' फिर यह सुनकर उसके साथ (पहाड़ से) उतरकर नाव पर चढ़ा। नाव खुलकर प्रतिकूल दिशा में जाने वाली वायु से प्रेरित होकर उसी दामलिप्ता की ओर रवाना हो गई। हम लोग बिना परिश्रम के उतर गये। 'पुत्र और पुत्री के नाश से संतानरहित वृद्ध सुह्म-नरेश तुङ्गधन्वा सपत्नीक ही गङ्गा के निर्मल तट पर उपवास कर मरने चल पड़े हैं। उनके साथ असहाय और भक्त वृद्ध नागरिक मरना चाहते हैं।' यह मुँह पर आँसू लिये जनता का विलाप सुना। तब मैं इन राजा से जैसी घटना घटी थी वह कहकर वे

---

[1] विकलः।

प्रीतेन तेन जामाता कृतोऽस्मि दामलिप्तेश्वरेण। तत्पुत्रो मदनुजीवी जातः। मदाज्ञप्तेन चामुना प्राण[1]वदुज्झिता चन्द्रसेना कोशदासमभजत्। ततश्च सिंहवर्मसाहाय्यार्थमत्रागत्य भर्तुस्तव दर्शनोत्सवसुखमनुभवामि' इति।

श्रुत्वा 'चित्रेयं दैवगतिः। अवसरेषु पुष्कलः पुरुषकारः' इत्यभिधाय भूयःस्मिताभिषिक्तदन्तच्छदो[2] मन्त्रगुप्ते हर्षोत्फुल्लं चक्षुः पातयामास देवो राजवाहनः। स किल करकमलेन किञ्चित्संवृताननो ललितवल्लभारभसदत्तदन्तक्षतव्यसनविह्वलाधरमणिर्निरोष्ठ्यवर्णमात्मचरितमाचचक्षे।

इति श्रीदण्डिनः कृतौ दशकुमारचरिते मित्रगुप्तचरितं नाम षष्ठ उच्छ्वासः।

धन्वना); तस्य (तुङ्गधन्वनः) पुत्रः (भीमधन्वा)। मम अनुजीवी आश्रितः। मया (मित्रगुप्तेन) आज्ञप्तेन आदिष्टेन। अमुना (भीमधन्वना)। उज्झिता त्यक्ता।

तत्र (राजवाहनस्य)। चित्रा विचित्रा। अवसरेषु उचितेषु कालेषु। पुष्कलः महान्। पुरुषकारः पुरुषार्थः। अभिधाय उक्त्वा। भूयः पुनः। स्मितेन ईषद्हास्येन अभिषिक्तौ स्नातौ दन्तच्छदौ ओष्ठौ यस्य सः। किल (वार्तायाम् अनुनये वा। "किल-शब्दस्तु वार्तायां संभाव्यानुनयार्थयोः" इति विश्वः)। किंचित् ईषत् संवृतम् आवृतम् आननम् मुखम् यस्य सः। ललिता सुन्दरी या वल्लभा प्रिया तया रभसेन आतुरतया दत्तम् अर्पितम् यत् दन्तक्षतम् तेन यत् व्यसनम् व्यथा तेन विह्वलः आकुलः अधरमणिः (मणिः इव अधरः) यस्य सः। निर्गताः दूरीभूताः ओष्ठ्याः ओष्ठोच्चारिताः वर्णाः यस्मिन् तत्। आत्मनः निजस्य चरितम् जीवनकथाम्। आचचक्षे अवदत्।

दोनो सन्तानें सौंप दीं। उन दामलिप्ता-नरेश ने प्रसन्न होकर मुझे दामाद बना लिया। उनका पुत्र मेरा आश्रित हो गया। फिर मेरी आज्ञा पाकर उसने चन्द्रसेना को प्राण के समान छोड़ा। उसने कोशदास को अपना लिया। उसके बाद सिंहवर्मा की सहायता के लिये यहाँ आये स्वामी आपके दर्शन-उत्सव का सुख भोग रहा हूँ।'

(यह) सुनकर 'यह भाग्य-गति विचित्र है। मौकों पर खूब पुरुषार्थ दिखाया।' यह कहकर फिर मुस्कराहट से नहाये ओंठ लेकर महाराज राजवाहन ने मन्त्रगुप्त के ऊपर आनन्द से खिली दृष्टि डाली। उसने अनुनय-पूर्वक कमल-तुल्य हाथ से मुँह कुछ ढँककर ओंठ से उच्चारित किये जाने वाले वर्णों से रहित[3] अपनी जीवन-कथा कहनी शुरू की। उस समय सुन्दरी प्रिया के द्वारा आतुरता से दिये गये दन्त-क्षत (दाँत के घाव) की पीड़ा से उसका मणि-तुल्य निचला ओंठ व्यथित था।

श्री दण्डी की कृति "दशकुमारचरित" का "मित्रगुप्तचरित"-नामक
छठा उच्छ्वास (परिच्छेद) समाप्त हुआ।

---

१. प्रणिहिता; त्यक्ता प्राणवद्दूर्जिता। २. ०च्छदे।

३. श्री राम के "कंस निधन" ग्रंथ में भी इसी तरह वर्णों को छोड़कर वर्णन करने का चमत्कार आया है।

सप्तमोच्छ्वासः

राजाधिराजनन्दन, नगरन्ध्रगतस्य ते गतिं ज्ञास्यन्नहं च गतः [1]कदाचित्कलिङ्गान्। कलिङ्गनगरस्य नात्यासन्नसंस्थितजनदाहस्थानससक्तस्य कस्यचित्कान्तारधरणिजस्यास्तीर्णसरसकिसलयसंस्तरे तले निषद्य निद्रालीढदृष्टिरशयिषि। गलति च कालरात्रिशिखण्डजालकान्धकारे, [2]चलितरक्षसि क्षरितनीहारे निजनिलयनिलीननिःशेषजने नितान्त[3]शीते निशीथे घनतरसालशाखान्तरालनिर्ह्रादि[4] नेत्रनिंसिनीं निद्रां निगृह्णत्,[5] कर्णदेशं गतं 'कथं खलेनानेन दग्ध-

राजाधिराजनन्दन राजकुमार। नगस्य पर्वतस्य रन्ध्रम् बिलम् गतस्य प्राप्तस्य। ते तव (राजवाहनस्य) गतिम् मार्गम्। ज्ञास्यन् ज्ञातुम् इच्छन्। अहम् (मन्त्रगुप्तः)। कलिङ्गान् कलिङ्गदेशम्। नात्यासन्नम् अनत्यासन्नम् (नातिसमीपम्)। संस्थिताः मृताः ("परेतप्रेतसंस्थिताः" इति अमरः) च ते जनाः च तेषाम् दाहस्थानम् श्मशानभूमिः तत्संसक्तस्य तल्लग्नस्य। कान्तारस्य दुर्गममार्गस्य ("कान्तारम् वर्त्म दुर्गमम्". इति अमरः)। धरणिजः वृक्षः। आस्तीर्णः स्थापितः सरसानाम् आर्द्राणाम् किसलयानाम् नवपत्राणाम् संस्तरः शयनम् यत्र। तले समभूमौ। निषद्य उपविश्य। निद्रया आलीढा दृष्टिः यस्य सः। अशयिषि शयितः अभवम्। गलति पतति (नश्यति)। कालरात्रेः कालरूपायाः रजन्याः यत् शिखण्डानाम् केशानाम् जालकम् समूहः तद्वत् अन्धकारे। चलितानि व्याप्तानि रक्षांसि राक्षसाः यत्र तत्र। क्षरितः पतितः नीहारः हिमः यत्र तत्र। निजे निलये गृहे निलीनाः स्थिताः निःशेषाः सर्वे जनाः यत्र तत्र। नितान्तम् शीतम् यत्र तत्र। निशीथे अर्धरात्रे। घनतराणाम् निबिडानाम् सालानाम् वृक्षाणाम् शाखान्तरालेषु शाखामध्ये निर्ह्रादः ध्वनिः सः अस्य अस्ति इति (ध्वनियुक्तम् प्रतिध्वनियुक्तम् वा रटितम्) नेत्रनिंसिनीम् नयनचुम्बिनीम्। निगृह्णत् निवारयत्। कर्णदेशम् श्रवणप्रदेशम्। गतम् प्राप्तम्। खलेन दुष्टेन। दग्धसिद्धेन दुष्टेन सिद्धेन। रन्तुम्

सातवाँ उच्छ्वास

राजकुमार, पहाड़ की गुफा में पहुँचे हुये आप किधर गये, यह पता लगाता हुआ मैं कभी कलिङ्ग देश[६] पहुँचा। कलिङ्ग नगर से कुछ दूर स्थित श्मशान से लगे हुये एक दुर्गम मार्ग-वर्त्ती वृक्ष के नीचे बैठकर लेट गया। वहाँ रस-युक्त नये पत्तों का बिस्तर बिछा हुआ था। मेरी दृष्टि निद्रा के द्वारा व्याप्त हो गई थी। आधी रात के समय अंधकार काल-रात्रि के केश-पाश के समान था। राक्षसों ने चलना-फिरना शुरू कर दिया था। ओस गिर चुकी थी। सभी लोग अपने घरों में छिप चुके थे। उसमें बहुत ठण्ड थी। उसके बीत जाने पर 'कैसे इस दुष्ट पापी सिद्ध ने आमोद-प्रमोद की इच्छा वाले समय पर बेलगाम अनुराग से पीड़ित मुझे आदेश देने

---

१. तदा। २. चरित। ३. निशान्त। ४. निर्ह्रादिनि। ५. निगृह्णन्।

६. उड़ीसा के दक्षिण में गोदावरी नदी के मुहाने तक बसा हुआ एक प्राचीन प्रदेश।

सिद्धेन[1] रिरंसाकाले निदेशं दित्सता जन एष रागेणानर्गलेनार्दित इत्थं खिलीकृतः[2]। क्रियेतास्याणकनरेन्द्रस्य केनचिदनन्तशक्तिना सिद्ध्यन्तरायः' इति किंकरस्य किंकर्याश्चातिकातरं रटितम्। तदाकर्ण्य 'क एष सिद्धः ? का च सिद्धिः ? किं चानेन किंकरेण करिष्यते ?' इति दिदृक्षाक्रान्तहृदयः किंकरगतया दिशा किंचिदन्तरं गतस्तरलतरनरास्थिशकलचितालङ्का[3]राक्रान्तकायम्, दहनदग्धकाष्ठनिष्ठाङ्गाररजःकृताङ्गरागम्, तडिल्लताकारजटाधरम्, हिरण्यरेतस्यरण्यचक्रान्धकारराक्षसे क्षणक्षणगृहीतनानेन्धनग्रासचञ्चदर्चिषि दक्षिणेतरेण करेण तिलसिद्धार्थकादीन्निरन्तरचटच्चटायितानाकिरन्तं, कञ्चिदद्राक्षम्। तस्याग्रे स कृताञ्जलिः

इच्छा रिरंसा तस्याः काले। निदेशम् आज्ञाम्। दित्सता दातुम् इच्छता। रागेण प्रेम्णा। अनर्गलेन असीमेन। अर्दितः पीडितः। इत्थम् दृश्यमानप्रकारेण। खिलीकृतः अवरुद्धः। क्रियेत कर्तुम् युज्यते। अणक-(अण्+अच् कुत्सायाम् कप् च)-नरेन्द्रः कुत्सितः नरेन्द्रः मन्त्रज्ञः तस्य। अनन्ता शक्तिः यस्य तेन। सिद्धेः अन्तरायः विघ्नः। किङ्करस्य दासस्य। किङ्करी किङ्करस्य स्त्री तस्याः अतिकातरम् अत्यन्तदीनम्। रटितम् रोदनम्। तत् (रोदनम्)। आकर्ण्य श्रुत्वा। दिदृक्षा द्रष्टुम् इच्छा तया आक्रान्तम् व्याप्तम् हृदयम् यस्यसः। किङ्करम् दासम् गतया। अन्तरम् दूरम्। तरलतराणि (प्रत्यग्रत्वात्) उज्ज्वलानि ("तरलो हाररत्ने च चञ्चले चोज्ज्वलेऽपि च" इति केशवः) यानि नराणाम् अस्थीनि तेषाम् शकलानि खण्डानि तैः रचिताः ये अलङ्काराः तैः आक्रान्तः व्याप्तः कायः शरीरम् यस्य तम्। दहनेन अग्निना दग्धम् यत् काष्ठम् तन्निष्ठम् तत्स्थितम् यत् अङ्गाररजः भस्म तेन कृतः अङ्गरागः अङ्गरञ्जनम् येन तम्। हिरण्यरेतसि अग्नौ ("हिरण्यरेता हुतभुक्" इति अमरः)। अरण्यचक्रे वनमण्डले यः अन्धकारः तस्य राक्षसे नाशके। क्षणे क्षणे गृहीतानि नाना इन्धनानि तेषाम् ग्रासेन चञ्चन्ति चपलानि अर्चींषि ज्वालाः यस्य तस्मिन्। दक्षिणेतरेण वामेन। तिलाः च सिद्धार्थाः श्वेतसर्षपाः च ते आदौ येषाम् तान्। निरन्तरम् अविरलम् चटचटा इति अव्यक्तम् शब्दम् कुर्वतः। आकिरन्तम्

के इच्छुक होकर इस प्रकार बाँध दिया है। किसी असीम बल वाले व्यक्ति को इस नीच मंत्रज्ञाता की सिद्धि में विघ्न डालना चाहिये' यों नौकर और उसकी स्त्री का अत्यन्त करुण क्रन्दन कर्ण-प्रदेश में पहुँचा। खूब घने वृक्षों की डालों के बीच वह गूँज रहा था और आँखें चूम रही नींद रोक रहा था। वह सुनकर 'यह सिद्ध कौन है, सिद्धि क्या है और यह दास क्या करेगा ?' यह देखने की इच्छा से मेरा हृदय व्याप्त हो गया। दास तक जाने वाली दिशा पकड़कर कुछ दूर जाकर एक पुरुष को देखा। उसका शरीर खूब चमकीले नर-अस्थि-खण्डों से बने गहनों से व्याप्त था। आग से जली लकड़ी में लगी राख से उसने शरीर पर रङ्ग-रचना की थी। विद्युत्लता (बिजली की लम्बी और तिरछी रेखा) के आकार की जटा धारण किये हुये था। बाँयें हाथ से लगातार चटचट आवाज कर रहे तिल, सफेद सरसों आदि आग में डाल रहा था। वह आग वन-मण्डल के अन्धकार की नाशक हो गई थी। उसकी लपटें क्षण-प्रतिक्षण ग्रहण

---

१. नरेन्द्रेण। २. खलीकृतः। ३. ०कारकान्तकायम्।

किंकरः 'किं करणीयम्, दीयतां निदेशः' इत्यतिष्ठत्। आदिष्टश्चायं तेनातिनिकृष्टाशयेन— गच्छ, कलिङ्गराजस्य कर्दनस्य कन्यां कनकलेखां कन्यागृहादिहानय' इति। स च तथाकार्षीत्। ततश्च तां त्रासेनालघीयसास्रजर्जरेण च कण्ठेन रणरणिकागृहीतेन च हृदयेन 'हा तात, हा जननि,' इति क्रन्दन्तीं कीर्णग्लानशेखरस्रजि शीर्णनहने शिरसिजानां संचये निगृह्यासिनाशिलाशितेन[1] शिरश्चिकर्तिषयाचेष्टत। झटिति चाच्छिद्य तस्य [2]हस्तात्तां शस्त्रिकां तया निकृत्य तस्य तच्छिरः सजटाजालम्, निकटस्थस्य कस्यचिज्जीर्णसालस्य स्कन्धरन्ध्रे [3]न्यधिषि। तन्निध्याय हृष्टतरः स राक्षसः क्षीणाधिरकथयत्—'आर्य, कदर्य-

---

क्षिपन्तम्। अद्राक्षम् अपश्यम्। कृताञ्जलिः कृतनमस्कृतिः। निदेशः आज्ञा। अयम् (किङ्करः)। तेन (सिद्धेन) अतिनिकृष्टः अत्यन्तनीचः आशयः मनः यस्य तेन। कर्दनस्य कर्दननाम्नः। कन्यागृहात् कन्यान्तःपुरात्। अकार्षीत् अकरोत्। ततः तत्पश्चात्। ताम् (कनकलेखाम्)। त्रासेन भयेन अलघीयसा विपुलेन। अस्रैः अश्रुभिः ("अस्रः कोणे शिरसिजे चास्रमश्रुणि शोणिते" इति विश्वः) जर्जरेण आर्द्रेण। कण्ठेन (उपलक्षणे तृतीया)। रणरणिकया औत्सुक्येन ("औत्सुक्यं रणरणिका" इति महीपः) गृहीतेन वशीकृतेन। हृदयेन (उपलक्षणे तृतीया)। तात पितः। क्रन्दन्तीम् विलपन्तीम्। कीर्णा क्षिप्ता ग्लाना म्लाना शेखरस्रक् शिरोभूषणभूता माला यत्र तत्र शीर्णम् छिन्नम् नहनम् बन्धनम् यस्य तत्र। शिरसिजानाम् केशानाम्। संचये समूहे। निगृह्य धृत्वा। असिना पशुघातशस्त्रिकया। शिलया शाणेन शितः तीक्ष्णीकृतः तेन। शिरश्चिकर्तिषया शिरश्छेदेच्छया। अचेष्टत अयतत। झटिति शीघ्रम्। आच्छिद्य अपकृष्य। शस्त्रिकाम् खड्गम्। तया (शस्त्रिकया)। निकृत्य छित्त्वा। तस्य (सिद्धस्य) शिरः मस्तकम्। जटानाम् जालेन समूहेन सह वर्तमानम्। जीर्णसालस्य पुरातनवृक्षस्य। स्कन्धस्य रन्ध्रे कोटरे। न्यधिषि निवेशितवान्। निध्याय दृष्ट्वा। हृष्टतरः विशेषेण प्रसन्नः। राक्षसः (दासः)। क्षीणः नष्टः आधिः मानसी व्यथा यस्य सः। आर्य भद्र। कुत्सितः

किये गये नाना प्रकार के ईन्धन के कौर पाकर चञ्चल हो गई थी। उस (सिद्ध) के सामने अञ्जलि बाँधकर वह दास 'क्या करना होगा? आदेश दें' यह कहकर खड़ा रहा। इस अत्यन्त नीच मन वाले ने आज्ञा दी—'जाओ; कलिङ्ग के राजा कर्दन की कन्या कनक-लेखा को कन्या-अन्तःपुर से यहाँ लाओ।' उसने वैसा किया। उसके बाद अत्यधिक डर, आँसुओं से गद्गद गला तथा उत्सुकता से विवश हृदय लेकर 'हाय पिता, हाय माँ' कहकर विलाप करती हुई उसका बिखरी और म्लान शिर-माला वाला और शिथिल बन्धन-युक्त केश-समूह पकड़कर पत्थर पर तेज की गई पशु मारने वाली छुरी से सिर काटने की इच्छा से प्रयत्न-शील हो गया। तब फुर्ती से उसके हाथ से वह छुरी छीनकर मैंने उससे उसका जटा-समूह-युक्त सिर काटकर निकट-वर्ती किसी पुराने वृक्ष के तने के खोखले भाग में डाल दिया। वह देखकर वह राक्षस (दास) अत्यन्त प्रसन्न हुआ। उसकी मनोव्यथा नष्ट हो गई। बोला—'महोदय, इस नीच

---

[1] शिलासितेन। [2] हस्तादसिलतां ताम्। [3] न्यदधाम्।

स्यास्य कदर्थनान्न कदाचिन्निद्रायाति नेत्रे। तर्जयति त्रासयति च, अकृत्ये चाज्ञां ददाति। तदत्र कल्याणराशिना साधीयः कृतम् यदेष नरकाकः कारणानां नारकीणां रसज्ञानाय [1]'नीतः शीतेतरदीधितिदेहजस्य नगरम्' तदत्र दयानिधेरनन्ततेजसस्तेऽयं जनः कांचिदाज्ञां चिकीर्षति। आदिश, अलं कालहरणेन' इत्यनंसीत्। आदिश च तम्—'सखे, सैषा सज्जनाचरिता सरणिर्यदणीयसि कारणेऽनणीयानादरः संदृश्यते। न चेदिदं नेच्छसि सेयं संनताङ्गयष्टिरक्लेशार्हा सत्यनेनाकृत्यकारिणात्यर्थं क्लेशिता, तन्नयैनां निजनिलयम्। नान्यदितः किंचि-

अर्यः स्वामी कदर्यः तस्य। अस्य (सिद्धस्य)। कदर्थनात् पीडनात्। आयाति आगच्छति। तर्जयति भर्त्सयति। त्रासयति भयम् करोति। अकृत्ये अनुचिते कार्ये। तत् अतः। अत्र अस्मिन् विषये। कल्याणानाम् राशिः समूहः तेन। साधीयः साधुतरम्। एषः (सिद्धः) नरः काकः इव (दुष्टः)। कारणानाम् यातनानाम् ("कारणा तु यातना तीव्रवेदना" इति अमरः)। नारकीणाम् नरकसम्बधिनीनाम्। रसस्य स्वादस्य ज्ञानाय। नीतः प्रापितः। शीतेतराः उष्णाः दीधितयः किरणाः यस्य तस्य (सूर्यस्य) देहजस्य पुत्रस्य (यमस्य)। दयायाः निधेः निधानस्य। अनन्तम् असीमम् तेजः यस्य तस्य। ते तव (मन्त्रगुप्तस्य)। अयम् (राक्षसः)। चिकीर्षति कर्तुम् इच्छति। अलम् (निषेधे)। कालस्य हरणेन व्ययेन। अनंसीत् अनमत्। सखे मित्र। सज्जनैः आचरिता सेविता। सरणिः मार्गः। अणीयसि अणुतरे (अत्यल्पे)। कारणे आदरहेतौ (उपकारे)। अनणीयान् महान्। संदृश्यते मन्यते। इयम् (राजकुमारो)। सन्नता सम्यक् नता नम्रा अङ्गयष्टिः यस्याः सा। अक्लेशार्हा क्लेशसहनायोग्या। अनेन (सिद्धेन)। अकृत्यकारिणा अनुचितकार्यकारिणा। अत्यर्थम् अत्यधिकम्। क्लेशिता पीडिता। तत् तर्हि। एनाम् (राजकुमारीम्)। निजस्य (राजकुमार्याः)। निलयम् गृहम्। इतः अतः अधिकम्। चित्तस्य

मालिक के उत्पीड़न से कभी आँखों में नींद नहीं आती। गाली देता है, धमकाता है और अनुचित कार्य करने का आदेश देता है। अतः इस विषय में मङ्गल-राशि (आप-) ने बहुत अच्छा किया जो इस नीच आदमी को नरक की यातनाओं का स्वाद जानने के लिये यमराज के नगर (नरक) पहुँचा दिया है। (अतः इस विषय में) दया-निधान और असीम तेज वाले आपको किसी आज्ञा का पालन करना चाहता हूँ। आदेश दें; देर न करें। यह कहकर उस(राक्षस) ने प्रणाम किया। मैंने उसे आदेश दिया—'मित्र, सज्जनों के द्वारा अपनाई गई यह प्रसिद्ध राह है कि बहुत छोटे आदर-हेतु (उपकार) के प्रति महान् आदर देखा जाता है। यदि यह अनभिप्रेत नहीं है तो इन्हें इनके घर पहुँचा दो। नम्र अङ्ग-यष्टि (छड़ी के समान शरीर) वाली ये कष्ट सहने के योग्य न होती हुई (भी) इस अनुचित कार्य करने वाले के द्वारा बहुत अधिक पीड़ित की गई हैं। इससे बढ़कर मेरे चित्त को प्रसन्न करने वाली कोई और

---

१. नीतः शेते शीतेतर...नगरे।

दस्ति चित्ताराधनं नः' इति । अथ तदाकर्ण्य कर्णशेखरनील[1]नीरजायितां धीर[2]तरतारकां दृशं तिर्यक्किंचिदञ्चितां संचारयन्ती, सलिलचरकेतनशरासनानतां चिल्लिकालतां ललाटरङ्गस्थलीनर्तकीं लीलालसं [3]लासयन्ती. कण्टकितरक्तगण्डलेखा, रागलज्जान्तरालचारिणी, चरणाग्रेण तिरश्चीननखार्चिश्चन्द्रिकेण धरणीतलं साचीकृताननसरसिजं लिखन्ती, दन्तच्छदकिसलयलङ्घिना हर्षास्रसलिलधाराशीकरकणजालक्लेदितस्य स्तनतटचन्दनस्यार्द्रतां निरस्यतास्यान्तरा[4]लनिःसृतेन [5]तनीयसानिलेन हृदयलक्ष्यदलनदक्ष[6]रतिसह[7]चरशरस्यदायितेन .तरङ्गितदशन-

आराधनम् तोषकारकम् । नः अस्माकम् (मम) । तत् उपर्युक्तम् । आकर्ण्य श्रुत्वा । कर्णयोः शेखरे अग्रभागे नीलम् नीरजम् कमलम् तद्वत् आचरति ताम् । धीरतरा विशेषेण निश्चला तारका कनीनिका यस्याः ताम् । दृशम् दृष्टिम् । तिर्यक् वक्रम् । किञ्चित् ईषत् । अञ्चिताम् चलिताम् । सञ्चारयन्ती भ्रमयन्ती । सलिलचरः मत्स्यः केतनम् यस्य तस्य (कामस्य) शरासनम् धनुः तत् इव आनताम् वक्राम् । चिल्लिकालताम् भ्रूलताम् । ललाटम् एव रङ्गस्थली तत्र नर्तकीम् । लीलया विलासेन अलसम् मन्दम् यथा स्यात् तथा । लासयन्ती नर्तयन्ती । कण्टकाः रोमाञ्चाः अस्याः संजाताः इति कण्टकिता, रक्ता अरुणा गण्डलेखा कपोलपाली यस्याः सा । रागः प्रेम च लज्जा च तयोः अन्तराले मध्ये चारिणी वर्तमाना । तिरश्चीनः वक्रः नखः तस्य अर्चिः कान्तिः एव चन्द्रिका कौमुदी यस्य तेन । धरणीतलम् पृथ्वीतलम् । साचीकृतम् वक्रीकृतम् आननसरसिजम् मुखकमलम् यस्मिन् कर्मणि तत् यथा स्यात् तथा । लिखन्ती उत्किरन्ती । दन्तच्छदः अधरः सः एव किसलयः तम् लङ्घयति तेन । हर्षास्रसलिलधारा आनन्दाश्रुजलधारा तस्याः शीकरकणाः बिन्दुखण्डाः तेषाम् यत् जालम् समूहः तेन क्लेदितस्य आर्द्रीकृतस्य । स्तनयोः तटे निम्नोन्नतभागे यत् चन्दनम् तस्य । निरस्यता दूरीकुर्वता । आस्यस्य मुखस्य अन्तरालम् मध्यः तस्मात् निःसृतेन निर्गतेन । तनीयसा मन्देन अनिलेन वायुना । हृदयम् एव लक्ष्यम् तस्य दलने भेदने दक्षः कुशलः यः रतिसहचरः कामः तस्य यः शरः बाणः तस्य यः स्यदः वेगः तद्वत् आचरति तेन । (अनिलेन) तरङ्गिता तरङ्गयुक्तीकृता दशनानाम्

बात नहीं है । तब वह सुनकर कान के ऊपरी भाग में नील कमल का कार्य करने वाली अत्यन्त गंभीर पुतलियों वाली दृष्टि तिरछी दिशा में कुछ चंचल बनाकर संचारित करने लगी, काम के धनुष के समान वक्र ललाट के रंग-मंच की नर्तकी लता-तुल्य भौंह को विलास से मन्द-मन्द नचाने लगी । उसकी कपोल-रेखा रोमांचित हो गई थी । प्रेम और लाज के मध्य चक्कर काट रही थी । मुख-कमल तिरछा कर वक्र नखों की प्रभारूपी चाँदनी वाले चरण-अग्र (ऊपरी भाग) से पृथ्वी खोद रही थी । ओंठ-रूपी किसलय तक पहुँचने वाली, हर्षाश्रु की जल-धारा के बिन्दु-खण्डों के समूह से गीले बनाये गये स्तन के ढालू भाग पर लगे चन्दन को दूर कर रही, मुख-मध्य से निकली, विशेष मन्द और हृदय-रूपी लक्ष्य को खण्ड-खण्ड करने में निपुण कामदेव के बाण-वेग का काम करने वाली हवा के द्वारा जिनके उच्चारण के समय दाँतों की

. ०निलीननील । २. धीरतरल । ३. लालयन्ती । ४. ०लनासान्तरनिःसृतेन ।
५. अतनीयसा । ६. दक्षिण । ७. सहचरसायकस्य दयितेन ।

चन्द्रिकाणि कानिचिदेतान्यक्षराणि कलकण्ठीकलान्यसृजत्—'आर्य, केन कारणेनैनं दासजनं कालहस्तादाच्छिद्यानन्तरं रागानिलचालि[1]तरणरणिकातरङ्गिण्यनङ्गसागरे किरसि। यथा ते चरणसरसिजरजःकणिका तथाहं चिन्तनीया। यद्यस्ति दया तेऽत्र जने अनन्यसाधारणः करणीयः स एष चरणाराधनक्रियायाम्। यदि च कन्यागाराध्यासने रहस्यक्षरणादनर्थं [2]आशङ्क्येत, नैतदस्ति। रक्ततरा हि नस्तत्र सख्यश्चेट्यश्च। यथा न कश्चिदेतज्ज्ञास्यति तथा यतिष्यन्ते'[3] इति। स चाहं देहजेनाकर्णाकृष्टसायकासनेन चेतस्यतिनिर्दयं ताडितस्तत्कटाक्षकालायसनिगडगाढसंयतः किंकराननिहितदृष्टिरगादिषम्—'यथेयं रथचरणजघना कथ-

दन्तानाम् चन्द्रिका कौमुदी यत्र। एतानि वक्ष्यमाणानि। कलकण्ठी कोकिला तस्याः इव कलानि मधुराणि। असृजत् उच्चारितवती। आर्य श्रीमन्। एनम् माम् (राजकन्याम्)। कालस्य मृत्योः हस्तात्। आच्छिद्य अपकृष्य। अनन्तरम् पश्चात्। रागः अनुरागः एव अनिलः वायुः तेन चालिता प्रवर्तिता या रणरणिका औत्सुक्यम् सा एव तरङ्गः सः अस्य अस्ति इति तस्मिन्। अनङ्गसागरे कामसमुद्रे। किरसि क्षिपसि। चरणसरसिजयोः चरणकमलयोः रजःकणिका धूलिलवः। ते तव। अत्र अस्मिन्। अनन्यसाधारणः असामान्यः। चरणाराधनक्रियायाम् चरणसेवाकार्ये। कन्यागाराध्यासने कन्यान्तःपुरवासे। रहस्यस्य गुह्यस्य क्षरणात् प्रकटनात्। अनर्थः विपत्तिः। रक्ततराः विशेषेण रक्ताः अनुरक्ताः। नः अस्माकम् (मम)। चेट्यः दास्यः। सः (मन्त्रगुप्तः)। देहजेन कामेन। आकर्णम् कर्णपर्यन्तम् आकृष्टम् सायकासनम् धनुः येन तेन। तस्याः (राजकुमार्याः) कटाक्षः एव कालायसनिगडः लोहश्रृङ्खला तेन गाढम् दृढम् यथा स्यात् तथा संगतः बद्धः। किङ्करस्य दासस्य (राक्षसस्य) आनने मुखे निहिता दृष्टिः यस्य सः। अगादिषम् अवदम्। इयम् (राजकुमारी)। रथचरणम् चक्रम् तद्वत् जघने नितम्बौ यस्याः सा। चेत्

चाँदनी में तरङ्गें पैदा कर दी गई थीं, वे कोकिल की बोली के समान मधुर ये कुछ अक्षर उच्चारित किये—'श्रीमान्, किस कारण इस दासी को यम के हाथ से छीनकर उसके तुरन्त बाद अनुराग-वायु से संचारित उत्सुकता को तरङ्गों से युक्त काम-समुद्र में डाल रहे हैं। मुझे वैसी ही मानें जैसी आप चरण-कमलों की धूल की कणिका (छोटा कण) को मानते हैं। अगर मेरे ऊपर आपको दया आती है तो चरण-सेवा के कार्य का एकाधिकार मुझे देने की कृपा करें। अगर कन्या-अन्तःपुर में निवास करने में रहस्य खुल जाने से अनर्थ की आशङ्का हो तो यह (आशङ्का) नहीं करनी चाहिये। निश्चय ही मेरी सहेलियाँ और दासियाँ विशेष स्वामि-भक्त हैं। ऐसी कोशिश की जायेगी कि यह बात कोई न जाने।' कान तक खींचे गये धनुष वाले कामदेव ने मेरे हृदय पर निर्दयता पूर्वक प्रहार किया। उसके कटाक्षों की लोहे की जंजीर से मैं कसकर बँध गया। सेवक (राक्षस) के मुख पर नजर गड़ाकर बोला—'यह चक्र-

---

[1] चलित। [2] आशङ्क्यते। [3] यतिष्ये।

यति तथा चेन्नाचरेयं नयेत नक्रकेतनः क्षणेनैकेना[1]कीर्तनीयां दशाम् । जनं चैनं सह नयानया कन्यया कन्यागृहं हरिणनयनया' इति । नीतश्चाहं निशाचरेण शारदजलधरजालकान्ति कन्यकानिकेतनम् । तत्र च कांचित्कालकलां चन्द्राननानिदेशाच्चन्द्रशालैकदेशे तद्दर्शनचलितधृतिरतिष्ठम् । सा च स्वच्छन्दं[2] शयाना करतलालससंघट्टनापनीतनिद्राः काश्चिदधिगतार्थाः सखीरकार्षीत् । अथागत्य ताश्चरणनिहितशिरसः क्षरदस्रकरालितेक्षणा निजशेखरकेसराग्रसंलग्नषट्चरणगणरणितसंशयितकलगिरः शनैरकथयन्—'आर्य[3] यदत्यादित्यतेजसस्त

यदि । आचरेयम् कुर्याम् । नक्रकेतनः कामः । अकीर्तनीयाम् अशुभाम् (मृत्युम्) । हरिणनयनया मृगलोचनया । निशाचरेण राक्षसेन । शरदि भवाः शारदाः ये जलधराः मेघाः तेषाम् जालम् समूहः तद्वत् कान्तिः यस्य तत् । कन्यकानिकेतनम् कन्यान्तःपुरम् । कालस्य कला अंशः ताम् । चन्द्रः इव आननम् मुखम् यस्याः तस्याः निदेशात् आज्ञया । चन्द्रशाला शिरोगृहम् (''चन्द्रशाला शिरोगृहम्'' इति अमरः) । तस्याः एकदेशे एकभागे । तस्याः (राजकुमार्याः) दर्शनाय चलिता नष्टा धृतिः धैर्यम् यस्य सः । स्वच्छन्दम् इच्छानुसारेण । शयानाः सुप्ताः । करतलेन अलसम् मन्दम् यत् संघट्टनम् तेन अपनीता निद्रा यासाम् ताः । अधिगतः विदितः अर्थः तथ्यम् याभिः । अकार्षीत् अकरोत् । (मम) चरणयोः निहितम् स्थापितम् शिरः याभिः ताः । क्षरता निःसरता अस्रेण अश्रुणा करालिते विकृते ईक्षणे नेत्रे यासाम् ताः निजस्य शेखरे शिरोभूषणे यानि केसराणि (''अथ केसरे बकुलः'' इति अमरः) बकुलपुष्पाणि तेषाम् अग्रे शिखरभागे संलग्नाः संबद्धाः ये षट्चरणाः भ्रमराः तेषाम् गणस्य समूहस्य रणितेन गुञ्जितेन संशयिताः (गुञ्जितम् वा वचनम् वा इति जनितसन्देहाः) कलगिरः मधुरवाण्यः यासाम् ताः । शनैः मन्दम् । आर्य श्रीमन् । अतिक्रान्तम् आदित्यस्य सूर्यस्य तेजः येन तस्य । एषा (राज-

तुल्य नितम्बों वाली जैसा कह रही है वैसा यदि नहीं करता तो कामदेव एक क्षण के अन्दर ही मुझे न कहने योग्य (मृत्यु) दशा में पहुँचा देंगे । इन मृगलोचना कन्या के साथ मुझे कन्या-अन्तःपुर ले चलो ।' तब उस राक्षस ने शरद् ऋतु के बादल दल के समान कांति वाले कन्या-अन्तःपुर में पहुँचा दिया । वहाँ चन्द्रमुखी के आदेश से ऊपर के कमरे के एक भाग में कुछ क्षणों के लिये ठहरा । उसके दर्शन से मेरा धैर्य डोलने लगा । उसने इच्छानुसार सोई हुई कुछ सखियों की नींद हथेली की हलकी टक्कर से दूर कर दी और उन्हें तथ्य समझा दिया । तब उन लोगों ने आकर (मेरे) पैरों पर सिर रखा, उनकी आँखें झरते हुये आँसुओं से विकृत हो गईं । उनकी वाणी उनके सिर के आभूषण में लगे मौलसिरी के फूलों के ऊपरी भाग में लगे भौंरों के समूह की गुंजार का सन्देह उत्पन्न करने लगी । धीरे से बोलीं, श्रीमान्, मृत्यु ने इसे

---

[1] कीर्तनीयाम् । [2] ०च्छन्दतः । [3] नाथ ।

एषा नयनलक्ष्यतां गता ततः कृतान्तेन न गृहीता । दत्ता चेयं चित्तजेन गरीयसा साक्षीकृत्य रागानलम् । तदनेनाश्चर्यरत्नेन नलिनाक्षस्य ते रत्नशैलशिलातलस्थिरं रागतरलेनालंक्रियतां हृदयम् । तदस्याश्चरितार्थं स्तनतटं गाढालिङ्गनैः सदृशतरस्य सहचरस्य' इति । ततः सखीजनेनातिदक्षिणेन दृढतरीकृतस्नेहनिगलस्तया संनताङ्ग्या संगत्यारंसि ।

अथ कदाचिदायासितजायारहितचेतसि लालसालिलङ्घनग्लानघनकेसरे राजदरण्यस्थलीललाटलीलायिततिलके ललितानङ्गराजाङ्गीकृतनिर्निद्र[1]कर्णिकार-

कुमारी)। नयनलक्ष्यताम् नेत्रगोचरताम् । ततः अतः । कृतान्तेन मृत्युना । चित्तजेन कामेन । गरीयसा गुरुतरेण (पितृवत्)। रागानलम् प्रेमाग्निम् । अतः । आश्चर्यरत्नेन कनकलेखारूपेण रत्नश्रेष्ठेन । नलिनाक्षस्य कमलनेत्रस्य । ते तव (मन्त्रगुप्तस्य)। रत्नशैलः सुमेरुः तस्य शिलातलवत् स्थिरम् दृढम् । रागेण रक्तप्रभया तरलेन दीप्तिमता (पक्षे अनुरागेण चञ्चलेन)। अलङ्क्रियताम् भूष्यताम् । तत् अथ । अस्याः (कनकलेखायाः)। चरितार्थम् कृतार्थम् । सदृशतरस्य विशेषेण सदृशस्य अनुरूपस्य । सहचरस्य प्रियस्य अतिदक्षिणेन अतिसरलेन । दृढतरीकृतः सुदृढीकृतः स्नेहनिगलः प्रेमशृङ्खला यस्य सः । सन्नतम् (स्तनभारात्) सम्यक् नतम् नम्रम् अङ्गम् यस्याः तया । संगत्य मिलित्वा । अरंसि क्रीडाम् अकरवम् ।

आयासितानि खेदितानि जायारहितानाम् वियोगिनाम् चेतांसि मनांसि यत्र तत्र । लालसाः लुब्धाः ये अलयः भ्रमराः तेषाम् लङ्घनेन आक्रमणेन ग्लानानि म्लानानि घनानि निबिडानि केसराणि बकुलपुष्पाणि यत्र तत्र । राजत् शोभमानम् अरण्यस्थल्याः वनभूमेः ललाटलीला ललाटविलासः तद्वत् आचरितम् तिलकम् तिलकपुष्पम् यत्र तत्र । ललितेन सुन्दरेण अनङ्गराजेन राज्ञा कामेन अङ्गीकृतम् स्वीकृतम् निर्निद्रः विकसितः कर्णिकारः कर्णिकारवृक्षः सः एव काञ्च-

इसलिये नहीं पकड़ा क्योंकि सूर्य के तेज से (भी) बढ़कर तेज वाले आपकी दृष्टि का यह लक्ष्य बन गई थी । परम आदरणीय (पितृ-तुल्य) कामदेव ने अनुराग की अग्नि को साक्षी बनाकर इसे तुम्हारे हाथों में सौंप दिया है । तो अनुराग से तरल और लालिमा से चमकीले इस (कनकलेखा-रूपी) श्रेष्ठ आश्चर्य से कमलनेत्र आपका सुमेरु के शिला-तल के समान दृढ़ हृदय सुशोभित हो । अब अत्यन्त अनुरूप सहचर के दृढ़ आलिङ्गनों से इसके स्तनों का ढालू भाग कृतार्थ हो । इसके बाद अत्यन्त सरल सखियों ने स्नेह की शृङ्खला अत्यन्त दृढ़ कर दी । उस झुके अङ्गों वाली सुन्दरी के साथ विहार करने लगा ।

इसके बाद वह समय आया जब विरहियों के चित्त खिन्न बना दिये जाते हैं, लुब्ध भौंरों के आक्रमण से घने मौलसिरी के वृक्ष म्लान हो जाते हैं, तिलक पुष्प शोभित हो रही वन-भूमि के ललाट के विलास की भूमिका निभाते हैं, सुन्दर राजा कामदेव फूले कनैल वृक्ष का स्वर्ण-

---

[1] गलितनिद्र ।

काञ्चनच्छत्रे दक्षिणदहनसारथिरया[1]हृतसहकारच[2]ञ्चरीककलिके, कालाण्डजकण्ठरागरक्तरक्ताधरारतिरणाग्रसंनाहशालिनि, शालीनकन्यकान्तःकरणसंक्रान्त[3]रागलङ्घितलज्जे, दर्दुरगिरितटचन्दनाश्लेषशीतलानिलाचार्यदत्तनानालतानृत्यलीले काले, कलिङ्गराजः सहाङ्गनाजनेन सह च तनयया सकलेन च नगरजनेन दश त्रीणि च दिनानि दिनकरकिरणजालालङ्घनीये, रणदलिसङ्घलङ्घितनतलताग्रकिसलयालीढसैकततटे, तरलतरङ्गशीकरासारसङ्गशीतले सागरतीरकानने क्रीडा-

नम् स्वर्णनिर्मितम् छत्रम् आतपत्रम् यत्र तत्र। दक्षिणेन दहनसारथिना वायुना आहृताः आनीताः सहकारे आम्रवृक्षे चञ्चरीकाः भ्रमराः कलिकाः कोरकाः यत्र तत्र। कालाण्डजाः कोकिलाः ("वनप्रियः परभृतः पिकः कालाण्डजः स्मृतः" इति वैजयन्ती) तेषाम् कण्ठरागेण मधुरस्वरेण रक्ताः अनुरक्ताः याः रक्ताधराः अरुणाधराः कामिन्यः तासाम् रतिरणे मिलनसमरे अग्रसंनाहेन प्रथमोद्यमेन शालते शोभते तत्र। शालीनाः अधृष्टाः याः कन्यकाः युवत्यः तासाम् अन्तःकरणे हृदये संक्रान्तः गतः यः रागः प्रेम तेन लङ्घिता अतिक्रान्ता लज्जा यत्र तत्र। दर्दुराख्यः ("दर्दुरस्तोयदे भेके वाद्यभाण्डाद्रिभेदयोः" इति मेदिनी) गिरिः पर्वतः तस्य तटे ये चन्दनाः चन्दनवृक्षाः तेषाम् आश्लेषेण आलिङ्गनेन शीतलः अनिलः वायुः सः एव आचार्यः नृत्तगुरुः तेन दत्ता नानालताभ्यः नृत्तलीला नृत्यविलासः यत्र तत्र। कलिङ्गराजः (कर्दनः)। अङ्गनाजनेन अङ्गनाभिः स्त्रीभिः। तनयया पुत्र्या (कनकलेखया)। सकलेन सर्वेण नगरजनेन नागरिकैः। दश त्रीणि च त्रयोदश। दिनकरस्य सूर्यस्य किरणजालेन किरणसमूहेन अलङ्घनीये अनतिक्रमणीये। रणन्तः गुञ्जन्तः ये अलयः तेषाम् संघेन समूहेन लङ्घिताः आक्रान्ताः अत एव नताः नम्रीभूताः याः लताः तासाम् अग्रकिसलयैः नवपल्लवाग्रैः आलीढम् व्याप्तम् सैकतम् सिकतामयम् तटम् यस्य तस्मिन्। तरलानाम् चञ्चलानाम् तरङ्गाणाम् लहरीणाम् यः शीकरासारः जलकणवर्षणम् तस्य सङ्गेन सम्पर्केण शीतले। सागरतीरे समुद्रतटे यत् काननम् वनम् तस्मिन्।

छत्र अङ्गीकार करता है, दक्षिण पवन के वेग के द्वारा आम के पेड़ पर भौंरे और कलियाँ ला दी जाती हैं, कोकिल के गले से निकले स्वर से अनुरक्त लाल अधर वाली नायिकाओं के रति-युद्ध के प्रथम उद्योग की शोभा हो जाती है, धृष्टता-रहित कुवाँरियों के हृदय में प्रविष्ट अनुराग से लज्जा हट जाती है तथा दर्दुर[4]-नामक पर्वत के ढालू भाग पर चन्दन-वृक्षों के आलिङ्गन से शीतल आचार्य पवन के द्वारा नाना लताओं को पुरुष-नृत्य का विलास प्रदान किया जाता है। तब कभी कलिङ्ग देश के राजा स्त्रियों, बेटी और सम्पूर्ण नागरिकों के साथ क्रीड़ा के आनन्द के प्रति उत्पन्न आसक्ति लेकर तेरह दिन तक समुद्र-तटवर्ती जङ्गल में रहे। वह

---

[1] रयाहत। [2] चञ्चलकलिके; सहकाराङ्कलग्नचञ्चलचञ्च०। [3] कान्तराग।

[4] दक्षिण में मैसूर की दक्षिणी सीमा पर स्थित घाट जो मलय पर्वत से जुड़ा हुआ है।

रसजातासक्तिरासीत् । अथ संततगीतसंगीतसंगताङ्गनासहस्रशृङ्गारहेलानिरर्गलानङ्गसंघर्षहर्षितश्च रागतृष्णैकतन्त्रस्तत्र रन्ध्र आन्ध्रनाथेन[1] जयसिंहेन सलिलतरणसाधनानीतेनानेकसंख्येनानीकेन द्रागागत्यागृह्यत सकलत्रः । सा चानीयत त्रासतरलाक्षी दयिता नः सह सखीजनेन कनकलेखा । तदाहं दाहेनानङ्गदहनजनितेनान्तरिताहारचिन्तश्चिन्तयन्दयितां गलितगात्रकान्तिरित्यतर्कयम् —'गता सा कलिङ्गराजतनया जनित्रा जनयित्र्या च सहारिहस्तम् ।[2]निरस्तधैर्यश्च तां स

क्रीडायाः विहारस्य रसे आनन्दे जाता उत्पन्ना आसक्तिः यस्य सः । अथ ततः । संततम् अविरलम् गीतम् गानम् च संगीतम् नृत्यवाद्ययुक्तम् गानम् च तेषु सङ्गताः मिलिताः याः अङ्गनाः नार्यः तासाम् सहस्रम् तस्य शृङ्गारपूर्णया हेलया क्रीडया यः निरर्गलः, उद्दामः अनङ्गसङ्घर्षः काभोद्रेकः तेन हर्षितः । रागः अनुरागः च तृष्णा भोगेच्छा च तयोः एकतन्त्रः पूर्णतः आयत्तीकृतः । तत्र तस्मिन् । रन्ध्रे अवकाशे अवसरे वा । आन्ध्रनाथेन आन्ध्रराजेन । सलिलतरणम् जलतरणम् तस्य साधनम् नौकादि तेन आनीतेन । अनेकसङ्ख्येन बहुना । अनीकेन सैन्येन । द्राक् शीघ्रम् । अगृह्यत गृहीतः । कलत्रेण पत्न्या सह वर्तमानः । अनीयत नीता । त्रासेन भयेन तरले चञ्चले अक्षिणी नेत्रे यस्याः स । दयिता प्रिया । नः अस्माकम् (मम) । अहम् (मन्त्रगुप्तः) । दाहेन तापेन । अनङ्गः कामः एव दहनः अग्निः तेन जनितेन उत्पादितेन । अन्तरिता दूरीभूता आहारस्य भोजनस्य चिन्ता यस्य सः । दयिताम् प्रियाम् । गलिता नष्टा गात्राणाम् अङ्गानाम् कान्तिः यस्य सः । इति एवम् (वक्ष्यमाणम्) । अतर्कयम् अचिन्तयम् । जनित्रा पित्रा । जनयित्र्या जनन्या । अरेः शत्रोः हस्तम् । निरस्तम् नष्टम् धैर्यम् धृतिः यस्य सः । सः (जयसिंहः) ।

सूर्य की किरणों की पहुँच के योग्य नहीं था । वहां का रेतीला किनारा गुञ्जार कर रहे भौंरों के समूह से आक्रान्त होकर झुकी लता के नये पत्तों के सिरों से व्याप्त था । वह चञ्चल तरङ्गों की जल-कण-वर्षा के सम्पर्क से शीतल था । इसके बाद लगातार गीत और सङ्गीत (नृत्य और वाद्य के साथ गान) में लगी हुई हजारों स्त्रियों की शृङ्गार-युक्त क्रीड़ाओं के कारण बेलगाम कामोद्रेक से प्रसन्न अनुराग की प्यास के सर्वथा अधीन पत्नी-सहित उन्हें, उस कमजोरी के होने पर [3]आन्ध्र नरेश जयसिंह ने पानी पर तैरने के साधनों (नाव, जहाज आदि) से लाई गई भारी संख्या की सेना के साथ शीघ्र आकर पकड़ लिया । वह मेरी प्रिया कनकलेखा सखियों के साथ डर से चंचल नेत्र लिये हुए पकड़ ले जाई गई । कामाग्नि के द्वारा पैदा की गई जलन से मेरी आहार-चिन्ता दूर हट गई । अङ्गों की कान्ति ढल गई । प्रिया की चिन्ता करता हुआ सोचने लगा 'वह कलिङ्ग-नरेश की कन्या पिता और मां के साथ दुश्मन के हाथ लग गई है । वह राजा (जयसिंह) अधीर होकर निश्चय ही उसे

---

[1] अन्ध्र० । [2] गत ।

[3] वर्तमान तैलङ्गाना । उस समय आंध्र देश में गोदावरी नदी के मुहाने भी समाविष्ट थे ।

राजा नियतं संजिघृक्षेत्। तदसहा च सा सती गररसादिना सद्यः संतिष्ठेत। तस्यां च तादृशीं दशां गतायां जनस्यास्यानन्यजेन हन्येत शरीरधारणा[1]। सा का स्याद्गतिः' इति।

अत्रान्तर आन्ध्र[2]नगरादागच्छन्नग्रजः कश्चिदैक्ष्यत। तेन चेयं कथा कथिता—'यथा किल जयसिंहेनानेक[3]निकारदत्त[4]संघर्षेण जिघांसितः स कर्दनः कनकलेखा-दर्शनैधितेन रागेणारक्ष्यत। सा च दारिका यक्षेण केनचिदधिष्ठिता न तिष्ठत्यग्रे नरान्तरस्य। आयस्यति च नरेन्द्रसार्थसंग्रहणेन तन्निराकरिष्यन्नरेन्द्रो न चास्ति सिद्धिः' इति। तेन चाहं दर्शिताशः शंकरनृत्त[5]देशजातस्य जरत्सालस्य

नियतम् निश्चितम्। संजिघृक्षेत् संग्रहीतुम् इच्छेत्। तत् (वशीभावम्)। असहा सोढुम् असमर्था। सती उत्तमा। गरम् विषम्। सद्यः तत्कालम्। संतिष्ठेत म्रियेत। तस्याम् (कनकलेखायाम्)। तादृशीम् तत्प्रकाराम्। अनन्यजेन कामेन ("कुसुमेषुरनन्यजः" इति अमरः)। शरीरस्य धारणा स्थितिः (जीवनम्)। सा उक्ता। का कीदृशी भयङ्करी। गतिः स्थितिः।

अत्र अस्मिन् (एव)। अन्तरे समये। अग्रजः ब्राह्मणः। ऐक्ष्यत दृष्टः। यथा यत्। किल (ऐतिह्ये)। अनेकैः बहुभिः निकारैः अपमानैः दत्तः संघर्षः उत्पीडनम् येन। जिघांसितः हन्तुम् इष्टः। कनकलेखायाः दर्शनेन एधितेन वृद्धेन। रागेण प्रेम्णा। अरक्ष्यत रक्षितः। सा (कनकलेखा)। दारिका कुमारी। अधिष्ठिता आक्रान्ता (सती)। अन्यः जयसिंहेतरः नरः नरान्तरम् तस्य। नरेन्द्रस्य राज्ञः (जयसिंहस्य)। आयस्यति यतते। नरेन्द्राणाम् मान्त्रिकाणाम् सार्थः समूहः तस्य संग्रहेण समाहरणेन। तत् उक्तम् दशाम्। निराकरिष्यन् दूरीकर्तुम् इच्छन्। नरेन्द्रः राजा (जयसिंहः)। सिद्धिः सफलता। तेन (ब्राह्मणेन) दर्शिता प्रदर्शिता आशा यस्मै सः। शङ्करस्य नृत्तम् ताण्डवम् तस्य देशः स्थानम् (श्मशानम्) तत्र जातस्य। जरत्सा-

अपनी बनाना चाहेगा। उसे न सह पाकर वह सदाचारिणी विष आदि से तुरन्त मर जायेगी। फिर उसके वैसी दशा में पहुँच जाने पर काम (देव) मेरा जीवन नष्ट कर देगा। वह दशा क्या (कितनी भयङ्कर) होगी।

इस बीच आन्ध्र नगर से आता हुआ एक ब्राह्मण देखा गया। उसने यह कहानी कही कि 'जयसिंह ने अनेक बार अपमान कर कर्दन को यातनायें दी हैं और मारने की इच्छा की है। वे कनकलेखा के दर्शन से बढ़े हुये प्रेम के कारण बचे हुये हैं। वह लड़की किसी यक्ष के द्वारा आक्रान्त है। (राजा के अलावा) किसी आदमी और राजा के भी आगे नहीं रहती। राजा मंत्र-ज्ञाताओं का झुण्ड जुटाकर उसे दूर करने की इच्छा से प्रयास कर रहा है पर सफलता नहीं मिल रही है।' उसके द्वारा मुझे आशा दिखाई दी। श्मशान में उत्पन्न एक पुराने पेड़ के तने के खोखले भाग के !अन्दर स्थित जटा-समूह खींचकर उससे जटा-धारी बना

---

१. धारणाशा। का स्यात्। २. अन्ध्र०। ३. नैक०। ४. दत्तसंघर्षण०। ५. नृत्यरङ्ग।

स्कन्धरन्ध्रान्तर्जटाजालं निष्कृष्य तेन जटिलतां गतः कन्थाचीरसंचयान्तरितसकलगात्रः कांश्चिच्छिष्यानग्रहीषम् । तांश्च नानाश्चर्यक्रियातिसंहिता[1]ज्जनादाकृष्टान्नचेलादित्यागान्नित्यहृष्टानकार्षम् । अयासिषं च दिनैः कैश्चिदान्ध्रनगरम् । तस्य नात्यासन्ने सलिलराशिसदृशस्य कलहंसगणदलितनलिनदलसहतिगलितकिञ्जल्कशकलशारस्य सारसश्रेणिशेखरस्य सरसस्तीरकानने कृतनिकेतनः स्थितः शिष्यजनकथितचित्रचेष्टाकृष्टसकलनागरजना[2]भिसंधानदक्षः सन् दिशि दिशीत्यकीर्त्यें जनेन—'य एष जरदरण्यस्थलीसरस्तीरे [3]स्थण्डिलशायी यतिस्तस्य किल

लस्य पुराणवृक्षस्य । स्कन्धस्य रन्ध्रस्य कोटरस्य अन्तः मध्ये यत् जटाजालम् शिफासमूहम् । निष्कृष्य आकृष्य । जटिलः जटाधरः तत्ताम् । गतः प्राप्तः । कन्था जीर्णवस्त्रम् चीराणि वस्त्रखण्डानि तेषां संचयेन समूहेन अन्तरितानि आच्छन्नानि सकलानि सर्वाणि गात्राणि अङ्गानि यस्य सः । अग्रहीषम् संगृहीतवान् । तान् (शिष्यान्) नाना विविधाः आश्चर्यक्रियाः चमत्काराः ताभिः अतिसंहितात् वञ्चितात् जनात् जनसमूहात् । आकृष्टानि प्राप्तानि यानि अन्नानि चेलानि वस्त्राणि तदादोनि (वस्तूनि) च तेषाम् त्यागात् दानात् नित्यम् सदा हृष्टान् प्रसन्नान् । अकार्षम् कृतवान् । अयासिषम् अगच्छम् । तस्य (आन्ध्रनगरस्य) नात्यासन्ने अनत्यासन्ने (कियद्दूरे) । सलिलराशिः समुद्रः तेन सदृशस्य तुल्यस्य । कलहंसानाम् राजहंसानाम् गणेन समूहेन दलितानि यानि नलिनानाम् कमलानाम् दलानि पुष्पखण्डानि तेषाम् संहतिः समूहः ("स्त्रियाम् तु संहतिर्वृन्दम्" इति अमरः) तस्याः गलितानि किञ्जल्कानाम् केसराणाम् शकलानि खण्डानि तैः शारस्य चित्रवर्णस्य । सारसानाम् पक्षिविशेषाणाम् श्रेणिः समूहः एव शेखरः शिरोभूषणम् यस्य तस्य । सरसः तडागस्य । तीरे तटे यत् काननम् वनम् तस्मिन् । कृतम् निकेतनम् गृहम् येन सः । शिष्यजनैः भक्तैः कथिताः ख्यापिताः चित्राः त्रिचित्राः चेष्टाः कर्माणि ताभिः आकृष्टाः ये सकलाः सर्वे नागरजनाः नागरिकाः तेषाम् अभिसंधाने प्रतारणे दक्षः कुशलः इति एवम् (वक्ष्यमाणप्रकारेण) । अकोर्त्यें कीर्तितः (वर्णितः) । जनेन लोकेन । जरदरण्यस्थली पुराणवनभूमिः तत्र यत् सरः तडागः तस्य तोरे । स्थण्डिले निर्व्यवधानायाम्

और सम्पूर्ण अङ्ग गुदड़ी के टुकड़ों के समूह से ढककर कुछ चेले लिये । अनेक प्रकार की अचरज की क्रियाओं से पट्टी पढ़ाये गये लोगों से खींचे गये अनाज, वस्त्र आदि देकर उन्हें हमेशा प्रसन्न रखा । फिर कुछ दिनों के अन्दर आन्ध्र नगर गया । उससे कुछ दूर पर एक ऐसे तालाब के किनारे के जंगल में घर वनाकर ठहरा जो समुद्र के समान था, जो राजहंसों के झण्डों से कुचली गई कमल-पंखड़ियों के समूह से गिरे हुये केसर के टुकड़ों से रंग-बिरंगा था और जहाँ सारसों (पक्षी) का समूह सिर का अलङ्कार बन गया था । शिष्यों के द्वारा प्रचारित विचित्र करतबों से खिंचे हुये समस्त नागरिकों को छलने में चतुर हुआ । लोगों ने दिशा-दिशा में इस प्रकार बखान किया—यह जो संन्यासी पुराने जंगल की भूमि वाले तालाब के

---

१. अतिसंहितान् ।   २. अतिसंधान ।   ३. सलिलशायो ।

सकलानि सरहस्यानि सषडङ्गानि च छन्दांसि रसनाग्रे संनिहितानि, अन्यानि च शास्त्राणि। येन यानि न ज्ञायन्ते स तेषां तत्सकाशादथनिर्णयं करिष्यति। असत्यन नास्यास्य संसृज्यते। सशरीरश्चैष दयाराशिः। [1]'एतत्सग्रहेणाद्य चिरं चरितार्था दीक्षा। तच्चरणरजःकणैः कैश्चन शिरसि कीर्णैरनेकस्यानेक आतङ्कश्चिरं चिकि[2]त्सकैरसंहार्यः संहृतः। तदङ्घ्रिक्षालनसलिलसेकैर्निष्कलङ्कशिरसां नश्यन्ति क्षणेनैकेनाखिलनरेन्द्रयन्त्रा[3]लङ्घिनश्चण्डतारा[4]ग्रहाः। न तस्य शक्यं शक्तेरियत्ताज्ञानम्। न चास्याहंकारकणिका' इति। सा चेयं कथानेकजनास्यसंचारिणी तस्य कनकलेखाधिष्ठान[5]धनदाज्ञाकरनिराक्रियातिसक्तचेतसः क्षत्रियस्याकर्षणायाशकत्।

भूमौ शेते इति स्थण्डिलशायो। यतिः संन्यासी। किल (ऐतिह्य)। रहस्यैः उपनिषद्भिः सह वर्तमानानि। अङ्गानि वेदाङ्गानि (व्याकरणम् शिक्षा कल्पः ज्यौतिषं छन्दः निरुक्तम् च)। छन्दांसि वेदाः। रसनायाः जिह्वायाः अग्रे अग्रभागे। संनिहितानि उपस्थितानि यानि (शास्त्राणि)। तेषाम् (शास्त्राणाम्)। सकाशात् समीपात्। अस्य (यतेः)। आस्यम् मुखम्। संसृज्यते संसृष्टम् (मिलितम्)। सशरीरः मूर्तिमान्। दयाराशिः कृपानिधिः। संग्रहेण स्वीकारेण। चिरम् चिरकालोपरि। चरितार्था कृतार्था। दीक्षा सन्यासदीक्षा। तस्य (यतेः) चरणयोः यानि रजांसि धूलयः तेषाम् कणैः। कीर्णैः निहितैः। अनेकः बहुः। आतङ्कः भयम्। चिकित्सकैः वैद्यैः। असंहार्यः असाध्यः। संहृतः निवारितः। तस्य (यतेः) अङ्घ्र्योः चरणयोः क्षालनस्य धावनस्य सलिलेन जलेन सेकैः सेचनैः निष्कलङ्कम् निर्मलम् शिरः येषाम् तेषाम्। अखिलाः सर्वे च ते नरेन्द्राः मन्त्रज्ञाः च यन्त्राणि च लङ्घयन्ति अतिक्रामन्ति ते। चण्डाः भयङ्कराः ताराः नक्षत्राणि ग्रहाः च। शक्यम् सम्भवम्। इयत्तायाः परिमाणस्य ज्ञानम्। अहङ्कारस्य अभिमानस्य कणिका लेशः। सा उक्ता। अनेके च ते जनाः च तेषाम् आस्यसञ्चारिणी मुखात् मुखम् गच्छन्ती। कनकलेखा अधिष्ठानम् यस्य सः च धनदस्य कुबेरस्य आज्ञाकरः सेवकः (यक्षः) च तस्य निराक्रियायाम् दूरीकरणे आसक्तम् लग्नम् चेतः चित्तम् यस्य

किनारे खुली भूमि पर लेटा रहता है, उसकी जीभ के अगले भाग में सारे वेद, उपनिषदों और छह अङ्गों के साथ उपस्थित हैं। अन्य शास्त्र भी उपस्थित हैं। जिसे जो शास्त्र विदित नहीं है, वह उनके पास उनके अर्थ का निर्णय करेगा। इनके मुख से असत्य का सम्पर्क नहीं है। ये मूर्तिमान् दयानिधि हैं। इनको पाकर चिरकाल के बाद आज संन्यास-दीक्षा कृतार्थ हो गई है। सिर पर रखे गये इनकी चरण-धूलि के कुछ कणों से बहुतों के बहुत सारे भय जो चिकित्सकों के लिये चिर काल से असाध्य थे दूर हो गये। उनके चरणों की धोवन के छिड़काव से निर्मल मस्तक वाले लोगों के भयंकर नक्षत्र और ग्रह जो समस्त मंत्र-ज्ञाताओं के यन्त्रों के वश में नहीं आते, एक क्षण के अन्दर नष्ट हो जाते हैं। उनकी शक्ति की सीमा जानना असंभव है। इनमें घमण्ड का लेश भी नहीं है।' ऊपर कही गई यह कथा बहुत से लोगों के मुखों में घूमती हुई उस राजा को आकृष्ट करने में समर्थ हुई जिसका चित्त कनकलेखा में निवास करने वाले यक्ष

---

१. एतसकाशादर्थग्रहेण। २. चिकित्सनैः। ३. यत्न। ४. चण्डतरग्रहाः। ५. धिष्ठित।

स चाहरहरागत्यादरेणातिगरीयसार्चयन्नर्थैश्च शिष्यान्संगृह्णन्नधिगतक्षणः कदाचित्काङ्क्षितार्थसाधनाय शनैरयाचिष्ट । ध्यानधीरः स्थानदर्शितज्ञानसंनिधिश्चैनं निरीक्ष्य निचाय्याकथयम्—'तात, स्थान एष हि यत्नः । तस्य हि कन्यारत्नस्य सकलकल्याणलक्षणैकराशेरधिगतिः क्षीरसागररशनालंकृताया गङ्गादिनदीसहस्रहारयष्टिराजिताया धराङ्गनाया एवासादनाय साधनम् । न च स यक्षस्तदधिष्ठायी केनचिन्नरेन्द्रेण तस्या लीलाञ्चितनीलनीरजदर्शनाया दर्शनं सहते । तदत्र सह्यतां त्रीण्यहानि, यैरह यतिष्येऽर्थस्यास्य साधनाय' इति । तथादिष्टे च हृष्टे क्षितीशे

तस्य । क्षात्रयस्य नृपस्य (जयसिहस्य) । अशकत् समर्था जाता । सः (जयसिंहः) । अहरहः प्रतिदिनम् । अतिगरीयसा अतिगुरुतरेण । अर्चयन् पूजयन् । अर्थैः धनैः । संगृह्णन् वशीकुर्वन् । अधिगतः प्राप्तः क्षणः अवकाशः येन सः । काङ्क्षितः अभीष्टः च सः अर्थः वस्तु च तस्य साधनाय सिद्धये । शनैः मन्दम् । अयाचिष्ट याचितवान् । ध्यानधीरः समाधिनिश्चलः । स्थाने पात्रे दर्शितः प्रकटितः ज्ञानस्य संनिधिः सांनिध्यम् येन सः । निरीक्ष्य दृष्ट्वा । निचाय्य विचार्य । तात वत्स । स्थाने युक्तः । हि निश्चयेन । सकलानि सर्वाणि च कल्याणलक्षणानि शुभचिह्नानि च तेषाम् एकराशिः एकनिधिः तस्य । अधिगतिः प्राप्तिः । क्षीरसागरः एव रशना मेखला ("स्त्रीकट्यां मेखला काञ्ची सप्तकी रशना तथा" इति अमरः) तया अलंकृतायाः शोभितायाः । गङ्गादिनदीनाम् सहस्रम् तत् एव हारयष्टिः हारलता तया राजितायाः शोभितायाः । धरा पृथ्वी एव अङ्गना नायिका तस्याः । आसादनाय प्राप्तये । साधनम् उपायः । ताम् (कन्याम्) अधितिष्ठति इति तदधिष्ठायी । नरेन्द्रेण मन्त्रज्ञेन । तस्याः (कन्यायाः) । लीलया विलासेन अञ्चितम् शोभितम् नीलनीरजम् नीलकमलम् इव दर्शनम् नयनम् ("दर्शनं नयनस्वप्नबुद्धिधर्मोपलब्धिषु" इति मेदिनी) यस्याः सा । तत् तस्मात् । अत्र अस्मिन् विषये । अहानि दिनानि । अर्थस्य प्रयोजनस्य । साधनाय सिद्धये । तथा तेन प्रकारेण । आदिष्टे

को दूर करने में लगा हुआ था । वह प्रतिदिन आकर शिष्यों की अत्यन्त गुरुतर आदर-पूर्वक पूजा करता हुआ और धन से वश में करता हुआ एक बार (यति से मिलने का) अवसर पा गया । अभीष्ट प्रयोजन की सिद्धि के लिये उसने धीरे से याचना की । मैं समाधि-निश्चल हो गया । अपने ज्ञान की उपस्थिति ठीक पात्र देखकर प्रकट की । भली-भाँति देखकर और विचार कर बोला—'वत्स, यह प्रयत्न निश्चय ही उचित है । निश्चय ही समस्त शुभ लक्षणों की एकमात्र निधि उस रत्न तुल्य कन्या की प्राप्ति उस पृथ्वी-नायिका को ही पाने का साधन है जो क्षीरसागर की करधनी से मण्डित तथा गङ्गा आदि हजारों नदियों की हार-लता से शोभित है । उधर उसमें रहने वाला वह यक्ष यह नहीं सह सकता कि कोई मन्त्रज्ञ विलास-शोभित नील कमल-तुल्य नेत्रों वाली उसका दर्शन करे । तो इस विषय में तीन दिन प्रतीक्षा करो जिनके अन्दर मैं इस प्रयोजन की सिद्धि के लिए प्रयत्न करूँगा । उस प्रकार की आज्ञा प्राप्त

गते निशि[1] निर्निशाकरार्चिषि नीरन्ध्रान्धकारकणनिकरनिगीर्णदशदिशि निद्रानिगडितनिखिलजनदृशि निर्गत्य जलतल[2]निलीनगाहनीयं नीरन्ध्रं कृच्छ्राच्छिद्रीकृतान्त[3]रालं तदेकतः सरस्तटं तीर्थासंनिकृष्टं केनचित्खननसाधनेनाकार्षम्। घनशिलेष्टिकाच्छन्नच्छिद्राननं तत् सरस्तीरदेशं जनैरशङ्कनीयं निश्चित्य, दिनादिस्नाननिर्णिक्तगात्रश्च नक्षत्रसंतानहार[4]यष्ट्यग्रग्रथितरत्नं क्षणदान्धकारगन्धहस्तिदारणैककेसरिणं कनकशैलशृङ्गरङ्गलास्यलीलानटं गगनसागरघनतरङ्ग-

उपदिष्टे। हृष्टे प्रसन्ने। क्षितीशे नृपे। निशि रात्रौ। निर्गतम् निशाकरस्य चन्द्रस्य अर्चिः तेजः यस्याम्। नीरन्ध्रः गाढः च सः अन्धकारः च तस्य कणानाम् निकरैः समूहैः निगीर्णाः भक्षिताः दश दिशः यस्याम्। निद्रया निगडिताः बद्धाः निखिलानाम् सर्वेषाम् जनानाम् दृशः दृष्टयः यस्याम्। निर्गत्य बहिः गत्वा। जलतले निलीनेन प्रविष्टेन जनेन गाहनीयम् गम्यम् नीरन्ध्रम् बिलरहितम्। कृच्छ्रात् क्लेशेन। छिद्रीकृतम् शून्यीकृतम् अन्तरालम् मध्यभागः यस्य तत्। एकतः समीपे ("एकतः क्वचिदन्तिके" इति वैजयन्ती)। सरसः तडागस्य तटम्। तीर्थस्य सोपानमार्गस्य संनिकृष्टम् समीपे। अकार्षम् अकरवम्। घनाभिः निबिडाभिः शिलाभिः प्रस्तरैः इष्टिकाभिः आच्छन्नम् आवृतम् छिद्रस्य आननम् मुखम् यस्य तम्। तस्य सरसः तडागस्य तीरदेशम् तटभागम्। दिनस्य आदौ (प्रभाते) आरम्भे स्नानेन निर्णिक्तम् शोधितम् ("निर्णिक्तं शोधितं मृष्टम्" इति अमरः) गात्रम् अङ्गम् यस्य सः। नक्षत्राणाम् संतानः परम्परा सः एव हारयष्टिः हारलता तत्र अग्रे आदौ ग्रथितम् च तत् रत्नम् च तत् (सूर्यम्)। क्षणदायाः रात्रेः अन्धकारः एव गन्धहस्ती मत्तगजः ("यस्य गन्धं समाघ्राय न तिष्ठन्ति प्रतिद्विपाः। तं गन्धहस्तिनं प्राहुर्नृपतेर्विजयावहम्॥" इति पालकाप्ये) तस्य दारणे भेदने एकः अद्वितीयः केसरी सिंहः तम्। कनकशैलस्य सुमेरोः शृङ्गम् शिखरम् एव रङ्गः नृत्यशाला तत्र या लास्यलीला नृत्यविलासः तस्याः नटः नर्तकः तम्। गगनम् आकाशः एव सागरः समुद्रः तस्य या घनानाम् निबिडानाम्

कर प्रसन्न हुये राजा के चले जाने पर रात के समय मैं निकला। तब चन्द्रमा का तेज हट चुका था, दस दिशायें गाढ़ अन्धकार के कण-समूह द्वारा निगल डाली गई थीं। और सब लोगों की दृष्टि नींद से बँध गई थी। समीप ही सीढ़ी के निकट तालाब को, वह छेद-रहित किनारा किसी खोदने के साधन से कठिनाई झेलते हुए मध्य में खोदकर, जल के नीचे छिपे हुये व्यक्ति के प्रवेश-योग्य बना दिया। उस तालाब के तट-भाग के छेद का मुँह कसकर फिर ठीक बैठने वाले पत्थर और ईंटों से बन्द कर दिया। यह निश्चय कर कि अब उस स्थान पर जनता शक नहीं करेगी, दिन शुरू होने पर स्नान से स्वच्छ शरीर लेकर नक्षत्र-परम्परा को हार-लता में प्रथम गुँथे रत्न, रात के अन्धकार रूपी मस्त हाथी के भेदन में अद्वितीय सिंह, मेरु पर्वत के शिखर-रूपी नृत्य-शाला के नृत्य-विलासक नट, आकाश-रूपी समुद्र की घनी

---

१. निशि निशि। २. तललीन। ३. कृतान्तरम्। ४. हारिहर।

राजिलङ्घनैकनक्रं कार्याकार्यसाक्षिणं सहस्राक्षदिगङ्गनाङ्गरागरागायितकिरणजालं रक्तनीरजाञ्जलिनाराध्य निजनिकेतनं [1]न्यशिश्रियम्।

याते च दिनत्रये, अस्तगिरिशिखरगैरिकतटसाधारणच्छायतेजसि, अचलराजकन्यकाकदर्थनयान्तरिक्षाख्येन शंकरशरीरेण संसृष्टायाः संध्याङ्गनाया रक्तचन्दनचर्चितैकस्तनकलशदर्शनीये दिनाधिनाथे, जनाधिनाथः स आगत्य जनस्यास्य धरणिन्यस्तचरणनखकिरणच्छादितकिरीटः कृताञ्जलिरतिष्ठत्। आदिष्टश्च 'दिष्ट्या दृष्टेष्टसिद्धिः। इह जगति हि न निरीहं देहिनं श्रियः

तरङ्गाणाम् लहरीणाम् राजिः समूहः तस्याः लङ्घने अतिक्रमणे एकः अद्वितीयः नक्रः ग्राहः तम्। कार्यम् कर्त्तव्यम् च अकार्यम् कुकर्म च तयोः साक्षिणम्। सहस्रार्चिषम् सूर्यम्। सहस्राक्षस्य इन्द्रस्य दिक् (प्राची) सा एव अङ्गना नायिका तस्याः अङ्गरागेण अङ्गरङ्गेण रागायितम् रागवत् आचरितम् किरणानाम् जालम् समूहः यस्य तम्। रक्तानि अरुणानि च तानि नीरजानि कमलानि च तेषाम् अञ्जलिना। आराध्य पूजयित्वा। निजस्य निकेतनम् गृहम्। न्यशिश्रियम् आश्रितवान्।

याते व्यतीते। अस्तगिरेः अस्ताचलस्य शिखरे शृङ्गे यत् गैरिकतटम् गैरिकमयम् नितम्बम् तत्साधारणी तत्तुल्या छाया कान्तिः ("छाया सूर्यप्रिया कान्तिः" इति अमरः) यस्य तादृशं तेजः यस्य तस्मिन्। अचलराजस्य हिमालयस्य कन्यकायाः पुत्र्याः (पार्वत्याः) कदर्थनया उत्पीडनेन। अन्तरिक्षम् नभः आख्या नाम यस्य तेन। संसृष्टायाः मिलितायाः। रक्तचन्दनेन चर्चितः आलिप्तः ("चर्चा चार्चिक्यमालेपे" इति वैजयन्तो) यः एकः अद्वितीयः स्तनः पयोधरः सः एव कलशः घटः तद्वत् दर्शनीये। दिनाधिनाथे सूर्ये। जनाधिनाथः राजा। सः (जयसिंहः)। अस्य मम (मन्त्रगुप्तस्य)। धरणौ पृथ्व्याम् न्यस्तौ स्थापितौ चरणौ तयोः नखानाम् किरणैः छादितम् आवृतम् किरीटम् मुकुटम् यस्य सः। कृताञ्जलिः कृतनमस्कारः। आदिष्टः उक्तः। दिष्ट्या सौभाग्येन। दृष्टा प्राप्ता। इष्टस्य मनोरथस्य सिद्धिः सफलता। इह अस्मिन्। निर्गता ईहा इच्छा यस्मात् तम् देहिनम् जीवम्। श्रियः सम्पत्तयः। संश्रयन्ते सेवन्ते। श्रेयांसि

लहरों के समूह को पार करने में अद्वितीय ग्राह, भले-बुरे कर्मों के साक्षी, प्राची अङ्गना के अङ्गराग से लालिमा बन रहे किरण-समूह वाले सूर्य की आराधना अँजुली भर लाल कमलों से करके अपने घर का आश्रय लिया।

तीन दिन बीतने पर जब सूर्य का तेज अस्ताचल के शिखर के गेरू के ढालुये भागों के समान कान्ति वाला और पार्वती के उत्पीड़न से शङ्कर के अन्तरिक्ष नामक शरीर से लिपटी संध्या-अङ्गना के लाल चन्दन से लिप्त कलश-तुल्य अद्वितीय स्तन के समान दर्शनीय हो गया, तब वह राजा आया। पृथ्वी पर रखे मेरे चरणों के नखों की किरणों से उसका मुकुट व्याप्त हो गया। हाथ जोड़कर खड़ा हो गया। मैंने उससे कहा—'भाग्य से अभीष्ट की सफलता प्राप्त हो गई है। निश्चय ही इस संसार में इच्छा-रहित प्राणी को सम्पदायें नहीं अपनातीं और

---

१. चाध्यशिश्रियम्।

संश्रयन्ते। श्रेयांसि च सकलान्यनलसानां हस्ते नित्यसांनिध्यानि। यतस्ते साधीयसा सच्चरितेनानाकलितकलङ्केनार्चितेनात्यादररचितेनाकृष्टचेतसा जनेनानेन सरस्तथा सस्कृतं यथेह तेऽद्य सिद्धिः स्यात्। तदेवस्यां निशि गलदर्धायां गाहनीयम्। गाहनानन्तरं च सलिलतले सततगतीनन्तःसंचारिणः संनिगृह्य यथाशक्ति शय्या कार्या। ततश्च तटस्खलितजलस्थगितजलजखण्डचलितदण्डकण्टकाग्रदलितदेहराजहंसत्रासजर्जररसितसंदत्तकर्णस्य जनस्य क्षणादाकर्णनीयं जनिष्यते जलसंघातस्य किंचिदारटितम्। शान्ते च तत्र सलिलरटिते क्लिन्नगात्रः किंचिदारक्तदृष्टिर्येनाकारेण निर्यास्यसि निचाय्य तं[1] निखिलजननेत्रा-

सुकृतानि ("स्याद्धर्ममस्त्रियां पुण्यश्रेयसी सुकृतं वृषः")। अनलसानाम् उद्यमिनाम्। नित्यम् सदा सांनिध्यम् येषाम् तानि। ते तव। साधीयसा साधुतरेण। सता उज्ज्वलेन चरितेन जीवनेन। न आकलितः स्पृष्टः कलङ्कः दूषणम् येन तेन। अत्यादरेण महता सम्मानेन। रचितेन कृतेन। आकृष्टम् चेतः चित्तम् यस्य तेन (मया)। अनेन (मया)। सरः तडागः। संस्कृतम् शोधितम्। ते तव। सिद्धिः (मया)। सरः तडागः। संस्कृतम् शोधितम्। ते तव। सिद्धिः सफलता। निशि रात्रौ। गलत् नश्यत् अर्धम् अर्द्धभागः यस्याः तस्याम्। गाहनीयम् प्रवेश्यम् (सरः)। गाहनस्य प्रवेशस्य अनन्तरम् पश्चात्। सततगतीन् वायून्। अन्तः शरीराभ्यन्तरे। संचारिणः स्थितान्। संनिगृह्य निरुध्य। शय्या शयनम्। तटेन स्खलितम् पतितम् यत् जलम् तेन स्थगितम् मन्दीभूतम् जलजानाम् कमलानाम् खण्डम् समूहः तेन चलितम् कम्पितम् यत् दण्डम् नालम् तस्य कण्टकाग्रेण दलितः विद्धः देहः यस्य सः च राजहंसः च तस्य त्रासेन भयेन जर्जरम् शिथिलम् यत् रसितम् ध्वनिः तस्मिन् संदत्तौ बद्धौ कर्णौ यस्य। क्षणात् क्षणपश्चात्। आकर्णनीयम् श्रवणीयम्। जनिष्यते उत्पत्स्यते। जलसंघातस्य जलसमूहस्य। किञ्चित् अल्पम्। आरटितम् शब्दः। क्लिन्नानि आर्द्राणि गात्राणि अङ्गानि यस्य सः। किञ्चित् अल्पम्। आ ईषत् रक्ता लोहिता दृष्टिः नेत्रम् यस्य सः। आकारेण स्वरूपेण (उपलक्षणे तृतीया)। निर्यास्यसि निर्गमिष्यसि। निचाय्य दृष्ट्वा। तम् (आकारम्)।

सम्पूर्ण कल्याणों की उपस्थिति उनके हाथों में सदा रहती है जो आलसी नहीं हैं। तुम्हारे विशेष साधु और कलङ्क-रहित, सम्मानित और अत्यन्त आदर से व्याप्त सच्चरित से मेरा हृदय आकृष्ट हो गया है। मैंने यह तालाब ऐसा परिष्कृत किया है कि आज तुम्हें सफलता मिले, अतः आज की रात जब आधी बीत जाय, इस तालाब में प्रवेश करना। प्रवेश के बाद पानी को तलहटी में अन्दर घूम रही वायुओं को भरसक रोककर शयन करना। उसके बाद किनारे से ठोकर खाये हुए पानी से रुके कमल-समूह के काँप रहे डंठल के काँटे के सिरे से बिंधी देह लिये हुए राजहंस की डर से टूटी-फूटी आवाज के प्रति कान लगाये रहने वाले व्यक्ति को क्षण भर के बाद जल-समूह की हलकी ध्वनि सुनने में आयेगी। वहाँ पानी की आवाज शान्त हो जाने पर गीला बदन और जरा हलकी लाल दृष्टि लिये हुये जिस स्वरूप के साथ निकलोगे,

---

१. तस्य...कारिणः।

नन्दकारिणं न यक्षः शक्ष्यत्यग्रतः स्थितये । स्थिरतरनिहितस्नेहशृङ्खलानिगडितं च कन्यका[1]हृदयं क्षणेनैकेनासहनीयदर्शनान्तरायं स्यात् । अस्याश्च धराङ्गनाया[2]नात्यादरनिराकृतारिचक्रं चक्रं करतलगतं चिन्तनीयं न तत्र संशयः । तच्चेदिच्छस्यनेक[3]शास्त्रज्ञानधीरधिषणैरधिकृतैरितरैश्च हितैषिगणैराकलय्य[4] जालिकशतं चानाय्य, अन्त[5]रङ्गनरशतैर्यथेष्टदृष्टान्तरालं सरः क्रियेत, रक्षा च तीरात्त्रिंशद्दण्डान्तराले सैनिकजनेन सादर रचनीया । कस्तत्र तज्जानाति यच्छिद्रेणारयश्चिकीर्षन्ति' इति । तत्तस्य हृदयहारि जातम् । तदधिकृतैश्च तत्र कृत्ये रन्ध्रदर्शनासहैरिच्छां

शक्ष्यति समर्थः भविष्यति । अग्रतः समक्षम् । स्थितये अवस्थानाय । स्थिरतरम् विशेषेण स्थिरम् दृढम् यथा स्यात् तथा । (हृदये) निहितः स्थापितः यः स्नेहः अनुरागः सः एव शृङ्खला तया निगडितम् बद्धम् । कन्यकायाः (कनकलेखायाः) हृदयम् । असहनीयः (तव) दर्शनस्य अन्तरायः विघ्नः यस्य तत् । धरा पृथ्वी एव अङ्गना तस्याः । नात्यादरेण लघुप्रयासेन निराकृतम् पराजितम् अरीणाम् शत्रूणाम् चक्रम् समूहः यत्र तत् । चक्रम् मण्डलम् । चिन्तनीयम् मन्तव्यम् । तत् उक्तम् । चेत् यदि । अनेकशास्त्रज्ञानेन धीरा स्थिरा धिषणा बुद्धिः ("बुद्धिर्मनीषा धिषणा" इति अमरः) येषाम् तैः । अधिकृतैः अधिकारिभिः । इतरैः अन्यैः (सह) । आकलय्य विचार्य । जालिकानाम् जालोपजीविनाम् (धीवराणाम्) शतम् शतानि । आनाय्य आकार्य । अन्तरङ्गाः विश्वस्ताः ये नराः तेषाम् शतैः यथेष्टम् पर्याप्तम् दृष्टम् अन्तरालम् मध्यभागः यस्य तत् । रक्षा रक्षणम् । दण्डः षोडशहस्तप्रमाणम् चतुर्हस्तप्रमाणम् वा । त्रिंशतः दण्डानाम् अन्तराले व्यवधाने । आदरेण अवधानेन सह । रचनीया विधेया । छिद्रेण अवसरेण । अरयः शत्रवः । चिकीर्षन्ति कर्तुम् इच्छन्ति । तत् उक्तम् । तस्य (नृपस्य) । हृदयहारि मनोहरम् । तस्य अधिकृतैः अधिकारिभिः । तत्र तस्मिन् । कृत्ये कर्तव्ये । रन्ध्रदर्शनासहैः दोषदर्शनाक्षमैः ।

वह समस्त जनों के नेत्रों का आनन्दकारी होगा । उसे देखकर वह यक्ष सामने ठहर न सकेगा । लड़की का दिल विशेष दृढ़ता से स्थित प्रेम की जंजीर से बँधकर एक क्षण के अन्दर ऐसा हो जायेगा कि उसे दर्शन की बाधा असहनीय हो जाय । फिर यह मानो कि पृथ्वी-अंगना के मण्डल के शत्रु-समूह मामूली प्रयास से ही पराजित हो जायेंगे और वह मण्डल मुट्ठी में आ जायेगा । उक्त बात में संदेह नहीं है । यदि उक्त बात अभीष्ट है तो अनेक शास्त्रों के ज्ञान से जिनकी बुद्धि स्थिर हो गई है, उन पुरुषों, अधिकारियों तथा उनसे भिन्न हितैषियों के समूह के साथ परामर्श कर और सैकड़ों जाल डालने वालों को बुलवाकर सैकड़ों विश्वस्त पुरुषों के द्वारा तालाब का मध्य भाग पर्याप्त रूप से दिखवा लो । सैनिक-गणों के द्वारा किनारे से एक सौ बीस (या इससे चौगुने) हाथ की दूरी तक सावधानी से रक्षा का प्रबन्ध करा लो । कमजोरी का लाभ उठाकर दुश्मन जो करना चाहते हैं, यह वहाँ कौन जानेगा ? वह बात उसे मनोहारी लगी । उस कर्तव्य में दोष देखना सह न पाने वाले अधिकारियों के द्वारा लड़की के

---

[1] कन्यकारत्नम् । [2] नात्यादृत । [3] नैक । [4] विचार्य । [5] अनन्तरं ।

च राज्ञः कन्यकातिरागजनितां नितान्तनिश्चलां निश्चित्यार्थ एष न निषिद्धः। तथा स्थितश्च तदासादनदृढतराशयश्च स आख्यायत—'राजन्, अत्र ते जनान्ते चिर स्थितम्, न चैकत्र चिरस्थानं नः शस्तम्। कृतकृत्यश्चेह न [1]द्रष्टासि। यस्य ते राष्ट्रे [2]ग्रासाद्यासादितं तस्य ते किंचिदनाचर्य कार्यं गतिरार्यगर्ह्या' इति। अत्रैतच्चिरस्थानस्य कारणम्। तच्चाद्य सिद्धम्। गच्छ गृहान्। यथार्हजलेन हृद्यगन्धेन स्नातः सितस्रगङ्गरागः शक्तिसदृशेन दानेनाराधितधरणित[3]लतैतिलगणस्तिलस्नेहसिक्तयष्ट्यग्रग्रथित[4]वर्तिकाग्निशिखासहस्रग्रस्तनैशान्धकारराशिरा-ग

कन्यकायाम् (कनकलेखायाम्) यः अतिरागः बहुः अनुरागः तेन जनिताम् उत्पादिताम्। नितान्तम् अतीव निश्चलाम् दृढाम्। निश्चित्य अवधार्य। अर्थः विषयः। तथा तद्विधानेन। तस्याः (कनकलेखायाः) आसादने प्राप्तौ दृढतरः विशेषदृढः आशयः अभिप्रायः यस्य सः। सः (जयसिंहः)। आख्यायत उक्तः। ते तव। जनान्ते जनपदे। चिरम् बहुकालम्। एकत्र एकस्मिन् स्थाने। चिरम् स्थानम् अवस्थितिः। नः अस्माकम् (संन्यासिनाम्) कृते। शस्तम् प्रशस्तम्। कृतकृत्यः सफलमनोरथः (सन्)। इह अत्र। द्रष्टासि द्रक्ष्यसि। ते तव। राष्ट्रे राज्ये। ग्रासादि भोजनादि। आसादितम् प्राप्तम्। अनाचर्य अकृत्वा। गतिः गमनम्। आर्यैः सज्जनैः गर्ह्या निन्दनीया। चिरस्थानस्य बहुकालावस्थितेः। तत् (कारणम्)। सिद्धम् सफलम्। गृहान् गृहम् ("गृहाः पुंसि च भूम्न्येव")। यथार्हेण यथोचितेन। हृद्यः मनोहरः गन्धः यस्य तेन। सिता श्वेता स्रक् माला च अङ्गरागः लेपः च यस्य सः। शक्तिसदृशेन यथाशक्ति। आराधितः पूजितः धरणितलस्य पृथ्वीतलस्य तैतिलानाम् देवानाम् (विप्राणाम्) गणः समूहः येन। तिलस्नेहेन तिलतैलेन सिक्ताः च यष्टेः दण्डस्य अग्रे उपरि ग्रथिताः लग्नाः च याः वर्तिकाः दशाः तासाम् अग्नेः शिखानाम् ज्वालानाम् सहस्रेण ग्रस्तः नष्टः नैशस्य

प्रति अत्यधिक अनुराग से उत्पन्न की गई राजा की इच्छा अत्यन्त दृढ़ निश्चित कर इस विषय का निषेध नहीं किया गया। जब वह उस प्रकार प्रबन्ध कर चुका तब उस-(कनकलेखा) की प्राप्ति के लिए सुदृढ़ विचार वाले उससे मैंने कहा—'महाराज, तुम्हारे देश में मैं बहुत समय रहा और हम लोगों का एक स्थान पर बहुत समय तक टिकना अच्छा नहीं है। पूर्ण-मनोरथ होने के बाद मुझे यहाँ नहीं देखोगे। जिस तुम्हारे राज्य में भोजन आदि मिला है, उस तुम्हारा कुछ काम बिना किये जाना सज्जनों की दृष्टि में निन्दनीय है। यहाँ बहुत समय रहने का यह कारण है। वह आज सफल हो गया। घर जाओ। मनोहर गंध वाले यथोचित जल से नहाकर सफेद माला और लेप धारण कर सामर्थ्य के अनुसार दान देकर ब्राह्मण गण को प्रसन्न करना। तिल के तेल में भींगी और छड़ी के ऊपर लगी बत्ती की आग की हजारों ज्वालाओं से रात का अँधेरा नष्ट कर देना। फिर आकर कार्य की सफलता के लिये

---

१. तिष्ठामि। २. आतिथेयादि। ३. तलेति नास्ति क्वचित्। ४. चेलाञ्चलखण्डकाग्नि-शिखासहस्रास्त।

स्यार्थसिद्धये यतेथाः इति। स किल कृतज्ञतां दर्शयन्—'असिद्धिरेषा सिद्धिः, यदसंनिधिरिहार्याणाम्। कष्टा चेयं निःसङ्गता, या निरागसं दासजनं त्याजयति। न च निषेधनीया गरीयसां गिरः' इति स्नानाय गृहानयासीत्। अहं च निर्गत्य निर्जने निशीथे सरस्तीररन्ध्रनिलीनः सन्नीषच्छिद्रदत्तकर्णः स्थितः। स्थिते चार्धरात्रे कृतयथादिष्टक्रियः स्थानस्थानरचितरक्षः स राजा जालिकजनानानीय निराकृतान्तःशल्यं शङ्काहीनः सर सलिलं सलीलगतिरगाहत। गत[1] च कीर्णकेशं संहतकर्णनासं सरसस्तलं [2]हास्तिनं नक्रलीकया नीरातिनिलीनतया तं तथा

निशाजातस्य अन्धकारस्य राशिः समूहः येन। अर्थस्य कार्यस्य सिद्धये साफल्याय। सः (जयसिंहः)। किल (अनुनये)। असिद्धिः विफलता (विधेयम्)। सिद्धिः सफलता। असंनिधिः अनुपस्थितिः। इह अत्र। आर्याणाम् श्रीमताम् (भवताम्)। कष्टा क्लेशकरी। निःसंगता अनासक्तिः। निर्गतम् आगः अपराधः यस्य तम्। त्याजयति निःसारयति। निषेधनीयाः लङ्घनीयाः। गरीयसाम् गुरुतराणाम् गिरः वाण्यः। गृहान् गृहम्। अयासीत् अगच्छत्। अहम् (मन्त्रगुप्तः)। निर्गताः जनाः यस्मात् तत्र। निशीथे अर्धरात्रे। सरसः तडागस्य तीरे यत् रन्ध्रम् विलम् तत्र निलीनः गूढः। ईषच्छिद्रे अल्पविले दत्तः कर्णः येन। कृता यथादिष्टा आदेशानुरूपा क्रिया येन सः। स्थाने स्थाने रचिता विहिता रक्षा रक्षणम् येन। जालिकजनान् जालोपजीविनः जनान्। निराकृतम् दूरीकृतम् अन्तः जलाभ्यन्तरे शल्यम् विघ्नः यस्य तत्। शङ्का सन्देहः तद्हीनः तद्रहितः। सरसः तडागस्य सलिलम् जलम्। लीलया विलासेन सह वर्तमाना सलीला गतिः गमनम् यस्य सः। अगाहत प्रविष्टः। कीर्णाः पर्यस्ताः केशाः मूर्धजाः यस्य तम्। कर्णौ च नासा नासिका च कर्णनासम् (समाहारद्वन्द्वः प्राण्यङ्गत्वात्)। संहतम् पिहितम् कर्णनासम् यस्य तम्। सरसः तडागस्य। हस्ती गजः प्रमाणम् अस्य इति हास्तिनम् (पुरुषहस्तिभ्यामण् च) हस्तिमात्रम्। नक्रस्य मकरस्य लीला विलासः तया। नीरे जले अतिनिलीन-

प्रयत्न करना।' उसने विनय-पूर्वक कृतज्ञता दिखाई। 'यह सफलता (तो) विफलता है जो यहाँ श्रीमान् का रहना न होगा। यह विरक्ति भी क्लेशकर है जो निरपराध सेवक का त्याग करवाती है। अत्यन्त पूज्य जनों के वचनों का निषेध भी नहीं किया जा सकता' यह कहकर नहाने के लिये घर चला गया। उधर मैं जन-रहित अर्द्धरात्रि में निकलकर तालाब के किनारे वाले छेद में छिपा हुआ छोटे छेद मे कान लगा कर बैठा रहा। आधी रात आ जाने पर आदेश के अनुसार काय करके तथा जगह-जगह रक्षा का प्रबंध कर उस राजा ने जाल वालों (मल्लाहों) को बुलवाकर, हृदय के क्लेश को दूर कर, संदेह-रहित होकर विलास-युक्त गति के साथ तालाब के पानी में प्रवेश किया। जब वह बिखरे बाल और बन्द नाक-कान लेकर हाथी की गहराई तक तालाब के निचले भाग में पहुँच गया, तब मैंने घड़ियाल का

---

[1] गतः। [2] हस्तिनक्र।

शयानं कंधरायां कन्थया न्यग्रहीषम्। खरतरकालदण्डघट्टनातिचण्डैश्च करचरणतलाघातैर्निर्दयदत्तनिग्रहः क्षणेनैकेनाजहात्स चेष्टाम्। ततश्चाकृष्य तच्छरीरं छिद्रे निधाय नीरान्निरयासिषम्।

सद्यः सगतानां च सैनिकानां तदत्यचित्रीयताकारान्तरग्रहणम्। गजस्कन्धगतः सितच्छत्रादिसकलराजचिह्नराजितश्चण्डतरदण्डिदण्डताडनत्रस्तजनदत्तान्तरालया राजवीथ्या[1] यातस्तां निशां रस[2]नयननिरस्तनिद्रारतिरनैषम्। नीते च जनाक्षिलक्ष्यतां लाक्षारसदिग्धदिग्गजशिरःसदृशे शक्रदिगङ्गनारत्नादर्शेऽर्कचक्रे कृतकर-

यायी सुगूढतरणलग्नः तम् (जयसिंहम्) कन्धरायाम् ग्रीवायाम्। कन्थया प्रावरणविशेषेण ("कन्था मृन्मयभित्तौ स्यात् तथा प्रावरणान्तरे" इति मेदिनी)। न्यग्रहीषम् गृहीतवान्। खरतरः अतिशयेन खरः तीक्ष्णः यः कालदण्डः यमदण्डः तस्य या घट्टना प्रहारः तद्वत् चण्डैः भयङ्करैः। निर्दयम् यथा स्यात् तथा दत्तः निग्रहः दण्डः यस्मै सः। अजहात् अत्यजत् (मृतः)। चेष्टाम् क्रियाम्। तस्य शरीरम्। निधाय स्थापयित्वा। नीरात् जलात्। निरयासिषम् निर्गतः।

सद्यः शीघ्रम्। संङ्गतानाम् मिलितानाम्। अत्यचित्रीयत अत्याश्चर्यकरम् जातम्। आकारान्तरम् अन्यः राजाकारस्थाने मन्त्रगुप्ताकारः। आकारः रूपम्। गजस्य स्कन्धम् शिरः गतः प्राप्तः। सितच्छत्रादीनि श्वेतातपत्रादीनि सकलराजचिह्नानि तैः राजितः शोभितः। चण्डतराः अतिशयेन चण्डाः ये दण्डिनः दण्डधारिणः तेषाम् दण्डाः तैः ताडनम् तस्मात् त्रस्तैः भीतैः जनैः दत्तम् अन्तरालम् अवकाशः यस्याम् तया। राजवीथ्या राजमार्गेण। यातः गतः। रसः आनन्दः तेन नयनाभ्याम् निरस्ता दूरीभूता निद्रारतिः निद्रानुरागः यस्य सः। अनैषम् अनयम्। नीते प्रापिते। जनानाम् अक्ष्णोः नेत्रयोः लक्ष्यताम् गोचरताम्। लाक्षारसेन यावकरसेन दिग्धम् लिप्तम् यत् दिग्गजस्य शिरः तत्सदृक्षे तत्समाने शक्रदिक् प्राची सा एव अङ्गना कामिनी तस्याः रत्नादर्शे रत्नमये आदर्शे दर्पणे। अर्कस्य सूर्यस्य चक्रे मण्डले। कृतम् करणीयम्

विलास लेकर पानी में खूब छिपकर चलते-चलते उस प्रकार लेटे हुए उसकी गरदन चादर से घोंटी। हथेलियों और पैर के तलुओं के अत्यन्त तीक्ष्ण यम-दण्ड की चोट के समान महा भयंकर प्रहारों से उसे निर्दयता-पूर्वक दण्ड दिया। एक क्षण में उसने हिलना-डुलना बन्द कर दिया (मर गया)। इसके बाद उसका शरीर खींचकर छेद में डाल कर पानी से निकल आया।

तत्काल इकट्ठे हुये सैनिकों के लिये वह अन्य आकृति धारण करना अचरज का सामान हो गया। हाथी के कन्धे पर चढ़कर और सफेद छत्र आदि सम्पूर्ण राज-चिह्नों से शोभित होकर मैं सड़क पर चला। अत्यंत भयङ्कर दण्डधारियों के डण्डों से पिटने से डरी हुई जनता ने उस सड़क पर रास्ता दिया। वह रात बिताई। आनन्द के कारण नेत्रों से निद्रा के प्रति अनुराग हट गया था। महावर के घोल से लिप्त दिग्गज के सिर के समान प्राची सुन्दरी के रत्नजटित दर्पण सूर्य के बिम्ब के जन-नेत्रों का गोचर बनाये जाने पर करने योग्य कार्य करके

---

१. राजरथ्यया। २. नयनरस।

णीयः किरणजालकरालरत्नराजिराजितराजार्हासनाध्यासी यथासदृशाचारदर्शिनः शङ्कायन्त्रिताङ्गान्सनिधिनिषादिनः सहायानगादिषम्—'दृश्यतां शक्तिरार्षी, यत्तस्य यतेरजेयस्येन्द्रियाणां संस्कारेण नीरजसा नीरजसांनिध्यशालिनि सहर्षालिनि सरसि सरसिजदलसंनिकाशच्छायस्याधिकतरदर्शनीयस्याकारान्तरस्य सिद्धिरासीत्। अद्य सकलनास्तिकानां जायेत लज्जानतं शिरः। तदिदानीं चन्द्रशेखरनरकशासनसरसिजासनादीनां त्रिदशेशानां स्थानान्यादररचितनृत्यगीता[1]राधनानि क्रियन्ताम्। ह्रियन्तां च गृहादितः क्लेशनिरसन-

नित्यक्रिया येन सः। किरणानाम् जालेन समूहेन कराला व्याप्ता या रत्नानाम् राजिः समूहः तया राजितम् शोभितम् यत् राजार्हम् राजोचितम् आसनम् तत् अध्यास्ते असौ तथा। यथासदृशम् स्वपदानुरूपम् आचारम् आचरणम् दर्शयन्ति इमे तथा। शङ्कया (का स्यात् प्रकृतिः अस्य परिवर्तितरूपस्य नृपस्य इति) भयेन यन्त्रितानि सङ्कुचितानि अङ्गानि अवयवाः येषाम् तान्। संनिधौ समोपे निषीदन्ति इमे तथा। सहायान् पार्श्वस्थान् सचिवादीन् जनान्। अगादिषम् अवदम्। आर्षी ऋषेः इयम्। यतेः संन्यासिनः। इन्द्रियाणाम् अजेयस्य जितेन्द्रियस्य। नीरजसा रजोगुणरहितेन। नीरजानाम् कमलानाम् सांनिध्येन सम्पर्केण शालते असौ तस्मिन्। सहर्षाः सानन्दाः अलयः भ्रमराः यत्र। सरसि तडागे। सरसिजानाम् कमलानाम् दलैः पत्रैः संनिकाशा तुल्या छाया कान्तिः ("छाया सूर्यप्रिया कान्तिः" इति अमरः) यस्य। अन्यः आकारः रूपम् आकारान्तरम् तस्य। सिद्धिः प्राप्तिः। आसीत् जाता। अद्य अधुना। सकलानाम् सर्वेषाम् नास्तिकानाम् मन्त्रतन्त्रादिप्रभावे विश्वासरहितानाम्। जायेत स्यात्। लज्जया नतम् नम्रम्। चन्द्रः शेखरे ललाटे यस्य सः (शिवः) च नरकशासनः नरकासुरनाशकः (विष्णुः) च सरसिजम् कमलम् आसनम् यस्य सः (ब्रह्मा) च तदादीनाम्। त्रिदशेशानाम् देवानाम्। स्थानानि मन्दिराणि। अत्यादरेण प्रभूततरसम्मानेन रचितानि विहितानि नृत्यगीतादिभिः समाराधनानि पूजनानि येषाम् तानि। ह्रियन्ताम् नीयन्ताम्। गृहात् राजप्रासादात्। इतः अस्मात्। क्लेशस्य दरिद्रतारूपस्य दुःखस्य निरसनसहानि दूरीकरणे

किरण-समूह से व्याप्त रत्न-राशि से शोभित राजोचित आसन पर बैठा हुआ मैं पदानुरूप आचरण प्रदर्शित कर रहे आशङ्का से सङ्कुचित अङ्गों वाले पास बैठे सहायकों से बोला—'आर्ष (ऋषि की) शक्ति देखिये कि उन जितेन्द्रिय संन्यासी के रजो-गुण-रहित संस्कार से कमलों के सम्पर्क से सुशोभित और आनंदित भौरों से युक्त तालाब में कमल-पंखुड़ी के समान कान्ति वाली तथा और अधिक दर्शनीय अन्य आकृति की सिद्धि (निहित) थी। आज समस्त नास्तिकों के सिर लाज से झुक जायँ। तो अब शिव, विष्णु और ब्रह्मा आदि देवेश्वरों के मन्दिरों में अतिसम्मान-पूर्वक संपादित नृत्य, गान आदि द्वारा पूजन कराया जाय और इस घर से याचक-गण इतना धन ले जायँ जो कष्ट दूर करने में समर्थ हो। वे आश्चर्य-रस के

---

[1] गीतार्चनाभिवर्तानि।

सहान्यर्थिसार्थैर्धनानि' इति । आश्चर्यरसातिरेकहृष्टदृष्टयस्ते [1]'जय जगदीश जयेन[2] सातिशयं दश दिशः स्थगयन्निजेन यशसादिराजयशांसि' इत्यसकृदाशास्यारचयन्यथादिष्टाः क्रियाः । स चाहं दयितायाः सखीं हृदयस्थानीयां शशाङ्कसेनां कन्यकां कदाचित्कार्यान्तरागतां रहस्याचक्षिषि—'कच्चिदयं जनः कदाचिदासीद् दृष्टः' इति । अथ सा हर्षकाष्ठां गतेन हृदयेनेषदालक्ष्य दशनदीधितिलतां लीलालस लास[3]यन्ती, [4]ललिताञ्चितकरशाखान्तरितदन्तच्छदकिसलया, हर्षजलक्लेदजर्जरनिरञ्जनेक्षणा, रचिताञ्जलिः नितरां जाने यदि न स्यादैन्द्रजालिकस्य जालं किंचिदेवादृशम् । कथं चैतत् । कथय' इति स्नेहनिर्यन्त्रणं

समर्थानि । अर्थिनाम् याचकानाम् सार्थैः समूहैः । आश्चर्यरसस्य अतिरेकेण आधिक्येन हृष्टा प्रसन्ना दृष्टिः येषाम् ते । जय सर्वोत्कर्षेण वर्तस्व । जगताम् ईश स्वामिन् (राजन्) । जयेन शत्रुजयेन । अतिशयेन सह वर्तमानम् कर्म तत् यथा स्यात् तथा । स्थगयन् व्याप्नुवन् । आदिराजस्य मनोः पूर्वराजानाम् वा यशांसि कीर्तीः । असकृत् वारम् वारम् । आशास्य प्रशस्य । आरचयन् अकुर्वन् । यथादिष्टाः आदेशानुसारिणीः । सः (मन्त्रगुप्तः) । दयितायाः प्रियायाः (कनकलेखायाः) । हृदयस्थानीयाम् हृदयतुल्याम् (विश्वस्ताम्) । अन्यत् कार्यम् कार्यान्तरम् तेन आगताम् । रहसि एकान्ते । आचक्षिषि अवदम् । कच्चित् किम् । अयम् जनः अहम् । सा (शशाङ्कसेना) । हर्षस्य काष्ठाम् सीमाम् । गतेन प्राप्तेन । ईषत् किञ्चित् आलक्ष्याः दृश्याः याः दशनानाम् दन्तानाम् दीधितयः किरणाः ताः एव लता ताम् । लीलया विलासेन अलसम् मन्दम् यथा स्यात् तथा । लासयन्ती नर्तयन्ती । ललितम् रुचिरम् यथा स्यात् तथा अञ्चितः प्रेरितः यः करः सः एव शाखा तया अन्तरितौ दन्तच्छदौ ओष्ठौ तौ एव किसलयौ यस्याः सा । हर्षजलेन आनन्दजनितवाष्पेण क्लेदेन आर्द्रतया जर्जरे विह्वले च निरञ्जने कज्जलशून्ये च ईक्षणे नेत्रे यस्याः सा । रचिताञ्जलिः कृतनमस्कृतिः । नितराम् सुष्ठु । जाने जानामि । ऐन्द्रजालिकस्य मायाविनः । जालम् इन्द्रजालम् । स्नेहेन निर्यन्त्रणम् निर्बाधम् । शनैः मन्दम् । अगादीत्

आधिक्य से प्रसन्न दृष्टि लेकर 'हे जगदीश (महाराज), जय के द्वारा दस दिशायें अत्यधिक व्याप्त करते हुये अपने यश से मनु (या पूर्व-वर्ती राजों) का यश जीतें' कहकर बारम्बार प्रशंसा करते हुये आदेशानुसार कार्य करने लगे । इस अवस्था में पहुँचे हुये मैंने एक बार किसी अन्य कार्य से आई हुई प्रिया की सखी, हृदय-तुल्य (विश्वास-पात्र) शशाङ्कसेना-नामक लड़की से एकान्त में कहा—'क्या कभी मुझे देखा है ?' अब उसने आनन्द की परा काष्ठा पर पहुँचा हृदय लेकर हाथ जोड़कर स्नेह से मर्यादा-रहित होकर धीरे से कहा, 'अगर जादूगर का कोई ऐसा जादू न हो तो खूब जानती हूँ । यह कैसे हुआ ? बताओ ।' उस समय वह कुछ-कुछ दिख रही दाँत की किरणों की लता को विलास से मन्द-मन्द नचा रही थी, उसके ओंठ-रूपी नव-पल्लव सुन्दरता से हिली हाथ-रूपी शाखा से ढके थे और आँखें आनन्द के

---

१. जय जय जगदीश दश दिशः स्थगयन्निजतेजसाऽऽदिराज० । २. स्वतेजसाऽतिशय्य । ३. अस्मात्परं 'हसन्ती' इत्यस्ति एकस्मिन् पुस्तके । ४. लीलाञ्चित० ।

शनैरगादीत्[1]। 'अहं चास्यै कार्त्स्न्येनाख्याय, तदाननसंक्रान्तेन संदेशेन संजनय्य सहचर्या निरतिशयं हृदयाह्लादम् । ततश्चैतया दयितया निरर्गलीकृतातिसत्कृतकलिङ्गनाथन्यायदत्तया संगत्यान्ध्रकलिङ्गराजराज्यशासी तस्यास्यारिणा लिलङ्घयिषितस्याङ्गराजस्य साहाय्यकायालघीयसा साधनेनागत्यात्र ते सखिजनसंगतस्य यादृच्छिकदर्शनानन्दराशिलङ्घितचेता जातः' इति ।

तस्य तत्कौशलं स्मितज्योत्स्नाभिषिक्तदन्तच्छदः सह सुहृद्भिरभिनन्द्य 'चित्रमिद महामुनेर्वृत्तम् । अत्रैव खलु फलितमतिकष्टं तपः । तिष्ठतु तावन्नर्म[2] ।

अवदत् । अहम् (मन्त्रगुप्तः) । अस्यै (शशाङ्कसेनायै) । कार्त्स्न्येन पूर्णतः । आख्याय उक्त्वा । तस्याः (शशाङ्कसेनायाः) आननात् मुखात् संक्रान्तेन गतेन । संजनय्य उत्पाद्य । सहचर्याः प्रियायाः (कनकलेखायाः) । निरतिशयम् अद्वितीयम् । हृदयस्य आह्लादम् उल्लासम् । ततः तदुपरि । तया (कनकलेखया) । दयितया प्रियया । निर्गता अर्गला बन्धनम् यस्य सः निरर्गलः (बन्धनात् मोचितः) । अनिरर्गलः निरर्गलः कृतः इति निरर्गलीकृतः च अतिसत्कृतः अतिसंमानितः च सः कलिङ्गानाम् कलिङ्गदेशस्य नाथः स्वामी (कर्दनः) च तेन न्यायेन विधिना दत्तया अर्पितया । संगत्य मिलित्वा । आन्ध्रकलिङ्गराज्ये शास्ति असौ इति आन्ध्रकलिङ्गराज्यशासी (सन्) । तस्य प्रसिद्धस्य । अस्य (अङ्गराजस्य) । अरिणा शत्रुणा (चण्डवर्मणा) । लिलङ्घयिषितस्य लङ्घयितुम् आक्रमितुम् इष्टस्य । साहाय्यकाय सहायतायै । अलघीयसा महता । साधनेन सैन्येन । ते तव (राजवाहनस्य) । सखिजनाः मित्राणि तैः संगतस्य युक्तस्य । यादृच्छिकम् संयोगात् जातम् यत् दर्शनम् तस्मात् यः आनन्दः तस्य राशिः समूहः तेन लङ्घितम् आक्रान्तम् चेतः चित्तम् यस्य सः ।

तस्य (मन्त्रगुप्तस्य) । तत् उक्तम् । कौशलम् कुशलताम् । स्मितम् मन्दहासः एव ज्योत्स्ना कौमुदी तया अभिषिक्तौ स्नातौ दन्तच्छदौ ओष्ठौ यस्य सः । सुहृद्भिः मित्रैः । चित्रम् विचित्रम् । इदम् उक्तम् । महान् च सः मुनिः ऋषिः च (संन्यासिरूपधारकस्य मन्त्रगुप्तस्य) तस्य । वृत्तम् वृत्तान्तः । अत्र अस्मिन् लोके । खलु निश्चयेन । फलितम् सिद्धम् । अतिकष्टम् अत्यन्त-

आँसुओं से विह्वल और रंग (काजल)-रहित हो गई थीं । मैंने इससे पूर्ण रूप से चर्चा कर तब (उसके) मुख के द्वारा पहुँचे हुये संदेश से प्रिया के हृदय में बेजोड़ आनन्द उत्पन्न कर उसके बाद बन्धन-रहित और अत्यन्त सम्मानित किये गये कलिङ्ग-नरेश के द्वारा अर्पित (मुझसे विवाहित) इस प्रिया (कनकलेखा) से मिलन प्राप्त कर आन्ध्र और कलिङ्ग राज्यों के शासक के रूप में शत्रु के द्वारा जिन पर आक्रमण अभीष्ट था उन प्रसिद्ध सम्मुखस्थ अङ्ग देश के नरेश की सहायता के लिये बड़ी फौज के साथ आया हूँ । यहाँ मित्र-गण से युक्त आपके संयोग से हुये दर्शन के आनन्द से हृदय आक्रान्त हो गया है ।

उसके उस कौशल का मुस्कराहट की चाँदनी से नहाये हुये ओंठ लेकर मित्रों के साथ अभिनन्दन कर 'अद्भुत है महामुनि का यह वृत्तान्त । निश्चय ही यहाँ अत्यन्त क्लेशकारी तप

---

[1]. अवादीत् । [2]. भवन्नर्म ।

हर्षप्रकर्षस्पृशोः प्रज्ञासत्त्वयोर्दृष्टमिह स्वरूपम्’ इत्यभिधाय, पुनः ‘अवतरतु भवान्’ इति बहुश्रुते विश्रुते विकचराजीवसदृशं दृशं चिक्षेप देवो राजवाहनः ।

इति श्रीदण्डिनः कृतौ दशकुमारचरिते मन्त्रगुप्तचरितं नाम सप्तम उच्छ्वासः ।

———

अष्टम उच्छ्वासः

अथ सोऽप्याचचक्षे—‘देव, मयापि परिभ्रमता विन्ध्याटव्यां कोऽपि कुमारः क्षुधा तृषा च क्लिश्यन्नक्लेशार्हः क्वचित्कूपाभ्याशेऽष्टवर्षदेशीयो दृष्टः । स त्रासगद्गदमगदत्—‘महाभाग, क्लिष्टस्य मे क्रियतामार्य, साहाय्यकम् । अस्य

क्लेशकरम् । नर्म परिहासः । हर्षस्य प्रकर्षः अतिशयः तत्स्पृशोः स्पृशतोः प्रज्ञायाः बुद्धेः च सत्त्वस्य बलस्य च । इह अस्मिन् (मन्त्रगुप्ते) । अभिधाय उक्त्वा । अवतरतु आरभताम् । बहु अधिकम् श्रुतम् अधीतम् येन तस्मिन् । विश्रुते (पद्मोद्भवपौत्रे सुश्रुतपुत्रे च) । विकचम् विकसितम् यत् राजीवम् कमलम् तत्सदृशम् तत्तुल्याम् । दृशम् दृष्टिम् । चिक्षेप अक्षिपत् । देवः राजा । कृतौ रचनायाम् ।

अथ अधुना । सः (विश्रुतः) । आचचक्षे अवदत् । मया (विश्रुतेन) । विन्ध्याटव्याम् विन्ध्याचले । कुमारः बालकः । क्षुधा क्षुधया । तृषा तृषया । क्लिश्यन् क्लेशम् प्राप्नुवन् । क्लेशम् अर्हति इति क्लेशार्हः न क्लेशार्हः अक्लेशार्हः । क्वचित् कस्मिश्चित् । कूपः जलाशयः तस्य अभ्याशे समीपे । अष्टवर्षदेशीयः असमाप्ताष्टवर्षः (ईषदसमाप्तौ कल्पब्देश्यदेशीयरः) । सः (बालकः) । त्रासेन भयेन गद्गदम् स्खलितस्वरेण । अगदत् अवदत् । महाभाग महोदय । क्लिष्टस्य क्लेशयुक्तस्य । मे मम । आर्य श्रीमन् । साहाय्यकम् सहायता । अस्य सम्मुखस्थस्य ।

फल दे गया । अच्छा; परिहास रहने दो । आनन्द की परा काष्ठा का स्पर्श करने वाली बुद्धि और जीवट का रूप इसमें दिखा ।’ यह कहकर ‘आप उतरें (शुरू करें)’ यह कहकर अतिविद्याशाली विश्रुत के ऊपर महाराज राजवाहन ने खिले कमल के समान दृष्टि डाली ।

श्री दण्डी की रचना दशकुमारचरित के अन्तर्गत मन्त्रगुप्त-चरित-नामक
सातवाँ उच्छ्वास समाप्त हुआ ।

———

आठवाँ उच्छ्वास

अब उसने भी कहा—‘महाराज, मैं भी घूमने लगा । विन्ध्याचल में भूख-प्यास से कष्ट पाता हुआ क्लेश सहने के अयोग्य लगभग आठ वर्ष का एक लड़का कुयें के पास दिखा । उसने भय से लड़खड़ाते स्वर में कहा—‘महोदय मैं क्लेश-युक्त हूँ । श्रीमन्, मेरी सहायता करें ।

मे प्राणापहारिणीं पिपासां प्रतिकर्तुमुदकमुदञ्चन्निह कूपे कोऽपि निष्कलो ममैकशरणभूतः पतितः । तमलमस्मि नाहमुद्धर्तुम्' इति । अथाहमभ्येत्य व्रतत्या कयापि वृद्धमुत्तार्य, तं च बालं वंशनालीमुखोद्धृताभिरद्भिः फलैश्च [1]पञ्चषैः शरक्षेपोच्छ्रितस्य [2]लकुचवृक्षस्य शिखरात्पाषाणपातितैः प्रत्यानीतप्राणवृत्तिमापाद्य, तरुतलनिषण्णस्त जरन्तमब्रवम्—'तात, क एष बालः ? को वा भवान् ? कथं चेयमापदापन्ना ?' इति । सोऽश्रुगद्गदमगदत्—'श्रूयतां महाभाग, विदर्भो नाम जनपदः तस्मिन्भोजवंशभूषणम्, अंशावतार इव धर्मस्य, अतिसत्त्वः, सत्यवादी, वदान्यः, विनीतः, विनेता प्रजानाम्, रञ्जितभृत्यः, कीर्तिमान्,

मे मम । प्राणापहारिणीम् जीवननाशिनीम् । पिपासा पातुम् इच्छा ताम् । प्रतिकर्तुम् दूरीकर्तुम् । उदकम् जलम् । उदञ्चन् निष्कासयन् । कोऽपि एकः । निष्कलः वृद्धः ("निष्कलः स्थविरः समौ" इति वैजयन्ती) । एकम् अद्वितीयम् शरणम् आश्रयः एव एकशरणभूतः । तम् (वृद्धम्) । अलम् समर्थः । उद्धर्तुम् निष्कासयितुम् । अथ ततः । अहम् (विश्रुतः) । अभ्येत्य समीपम् आगत्य । व्रतत्या लतया ("वल्ली तु व्रततिर्लता" इति अमरः) (रज्जुरूपेण प्रयुक्तया) । उत्तार्य उद्धृत्य । वंशस्य नाली छिद्रम् तस्याः मुखेन अग्रभागेन उद्धृताभिः निष्कासिताभिः अद्भिः जलेन । पञ्चषाणि पञ्च षट् वा प्रमाणम् एषाम् इति पञ्चषाणि तैः । शरस्य बाणस्य क्षेपः क्षिप्तस्य बाणस्य पतनस्थानम् यावत् मानम् तस्मात् अपि उच्छ्रितस्य उन्नतस्य । शिखरात् अग्रभागात् । पाषाणैः शिलाभिः पातितैः । प्रत्यानीता परावर्तिता प्राणानाम् वृत्तिः स्थितिः यस्य तम् । आपाद्य कृत्वा । तरोः वृक्षस्य तले अधः । निषण्णः उपविष्टः । जरन्तम् वृद्धम् । अब्रवम् अवदम् । तात भद्र । आपत् विपत्तिः । आपन्ना आगता । सः (वृद्धः) । अश्रुभिः गद्गदम् स्खलदक्षरम् । अगदत् अवदत् । महाभाग महोदय । जनपदः देशः । अतिसत्त्वः अत्यन्तं सत्त्वम् बलम् यस्य सः (महाबलवान्) । वदान्यः दानवीरः ("स्युर्वदान्यस्थूललक्ष्यदानशौण्डा बहुप्रदे" इति अमरः) । विनीतः नम्रः । विनेता शिक्षाकर्ता । रञ्जिताः अनुरागम् (भक्तिम्)

मेरी प्राण-नाशक प्यास दूर करने के लिये पानी निकालते समय इस कुयें में मेरे एकमात्र आश्रय-स्वरूप एक वृद्ध गिर पड़े हैं । उन्हें निकालने में मैं समर्थ नहीं हूँ ।' तब मैंने पास जाकर किसी लता से (रस्सी का काम लेकर) बूढ़े को निकालकर और बाँस की नाली के सिरे से निकाले गये जल तथा बाण के जाने तक की ऊँचाई से भी ऊँचे बड़हर के पेड़ के ऊपरी भाग से पत्थरों से गिराये गये पाँच-छह फलों से उस बालक की प्राण-स्थिति वापस लाकर पेड़ के तले बैठकर उस वृद्ध से कहा—'श्रीमन्, यह बालक कौन है, आप कौन हैं और यह आफत कैसे आ पड़ी है ?' उसने आँसू से लड़खड़ाते स्वर में कहा—'महोदय, सुनिये । विदर्भ-नामक एक देश है । उसमें पुण्यवर्मा नामक व्यक्ति था । वह भोजवंश का अलङ्कार, धर्म का साक्षात् अंश-अवतार, बहुत जीवट का, सच बोलने वाला, उदार, नम्र, जनता को अनुशासित रखने वाला, नौकरों को (स्वामि-) भक्त बनाने वाला, यश-शाली और

---

[1] चतुःप० । [2] लिकुच० ।

उदग्रः, बुद्धिमूर्तिभ्यामुत्थानशीलः[1], शास्त्रप्रमाणः, शक्यभव्यकल्पारम्भी, संभावयिता बुधान्, प्रभावयिता सेवकान्, उद्भावयिता बन्धून्, न्यग्भावयिता शत्रून्, असंबद्धप्रलापेष्वदत्तकर्णः, कदाचिदप्यवितृष्णो गुणेषु, अतिनदीष्णः कलासु, नेदिष्ठो धर्मार्थसंहितासु, स्वल्पेऽपि सुकृते सुतरां प्रत्युपकर्त्ता, [2]प्रत्यवेक्षिता कोशवाहनयोः, यत्नेन परीक्षिता सर्वाध्यक्षाणाम्, उत्साहयिता कृतकर्मणामनुरूपैर्दानमानैः सद्यः प्रतिकर्ता दैवमानुषीणामापदाम्, षाड्गुण्योपयोगनिपुणः, मनुमार्गेण प्रणेता चातुर्वर्ण्यस्य, पुण्यश्लोकः, पुण्यवर्मा नामासीत्। स पुण्यैः

प्रापिताः भृत्याः सेवकाः येन सः। कीर्तिमान् यशःशाली। उदग्रः उन्नतः। बुद्धिः च मूर्तिः शरीरम् च ताभ्याम्। उत्थानशीलः पौरुषस्वभावः ("उत्यानं पौरुषे तन्त्रे" इति अमरः)। शास्त्रम् प्रमाणम् यस्य सः। शक्यः स्वसाध्यः भव्यः मङ्गलकरः कल्पः विधिः ("कल्पो न्याय्ये विधौ शास्त्रे संवर्ते ब्रह्मवासरे। कल्पद्रुमे विकल्पे च" इति महीपः) तम् आरभते इति एवंशीलः शक्यभव्यकल्पारम्भी। सम्भावयिता सत्कर्त्ता। प्रभावयिता अभ्युदयम् प्रापयिता। उद्भावयिता उन्नायकः। न्यग्भावयिता जेता। असम्बद्धाः असंगताः प्रलापाः निरर्थकवचनानि ("प्रलापोऽनर्थकं वचः" इति अमरः) तेषु न दत्तौ कर्णौ येन सः। न विगता दूरीभूता तृष्णा यस्य सः (सदा सतृष्णः)। अतिनदीष्णः अधिकपटुः। नेदिष्ठः अतिशयसमीपवर्ती (कुशलः)। धर्मः च अर्थः च तयोः संहतासु संग्रहेषु। स्वल्पे अत्यल्पे। सुकृते उपकारे (कृते सति)। प्रत्युपकर्ता कृतोपकारः। प्रत्यवेक्षिता अनुसंधाता। उत्साहयिता उत्साहदाता। कृतम् कर्म यैः तेषाम्। अनुरूपैः कार्योचितैः। दानानि च मानाः आदराः च तैः। सद्यः तत्कालम्। प्रतिकर्ता प्रतीकारकर्ता दैव्यः च मानुष्यः च तासाम्। आपदाम् सङ्कटानाम्। षाड्गुण्यम् षट् गुणाः ("संधिर्ना विग्रहो यानमासन द्वैधमाश्रयः। षड्गुणाः" इति अमरः)। तस्य उपयोगे प्रयोगे निपुणः चतुरः। मनोः मार्गेण वचनानुसारेण। प्रणेता स्थापकः। चातुर्वर्ण्यस्य चतुर्णाम् वर्णानाम्। पुण्यः पावनः

बुद्धि और शरीर में खूब ऊँचा था। उसके स्वभाव में पौरुष था, शास्त्र को प्रमाण मानता था और साध्य तथा मंगल-कारक विधियाँ उसने प्रचलित की थीं। वह विद्वानों का आदर करने वाला, सेवकों को उन्नति देने वाला, भाई-बन्धुओं को ऊँचा उठाने वाला, दुश्मनों को नीचा दिखाने वाला, असंगत और निरर्थक बातों पर कान न देने वाला, कभी भी गुणों की तृष्णा से मुक्त न रहने वाला, कलाओं में अत्यन्त पारंगत, धर्म और अर्थ के संग्रह करने में पटु, बहुत थोड़ा उपकार करने पर भी बहुत अधिक प्रत्युपकार करने वाला, खजाने और सवारियों पर अनुसंधान करने वाला, सब विभागाध्यक्षों की यत्न-पूर्वक परख करने वाला, जो काम पूरा कर लेते हैं, उन्हें दान-मान द्वारा उत्साहित करने वाला, दैवी और मानुषी आपदाओं का उपाय करने वाला, छह गुणों के उपयोग में चतुर, मनुकी राह से चार वर्णों का स्थापक, और पुण्यश्लोक था (जिसका यश पुण्य हो)। वह पावन कर्मों से मनुष्य की उम्र तक जीवित रहकर

---

[1] मूर्तिबुद्धिभ्याम्। [2] प्रत्यवसिता।

कर्मभिः प्राण्य[1] पुरुषायुषम्, पुनरपुण्येन प्रजानामगण्यतामरेषु। तदनन्तरमनन्तवर्मा नाम तदायतिरवनिमध्यतिष्ठत्। स सर्वगुणैः समृद्धोऽपि दैवाद्दण्डनीत्यां नात्यादृतोऽभूत्। तमेकदा रहसि वसुरक्षितो नाम मन्त्रिवृद्धः पितुरस्य बहुमतः प्रगल्भवागभाषत—'तात, सर्वैवात्मसंपदभिजनात्प्रभृत्यन्यूनैवात्रभवति लक्ष्यते। बुद्धिश्च निसर्गपट्वी कलासु नृत्यगीतादिषु चित्रेषु च काव्यविस्तरेषु प्राप्तविस्तारा तवेतरेभ्यः प्रतिविशिष्यते। तथाप्यसावप्रतिपद्यात्मसंस्कारमर्थशास्त्रेषु, अनग्निसंशोधितेव हेमजातिर्नातिभाति बुद्धिः। बुद्धिशून्यो हि भूभृदत्युच्छ्रितोऽपि परैरध्यारुह्यमाणमात्मान न चेतयते। न च शक्तः साध्यं साधनं

श्लोकः कीर्तिः यस्य सः। सः (पुण्यवर्मा)। पुण्यैः सुकृतैः। प्राण्य जीवित्वा। पुरुषायुषम् पूर्णम् आयुः (वर्षशतम्)। पुनः पश्चात्। अपुण्येन दौर्भाग्येण। प्रजानाम् जनानाम्। अगण्यत (गणितः) अमरेषु देवेषु (मृतः)। तस्य अनन्तरम् पश्चात्। तस्य (पुण्यवर्मणः) आयतिः प्रभावः इव आयतिः प्रभावः यस्य सः ("स्यात्प्रभावेऽपि चायतिः" इति अमरः)। अवनिम् पृथ्वीम्। अध्यतिष्ठत् आसीनः अभवत्। सः (अनन्तवर्मा)। समृद्धः पूर्णः। दैवात् भाग्यात्। दण्डनीत्याम् राजनीत्याम्। अत्यन्तः आदरः यस्य सः। तम् (अनन्तवर्माणम्)। एकदा एकस्मिन् काले। रहसि एकान्ते। मन्त्रिषु वृद्धः। बहुमतः सम्मानितः। प्रगल्भा प्रौढा वाक् वाणी यस्य सः। अभाषत अवदत्। तात वत्स। आत्मसंपत् पुरुषगुणाः। अभिजनात् कुलात्। प्रभृति आरभ्य कुलपरम्परया। न न्यूना अल्पा। अत्रभवति आदरणीये। लक्ष्यते दृश्यते। निसर्गात् स्वभावात् पट्वी पटुः। चित्रेषु विचित्रेषु काव्यस्य विस्तरेषु विस्तृतत्वेषु। प्राप्तः विस्तारः प्रसारः यया सा। इतरेभ्यः अन्येभ्यः। प्रतिविशिष्यते विशिष्टा। असौ (बुद्धिः)। अप्रतिपद्य अप्राप्य। न अग्निसंशोधिता। हेमजातिः सुवर्णजातिः। अतिभाति अत्यन्तम् भाति शोभते। भूभृत् राजा। अत्युच्छ्रितः अत्युच्चः। परैः शत्रुभिः। अध्यारुह्यमाणम् अभिभूयमानम्। चेतयते ज्ञातुम् प्रभवति। शक्तः समर्थः। साध्यम् कार्यम्। साधनम् उपायम्। विभज्य विविच्य। वर्तितुम् व्यवहर्तुम्।

फिर जनता के पुण्य समाप्त हो जाने से देवताओं में गिना जाने लगा (मर गया)। उसके तुंरत बाद उसके समान प्रभाव वाला अनन्तवर्मा राजगद्दी पर आसीन हुआ। वह सब गुणों में भरा-पूरा होने पर भी दुर्भाग्य से राजनीति के प्रति बहुत सम्मान-युक्त नहीं था। उतना ध्यान नहीं देता था)। एक बार एकान्त में इसके पिता के माने हुये प्रौढ़-वाणी-युक्त मंत्रियों में वृद्ध वसुरक्षित ने उससे कहा—'वत्स, कुल-परम्परा से ही सभी पुरुष-गुण आदरणीय आपमें प्रचुर मात्रा में देखे जाते हैं और आपकी स्वभाव से ही पटु बुद्धि नृत्य, गान आदि कलाओं तथा काव्यों के अद्भुत प्रसार में विस्तार तक पहुँच कर दूसरों से कहीं श्रेष्ठ है। फिर भी राज-नीति का परिष्कार न प्राप्त कर वह बुद्धि उसी प्रकार पूरे तौर से नहीं चमक रही है जिस प्रकार आग में भली-भाँति शुद्ध न की गई स्वर्ण-जाति। निश्चय ही बुद्धि-रहित राजा

---

[1] प्राप्य।

वा विभज्य वर्तितुम् । अयथावृत्तश्च कर्मसु प्रतिहन्यमानः स्वैः परैश्च परिभूयते । न चावज्ञातस्याज्ञा प्रभवति प्रजानां योगक्षेमाराध[1]नाय । अतिक्रान्तशासनाश्च प्रजा यत्किंचनवादिन्यो यथाकथंचिद्वर्तिन्यः सर्वाः स्थितीः संकिरेयुः । निर्मर्यादश्च लोको लोकादितोऽमुतश्च स्वामिनमात्मानं च भ्रंशयते । आगमदीपदृष्टेन खल्वध्वना सुखेन वर्तते लोकयात्रा । दिव्यं हि चक्षुर्भूतभवद्भविष्यत्सु व्यवहितविप्रकृष्टादिषु च विषयेषु शास्त्रं नामाप्रतिहतवृत्ति । तेन हीनः सतोरप्यायतविशालयोर्लोचनयोरन्ध एव जन्तुरर्थदर्शनेष्वसामर्थ्यात् । अतो विहाय बाह्य-

न यथा यथोचितम् वृत्तम् स्वरूपम् यस्य सः । कर्मसु कार्येषु । प्रतिहन्यमानः अवरुध्यमानः । स्वैः आत्मपक्षैः । परैः शत्रुभिः । परिभूयते तिरस्क्रियते । अवज्ञातस्य तिरस्कृतस्य । प्रभवति समर्था भवति । योगः अप्राप्तेः प्राप्तिः च क्षेमम् प्राप्तस्य रक्षणम् च तयोः आराधनाय साधनाय । अतिक्रान्तम् उल्लङ्घितम् शासनम् आज्ञा याभिः ताः । यत्किञ्चन अनर्गलम् वदन्ति इति यत्किञ्चनवादिन्यः । यथाकथञ्चित् यथेच्छम् वर्तिन्यः आचरन्त्यः स्थितीः मर्यादाः । संकिरेयुः संकीर्णाः कुर्युः । निर्गता मर्यादा यस्य सः । इतः अस्मात् । अमुतः परस्मात् । स्वामिनम् नृपम् । भ्रंशयते पातयति । आगमः शास्त्रम् एव दीपः तेन दृष्टेन । अध्वना मार्गेण । वर्तते सम्पद्यते । लोकयात्रा लोकस्थितिः । दिव्यम् अलौकिकम् । चक्षुः दृष्टिः । भूतम् व्यतीतम् च भवत् वर्तमानम् च भविष्यत् भविष्यम् च तेषु । व्यवहितानि आच्छन्नानि विप्रकृष्टानि अनुपस्थितानि तदादिषु । न प्रतिहता अवरुद्धा वृत्तिः गतिः यस्य तत् । तेन (शास्त्रेण) । हीनः रहितः । सतोः वतमानयोः । आयते सप्रसरे विशाले दीर्घे च तयोः । लोचनयोः नेत्रयोः । जन्तुः साधारणः जनः । अर्थानाम् वस्तूनाम् दर्शनेषु विचारेषु । असामर्थ्यात् समर्थताऽभावात् । विहाय

अत्यन्त उन्नत होकर भी यह नहीं जान पाता कि दुश्मन मेरे ऊपर हावी हो रहे हैं । वह लक्ष्य और उसकी राह का विवेक कर कार्य करने में समर्थ नहीं होता । वह कार्यों के प्रति यथोचित प्रवृत्ति धारण न करके बाधाओं से अवरुद्ध होकर अपने और परायों के द्वारा तिरस्कृत होता है । तिरस्कृत व्यक्ति का आदेश जनता के योग-क्षेम का उपाय करने में समर्थ नहीं होता । आज्ञा का उल्लंघन करने वाली जनता जो मन में आता है बोलती है और जो मन में आता है करती है तथा इस प्रकार सभी मर्यादाओं को अस्त-व्यस्त कर देती है । मर्यादा-रहित समाज इस लोक और पर लोक से स्वामी और स्वयं को गिरा देता है । शास्त्ररूपी दीपक से देखे गये रास्ते से चलकर ही लोक-स्थिति सुख-पूर्वक रह पाती है । शास्त्र निश्चय ही ऐसी अलौकिक दृष्टि है जिसकी पहुँच भूत, वर्तमान, भविष्य, ओट में पड़े हुये, अनुपस्थित आदि विषयों तक बेरोक-टोक होती है । उससे रहित पुरुष फैली हुई तथा बड़ी आँखें होने पर भी अन्धा ही है । विषयों के विचार में असमर्थ होकर पुरुष साधारण जन-मात्र

---

[1] क्षेमसाधनाय; ०क्षेमयोराराधनाय ।

विद्यास्वभिषङ्गमागमय दण्डनीतिं कुलविद्याम् । तदर्थानुष्ठानेन चावर्जितशक्तिसिद्धिरस्खलितशासनः शाधि चिरमुदधिमेखलामुर्वीम्' इति ।

एतदाकर्ण्य 'स्थान एव गुरुभिरनुशिष्टम् । तथा क्रियते' इत्यन्तःपुरमविशत् । तां च वार्तां पार्थिवे प्रमदासंनिधौ प्रसङ्गेनोदीरितामुपनिशम्य समीपोपविष्टश्चित्तानुवृत्तिकुशलः प्रसादवित्तो गीतनृत्यवाद्यादिष्वबाह्यो बाह्यनारीपरायणः पटुरयन्त्रितमुखो बहुभङ्गिविशारदः परमर्मान्वेषणपरः परिहासयिता परिवादरुचिः पैशुन्यपण्डितः सचिवमण्डलादप्युत्कोचहारी सकलदुर्नयोपाध्यायः कामतन्त्र-

---

त्यक्त्वा । बाह्यासु अन्यासु विद्यासु । अभिषङ्गम् सङ्गतिम् । आगमय प्रापय । दण्डनीतिम् राजनीतिम् । कुलविद्याम् कुले प्रतिष्ठिताम् विद्याम् । तस्याः कुलविद्यायाः अर्थस्य विषयस्य अनुष्ठानेन । आवर्जिता प्राप्ता शक्तीनाम् प्रभावोत्साहमन्त्रजानाम् ("शक्तयस्तिस्रः प्रभावोत्साहमन्त्रजाः" इति अमरः) सिद्धिः येन सः । अस्खलितम् अप्रतिहतम् शासनम् आज्ञा यस्य सः । शाधि शिक्षय । उदधिः समुद्रः मेखला यस्याः ताम् । उर्वीम् पृथ्वीम् ।

एतत् इदम् । आकर्ण्य श्रुत्वा । स्थाने युक्तम् । गुरुभिः पूज्यैः । अनुशिष्टम् शिक्षितम् । वार्ताम् चर्चाम् । प्रमदानाम् नारीणाम् संनिधौ समीपे । उदीरिताम् उक्ताम् । उपनिशम्य श्रुत्वा । चित्तस्य अनुवृत्तौ अनुसरणे कुशलः । प्रसादेन (राज-) कृपया वित्तः ख्यातः ("वित्तविज्ञातविश्रुताः" इति अमरः) । अबाह्यः न बाह्यः (प्रविष्टः) । बाह्यनारीषु वेश्यासु परायणः आसक्तः । पटुः चतुरः । अयन्त्रितम् असंयतम् मुखम् यस्य सः । बहुभङ्गिषु वक्रभाषिते विशारदः चतुरः । परस्य मर्मणः गोप्यस्य अन्वेषणे अनुसंधाने परः तत्परः । परिहासयिता परिहासम् सृजता । परिवादे निन्दायाम् रुचिः अभिनिवेशः यस्य सः । पैशुन्ये सूचकत्वे पण्डितः दक्षः । सचिवानाम् मन्त्रिणाम् मण्डलात् समूहात् । उत्कोचः गुप्तद्रव्यादिग्रहणम् तद्हारी तद्ग्रहणे रतः । सकलानाम् सर्वेषाम् दुर्नयानाम् दुर्नीतीनाम् उपाध्यायः अध्यापकः । कामतन्त्रे कामशास्त्रे

रह जाता है । इसलिये अन्य विद्याओं के प्रति आसक्ति छोड़कर उस-(आसक्ति) को अपने वंश की विद्या राजनीति में लायें (लगायें), उसके तत्त्वों के संपादन से आप शक्तियों की सिद्धि प्राप्त कर तथा आदेश निर्बाध बनाकर चिर काल तक समुद्र की करधनी वाली पृथ्वी पर शासन कीजिये ।'

यह सुनकर 'पूजनीय आपने उचित ही उपदेश दिया है । वैसा ही किया जायेगा' यह कहकर वह रनिवास में प्रविष्ट हो गया । स्त्रियों की उपस्थिति में राजा के द्वारा प्रसङ्ग-वश की गई वह चर्चा सुनकर पास बैठे हुए, चित्त का अनुसरण करने में कुशल, कृपा से विख्यात, गीत, नृत्य, वाद्य आदि में प्रवेश रखने वाले, वेश्यासक्त, चतुर, बेलगाम जबान वाले, व्यंग बोलने में बहुत दक्ष, दूसरे के रहस्य खोजने में तत्पर, हँसाने वाले, निन्दा में रुचि लेने वाले, चुगल खोरी के पण्डित, मंत्रि-गण से भी रिश्वत ले लेने वाले, सम्पूर्ण दुर्नीतियों की शिक्षा देने

कर्णधारः कुमारसेवको विहारभद्रो नाम स्मितपूर्वं व्यज्ञापयत्—'देव, दैवानुग्रहेण यदि कश्चिद्भाजन भवति विभूतेः, तमकस्मादुच्चावचैरुपप्रलोभनैः कदर्थयन्तः स्वार्थं साधयन्ति धूर्ताः । तथा हि । केचित्प्रेत्य किल लभ्यैरभ्युदयातिशयैराशामुत्पाद्य, मुण्डयित्वा शिरो बद्ध्वा दर्भरज्जुभिरजिनेनाच्छाद्य, नवनीतेनोपलिप्य, अनशन च शाययित्वा, सर्वस्वं स्वीकरिष्यन्ति । तेभ्योऽपि घोरतराः पाषण्डिनः[1] पुत्रदारशरीरजीवितान्यपि मोचयन्ति । यदि कश्चित्पटुजातीयो नास्यै मृगतृष्णिकायै हस्तगतं त्यक्तुमिच्छेत्, तमन्ये परिवार्याहुः—'एकामपि काकिणीं कार्षापणलक्षमापादयेम, शस्त्रादृते सर्वशत्रून्घातयेम, एक[2]शरीरिणमपि मर्त्यं चक्रवर्तिनं विदधीमहि, यद्यस्मदुद्दिष्टेन मार्गेणाचर्यते' इति । स पुनरि-

---

कर्णधारः नाविकः (नेता) । कुमारसेवकः कुमारावस्थायाः प्रभृति सेवकः । व्यज्ञापयत् निवेदितवान् । देव महाराज । दैवस्य भाग्यस्य अनुग्रहेण कृपया । भाजनम् पात्रम् । विभूतेः ऐश्वर्यस्य । उच्चावचैः विविधैः । कदर्थयन्तः निन्दन्तः । तथा हि उदाह्रियते । प्रेत्य जन्मान्तरे ("प्रेत्यामुत्र भवान्तरे" इति अमरः) । किल निश्चयेन । अभ्युदयस्य उन्नतेः अतिशयैः आधिक्यैः । उत्पाद्य जनयित्वा । दर्भस्य कुशस्य रज्जुभिः । अजिनेन चर्मणा । आच्छाद्य आवृत्य । उपलिप्य लेपं कृत्वा । अनशनम् अभुक्त्वा । शाययित्वा शयनम् कारयित्वा । स्वीकरिष्यन्ति ग्रहीष्यन्ति । घोरतराः अतिशयेन घोराः भयङ्कराः पाषण्डिनः कपटाचाराः । पुत्राः च दाराः च शरीरम् च जीवितम् जीवनम् च । मोचयन्ति त्याजयन्ति । पटुजातीयः पटुप्रकारकः । हस्तगतम् करगतम (वस्तु) । परिवार्य आवृत्य । आहुः वदन्ति । काकिणीम् विंशतिम् वराटकान् ("वराटकानाम् दशकद्वयं यत्सा काकिणी" इति लीलावत्याम्) । कार्षापणः षोडश पणाः ("कार्षापणः कार्षिके स्यात्पणषोडशकेऽपि च" इति विश्वः) । तेषाम् लक्षम् । आपादयेम कुर्याम । ऋते विना । एकशरीरमात्रम् एकाकिनम् । मर्त्यम् मनुष्यम् । चक्रवर्तिनम् सम्राजम् । विदधीमहि कुर्याम ।

वाले, काम-शास्त्र की नौका खेने वाले और बचपन से ही सेवक विहार भद्र ने मुस्कराकर निवेदन किया। 'महाराज, भाग्य की कृपा से यदि कोई ऐश्वर्य-पात्र हो जाता है तो धूर्त लोग सहसा ऊँचे-नीचे प्रलोभन देकर उसे पीड़ित करते हुए मतलब गाँठते हैं । उदाहरणार्थ :— कुछ (धूर्त) लोग 'पर लोक में निश्चय ही अत्यधिक उत्कर्षों की प्राप्ति होगी, यह उम्मीद दिलाकर सिर मुड़वाकर कुश की रस्सियों से बाँधकर, चमड़े से ढँककर, मक्खन पोतकर, बिना खाये लिटाकर सब कुछ ले लेते हैं। उनसे भी ज्यादा भयंकर धूर्त, पुत्र, स्त्री, शरीर और जीवन तक से वंचित कर देते हैं। अगर कोई चतुर किस्म का व्यक्ति इस मरु-मरीचिका के लिये हाथ में आये हुये का त्याग करना नहीं चाहता, तो उसे दूसरे प्रकार के (धूर्त) लोग घेरकर कहते हैं—'अगर हमारे बताये रास्ते से चला जाय तो हम एक काकिणी (२० कौड़ियाँ) को एक लाख कार्षापण (एक सिक्का) बना सकते हैं, हथियार के बिना सारे दुश्मनों को मरवा सकते हैं और अकेले आदमी को भी (बिना सेनादि-सहायता के) सम्राट्

---

[1] पाखण्डिनः । [2] क्वचिद् 'एक' इति न ।

मान्प्रत्याह—'कोऽसौ मार्गः' इति। पुनरिमे ब्रुवते—'ननु चतस्रो राजविद्यास्त्रयी वार्तान्वीक्षिकी दण्डनीतिरिति। तासु तिस्रस्त्रयीवार्तान्वीक्षिक्यो महत्यो मन्दफलाश्च, तास्तावदासताम्। अधीष्व तावद्दण्डनीतिम्। इयमिदानीमाचार्यविष्णुगुप्तेन मौर्यार्थे षड्भिः श्लोकसहस्रैः संक्षिप्ता। सैवेयमधीत्य सम्यगनुष्ठीयमाना यथोक्तकर्मक्षमा' इति। स 'तथा' इत्यधीते। शृणोति च। तत्रैव जरां गच्छति। तत्तु किल शास्त्रं शास्त्रान्तरा[1]नुबन्धि। सर्वमेव वाङ्मयमविदित्वा न तत्त्वतोऽ-

अस्माभिः उद्दिष्टेन कथितेन। आचर्यते अनुष्ठीयते। सः (उपदिष्टः)। इमान् (पाषण्डनः)। आह वदति। इमे (पाषण्डिनः)। ब्रुवते वदन्ति। ननु भोः (प्रश्नावधारणानुज्ञानुनयामन्त्रणे ननु)। राज्ञाम् विद्याः। त्रयी वेदत्रयम् ("धर्माधर्मौ त्रयीस्थितौ" इति कामन्दके)। वार्ता अर्थशास्त्रम्। "अर्थानर्थौ तु वार्तायाम्" इति कामन्दके)। आन्वीक्षिकी आत्मविद्या ("आन्वीक्षिकीमात्मविज्ञानम्" इति कामन्दके) दण्डनीतिः राजनीतिः ("दण्डनीतौ नयानयौ" इति कामन्दके)। महत्यः विस्तृताः। मन्दम् फलम् यासाम् ताः। तावत् प्रथमम्। आसताम् तिष्ठन्तु। अधीष्व पठ। दण्डनीतिम् राजनीतिम्। इयम् (दण्डनीतिः)। इदानीम् अधुना। आचार्येण विष्णुगुप्तेन चाणक्येन। मौर्यस्य चन्द्रगुप्तस्य अर्थे कृते। अधीत्य पठित्वा। सम्यक् सुष्ठु। अनुष्ठीयमाना आचर्यमाणा। यथोक्तम् पूर्वम् यथा उक्तम् तत् कर्म तस्मिन् क्षमा समर्था। तथा आम्। अधीते पठति। तत्र तस्मिन्। जराम् वृद्धताम्। किल निश्चयेन। अन्यत् शास्त्रम्

बना सकते हैं। वह इन धूर्तों से फिर कहता है—'वह राह कौन-सी है?' अब ये कहते हैं—'भाई, राजा की विद्यायें चार हैं:—त्रयी (ऋग्वेद, यजुर्वेद, सामवेद), वार्ता (खेती और वाणिज्य), आन्वीक्षिकी (अध्यात्म-विद्या) और दण्डनीति (राजनीति)। उनमें से तीन त्रयी, वार्ता और आन्वीक्षिकी विस्तृत हैं और इनका फल हलका है। पहले उन्हें छोड़ दिया जाय। पहले दण्डनीति (राजनीति) का अध्ययन करो। यह (दण्डनीति) इस युग में आचार्य विष्णुगुप्त[2] ने मौर्य (चन्द्रगुप्त मौर्य[3]) के लिये छह हजार श्लोकों में संक्षिप्त की है। वही यह है। यह भली-भाँति अध्ययन कर व्यवहार में लाई जाने पर जैसा कहा गया है, वैसा काम करने में समर्थ है। वह 'ठीक है' यह कहकर अध्ययन करता और सुनता है। उसी में बूढ़ा हो जाता है। निश्चय ही वह शास्त्र दूसरे शास्त्र के परिशिष्ट से युक्त है। बिना सारा साहित्य जाने (पढ़े) वह वस्तुतः प्राप्त नहीं होता। उस विषय की प्राप्ति बहुत या कम

---

१. सर्वशास्त्रानुबन्धि।

२. ईसा पूर्व चौथी शताब्दी के राजनीति के आचार्य जिनकी मदद से चन्द्रगुप्त ने नन्द राज्य छीना। इनके अद्भुत बुद्धि-बल का स्मारक "मुद्राराक्षस" नाटक और अलौकिक पाण्डित्य का फल "अर्थ-शास्त्र" है। "चाणक्य-नीति" नामक ग्रन्थ के कर्ता भी यही माने जाते हैं। चाणक्य और कौटिल्य नामों से भी प्रसिद्ध हैं।

३. ईसा पूर्व चौथी शताब्दी के भारत-सम्राट्। इन्होंने महापद्मनन्द को मंत्री चाणक्य की सहायता से जीता था।

धिगम्यते। भवतु कालेन बहुनाल्पेन वा तदर्थाधिगतिः। अधिगतशास्त्रेण चादावेव पुत्रदारमपि न विश्वास्यम्। आत्मकुक्षेरपि कृते तण्डुलैरियद्भिरियानोदनः सपद्यते। इयत ओदनस्य पाकायैतावदिन्धनं पर्याप्तमिति मानोन्मानपूर्वक देयम्।

उत्थितेन च राज्ञा क्षालिताक्षालिते मुखे मुष्टिमर्धमुष्टिं वाभ्यन्तरीकृत्य कृत्स्नमायव्ययजातमह्नः प्रथमेऽष्टमे भागे श्रोतव्यम्।. शृण्वत एवास्य द्विगुणमपहरन्ति तेऽध्यक्षधूर्ताः। चत्वारिंशतं चाणक्योपदिष्टानाहरणोपायान्सहस्रधात्मबुद्ध्यैव ते विकल्पयितारः। द्वितीयेऽन्योन्यं विवदमानानां जनानामाक्रोशाद्दह्यमानकर्णः कष्टं जीवति। तत्रापि प्राड्विवाकादयः स्वेच्छया जयपरा-

---

शास्त्रान्तरम् तत् अनुबध्नाति (तत्सम्बद्धम्)। इति अदः। वाङ्मयम् साहित्यम्। अविदित्वा अज्ञात्वा। तत्त्वतः यथार्थतः। अधिगम्यते बुध्यते। भवतु अस्तु। तस्य अर्थस्य विषयस्य अधिगतिः प्राप्तिः। अधिगतम् शास्त्रम् येन तेन। आदौ आरम्भे। पुत्राः दाराश्चैषां समाहारः पुत्रदारं तत्। विश्वास्यम् विश्वसनीयम्। आत्मनः स्वस्य कुक्षेः उदरस्य। कृते निमित्तम्। इयद्भिः मितैः। इयान् मितः। ओदनः भक्तम्। संपद्यते सम्पन्नः भवति। इयतः एतत्परिमाणस्य। ओदनस्य भक्तस्य। इन्धनम् काष्ठम्। मानः प्रस्थादिमितिः ("मानः प्रस्थादिभिः कृतः" इति वैजयन्ती) च उन्मानः तुलया मितिः ("तुलावच्छेद उन्मानः" इति वैजयन्ती) च तत्पूर्वकम्।

उत्थितेन जाग्रता। क्षालिताक्षालिते कियत् क्षालितम् कियत् अक्षालितम् तस्मिन्। अभ्यन्तरीकृत्य प्रवेश्य। कृत्स्नम् सर्वम्। आयव्ययजातम् आयव्ययसमूहम्। अह्नः दिवसस्य। शृण्वतः (अनादरे षष्ठी) (शृण्वन्तम् नृपम् उपेक्ष्य)। द्विगुणम् आयस्य द्विगुणम्। अपहरन्ति चोरयन्ति। अध्यक्षधूर्ताः धूर्ताः अध्यक्षाः। आहरणस्य (जनात्) ग्रहणस्य (करादिरूपेण) उपायान्। सहस्रधा सहस्रप्रकारकान्। विकल्पयितारः विकारयितारः। द्वितीये (अष्टमे भागे)। अन्योन्यम् परस्परम्। विवदमानानाम् कलहायमानानाम् आक्रोशात्। दह्यमानौ अतिपीडितौ कर्णौ यस्य सः। कष्टम् क्लेशेन। प्राड्विवाकादयः धर्माधिकारिणः अन्ये च। विदधानाः कुर्वन्तः।

समय के अन्दर हो। (यह बात छोड़ दें तो भी) जो शास्त्र पढ़ लेता है उसे आरंभ में ही पुत्रों और स्त्री पर विश्वास नही करना है।' अपने पेट के लिये भी इतने चावलों से इतना भात तैयार होता है। इतने भात को पकाने के लिये इतना ईंधन काफी है, यह कहकर नाप-तौल कर देना है।

राजा को उठकर कुछ धुले, कुछ बे-धुले मुख में मुट्ठी आध मुट्ठी अन्न डालकर आय-व्यय का सारा विस्तार दिन के पहले आठवें भाग में सुनना होता है। सुनते समय ही इसकी उपेक्षा कर इस (आय) का दूना वे धूर्त अध्यक्ष चुरा लेते हैं। वे चाणक्य के बताये गये (कर-) ग्रहण के चालीस प्रकार के उपायों को अपनी बुद्धि से ही हजार प्रकार के बना लेते हैं। दूसरे (आठवें भाग) में परस्पर झगड़ती हुई जनता के कोप से दग्ध कान लेकर क्लेश से जीता है। उसमें भी न्यायाधीश आदि मनमानी हार-जीत (का फैसला) करते हुये

जयौ विदधानाः[1] पापेनाकीर्त्या च भर्तारमात्मनं चार्थैर्योजयन्ति । तृतीये स्नातुं भोक्तुं च लभते । भुक्तस्य यावदन्धःपरिणामस्तावदस्य विषभयं न शाम्यत्येव । चतुर्थे हिरण्यप्रतिग्रहाय हस्तं प्रसारयन्नेवोत्तिष्ठति । पञ्चमे मन्त्रचिन्तया महान्तमायासमनुभवति । तत्रापि मन्त्रिणो मध्य[2]स्था इवान्योन्य मिथः संभूय, दोषगुणौ दूतचारवाक्यानि शक्याशक्यतां देशकालकार्यावस्थाश्च स्वेच्छया विपरिवर्तयन्तः, स्वपरमित्रमण्डलान्युपजीवन्ति । बाह्याभ्यन्तरांश्च कोपान्गूढमुत्पाद्य प्रकाशं प्रशमयन्त इव स्वामिनमवशमवगृह्णन्ति । षष्ठे स्वैरविहारो

अकीर्त्या अयशसा । भर्तारम् नृपम् । अर्थैः धनैः । तृतीये (अष्टमे भागे) । भोक्तुम् खादितुम् । भुक्तस्य कृतभोजनस्य । अन्धसः ओदनस्य परिणामः पाकः । विषात् भयम् ("याने शय्यासने पाने भोज्ये वस्त्रे विभूषणे । सर्वदैवाप्रमत्तः स्याद्वर्जयेद् विषदूषितम् ॥" कामन्दकीयनीतिसार ६।९) । चतुर्थे (अष्टमे भागे) । हिरण्यस्य स्वर्णस्य प्रतिग्रहाय ग्रहणाय । पञ्चमे (अष्टमे भागे) । मन्त्रस्य मन्त्रणायाः चिन्तया । आयासम् खेदम् । मध्यस्थाः पक्षपातरहिताः । इव (अलीके) । अन्योन्यम् परस्परम् (प्रति) । मिथः गुप्तरूपेण । संभूय मिलित्वा । दूताः च चाराः गूढचराः च तेषाम् वाक्यानि । शक्यम् सम्भवम् च अशक्यम् असंभवम् च तत्ताम् । देशः च कालः च कार्यम् च अवस्था च । विपरिवर्तयन्तः विपर्यासयन्तः । स्वस्य स्वपक्षस्य च परस्य शत्रुपक्षस्य च मित्राणि तेषाम् मण्डलानि समूहान् । उपजीवन्ति आश्रयन्ते । बाह्यान् (जनानाम्) च आभ्यन्तरान् (अमात्यादीनाम्) च । कोपान् क्रोधान् । गूढम् गुप्तरूपेण । उत्पाद्य जनयित्वा । प्रकाशम् पुरतः । प्रशमयन्तः शान्तिम् नयन्तः । इव (अलीके) । स्वामिनम् राजानम् । अवशम् पराधीनम् । अवगृह्णन्ति बध्नन्ति । षष्ठे (अष्टमे भागे) । स्वैरम् स्वच्छन्दम् विहारः

राजा को पाप और अपयश से और अपने को सम्पदाओं से जोड़ देते हैं । तीसरे (आठवें भाग) में नहाने-खाने की नौबत आती है । खा लेने पर जब तक भात नहीं पचता, तब तक विष का डर शान्त होने का नाम ही नहीं लेता । चौथे (आठवें भाग) में स्वर्ण के लिये हाथ फैलाये-फैलाये ही खड़ा रहता है । (दिन के) पाँचवें (भाग) में मन्त्रणा की चिन्ता में महान् कष्ट भोगता है । उसमें भी मन्त्री यह दिखाते हुये कि हम किसी पक्ष में रुचि नहीं ले रहे हैं, परस्पर गुप्त रूप से मिलकर दोष, गुण, दूतों और गुप्तचरों की वातों, संभवता और असंभवता, देश (स्थान), काल, कार्य और अवस्थाओं में मनमाने ढंग से उलट फेर करके अपनी और शत्रु की मित्र-मण्डली पर जीते हैं (दानो तरफ से लाभ उठाते हैं)। बाहरी (जनता का) और भीतरी (मंत्रियों का) असंतोष गुप्त रूप से पैदा कर सामने पूर्ण शान्त करने का दिखावा कर स्वामी को विवश कर फँसाये रहते हैं। (दिन के) छठे (भाग)

---

१. विवादधनाः । २. मध्यस्थायिनः ।

मन्त्रो वा सेव्यः । [1]सोऽस्यैतावान्स्वैरविहारकालो यस्य तिस्रस्त्रिपादोत्तरा नाडिकाः सप्तमे चतुरङ्गबलप्रत्यवेक्षणप्रयासः । अष्टमेऽस्य सेनापतिसखस्य विक्रमचिन्ताक्लेशः । पुनरुपास्यैव सध्यां प्रथमे रात्रिभागे गूढपुरुषा द्रष्टव्याः । तन्मुखेन चातिनृशंसाः शस्त्राग्निरस[2]प्रणिधयोऽनुष्ठेयाः । द्वितीये भोजनानन्तरं श्रोत्रिय इव स्वाध्यायमारभेत । तृतीये तूर्यघोषेण संविष्टश्चतुर्थपञ्चमौ शयीत किल । कथमिवास्याजस्रचिन्तायासविह्वलमनसो वराकस्य निद्रासुखमुपनमेत् । पुनः षष्ठे शास्त्रचिन्ताकार्यचिन्तारम्भः[3]। सप्तमे तु मन्त्रग्रहो दूताभिप्रेषणानि च।

विहरणम् । मन्त्रः मन्त्रणा । त्रिपादोत्तराः त्रिपादाधिकाः । नाडिका घटिकाः । सप्तमे (अष्टमे भागे) । चत्वारि अङ्गानि हस्त्यश्वरथपदातिरूपाणि यस्य तत् बलम् सैन्यम् चतुरङ्गबलम् तस्य प्रत्यवेक्षणस्य निरीक्षणस्य प्रयासः खेदः । सेनापतिसखस्य सेनापतिः सखा द्वितीयः (सह) यस्य तस्य । विक्रमे पराक्रमे चिन्ता सा एव क्लेशः । गूढपुरुषाः गूढचराः । तेषाम् मुखेन द्वारा । शस्त्रप्रणिधिः शस्त्रेण हन्ता अग्निप्रणिधिः अग्निदायकः रसप्रणिधिः विषेण हन्ता ("शृङ्गारादौ विषे वीर्ये गुणे रागे द्रवे रसः" इति अमरः) । अनुष्ठेयाः कार्याः । द्वितीये (रात्रि-भागे) : भोजनस्य अनन्तरम् पश्चात् एव । श्रोत्रियः वेदपाठी । स्वाध्यायम् वेदपाठम् । आरभेत कुर्यात् । तृतीये (रात्रि-भागे) । तूर्यस्य वाद्यविशेषस्य घोषेण रवेण । संविष्टः सुप्तः ("संवेशः शयने स्थाने" इति अजयः) । चतुर्थपञ्चमौ (भागौ रात्रौ) (कालाध्वनोरत्यन्तसंयोगे) शयीत शयनम् कुर्यात् । किल (अलीके) । अजस्रम् निरन्तरम् ("नित्यानवरताजस्रम्" इति अमरः) चिन्ता च आयासः खेदः च ताभ्याम् विह्वलम् व्याकुलम् मनः यस्य तस्य । वराकस्य दयापात्रस्य । उपनमेत् आगच्छेत् । षष्ठे (रात्रि भागे) । शास्त्रचिन्ता च कार्यचिन्ता च तयोः आरम्भः । सप्तमे (रात्रि-भागे) । मन्त्रस्य मन्त्रणायाः ग्रहः ग्रहणम् । नाम निश्चयेन । प्रियाणि च तानि

में इच्छा-पूर्वक विहार या मंत्रणा में लगना होता है । वह इच्छा-पूर्वक विहार का समय इतना होता है जिसमें तीन और तीन चौथाई घड़ियाँ (घड़ी = २४ मिनट) (कुल ९० मिनट) होती हैं । (दिन के) सातवें (भाग) में चतुरंगिणी सेना के निरीक्षण का कष्ट होता है । (दिन के) आठवें (भाग) में सेनापति के साथ रहकर पराक्रम की चिन्ता (मूल्यांकन) का कष्ट होता है । फिर संध्या-उपासन करते ही रात के पहले भाग में जासूसों से मिलना पड़ता है । उनके द्वारा अतिक्रूर अस्त्र से हत्या करने वालों, आग लगाने वालों और जहर देकर मारने वालों को नियुक्त करना पड़ता है । •(रात के) दूसरे (भाग) में भोजन करने के तुरन्त बाद वेद-पाठी की भाँति अनुशीलन करना पड़ता है । (रात के) तीसरे (भाग) में तुरही की आवाज के साथ सोकर (रात के) चौथे और पाँचवें (भागों) तक नाम-मात्र के लिये लेटा रहना पड़ता है । भला कैसे लगातार चिन्ता के खेद से व्याकुल मन वाले बेचारे के पास निद्रा का आनन्द आयेगा । फिर (रात के) छठे (भाग) में शास्त्र-चिन्तन और कर्तव्य-चिन्तन का श्री-गणेश करना होता है । (रात के) सातवें (भाग) में मन्त्रणा लेनी

---

१. स दह्यतां स्वैर० । २. रसेति नास्ति क्वचित् । ३. चिन्तायासैर्विह्वलमनसो वा कस्य ।

दूताश्च नामोभयत्र प्रियाख्यानलब्धानर्थान्वीतशुल्क[1]बाधवर्त्मनि वणिज्यया वर्धयन्तः, कार्यमविद्यमानमपि लेशे[2]नोत्पाद्यानवरतं भ्रमन्ति। अष्टमे पुरोहितादयोऽभ्येत्यैनमाहुः—'अद्य दृष्टो दुःस्वप्नः। दुःस्था ग्रहाः। शकुनानि चाशुभानि। शान्तयः क्रियन्ताम्। सर्वमस्तु सौवर्णमेव होमसाधनम्। एवं सति कर्म गुणवद्भवति। ब्रह्मकल्पा इमे ब्राह्मणाः। कृतमेभिः स्वस्त्ययनं कल्याणतरं भवति। ते चामी कष्टदारिद्र्या बह्वपत्या यज्वानो वीर्यवन्तश्चाद्याप्यप्राप्तप्रतिग्रहाः। दत्तं चैभ्यः स्वर्गमायुष्यमरिष्टनाशनं च भवति' इति बहु बहु दापयित्वा तन्मुखेन स्वयमुपांशु भक्षयन्ति। तदेवमहर्निशम[3]विहितसुखलेशमा-

आख्यानानि वचनानि च तैः लब्धाम् प्राप्ताम्। अर्थान् सम्पदः। वीता अपगता शुल्कस्य करस्य बाधा यस्य तस्मिन् वर्त्मनि मार्गे। वणिज्यया वणिक्कर्मणा। लेशेन सूक्ष्मेण उपायेन। उत्पाद्य जनयित्वा। अनवरतम् सततम्। भ्रमन्ति विहरन्ति। अष्टमे (रात्रि-भागे)। अभ्येत्य समीपे आगत्य। एनम् (नृपम्)। आहुः वदन्ति। दुःस्थाः दोषयुक्ते स्थाने स्थिताः (अनिष्टकारकाः)। सौवर्णम् स्वर्णमयम्। होमसाधनम् हवनसामग्री (पात्रादि दानवस्तु)। गुणवत् सार्थकम्। ब्रह्मकल्पाः ब्रह्मणः ईषत् न्यूनाः (तुल्याः)। स्वस्त्ययनम् समृद्ध्युपायः। कल्याणतरम् अतिशयेन कल्याणम्। ते पूर्वोक्ताः। अमी वर्ण्यमानाः। कष्टम् क्लेशकरम् दारिद्र्यम् येषाम् ते। बहूनि अपत्यानि सन्ततिः येषाम् ते। यज्वानः यज्ञानुष्ठानपरायणाः। वीर्यवन्तः तेजस्विनः। न प्राप्तः विग्रहः दानम् यैः ते। एभ्यः (ब्राह्मणेभ्यः)। स्वर्ग्यम् स्वर्गप्रदम्। आयुष्यम् आयुर्वृद्धिकरम्। अरिष्टनाशनम् विपत्तिनाशकम्। दापयित्वा दानम् कारयित्वा। तेषाम् मुखेन द्वारा। उपांशु गूढरूपेण। भक्षयन्ति (दानद्रव्यम्)। अहर्निशम् रात्रिदिवम्। न विहितः कृतः सुखस्य लेशः अंशः यत्र (अहर्निशम्)। आयासः खेदः बहुलः प्रचुरः यत्र तत् (अहर्निशम्)।

और दूतों का (इधर-उधर) भेजना होता है। निश्चय ही दूत दोनो तरफ प्रिय लगने वाली बातें कहकर पाया धन शुल्क-बाधा-रहित मार्ग पर व्यापार के द्वारा बढ़ाते हुये न रहने वाला कार्य भी सूक्ष्म उपाय से पैदाकर लगातार घूमते हैं। (रात के) आठवें (भाग) में पुरोहित आदि पास आकर इनसे कहते हैं—'आज बुरा सपना दिखा है। ग्रहों की स्थिति बुरी है (बुरे घरों में हैं)। शकुन अशुभ हैं। शान्ति-उपाय कराया जाय। हवन (दान)-सामग्री सबकी सब सोने की हो। ऐसा होने पर कार्य सार्थक होता है। ये ब्राह्मण ब्रह्मा से जरा ही कम हैं। इनके द्वारा किया हुआ समृद्धि का उपाय अत्यधिक कल्याण-कारक होता है। ये आज तक दान नहीं पा सके हैं। बेचारों की गरीबी क्लेशकर है। इनकी संतानें बहुत हैं। ये यज्ञ करने वाले हैं। तेजस्वी हैं। इन्हें दिया हुआ दान स्वर्ग-दायक, आयु-वृद्धि-कारक और विपत्ति-नाशक होता है।' इस प्रकार बहुत बहुत दिलाकर उनके द्वारा गुप्त रूप से खुद उड़ाते हैं। तो इस प्रकार नीतिज्ञ के जो रात-दिन बीतते हैं, उनमें सुख के कण का भी

---

[1] वीतशुल्कं निराबाधम्। [2] क्लेशेन। [3] अविदित।

यासबहुलमविरलकदर्थनं च नयतो नयज्ञस्यास्तां चक्रवर्तिता स्वमण्डलमात्रमपि दुरारक्ष्यं[1] भवेत् । शास्त्रज्ञसमाज्ञातो हि यद्ददाति यन्मानयति, यत्प्रियं ब्रवीति, तत्सर्वमतिसंधातुमित्यविश्वासः । अविश्वास्यता हि जन्मभूमिरलक्ष्म्याः । यावता च नयेन विनायाति[2] लोकयात्रा स लोकत[3] एव सिद्धः नात्र शास्त्रेणार्थ । स्तनंधयोऽपि[4] हि तैस्तैरुपायैः स्तनपानं जनन्या लिप्सते तदपास्यातियन्त्रणामनुभूयन्तां यथेष्टमिन्द्रियसुखानि । येऽप्युपदिशन्ति 'एवमिन्द्रियाणि जेतव्यानि एवमरिषड्वर्गस्त्याज्यः, सामादिरुपायवर्गः स्वेषु परेषु चाजस्र प्रयोज्यः, संधिविग्रहचिन्तयैव नेयः कालः, स्वल्पोऽपि सुखस्यावकाशो न देयः' इति,

अविरला अविच्छिन्ना कदर्थना पीडा यत्र तत् (अहर्निशम्)। नयज्ञस्य नीतिज्ञस्य (नृपस्य)। आस्ताम् दूरीभवतु । चक्रवर्तिता राजेश्वरत्वम्। स्वस्य मण्डलम् राज्यसीमा । दुरारक्ष्यम्। दुःखेन रक्ष्यम् रक्षणीयम् । शास्त्रज्ञैन समाज्ञातः आदिष्टः । मानयति सम्मानयति । ब्रवीति वदति। अतिसंधातुम् वञ्चयितुम् । अविश्वासः (जनानाम्)। अविश्वास्यता नृपस्य अविश्वसनीयता (जनदृष्टौ)। अलक्ष्म्य सम्पदाभावस्य । यावता यत्परिमाणेन । नयेन नीत्या । याति गच्छति । लोकयात्रा लोकस्थितिः । लोकतः व्यवहारतः । सिद्धः सफलः । अत्र अस्मिन् विषये । अर्थः प्रयोजनम् । स्तनन्धयः शिशुः । तैः तैः विभिन्नैः । जनन्याः मातुः (सकाशात्)। लिप्सते लब्धुम् इच्छति । अपास्य त्यक्त्वा । अतियन्त्रणाम् महायातनाम् । यथेष्टम् इच्छानुसारम् । इन्द्रियसुखानि विषयाः । अरिषड्वर्गः कामक्रोधलोभमदमोहमात्सर्याणि । साम प्रियसंभाषणम् आदौ आरम्भे यस्य सः । आदिपदेन दानम् च भेदः विग्रहः च दण्डः च ("सामदाने भेददण्डावित्युपायचतुष्टयम्")। अजस्रम् सततम् । संधिः च विग्रहः युद्धम् च तयोः चिन्तया । नेयः यापनीयः । मन्त्रिषु बकैः बकवृत्तिभिः प्रतारकैः मन्त्रिभिः ("अधोदृष्टिर्नैकृतिकः स्वार्थसाधनतत्परः । शठो

प्रबन्ध नहीं है, वह बहुत कष्ट-युक्त है तथा उसमें लगातार यातनायें हैं। उसका चक्रवर्ती-पद छोड़ें; केवल अपने राज्य की रक्षा भी कठिन हो सकती है। शास्त्रज्ञों के उपदेश से जो दान करता है, जो मानता हैं, जो प्रिय वचन बोलता है, वह सव ठगने के लिये है यह कहकर लोग अविश्वास करते हैं। अविश्वसनीय होना निश्चय ही सम्पत्ति अभाव की जन्मभूमि है। जहाँ तक नीति के बिना लोक स्थिति होती है, वह व्यवहार द्वारा ही सिद्ध है। इस विषय में शास्त्र से कोई मतलब नहीं है। निश्चय ही दुधमुँहा (बच्चा) तक विभिन्न उपायों से माँ से स्तन-पान प्राप्त करना चाहता है। इसलिये महान् यातना से बचकर इच्छानुसार इन्द्रिय-सुख भोगे जायँ। 'इस प्रकार इन्द्रियाँ जीतनी चाहिये, इस प्रकार छह शत्रुओं का गुट छोड़ना चाहिये, साम-आदि उपाय-समूह अपनों और शत्रुओं पर लगातार इस्तेमाल करना चाहिये, संधि और युद्ध की चिन्ता में ही समय विताना चाहिये, सुख के लिये अत्यन्त अल्प

---

१. दुरारक्षम्। २. न याति लोक०; समयेन विना लोक०। ३. लोके। ४. ननु बालिशोऽपि।

तैरप्येभिर्मन्त्रिबकैर्युष्मत्तश्चौर्यार्जितं धनं दासीगृहेष्वेव भुज्यते । के चैते वराकाः । येऽपि मन्त्र[1]कर्कशाः शास्त्रतन्त्रकाराः शुक्राङ्गिरसविशालाक्ष[2]बाहुदन्तिपुत्रपराशरप्रभृतयस्तैः किमरिषड्वर्गो जितः, कृतं वा तैः शास्त्रानुष्ठानम् । तैरपि हि प्रारब्धेषु दृष्टे सिद्ध्यसिद्धी । पठन्तश्चापठद्भिरतिसंधीयमाना बहवः । नन्विदमुपपन्नं देवस्य, यदुत सर्वलोकस्य वन्द्या जातिरयातयामं वयो दर्शनीयं वपुरपरिमाणा विभूतिः । तत्सर्वं सर्वाविश्वासहेतुना सुखोपभोगप्रतिबन्धिना

मिथ्याविनीतश्च बकवृत्तिचरो द्विजः ।" इति मनुः) । युष्मत्तः युष्मत्सकाशात् । चौर्येण स्तेयेन अर्जितम् । दास्याः वेश्यायाः । वराकाः दयापात्राणि । मन्त्रकर्कशाः नीतिकठोराः । शास्त्रतन्त्रकाराः शास्त्रोक्तकर्मलग्नाः । शुक्रः[3] च आङ्गिरसः[4] च विशालाक्षः[5] च बाहुदन्तिपुत्रः[6] च पराशरः[7] च तत्प्रभृतयः तदादयः । अरिषड्वर्गः कामक्रोधलोभमदमोहमत्सराः । सिद्धिः सफलता च असिद्धिः विफलता च । पठन्तः शास्त्राध्ययनरताः । अतिसंधीयमानाः प्रतार्यमाणाः । ननु निश्चयेन । उपपन्नम् सिद्धम् । देवस्य भवतः । यदुत यद्वा (अथवा) । वन्द्या आदरणीया । जातिः वर्गः । न यातः यामः उपभोगावधिः यस्य तत् । वपुः शरीरम् । न परिमाणम् मितिः यस्याः सा । विभूतिः सम्पत्तिः । सर्वेषाम् अविश्वासस्य हेतुना जनकेन । सुखस्य उपभोगः तस्य प्रतिबन्धिना

समय भी नहीं देना चाहिये ।' यह सब जो उपदेश देते हैं, ये बगुलों के समान (कपटी) मंत्री आपसे चोरी कर जो धन कमाते हैं, वह दासियों (वेश्याओं या रखेलों) के घरों में ही भोगते हैं । ये बेचारे कौन हैं ? जो मंत्रों के कारण कठोर, शास्त्रोक्त कर्म करने वाले शुक्र, आंगिरस, विशालाक्ष, बाहुदन्ति पुत्र, पराशर आदि, हैं, क्या उन्होंने छह दुश्मनों के गुट पर विजय पा ली है और क्या उन्होंने शास्त्रों के बताये कार्य कर लिये हैं ? निश्चय ही उनके द्वारा भी किये गये कार्यों में सिद्धि और असिद्धि देखी गई है । बहुतेरे अध्ययन शील लोग अपढ़ लोगों के द्वारा ठगे गये हैं । यह बात निश्चित रूप से आपके सामने या, यों कहें, समस्त संसार के सामने सिद्ध है कि आदरणीय वस्तुओं का वर्ग है ताजी उम्र (जवानी), देखने-योग्य शरीर और असीम संपत्ति । वह सब, सब लोगों के अविश्वास के जनक, सुख-

---

१. मतिक० । २. विशालच्यवनपुत्रः ।

३. असुरों के गुरु और "शुक्रनीति" ग्रन्थ के रचयिता आचार्य ।

४. आङ्गिरसस्मृति और ज्योतिष शास्त्र के निर्माता महर्षि ।

५. शिव जिनका नाम शास्त्र-कार के रूप में आता है ।

६. जयदत्त नामक तंत्र-शास्त्र के लेखक का नाम ।

७. पराशर-स्मृति के लेखक । यह स्मृति कलियुग के लिये परम प्रामाणिक मानी जाती है ।

बहुमार्गविकल्पनात्सर्वकार्येष्वमुक्तसंशयेन तन्त्रावापेनैव मा कृथा वृथा । सन्ति हि ते दन्तिनां दश सहस्राणि, हयानां लक्षत्रयमनन्तं च पादातम् । अपि च पूर्णान्येव हेमरत्नैः कोशगृहाणि । सर्वश्चैष जीवलोकः समग्रमपि युगसहस्र भुञ्जानो न ते कोष्ठागाराणि रेचयिष्यति । किमिदमपर्याप्तं यदन्यार्जितायायासः क्रियते । जीवितं हि नाम जन्मवतां चतुःपञ्चाण्यहानि । तत्रापि भोगयोग्यमल्पाल्पं वयःखण्डम् । अपण्डिताः पुनरर्जयन्त एव ध्वंसन्ते । नार्जितस्य वस्तुनो लवमप्यास्वादयितुमीहन्ते । किं बहुना । राज्यभार भारक्षमेष्वन्तरङ्गेषु[1] भक्तिमत्सु समर्प्य, अप्सरःप्रतिरूपाभिरन्तःपुरिकाभी रममाणो गीतसंगीतपानगोष्ठीश्च यथर्तु बध्नन्य[2]थार्हं कुरु शरीरलाभम्' इति पञ्चाङ्ग[3]स्पृष्ट[4]भूमिरञ्जलिचुम्बितचूडश्चि-

विरोधिना । बहवः च ते मार्गाः च तेषाम् विकल्पनात् विप्रतिपत्तेः न मुक्तः त्यक्तः संशयः संदेहः येन । तन्त्रम् स्वराष्ट्रचिन्ता च आवापः शत्रुराष्ट्रचिन्ता च । कृथाः कुरु । वृथा व्यर्थम् । हि एव । दन्तिनाम् गजानाम् । हयानाम् अश्वानाम् । पदातीनाम् समूहः पादातम् । कोष्ठागाराणि धान्य-संचयगृहाणि । रेचयिष्यति रिक्तानि करिष्यति । अपर्याप्तम् अपूर्णम् । अन्येन शत्रुभिः अर्जितम् तस्मै आयासः क्लेशः (आक्रमणादिना) । जीवितम् जीवनम् । जन्मवताम् प्राणिनाम् । अहानि दिनानि । अल्पाल्पम् स्वल्पम् । वयसः खण्डम् अंशः । अपण्डिताः मूर्खाः । पुनः तु । ध्वंसन्ते नश्यन्ति । लवम् कणम् । ईहन्ते इच्छन्ति । किम् कः लाभः । भारक्षमेषु राज्यपालनसमर्थेषु । अन्तरङ्गेषु विश्वस्तेषु । भक्तिमत्सु स्वामिभक्तेषु । समर्प्य दत्वा । अप्सरःप्रतिमाभिः अप्सरस्तुल्याभिः । अन्तःपुरिकाभिः स्त्रीभिः । रममाणः विहरन् । गीतम् गानम् च संगीतम् वाद्यनृत्य-युक्तम् गानम् च । पानगोष्ठीः मद्यपानगोष्ठीः च । यथर्तु ऋत्वनुसारेण । बध्नन् कुर्वन् । यथार्हम् यथोचितम् (सार्थकम्) । शरीरलाभम् जन्म । पञ्च जानुद्वयम् भुजद्वयम् शिरः च ("जानू बाहुद्वयं मूर्धा पञ्चाङ्गम्" इति उत्पलिनी) तेषाम् (पञ्चानाम्) अङ्गानाम् समाहारः पञ्चाङ्गी तया स्पृष्टा

उपभोग में रुकावट डालने वाले, अनेक मार्गों के ऊहापोह के कारण सभी मामलों में सन्देह से मुक्त न रहने वाले स्व-राष्ट्र-चिन्तन और पर-राष्ट्र-चिन्तन के कार्यों में व्यर्थ मत करें । आपके पास दस हजार हाथी, तीन लाख घोड़े और अनन्त पैदल-समूह है । इसके अतिरिक्त खजाने की कोठरियाँ सोने और रत्नों से भरी हैं । समस्त प्राणी-जगत पूरे हजार युग तक खाये तो भी आपके कोठार खाली नहीं होंगे, क्या यह अपर्याप्त है जो दूसरों की कमाई के लिये कष्ट उठाया जा रहा है ? प्राणियों की जिन्दगी ही चार-पाँच दिन की है । उसमें भी भोग के योग्य उम्र का हिस्सा बहुत कम है । मूर्ख लोग कमाते-कमाते ही मर जाते हैं । कमाई गई वस्तु का कण भी चखना नहीं चाहते । अधिक कहने से क्या लाभ ? राज्य का बोझ उत्तर-दायित्व सँभालने में समर्थ विश्वस्त और स्वामि-भक्त लोगों को सौंपकर अप्सराओं के समान स्त्रियों के साथ विहार करते हुये ऋतु के अनुसार गान, संगीत, और मद्यपान की गोष्ठियाँ जमाते हुये जन्म सार्थक करें ।' यह कहकर पाँच अङ्गों से पृथ्वी का स्पर्श करता हुआ और फिर अञ्जलि

---

१. अन्तरङ्गभूतेषु । २. यथार्थम् । ३. पञ्चाङ्गी । ४. स्पृष्ट ।

रमशेत । प्राहसीच्च प्रीतिफुल्ललोचनोऽन्तःपुरप्रमदाजनः । जननाथश्च सस्मितम् 'उत्तिष्ठ[1] । ननु हितोपदेशाद् गुरवो भवन्तः । किमिति गुरुत्वविपरीतमनुष्ठितम्' इति तमुत्थाप्य [2]क्रीडानिर्भरमतिष्ठत् ।

अथैषु दिनेपु भूयो भूयः प्रस्तुतेऽर्थे प्रेर्यमाणो मन्त्रिवृद्धेन, वचसाभ्युपेत्य मनसैवाचित्तज्ञ इत्यवज्ञातवान् । अथैव मन्त्रिणो मनस्यभूत्—'अहो मे मोहाद्बालिश्यम् ।[3]अरुचितेऽर्थे चोदयन्नर्थीवाक्षिगतोऽहमस्य हास्यो जातः । स्पष्टमस्य चेष्टानामायथापूर्व्यम् । तथा हि । न मां स्निग्धं पश्यति, न स्मितपूर्वं भाषते, न रहस्यानि विवृणोति, न हस्ते स्पृशति, न व्यसनेष्वनुकम्पते, नोत्सवेष्वनुगृह्णाति,

भूमिः येन सः । अञ्जलिना चुम्बिता स्पृष्टा चूडा मौलिः येन सः । चिरम् बहुकालम् यावत् । अशेत शयितः । प्राहसीत् उच्चैः अहसत् । प्रीत्या हर्षेण उत्फुल्ले विकसिते लोचने नेत्रे यस्य । अन्तःपुरे यः प्रमदाजनः सुन्दरीसमूहः । जननाथः राजा । सस्मितम् विहासपूर्वम् । ननु (अनुनये) । हितः उपकारी च सः उपदेशः शिक्षा च तस्मात् । गुरवः आदरणीयाः । किमिति केन कारणेन । गुरुत्वात् विपरीतम् अननुरूपम् । अनुष्ठितम् कृतम् । उत्थाप्य उन्नमय्य । क्रीडया निर्भरम् पूर्णम् । तम् विहारभद्रम् ।

भूयः पुनः । प्रस्तुते उपस्थिते (राजनीतौ) । अर्थे विपये । अभ्युपेत्य स्वीकृत्य । न (नृपस्य) चित्तम् जानाति इति अचित्तज्ञः । अवज्ञातवान् तिरस्कृतवान् । अहो धिक् । मे मम । मोहात् अज्ञानात् । बालिश्यम् मूर्खता । अरुचिते अनभीष्टे । अर्थे विषये । चोदयन् प्रेरयन् । अर्थी याचकः । अक्षिगतः द्वेष्यः ("द्वेष्योऽक्षिगत उच्यते" इति हलायुधः) । हास्यः परिहासगोचरः । जातः अभवम् । चेष्टानाम् व्यवहाराणाम् । आयथापूर्व्यम् वैपरीत्यम् । तथा हि उदाह्रियते । स्निग्धम् स्नेहपूर्वकम् । स्मितपूर्वम् स्मितम् विहासः पूर्वम् यस्य (कर्मणः) तत् यथा स्यात् तथा । भाषते वदति । रहस्यानि गूढान् विषयान् । विवृणोति प्रकटीकरोति । हस्ते

मस्तक पर लगाता हुआ देर तक पड़ा रहा । उधर आनन्द से खिले नेत्रों वाला रनिवास की सुंदरियों ने ठहाका लगाया और राजा ने मुस्कराकर कहा—'उठिये । भाई, आप तो कल्याणकारी शिक्षा देने से बड़े हैं । क्या बात है कि गुरुता के प्रतिकूल कार्य कर बैठे हैं ?' यह कहकर उस क्रीड़ा-पूर्ण (विहार भद्र) को उठा दिया ।

अब इन दिनों प्रस्तुत विषय के प्रति वृद्ध मन्त्री ने पुनः-पुनः प्रेरित किया । वह राजा बातों से स्वीकार कर मन से यह कहकर ठुकरा देता था कि (यह मन्त्री) (मेरे) चित्त को नहीं समझता । इसके बाद मंत्री के मन में यह बात पैदा हुई–'धिक्कार है मोह के कारण मेरी मूर्खता को । अनचाहे विषय के प्रति प्रेरित करता हुआ मैं याचक की भाँति आँख की किरकिरी होकर इनका उपहासास्पद हो गया हूँ । इनकी चेष्टाओं की विपरीतता स्पष्ट है । उदाहरणार्थ :—मुझे स्नेह के साथ नहीं देखते, मुस्कराकर नहीं बोलते, गुप्त बातें प्रगट नहीं करते, मेरा हाथ नहीं छूते, संकटों के समय दया नहीं दिखाते, जलसों में कृपा नहीं करते, आकर्षक

---

[1] उत्तिष्ठत । [2] क्रीडारसनिर्भरमतिः । [3] अनुचिते ।

न विलोभनवस्तु प्रेषयति, न मत्सुकृतानि प्रगणयति, न मे गृहवार्तां पृच्छति, न मत्पक्ष्यान्प्रत्यवेक्षते, न मामासन्नकार्येष्वभ्यन्तरीकरोति, न मामन्तःपुरं प्रवेशयति। अपि च मामनर्हेषु कर्मसु नियुङ्क्ते, मदासनमन्यैरवष्टभ्यमानमनुजानाति, मद्वैरिषु विश्रम्भं दर्शयति, मदुक्तस्योत्तरं न ददाति, मत्समानदोषान्विगर्हति, मर्मणि मामुपहसति, स्वमतमपि मया वर्ण्यमानं प्रतिक्षिपति, महार्हाणि वस्तूनि मत्प्रहितानि नाभिनन्दति, नयज्ञानां स्खलितानि मत्समक्षं मूर्खैरुद्घोषयति। सत्यमाह चाणक्यः—'चित्तज्ञानानुवर्तिनोऽनर्थ्या[1] अपि प्रियाः स्युः। दक्षिणा अपि तद्भावबहिष्कृता द्वेष्या भवेयुः' इति। तथापि का गतिः। अविनी-

(माम्)। व्यसनेषु सङ्कटेषु। अनुकम्पते दयते। अनुगृह्णाति अनुग्रहम् करोति। विलोभनम् आकर्षकं वस्तु। मम सुकृतानि सत्कार्याणि। प्रगणयति प्रकर्षेण गणयति मन्यते। मे मम। गृहस्य वार्ताम् वृत्तम्। मत्पक्ष्यान् मम पक्ष्यान् पक्षवर्तिनः। प्रत्यवेक्षते अपेक्षते। आसन्नेषु उपस्थितेषु कार्येषु। अभ्यन्तरीकरोति नियोजयति। अनर्हेषु अननुरूपेषु। मम आसनम्। अवष्टभ्यमानम् आक्रम्यमाणम्। अनुजानाति अनुमोदते। मम वैरिषु द्वेष्येषु। विश्रम्भम् विश्वासम्। दर्शयति प्रकटयति। मम उक्तस्य कथनस्य। मत्समानानाम् मादृशानाम् दोषान्। विगर्हयति निन्दति। मर्मणि (मर्म स्पृशन्)। स्वस्य मतम् इष्टम्। प्रतिक्षिपति अवगणयति। महार्हाणि बहुमूल्यानि। मया प्रहितानि प्रेषितानि। नयज्ञानाम् नीतिज्ञानाम्। स्खलितानि त्रुटीः। मम समक्षम् पुरतः। उद्घोषयति उच्चैः प्रख्यापयति। आह वदति। चित्तस्य (नृपस्य) मनसः ज्ञानम् अनुवर्तन्ते अमी इति चित्तज्ञानानुवर्तिनः। न अर्थ्याः [2]अपेक्षणीयाः। दक्षिणाः सरलाः। तस्य (नृपस्य) भावात् हृदयात् बहिष्कृताः[3] प्रतिकूलाः। द्वेष्याः अप्रियाः। गतिः मार्गः। अवि-

वस्तुएँ नहीं भेजते, मेरे अच्छे कार्यों का ठीक से मूल्यांकन नहीं करते, मेरे घर का समाचार नहीं पूछते, मेरे पक्ष के लोगों की परवाह नहीं करते, उपस्थित कार्यों में मुझे प्रविष्ट नहीं करते, मुझे रनिवास के अन्दर नहीं ले जाते। इसके अलावा मुझे अनुचित कार्यों में लगाते हैं, मेरे आसन पर दूसरों को बैठने की अनुमति देते हैं, मेरे प्रति द्वेष रखने वालों के प्रति विश्वास प्रगट करते हैं, मेरे कहे का उत्तर नहीं देते, मेरे-जैसे लोगों के दोषों का तिरस्कार करते हैं, नाजुक मामलों में मेरी हँसी उड़ाते हैं, उस समय मेरा अपमान करते है जब मैं उनका अपना मत (ही) कहने लगता हूँ। मेरी भेजी गई बेशकीमती चीजों का स्वागत नहीं करते, नीतिज्ञों की गलतियाँ मूर्खों के द्वारा मेरे समक्ष जोर-शोर से घोषित कराते हैं। चाणक्य ने ठीक (ही) कहा है—'मनोभाव का अनुसरण करने वाले अवाञ्छनीय व्यक्ति भी प्रिय हो सकते हैं और उस चित्त के भाव से दूर रहने (न पहचानने) वाले द्वेष-पात्र हो सकते हैं।' फिर भी क्या

---

[1] अनर्थाः।

[2] अनर्थ्याश्च प्रिया दृष्टा चित्तज्ञानानुवर्तिनः। (प्रकरण ९२)

[3] अप्रिया अपि दक्षाः स्युस्तद्भावाद्ये बहिष्कृताः॥

तोऽपि न परित्याज्यः पितृपैता[1]महैरस्मादृशै[2]रयमधिपतिः । अपरित्यजन्तोऽपि कमुपकारमश्रूयमाणवाचः कुर्मः । सर्वथा नयज्ञस्य वसन्तभानोरश्मकेन्द्रस्य हस्ते राज्यमिदं पतितम् । अपि नामापदो भाविन्यः प्रकृतिस्थमेनमापादयेयुः । अनर्थेषु सुलभव्यलीकेषु[3] क्वचिदुत्पन्नोऽपि द्वेषः सद्वृत्तमस्मै न रोचयेत् । भवतु । भविता तावदनर्थः । स्तम्भितपिशुनजिह्वो यथाकथंचिदभ्रष्टपदस्तिष्ठेयम्' इति ।

एवं गते मन्त्रिणि, राजनि च कामवृत्ते, चन्द्रपालितो नामाश्मकेन्द्रामात्यस्येन्द्रपालितस्य सूनुः, असद्वृत्तः पितृनिर्वासितो नाम भूत्वा, बहुभिश्चारणग-

नीतः उद्धतः । पितृपैतामहैः पितृपितामहक्रमागतैः । अस्मादृशैः मत्सदृशैः । अधिपतिः राजा । अपरित्यजन्तः आश्रयन्तः । न श्रूयमाणा वाक् वाणी (उपदेशः) येन (राज्ञा) तस्य । सर्वथा निःसंशयम् । नयज्ञस्य नीतिज्ञातुः । अश्मकानाम् अश्मकदेशस्य इन्द्रस्य राज्ञः । अपि नाम (संभावनायाम्) । आपदः विपत्तयः । भाविन्यः भविष्यत्काले भवाः । प्रकृतिस्थम् स्वस्थम् । आपादयेयुः कुर्युः । अनर्थेषु विपत्तिषु सुलभम् व्यलीकम् पीडा ("पीडार्थेऽपि व्यलीकं स्यात्" इति अमरः) यत्र तत्र । क्वचित् कदाचित् । वृत्तम् चरित्रम् । रोचयेत् रुचिकरम् कुर्यात् । भविता भविष्यति । तावत् अधुना । अनर्थः विपत्तिः । स्तम्भिता अवरुद्धा पिशुना हृदयसदुपदेशसूचिका जिह्वा येन सः । यथाकथञ्चित् येन केन प्रकारेण । अभ्रष्टपदः पदम् अत्यजन् ।

एवंगते एतादृशे (उपेक्षिते निर्वेदपीडिते च) (सति) । कामवृत्ते यथेच्छाचारे (सति) । अश्मकानाम् अश्मकदेशस्य इन्द्रस्य राज्ञः अमात्यस्य मन्त्रिणः इन्द्रपालितस्य । सूनुः पुत्रः । असद्वृत्तः दुर्जनः (अतः) पित्रा निर्वासितः निष्कासितः । नाम (अलीके) । चारणगणैः गायक-

रास्ता है ? उद्दण्ड होने पर भी इन राजा को पिता और पितामह के क्रम से (मंत्री रूप में) आये हुए मुझ जैसे लोगों को नहीं छोड़ना चाहिये । (लेकिन) न छोड़ते हुये भी हम उनको क्या भलाई कर सकते हैं जो बात (ही) नहीं सुन रहे हैं ? यह बात तय है कि अश्मक[4] के नीतिमान् राजा वसन्तभानु के हाथ यह राज्य पड़ गया । संभव है, भावी विपत्तियाँ इनके होश ठिकाने ला दें । विपत्तियों में पीड़ायें सुलभ होती हैं । (तब इस गलती के प्रति) द्वेष उत्पन्न हो सकता है पर तब भी वह इन्हें अच्छा आचरण रुचिकर नहीं करा सकता । ठीक है । अब अनर्थ होगा । (दिल की बात) सूचित कर देने वाली जिह्वा रोककर जैसे-तैसे अपने पद पर बना रहूँगा ।

मंत्री के इस अवस्था में पहुँचने पर और राजा के स्वेच्छाचारी होने पर अश्मक के राजा के मंत्री इन्द्र पालित के पुत्र चन्द्र पालित ने 'दुश्चरित्र होने से पिता के द्वारा निकाला गया है' यह अफवाह फैलाकर भाटों की बहुत सी टोलियों और अनेक प्रचुर कौशल वाली

---

[1] पितृपितामहानुयातैः । [2] अस्माकमुपसेवितमिदं राजकुलमीदृशश्चायमधिपतिः ।
[3] सुलभालीकेषु । [4] वर्तमान ट्रावङ्कोर ।

णैर्बह्वीभिरनल्पकौशलाभिः शिल्पकारिणीभिरनेकच्छन्नकिंकरैश्च गूढपुरुषैः परिवृतोऽभ्येत्य विविधाभिः क्रीडाभिर्विहारभद्रमात्मसादकरोत्। अमुना चैव संक्रमेण राजन्यास्पदमलभत। लब्धरन्ध्रश्च स यद्यद्व्यसनमारभते तत्तथेत्यवर्णयत्—'देव, यथा मृगया ह्यौपकारिकी न तथान्यत्। अत्र हि व्यायामोत्कर्षादापत्सूपकर्ता दीर्घाध्वलङ्घनक्षमो जङ्घाजवः, कफापचयादारोग्यैकमूलमाशयाग्निदीप्तिः, मेदोपकर्षादङ्गानां स्थैर्यकार्कश्यातिलाघवादीनि, शीतोष्णवातवर्षक्षुत्पिपासासहत्वं,

समूहैः ("चारणो गायकः समौ" इति वैजयन्ती)। बह्वीभिः बहुभिः। अनल्पम् बहु कौशलम् कुशलता यासाम् ताभिः। शिल्पकारिणीभिः चित्रकारिणीभिः। अनेकैः बहुभिः छन्नैः गुप्तरूपैः किंकरैः भृत्यैः। गूढपुरुषैः चरैः। परिवृतः आवृतः। अभ्येत्य आगत्य। विविधाभिः नानाप्रकारिकाभिः। आत्मसात् वशीकृतः। अमुना तेन (विहारभद्रेण सह)। सङ्क्रमेण संगत्या। राजनि नृपे (अनन्तवर्मणि)। आस्पदम् (नृपहृदये) स्थानम्। लब्धम् रन्ध्रम् अवसरः येन सः (चन्द्रपालितः)। सः (राजा)। औपकारिकी उपकाराय अर्हा। अत्र अस्याम् (मृगयायाम्)। व्यायामस्य उत्कर्षात् उन्नतेः। दीर्घः च असौ अध्वा मार्गः च तस्य लङ्घने अतिक्रमणे क्षमः योग्यः। जङ्घयोः जवः वेगः (शक्तिः)। कफस्य अपचयात् नाशात्। आरोग्यस्य नीरोगतायाः एकम् अद्वितीयम् मूलम् हेतुः। आशयाग्नेः जठराग्नेः दीप्तिः उद्दीपनम्। मेदसाम् अपकर्षात् अपचयात्। स्थैर्यम् स्थिरता कार्कश्यम् कठोरता अतिलाघवम् क्षिप्रता। शीतम् च उष्णम् तापः च वातः वायुः च वर्षं वर्षाः च क्षुत् क्षुधा च पिपासा तृषा च तत्सहत्वम् तत्सहि-

चित्रकारों और गुप्त-वेषधारी अनेक नौकरों के साथ गुप्तचरों से घिरा हुआ पहुँचकर अनेक प्रकार को क्रीड़ाओं से विहार भद्र को वश में कर लिया! उसके साथ मेल-जोल से राजा के मन में स्थान पा गया। घुसने के लिए छेद (दोष) पाकर वह (चन्द्र पालित), राजा जो जो व्यसन[1] आरम्भ करता था उसे ठीक बताकर, यों वर्णन करता था—'महाराज, जिस प्रकार शिकार खेलना उपकार करने में समर्थ है, वैसे कोई अन्य वस्तु नहीं क्योंकि पिंडलियों का वेग, कसरत को अधिकता से विपत्तियों में लाभदायक और लम्बे रास्ते को पार करने में समर्थ हो जाता है, कफ के कम होने से नोरोगता का अद्वितोय मूल-मंत्र जठराग्नि की प्रबलता

१.- ये व्यसन ७ हैं जिनमें ३ क्रोध से उत्पन्न होते हैं जिन्हें यहाँ पर नीचे पहले दिया गया है। शेष ४ काम-जन्य हैं:

"वाग्दण्डयोश्च पारुष्यमर्थदूषणमेव च। स्मृतं व्यसनतत्त्वज्ञैः क्रोधजं व्यसनत्रयम्॥ कामजं मृगया द्यूतं स्त्रियः पानं तथैव च। व्यसनं व्यसनार्थज्ञैश्चतुर्विधमुदाहृतम्॥"

[कामन्दकीयनीतिसार १५।७, ८ तथा हितोपदेश २।१०३–१०५]

वैजयन्ती ने इन्हें महाव्यसन कहा है :—

"स्त्रियोऽक्षा मृगयापानं वाक्पारुष्यार्थदूषणे। दण्डपारुष्यमित्येतन्महाव्यसनसप्तकम्॥"

सत्त्वानामवस्थान्तरेपु चित्तचेष्टितज्ञानं, हरिणगवलगवयादिवधेन सस्यलोपप्रतिक्रिया, वृकव्याघ्रादिघातेन स्थलपथशल्यशोधनं, शैलाटवीप्रदेशानां विविधकर्मक्षमाणामालोचनम्, आटविकवर्गविश्रम्भणम्, उत्साहशक्तिसंधुक्षणेन प्रत्यनीकवित्रासनमिति बहुतमा गुणाः। द्यूतेऽपि द्रव्यराशेस्तृणवत्त्यागादनुपमानमाशयौदार्यं, जयपराजयानवस्थानाद्धर्षविषादयोरविधेयत्व, पौरुषैकनिमित्त-

---

ष्णुता। सत्त्वानाम् जीवानाम्। अवस्थान्तरेपु तासु तासु अवस्थासु। चित्तस्य चेष्टितम् चेष्टा तस्य ज्ञानम्। हरिणः च गवलः वनमहिषः च गवयः गोसदृशः पशुः ("गवयः स्याद् वनगवो गोसदृक्षोऽश्ववारणः" इति अभिधानचिन्तामणिः) तदादीनाम् वधः हननम् तेन। सस्यानाम् अन्नानाम् लोपः नाशः तस्य प्रतिक्रिया उपायः। वृकाणाम् ईहामृगाणाम् ("कोक ईहामृगो वृकः" इति अमरः)। व्याघ्राः आदौ येषाम् तेषाम् घातेन हननेन। स्थलपथे भूमिमार्गे यानि शल्यानि बाधाः तेषाम् शोधनम् शुद्धीकरणम्। शैलः पर्वतः च अटवी वनम् च तेषाम् प्रदेशानाम् स्थलानाम्। विविधानि नानारूपाणि च तानि कर्माणि उपयोगाः च तत्क्षमाणाम् तत्समर्थानाम्। आलोचनम् विचारः। अटव्याम् वने चरन्ति ते आटविकाः तेषाम् वर्गस्य समूहस्य विश्रम्भणम् विश्वासोत्पादनम्। उत्साहशक्तेः परविजयोत्साहस्य संधुक्षणेन वर्धनेन। प्रत्यनीकः शत्रुः तस्य वित्रासनम् भयप्रदानम्। अतिशयेन बहवः बहुतमाः। न उपमानम् तुला यस्य तत् (अतुलम्)। आशयस्य चित्तस्य औदार्यम् विशालता। जयः च पराजयः च तयोः अनवस्थानात् अनिश्चयात्। हर्षः आनन्दः च विषादः दुःखम् च तयोः अविधेयत्वम् अवशीभूतत्वम्। पौरुषस्य विक्रमस्य एकस्य अद्वितीयस्य निमित्तस्य हेतोः। अमर्षस्य क्रोधस्य।

हो जाती है, अङ्गों की चर्बी घटने से[1] चञ्चलता का अभाव, कड़ापन, गजब की फुर्ती आदि चीजें आ जाती हैं, ठण्ड, गर्मी, हवा, वर्षा, भूख और प्यास सहने की शक्ति पैदा हो जाती है, जीवों की विभिन्न अवस्थाओं में उनके मन की चेष्टायें क्या होती हैं, इसकी जानकारी हो जाती है, हिरन, जंगली भैंसे, नील गायें आदि के मारने से फसल का विनाश बचाने का उपाय हो जाता है, भेड़िये, बाघ आदि के मारने से भूमि-मार्ग के काँटों की सफाई हो जाती है, अनेक प्रकार के उपयोगों के योग्य पहाड़ और जंगल के इलाकों का विचार हो जाता है, जंगल में घूमने वाले लोगों में विश्वास पैदा किया जाता है और उत्साह-शक्ति (दूसरे स्थानों को जीतने का उत्साह) उत्तेजित हो जाने से शत्रु को डराया जाता है। इस प्रकार इसमें बहुत-बहुत गुण हैं। धन की ढेरी का तिनके की भाँति त्याग करने से हृदय की अनुपम उदारता, जीत हार के निश्चित न होने से आनन्द और दुःख के वशीभूत न होना, पौरुष के एक-

---

[1] मेदश्छेदकृशोदरं लघु भवत्युत्थानयोग्यं वपुः
सत्त्वानामपि लक्ष्यते विकृतिमच्चित्तं भयक्रोधयोः।
उत्कर्षः स च धन्विनां यदिषवः सिध्यन्ति लक्ष्ये चले
मिथ्यैव व्यसनं वदन्ति मृगयामीदृग्विनोदः कुतः॥ (अभिज्ञानशाकुन्तलम्)

स्यामर्षस्य वृद्धिः, अक्षहस्तभूम्यादिगोचराणामत्यन्तदुरुपलक्ष्याणां कूटकर्मणामुपलक्षणादनन्तबुद्धिनैपुण्यम्, एकविषयोपसंहाराच्चित्तस्यातिचित्रमैकाग्र्यम्, अध्यवसायसहचरेषु साहसेष्वतिरतिः[1], अतिकर्कशपुरुषप्रतिससर्गादनन्यधर्षणीयता, मानावधारणम्[2], अकृपण च शरीरयापनमिति। उत्तमाङ्गनोपभोगेऽप्यर्थधर्मयोः सफलीकरणम्, पुष्कलः पुरुषाभिमानः, भावज्ञानकौशलम्, अलोभक्लिष्टमाचेष्टितम्, अखिलासु कलासु वैचक्षण्यम्, अलब्धोपलब्धिलब्धानुरक्षणरक्षितोपभोगभुक्तानुसंधानरुष्टानुनयादिष्वजस्रमभ्युपायरचनया बुद्धिवाचोः पाटवम्,

अक्षेषु हस्तयोः भूमौ तदादिषु च गोचराणाम् दृष्टानाम्। अत्यन्तम् यथा स्यात् तथा दुरुपलक्ष्याणाम् दुःखेन दृश्यानाम्। कूटकर्मणाम् कपटाचरणानाम्। उपलक्षणात् ज्ञानात्। अनन्तम् अमितम् बुद्धेः नैपुण्यम् चतुरता। एकस्मिन् विषये उपसंहारात् अभिनिवेशात्। अतिचित्रम् सुविचित्रम्। ऐकाग्र्यम् एकाग्रता। अध्यवसायः उद्योगः तस्य सहचरेषु तन्निष्ठेषु। साहसेषु अद्भुतेषु कर्मसु। अतिरतिः सुप्रीतिः। अतिकर्कशानाम् सुकठोराणाम् पुरुषाणाम् प्रतिसंसर्गात् प्रतिद्वन्द्वित्वात्। अन्यैः या धर्षणीयता अभिभवः तस्याः अभावः। मानस्य मनस्वितायाः अवधारणम् निश्चयः। अकृपणम् अदीनम् शरीरस्यापनम् जीवनधारणम्। अङ्गनाः कामिन्यः तासाम् उपभोगे। अर्थः च धर्मः च तयोः सफलीकरणम्। पुष्कलः श्रेयान् ("श्रेयान् श्रेष्ठः पुष्कलः स्यात्" इति अमरः)। भावस्य हृदयाभिप्रायस्य ज्ञाने कौशलम् कुशलता। न लोभेन क्लिष्टम् क्लेशपूर्णम्। आचेष्टितम् चेष्टा। वैचक्षण्यम् निपुणता। अलब्धायाः (नायिकायाः) उपलब्धिः। लब्धायाः (नायिकायाः) अनुरक्षणम् पालनम्। रक्षितायाः (नायिकायाः) उपभोगः। भुक्तायाः (नायिकायाः) अनुसंधानम् स्मरणम्। रुष्टायाः (नायिकायाः) अनुनयः तदादिषु अजस्रम् निरन्तरम् अभ्युपायस्य उपायस्य रचनया विधानेन। बुद्धिः च वाक् वाणी च तयोः पाटवम्

मात्र कारण क्रोध की वृद्धि, पांसे, हाथ और भूमि आदि पर वर्तमान उन कपट-आचरणों के ज्ञान से बुद्धि की असीम निपुणता जिनको भाँप पाना बहुत कठिन है, एक विषय में केन्द्रित हो जाने से मन की अत्यन्त अद्भुत एकाग्रता, उद्योग के साथी अद्भुत कर्मों के प्रति बहुत अनुराग, अत्यन्त कठोर आदमियों की प्रतिद्वन्द्विता से दूसरों के रोब में आने योग्य न होना, आत्म-सम्मान के लिये दृढ़ निश्चय होना और दीनता-रहित जीवन-यापन ये बहुत बहुत गुण जुए में पाये जाते हैं। धन और धर्म की असफलता को सफलता में बदलना, पुरुषोचित प्रचुर अभिमान, हृदय की बात जानने की कुशलता, लोभ से क्लेश-युक्त न होने वाली चेष्टायें, सभी कलाओं में दक्षता, न मिली (नायिका) की प्राप्ति, पाई (नायिका) की रक्षा, रक्षिता (नायिका) का उपभोग, उपभुक्ता (नायिका) का स्मरण, कुपिता (नायिका) को मनाना आदि बातों में लगातार उपाय लगाने से बुद्धि और वाणी की निपुणता, शरीर की श्रेष्ठ सँवार

---

[1] अभिरतिः। [2] धीरणम्।

उत्कृष्टशरीरसंस्कारात्सुभगवेषतया लोकसंभाव[1]नीयता, परं सुहृत्प्रियत्वम्, गरीयसी परिजनव्यपेक्षा, स्मितपूर्वाभिभाषित्वम्, उद्रिक्तसत्त्वता, दाक्षिण्यानुवर्तनम्, अपत्योत्पादनेनोभयलोकश्रेयस्करत्वमिति। पानेऽपि नानाविधरागभङ्गपटीयसामासवानामासेवनात्स्पृहणीयवयोऽव[2]स्थापनम्, अहंकारप्रकर्षादशेषदुःखतिरस्करणम्, अङ्गजरागदीपनादङ्गनोपभोगशक्तिसंधुक्षणम्, अपराधप्रमार्जनान्मनः[3]शल्योन्मार्जनम्[4], अशाठ्य[5]शंसिभिरनर्गलप्रलापैर्विश्वासोपबृंहणम्, मत्सराननुबन्धादानन्दैकतानता, शब्दादीनामिन्द्रियार्थानां सातत्येनानुभवः,

---

पटुता। उत्कृष्टः श्रेष्ठः च सः शरीरस्य संस्कारः परिष्कारः तस्मात्। सुभगः ऐश्वर्ययुक्तः वेषः नेपथ्यम् यस्य तत्ता तया। लोके संभावनीयता सम्माननीयता। परम् परमम् सुहृदः मित्रस्य प्रियत्वम् प्रियता। गरीयसी गुरुतरा। परिजनस्य भृत्यवर्गस्य विशेषेण अपेक्षा आदरः। स्मितपूर्वम् सस्मितम् अभिभाषित्वम् सम्भाषणम्। उद्रिक्तम् उदीर्णम् सत्त्वम् बलम् यस्य सः तत्ता। दाक्षिण्यस्य शिष्टतायाः अनुवर्तनम् आचरणम्। अपत्यानाम् पुत्राणाम् उत्पादनेन जननेन। उभयलोकश्रेयस्करत्वम् लोकपरलोककल्याणकारकता। पाने मद्यपाने। नानाविधानाम् विविधानाम् रोगाणाम् भङ्गे नाशे पटीयसाम् पटुतराणाम् आसवानाम् मद्यानाम् आसेवनात् प्रचुराभ्यासात्। स्पृहणीयम् काम्यम् वयसः यौवनस्य अवस्थापनम् रक्षणम्। अहङ्कारस्य गर्वस्य प्रकर्षात् बाहुल्यात्। अशेषाणाम् सर्वेषाम् दुःखानाम् तिरस्करणम् उपेक्षा। अङ्गजः कामः तस्य रागः इच्छा तस्य दीपनात् वृद्धेः। अङ्गनानाम् कामिनीनाम् उपभोगे शक्तिः तस्याः संधुक्षणम् उद्दीपनम्। अपराधस्य दोषस्य प्रमार्जनात् दूरीकरणात्। मनसि यत् शल्यम् कण्टकः तस्य उन्मार्जनम् उद्धरणम्। अशाठ्यशंसिभिः शठताराहित्यसूचकैः अनर्गलैः अनियन्त्रितैः प्रलापैः निरर्थकवचनैः। विश्वासस्य उपबृंहणम् वर्धनम्। मत्सरस्य मात्सर्यस्य अननुबन्धात् अधारणात्। आनन्दस्य एकतानता एकाग्रता ("एकतानोऽनन्यवृत्तिः" इति अमर)। इन्द्रियार्थानाम् इन्द्रिय-

---

से बने ऐश्वर्य-पूर्ण वेष-धारी होने से समाज में सम्माननीय होना, मित्रों का परम प्रिय होना, सेवक-वर्ग की बहुत सम्मानपूर्ण और विशेष खातिरदारी, मुस्कराहट के साथ बातें करना, छलकती हुई शक्ति से सम्पन्न होना, सौजन्य का अनुसरण करना, पुत्र उत्पादन से दोनो लोकों में कल्याणकारी होना, ये बहुत-बहुत गुण स्त्री-उपभोग में हैं। अनेक प्रकार के रोगों को नष्ट करने में अतिचतुर, मद्यों के खूब सेवन से यौवन की स्पृहणीय स्थिरता, घमंड के बढ़ जाने से यावत् दुःखों की अवज्ञा, कामेच्छा के उत्तेजित होने से सुन्दरियों के उपभोग की शक्ति का उत्तेजित होना, अपराध की सफाई कर देने से मन का काँटा निकाल फेंकना, शठता का अभाव बताने वाले अनियंत्रित निरर्थक बातों से विश्वास का बढ़ जाना, डाह धारण न करने से आनन्द की एकाग्रता, इन्द्रियों के शब्द आदि विषयों का लगातार अनुभव, जो आया उसे देकर पीने का

---

१. नीयतया। २. वयोव्यवस्था०। ३. मानशल्य०। ४. उन्मूलनम्। ५. अश्राव्य०।

संविभागशीलतया सुहृद्वर्गसंवर्गणम्[1], अनुपमानमङ्गलावण्यम्, अनुत्तराणि विलसितानि, भयार्तिहरणाच्च साङ्ग्रामिकत्वमिति । वाक्पारुष्यं दण्डो दारुणो दूषणानि चार्थानामेव यथावकाशमौपकारिकाणि । न हि मुनिरिव नरपतिरुपशमरतिरभिभवितुमरिकुलमलम्, अवलम्बितुं च लोकतन्त्रम्' इति। असावपि गुरूपदेशमिवात्यादरेण तस्य मतमन्ववर्तत । तच्छीलानुसारिण्यश्च प्रकृतयो विशृङ्खलमसेवन्त व्यसनानि । सर्वश्च समानदोषतया न कस्यचिच्छिद्रान्वेषणायायतिष्ट । समानभर्तृप्रकृतयस्तन्त्राध्यक्षाः स्वानि कर्मफलान्यभक्षयन् । ततः क्रमादायद्वाराणि व्यशीर्यन्त । व्ययमुखानि विटविधेय[2]तया विभोरहरहर्व्यवर्धन्त ।

विषयाणाम् । सातत्येन नैरन्तर्येण । संविभागः आगतेभ्यः सर्वेभ्यः मद्यस्य दानम् तच्छीलता । सुहृद्वर्गस्य मित्रमण्डलस्य संवर्गम् संयोजनम् । अनुपमानम् अतुल्यम् अङ्गलावण्यम् शरीरसौन्दर्यम् । अनुत्तराणि अद्वितीयानि विलसितानि विलासाः । भयस्य च अर्त्तेः क्लेशस्य च हरणात् दूरीकरणात् । संग्रामे साधु सांग्रामिकम् तत्त्वम् तत्ता (युद्धपटुता) । वाचि वाण्याम् पारुष्यम् परुषता (कठोरता) । दारुणः कठोरः दण्डः अर्थानाम् दूषणानि । चौर्यम् । यथावकाशम् अवसरेषु । औपकारिकाणि उपकारक्षमाणि । नरपतिः राजा । उपशमे शान्तौ रतिः प्रेम यस्य सः (सन्) । अभिभवितुम् जेतुम् । अरीणाम् शत्रूणाम् कुलम् समूहम् । अलम् समर्थः । अवलम्बितुम् धारयितुम् । लोकस्य तन्त्रम् विधानम् । असौ (राजा) । तस्य (चन्द्रपालितस्य) । अन्ववर्तत अन्वसरत् । तस्य (राज्ञः) शीलम् स्वभावम् अनुसरन्ति इमाः इति तच्छीलानुसारिण्यः[3] । प्रकृतयः प्रजाः । विशृङ्खलम् अनियन्त्रितम् । समानः दोषः यस्य तत्ता तया । छिद्रस्य दोषस्य अन्वेषणाय अनुसंधानाय । अयतिष्ट अयतत । समाना तुल्या भर्तुः राज्ञः प्रकृतिः येषाम् ते । तन्त्राध्यक्षाः सेनापतयः । स्वानि निजानि । कर्मणः (पूर्वजन्मनि) कृतस्य फलानि । व्यशीर्यन्त भग्नानि । व्ययस्य मुखानि द्वाराणि । विटानाम् परदारासक्तानाम् विधेयतया वश्य-

स्वभाव होने से मित्र-मंडली का संयोजन, अङ्ग का अनुपम लावण्य, लाजवाब अदायें, डर और क्लेश दूर करने से योद्धा होना, ये बहुत-बहुत गुण मद्यपान में हैं । वाणी की कठोरता, भयंकर सजा और धन-सम्बन्धी ही गड़बड़ियाँ (गबन आदि) अवसर आने पर लाभ करने में समर्थ होती हैं । निश्चय ही राजा मुनि की भाँति शान्ति से अनुराग कर दुश्मनों को दबाने और समाज का प्रबन्ध करने में समर्थ नहीं होता ।' और उसने गुरु-उपदेश की भाँति बड़े सम्मान से उसके मत का अनुसरण किया । उसके स्वभाव के अनुसार चलने वाली जनता ने अनियंत्रित होकर व्यसन अपनाये । समान बुराई वाले होने के कारण कोई किसी के दोष की खोज का प्रयत्न नहीं करता था । राजा के स्वभाव के समान स्वभाव वाले सेनापतियों ने अपने कर्म फल (पूर्व जन्म के पुण्यों का फल) भोगे । इसके बाद धीरे-धीरे आय के द्वार समाप्त हो गये । राजा की पर-स्त्री-आसक्तों की दासता के कारण व्यय के मुख दिन-प्रतिदिन बढ़ते

---

[1] संवर्धनम् ।   [2] वैधेय० ।   [3] यथा राजा तथा प्रजाः ।

सामन्तपौरजानपदमुख्याश्च समानशीलतयोपारूढविश्रम्भेण राज्ञा सजानयः[१]पानगोष्ठीष्वभ्यन्तरीकृताः स्वं स्वमाचारमत्यचारिषुः । तदङ्गनासु चानेकापदेशपूर्वमपाचरन्नरेन्द्रः । तदन्तःपुरेषु चामी भिन्नवृत्तेषु मन्दत्रासा बहुसुखैरवर्तन्त । सर्वश्च कुलाङ्गनाजनः [२]सुलभभङ्गिभाषणरतो भग्नचारित्रयन्त्रस्तृणायापि न गणयित्वा भर्तॄन्धातृगणमन्त्रणान्यशृणोत् । तन्मूलाश्च कलहाः सामर्षाणामुदभवन् । अहन्यन्त दुर्बला बलिभिः । अपहृतानि धनवतां धनानि तस्करादिभिः ।[३]अपहृतपरिभूतयः प्रहताश्च पातकपथाः । हतबान्धवा हृतवित्ता वधबन्धातुराश्च मुक्त-

तया । विभोः राज्ञः अहरहः प्रतिदिनम् । व्यवर्धन्त विवर्धिताः अभवन् । सामन्ताः अधीनभूपालाः च पौरमुख्याः नागरिकप्रधानाः च जानपदमुख्याः ग्रामीणप्रधानाः च । समानम् शीलम् येषाम् तत्ता तया । उपारूढः प्राप्तः विश्रम्भः विश्वासः येन तेन । सजानयः जायाभिः पत्नीभिः सह वर्तमानाः ("जायाया निङ्" इति समासान्तः) । पानगोष्ठीषु मद्यपानगोष्ठीषु । अभ्यन्तरीकृताः प्रवेशिताः । आचारम् अधिकारम् । अत्यचारिषुः अलङ्घयन् । तेषाम् सामन्तादीनाम् अङ्गनासु पत्नीषु । अनेके बहवः च ते अपदेशाः छलानि च तत्पूर्वम् । अपाचरत् भुक्तवान् । नरेन्द्रः राजा । तस्य (राज्ञः) अन्तःपुरेषु राज्ञीषु । अमी ते (सामन्तादयः) । भिन्नम् खण्डितम् वृत्तम् चरित्रम् येषाम् तेषु । मन्दः नष्टः त्रासः भयम् येषाम् ते । कुलाङ्गनाजनः कुलनार्यः । पांसुलजनेषु दुश्चरित्रसमाजे भङ्गिभाषणे वक्रोक्तौ रतः लग्नः । भग्नम् खण्डितम् चारित्रस्य चरित्रस्य यन्त्रणम् बन्धनम् यस्य सः । तृणाय गणयित्वा निःसारान् मत्वा । भर्तॄन् पतीन् । धातॄणाम् जाराणाम् ("धाता जारे विधातरि" इति अजयः) गणानाम् समूहानाम् मन्त्रणानि वचनानि तत् उक्तम् मूलम् कारणम् येषाम् ते । अमर्षेण क्रोधेन सह वर्तमानानाम् तत् असहमानानाम् । उदभवन् उद्भूताः । अहन्यन्त हताः । दुर्बलाः अल्पबलाः । बलिभिः सबलैः । अपहृतानि चोरितानि । धनवताम् धनिनाम् । तस्करादिभिः चौरादिभिः । अपहृताः दूरीकृताः परिभूतयः परिभवाः (तिरस्काराः) येभ्यः ते । प्रहताः क्षुण्णाः । पातकस्य पापस्य पन्थानः मार्गाः । हताः बान्धवाः बन्धवः यासाम् ताः । वधः च बन्धः बन्धनम् च ताभ्याम् आतुराः

गये । राजा ने समान स्वभाव वाला होने के कारण अधीनस्थ राजों, नागरिक-प्रधानों और ग्रामीण-प्रधानों पर विश्वास धारण कर उन्हें सपत्नीक मद्य-पान सभाओं में दाखिल कराया । उन्होंने अपना-अपना आचार छोड़ दिया । राजा ने उनकी पत्नियों के प्रति अनेक बहाने बनाकर अनाचार किया और वे लोग उस- (राजा) के चरित्र-हीन हो गये रनिवास में निडर होकर बहुत सुख से रहने लगे । सभी कुल-नारियाँ दुश्चरित्रों के समाज में व्यंग-भाषण में लग गईं । उनका चरित्र-बन्धन छिन्न-भिन्न हो गया । वे पति को तिनका भी न मानकर यार के दल की मंत्रणायें सुनती थीं । न सहन कर पाने वालों के उसी कारण से उत्पन्न झगड़े उठ खड़े हुए । बलवानों के द्वारा दुर्बल मारे गये । धनवानों का धन चोर आदि के द्वारा चुरा लिया गया । पाप के मार्गों का तिरस्कार मिट गया जिससे उन पर गमनागमन खूब हुआ ।

---

१. सजानपदा । २. संलग्नसुलभभङ्गि० । ३. अपहृतपरिहृतयः ।

कण्ठमाक्रोशन्नश्रुकण्ठ्यः प्रजाः। दण्डश्चायथाप्रणीतो भयक्रोधावजनयत्। कृशकुटुम्बेषु लोभः पदमधत्त। विमानिताश्च तेजस्विनोऽमानेनादह्यन्त। तेषु तेषु चाकृत्येषु प्रासरन्परोपजापाः। तदा च [1]मृगयुवेषमृगबाहुल्यवर्णनेनाद्रिद्रोणीरनपसारमार्गाः शुष्कतृणवंशगुल्माः प्रवेश्य द्वारतोऽग्निविसर्गैः, व्याघ्रादिवधे प्रोत्साह्य तन्मुखपातनैः, इष्टकूपतृष्णोत्पादनेनातिदूरहारितानां प्राणहारिभिः क्षुत्पिपासाभिवर्धनैः, [2]तृणगुल्मगूढच्छन्नतटप्रदरपातहेतुभिर्विषममार्गप्रधावनैः, विषमुखीभिः क्षुरिकाभिश्चरणकण्टकोद्धरणैः विष्वग्विसर[3]विच्छिन्नानुयातृतयैका-

दुःखिन्यः। मुक्तकण्ठम् उच्चैः। आक्रोशन् व्यलपन्। अश्रुकण्ठ्यः अश्रुगद्गदस्वराः। प्रजाः जनाः। अयथाप्रणीतः अन्यायकृतः। कृशेषु दरिद्रेषु कुटुम्बेषु। अधत्त अस्थापयत्। विमानिताः अवमानिताः। मानेन अभिमानेन। अदह्यन्त दग्धाः। अकृत्येषु पापकर्मसु। परस्य शत्रोः उपजापाः भेदाः (छलानि)। मृगयोः व्याधस्य वेषेण रूपेण मृगाणाम् पशूनाम् बाहुल्यस्य अतिशयस्य वर्णनेन। अद्रेः पर्वतस्य द्रोणीः मध्यमार्गान्। न अपसारस्य निर्गमनस्य मार्गाः यासाम् ताः। शुष्काणि तृणानि घासाः वंशगुल्मानि वेणुगहनानि यासु ताः। द्वारतः (प्रांत) अग्नेः विसर्गैः प्रदानैः। तस्य (व्याघ्रादेः) मुखे पातनैः। इष्टः इच्छितः कूपः तत्र तृष्णा प्रलोभनम् तस्याः उत्पादनेन। अतिदूरम् हारितानाम् नीतानाम्। प्राणहारिभिः प्राणनाशकैः। क्षुत् क्षुधा च पिपासा च तयोः अभिवर्धनैः वृद्ध्या। तृणानाम् गुल्मेन गहनभागेन गूढं गुप्तम् यथा स्यात् तथा छन्नः तटस्य उन्नतप्रदेशस्य प्रदरः निम्नगः भागः तस्मात् पातस्य पतनस्य हेतुभिः कारणैः। विषमाः उच्चावचाः च ते मार्गाः च तैः प्रधावनैः प्रकर्षेण धावनैः। विषम् मुखे यासाम् ताभिः क्षुरिकाभिः असिपुत्रीभिः चरणे यत् कण्टकम् तस्य उद्धरणैः निष्कासनैः। विष्वक् सर्वतः यः विसरः प्रसारः तेन विच्छिन्नाः पृथग्भूताः अनुयातारः येषाम् तत्ता तया। यथेष्टैः

जनता आँसू से लड़खड़ाता स्वर लेकर गला फाड़कर चिल्लाती थी। उसके बन्धु मर गये थे, उसका धन चोरी चला गया था और हत्या और गिरफ्तारी से वह परेशान हो गई थी। अन्याय पूर्वक दी गई सजा ने डर और गुस्से को जन्म दिया। गरीब परिवारों में लोभ ने पैर जमाया। तेजस्वी लोग अपमानित होकर स्वाभिमान के कारण दग्ध हुए। शत्रु के षड्यंत्र विभिन्न कुकृत्यों में फैले। तब फिर अश्मक के राजा के द्वारा लगाये गये तेज जहर देने वाले आदि लोग शिकारी का भेष बनाकर पशुओं की बहुलता का वर्णन करके निकलने के रास्ते से रहित और सूखे तिनके और बाँस के घने भागों वाली पहाड़ी घाटियों में प्रविष्ट कराकर द्वार पर आग लगाने लगे। बाघ आदि के वध के लिये प्रोत्साहित कर उन- (बाघ आदि पशुओं) के मुँह में ढकेलने लगे। इच्छित कुएँ के लिये लालच पैदाकर खूब दूर ले जाकर भूख और प्यास की प्राण-नाशक वृद्धि करने लगे। ऊबड़-खाबड़ रास्तों में ऐसी तेज दौड़ें कराने लगे जो ऊँचे प्रदेशों के घास के घने भागों से गुप्त रूप से ढके हुए ढालुये भागों से गिराने का कारण बनें। नोक में जहर वाली छूरियों से पैर के काँटे निकालने लगे। सब

---

१. मृगाटवीषु मृगबाहु०। २. गुल्मतृण-। ३. प्रचार-।

कीकृतानां यथेष्टघातनैः मृगदेहापराद्धैर्नामेषुमोक्षणैः, सपणबन्धमधिरुह्याद्रिशृङ्गाणि दुरधिरोहाण्यनन्यलक्ष्यैः प्रभ्रंशनैः, आटविकच्छद्मना विपिनेषु विरलसैनिकानां प्रतिरोधनैः, अक्षद्यूतपक्षियुद्धयात्रोत्सवादिसंकुलेषु बलवदनुप्रवेशनैः, इतरेषां हिंसोत्पादनैः, गूढोत्पादितव्यलीकेभ्योऽप्रियाणि प्रकाशं लब्ध्वा साक्षिषु तद्विख्याप्याकीर्तिगुप्तिहेतुभिः पराक्रमैः, परकलत्रेषु सुहृत्त्वेनाभियोज्य जारान्भर्तॄ[1]नुभयं वा प्रहृत्य तत्साहसोपन्यासैः, योग[2]नारीहारितानां संकेतेषु प्रागुपनिलीय पश्चादभिद्रुत्याकीर्तनीयैः प्रमापणैः, उपप्रलोभ्य बिलप्रवेशेषु निधानखननेषु

इच्छानुसारैः घातनैः हननैः। मृगस्य पशोः देहे शरीरे अपराद्धैः लक्ष्यच्युतैः। नाम (अलीके)। इषूणाम् बाणानाम् मोक्षणैः पातनैः। सपणबन्धम् पणम् कृत्वा। अधिरुह्य आरुह्य। अद्रेः पर्वतस्य शृङ्गाणि शिखराणि। न अन्यलक्ष्यैः अपरदृश्यैः प्रभ्रंशनैः पातनैः। अटवीम् अटन्ति अमी इति आटविकाः तेषाम् छद्मना कपटेन। विपिनेषु वनेषु। प्रतिरोधनैः बन्धनैः। अक्षैः द्यूतम् च पक्षिणाम् खगानाम् युद्धम् च यात्रा च उत्सवः तदादिना सङ्कुलेषु संमर्देषु। बलवत् बलात्कारेण अनुप्रवेशनैः प्रवेश्य। इतरेषाम् अन्येषाम्। हिंसा घातः तस्याः उत्पादनैः जननैः। गूढम् गुप्तम् यथा स्यात् तथा उत्पादितम् जनितम् व्यलीकम् दुःखम् येषाम् तेभ्यः। अप्रियाणि (दुःखनि)। प्रकाशम् अगूढम्। तत् (अप्रियाणि)। विख्याप्य प्रकाश्य। अकीर्तेः अयशसः गुप्तिः तस्याः हेतुभिः कारणैः। पराक्रमैः पलायनैः। परेषाम् कलत्रेषु भार्यासु। सुहृत्त्वेन मित्रत्वेन। अभियोज्य नियोज्य। जारान् उपपतीन्। भर्तॄन् पतीन्। उभयम् द्वयम् अपि। प्रहृत्य हत्वा। तैः साहसस्य उपन्यासैः प्रकटनैः। योगा विस्रब्धघातिनी च सा नारी च तया हारितानाम् आकृष्टानाम्। संकेतेषु मिलनस्थानेषु। प्राक् पूर्वम्। उपनिलीय प्रच्छन्नः भूत्वा। अभिद्रुत्य धावित्वा। अकीर्तनीयैः निन्दनीयैः। प्रमापणैः हिंसनैः। उपप्रलोभ्य लुब्धीकृत्य। निधानाय

ओर फैल जाने से अनुगामियों के अलग हो जाने से जो अकेले पड़ जाते थे, उन्हें इच्छानुसार मारने लगे। बाण पशु के शरीर से चूक गया, इस बहाने की आड़ में (आदमियों पर) बाण छोड़ने लगे। शर्त बदकर पहाड़ की उन चोटियों पर चढ़कर जहाँ चढ़ना कठिन है, इस तरह धक्का देने लगे कि दूसरे न देख पायें। जंगल में घूमने वालों का भेष धारण कर जंगलों में पहुँचे कम सिपाहियों को कैद करने लगे। पाँसे के जुये, चिड़ियों की लड़ाई, मेले, जलसे आदि से भीड़-भाड़ वाले स्थानों में जबर्दस्ती ढकेलकर दूसरे लोगों के प्रति हिंसा की सृष्टि करते थे। जिनके प्रति गुप्त रूप से जिनके कष्ट पैदा कराये गये हैं, उनसे खुले आम अप्रिय बात (कष्ट) के विवरण लेकर गवाहों में उसे प्रचारित कर अपयश छिपाने के लिये (अपराधियों के द्वारा) पलायन कराने लगे। यारों को दोस्त के रूप में पराई नारियों के पीछे लगाकर, उन्हें (उन स्त्रियों के) पतियों अथवा दोनों को मारकर इस प्रकार दुःसाहस प्रदर्शित करने लगे। योग-प्रधान (योग से दृढ़ बनाई गई या विश्वासघात करने वाली) नारियों से आकृष्ट कराये गये लोगों को मिलने के स्थानों पर पहले छिपकर, फिर उन पर टूटकर उनकी

---

[1] भर्तृभयमपहृत्य। [2] योग्य।

मन्त्रसाधनेषु च विघ्नव्याजसाध्यैर्व्यापादनैः, मत्तगजाधिरोहणाय प्रेर्य [1]प्रत्यपायनिवर्तनैः, व्यालहस्तिनं कोपयित्वा लक्ष्यीकृतमुख्यमण्डलेष्वप[2]क्रमणैः, दायाद्यर्थे विवदमानानुपांशु हत्वा प्रतिपक्षेष्वयशःपातनैः, सामन्तपुरजनपदेष्वयथावृत्तानप्रकाशमभिप्रहृत्य तद्वैरिनामघोषणैः, [3]योगाङ्गनाभिरहर्निशमभिरमय्य राजयक्ष्मोत्पादनैः, वस्त्राभरणमाल्याङ्गरागादिषु रस[4]विधानकौशलैः, चिकित्सामुखेनामयोपबृंहणै[5]रन्यैश्चाभ्युपायैरश्मकेन्द्रप्रयुक्तास्तीक्ष्णरसदादयः प्रक्षपितप्रवीरमनन्तवसं-

भूमिगतधनाय खननेषु। मन्त्राणाम् साधनेषु सिद्धीकरणेषु। विघ्नस्य बाधायाः व्याजैः मिषैः। व्यापादनैः मारणैः। प्रेर्य प्रोत्साह्य। प्रत्यपायः प्रतिगतः अपायम् नाशम् (नाशात् रक्षणस्य उपायः)। तस्मात् निवर्तनैः अनवलम्बनैः। व्यालहस्तिनम् दुष्टगजम् (“व्यालो दुष्टगजः प्रोक्तः” इति हलायुधः)। कोपयित्वा कुपितीकृत्य। लक्ष्यीकृतानि मुख्यानाम् प्रधानपुरुषाणाम् मण्डलानि समूहाः तेषु। अपक्रमणैः मोचनैः। दायः दायभागः आदौ येषाम् तेषाम् अर्थे धने। विवदमानान् कलहायमानान्। उपांशु रहसि। प्रतिपक्षेषु विपक्षेषु। अयशसः अकीर्तेः पातनैः आरोपणैः। सामन्तानाम् अधीनस्थनृपाणाम् पुरेषु नगरेषु च जनपदेषु ग्रामेषु च। अयथावृत्तान् दुर्वृत्तान्। अप्रकाशम् गूढम्। अभिप्रहृत्य हत्वा। तेषाम् (हतानाम्) वैरिणाम् शत्रूणाम् नाम्नाम् घोषणैः डिण्डिमघोषपूर्वम् प्रकाशनैः। योगाङ्गनाः योगप्रधानाः अङ्गनाः कामिन्यः ताभिः। अहर्निशम् रात्रिंदिवम्। अभिरमय्य विहारे नियोज्य। राजयक्ष्मा क्षयरोगः तस्य उत्पादनैः जननैः। वस्त्रम् आभरणम् अलङ्कारः माल्यम् माला अङ्गरागः लेपः तदादिषु रसस्य विषस्य विधानम् प्रयोगः तस्य कौशलैः चातुर्यैः। चिकित्सायाः उपचारस्य मुखेन द्वारा। आमयानाम् रोगाणाम् उपबृंहणैः वर्धनैः। अश्मकानाम् अश्मकदेशस्य इन्द्रेण नृपेण प्रयुक्ताः। तीक्ष्णः मर्मघातकः (“तीक्ष्णा मर्मणि घातकाः” इति वैजयन्ती) च सः रसः विषम् च तम् ददाति इति तीक्ष्णरसदः तदादयः। प्रक्षपिताः प्रकर्षेण आधिक्येन क्षपिताः नाशिताः प्रवीराः

निन्दनीय हत्यायें करने लगे। बिलों (गड्ढों या गुफाओं) में घुसने के लिये प्रलोभन में फँसाकर तैयार कर (गड़े) खजाने खोदने और मंत्र-सिद्ध करने में (प्रेत आदि का) विघ्न उपस्थित हो गया, इस बहाने से साध्य हत्यायें करने लगे। मतवाले हाथी पर चढ़ने के लिए उकसाकर नाश से बचने का उपाय करने के समय पीछे हट जाने लगे। दुष्ट हाथी को गुस्सा कर निशाना बनाये गये प्रधान पुरुषों के समूह पर उसे चढ़ा देने लगे। (मृतक के धन के) बँटवारे आदि के धन को लेकर विवाद करने वालों को एकान्त में मारकर दूसरे पक्ष वालों पर कलङ्क लगाने लगे। अधीन राजाओं के नगरों और गाँवों में समाज-विरोधियों का गुप्त रूप से मारकर उनके विरोधियों के नामों की घोषणा करने लगे (इस रूप में कि उन्होंने ही मारा है), योग प्रधान (योग से दृढ़ बनाई गई या विश्वास-घातक) स्त्रियों के साथ रात-दिन भोग विलास में लगाकर क्षय रोग उत्पन्न कराने लगे। कपड़े, गहने, पुष्प-माला, लेप आदि में विष का कुशल प्रयोग करने लगे। इलाज के द्वारा (बहाना लेकर) रोग बढ़ाने

---

१. प्रत्यवायनिर्वर्तनैः। २. अक्रमपणैः। ३. योग्या। ४. रसधान। ५. उपवर्हणैः।

कटकं जर्जरमकुर्वन्।

अथ वसन्तभानुर्भानुवर्माणं नाम वानवास्यं प्रोत्साह्यानन्तवर्मणा व्यग्राहयत्। तत्परामृष्टराष्ट्रपर्यन्तश्चानन्तवर्मा तमभियोक्तुं बलसमुत्थानमकरोत्। सर्वसामन्तेभ्यश्चाश्मकेन्द्रः प्रागुपेत्यास्य प्रियतरोऽभूत्। अपरेऽपि सामन्ताः समगंसत। गत्वा [1]चाभ्यर्णे नर्मदारोधसि न्यविशन्त। तस्मिंश्चावसरे महासाम-

महावीराः यत्र,तत्। अनन्तवर्मणः (राज्ञः) कटकः राजधानी तम्। जर्जरम् शिथिलम्।

अथ ततः। वानवास्यम् वनवासदेशनृपम्। प्रोत्साह्य आक्रमणोत्साहम् वर्धयित्वा। व्यग्राहयत् विग्रहम् (युद्धम्) अकारयत्। तेन (भानुवर्मणा) परामृष्टः आक्रान्तः राष्ट्रस्य राज्यस्य पर्यन्तभागः सीमाप्रदेशः यस्य सः। तम् (भानुवर्माणम्)। अभियोक्तुम् आक्रमितुम्। बलस्य सेनायाः समुत्थापनम् व्यवस्थापनम्। सर्वे च ते सामन्ताः अधीनस्थनृपाः तेभ्यः। अश्मकानाम् अश्मकदेशस्य इन्द्रः राजा (वसन्तभानुः)। प्राक् पूर्वम्। उपेत्य आगत्य। अस्य (अनन्तवर्मणः)। प्रियतरः अतिशयेन प्रियः। अभूत् अभवत्। अपरे अन्ये। सामन्ताः अधीनस्थनृपाः। समगंसत (सम्+गम्लृ+लुङ्। "समो सम्यृच्छिभ्याम्" इति आत्मनेपदम्) मिलिताः अभवन्। अभ्यर्णे समीपे। नर्मदायाः रोधसि तटे। न्यविशन्त निविष्टाः। अवसरे

लगे। इन तथा अन्य उपायों से उन्होंने अनन्त वर्मा की सेना श्रेष्ठ वीरों को नष्ट कराकर शिथिल कर दी।

इसके बाद वसन्तभानु ने वनवासी[2] देश के राजा भानुवर्मा को उभारकर अनन्त वर्मा से लड़ा दिया। जब राज्य की सीमा उस (भानु वर्मा) के द्वारा स्पर्श की गई, तब अनन्त वर्मा ने उस पर आक्रमण करने के लिये सेना तैयार की। सब अधीनस्थ राजाओं से पहले आकर अश्मक का राजा इसका अधिक प्रिय बन गया। अन्य सामन्त भी जुटे। चलकर समीप में

---

[1] चाभ्यराति।

[2] वानवास्य—"वानवास्यो वनप्रभुः" उद्धरण देकर पद-चन्द्रिका टीका में जंगल के इलाके के राजा को वानवास्य बताया गया है। प्रो० पीटरसन के अनुसार दक्षिण भारत में वनवासी नामक राज्य था जिसकी खोज कर्नल कोलिन मेकेंजी ने सुण्डा जिले में प्राप्त अवशेषों से की थी। अगाशे के अनुसार वनवासी वर्तमान कनारा का उत्तरी भाग है जहाँ छठी तथा सातवीं सदी में कदम्ब-वंश का राज्य था। महाभारत में वनवासिक राज्य की चर्चा दक्षिण भारत के एक जनपद (गाँव या देश) के रूप में द्रविड़, केरल आदि के साथ आई है: अथापरे जनपदा दक्षिणा भरतर्षभ। द्रविडाः केरलाः प्राच्या मूषिका वनवासिकाः॥ कर्णाटका महिषकाः। [भीष्मपर्व ९।५८–५९।]

न्तस्य कुन्तलपतेरवन्तिदेवस्यात्मनाटकीयां क्ष्मातलोर्वशीं नाम चन्द्रपालितादिभिरतिप्रशस्तनृत्यकौशलामाहूयानन्तवर्मा नृत्यमद्राक्षीत् । अतिरक्तश्च भुक्तवानिमां मधुमत्ताम्[1] । अश्मकेन्द्रस्तु कुन्तलपतिमेकान्ते समभ्यधत्त—'प्रमत्त एष राजा कलत्राणि नः परामृशति । कियत्यवज्ञा सोढव्या । मम शतमस्ति हस्तिनाम् पञ्चशतानि च ते । तदावां संभूय मुरलेश वीरसेनमृची[2]केशमेकवीरं कोङ्कणपतिं कुमारगुप्तं नासिक्यनाथं च नागपालमुप[3]जपाव । ते चावश्यमस्या-

समये । आत्मनः स्वस्य नाटकीयाम् नर्तकीम् । अतिप्रशस्तम् परमश्लाघ्यम् नृत्यस्य कौशलम् निपुणता यस्याः सा । आहूय आकार्य । अद्राक्षीत् अपश्यत् । अतिरक्तः परमानुरक्तः (सन्) । भुक्तवान् अरमत । इमाम् (नर्तकीम्)। मधुना मद्येन मत्ताम् प्रमत्ताम् । समभ्यधत्त अवदत् । प्रमत्तः उन्मत्तः । कलत्राणि नार्यः । नः अस्माकम् । परामृशति स्पृशति । कियती कियन्मात्रा । अवज्ञा तिरस्कारः । सोढव्या सहनीया । हस्तिनाम् गजानाम् । संभूय मिलित्वा । मुरलायाः[4] केरलदेशस्य ईशम् राजानम् । ऋषीकस्य[5] ईशम् नृपम् । कोङ्कणस्य[6] पतिम् । नासिक्यस्य[7]

नर्मदा के किनारे उन्होंने पड़ाव किया । उस अवसर पर महान् सामन्त कुन्तल[8]-नरेश अवन्ति देव की अत्यन्त सराहनीय नृत्य-कुशलता-युक्त क्ष्मातलोर्वशी नामक निजी नर्तकी को चन्द्र पालित आदि के द्वारा बुलाकर अनन्तवर्मा ने (उसका) नाच देखा । फिर अत्यन्त आसक्त होकर मद्य से प्रमत्त उससे रमण किया । उधर अश्मक-नरेश ने कुन्तल-नरेश से एकान्त में कहा—'यह मतवाला राजा हमारी नारियों को हाथ लगाता है । कितना तिरस्कार सहा जाय ? मेरे पास सौ हाथी हैं और आपके पास पाँच सौ । तो हम दोनो मिलकर मुरला के राजा वीरसेन, ऋषीक के राजा एकवीर, कोङ्कण के राजा कुमार गुप्त और

---

[1] वधूत्तमाम् । [2] ऋचीके० । [3] उपजपात्रः ।

[4] मुरला केरल है । इसमें मुरला नदी प्रधान है जो वर्तमान काली नदी मानी जाती है । इस नदी का वर्णन कालिदास के रघुवंश (४।५५) तथा उत्तररामचरित ३ में आया है । इस नाम के आधार पर केरल-वासी मुरल भी कहे जाते हैं । प्राचीन केरल कावेरी नदी से उत्तर-पश्चिमी घाट और समुद्र के बीच का क्षेत्र था ।

[5] रामायण में "विदर्भानृषिकांश्चैव रम्यान् माहिषकानपि" आया है (४।४१) । महाभारत (भीष्म-पर्व ९.५।६४) तथा बृहत्संहिता (१४।१५) में भी यह नाम आया है ।

[6] यह दक्षिण भारत का एक पुराना देश है । सह्याद्रि और समुद्र के मध्य का क्षेत्र जिसे कोङ्कण भी कहते हैं ।

[7] दक्षिण भारत का एक प्राचीन देश जिसे कुछ लोग गोदावरी-तटवर्ती वर्तमान नासिक बताते हैं । बृहत्संहिता (१४।१३) में दक्षिण भारतीय देशों के साथ इसका उल्लेख है :

कर्णाटमहाटविचित्रकूटनासिक्यकोलगिरिचोल्लाः ।

[8] विंसेंट स्मिथ के अनुसार भीमा और वेदवती नदियों के बीच में यह देश था । इसकी पश्चिमी सीमा पर शिमोगा, चीतल-द्रूग, बेलारी, धारवाड़ और बीजापुर आदि के

विनयमसहमाना अस्मन्मतेनैवोपावर्तेरन् । अयं च वानवास्यः [1]प्रियं मे मित्रम् । अमुनैनं दुर्विनीतमग्रतो व्यतिषक्तं पृष्ठतः प्रहरेम । कोशवाहनं च विभज्य गृह्णीमः' इति । हृष्टेन चामुनाभ्युपेते, विंशतिं वरांशुकानाम् पञ्चविंशतिं काञ्चनकुङ्कुमकम्बलानाम् प्राभृतीकृत्याप्तमुखेन तैः सामन्तैः संमन्त्र्य तानपि स्वमतावस्थापयत् । उत्तरेद्युस्तेषां सामन्तानां वानवास्यश्चानन्तवर्मा नयद्वेषादामिषत्वमगमत् । वसन्तभानुश्च तत्कोशवाहनमवशीर्णमात्माधिष्ठितमेव कृत्वा 'यथाबलं[2] च विभज्य गृह्णीत । युष्मदनुज्ञया येन केनचिदंशेनाहं तुष्यामि' इति शाठ्यात्सर्वानुवर्ती, तेनैवामिषेण निमित्ती[3]कृतेनोत्पादितकलहः सर्वसामन्तान-

---

नाथम् स्वामिनम् । उपजपाव विघटयाव । अविनयम् औद्धत्यम् । अस्माकम् मतेन । उपावर्तेरन् चलेयुः । अमुना तेन (वानवास्येन) । अग्रतः रणाग्रभागे । व्यतिषक्तम् व्यापृतम् । पृष्ठतः पृष्ठभागे । प्रहरेम हन्याम । कोशम् च वाहनम् च । हृष्टेन प्रसन्नेन । अमुना तेन (अवन्तिदेवेन) । अभ्युपेते स्वीकृतवति । वराणि उत्तमानि च तानि अंशुकानि वस्त्राणि च । काञ्चनानि काञ्चनवर्णानि कुङ्कुमकम्बलानि कुङ्कुमेन केसरेण वासितानि कम्बलानि तेषाम् । प्राभृतीकृत्य उपायनीकृत्य । आप्तस्य विश्वस्तस्य मुखेन द्वारा । तैः मुरलेशादिभिः । संमन्त्र्य परामृश्य । स्वस्य मतौ विचारे । उत्तरेद्युः आगामिनि दिवसे । नयस्य नीतेः द्वेषात् अननुगमनात् । आमिषत्वम् ग्रासत्वम् । अगमत् अगच्छत् । तस्य कोशम् वाहनम् च । अवशीर्णम् ध्वस्तम् । आत्मना स्वेन अधिष्ठितम् अधिकृतम् । बलम् शक्तिम् अनतिक्रम्य यथाबलम् । युष्माकम् अनुज्ञया अनुमत्या । येन केनचित् (अल्पेन अपि) । तुष्यामि तुष्टः अस्मि । शाठ्यात् चातुर्येण । सर्वानुवर्ती सर्वानुसरणपरायणः । आमिषेण प्रलोभनेन । निमित्तीकृतेन कारणीकृतेन । उत्पादितः

नासिक्य के राजा नागपाल को फोड़ लें । वे भी अवश्य ही इसकी उद्दण्डता न सहते हुए हमारे मत से ही चलेंगे । ये वनवासी-नरेश मेरे प्रिय मित्र हैं । उनसे जब यह उद्दण्ड आगे की ओर उलझा रहेगा, तब हम पीछे से हमला बोलेंगे । खजाना और सवारियाँ बाँट कर ले लेंगे । प्रसन्न होकर उसके द्वारा स्वीकार कर लिये जाने पर बीस श्रेष्ठ वस्त्र और पच्चीस सुनहले और केसर की सुगन्ध वाले दुशाले उपहार में देकर विश्वस्त व्यक्ति के द्वारा उन सामन्तों से मंत्रणा कर उन्हें भी अपने विचार का कर लिया । दूसरे दिन अनन्त वर्मा नीति से विमुख रहने से उन सामन्तों और वनवासी-नरेश का ग्रास बन गया । वसन्तभानु ने उसके ध्वस्त खजाने और परिवहन को अपने अधिकार में लाकर कहा—'शक्ति के अनुसार बाँट लें । आप लोगों की आज्ञा से किसी अंश (छोटे या बड़े) से मैं सन्तुष्ट हूँ' यह कहकर शठता (चालाकी) से सबका अनुयायी बनकर उसी प्रलोभन को कारण बनाकर झगड़ा

पश्चिमी घाट के इलाके थे । यह एक प्राचीन देश है जो चोल देश से उत्तर था । इसकी राजधानी कल्याण या कल्लियान-दूर्ग थी ।

१. परम् । २. यथाप्रयासं यथाबलम् । ३. निमित्तीकृत्य ।

ध्वंसयत् । तदीयं च सर्वस्वं स्वयमेवाग्रसत् । वानवास्यं केनचिदंशेनानुगृह्य प्रत्यावृत्य सर्वमनन्तवर्मराज्यमात्मासादकरोत् ।

अस्मिंश्चान्तरे[1] मन्त्रिवृद्धो वसुरक्षितः कैश्चिन्मौलैः संभूय बालमेनं भास्करवर्माणमस्यैव ज्यायसीं भगिनीं त्रयोदशवर्षां मञ्जुवादिनीमनयोश्च मातरं महादेवीं वसुन्धरामादायापसर्पन्नापदोऽस्या भावितया दाहज्वरेण देहमजहात् । अस्मादृशैर्मित्रैस्तु[2] नीत्वा माहिष्मतीं भर्तृद्वैमातुराय भ्रात्रे मित्रवर्मणे सापत्या देवी दर्शिताभूत् । तां चार्यामनार्योऽसावन्यथाभ्यमन्यत । निर्भर्त्सितश्च तया 'सुतमियमखण्डचारित्रा राज्यार्हं चिकीर्षति' इति नैर्घृण्यात्तमेनं बालमजिघांसीत्[3] ।

जनितः कलहः विवादः येन । अध्वंसयत् अनाशयत् । तदीयम् तेषाम् । अग्रसत् अगृह्णात् । प्रत्यावृत्य निवृत्य । आत्मसात् निजाधीनम् ।

अन्तरे अवसरे । मौलैः कुलक्रमागतैः मन्त्रिभिः । संभूय मिलित्वा । बालम् बालकम् । एनम् (कूपसमीपे पूर्वम् दृष्टम्) । अस्य (बालकस्य) । ज्यायसीम् ज्येष्ठाम् । भगिनीम् स्वसारम् । महादेवीम् पट्टमहिषीम् । अपसर्पन् निर्गच्छन् । आपदः विपत्तेः । अस्याः आगतायाः । भावितया दैवेन । अजहात् अत्यजत् । अस्मादृशैः अस्माकम् सदृशैः । भर्तुः (अनन्तवर्मणः) द्वैमातुराय वैमात्रेयाय (द्वयोः मात्रोः अपत्यम् द्वैमातुरः । 'मातुरुत्संख्यासंभद्रपूर्वायाः') । अपत्येन पुत्रेण सह वर्तमाना । आर्याम् श्रेष्ठाम् । अनार्यः दुष्टः । असौ (मित्रवर्मा) । अन्यथा (असतीम्) । अभ्यमन्यत मनसि अकरोत् । निर्भर्त्सितःनिन्दितः । तया (वसुन्धरया) । इयम् (महादेवी) । अखण्डम् अक्षतम् चारित्रम् चरित्रम् यस्याः सा । राज्यार्हम् राज्ययोग्यम् । चिकीर्षति कर्तुम् इच्छति । नैर्घृण्यात् निर्दयतया । तम् उक्तम् । एनम् (भास्करवर्माणम्) । बालम् बालकम् । अजिघांसीत्

लगाकर सब सामन्तों का ध्वंस कर दिया और उनका सर्वस्व खुद ही ले लिया । वनवासीनरेश को एक हिस्से से अनुगृहीत कर लौटकर अनन्त वर्मा का सारा राज्य उसने अपने अधीन कर लिया ।

इसी बीच बूढ़े मंत्री वसु रक्षित ने कुल-क्रम से आये हुये कुछ मंत्रियों से मिलकर इस भास्कर वर्मा नामक बालक, इसी की बड़ी बहन तेरह वर्षीय मन्जुवादिनी और इन दोनो की माँ महारानी वसुन्धरा को लेकर इस आफत से निकलते-निकलते भावी के (प्रबल होने के) कारण बुखार से शरीर छोड़ दिया । उधर हम-जैसे मित्रों ने माहिष्मती[4] (नगरी) ले जाकर राजा के सौतेले भाई मित्र वर्मा को पुत्र-सहित रानी के दर्शन कराये । उन सती को उस दुष्ट ने उलटा (असती) समझा । उनके द्वारा डाँटा जाने पर 'यह अकलङ्क-चरित्र वाली पुत्र को राज्य के योग्य बनाना चाहती है ।' यह सोचकर निर्दयता-पूर्वक उक्त इस बालक की

---

१. अवसरे । २. अस्मन्मित्रैस्तु । ३. अजिघांसत् ।

४. रघुवंश ६।४३ में यह नाम आया है। विन्ध्याचल और ऋक्ष पर्वत के बीच में यह नगरी थी। हैहय या कलचुरि वंश के कार्तवीर्यार्जुन और उसके पुत्र अर्जुन की यह राजधानी थी ।

इदं तु ज्ञात्वा देव्याहमाज्ञप्तः 'तात, नालीजङ्घ, जीवतानेनार्भकेण यत्र क्वचिदवधाय[1] जीव[2]। जीवेय चेदहमप्येनमनुसरिष्यामि। ज्ञापय मां क्षेमप्रवृत्तः स्ववार्ताम्' इति। अहं तु संकुले राजकुले कथंचिदेन निर्गमय्य विन्ध्याटवीं व्यगाहिषि। पादचार[3]दुःखितं चैनमाश्वासयितु घोषे क्वचिदहानि कानिचिद्विश्रमय्य, तत्रापि राजपुरुषसंपातभीतो दूराध्वम[4]पासरम्। तत्रास्य दारुणपिपासापीडितस्य वारि दातुकामः कूपेऽस्मिन्नपभ्रश्य पतितस्त्वयैवमनुगृहीतः। त्वमेवास्यातः शरणमेधि विशरणस्य राजसूनोः' इत्यञ्जलिमबध्नात्। 'किमीया[5] जात्यास्य माता' इत्यनुयुक्ते मयासुनोक्तम्—'पाटलिपुत्रस्य वणिजो वैश्रवणस्य दुहितरि सागर-

हन्तुम् ऐच्छत्। देव्या राज्ञ्या। आज्ञप्तः आदिष्टः। तात भद्र। अर्भकेण बालकेन। यत्र क्वचित् कस्मिन्नपि स्थाने। अवधाय सावधानतया। चेत् यदि। अनुसरिष्यामि अनुगमिष्यामि। ज्ञापय सूचय। क्षेमेण कुशलतया प्रवृत्तः गतः। स्वस्य वार्ताम् वृत्तम्। संकुले जनाकीर्णे। राजकुले राजप्रासादे। कथंचित् क्लेशेन। एनम् (बालकम्)। निर्गमय्य बहिः कृत्वा। विन्ध्याटवीम् विन्ध्याचलम्। व्यगाहिषि प्राविशम्। पादचारेण पद्भ्याम् गमनेन दुःखितम्। एनम् (बालकम्)। आश्वासयितुम् उपसान्त्वयितुम्। घोषे ("घोष आभीरपल्ली स्यात्" इति अमरः) आभीरपल्ल्याम्। क्वचित् कस्यामपि। अहानि दिनानि। विश्रमय्य विश्रामम् कारयित्वा। तत्र तस्मिन् (घोषे)। राजपुरुषाणाम् नृपसेवकानाम् संपातेन आगमनेन भीतः। दूराध्वम् दूरमार्गम्। अपासरम् अगच्छम्। तत्र (दूरमार्गे)। अस्य (बालकस्य)। दारुणा प्रबला या पिपासा तृषा तया पीडितस्य। वारि जलम्। अस्मिन् (दृश्यमाने)। अपभ्रश्य भ्रष्टः भूत्वा। त्वया (विश्रुतेन)। एवम् अनुभूतरीत्या। त्वम् (विश्रुतः)। अस्य (बालकस्य)। अतः अतः परम्। एधि भव। विगतम् शरणम् साहाय्यम् यस्य सः (निरवलम्बस्य)। राजसूनोः राजकुमारस्य। किमीया कस्य (वंशस्य) इयम्। जात्या जन्मना। अस्य (बालकस्य)। अनुयुक्ते पृष्टे। मया

हत्या करनी चाही। यह जानकर रानी ने मुझे आदेश दिया—'भद्र नालीजङ्घ, इस बालक को जीवित अवस्था में साथ लेकर जहाँ-कहीं सावधानी से जीवित रहो (भाग जाओ जिससे जान बचे)। यदि जीती रही तो मैं भी इसका अनुसरण करूँगी। कुशल-पूर्वक पहुँचकर मुझे अपनी कुशलता देते रहना। उधर मैंने भीड़-भाड़-भरे राज महल में किसी तरह इन्हें निकालकर विन्ध्याचल में प्रवेश किया। पैदल चलने से पीड़ित इन्हें आश्वासन देने के लिए किसी घोष (अहीरों का गाँव) में कुछ दिन आराम कराकर वहाँ भी राज-सेवकों के आने-जाने से डरकर दूर भाग आया हूँ। वहाँ प्रबल प्यास से पीड़ित इन्हें पानी देने की इच्छा से (चला तो) इस कूयें में फिसलकर गिर पड़ा और आपके द्वारा इस प्रकार कृपा की गई है। अब से आप ही इस शरण-रहित राजकुमार की शरण बनें।' यह कहकर हाथ जोड़े। 'इसकी माँ जन्म से किस कुल की है?' यह मेरे द्वारा पूछे जाने पर उसने कहा—'पाटलिपुत्र (वर्तमान पटना) के

---

१. अवस्थाय। २. जीवेः। ३. ०दुःस्थितं; पादचारिणं। ४. दुरध्वमपसरन्नत्रास्य। ५. किमीयोऽयमित्यनुयुक्ते।

दत्तायां कोसलेन्द्रात्कुसुमधन्वनोऽस्य माता जाता' इति । 'यद्येवमेतन्मातुर्मत्पितुश्चैको मातामहः' इति सस्नेहं तमहं सस्वजे । वृद्धेनोक्तम्—'सिन्धु[1]दत्तापुत्राणां कतमस्ते पिता' इति । 'सुश्रुतः' इत्युक्ते सोऽत्यहृष्यत् । अहं तु तनया[2]वलिप्तमश्मकेन्द्रं नयेनैवोन्मूल्य बालमेनं पित्र्ये पदे प्रतिष्ठापयेयम्' इति प्रतिज्ञाय 'कथमस्यैनां क्षुधं क्षपयेयम्' इत्यचिन्तयम् । तावदापतितौ च कस्यापि व्याधस्य त्रीनिषूनतीत्य द्वौ मृगौ स च व्याधः । तस्य हस्तादवशिष्टमिषुद्वयं कोदण्डं चाक्षिप्याविध्यम्[3] । [4]एकः सपत्राकृतोऽन्यश्च निष्पत्राकृतोऽपतत् । तं चैकं मृग

(विश्रुतेन) । अमुना (नालीजङ्घेन) । उक्तम् कथितम् । दुहितरि पुत्र्याम् । कोसलानाम् कोसलदेशस्य इन्द्रात् नृपात् । एतस्य (बालकस्य) मातुः । मम (विश्रुतस्य) पितुः (सुश्रुतस्य) । तम् (बालकम्) । अहम् (विश्रुतः) । सस्वजे आलिङ्गितवान् । वृद्धेन (नालीजङ्घेन) । उक्तम् कथितम् । सिन्धुदत्तायाः पुत्राणाम् । कतमः कः । ते तव । उक्ते कथिते (मया) । सः (नालीजङ्घः) अत्यहृष्यत् अत्यानन्दितः । अहम् (विश्रुतः) । नयेन नीत्या अवलिप्तम् सगर्वम् । अश्मकानाम् अश्मकदेशस्य इन्द्रम् नृपम् । नयेन नीत्या । उन्मूल्य उत्पाट्य । बालम् (भास्करवर्माणम्) । पित्र्यम् पितुः इदम् तत्र । पदे स्थाने । अस्य (बालकस्य) । एनाम् प्रस्तुताम् । क्षुधम् क्षुधाम् । क्षपयेयम् दूरीकुर्याम् । तावत् तदा । आपतितौ आगतौ । इषून् बाणान् । अतीत्य उल्लङ्घ्य । मृगौ हरिणौ । तस्य (व्याधस्य) । अवशिष्टम् शेषम् । इषुद्वयम् बाणयुगलम् । कोदण्डम् धनुः । आक्षिप्य गृहीत्वा । अविध्यम् प्राहरम् । एकः (मृगः) । सपत्राकृतः सपुङ्खबाणयुक्तः कृतः अन्यः (मृगः) निष्पत्राकृतः पुङ्खरहितबाणयुक्तः कृतः ("सपत्रनिष्पत्रादतिव्यथने" अष्टाध्यायी ५।४।६१। इति डाच् प्रत्ययः) । (सपत्राकरोति मृगम् । सपुङ्खशरप्रवेशनेन सपत्रं करोतीत्यर्थः । निष्पत्राकरोति सपुङ्खस्य शरस्यापरपार्श्वेन निर्गमनात् निष्पत्रं करोतीत्यर्थः इति सिद्धांतकौमुद्याम्) । मृगयवे

सौदागर वैश्रवण की लड़की सागरदत्ता के गर्भ से उत्पन्न कोसल-देश के नरेश कुसुमधन्वा की पुत्री इसकी माँ है ।' 'अगर यह बात है तो इस-(बालक) की माँ और मेरे पिता के एक ही नाना हैं' यह कहकर मैंने उस (बालक) को स्नेह-पूर्वक गले लगा लिया । बूढ़ा बोला—'सिन्धुदत्ता के बेटों में से कौन आपके पिता हैं?' 'सुश्रुत' इतना कहे जाने पर वह अत्यन्त प्रसन्न हुआ । उधर मैंने 'नीति के घमण्ड में भरे हुए उस अश्मक-नरेश को नीति से ही उखाड़कर इस बालक को पिता के स्थान पर प्रतिष्ठित करूँगा ।' यह प्रतिज्ञा कर 'कैसे इसकी यह भूख दूर करूँ ?' यह सोचने लगा । उसी समय किसी बहेलिये के तीन बाणों से बचकर निकले हुए दो हिरन आ पड़े । साथ ही बहेलिया था । उसके हाथ से बचे हुए दो बाण और धनुष छीनकर बेधा । एक बाण पंख के साथ गिरा और दूसरा बाण पंख-रहित (पहले के

---

[1] वन० । [2] दुर्नयात्र० । [3] अवधिषम् । [4] एकश्च ।

दत्त्वा मृगयवे, अन्यस्यापक्लोमत्वचः क्लोमापोह्य निष्कुलाकृत्य विकृत्योर्वस्थिग्रीवादीनि शूलाकृत्य दावाङ्गारेषु तप्तेनामिषेण तयोरात्मनश्च क्षुधमत्यतार्षम्[1]। एतस्मिन्कर्मणि मत्सौष्ठवेनातिहृष्टं किरातमस्मि पृष्टवान्—'अपि जानासि माहिष्मतीवृत्तान्तम्' इति। असावाचष्ट—'तत्र व्याघ्रत्वचो दृतीश्च विक्रीयाद्यैवागतः। किं न जानामि। प्रचण्डवर्मा नाम चण्डवर्मानुजो मित्रवर्मदुहितरं मञ्जुवादिनीं विलिप्सुरभ्येतीति तेनोत्सवोत्तरा[2]पुरी' इति। अथ कर्णे जीर्णमब्रवम्—'धूर्तो मित्रवर्मा दुहितरि सम्यक्प्रतिपत्त्या मातरं विश्वास्य तन्मुखेन प्रत्याकृष्य

व्याधाय। अपगतम् दूरीभूतम् लोम रोम यस्य तस्य। क्लोम मस्तिष्कम् ("तिलकं क्लोम मस्तिष्कम्" इति अमरः)। अपोह्य दूरीकृत्य। निष्कुलाकृत्य निष्कोष्य ["निष्कुलान्निष्कोषणे" (५।४।६२) इति डाच्। निर्गतं कुलमन्तरवयवानां समूहो यस्मादिति बहुव्रीहेर्डाच्। निष्कुला करोति दाडिमम् इति सिद्धान्तकौमुद्याम्।]। विकृत्य विच्छेद्य। ऊर्वोः अस्थि च ग्रीवा च तदादीनि। शूलाकृत्य शूले कृत्वा (शूलेन पाचयित्वा। "शूलात्पाके" इति डाच्)। दवस्य वनाग्नेः इमे इति दावाः ते च अङ्गाराः च तेषु। आमिषेण मांसेन। क्षुधम् क्षुधाम्। अत्यतार्षम् (अत्यतारिषम् इति साधुः प्रयोगः) अतिक्रान्तवान्। मम सौष्ठवेन सौजन्येन। अतिहृष्टम् सुप्रसन्नम्। किरातम् भिल्लम्। अपि किम्। माहिष्मत्याः (नगर्याः) वृत्तान्तम् वृत्तम्। असौ (किरातः)। आचष्ट अवदत्। तत्र (माहिष्मत्याम्) व्याघ्रस्य त्वचः चर्माणि। दृतिः चर्मपुटानि। चण्डवर्मणः अनुजः। मित्रवर्मणः दुहितरम् (भ्रातुः) पुत्रीम्। विलिप्सुः विलब्धुम् (विशेषेण लब्धुम्) इच्छुः (सन्)। अभ्येति आगच्छति। उत्सवोत्तरा उत्सवयुक्ता। पुरी नगरी। अथ ततः। जीर्णम् वृद्धम्। अब्रवम् अवदम्। धूर्तः छली। दुहितरि (भ्रातुः) कन्यायाम्। सम्यक्प्रतिपत्त्या उचितेन आचरणेन। मातरम् (वसुन्धराम्)। तस्याः (मातुः) मुखेन द्वारा। प्रत्याकृष्य आनीय। बालकम् (भास्करवर्माणम्)। जिघांसति हन्तुम् इच्छति।

शरीर में बाण पंख के आगे तक ही धँसा; दूसरे के शरीर में बाण ज्यादा अन्दर चला गया जिससे पंख शरीर की टक्कर से टूटकर गिर गया)। फिर उस एक हिरन को शिकारी को देकर, दूसरे की खाल बाल रहित करके मस्तिष्क बाहर किया। अन्दर का भाग निकाल और जाँघ की हड्डी, गरदन आदि काटकर शूल पर चढ़ाकर जंगली आग के अंगारों पर तपाये गये मांस से उन दोनो (बालक तथा बूढ़े) और अपनी भूख मिटाई। इस काम में अपने सौजन्य से अत्यन्त प्रसन्न भील से मैंने पूछा—'क्या माहिष्मती का समाचार जानते हो ?' वह बोला—'वहाँ बाघ की खाल और चमड़े के थैले बेचकर आज ही आया हूँ ; क्यों न जानूँगा ?' चण्ड वर्मा का प्रचण्ड वर्मा नामक छोटा भाई मित्र वर्मा की लड़की (सौतेले भाई की लड़की) मञ्जुवादिनी को विशेष रूप से पाने का इच्छुक होकर आ रहा

---

[1] अन्यतार्प्सम्; अतक्षिषम्। [2] सोत्सवा।

बालकं जिघांसति । तत्प्रतिगत्य कुशलमस्य मद्वार्ता च देव्यै रहो निवेद्य पुनः कुमारः शार्दूलभक्षित इति प्रकाशमाक्रोशनं कार्यम्। स दुर्मतिरन्तः प्रीतो बहिर्दुःखं दर्शयन्देवीमनुनेष्यति । पुनस्त्वया तन्मुखेन स वाच्यः—'यदपेक्षया त्वन्मत[1]मत्यक्रमिषं सोऽपि बालः पापेन मे परलोकमगात् । अद्य तु त्वदादेशकारिण्येवाहम्' इति । स तथोक्तः प्रीतिं प्रतिपद्यामिपत्स्यते । पुनरनेन वत्सनामनाम्ना महाविषेण [2]संनीय तोयं तत्र मालां मज्जयित्वा तया स वक्षसि मुखे च हन्तव्यः । 'स एवायमसिप्रहारः पापीयसस्तव भवतु यद्यस्मि पतिव्रता' इति ।

तत् अतः । प्रतिगत्य आसाद्य । अस्य (भास्करवर्मणः)। मम वार्ताम् वृत्तम्। देव्यै राज्ञ्यै (वसुन्धरायै) । रहः एकान्ते । निवेद्य सूचयित्वा । कुमारः बालकः (भास्करवर्मा) । शार्दूलेन भक्षितः खादितः । प्रकाशम् अगूढम्। आक्रोशनम् क्रन्दनम्। कार्यम् करणीयम् । सः (मित्रवर्मा)। अन्तः हृदये । प्रीतः प्रसन्नः। बहिः बाह्यतः । दर्शयन् प्रकटयन्। देवीम् राज्ञीम् (वसुन्धराम्)। त्वया (किरातेन) तस्याः (देव्याः) मुखेन द्वारा। सः (मित्रवर्मा)। वाच्यः कथनीयः । यस्य अपेक्षया कृते । तव मतम् अभीष्टम्। अत्यक्रमिषम् उल्लङ्घितवती । सः (भास्करवर्मा) । बालः बालकः । पापेन दुष्कृतेन। मे मम। अगात् अगच्छत् । तत्र आदेशकारिणी आज्ञानुवर्तिनी । तथा तेन प्रकारेण। उक्तः कथितः । प्रीतिम् प्रसन्नताम् । प्रतिपद्य प्राप्य । अभिपत्स्यते अङ्गीकरिष्यति । अनेन प्रस्तुतेन । संनीय मिश्रयित्वा । तोयम् जलम् । तत्र तस्मिन् (विषमिश्रिते जले)। सः (मित्रवर्मा)। वक्षसि हृदये । सः प्रसिद्धः (असिप्रहारः)। अयम् (मालाप्रहारः) । असिनः खड्गस्य प्रहारः हतिः । पापीयसः अतिशयेन पापस्य (पापिनः)। पतिव्रता सती। अनेन प्रस्तुतेन। अगदेन

है, इस बात से नगरी उत्सव-पूर्ण है।' अब मैंने बूढ़े के कान में कहा—'चालाक मित्र वर्मा लड़की (सौतेले भाई की लड़की) के प्रति अच्छे व्यवहार से माँ (वसुन्धरा) को विश्वास में लेकर उनके द्वारा बुलवाकर बालक (भास्कर वर्मा) को मारना चाहता है। अतः पहुँचकर इसकी कुशलता और मेरा समाचार रानी (वसुन्धरा) से एकान्त में कहकर फिर 'बालक चीते के द्वारा खा डाला गया' यह कहकर बाहर से चीख-पुकार मचाना। वह दुर्बुद्धि अन्दर से प्रसन्न होकर बाहरी तौर से दुःख प्रगट करता हुआ रानी (वसुन्धरा) को मनायेगा। फिर तुम उन- (रानी वसुन्धरा) के द्वारा उस (राजा) से कहलाना—'जिसका ख्याल कर तुम्हारे अभीष्ट को नहीं माना, वह बालक भी मेरे पाप से परलोक चला गया। अब तो मैं तुम्हारी आज्ञा-पालक-ही हूँ।' उस प्रकार कहा गया वह प्रसन्न होकर मान जायेगा। फिर इस वत्सनाम-नामक महान् विष से जल-मिश्रित कर उस- (मिश्रण) में माला डुबाकर उस- (माला) से वे (महारानी वसुन्धरा) उसके सीने और मुख पर 'यह प्रहार, तलवार का प्रसिद्ध प्रहार ही तुझ महापापी के लिए बने यदि मैं सती हूँ।' यह कहकर प्रहार

---

१. त्वदुक्तम् ।   २. संमील्य ।

पुनरनेनागदेन संगमितेऽम्भसि तां मालां मज्जयित्वा स्वदुहित्रे देया । मृते तु तस्मिंस्तस्यां च निर्विकारायां सत्यां सतीत्येवैनां प्रकृतयोऽनुवर्तिष्यन्ते । पुनः प्रचण्डवर्मणे सन्देश्यम्—'अनायकमिदं राज्यम् । अनेनैव सह बालिकेयं स्वीकर्तव्या' इति । तावदावां कापालिकवेषच्छन्नौ देव्यैव दीयमानभिक्षौ पुरो बहिरुपश्मशानं वत्स्यावः । पुनरार्य[1]प्रायान्पौरवृद्धानाप्तांश्च मन्त्रिवृद्धानेकान्ते ब्रवीतु देवी—'स्वप्नेऽद्य मे देव्या विन्ध्यवासिन्या कृतः प्रसादः । अद्य चतुर्थेऽहनि प्रचण्डवर्मा मरिष्यति । पञ्चमेऽहनि रेवातटवर्तिनि मद्भवने परीक्ष्य वैजन्यं जनेषु निर्गतेषु कपाटमुद्घाट्य त्वत्सुतेन सह कोऽपि द्विजकुमारो निर्यास्यति । स

विषनाशकेन औषधेन । संगमिते मिश्रिते । अम्भसि जले । ताम् रसार्द्राम् । मालाम् पुष्पमालाम् । स्वस्याः दुहित्रे कन्यायै । देया दातव्या । तस्मिन् (मित्रवर्मणि) । तस्याम् (कन्यायाम्) । निर्विकारायाम् विकाररहितायाम् । एनाम् (महादेवीम् वसुन्धराम्) । प्रकृतयः प्रजाः । अनुवर्तिष्यन्ते अनुगमिष्यन्ति । सन्देश्यम् कथनीयम् । अविद्यमानः नायकः नेता (राजा) यत्र तत् । अनेन (राज्येन) । इयम् (मञ्जुवादिनी) । स्वीकर्तव्या स्वीकरणीया । तावत् तदा । आवाम् अहम् (विश्रुतः) च अयम् (बालकः) च । कापालिकः कपालहस्तः संन्यासी तस्य वेषेण रूपेण छन्नौ गुप्तौ । देव्या राज्ञ्या (वसुन्धरया) दीयमाना भिक्षा याभ्याम् तौ । पुरः पुरतः । उपश्मशानम् श्मशानस्य समीपे । वत्स्यावः स्थास्यावः । आर्यप्रायान् साधुबहुलान् । पौरेषु नागरिकेषु वृद्धान् । आप्तान् विश्वासभाजनानि । मन्त्रिषु वृद्धान् । ब्रवीतु वदतु । देवी राज्ञी (वसुन्धरा) । प्रसादः कृपा । अद्य अस्मात् दिनात् । अहनि दिने । रेवातटवर्तिनि नर्मदातटस्थिते । मम भवने प्रासादे । वैजन्यम् विजनत्वम् । उद्घाट्य अनावृत्य । तव सुतेन पुत्रेण (भास्करवर्मणा) । द्विजस्य ब्राह्मणस्य कुमारः बालकः । निर्यास्यति निर्गमिष्यति । सः

करें । फिर इस विष-नाशक दवा से मिश्रित पानी में वह माला डुबाकर अपनी लड़की को दें । उधर उस- (राजा मित्र वर्मा) के मरने और इधर उस (पुत्री) के विकार-रहित रहने पर 'ये सती हैं' यह कहकर ही जनता अनुसरण करेगी । तब प्रचण्ड वर्मा के पास संदेश भेजना—'यह राज्य नेता-रहित है । इसी के साथ यह बालिका स्वीकार करें ।' तब तक हम दोनों कापालिक (कपाल को भिक्षा पात्र बनाने वाले शैव सन्यासी) के भेष में छिपे, हुए जिन्हें रानी ही भिक्षा दे सकती है (तभी स्वीकार होगी), ऐसे बनकर नगर के बाहर श्मशान के पास रहेंगे । फिर रानी (वसुन्धरा) वृद्ध नागरिकों और विश्वस्त वृद्ध मंत्रियों के समाज से जिसमें सज्जनों का बहुमत हो एकान्त में कहें—'सपने में आज विन्ध्यवासिनी देवी ने मेरे ऊपर कृपा की है । आज से चौथे दिन प्रचण्ड वर्मा मर जायेगा । पाँचवें दिन नर्मदा (नदी) के किनारे स्थित मेरे महल में जन शून्यता की परीक्षा कर (देखकर) लोगों के निकल जाने पर पल्ला खोलकर तुम्हारे पुत्र के साथ एक ब्राह्मण-पुत्र निकलेगा । वह इस राज्य की रक्षा कर

---

१. पुनराकार्यार्यप्रायान् ।

राज्यमिदमनुपाल्य बालं ते प्रतिष्ठापयिष्यति । स खलु बालो मया व्याघ्रीरूपया तिरस्कृत्य स्थापितः । सा चेयं वत्सा मञ्जुवादिनी तस्य द्विजातिदारकस्य दारत्वेनैव कल्पिता' इति तदेतदतिरहस्यं युष्मास्वेव गुप्तं तिष्ठतु यावदेतदुपपत्स्यते' इति । स [1]सांप्रतमतिप्रीतः प्रयातोऽर्थश्चायं यथाचिन्तितमनुष्ठितोऽभूत् । प्रतिदिशं च लोकवादः प्रासर्पत्--'अहो माहात्म्यं पतिव्रतानाम् । असिप्रहार एव हि स मालाप्रहारस्तस्मै जातः । न शक्यमुपधियुक्तमेतत्कर्मेति वक्तुम् । यतस्तदेव दत्त दाम दुहित्रे स्तनमण्डनमेव तस्यै जातं, न मृत्युः । योऽस्याः पतिव्रतायाः शासनमतिवर्तते स भस्मैव भवेत्' इति ।

अथ महाव्रतिवेषेण मां च पुत्रं च भिक्षायै प्रविष्टौ दृष्ट्वा प्रस्नुतस्तनी

(ब्राह्मणपुत्रः) । अनुपाल्य रक्षित्वा । बालम् बालकम् । ते तव । प्रतिष्ठापयिष्यति स्थापयिष्यति । सः (भास्करवर्मा) । खलु निश्चयेन । बालः बालकः । मया (विन्ध्यवासिन्या) । व्याघ्रयाः रूपम् वेषः यस्याः तया । तिरस्कृत्य गूढीकृत्य । वत्सा पुत्री । द्विजातेः ब्राह्मणस्य दारकस्य पुत्रस्य दारत्वेन भार्यारूपेण । कल्पिता सृष्टा । अतिरहस्यम् अत्यन्तगोप्यम् । गुप्तम् गुप्तरूपेण । एतत् उक्तम् । उपपत्स्यते उपपन्नम् (सिद्धम्) भविष्यति । सः (किरातः) । सांप्रतम् अधुना । अतिप्रीतः सुप्रसन्नः । प्रयातः गतः । अर्थः कार्यम् । यथाचिन्तितम् चिन्तितस्य अनुसारेण । अनुष्ठितः सम्पन्नः । अभूत् अभवत् । प्रतिदिशम् दिशम् दिशम् प्रति । लोकवादः जनचर्चा । प्रासर्पत् प्राचरत् । अहो (आश्चर्ये) । माहात्म्यम् महिमा । पतिव्रतानाम् सतीनाम् । तस्मिन् (राशि मित्रवर्मणि) । शक्यम् संभवम् । उपधिः कपटम् तेन युक्तम् । दाम माला । दुहित्रे कन्यायै । स्तनयोः मण्डनम् भूषणम् । तस्यै (कन्यायै) । जातम् भूतम् । पतिव्रतायाः सत्याः शासनम् आज्ञा । अतिवर्तते उल्लङ्घयति ।

अथ ततः । महान् च असौ व्रती च (कापालिकः) तस्य वेषेण रूपेण । माम् (विश्रुतम्) । पुत्रम् (भास्करवर्माणम्) । प्रस्नुतौ क्षरद्दुग्धौ स्तनौ यस्याः सा । हर्षेण आनन्देन आकु-

तुम्हारे पुत्र को (उस पर) प्रतिष्ठित करेगा । (निश्चय ही) उस लड़के को बाघिन के भेष में मैंने छिपाकर रखा है । यह प्यारी बेटी मञ्जुवादिनी उस ब्राह्मण-पुत्र की पत्नी के रूप में सिरजी गई है ।' तो यह अत्यन्त गुप्त बात आप लोगों तक ही गुप्त रूप से रहे जब तक यह सिद्ध नहीं हो जाती ।' वह अब बहुत खुश होकर रवाना हुआ और यह काम जैसा सोचा था, उसी के अनुसार संपन्न हुआ । हर दिशा में जन-चर्चा फैली—'धन्य है सतियों की महिमा ! निश्चय ही तलवार की चोट ही बन गई उस पर की गई माला की चोट । यह काम कपट से पूर्ण है, यह कहना संभव नहीं है, क्योंकि वही माला पुत्री को देने पर उसके लिये स्तन का अलङ्कार (शोभा) हो गई; मौत नहीं । जो इस सती के आदेश का उल्लंघन करेगा, वह राख ही हो जायेगा ।

इसके बाद महान् व्रतधारी (कापालिक) का भेष बनाये हुए मुझे और बेटे को भीख

---

[1] सांप्रतमित्यतिप्रीतः प्रायात् । अर्थ० ।

प्रत्युत्थाय [1]हर्षाकुलमब्रवीत्—'भगवन्, अयमञ्जलिः। अनाथोऽयं जनोऽनुगृह्यताम्। अस्ति ममैकः स्वप्नः स किं सत्यो न वा' इति। मयोक्तम्—'फलमस्याद्यैव द्रक्ष्यसि' इति। 'यद्येवं बहु भागधेयमस्या वो दास्याः। स खल्वस्याः सानाथ्यशंसी स्वप्नः' इति मद्दर्शनराग[2]बद्धसाध्वसां मञ्जुवादिनीं प्रणमय्य, भूयोऽपि सा हर्षगर्भमब्रूत—'तच्चेन्मिथ्या सोऽयं युष्मदीयो बालक[3]पाली श्वो मया निरोद्धव्यः' इति। मयापि सस्मितं मञ्जुवादिनीरागलीनदृष्टिलीढधैर्येणाभिहितम् 'एवमस्तु' इति। लब्धभैक्षो नालीजङ्घमाकार्य निर्गम्य ततश्च तं चानुयान्तं शनैरपृच्छम्—'क्वासावल्पायुः प्रथितः प्रचण्डवर्मा' इति। सोऽब्रूत—'राज्यमिदं ममे-

---

लम् विह्वलम् यथा स्यात् तथा। अब्रवीत् अवदत्। भगवन् श्रीमन्। अञ्जलिः नमस्कृतिः। अनाथः असहायः। अयम् जनः अहम् (वसुन्धरा)। मया (विश्रुतेन)। उक्तम् कथितम्। भागधेयम् भाग्यम्। वः युष्माकम् (आदरार्थे बहुवचनम्)। खलु (विनये)। सः (स्वप्नः)। खलु (वाक्यालङ्कारे)। सानाथ्यम् सनाथताम् शंसति असौ। इति (उक्त्वा)। मम दर्शनेन यः अनुरागः तेन बद्धम् दृढीभूतम् साध्वसम् जाड्यम् यस्याम् ताम्। प्रणमय्य प्रणामम् कारयित्वा। भूयः पुनः। सा (देवी वसुन्धरा)। हर्षगर्भम् सानन्दम्। अब्रूत अवदत्। तत् भवदुक्तम्। चेत् यदि। मिथ्या असत्यम्। युष्मदीयो भवदीयः। बालः बालकः च असौ कपाली संन्यासी च। श्वः आगामिनि दिने। निरोद्धव्यः बन्धनीयः। मया (विश्रुतेन)। सस्मितम् स्मितेन ईषद्हासेन सह। मञ्जुवादिन्याः रागे अनुरागे लीना मग्ना या दृष्टिः तया लीढम् कवलितम् धैर्यम् धृतिः यस्य तेन। अभिहितम् कथितम्। एवम् तथा। भिक्षा एव भैक्षम् (भिक्षादिभ्योऽण्)। लब्धम् भैक्षम् येन सः लब्धभैक्षः। आकार्य आहूय। ततः पश्चात्। तम् (नालीजङ्घम्)। अनुयान्तम् अनुगच्छन्तम्। शनैः मन्दस्वरेण। क्व कुत्र। प्रथितः प्रसिद्धः।

के लिये अन्दर आया देखकर उन-(रानी) के स्तनों से दूध बहने लगा। उन्होंने सम्मान-पूर्वक उठकर आनन्द विभोर होकर कहा—'श्रीमन्, प्रणाम। इस अनाथा पर कृपा करें। मेरा एक सपना है, वह सच होगा या नहीं?' मैं बोला—'इसका फल आज ही देखोगी।' 'अगर ऐसा है तो आपकी इस सेविका के बड़े भाग्य। वह स्वप्न इस लड़की की सनाथता का सूचक है (कि उसे पति प्राप्त होगा)।' यह कहकर उन्होंने मेरे दर्शन से हुए अनुराग के कारण स्थिर जड़ता वाली मन्जुवादिनी से प्रणाम कराकर फिर से हर्ष भरे स्वर में कहा—'वह बात अगर झूठ निकली तो कल आपके इस बालक कापालिक को मैं रोक (जब्त कर) लूँगी।' मैंने मुस्कराकर 'ठीक है' यह कहा। उस समय मन्जुवादिनी की अनुराग-मग्न दृष्टि ने मेरा धैर्य कवलित कर लिया था। भिक्षा पाकर नालीजङ्घ को बुलाकर और वहाँ से निकलकर अनुसरण कर रहे उससे धीरे से पूछा—'वह क्षीण उम्र वाला प्रसिद्ध प्रचण्ड वर्मा कहाँ है?' वह

---

[1] हर्षकलम्। [2] बद्धराग। [3] बालः।

स्यपास्तशङ्को राजास्थानमण्डप एव तिष्ठत्युपास्यमानः कुशीलवैः' इति। 'यद्येवमुद्याने तिष्ठ' इति तं जरन्तमादिश्य तत्प्राकारैकपार्श्वे क्वचिच्छून्यमठिकायां मात्राः समवतार्य तद्रक्षणनियुक्तराजपुत्रः कृतकुशीलववेषलीलः प्रचण्डवर्माणमेत्यान्वरञ्जयम्। अनुरञ्जितातपे तु समये जनसमाज[1]ज्ञानोपयोगीनि संहृत्य नृत्यगीतनानारुदितानि[2]हस्तचङ्क्रमणमूर्ध्वपादालातपादापीडवृश्चिकमकरलङ्घनादीनि मत्स्योद्वर्तनादीनि च करणानि, पुनरादायादायासन्नवर्तिनां क्षुरिकाः तासिरुप[3]-

अब्रूत अवदत्। अपास्ता दूरीकृता शङ्का येन सः। आस्थानस्य सभायाः मण्डपे। उपास्यमानः आराध्यमानः। कुशीलवैः गायकैः ("गायकास्तु कुशीलवाः" इति वैजयन्ती)। उद्याने उपवने। जरन्तम् वृद्धम् (नालीजङ्घम्)। आदिश्य आज्ञाप्य। तस्य (उद्यानस्य) प्राकारस्य कुड्यस्य एकपार्श्वे एकभागे। क्वचित् कस्यामपि। शून्यायाम् निर्जनायाम् मठिकायाम् अल्पे मठे। मात्राः परिच्छदान् ("मात्रा परिच्छदेऽल्पेंऽशे" इति वैजयन्ती) उपकरणानि। तस्याः (मात्रायाः) रक्षणाय नियुक्तः राजपुत्रः (भास्करवर्मा) येन सः। कृता कुशीलवस्य गायकस्य वेषलीला वेषधारणकौतुकम् येन सः। एत्य प्राप्य। अन्वरञ्जयम् प्रासादयम्। अनुरञ्जितः रक्तः आतपः कान्तिः यत्र सः तस्मिन्। जनानाम् समाजस्य समूहस्य ज्ञानोपयोगीनि। संहृत्य[4] आदाय। नृत्यम् च गीतम् गानम् च नाना विविधानि रुदितानि च। हस्तयोः चङ्क्रमणम् इतस्ततः प्रसारणम्। ऊर्ध्वपादम् ("कराभ्यामवनीं स्पृष्ट्वा मूर्धानं आनयेन्मुहुः। उत्तानीकृत्य चरणावूर्ध्वपादं तदुच्यते॥" इति नाटयशास्त्रस्य नृत्याध्याये) च अलातपादम् ("उद्धृत्यैकं च चरणमन्यं कृत्वैव कुञ्चितम्। नृत्यत्यनुमतं तिर्यक्तदलातकमेव च॥" इति भरतः नृत्याध्याये)। अपीडम् पीडाम् विना वृश्चिकलङ्घनम् वृश्चिकवत् गमनम् च मकरलङ्घनम् ग्राहवत् गमनम् च तदादीनि। मत्स्यवत् मीनवत् उद्वर्तनम् उत्प्लुतिः तदादीनि। करणानि क्रियाः। आसन्नवर्तिनाम

बोला—'यह राज्य मेरा है' यह सोचकर दूर हुई शङ्का वाला राजा (प्रचण्ड वर्मा) गायकों से आराधित होता हुआ सभा-मण्डप में ही स्थित है।' 'अगर ऐसी बात है तो बगीचे में रुको' इस प्रकार उस बूढ़े को आज्ञा देकर उस-(उद्यान) की दीवाल के एक भाग में किसी सूने छोटे मठ में साज-सामान उतारकर उसकी रक्षा के काम पर राजकुमार (भास्कर वर्मा) की नियुक्ति कर दी और गायक का वेष धारण करने का कौतुक कर प्रचण्ड वर्मा के पास पहुँचकर (उसका) मनो-विनोद करने लगा। वह समय आने पर जब धूप लाल हो जाती है (शाम) मैंने जन समाज के ज्ञानोपयोगी नाच, गान और नाना प्रकार की रोने की आवाजों का अवलम्बन किया। फिर हाथ इधर-उधर फैलाना, ऊर्ध्वपाद (हथेली जमीन पर और पैर का तलुवा आसमान की ओर कर सिर हिलाना), अलातपाद (एक पैर उठाकर और एक टेढ़ाकर अगल-बगल अभीष्ट रूप से नाचना) और बिना कष्ट के बिच्छू, मगर की चालें

---

[1] समाजोप०। [2] रुदितादि—नि। [3] उपाहित।
[4] प्रदर्शनकृत्यम् गृहीत्वा (प्रदर्श्य)।

हितवर्ष्मा चित्रदुष्कराणि करणानि श्येनपातोत्क्रोशपातादीनि दर्शयन् विंशतिचापान्तरालावस्थितस्य प्रचण्डवर्मणश्छुरिकयैकया प्रत्युरसं प्रहृत्य ‘जीव्या[1]द्वर्षसहस्रं वसन्तभानुः’ इत्यभिगर्जन् मद्गात्रमुत्कर्तु[2]मुद्यतासेः कस्यापि चारभटस्य पीवरांसबाहुशिखरमाक्रम्य तावतैव तं विचेतीकुर्वन् आकुलं च लोकमुच्चक्षूकुर्वन् द्विपुरुषोच्छ्रित प्राकारमत्यलङ्घयम्। अवप्लुत्य चोपवने ‘मदनुपातिनामेष पन्था दृश्यते’ इति ब्रुवाण एव नालीजङ्घसमीकृतसैकतास्पष्टपादन्यासया तमालवीथ्या

समीपस्थितानाम्। उपहितम् उपरि दत्तम् वर्ष्म (“वर्ष्म विग्रहः” इति अमरः) देहः यस्य सः। चित्राणि आश्चर्यकराणि दुष्कराणि च। करणानि क्रियाः। श्येनस्य पातः उत्पतनम् उत्क्रोशस्य कुररस्य (“उत्क्रोशकुररौ समौ” इति अमरः) पातः उत्पतनम् तदादीनि। प्रसारितबाहुद्वयपरिमाणम् चापः। विंशतिः चापाः तत्परिमाणे अन्तराले दूरे अवस्थितस्य वर्तमानस्य। प्रत्युरसम् उरसि। प्रहृत्य हत्वा। जीव्यात् जीवतु। वर्षाणाम् सहस्रम्। अभिगर्जन् भीषणम् गर्जन्। मम गात्रम् शरीरम्। उत्कर्तुम् छेत्तुम्। उद्यतः उत्थापितः असिः खड्गः येन तस्य। चारभटस्य भटस्य (“भटश्चारभटो मतः” इति हलायुधः)। पीवरः मांसलः अंसः स्कन्धः यस्य तस्य बाहोः भुजस्य शिखरम् अग्रभागम्। तावता तत्परिमाणेन। विचेतीकुर्वन् निःसंज्ञीकुर्वन् उच्चक्षूकुर्वन् ऊर्ध्वनेत्रम् कुर्वन् (“अरुर्मनश्चक्षुः···” इति सलोपः)। द्विपुरुषोच्छ्रितम् पुरुषद्वयप्रमाणोच्चम्। प्राकारम् कुड्यम्। अत्यलङ्घयम् उल्लङ्घितवान्। अवप्लुत्य प्लुत्या अवतीर्य। उपवने उद्याने। मम अनुपातिनाम् अनुधावताम्। एषः सम्मुखस्थः। पन्थाः मार्गः। ब्रुवाणः कथयन्। नालीजङ्घेन समीकृतम् सैकतम् सिकतामयः भागः यस्याम् अतः अस्पष्टाः पादन्यासाः चरणचिह्नानि यस्याम् तया। तमालानाम् वीथ्या पङ्क्तिमध्यमार्गेण। अनुप्राकारम्

और मछलियों की उछालें आदि करतब बार-बार ग्रहण कर निकटवर्तियों की जो छुरियाँ थीं, उनपर शरीर टिकाकर अचरज भरे और दुष्कर बाज की उड़ानें, कुरर (पक्षी) की उड़ानें आदि करतब दिखाते हुए बीस चाप (कंधों की सिधाई में दोनों हाथ फैला देने पर एक से दूसरे कोने की दूरी जो लगभग ४ हाथ की होती है, १ चाप होती है।) दूर स्थित प्रचण्ड वर्मा की छाती पर एक छुरी से प्रहार कर ‘वसन्तभानु हजार वर्ष जियें’ यह भयङ्कर गर्जना की। अपना शरीर काट डालने के लिये उठाई हुई तलवार वाले एक सिपाही के मांसल कंधों वाली भुजा के ऊपरी भाग पर कूदकर उतने से ही उसे बेहोश करता हुआ और घबड़ाये हुए समाज की आँखें ऊपर करते हुए दो पोरसे (खड़ा औसत आदमी हाथ उठाकर जितनी ऊँचाई दिखाता है, वह १ पोरसा होती है) ऊँची दीवाल लाँघ गया। फिर बगीचे में कूदकर ‘मेरा पीछा कर रहे लोगों को यह रास्ता दिखेगा (सूझेगा)’ यह कहता ही तमाल वृक्षों की पंक्ति वाले मार्ग से दुर्ग प्राचीर के किनारे-किनारे पूर्व दिशा से उस ओर तेजी से दौड़ा। उस मार्ग पर मेरे पैर के निशान नालीजंघ के द्वारा रेत बराबर कर देने से

---

[1] जीयात्। [2] अरूकर्तुम्; महर्तुम्।

चानुप्राकार प्राचा प्रतिप्रधावितः पुनरवाचोच्चितेष्टकाचितत्वादलक्ष्यपातेन[1] प्रद्रुत्य लङ्घितप्राकारवप्रखातवलयस्तस्यां शून्यमठिकायां तूर्णमेव प्रविश्य प्रतिमुक्तपूर्ववेषः सह कुमारेण मत्कर्मतुमुलराजद्वारि दुःखलब्धवर्त्मा श्मशानोद्देशमभ्यगाम्। प्रागेव तस्मिन्दुर्गागृहे प्रतिमाधिष्ठान एव मया कृतं भग्नपार्श्वस्थैर्यस्थूलप्रस्तरस्थगितबाह्यद्वारं बिलम्।

अथ गलति मध्यरात्रे वर्षवरोपनीतमहार्हरत्नभूषणपट्टनिवसनौ तद्बिलमावां

प्राकारस्य कुड्यस्य समीपतः। प्राचा पूर्वदिशा। प्रतिप्रधावितः समक्षम् प्रकर्षेण धावितः द्रुतः। अत्राचा पश्चिमदिशा। उच्चितानि राशीकृतानि च तानि इष्टकानि च तैः चितत्वात् व्याप्तत्वात्। अलक्ष्यः अदृश्यः पातः गमनम् यस्य तेन। प्रद्रुत्य धावित्वा। लङ्घितम् अतिक्रान्तम् प्राकारवप्रस्य दुर्गप्राचीरस्य खातस्य गर्तस्य वलयम् मण्डलम् परिखा येन सः। शून्या जनरहिता च सा मठिका अल्पः मठः तस्याम्। तूर्णम् शीघ्रम्। प्रतिमुक्तः गृहीतः पूर्वः (कापालिकस्य) वेषः रूपम् येन सः ("अमुक्तं प्रतिमुक्तं च पिनद्धं चापिनद्धवत्" इति लघुदीपिकायाम्)। कुमारेण राजकुमारेण (भास्करवर्मणा)। मम (विश्रुतस्य) कर्मणा कार्येण तुमुले ("तुमुलो व्याकुलरवः" इति महीपः) व्याकुलरवयुक्ते राजद्वारि प्रासादद्वारे। दुःखेन क्लेशेन लब्धम् प्राप्तम् वर्त्म मार्गः येन सः। श्मशानस्य उद्देशम् स्थानम्। अभ्यगाम् अगच्छम्। प्राक् पूर्वम्। दुर्गायाः गृहे मन्दिरे। प्रतिमायाः मूर्तेः अधिष्ठाने स्थाने। मया (विश्रुतेन)। भग्नम् दूरीभूतम् पार्श्वयोः स्थैर्यम् दृढता यस्य सः च स्थूलः गुरुः च प्रस्तरः ("पाषाणप्रस्तरग्रावोपलाश्मानः शिला दृषत्" इति अमरः) शिला च तेन स्थगितम् पिहितम् बाह्यम् प्रवेशस्य द्वारम् यस्य तत्। बिलम् छिद्रम्।

अथ तत्पश्चात्। गलति व्यतीते। वर्षवरेण नपुंसकेन ("षण्ढो वर्षवरः" इति अमरः) उपनीतानि आनीतानि महार्हाणि अमूल्यानि रत्नभूषणानि रत्नजटितानि आभरणानि पट्टनिवसनानि कौशेयवस्त्राणि याभ्याम् तौ। बिलम् छिद्रम्। आवाम् अहम् च राजकुमारः (भास्कर-

---

अस्पष्ट हो गये थे। फिर पश्चिम की ओर ढेर की ढेर ईंटों से व्याप्तता के कारण मेरा गमन अलक्ष्य रहा। तेज दौड़कर दुर्ग-प्राचोर और खाईं लाँघकर उस सूने छोटे मंदिर में शीघ्र ही घुसकर पहला भेष धारण कर राजकुमार के साथ चला। अपने कार्य से कोलाहलमय राजमहल द्वार पर राह मुश्किल से मिली। श्मशान-भूमि पहुँचा। पहले ही उस दुर्गा-मन्दिर में मूर्ति की जगह ही मैंने एक सुरंग बना दी थी जिसका बाहरी (प्रवेश का) द्वार ऐसे पत्थर से बन्द कर दिया था जिसकी बगलों की दृढ़ता नष्ट हो गई थी (खोलने के लिये पत्थर का ढक्कन बगल में ढीला कर दिया था)।

इसके बाद आधी रात बीत जाने पर हिंजड़े के द्वारा लाये गये बेशकीमती रत्न-जटित गहने और रेशमी वस्त्र धारण किये हुए हम दोनो उस बिल में प्रविष्ट होकर चुपचाप स्थित

---

[1] पादेन।

प्रविश्य तूष्णीमतिष्ठाव । देवी तु पूर्वेद्युरेव यथार्हमग्निसंस्कारं मालवाय [१]दत्त्वा प्रचण्डवर्मणे चण्डवर्मणे च तामवस्थामश्मकेन्द्रोपधिकृतामेव संदिश्य उत्तरेद्युः प्रत्युषस्येव पूर्वसंकेतितपौरामात्यसामन्तवृद्धैः सहाभ्येत्य भगवतीमर्चयित्वा समर्चनप्रत्यक्ष परीक्षितकुक्षिवैजन्यं तद्भवन विधाय दत्तदृष्टिः[२] सह जनेन स्थित्वा पटीयांसं पटहशब्दमकारयत् । अणुतररन्ध्रप्रविष्टेन तेन नादेनाहं दत्तसंज्ञः शिरसैवोत्क्षिप्य सप्रतिमं लोहपादपीठमंसलपुरुषप्रयत्नदुश्चलमुभयकरविधृत[३]मेकपार्श्वमेकतो निवेश्य निरगमम् । निरगमयं च कुमारम् । अथ यथापूर्व[४]मर्पयित्वा दुर्गा-

वर्मा) च। तूष्णीम् मोननो। देवी राज्ञी (वसुन्धरा)। पूर्वेद्युः गते दिवसे। यथार्हम् यथोचितम्। अग्निसंस्कारम् दाहक्रियाम्। मालवाय मालववासिने। अवस्थाम् दशाम्। अश्मकानाम् अश्मकदेशस्य इन्द्रस्य राज्ञः (वसन्तभानोः) उपधिना कपटेन कृताम्। उत्तरेद्युः अपरे दिवसे। प्रत्युषसि प्रातःकाले। पूर्वम् सङ्केतिताः उक्ताः ये पौराः नागरिकाः अमात्याः मन्त्रिणः सामन्ताः अधीनस्थाः नृपाः तेषु वृद्धैः। अभ्येत्य आगत्य। भगवतीम् विन्ध्यवासिनीम् देवीम्। अर्चयित्वा पूजयित्वा। सर्वेषाम् जनानाम् प्रत्यक्षम् समक्षम्। परीक्षितम् निरीक्षितम् कुक्षेः उदरस्य (अभ्यन्तरस्य) वैजन्यम् निर्जनता यस्य तत्। भवनम् प्रासादम्। विधाय कृत्वा। दत्ता निहिता दृष्टिः यया। पटीयांसम् पटुतरम् (उच्चैः)। पटहस्य दुन्दुभेः शब्दम् ध्वनिम्। अणुतरम् अतिशयेन अणु सूक्ष्मम् यत् रन्ध्रम् बिलम् तत्र प्रविष्टेन। नादेन ध्वनिना। अहम् (विश्रुतः)। दत्ता संज्ञा सङ्केतः यस्मै सः। प्रतिमया मूर्त्या सह वर्तमानम्। लोहस्य लोहमयम् पादपीठम् चरणन्यासपीठम्। अंसलः बलवान् ("बलवान् मांसलोंऽसलः" इति अमरः। "वत्सांसाभ्यां कामबले" इति लच्) च असौ पुरुषः च तस्य (अपि) प्रयत्नेन दुश्चलम्। उभयेन करेण विधृतम् गृहीतम् एकम् पार्श्वम् यस्य तत्। एकतः एकपार्श्वे। निवेश्य स्थापयित्वा। निरगमम् निरगच्छम्। निरगमयम् निष्कासितवान्। कुमारम् राजकुमारम् (भास्करवर्माणम्)। अथ ततः। यथापूर्वम् पूर्ववत्।

रहे। उधर रानी (वसुन्धरा) ने पिछले दिन ही मालव-देश के प्रचण्ड वर्मा का दाह-संस्कार करके और चण्डवर्मा को यह संदेश देकर कि वह दशा अश्मक के राजा के षड्यंत्र से ही हुई है, दूसरे दिन सवेरे ही पहले निर्दिष्ट बूढ़े नागरिक, मंत्री और सामन्तों के साथ पहुँचकर देवी (विन्ध्य-वासिनी) की पूजा कर सब लोगों की आँखों के सामने उस महल के अन्दर की निर्जनता को जाँच करके दृष्टि लगाकर लोगों के साथ ठहरकर नगाड़े की जोर की आवाज कराई। खूब छोटे छेद से घुसी हुई उस आवाज ने मुझे इशारा दिया। मैंने सिर से ही मूर्ति के साथ लोहे का चरण-पीठ (पैर रखने का पीढ़ा) उठा दिया। तगड़े आदमी की कोशिशों से (भी) उसका हिलना (तक) कठिन था। उसकी एक बगल दोनो हाथों से भली भाँति पकड़कर एक ओर रखकर निकल आया। राजकुमार को भी निकाला। इसके बाद दुर्गा को

---

[१] दापयित्वा। [२] दृष्टिरेव। [३] धृतपार्श्वम्। [४] यथापुरम्।

मुद्घाटितकपाटः प्रत्यक्षीभूय प्रत्ययहृष्टदृष्टिः स्पष्टरोमाञ्चमुद्यताञ्जलिरूढविस्मयं च प्रणि[1]पतन्तीः प्रकृतीरभ्यधाम्—'इत्थं देवी विन्ध्यवासिनी मन्मुखेन युष्मानाज्ञापयति—'स एष राजसूनुरापन्नो मया सकृपया शार्दूलरूपेण तिरस्कृत्याद्य वो दत्तः । तमेनमद्यप्रभृति मत्पुत्रतयाऽमन्द[2]मातृपक्ष इति परिगृह्णन्तु भवन्तः । अपि च दुर्घटकूटकोटिघटनापाटवप्रकटशाठ्यनिष्ठुराश्मकघटघट्टनात्मान मां मन्यध्वमस्य रक्षितारम् । रक्षानिर्वेशश्चास्य स्वसेयं सुभ्रूरभ्यनुज्ञाता मह्यमार्यया' इति । श्रुत्वैतत् 'अहो भाग्यवान्भोजवशो यस्य त्वमार्यादत्तो नाथः' इत्यप्रीयन्त

अर्पयित्वा स्थापयित्वा । उद्घाटितम् अनावृतम् कपाटम् येन सः । प्रत्यक्षीभूय समक्षम् आगत्य । प्रत्ययः (साक्षात्कारेण यः) विश्वासः तेन हृष्टा प्रसन्ना दृष्टिः यत्र कर्मणि तत् यथा स्यात् तथा । स्पष्टः रोमाञ्चः पुलकोद्गमः यत्र कर्मणि तत् यथा स्यात् तथा । उद्यतः उन्नमितः अञ्जलिः नमस्कृतिबद्धौ करौ यत्र कर्मणि तत् यथा स्यात् तथा । रूढः बद्धमूलः विस्मयः आश्चर्यम् यत्र कर्मणि तत् यथा स्यात् तथा । प्रणिपतन्तीः नमन्तीः । प्रकृतीः प्रजाः । अभ्यधाम् अवदम् । इत्थम् एवम् । मम मुखेन द्वारा । युष्मान् (जनान्) । सः प्रसिद्धः । एषः प्रस्तुतः । राज्ञः सूनुः पुत्रः । आपन्नः विपद्ग्रस्तः । मया (देव्या) । कृपया दयया सह वर्तमानया । शार्दूलरूपेण धृतशार्दूलवेषया । तिरस्कृत्य गोपायित्वा । वः युष्मभ्यम् । तम् उक्तम् । अद्य अस्मात् दिनात् । प्रभृति आरभ्य । मम (देव्याः) पुत्रः तत्ता तया । अमन्दः बलवान् मातृपक्षः यस्य सः । परिगृह्णन्तु स्वीकुर्वन्तु । भवन्तः यूयम् । दुर्घटायाः दुःसाध्यायाः कूटस्य कपटस्य कोटेः समूहस्य या घटना योजना तत्र यत् पाटवम् पटुता तेन प्रकटम् व्यक्तम् शाठ्यम् शठता तेन निष्ठुरः निर्दयः च सः घटः तस्य घट्टनः स्फोटकः आत्मा स्वरूपम् यस्य सः । अस्य (राजकुमारस्य) रक्षितारम् रक्षकम् । रक्षायाः निर्वेशः वेतनम् ("निर्वेशस्तु पुमान्भोगे वेतने" इति मेदिनी)। अस्य (भास्करवर्मणः)। स्वसा भगिनी (मञ्जुवादिनी)। इयम् प्रस्तुता । अभ्यनुज्ञाता निर्दिष्टा । मह्यम् (रक्षकाय) । आर्या देवी (विन्ध्यवासिनी) । तया दत्तः । अप्रीयन्त

पहले की भाँति रखकर पल्ला खोलकर सामने आया । विश्वास से प्रसन्न दृष्टि, स्पष्ट रोमांच, उठी हुई अञ्जलि (नमस्कार के लिए जुटे हाथ) और जमा हुआ आश्चर्य लेकर प्रणाम करती हुई जनता से बोला—'देवी विन्ध्य-वासिनी मेरे द्वारा आप लोगों को इस प्रकार आदेश देती हैं—'यह परिचित राजकुमार विपत्ति-ग्रस्त होने पर चीते के भेष में रहकर दया-पूर्वक मेरे द्वारा छिपाकर आज आप लोगों को दिया गया । उसी इसे आज से 'यह मेरा पुत्र है' इस कारण इसका मातृ-पक्ष महान् है' यह मानकर आप लोग स्वीकार करें ।' 'साथ ही दुःसाध्य कपटों के समूह की रचना की चालाकी से प्रगट धूर्तता के कारण निर्दय अश्मकरूपी घड़े के भंजक स्वरूप वाले मुझे इनका रक्षक मानें । देवी (विन्ध्य-वासिनी) ने (उक्त) रक्षा के वेतन के रूप में इनकी यह सुन्दर (भौंह वाली) बहन निर्दिष्ट की है ।' यह सुनकर 'धन्य है भाग्यवान् भोज-कुल जिसके स्वामी देवी के द्वारा दिये गये हुए आप हैं ।' यह कह-

---

[1] प्रति० ।   [2] मन्द ।

प्रकृतयः। सा तु वाचामगोचरां हर्षावस्थामस्पृशन्मे श्वश्रूः। तदहरेव च यथावदग्राहयन्मञ्जुवादिनीपाणिपल्लवम्। प्रपन्नायां च यामिन्यां सम्यगेव बिलं प्रत्यपूरयम्। अलब्धरन्ध्रश्च लोको नष्टमुष्टिचिन्तादिकथनैरभ्युपायान्तरप्रयुक्तैर्दिव्यांशतामेव मम समर्थयमानो मदाज्ञां नात्यवर्तत। राजपुत्रस्यार्यापुत्र इति प्रभावहेतुः[1] प्रसिद्धिरासीत्। तं च गुणवत्यहनि भद्राकृतमुपनाय्य पुरोहितेन पाठयन्नीतिं राजकार्याण्यन्वतिष्ठम्। अचिन्तयं च—'राज्यं नाम शक्तित्रयायत्तम्। शक्तयश्च मन्त्रप्रभावोत्साहाः परस्परानुगृहीताः कृत्येषु क्रमन्ते। मन्त्रेण हि

अमोदन्त। प्रकृतयः प्रजाः। सा (महादेवी वसुन्धरा)। न गोचरः अगोचरः इति तत्पुरुषः अतः अगोचराम् इति प्रयोगः चिन्त्यः। वाचाम् वाणीनाम् अगोचराम् अविषयम्। हर्षस्य आनन्दस्य। अवस्थाम् दशाम्। मे मम श्वश्रूः (भाविनी) पत्नीमाता। तदहः तस्मिन् दिने। यथावत् विधिना। अग्राहयत् ग्रहणम् अकारयत्। मञ्जुवादिन्याः पाणिः करः पल्लवः किसलयः इव तम्। प्रपन्नायाम् प्राप्तायाम्। यामिन्याम् रात्रौ। सम्यक् सुष्ठु बिलम् छिद्रम्। प्रत्यपूरयम् पूरयित्वा यथापूर्वम् अकरवम्। न लब्धम् प्राप्तम् रन्ध्रम् रहस्यम् येन सः। लोकः जनः। नष्टस्य (राजकुमारस्य) कथनम् मुष्टेः मुष्टिगतवस्तुनः (वक्तुः अज्ञातस्य प्रष्टॄणाम् च सर्वेषाम् बहूनाम् वा ज्ञातस्य वस्तुनः) चिन्तायाः चिन्तितस्य द्रव्यस्य कथनम् तदादीनाम् च कथनम् तैः अभ्युपायान्तरेषु बहुषु अभ्युपायेषु प्रयुक्तैः उपयुक्तैः। दिव्यः च असौ अंशः च दिव्यांशः (दिवि भवः दिव्यः अलौकिकः) तत्ता ताम्। मम (विश्रुतेः)। समर्थयमानः अनुमन्यमानः। मम आज्ञाम् आदेशम्। अत्यवर्तत अत्यक्रामत्। राजपुत्रस्य (भास्करवर्मणः)। आर्यायाः विन्ध्यवासिन्याः पुत्रः। प्रभावस्य प्रभुत्वस्य हेतुः कारणम्। तम् (राजकुमारम्)। गुणवति शुभे। अहनि दिने। भद्राकृतम् मुण्डितम्। उपनाय्य उपनयनम् कारयित्वा। पाठयन् शिक्षयन्। नीतिम् राजनीतिम्। अन्वतिष्ठम् अकरवम्। शक्तयः मन्त्रशक्तिः प्रभुशक्तिः उत्साहशक्तिः च तासाम् त्रयम् त्रयी तदायत्तम् तदधीनम्। परस्परेण अन्योन्येन

कर प्रजा प्रसन्न हुई। उधर मेरी उस (भावी) सास ने आनन्द की वर्णनातीत दशा का स्पर्श किया। उसी दिन उन्होंने मञ्जुवादिनी का नवीन पत्र-तुल्य हाथ मुझे थमाया। रात आने पर ठीक तरह से ही बिल भरकर पहले-जैसा कर दिया। जनता ने भेद न पाकर विभिन्न उपायों के लिए प्रयुक्त नष्ट वस्तु, न देखी वस्तु और सोची हुई वस्तु के कथनों से मुझमें दिव्य (अलौकिक) अंश होने का समर्थन करते हुए मेरे आदेश का उल्लंघन नहीं किया। राजकुमार की ख्याति देवी (विन्ध्य-वासिनी) के पुत्र के रूप में हुई जो प्रभाव का कारण बनी। फिर शुभ दिवस पर उस- (राज-कुमार) के बाल बनवाकर पुरोहित से जनेऊ करवाया और उसे राजनीति पढ़ाता हुआ राज-काज सँभालने लगा। तब मैंने सोचा—'निश्चय ही राज्य तीन शक्तियों के अधीन है। शक्तियाँ मन्त्र, प्रभाव और उत्साह हैं जो एक दूसरे से लाभान्वित होकर कर्त्तव्यों के क्षेत्र में प्रगति करती हैं। मंत्र से कार्य का ठीक

---

[1] ०हेतुप्रसिद्धिः।

विनिश्चयोऽर्थानाम्। प्रभावेण प्रारम्भः उत्साहेन निर्वहणम्। अतः पञ्चाङ्गमन्त्रमूलो द्विरूपप्रभावस्कन्धः चतुर्गुणोत्साहविटपः द्विसप्ततिप्रकृतिपत्रः षड्गुणकिसलयः शक्तिसिद्धिपुष्पफलश्च नयवनस्पतिर्नेतुरुपकरोति। स चायमनेकाधिकरण-

अनुगृहीताः अपेक्षिताः। कृत्येषु अधिकारेषु। क्रमन्ते प्रभवन्ति। विनिश्चयः निर्णयः। अर्थानाम् वस्तूनाम्। प्रारम्भः (अर्थानाम्) निर्वहणम् निर्वाहः (सिद्धिः)। पञ्च[1] अङ्गानि यस्य सः पञ्चाङ्गः[2] पञ्चाङ्गः च सः मन्त्रः च सः एव मूलम् यस्य सः। द्विरूपः द्वैधः प्रभावः यस्य सः एव स्कन्धः काण्डः यस्य सः। चत्वारः[3] गुणाः यस्य सः उत्साहः विटपाः शाखाः यस्य सः। द्विसप्ततिः[4] प्रकृतयः अमात्यादयः प्रजाः पत्राणि यस्य सः। षट् गुणाः किसलयानि नवपत्राणि यस्य सः। शक्तिः च सिद्धिः च (क्रमशः) पुष्पम् फलम् च यस्य सः। नयः राजनीतिः एव वनस्पतिः वृक्षः। नेतुः नायकस्य (राज्ञः)। अनेकानि बहूनि अधिकरणानि

निर्णय होता है, प्रभाव से (कार्य का) आरम्भ होता है और उत्साह से सिद्धि मिलती है। इसलिये राजनीति-रूपी वृक्ष नेता (राजा) को लाभ पहुँचाता है। इसकी जड़ पाँच अङ्गों वाला मंत्र है, तला दो भेदों वाला प्रभाव है, डाल चार भेदों वाला उत्साह है, पत्ते बहत्तर प्रकृतियाँ हैं, नये पत्ते छह गुण हैं और फूल तथा फल (क्रमशः) शक्ति और सिद्धि हैं। इसके आश्रय (संबंधी) अनेक होने से सहायक-रहित के लिए इसका आश्रय लेना कठिन

---

१. "सहायाः साधनोपाया विभागो देशकालयोः। विपत्तेश्च प्रतीकारः सिद्धिः पञ्चाङ्गमुच्यते॥" इति कामन्दकीयनीतिसारे (१२।२६)।

२. "अर्थानां पुरुषाणां च समृद्धिः" इति पदचन्द्रिकाव्याख्यायाम्। "स प्रभावः प्रतापश्च यत्तेजः कोषदण्डजम्।" इति अमरः।

३. साम दानम् भेदः दण्डः च।

४. "द्विसप्ततिः प्रकृतयो यथा (१) मध्यमः (२) विजिगीषुः (३) उदासीनः (४) शत्रुः एता मूलप्रकृतयः। (१) मित्रम् (२) अरिमित्रम् (३) मित्रमित्रम् (४) अरिमित्रमित्रम् एता विजिगीषोः पुरोवर्तिन्यः शाखाप्रकृतयः। अथ चतस्रः शाखाप्रकृतयः पृष्ठगा यथा (१) पार्ष्णिग्राहः (२) आक्रन्दः (३) पार्ष्णिग्राहासारः (४) आक्रन्दासारः (एवमष्टौ शाखाप्रकृतयः)। पञ्च द्रव्यप्रकृतयो यथा (१) अमात्यः (२) राष्ट्रम् (३) दुर्गम् (४) कोषः (५) दण्डः। एताः पूर्वोक्तद्वादशप्रकृतीनामेकैकस्या भवन्ति। अत एताः (१२×५) षष्टिः संपद्यन्ते। ताश्च द्वादशभिर्मूलप्रकृतिभिर्मिलिता द्विसप्ततिर्भवन्ति" इति कविरत्नस्य व्याख्यायाम् "मौला। द्वादश चैवैता अमात्याद्यास्तथा च याः। सप्ततिर्द्व्यधिकाद्येषां सर्वं प्रकृतिमण्डलम्॥" इति कामन्दकीयनीतिसारे (१२।२९)

त्वादसहायेन दुरुप[1]जीव्यः। यस्त्वयमार्यकेतुर्नाम मित्रवर्ममन्त्री स कोसलाभिजनत्वात्कुमारमातृपक्षो मन्त्रिगुणैश्च युक्तः तन्मतिमवमत्यैव ध्वस्तो मित्रवर्मा, स चेल्लब्धः पेशलम्' इति। अथ नालीजङ्घं रहस्यशिक्षयम्—'तात, आर्यमार्यकेतुमेकान्ते ब्रूहि—'को न्वेष मायापुरुषो य इमां राज्यलक्ष्मीमनुभवति। स चायमस्मद्बालो भुजङ्गेनामुना परिगृहीतः। किमुद्गीर्येत ग्रस्येत वा' इति। 'स यद्वदिष्यति तदस्मि बोध्यः' इति। सोऽन्यदैवं मामावेदयत्—'मुहुरुपास्य प्राभृतैः प्रवर्त्य चित्राः कथाः संवाह्य पाणिपादमतिविस्रम्भदत्तक्षणं तमप्राक्ष त्वदुपदिष्टेन नयेन। सोऽप्येवमकथयत्—'भद्र, मैवं वादीः। अभिजनस्य

आश्रयाः यस्य सः (नानाविधः) तत्त्वम् तत्ता तस्मात्। न सहायाः अमात्यादयः यस्य तेन। दुरुपजीव्यः दुःखेन उपजीवितुम् शक्यः। मित्रवर्मणः मन्त्री। कोसलाभिजनत्वात् कोसलवंशत्वात् ("संततिर्गोत्रजननकुलान्यभिजनान्वयौ" इति अमरः)। कुमारस्य राजकुमारस्य (भास्करवर्मणः) मातृपक्षः मातृपक्षीयः। मन्त्रिणः गुणाः मन्त्रिगुणाः तैः। तस्य (आर्यकेतोः) मतिम् बुद्धिम्। अवमत्य तिरस्कृत्य। ध्वस्तः नष्टः। चेत् यदि। लब्धः प्राप्तः (स्यात् तदा)। पेशलम् सुन्दरम् (स्यात्)। अथ ततः। रहसि एकान्ते। तात भद्र। आर्यम् आदरणीयम्। ब्रूहि वद। नु (वितर्के)। मायापुरुषः ऐन्द्रजालिकः। अस्माकम् बालः बालकः (राजकुमारः)। भुजङ्गेन सर्पेण। अमुना तेन। परिगृहीतः परितः गृहीतः धृतः। उद्गीर्येत त्यज्येत। ग्रस्येत भक्ष्येत। सः (आर्यकेतुः)। बोध्यः सूचनीयः। सः (नालीजङ्घः)। अन्यदा अन्यस्मिन् काले। माम् (विश्रुतम्)। आवेदयत् असूचयत्। मुहुः वारम् वारम्। उपास्य सेवित्वा। प्राभृतैः उपहारैः। प्रवर्त्य आरभ्य। चित्राः विचित्राः। कथाः चर्चाः। संवाह्य मर्दनम् कृत्वा। पाणिः च पादः च पाणिपादम् तत्। अतिविश्रम्भेण परमविश्वासेन दत्तः क्षणः अवसरः येन तम्। तम् (आर्यकेतुम्)। अप्राक्षम् अपृच्छम्। त्वया (विश्रुतेन) उपदिष्टेन (शिक्षितेन)। नयेन नीत्या। सः (आर्यकेतुः)। एवम् वक्ष्यमाणरीत्या।

है। मित्र वर्मा के मंत्री जो ये आर्यकेतु हैं, वे मिल जायँ तो सुन्दर हो। वे कोसल-वंशी होने से राजकुमार के मातृ-पक्ष के हैं और मंत्री के गुणों से युक्त हैं। उनकी बुद्धि का तिरस्कार कर ही मित्र वर्मा नष्ट हो गया। इसके बाद नालीजंघ को एकान्त में सिखाया—'भाई, श्रीमान् आर्यकेतु से अकेले में कहो—'यह कौन जादूगर है जो इस राज्य-सम्पत्ति का उपभोग कर रहा है? यह हमारा बालक (राज-कुमार) इस साँप के द्वारा जकड़ लिया गया है। पता नहीं, उगल देगा कि निगल जायेगा।' वे जो कहेंगे, वह मुझे बताना।' उसने दूसरी बार मुझे बताया—'बार-बार उपहारों से सेवा की, अचरज भरी चर्चायें चलाईं और हाथ-पैर दबाया। अत्यन्त विश्वास-पूर्वक उन्होंने अवसर दिया तो आपकी सिखाई नीति से मैंने उनसे पूछा। तब उन्होंने इस प्रकार कहा—'भाई, ऐसा मत कहो, कुल की पवित्रता

---

[1] ०जीवः।

शुद्धिदर्शनमसाधारणं बुद्धिनैपुणमतिमानुषं प्राणबलमपरिमाणमौदार्यमत्याश्चर्यमस्त्रकौशलमनल्पं शिल्पज्ञानमनुग्रहार्द्रं चेतस्तेजश्चाप्यविषह्यमभ्यमित्रीणमित्यस्मिन्नेव संनिपातिनो गुणाः, येऽन्यत्रैकैकशोऽपि दुर्लभाः। द्विषतामेष चिर[1]विल्वद्रुमः प्रह्वाणां तु चन्दनतरुस्तमुद्धृत्य नीतिज्ञंमन्यमश्मकमिमं च राजपुत्रं पित्र्ये पदे प्रतिष्ठितमेव विद्धि। नात्र संशयः कार्यः' इति। तच्चापि श्रुत्वा भूयोभूयश्चोपधाभिर्विशोध्य तं मे मतिसहायमकरवम्। तत्सखश्च सत्यशौचयुक्तानमात्यान्विविधव्यञ्जनांश्च गूढपुरुषानुदपादयम्। तेभ्य-

भद्र तात। मा न। एवम् उक्तप्रकारेण। वादीः वद। अभिजनस्य कुलस्य। शुद्धेः (अमलतायाः दर्शनम् दर्पणः वक्ष्यमाणः)। असाधारणम् महत्। बुद्धेः नैपुणम् निपुणता। अतिमानुषम् मानुषम् मनुष्यम् अतिक्रम्य वर्तते इति। प्राणबलम् सामर्थ्य-शक्तिः। न परिमाणम् मितिः यस्य तत्। औदार्यम् दानशीलता। अत्याश्चर्यम् परम् विस्मयभूतम्। अस्त्रेषु कौशलम् कुशलता। न अल्पम् अनल्पम् (बहु)। शिल्पस्य ज्ञानम्। अनुग्रहेण कृपया आर्द्रम् मृदु। तेजः प्रतापः। अविषह्यम् असहनीयम्। अभ्यमित्रीणम् अमित्रान् शत्रून् अभिमुखम् अलम् गच्छति इति तथा [“अभ्यमित्राच्छ च” इति अष्टाध्याय्याम् (५।२।१७)] अस्मिन् (विश्रुते)। संनिपातिनः समस्ततया (सङ्घबद्धाः)। अन्यत्र अन्यस्मिन् जने। एकैकशः व्यस्ततया (एकः)। चिरविल्बद्रुमः विषद्रुमः (नाशकः)। प्रह्वाणाम् नम्राणाम्। चन्दनतरुः (आनन्दप्रदः)। उद्धृत्य उन्मूल्य। नीतिज्ञंमन्यम् आत्मानम् नीतिज्ञम् मन्यते असौ इति। अश्मकम् अश्मकनृपम् (वसन्तभानुम्)। राजपुत्रम् (भास्करवर्माणम्)। पित्र्यम् पितुः इदम् तस्मिन् पित्र्ये। पदे स्थाने। प्रतिष्ठितम् बद्धमूलम्। विद्धि जानीहि। अत्र अस्मिन् विषये। कार्यः करणीयः। तत् उक्तम्। भूयः पुनः। उपधा उपधीयते शुद्धिज्ञान् अत्र इति ताभिः (“आतश्चोपसर्गे” इति अङ् (अष्टाध्यायो ३।३।१०६)] (“उपधा धर्माद्यैर्यत्परीक्षणम्” इति अमरः)। विशोध्य परीक्ष्य। तम् (आर्यकेतुम्)। मे मम। मतिसहायम् बुद्धिसहायकम्। तस्य सखा तत्सखः (“राजाहःसखिभ्यष्टच्” इति टच्) (सन्। तत्साहाय्येन)। सत्यम् च शौचम् पवित्रता च ताभ्याम् युक्तान्। अमात्यान् मन्त्रिणः। विविधानि व्यञ्जनानि वेषाः येषाम् ते।

का दर्पण है असाधारण बुद्धि-निपुणता, अमानुषिक सामर्थ्य-बल, असीम दानशीलता (विशाल हृदय होना), अत्यन्त विस्मय-कारक अस्त्र-कुशलता, बढ़ा-चढ़ा शिल्प-ज्ञान, दयार्द्र चित्त और असहनीय तथा बहादुरी से दुश्मन का सामना करने वाला तेज। ये गुण इन्हीं में एक साथ हैं जो अन्य व्यक्ति में एक-एक भी दुर्लभ हैं। ये शत्रुओं के लिए विष-वृक्ष, पर नम्रों के लिये चन्दन-तरु (पेड़) हैं। अपने को राजनीति-शास्त्र का विद्वान् लगाने वाले इस अश्मक-नरेश को उखाड़कर इनके द्वारा इस राजकुमार को पिता के स्थान पर बैठा ही दिया गया समझें। इस विषय में संदेह नहीं करना चाहिये। वह बात सुनकर बार-बार परीक्षाओं के द्वारा ईमानदारी का पता लगाकर उन्हें अपनी बुद्धि का सहायक बनाया। उनको साथ लेकर सच्चाई और

---

१. चिलिविलि–।

श्चोपलभ्य लुब्धसमृद्धमत्युत्सिक्तमविधेयप्रायं च प्रकृतिमण्डलमलुब्धतामभिख्यापयन् धार्मिकत्वमुद्भावयन् नास्तिकान्कदर्थयन् कण्टकान्विशोधयन् अमित्रोपधीरपघ्नन्[1]चातुर्वर्ण्यं च स्वधर्मकर्मसु स्थापयन् अभिसमाहरेयमर्थान् । अर्थमूला हि दण्डविशिष्टकर्मारम्भाः । न चान्यदस्ति पापिष्ठं तत्र दौर्बल्यात् । इत्याकलय्य योगानन्वतिष्ठम् ।

इति श्रीदण्डिनः कृतौ दशकुमारचरिते विश्रुतचरितं नामाष्टम उच्छ्वासः ।

——

गूढपुरुषान् चरान् । उदपादयम् शिक्षयित्वा कार्ये नियुक्तवान् । तेभ्यः (चरेभ्यः) । उपलभ्य ज्ञात्वा । लुब्धम् सलोभम् च समृद्धम् धनयुक्तम् च अत्युत्सिक्तम् गर्वातिशययुक्तम् । अविधेयप्रायम् प्रायेण अविधेयम् अवशीभूतम् । प्रकृतीनाम् मन्त्रिणाम् मण्डलम् समूहम् । अलुब्धताम् (निजम्) लोभराहित्यम् । अभिख्यापयन् प्रसिद्धीकुर्वन् । उद्भावयन् प्रकटीकुर्वन् । कदर्थयन् पीडयन् । कण्टकान् बाधकान् (शत्रून्) । विशोधयन् निवारयन् । अमित्राणाम् शत्रूणाम् उपधीः कपटप्रयोगान् । अपघ्नन् नाशयन् । चातुर्वर्ण्यम् चतुर्णाम् वर्णानाम् समाहारः । स्वस्य धर्मस्य कर्मसु कार्येषु । स्थापयन् नियुक्तीकुर्वन् । अभिसमाहरेयम् सञ्चिनुयाम् । अर्थान् धनानि । अर्थः धनम् मूलम् येषाम् ते । दण्डः दण्डनीतिः (राजनीतिः) च विशिष्टानि च तानि कर्माणि च तेषाम् आरम्भाः उद्योगाः। पापिष्ठम् अतिशयेन पापम् पापयुक्तम् । तत्र तेषु (आरम्भेषु) दौर्बल्यात् शक्तिहीनत्वात् । इति एवम् । आकलय्य विचार्य । योगान् उपायान् ("योगो युक्तौ च संगत्यां कार्मणालभ्यलाभयोः । देहदार्ढ्ये प्रयोगे च विष्कम्भादौ तथाऽऽत्मनि ॥ उपाये भेषजे विद्धिर्दृष्टिसंनहने घने । विश्रब्धघातिनि ध्याने युक्तिन्याये च योजने ॥" इति महीपः) । अन्वतिष्ठम् अकरवम् । कृतौ रचनायाम् ।

पवित्रता से युक्त मंत्रियों और अनेक प्रकार के रूपों वाले गुप्तचरों को निकाला । उनसे प्रजासमूह को लोभी, धनी, बहुत घमंडी और प्रायः बिलकुल कहना न मानने वाला जानकर लोभ-राहित्य की प्रसिद्धि कराते हुए, धार्मिकता प्रगट करते हुए, नास्तिकों को पीड़ित करते हुए, काँटों (विरोधियों) को सफाई (नाश) कराते हुए, दुश्मनों के छल-भरे कार्यों का नाश करते हुए और चारो वर्णों को अपने धर्मों में स्थिर रखते हुए धन इकट्ठा करूँ । राजनीति और श्रेष्ठ कार्यों के आरम्भों के मूल में धन ही है । उस विषय में, दुर्बलता से बढ़कर परम पापी दूसरी वस्तु नहीं है । यह सोचकर उपायों का उपयोग आरम्भ कर दिया ।

श्री दण्डी की रचना "दशकुमार चरित" के अन्तर्गत "विश्रुतचरित"
नामक आठवाँ उच्छ्वास समाप्त हुआ ।

——

---

[1] उपघ्नम् ।

❀ उत्तरपीठिका ❀

व्यचिन्तयं च—‘सर्वोऽप्यतिशूरः सेवकवर्गो मयि तथानुरक्तो यथाज्ञया जीवितमपि तृणाय मन्यते। राज्यद्वितयसैन्यसामग्र्या च नाहमश्मकेशाद्वसन्तभानोर्न्यूनो नीत्याविष्टश्च। अतो वसन्तभानुं पराजित्य विदर्भाधिपतेरनन्तवर्मणस्तनय भास्करवर्माणं पित्र्ये पदे स्थापयितुमलमस्मि। अयं च राजसूनुर्भवान्या पुत्रत्वेन परिकल्पितः। अहं चास्य साहाय्ये नियुक्तः’ इति सर्वत्र किंवदन्ती संजातास्ति। अद्यापि चैतन्मत्कपटकृत्यं न केनापि विदितम्। अत्रस्थाश्च अस्मिन्भास्करवर्मणि राजतनये ‘अयमस्मत्स्वामिनोऽनन्तवर्मणः पुत्रो भवान्याः प्रसादादे-

---

उत्तरा च असौ पीठिका भागः च। व्यचिन्तयम् विशेषेण अचिन्तयम् विचारितवान्। तृणाय मन्यते विगणयति। राज्ययोः (मित्रवर्मप्रचण्डवर्मणोः) द्वितयम् युगलम् तस्य सैन्य-सामग्री सेनासाधनम् तया (उपलक्षणे तृतीया)। अहम् (विश्रुतः)। न्यूनः अल्पः। नीत्याविष्टः नीत्यनुसन्धाने रतः (अस्मि)। विदर्भस्य विदर्भदेशस्य अधिपतेः राज्ञः। तनयम् पुत्रम्। पितुः इदम् पित्र्यम् तस्मिन्। पदे स्थाने। अलम् समर्थः। राज्ञः नृपस्य सूनुः पुत्रः। भवान्या देव्या (विन्ध्यवासिन्या)। पुत्रत्वेन पुत्ररूपेण। परिकल्पितः सृष्टः। अहम् (विश्रुतः)। अस्य (राजकुमारस्य)। साहाय्ये सहायतायाम्। नियुक्तः (विन्ध्यवासिन्या देव्या)। इति एवम्। सर्वत्र सर्वेषु स्थानेषु। किंवदन्ती जनश्रुतिः। संजाता उत्पन्ना। मम कपटकृत्यम् कपटाचरणम्। अत्रस्थाः अस्मिन् स्थाने निवासिनः। तनये पुत्रे। अस्माकम् स्वामिनः राज्ञः। भवान्याः विन्ध्य-

---

उत्तर पीठिका (परिशिष्ट)

मैंने भली-भाँति विचार किया—‘सारा का सारा सेवक समूह महान् वीर और मेरे प्रति इतनी भक्ति वाला है कि आदेश पर जीवन भी तुच्छ मानता है। दो राज्यों के सेना-बल से युक्त होकर मैं अश्मक-नरेश वसन्तभानु से कम नहीं हूँ। राजनीति में मेरा दखल भी है। इसलिये वसन्तभानु को हराकर विदर्भ (वर्तमान बरार) के राजा अनन्त वर्मा के पुत्र भास्कर वर्मा को पिता के स्थान पर बैठाने में समर्थ हूँ। ‘यह राजकुमार भवानी के द्वारा पुत्र-रूप में सृजा गया है और मैं इसकी सहायता में (भवानी के द्वारा) लगाया गया हूँ’ यह अफवाह सब जगह चल पड़ी है। आज तक मेरा यह कपटाचरण किसी को ज्ञात नहीं है और यहाँ रहने वाले इस राजकुमार भास्कर वर्मा को लेकर दृढ़ आशा लिए हुये हैं कि ‘हमारे राजा अनन्त वर्मा का यह पुत्र भवानी की कृपा से यह राज्य पायेगा। अश्मक-नरेश की सेना यह

तद्राज्यमवाप्स्यति' इति बद्धाशा वर्तन्ते। अश्मकेशसैन्यं च राजसूनोर्भवानीसाहाय्यं विदित्वा 'दैव्याः शक्तेः पुरो न बलवती मानवी शक्तिः' इत्यस्माभिर्विग्रहे चलचित्तमिवोपलक्ष्यते। अत्रत्याश्च मौलाः प्रकृतयः प्रथममेव राजसुताभ्युदयाभिलाषिण्य इदानीं च पुनर्मया दानमानाद्यावर्जनेन विश्वासिता विशेषेण राजपुत्रमेवाभिकाङ्क्षन्ति। अश्मकेन्द्रान्तरङ्गाश्च भृत्या मदीयैर्विश्वास्यतमैः पुरुषैः प्रभूतां प्रीतिमुत्पाद्य मदाज्ञया रहसीत्युपजप्ताः—'यूयमस्मन्मित्राणि अतोऽस्माकं शुभोदर्कवचो वाच्यमेव। अत्र भवान्या राजसूनोः साहाय्यकाय विश्रुतं विश्रुतं नियुज्य तद्धस्तेनाश्मकेन्द्रस्य वसन्तभानोस्तत्पक्षे स्थित्वा ये

वासिन्याः। प्रसादात् कृपया। अवाप्स्यति प्राप्स्यति। इति एवम्। बद्धा दृढा आशा येषाम् ते। अश्मकेशस्य सैन्यम् सेना। राज्ञः सूनोः पुत्रस्य। भवान्याः विन्ध्यवासिन्याः साहाय्यम् सहायताम्। विदित्वा ज्ञात्वा। दैवी देवानाम् इयम् तस्याः। पुरः समक्षम् (तुलनायाम्)। बलवती शक्तिशालिनी। मानवी मानवस्य। विग्रहे युद्धे। चलम् चञ्चलम् चित्तम् यस्य तत्। उपलक्ष्यते प्रतीयते। अत्रत्याः अस्य स्थानस्य। मौलाः मूलात् (विदर्भनगरात्) आगताः। प्रकृतयः प्रजाः। राज्ञः सुतस्य पुत्रस्य अभ्युदयम् उन्नतिम् अभिलषन्ति इमाः इति राजसुताभ्युदयाभिलाषिण्यः। इदानीम् अधुना। मया (विश्रुतेन)। दानम् च मानम् सम्मानम् च तदादिना आवर्जनेन प्रलोभनेन। विश्वासिताः विश्वासम् प्रापिताः। विशेषेण विशेषरूपेण। अभिकाङ्क्षन्ति प्रियम् मन्यन्ते। अश्मकेन्द्रस्य अश्मकराजस्य (वसन्तभानोः) अन्तरङ्गाः विश्वस्ताः। भृत्याः सेवकाः। मदीयैः मम। विश्वास्यतमैः अतिशयेन विश्वास्यैः विश्वासयोग्यैः। प्रभूताम् प्रचुराम्। प्रीतिम् स्नेहम्। उत्पाद्य जनयित्वा। मम आज्ञया। रहसि एकान्ते। इति एवम् (वक्ष्यमाणप्रकारेण)। उपजप्ताः भेदिताः। अस्माकम् मित्राणि। शुभः कल्याणयुक्तः उदर्कः परिणामः यस्य तत्। वचः वचनम्। वाच्यम् कथनीयम्। अत्र इह लोके। भवान्या (विन्ध्यवासिन्या)। राज्ञः सूनोः पुत्रस्य। साहाय्यकाय सहायतायै। विश्रुतम् प्रसिद्धीकृतम् (घोषितम्)। विश्रुतम् एतन्नामानम्। नियुज्य प्रयुज्य। तस्य (विश्रुतस्य) हस्तेन। अश्मकेन्द्रस्य अश्मकराजस्य। तस्य (वसन्तभानोः)।

जानकर कि राजकुमार को भवानी की सहायता प्राप्त है, 'ईश्वरीय ताकत के आगे आदमी की ताकत बली नहीं है' यह कहकर हम से युद्ध करने के मामले में चल-विचल सी प्रतीत होती है। यहाँ की जो जनता मूल रूप से (विदर्भ से) आई है। वह पहले से ही राजकुमार की उन्नति चाहती है और अब फिर से दान और सम्मान आदि आकर्षणों से मेरे द्वारा विश्वास दिलाये जाने पर विशेष रूप से राजकुमार को ही चाहती है। अश्मक-नरेश के विश्वास-पात्र और (सामान्य) नौकर मेरे परम विश्वास-योग्य लोगों के साथ खूब स्नेह पैदा कर मेरे आदेश से एकान्त में इस (निम्न) तरह फोड़े गये हैं--'आप लोग हमारे मित्र ठहरे, इसलिये हमें शुभ परिणाम वाली बातें कहनी हैं। यहाँ (इस लोक में) राजकुमार की सहायता के लिए भवानी ने घोषणा की है कि विश्रुत को उसके लिए नियुक्त कर उसके हाथ से अश्मक-नरेश और उसके पक्ष में बने रहकर जो इन-(विश्रुत) से युद्ध करेंगे वे भी यमराज के

चानेन सह योत्स्यन्ति तेषामप्यन्तकातिथिभवनम्। यावदश्मकेन्द्रेण स जन्यवृत्तिर्न जातस्तावदेनमनन्तवर्मतनयं भास्करवर्माणमनुसरिष्यथ। स वीतभयो भूयसीं प्रवृत्तिमासाद्य सपरिजनः सुखेन निवत्स्यति न चेद्भवानीत्रिशूलवश्यो भविष्यति। भवान्या च ममेत्याज्ञप्तमस्ति यदेकवारं सर्वेषां कथय। अतोऽस्माकं युष्माभिः सह मैत्रीमवबुध्यास्मन्मुखेन सर्वेभ्यो वार्त्तम्[1]।' इत्याकर्ण्य तेऽश्मकेन्द्रान्तरङ्गभृत्या राजसूनोर्भवानीवरं विदित्वा पूर्वमेव भिन्नमनस आसन्। विशेषतश्च मदीयमिति वचन श्रुत्वा ते सर्वेऽपि मद्वशे समभवन्। एतं सर्वमपि वृत्तान्तमवबुध्याश्मकेशेन व्यचिन्ति—'यद्राजसूनोर्मौलाः प्रजास्ताः सर्वा अप्येनमेव प्रभुमभिलषन्ति। मदीयश्च बाह्य आभ्यन्तरो भृत्यवर्गो भिन्नमना इव लक्ष्यते।

अनेन (विश्रुतेन)। योत्स्यन्ते युद्धम् करिष्यन्ते। अन्तकस्य मृत्योः अतिथिः तस्य भवनम् भावः। यावत् यत्पर्यन्तम्। अश्मकेन्द्रेण अश्मकराजेन। सः (विश्रुतः)। जन्यवृत्तिः युद्धोद्यतः। जातः भूतः। तावत् तत्पर्यन्तम्। अनन्तवर्मणः तनयम् पुत्रम्। अनुसरिष्यथ अनुगमिष्यथ। सः युष्माकम् मध्ये कृतभास्करवर्मानुसरणः। वीतम् दूरीभूतम् भयम् यस्य सः (सन्)। भूयसीम् प्रचुराम्। प्रवृत्तिम् सम्मानम् लक्ष्मीप्रवाहम् वा। आसाद्य प्राप्य। परिजनेन दाससमूहेन सह वर्तमानः। न चेत् अन्यथा। भवान्याः त्रिशूलवश्यः त्रिशूलाधीनः। इति एवम् (वक्ष्यमाणम्)। आज्ञप्तम् आदिष्टम्। अवबुध्य ज्ञात्वा। अस्माकम् मुखेन। वार्तम् वार्ता दत्ता। आकर्ण्य श्रुत्वा। अश्मकेन्द्रस्य अश्मकराजस्य अन्तरङ्गाः विश्वस्ताः च भृत्याः सेवकाः च। राज्ञः सूनोः पुत्रस्य। भवान्याः (विन्ध्यवासिन्याः) वरम्। विदित्वा ज्ञात्वा। भिन्नानि मनांसि येषाम् ते। मदीयम् मम। इति (पूर्वोक्तम्)। मम वशे। समभवन् जाताः। वृत्तान्तम् उदन्तम्। अवबुध्य ज्ञात्वा। अश्मकेशेन अश्मकराजेन (वसन्तभानुना)। व्यचिन्ति चिन्तितम्। राज्ञः सूनोः पुत्रस्य। मौलाः मूलात् (विदर्भनगरात्) आगताः। प्रभुम् नृपम्। अभिलषन्ति इच्छन्ति। मदीयः

अतिथि होंगे। जब तक अश्मक-नरेश के साथ वे युद्ध के लिए उद्यत न हो जायँ तब तक आप लोग इन अनन्त वर्मा के पुत्र भास्कर वर्मा का अनुसरण करें। उक्त (आप लोगों में से अनुसरण करने वाला) व्यक्ति निर्भय होकर प्रचुर सम्मान (या संपत्ति-प्रवाह) पाकर सेवकों के साथ सुख से रहेगा, नहीं तो भवानी के त्रिशूल के हवाले होगा। भवानी ने मुझे यह आदेश दिया है कि एक बार सबसे कह दो। इसलिये यह सोचकर कि आप लोगों के साथ हमारी मित्रता है; हमारे द्वारा सबको खबर की गई है।' यह सुनकर अश्मक-नरेश के विश्वस्त व्यक्तियों और (साधारण) नौकरों का मन 'राज-कुमार को भवानी का वरदान है' जानकर, विशेषतः मेरी उक्त बात सुनकर पहले ही फिर गया। वे सभी मेरे हाथों में आ गये। यह सारा समाचार जानकर अश्मक-नरेश ने सोचा—'राज-कुमार की वह प्रजा जो मूल रूप से (विदर्भ से) आई है, वह सारी की सारी उसी को राजा के रूप में चाहती है। मेरे बाहरी (सरकारी कामों में लगा) और भीतरी (व्यक्तिगत काम में लगा) सेवक-वर्ग का मन फिरा-सा लगता

---

१. गदितम्।

एवं यद्यहं क्षमामवलम्ब्य गृह एव स्थास्यामि तत उत्पन्नोपजापं स्वराज्यमपि परित्रातुं न शक्ष्यामि । अतो यावता भिन्नचित्तेन मदवबोधकं प्रकटयता मद्बलेन सह मिथोवचनं न संजातं तावतैव तेन साकं विग्रहं रचयामि । इत्येवं विहिते सोऽवश्यं मदग्रे क्षणमवस्थास्यति’ इति निश्चित्यान्यायेन परराज्यक्रमणपातकप्रेरितः ससैन्यो मृत्युमुखमिवास्मत्सैन्यमभ्ययात् । तमभ्यायान्तं विदित्वा राजपुत्रः पुरोऽभवत् । अतोऽश्मकेन्द्रमेव तुरगाधिरूढो यान्तमभ्यसरम् । तावत्सर्वा एव तत्सेना ‘यदयमेतावतोऽपरिमितस्यास्मत्सैन्यस्योपर्येक एवाभ्यागच्छति तत्र भवा-

मम । बाह्यः (जनसम्बद्धः) । आभ्यन्तरः मत्सम्बद्धः । भृत्यानाम् सेवकानाम् वर्गः समूहः । भिन्नम् मनः यम्य सः । लक्ष्यते प्रतीयते । एवम् तथा । अहम् (वसन्तभानुः) । क्षमाम् उदासीनताम् । अवलम्ब्य आश्रित्य । ततः तर्हि । उत्पन्नः उपजापः भेदः यस्य तत् । परित्रातुम् रक्षितुम् । शक्ष्यामि पारयिष्यामि । यावता येन कालेन । भिन्नम् चित्तम् यस्य तेन । मम अवबोधकम् हृदयसूचकम् वचनम् । प्रकटयता प्रकाशयता । मम बलेन सैन्येन । (तस्य रांजकुमारस्य) मिथोवचनम् गुप्तकथा । संजातम् भवति । तावता तेन कालेन । तेन (राजकुमारेण) । साकम् सह । विग्रहम् युद्धम् । रचयामि करोमि (करिष्यामि) । इति एवम् पूर्वोक्तप्रकारेण । विहिते कृते । सः (राजपुत्रः) । मम अग्रे समक्षम् । क्षणम् क्षणमात्रम् । अवस्थास्यति योत्स्यते । परस्य अन्यस्य राज्ये क्रमणम् आक्रमणम् तत् एव पातकम् पापम् तेन प्रेरितः । सैन्येन सह वर्तमानः । अस्माकम् सैन्यम् । अभ्ययात् उपायच्छत् । अभ्यायान्तम् समीपम् आगच्छन्तम् । विदित्वा ज्ञात्वा । राजपुत्रः (भास्करवर्मा) । पुरः समक्षम् । अश्मकेन्द्रम् अश्मकराजम् । तुरगे अश्वे अधिरूढः उपरि आरूढः । यान्तम् गच्छन्तम् । अभ्यसरम् समीपे अगच्छम् । तस्य (वसन्तभानोः) सेना । अयम् (विश्रुतः) । एतावतः इयत्परिमाणस्य । अपरिमितस्य असीमस्य । अस्माकम् सैन्यस्य । एकः एकाकी । अभ्यागच्छति समीपे आगच्छति ।

है । यदि इस प्रकार उदासीनता अपनाकर मैं घर पर ही रहूँगा तो मेरे राज्य के सभी फोड़ लिए जायेंगे और उसे भी बचा न पाऊँगा । इसलिए जब तक फिरा मन लिए हुए मेरे हृदय की बात प्रकट करती हुई मेरी सेना के साथ (राज-कुमार की) गुप्त बात नहीं हो जाती, उसके पहले ही उस- (राज-कुमार) से युद्ध करता हूँ । इस प्रकार किये जाने पर वह (राजकुमार) मेरे सामने एक क्षण (ही) टिकेगा ।’ यह निश्चय कर अन्याय-पूर्वक दूसरे के राज्य पर आक्रमण करने के पाप से प्रेरित होकर वह सेना के साथ हमारी सेना की ओर इस तरह बढ़ा जैसे मौत के मुँह की ओर बढ़ा हो । उसे बढ़ता हुआ जानकर राज-कुमार सामने आया, इसलिए जाते हुए अश्मक-नरेश की ओर ही घोड़े पर चढ़कर मैं बढ़ा । तब तक उसकी सारी की सारी सेना ‘यह हमारी इतनी असीम सेना के ऊपर अकेला ही टूट रहा है, इसका असाधारण कारण भवानी का वरदान ही है; दूसरा कुछ नहीं’

नीवर एवासाधारणं कारणं, नान्यत्' इति निश्चित्यालेख्यलिखिता इवावस्थिताः। ततो मयाभिगम्य संगराय समाहूतो वसन्तभानुः समेत्य मामसिप्रहारेण दृढमभ्यहन्। अहं च शिक्षाविशेषविफलिततदसिप्रहारः प्रतिप्रहारेण तं प्रहृत्यावकृत्तमश्मकेन्द्रशिरोऽवनौ विनिपात्य तत्सैनिकानवदम्—'अतः परमपि ये युयुत्सवो भवन्ति ते समेत्य मया युध्यन्ताम्। न चेद्राजतनयचरणप्रणाम विधाय तदीयाः सन्तः स्वस्ववृत्त्युपभोगपूर्वकं निजान्निजानधिकारान्निःशङ्कं परिपालयन्तः सुखेनावतिष्ठन्तु' इति। मद्वचनश्रवणानन्तरं सर्वेऽप्यश्मकेन्द्रसेवकाः स्वस्ववाहनात्सहसावतीर्य राजसूनुमानम्य तद्वशवर्तिनः समभवन्। ततोऽहं तदश्मकेन्द्रराज्यं राजसूनुसाद्विधाय तद्रक्षणार्थं मौलान्स्वानधिकारिणो नियुज्यात्मीभूतेना-

---

तत्र तस्मिन् विषये। भवान्याः वरः। असाधारणम् असामान्यम् (अलौकिकम्)। आलेख्ये चित्रे लिखिता अर्पिता। ततः तदा। मया (विश्रुतेन)। अभिगम्य समीपतः गत्वा। संगराय रणाय। समेत्य आगत्य। माम् (विश्रुतम्)। असेः खड्गस्य प्रहारेण। दृढम् यथाशक्ति। अभ्यहन् हतवान्। अहम् (विश्रुतः)। शिक्षा अस्त्रशिक्षा तस्याः विशेषः वैशिष्ट्यम् तेन विफलितः विफलीकृतः तस्य (बसन्तभानोः) असेः खड्गस्य प्रहारः येन सः। प्रतिप्रहारेण प्रत्याघातेन। तम् (वसन्तभानुम्)। प्रहृत्य आक्रम्य। अवकृत्तम् छिन्नम्। अश्मकेन्द्रस्य अश्मकराजस्य शिरः मस्तकम्। अवनौ भूमौ। विनिपत्य पातयित्वा। तस्य (वसन्तभानोः) सैनिकान् भटान्। अतः अस्मात्। परम् पश्चात्। युयुत्सवः योद्धुम् इच्छवः। ते (युद्धेच्छवः)। समेत्य संभूय। मया (विश्रुतेन)। न चेत् अन्यथा। राज्ञः तनयः पुत्रः तस्य चरणयोः प्रणामम् नतिम्। विधाय कृत्वा। तदीयाः तस्य अनुयायिनः। स्वस्य स्वस्य वृत्तिः जीवनसाधनम् तदुपभोगपूर्वकम्। अधिकारान् नियोगान्। निःशङ्कम् निर्भयम्। राजसूनुम् राजपुत्रम्। आनम्य प्रणम्य। राजसूनुसात् राजकुमाराधीनम्। विधाय कृत्वा। तस्य (राजसूनोः) रक्षणार्थम्।

यह निश्चय कर यों खड़ी रह गई मानों चित्र में अंकित हो। तब मैंने पास जाकर वसन्तभानु को जूझने के लिए ललकारा। उसने पास आकर मेरे ऊपर तलवार का जबर्दस्त आघात किया। मैंने विशिष्ट शिक्षा के बल पर उसकी तलवार का प्रहार व्यर्थ बनाकर जवाबी आघात कर अश्मक-नरेश का सिर पृथ्वी पर गिराकर उसके सिपाहियों से कहा—'इसके बाद भी जो युद्ध करने के इच्छुक हों, वे मिलकर मुझ (अकेले) से युद्ध करें, अन्यथा राजकुमार के चरणों में झुककर उनके होते हुए अपनी-अपनी जीविका के साधन का उपभोग कर अपने-अपने कृत्यों(डयूटी) का निर्भय होकर पालन करते हुए सुख-पूर्वक रहें।' मेरी बातें सुनने के बाद अश्मक-नरेश के सभी सेवक अपनी-अपनी सवारी से एकाएक उतरकर राज-कुमार को प्रणाम कर उसके अधीन हो गये। उसके बाद मैंने अश्मक नरेश का वह राज्य राज-कुमार के अधीन कर उसकी रक्षा के लिए मूल (विदर्भ) से आये अपने अधिकारियों को नियुक्त कर

श्मकेन्द्रसैन्येन च साकं विदर्भानभ्येत्य राजधान्यां तं राजतनयं भास्करवर्माणमभिषिच्य पित्र्ये पदे न्यवेशयम् ।

एकदा च मात्रा वसुमत्या सहावस्थितं राजानं व्यजिज्ञपम् 'मयैकस्य कार्यस्यारम्भश्चिकीर्षितोऽस्ति । स यावन्न सिध्यति तावन्मया न कुत्राप्येकत्रावस्थातुं शक्यम् । अत इयं मद्भार्या त्वद्भगिनी मञ्जुवादिनी कियन्त्यहानि युष्मदन्तिकमेव तिष्ठतु । अहं च यावदिष्टजनोपलम्भं कियन्तमप्यनेहसं भुवं विभ्रम्य तमासाद्य पुनरत्र समेष्यामि ।' इत्याकर्ण्य मात्रानुमतेन राज्ञाहमगादि—'यदेतदस्माकमेतद्राज्योपलम्भलक्षणस्यैतावतोऽभ्युदयस्यासाधारणो हेतुर्भवानेव । भवन्तं विना

मौलान् मूलात् (विदर्भनगरात्) आगतान् । आत्मीभूतेन वशीभूतेन । साकम् सह । अभ्येत्य प्राप्य । राज्ञः तनयम् पुत्रम् । पितुः इदम् पित्र्यम् तस्मिन् । पदे स्थाने । न्यवेशयम् अस्थापयम् ।

एकदा एकस्मिन् काले । वसुमत्या[1] वसुन्धरया । तम् (भास्करवर्माणम्) । व्यजिज्ञपम् असूचयम् । मया (विश्रुतेन) । एकस्य महत्त्वपूर्णस्य । चिकीर्षितः कर्तुम् इष्टः । सः (आरम्भः) । सिध्यति फलम् प्राप्नोति । तावत् तत्पर्यन्तम् । मया (विश्रुतेन) । एकत्र एकस्मिन् स्थाने । शक्यम् संभवम् । मम भार्या पत्नी । तव भगिनी स्वसा । कियन्ति कानिचित् अहानि दिनानि । युष्माकम् अन्तिकम् समीपे । अहम् (विश्रुतः) । इष्टजनस्य प्रियजनस्य उपलम्भम् प्राप्तिम् । कियन्तम् स्वल्पम् । अनेहसम् कालम् ("कालो दिष्टोऽप्यनेहाऽपि" इति अमरः) । भुवम् पृथ्वीम् । विभ्रम्य भ्रान्त्वा । तम् (प्रियजनम्) । आसाद्य प्राप्य । समेष्यामि मिलिष्यामि । आकर्ण्य श्रुत्वा । अनुमतेन आज्ञप्तेन । राज्ञा (भास्करवर्मणा) । अहम् (विश्रुतः) । अगादि उक्तः । एतस्य राज्यस्य उपलम्भः प्राप्तिः सः लक्षणम् यत्र सः । हेतुः कारणम् । भवान् त्वम् (विश्रुतः) ।

अपने वश में आई हुई अश्मक-नरेश की सेना के साथ विदर्भ देश पहुँचकर राजधानी में राजकुमार भास्कर वर्मा का राज्याभिषेक कर उसे पिता के आसन पर स्थापित कर दिया ।

एक बार माँ वसुन्धरा के साथ बैठे हुए उस राजा से मैंने निवेदन किया—'मैंने एक काम शुरू करने की इच्छा की है । वह जब तक सफल नहीं हो जाता, तब तक मेरे लिए किसी एक जगह टिकना संभव नहीं है । इसलिये मेरी यह पत्नी और तुम्हारी बहन मञ्जुवादिनी कुछ दिन तक तुम लोगों के पास ही रहे । मैं प्रिय व्यक्ति की प्राप्ति तक कुछ समय तक पृथ्वी का भ्रमण कर उस (प्रिय जन) को प्राप्त कर फिर यहाँ मिलूँगा ।' यह सुनकर माँ की अनुमति से राजा ने मुझसे कहा—'राज्य-प्राप्ति जिसका लक्षण (स्पष्ट प्रमाण) है, उस हमारी उन्नति के असामान्य कारण आप ही हैं और आपके बिना क्षण भर भी हम राज्य के इस जुये (भार)

---

१. पहले वसुन्धरा नाम बताया गया है; अब वसुमती लिखा गया है । राजवाहन की माँ का नाम वसुमती पहले आ चुका है । उससे अलग करने के लिए वसुन्धरा नाम ही ठीक जँचता है ।

संस्कृत में व्यक्ति-वाचक संज्ञाओं का भी पर्यायवाची लिखना देखा जाता है, अतः यह संभव है कि यहाँ "वसुन्धरा" का पर्यायवाची "वसुमती" लिख दिया गया हो ।

क्षणमप्यस्माभिरियं राज्यधूर्न निर्वाह्या। अतः किमेवं वक्ति भवान्' इत्याकर्ण्य मया प्रत्यवादि–'युष्माभिरय' चिन्तालवोऽपि न चित्ते चिन्तनीयः। युष्मद्गृहे यः सचिवरत्नमार्यकेतुरस्ति स ईदृग्विधानामनेकेषां राज्यानां धुरमुद्वोढुं शक्तः। ततस्तं तत्र नियुज्याहं गमिष्यामि' इत्यादिवचनसंदोहैः प्रलोभितोऽपि सजननीको नृपोऽनेकैराग्रहैर्मां कियन्तमपि कालं प्रयाणोपक्रमाद् न्यवर्तयत्। उत्कलाधिपतेः प्रचण्डवर्मणो राज्यं मह्यं प्रादात्। अहं च तद्राज्यमात्मसात्कृत्वा राजानमामन्त्र्य यावत्त्वदन्वेषणाय प्रयाणोपक्रमं करोमि तावदेवाङ्गनाथेन सिंहवर्मणा स्वसाहाय्यायाकारितोऽत्र समागतः पूर्वपुण्यविपाका[1]त्स्वामिना समगंसि'।

राज्यस्य धूः भारः राज्यधुरा (राज्यधूः इति प्रयोगः चिन्त्यः)। निर्वाह्या निर्वोढुम् योग्या। वक्ति वदति। आकर्ण्य श्रुत्वा। मया (विश्रुतेन)। प्रत्यवादि प्रत्युक्तः। चिन्तायाः लवः लेशः। युष्माकम् गृहे। सचिवेषु मन्त्रिषु रत्नम् श्रेष्ठः। ईदृग्विधानाम् एतादृशानाम्। अनेकेषाम् बहूनाम्। धुरम् भारम्। शक्तः समर्थः। ततः तदा (प्रयाणसमये)। तत्र तस्मिन् (राज्ये)। वचनानाम् सन्दोहाः समूहाः तैः। जनन्या मात्रा सह वर्तमानः सजननीकः। कियन्तम् बहुम्। प्रयाणस्य गमनस्य उपक्रमात् आरम्भात्। न्यवर्तयत् विमुखीकृतवान्। उत्कलस्य अधिपतेः राज्ञः। अहम् (विश्रुतः)। आत्मसात् निजाधीनम्। राजानम् (भास्करवर्माणम्)। आमन्त्र्य निवेद्य। तव अन्वेषणाय अनुसंधानाय। प्रयाणस्य गमनस्य उपक्रमम् आरम्भम्। अङ्गस्य नाथेन राज्ञा। स्वस्य साहाय्यकाय सहायतायै। आकारितः आहूतः। पूर्वाणि प्राक्तनानि यानि पुण्यानि सुचरितानि तेषाम् विपाकात् फलात्। स्वामिना राज्ञा (भवता राजवाहनेन) समगंसि मिलितः।

को भली भाँति ढोने में समर्थ नहीं हैं, अतः आप यह क्या कहते हैं?' यह सुनकर मैंने उत्तर दिया—'आपको यह चिन्ता-लेश भी मनमें नहीं रखना चाहिये। आपके घर में ये जो मंत्री-रत्न आर्यकेतु हैं, वे इस-जैसे अनेक राज्यों के जुये (भार) सँभालने में समर्थ हैं। तब उन्हें उस- (राज्य) पर नियुक्त कर (ही) मैं जाऊँगा।' इत्यादि वचन-समूहों का प्रलोभन देने पर भी माँ के साथ राजा ने अनेक आग्रहों से मुझे कितने ही समय तक जाने का आरम्भ करने से विमुख कर दिया। उत्कल[2] के राजा प्रचण्ड वर्मा का राज्य मुझे दिया और मैं वह राज्य अपने अधीन करके राजा से निवेदन कर जब तक आपकी खोज के लिये रवाना होने का आरंभ करूँ, तभी तक अङ्ग-नरेश सिंह वर्मा के द्वारा अपनी सहायता के लिये आमन्त्रित होकर यहाँ आया और पिछले पुण्य के फलित होने से स्वामी (आप राजवाहन) से भेंट हो गई।'

---

[1] परिपाकात्।

[2]. ताम्रलिप्त के दक्षिण में स्थित प्राचीन नगर। यह कपिशा नदी तक फैला था। आजकल यह उड़ीसा कहलाता है।

ततस्ते तत्र संयता अपहारवर्मोपहारवर्मार्थपालप्रमतिमित्रगुप्तमन्त्रगुप्तविश्रुताः कुमाराः पाटलिपुरे यौवराज्यमुपभुञ्जानं समाकारणे पूर्वकृतसङ्केतं वामलोचनया भार्यया सह कुमारं सोमदत्तं सेवकैरानाय्य सराजवाहनाः संभूयावस्थिता मिथः सप्रमोदसंवलिताः कथा यावद्विदधति तावत्पुष्पपुराद्राज्ञो राजहंसस्याज्ञापत्रमादाय समागता राजपुरुषाः प्रणम्य राजवाहनं व्यजिज्ञपन्–'स्वामिन् एतज्जनकस्य राजहंसस्याज्ञापत्रं गृह्यताम्' इत्याकर्ण्य समुत्थाय भूयो भूयः सादरं प्रणम्य सदसि तदाज्ञापत्रमग्रहीत्। शिरसि चाधाय तत उत्तार्योत्कील्य राजा राजवाहनः सर्वेषां शृण्वतामेवावाचयत्–'स्वस्ति श्रीः पुष्पपुरराजधान्याः श्रीराजहंसभूपतिश्चम्पानगरीमधिवसतो राजवाहनप्रमुखान्कुमारानाशास्याज्ञापत्रं प्रेषयति। यथा यूयमितो मामामन्त्र्य प्रणम्य प्रस्थिताः पथि कस्मिंश्चिद्वनोद्देश उपशिवालयं स्कन्धावारमवस्थाप्य स्थिताः। तत्र राजवाहनं शिवपूजार्थं निशि

ततः तत्पश्चात्। संगताः मिलिताः। समाकारणे आह्वाने। पूर्वम् कृतः सङ्केतः यस्य तम्। वामे सुन्दरे लोचने नेत्रे यस्याः तया। भार्यया पत्न्या। सेवकैः दासैः। आनाय्य आहूय। संभूय मिलित्वा। मिथः परस्परेण। सप्रमोदम् सानन्दम्। संवलिताः युक्ताः। विदधति कुर्वन्ति। व्यजिज्ञपन् न्यवेदयन्। एतत् दृश्यमानम्। जनकस्य पितुः (राजहंसस्य)। आकर्ण्य श्रुत्वा। भूयः पुनः। सदसि सभायाम्। अग्रहीत् अगृह्णात्। आधाय स्थापयित्वा। ततः तस्मात् (शिरसः)। उत्तार्य अवतार्य। उत्कील्य उन्मोच्य। अवाचयत् अपठत्। आशास्य आशीर्वचनैः अभिनन्द्य। यथा यत्। इतः अस्मात् स्थानात्। माम् (राजहंसम्)। आमन्त्र्य निवेद्य। प्रस्थिताः चलिताः। पथि मार्गे। वनस्य उद्देशे भागे। उपशिवालयम् शिवालयस्य शिवमन्दिरस्य

इसके बाद वहाँ जुटे हुए अपहार वर्मा, उपहार वर्मा, अर्थ पाल, प्रभृति, मित्र गुप्त, मन्त्र गुप्त और विश्रुत नामक वे कुमार पाटलिपुर में युवराज पद का उपभोग कर रहे कुमार सोमदत्त को जिसे बुलाने के लिए पहले ही संकेत कर दिया गया था सुन्दर नेत्रों वाली पत्नी के साथ सेवकों द्वारा बुलवाकर और राजवाहन के साथ मिलकर रहने लगे। परस्पर आनंद के साथ जुटकर वे बातें कर ही रहे थे कि तभी पुष्पपुर से राजा राजहंस का आज्ञा-पत्र लेकर आये हुए राज-कर्मचारियों ने प्रणाम कर राजवाहन से निवेदन किया—'महाराज, पिता राजहंस का यह आज्ञा-पत्र लीजिये।' यह सुनकर उठकर वार-बार आदर के साथ प्रणाम कर सभा में वह आज्ञा-पत्र ग्रहण किया। सिर पर रखकर और फिर उतारकर राजा राजवाहन ने खोला और सबके सुनते रहने पर ही पढ़ा—'स्वस्ति (कल्याण हो)। श्री (लक्ष्मी हो)। राजधानी पुष्पपुर से राजा श्री राजहंस चम्पा नगरी में रह रहे राजवाहन आदि कुमारों को आशीर्वाद देकर आज्ञा-पत्र भेजते हैं कि तुम लोग यहाँ से मुझसे निवेदन तथा प्रणाम कर रवाना होने के बाद रास्ते में जंगल के एक प्रदेश में शिव-मंदिर के समीप पड़ाव डालकर ठहरे थे। वहाँ शिव की पूजा के लिए रात को शिव-मंदिर में स्थित राजवाहन को सुबह न पाकर बचे हुए सभी

शिवालये स्थितं प्रातरनुपलभ्यावशिष्टाः सर्वेऽपि कुमाराः 'सहैव राजवाहनेन राजहंसं प्रणंस्यामो न चेत्प्राणांस्त्यक्ष्यामः' इति प्रतिज्ञाय सैन्यं परावर्त्य राजवाहनमन्वेष्टुं पृथक्प्रस्थिताः। एतं भवद्वृत्तान्त ततः प्रत्यावृत्तानां सैनिकानां मुखादाकर्ण्यासह्यदुःखोदन्वति मग्नमनसावुभावहं युष्मज्जननी च 'वामदेवाश्रमं गत्वैतद्वृत्तान्तं तद्विदितं विधाय प्राणपरित्यागं कुर्वः' इति निश्चित्य तदाश्रममुपगतौ तं मुनिं प्रणम्य यावत्स्थितौ तावदेव तेन त्रिकालवेदिना मुनिना विदितमेवास्मन्मनीषितम् । निश्चयमवबुध्य प्रावोचि–'राजन्, प्रथममेवैतत्सर्वं युष्मन्मनीषितं विज्ञान[1]बलादज्ञायि। यदेते त्वत्कुमारा राजवाहननिमित्ते कियन्तमनेहसमापदमासाद्य भाग्योदयादसाधारणेन विक्रमेण विहितदिग्वजयाः प्रभूतानि राज्यान्युपलभ्य षोडशाब्दान्ते विजयिनं राजवाहनं पुरस्कृत्य प्रत्येत्य तव

समीपे। स्कन्धावारम् शिविरम्। निशि रात्रौ। अनुपलभ्य अप्राप्य। अवशिष्टाः शेषाः। प्रत्यावृत्तानाम् निवृत्तानाम्। असह्यम् असहनीयम् च तत् दुःखम् च तत् एव उदन्वान् समुद्रः तस्मिन्। मग्नम् मनः ययोः तौ। उभौ द्वौ। अहम् (राजहंसः)। युष्माकम् तव जननी माता। तस्य (वामदेवस्य) विदितम् ज्ञातम्। विधाय कृत्वा। तस्य आश्रमः तम्। उपगतौ प्राप्तौ। तम् (वामदेवम्)। त्रिकालवेदिना भूतभविष्यद्वर्तमानज्ञात्रा। विदितम् ज्ञातम्। अस्माकम् आवयोः मनीषितम् हृदयगतम् भावम्। अवबुद्धय ज्ञात्वा। प्रावोचि उक्तम्। युष्माकम् मनीषितम् अभीष्टम्। विशिष्टम् (योगबलजन्यम्) ज्ञानम् विज्ञानम् तस्य बलेन। अज्ञायि ज्ञातम्। तव कुमाराः। राजवाहनः एव निमित्तम् कारणम् यत्र तत्र। कियन्तम् कंचन। अनेहसम् कालम्। आपदम् विपदम्। आसाद्य प्राप्य। भाग्यस्य उदयात् उन्नतेः असाधारणेन अलौकिकेन। विहितः कृतः दिशाम् विजयः यैः ते। प्रभूतानि बहूनि। उपलभ्य प्राप्य।

'कुमार राजवाहन के साथ ही राजहंस को प्रणाम करेंगे। नहीं तो (असफल होने पर) प्राण त्याग देंगे।' यह प्रतिज्ञा कर सेना वापस भेजकर राजवाहन को ढूँढ़ने के लिये अलग-अलग रवाना हो गये थे। तुम लोगों का यह समाचार वहाँ से लौटे हुए सैनिकों के मुख से सुनकर असह्य दुःख-सागर में मेरा और तुम्हारी माँ दोनों का मन मग्न हो गया था। 'वामदेव के आश्रम में पहुँचकर यह समाचार उन्हें बताकर प्राण त्याग करेंगे' यह निश्चय कर हम दोनो उनके आश्रम में पहुँचे और उन ऋषि को प्रणाम कर बैठे ही थे कि तभी उन त्रिकालज्ञ ऋषि ने हम लोगों की चाही हुई बात जान ही ली। निश्चय जानकर उन्होंने कहा—'राजन्, मैंने पहले ही आपके द्वारा चाही हुई यह सब बात योग बल से जान ली। तुम्हारे ये लड़के राजवाहन के लिए कुछ समय विपत्ति पाकर भाग्योदय के कारण अलौकिक पराक्रम से दिशाओं की विजय करके प्रचुर राज्य पाकर (उम्र के) सोलहवें वर्ष के अन्त में विजयी राजवाहन को आगे कर लौटेंगे और तुम्हारे तथा वसुमती के चरणों में प्रणाम कर

---

[1] योगबलात् ।

वसुमत्याश्च पादानभिवाद्य भवदाज्ञाविधायिनो भविष्यन्ति। अतस्तन्निमित्तं किमपि साहसं न विधेयम्' इति। तदाकर्ण्य तत्प्रत्ययाद्धैर्यमवलम्ब्याद्य प्रभृत्यहं देवी च प्राणनाधारयाव। इदानीमासन्नवर्तिन्यवधौ वामदेवाश्रमे गत्वा विज्ञप्तिः कृता–'स्वामिन् त्वदुक्तावधिः पूर्णप्रायो भवति। तत्प्रवृत्तिस्त्वयाद्यापि विज्ञायते' इति। श्रुत्वा मुनिरवदत्–'राजन् राजवाहनप्रमुखाः सर्वेऽपि कुमारा अनेकान्दुर्जयाञ्शत्रून्विजित्य दिग्विजयं विधाय भूवलयं वशीकृत्य चम्पायामेकत्र स्थिताः। तवाज्ञापत्रमादाय तदानयनाय प्रेष्यन्तां शीघ्रमेव सेवकाः'। इति मुनिवचनमाकर्ण्य भवदाकारणायाज्ञापत्रं प्रेषितमस्ति। अतः परं चेत्क्षणमपि यूयं विलम्बं विधास्यथ ततो मां वसुमतीं च मातरं कथावशेषावेव श्रोष्यथेति ज्ञात्वा पानीयमपि पथि भूत्वा पेयम् इति। एवं पितुराज्ञापत्रं मूर्ध्नि विधृत्य गच्छेमेति

षोडशाब्दान्ते षोडशवर्षसमाप्तौ। पुरस्कृत्य अग्रे कृत्वा। प्रत्येत्य प्रत्यागत्य। तव (राजहंसस्य)। वसुमत्याः (राज्ञ्याः)। अभिवाद्य प्रणम्य। भवतः आज्ञाविधायिनः आज्ञाकारिणः। तद् निमित्तम् हेतुः यत्र तद्। साहसम् अविचारितम् कर्म। विधेयम् करणीयम्। आकर्ण्य श्रुत्वा। तस्मिन् (वामदेवस्य) प्रत्ययात् विश्वासात्। अवलम्ब्य आश्रित्य। अद्य अस्मात् दिनात्। प्रभृति आरभ्य। अहम् (राजहंसः)। देवी राज्ञी (वसुमती)। इदानीम् अधुना। आसन्नवर्तिनि समीपवर्तिनि। विज्ञप्तिः निवेदनम्। त्वया उक्तः अवधिः। पूर्णप्राया बाहुल्येन पूर्णा। तेषाम् प्रवृत्तिः उदन्तः। भुवः पृथ्व्याः वलयम् मण्डलम्। तेषाम् आनयनाय आह्वानाय। आकर्ण्य श्रुत्वा। भवताम् आकारणाय आह्वानाय। अतः अस्मात्। परम् पश्चात्। चेत् यदि। विधास्यथ करिष्यथ। ततः तदा। माम् (राजवाहनम्)। कथायाम् चर्चायाम् (एव) अवशेषौ अवशिष्टौ। पानीयम् जलम्। पथि मार्गे। भूत्वा चलन्तः। मूर्ध्नि शिरसि। विधृत्य विशेषेण धृत्वा। चक्रुः अकुर्वन्।

तुम लोगों के आज्ञाकारी बनेंगे। इसलिये उनके लिये बिना सोचे-समझे कोई काम मत कीजियेगा।' वह बात सुनकर उस बात के प्रति विश्वास के कारण धैर्य धारण कर आज तक मैं और रानी ने प्राण धारण किये हैं। अब अवधि के पास आ जाने पर वामदेव के आश्रम में जाकर मैंने निवेदन किया—'स्वामी, आपके द्वारा कही हुई अवधि लगभग पूरी हो रही है। उनका हाल चाल अब आपको मालूम हो गया?' यह सुनकर ऋषि बोले—'राजवाहन आदि सभी कुमार बहुत से दुर्जय (जिन्हें जीतना कठिन है) शत्रुओं को जीतकर दिग्विजय कर पृथ्वी-मण्डल अधीन करके चम्पा में एक जगह स्थित हैं। आपका आज्ञा-पत्र लेकर उन्हें लाने के लिए शीघ्र ही सेवक भेजे जायँ।' मुनि की यह बात सुनकर तुम लोगों को बुलाने के लिए आज्ञा-पत्र भेजा जा रहा है। इसके बाद यदि तुम लोग क्षण भर की भी देर करोगे तो मुझे और माता वसुमती को कथा में ही अवशिष्ट (मरे हुये) सुनोगे, यह जानकर पानी भी रास्ते में ही रहकर (न कि वहीं बैठे हुए) पीना।' पिता का इस प्रकार का आज्ञा-पत्र सिर-

निश्चयं चक्रुः । अथ वशीकृतराज्यरक्षापर्याप्तानि सैन्यानि समर्थतरान्पुरुषानाप्तान्स्थाने स्थाने नियुज्य कियता सैन्येन मार्गरक्षां विधाय पूर्ववैरिणं मालवेशं मानसारं पराजित्य तदपि राज्यं वशीकृत्य पुष्पपुरे राज्ञो राजहंसस्य देव्या वसुमत्याश्च पादान्नमस्यामः । एवं निश्चित्य स्वस्वभार्यासंयुताः परिमितेन सैन्येन मालवेशं प्रति प्रस्थिताः । प्राप्य चोज्जयिनीं तदैव सहायभूतैस्तैः कुमारैः परिवृतेन राजवाहनेनातिबलवानपि मालवेशो मानसारः क्षणेन पराजिग्ये निहतश्च । ततस्तद्दुहितरमवन्तिसुन्दरीं समादाय चण्डवर्मणा तन्मन्त्रिणा पूर्वं कारागृहे रक्षितं पुष्पोद्भवं कुमारं सकुटुम्बं तत उन्मोचितं सह नीत्वा मालवेन्द्रराज्यं वशीकृत्य तद्रक्षणाय कांश्चित्सैन्यसहितान्मन्त्रिणो नियुज्यावशिष्टपरिमितसैन्यसहितास्ते कुमाराः पुष्पपुरं समेत्य राजवाहनं पुरस्कृत्य तस्य राजहंसस्य मातुर्वसुमत्याश्च चरणानभिवन्दितवन्तः । तौ च पुत्रसमागमं प्राप्य परमानन्दमधिगतौ । ततो राज्ञो वसुमत्याश्च देव्याः समक्षं वामदेवो राजवाहनप्रमुखानां

अथ ततः । वशीकृतानि स्वायत्तीकृतानि यानि राज्यानि तेषाम् या रक्षा तस्यै पर्याप्तानि । समर्थतरान् अतिशयेन समर्थान् । आप्तान् विश्वस्तान् । परिमितेन अल्पेन (एव) । प्रस्थिताः चलिताः । प्राप्य उपेत्य । परिवृतेन आवृतेन । पराजिग्ये पराजितः । ततः तत्पश्चात् । तस्य (मानसारस्य) दुहितरम् कन्याम् अवन्तिसुन्दरीम् (भार्याम्) । तस्य मानसारस्य मन्त्रिणा । पुष्पोद्भवः पद्मोद्भवस्य पौत्रः रत्नोद्भवस्य पुत्रः तम् । उन्मोचितम् उद्धृतम् । अभिवन्दितवन्तः प्रणतवन्तः । तौ वसुमती च राजहंसः च । पुत्रस्य (राजवाहनस्य) । समागमम् संयोगम् ।

माथे (स्वीकार) कर 'हमें जाना चाहिये' यह निश्चय उन लोगों ने किया । इसके बाद अधीन किये गये राज्यों की रक्षा के लिये पर्याप्त सेना तथा विशेष योग्य और विश्वास-पात्र पुरुषों को जगह-जगह नियुक्त करके कुछ सेना से रास्ते की रक्षा कर पहले के दुश्मन मालव-नरेश मानसार को हराकर वह राज्य भी अधीन करके पुष्पपुर में राजा राजहंस और रानी वसुमती के चरणों में प्रणाम करेंगे । इस प्रकार निश्चय करके वे अपनी-अपनी पत्नी के साथ सीमित सेना के साथ मालवा-नरेश की ओर रवाना हुए । फिर उज्जयिनी पहुँचकर तभी सहायकस्वरूप उन कुमारों से घिरे हुए राजवाहन के द्वारा मालवा-नरेश मानसार अत्यन्त बलवान् होने पर भी जीता गया और मार डाला गया । तब उसकी पुत्री अवन्तिसुन्दरी को लेकर उसके मंत्री चण्ड वर्मा के द्वारा पहले कारागार में रखे गये कुमार पुष्पोद्भव को कुटुम्ब के सहित वहाँ से छुड़वाकर साथ लेकर मालव-नरेश का राज्य कब्जे में कर उसकी रक्षा के लिए सेना के साथ कुछ मंत्रियों को नियुक्त कर बची हुई सीमित सेना के सहित उन कुमारों ने पुष्पपुर पहुँचकर राजवाहन को आगे कर उन राजहंस और माँ वसुमती के चरणों में प्रणाम किया । उन दोनो ने पुत्र मिलन प्राप्त कर परम आनन्द पाया । इसके बाद राजा और रानी वसुमती के सामने वामदेव ने राजवाहन आदि दसो कुमारों की इच्छा जानकर उन्हें आदेश

दशानामपि कुमाराणामभिलाषं विज्ञाय तानाज्ञापयत्—भवन्तः सर्वेऽप्येकवारं गत्वा स्वानि राज्यानि न्यायेन परिपालयन्तु । पुनर्यदेच्छा भवति तदा पित्रोश्चरणाभिवन्दनायागन्तव्यम्' इति । ततस्ते सर्वेऽपि कुमारास्तन्मुनिवचन शिरस्याधाय तं प्रणम्य पितरौ च, गत्वा दिग्विजय विधाय, प्रत्यागमनान्त स्वस्ववृत्तं पृथक्पृथङ्मुनिसमक्षं न्यवेदयन् । पितरौ च कुमाराणां निजपराक्रमावबोधकान्यतिदुर्घटानि चरितान्याकर्ण्य परमानन्दमाप्नुताम् । ततो राजा मुनिं सविनयं व्यजिज्ञपत्—'भगवन् तव प्रसादादस्माभिर्मनुजमनोरथाधिकमवाङ्मनसगोचरं सुखमधिगतम् । अतः पर मम स्वामिचरणसंनिधौ वानप्रस्थाश्रममधिगत्यात्मसाधनमेव विधातुमुचितम् । अतः पुष्पपुरराज्ये मानसारराज्ये च राजवाहनमभिषिच्यावशिष्टानि राज्यानि नवभ्यः कुमारेभ्यो यथोदितं संप्रदाय

अधिगतौ प्राप्तवन्तौ । अभिलाषम् इच्छाम् । विज्ञाय ज्ञात्वा । आज्ञापयत् आदिशत् । माता च पिता च पितरौ तयोः पित्रोः । चरणयोः अभिवन्दनाय प्रणामाय । प्रत्यागमनम् पुनः आगमनम् अन्तः अवधिः यस्य तत् । स्यस्वस्य वृत्तम् उदन्तम् । माता च पिता च पितरौ । निजस्य स्वस्य पराक्रमाणाम् अवबोधकानि ज्ञापकानि । अतिदुर्घटानि सुदुःसाध्यानि । चरितानि जीवनकथाः । आकर्ण्य श्रुत्वा । राजा (राजहंसः) । मुनिम् (वामदेवम्) । व्यजिज्ञपत् न्यवेदयत् । भगवन् श्रीमन् । प्रसादात् कृपया । अवाङ्मनसगोचरम् अवर्णनीयम् अकल्पनीयम् च । अधिगतम् । अतः अस्मात् । परम् पश्चात् । स्वामिनः (भवतः) चरणयोः संनिधौ सामीप्ये । वानप्रस्थाश्रमम् तृतीयम् आश्रमम् (''सुतविन्यस्तपत्नीकस्तया वानुगतो वनम् । वानप्रस्थो ब्रह्मचारी साग्निः सोपासनो व्रजेत् ॥'' इति याज्ञवल्क्यः) । अधिगत्य प्राप्य । आत्मसाधनम् आत्मसाक्षात्कारः । विधातुम् कर्तुम् । यथोदितम् यथोक्तरूपेण । संप्रदाय दत्त्वा । राजवाहनस्य

दिया—'तुम सब एक बार जाकर अपने राज्य का न्याय-पूर्वक पालन करो । फिर जब इच्छा हो तब माता-पिता के चरणों में प्रणाम करने के लिये आना ।' तब वे सभी कुमार ऋषि की वह बात सिर माथे कर उन्हें और माँ-बाप को प्रणाम कर गये और दिग्विजय करके फिर लौटने तक का अपना-अपना वृत्तान्त अलग-अलग ऋषि के सामने कहा.। माता-पिता ने कुमारों के व्यक्तिगत पराक्रम बताने वाली अत्यन्त दुःसाध्य जीवन-कथायें सुनकर परम आनन्द की प्राप्ति की । तब राजा ने ऋषि से नम्रता-पूर्वक निवेदन दिया—'श्रीमन्, आपकी कृपा से हमने मनुष्य के मनोरथ से परे वाणी और मन से भी परे सुख की प्राप्ति की है । इसके बाद स्वामी के चरणों के सामीप्य में वानप्रस्थ आश्रम की प्राप्ति कर आत्म-साक्षात्कार करना ही उचित है । इसलिए पुष्पपुर राज्य तथा मानसार के राज्य पर राजवाहन का अभिषेक कर बचे राज्य यथोक्त रीति से नौ कुमारों को देकर स्वामी (आप) को ऐसा उपाय करना चाहिये कि वे

ते कुमारा राजवाहनाज्ञाविधायिनस्तदेकमत्या वर्तमानाश्चतुरुदधिमेखलां वसुंधरां समुद्धृत्य कण्टकानुपभुञ्जन्ति तथा विधेयं स्वामिना' इति । तेषां तत्पितुर्वानप्रस्थाश्रमग्रहणोपक्रमनिषेधे भूयांसमाग्रहं विलोक्य मुनिस्तानवदत्—'भोः कुमारकाः अयं युष्मज्जनक एतद्वयःसमुचिते पथि वर्तमानः कायक्लेशं विनैव मदाश्रमस्थो वानप्रस्थाश्रमाश्रयणं सर्वथा भवद्भिर्न निवारणीयः । अत्र स्थितस्त्वयं भगवद्भक्तिमुपलप्स्यते । भवन्तश्च पितृसंनिधौ न सुखमवाप्स्यन्ति' इति । महर्षेराज्ञामधिगम्य ते पितुर्वानप्रस्थाश्रमाधिगम प्रतिषेधाग्रहमत्यजन् । राजवाहनं पुष्पपुरेऽवस्थाप्य तदनुज्ञया सर्वेऽपि परिजनाः स्वानि स्वानि राज्यानि प्रतिपाल्य स्वेच्छया पित्रोः समीपे गतागतमकुर्वन् । एवमवस्थितास्ते

आज्ञाविधायिनः आज्ञाकारिणः । तस्य (राजवाहनस्य) एकमत्या अविरोधेन । चत्वारः उदधयः समुद्राः मेखला रशना यस्याः ताम् । वसुन्धराम् भूमिम् । समुद्धृत्य उन्मूल्य । कण्टकान् बाधाः । विधेयम् करणीयम् । स्वामिना (भवता वामदेवेन) । तेषाम् (कुमाराणाम्) । तेषाम् (कुमाराणाम्) पितुः । वानप्रस्थाश्रमस्य ग्रहणम् तस्य उपक्रमः आरम्भः तस्य निषेधे । भूयांसम् अधिकतरम् । विलोक्य दृष्ट्वा । मुनिः (वामदेवः) । तान् (कुमारान्) । युष्माकम् जनकः पिता । एतस्मिन् वयसि समुचिते उपयुक्ते । पथि मार्गे । कायस्य शरीरस्य क्लेशम् पीडाम् । मम आश्रमः तत्स्थः । वानप्रस्थाश्रमस्य आश्रयणम् अङ्गीकरणम् । चिकीर्षुः कर्तुम् इच्छुः । सर्वथा केनापि प्रकारेण । पितुः (राजहंसस्य) । वानप्रस्थाश्रमस्य अधिगमः प्राप्तिः तस्य प्रतिषेधस्य निषेधस्य आग्रहम् हठम् । अवस्थाप्य स्थापयित्वा । तस्य अनुज्ञया आज्ञया । परिजनाः सेवकाः । प्रतिपाल्य रक्षित्वा । माता च पिता च तयोः पित्रोः । गतम् गमनम् च आगतम्

कुमार राजवाहन के आज्ञाकारी होकर उसकी सहमति से चलते हुए चार समुद्रों की करधनी वाली पृथ्वी का उपभोग काँटे (बाधायें या शत्रु) उखाड़कर करें । अपने पिता के वानप्रस्थ आश्रम ग्रहण की योजना के निषेध के प्रति उनका अत्यन्त अधिक आग्रह देखकर ऋषि ने उनसे कहा—'हे बच्चो, तुम्हारे ये पिता इस उम्र के उपयुक्त मार्ग में रहते हुए शरीर-कष्ट के विना ही मेरे आश्रम में ठहरे हुए वानप्रस्थाश्रम का अवलम्बन करने के इच्छुक हैं । तुम्हें इन्हें कदापि मना नहीं करना चाहिये । इस (आश्रम) में रहकर ये भगवान् की भक्ति की प्राप्ति करेंगे । तुम लोग पिता के सामीप्य में सुख प्राप्त न कर पाओगे ।' महर्षि की यह आज्ञा पाकर उन्होंने पिता की वानप्रस्थाश्रम प्राप्ति के निषेध का हठ छोड़ दिया । राजवाहन को पुष्पपुर में बैठाकर उसकी आज्ञा से सभी सेवक अपने-अपने राज्यों का पालन करके अपनी इच्छा से माता-पिता के पास जाने-आने लगे । इस प्रकार वे राजवाहन आदि रहे । उन सभी कुमारों ने

राजवाहनप्रमुखाः सर्वेऽपि कुमारा राजवाहनाज्ञया सर्वमपि वसुधावलयं न्यायेन परिपालयन्तः परस्परमैकमत्येन वर्तमानाः पुरंदरप्रभृतिभिरप्यतिदुर्लभानि राज्यसुखान्यन्वभूवन्।

इति श्रीदण्डिनः कृतौ दशकुमारचरिते उत्तरपीठिका।
समाप्तं दशकुमारचरितम्।

आगमनम् च। वसुधायाः भूमेः वलयम् मण्डलम्। परिपालयन्तः रक्षन्तः। परस्परम् (प्रति)। ऐकमत्येन अविप्रतिपत्त्या। पुरन्दरः इन्द्रः तत्प्रभृतिभिः तदादिभिः। अन्वभूवन् अन्वभवन्। कृतौ रचनायाम्। दश च ते कुमाराः च दशकुमारम् तस्य चरितानि जीवनकथाः दशकुमारचरितानि। तानि अधिकृत्य कृतम् काव्यम् यद्वा दशकुमाराणाम् चरितम् दशकुमारचरितम् यद्वा दशकुमाराणाम् चरितम् यस्मिन् काव्ये तत् दशकुमारचरितम् तस्मिन्। उत्तरपीठिका उत्तरभागः।

राजवाहन की आज्ञा से समस्त पृथ्वी-मण्डल का न्याय से भली-भाँति पालन करते हुए एक-दूसरे के प्रति समान-बुद्धि से रहते हुए ऐसे राज्य-सुख भोगे जो इन्द्रादि तक के लिए अत्यन्त दुर्लभ हैं।

श्री दण्डी की रचना "दशकुमार-चरित" की उत्तर
पीठिका समाप्त। "दशकुमार-चरित" समाप्त।

hawan's Sri Sankaracharya Sanskrit
573
Bharatiya Vidy · avidyalaya

★ श्री शंकराचार्य संस्कृत महाविद्यालय ★ भारतीय विद्या भवन, नई दिल्ली

हमारे महत्त्वपूर्ण छात्रोपयोगी प्रकाशन

[जिसमें मूल पाठ के साथ संस्कृत-हिन्दी टीका,
भूमिका, नोट्स एवं अन्य छात्रोपयोगी सामग्री]

अभिषेक-नाटक (भासकृत) (संस्कृत-हिन्दी टीका)—सं० मोहनदेव पंत	२०
अमरुशतकम्—अमरुक	१६
उत्तररामचरित—आनन्दस्वरूप	(अजिल्द) ९५; (सजिल्द) १५०
कथासरित्सागर (सोमदेव)—सं० जगदीशलाल शास्त्री	(अजिल्द) १५०; (सजिल्द) २५०
काव्यप्रकाश (प्रथम भाग)—रामसागर त्रिपाठी	(अ) १२०; (स) २००
कादम्बरी—मोहनदेव पन्त (पूर्वार्द्ध)	(अजिल्द) ५०; (सजिल्द) ७०
(उत्तरार्द्ध)	(अजिल्द) ४८; (सजिल्द) ९०
किरातार्जुनीयम् (१–४ सर्ग)—जनार्दन शास्त्री पाण्डेय	१६.५०
कुमारसंभव (१-२ सर्ग)—जगदीशलाल शास्त्री	८
चन्द्रालोक (संस्कृत-हिन्दी टीका)—सुबोधचन्द्र पन्त	२२
चित्रकाव्यकौतुक (संस्कृत)—रामरूप पाठक, सं० प्रेमलता शर्मा	२५
दशरूपक (संस्कृत-हिन्दी टीका)—बी० एन० पाण्डेय	४८
दूतवाक्य (भासकृत) (संस्कृत-हिन्दी व्याख्या)—रमाशंकर त्रिपाठी	२.५०
ध्वन्यालोक (संस्कृत-हिन्दी टीका) (तृतीय व चतुर्थ उद्योत)—रामसागर त्रिपाठी	(अजिल्द) ३५; (सजिल्द) ५०
पंचतन्त्र (सम्पूर्ण)—श्यामचरण पाण्डेय	(अजिल्द) ५५; (सजिल्द) ९०
प्रतिमानाटक (संस्कृत-हिन्दी टीका)—श्रीधरानन्द शास्त्री	२८
प्रसन्नराघव—रमाशंकर त्रिपाठी	१५
मालविकाग्निमित्र—सं० संसारचन्द्र एवं मोहनदेव पन्त	३८
मृच्छकटिकम् (संस्कृत-हिन्दी टीका)—रमाशंकर त्रिपाठी	(अजिल्द) ५०; (सजिल्द) ९०
मेघदूत—संसारचन्द्र	(अजिल्द) १८; (सजिल्द) ३०
रत्नावली नाटिका—बी० एन० पाण्डेय	१४
रामाभ्युदययात्रा—सं० श्यामचरण पाण्डेय	७
विक्रमोर्वशीय—रामविलास त्रिपाठी	१५
शुकनासोपदेश—हरिश्चन्द्र विद्यालंकार	१५
शिशुपालवध—(१–४ सर्ग)—जनार्दन शास्त्री पाण्डेय	२५.५०
साहित्यदर्पण—शालिग्राम शास्त्री	(अजिल्द) ९५; (सजिल्द) १२५
सौन्दरनन्द (अश्वघोष कृत)—अनु० सूर्यनारायण चौधरी	२८
स्वप्नवासवदत्त—जयपाल विद्यालंकार	४४
हितोपदेश (मित्रलाभ)—विश्वनाथ शर्मा	९

मोतीलाल बनारसीदास

दिल्ली वाराणसी पटना बंगलौर मद्रास

मूल्य : रु० ५८